सुनो भाई साधो

संत कबीर की वाणी पर ओशो के 20 अमृत प्रवचन

(NOTE : 2 books were printed previously on KABIR "सुनो भाई साधो" and "कस्तूरी कुंडल बसै।" (Suno Bhai Sadho and Kasturi Kundal Basai) containing 10 discourses each. Later on 20 talks were published as one large book, with the same title "सुनो भाई साधो" (Suno Bhai Sadho))

प्रवचन -क्रम

1. माया महाठगिनी हम जानी 3
2. मन गोरख मन गोविन्दौ 26
3. अपन पौ आपु ही बिसरो 46
4. गुरु कुम्हार सिष कुंभ है 61
5. झीनी झीनी बिनी चदरिया 83
6. भक्ति का मारग झीनी रे 101
7. घूंघट के पट खोल रे 119
8. संतो जागत नींद न कीजै 138
9. रस गगन गुफा में गजर झरै 159
10. मन मस्त हुआ फिर क्यों बोले 176
11. अन्तर्यात्रा के मूल सूत्र 198
12. धर्म कला है --मृत्यु की, अमृत की 221
13. मन के जाल हजार 240
14. विराम है द्वार राम का 257
15. धर्म और संप्रदाय 274
16. अभीप्सा की आगः अमृत की वर्षा 294
17. मन रे जागत रहिये भाई 311
18. शिष्यत्व महान क्रान्ति है 326
19. प्रार्थना है उत्सव 344
20. उपलब्धि के अंतिम चरण 362

सुनो भाई साधो
पहला प्रवचन

माया महाठगिनी हम जानी

पहला प्रवचन, दिनांकः 11 नवम्बर, 1974; श्री ओशो आश्रम, पूना.

सूत्र
माया महाठगिनी हम जानी।
निरगुन फांस लिए डोलै, बोलै मधुरी बानी।।
केसव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत होइ बैठी, तीरथ हू में पानी।।
जोगि के जोगिन होइ बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कौड़ी कानी।।
भक्तन के भक्ति होइ बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मपानी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी।।

कबीर अनूठे हैं। और प्रत्येक के लिए उनके द्वारा आशा का द्वार खुलता है। क्योंकि कबीर से ज्यादा साधारण आदमी खोजना कठिन है। और अगर कबीर पहुंच सकते हैं, तो सभी पहुंच सकते हैं। कबीर निपट गंवार हैं, इसलिए गंवार के लिए भी आशा है; बे-पढ़े-लिखे हैं, इसलिए पढ़े-लिखे होने से सत्य का कोई भी संबंध नहीं है। जाति-पाति का कुछ ठिकाना नहीं कबीर की--शायद मुसलमान के घर पैदा हुए, हिंदू के घर बड़े हुए। इसलिए जाति-पाति से परमात्मा का कुछ लेना- देना नहीं है।
कबीर जीवन भर गृहस्थ रहे--जुलाहे--बुनते रहे कपड़े और बेचते रहे; घर छोड़ हिमालय नहीं गए। इसलिए घर पर भी परमात्मा आ सकता है, हिमालय जाना आवश्यक नहीं। कबीर ने कुछ भी ने छोड़ा और सभी कुछ पा लिया। इसलिए छोड़ना पाने की शर्त नहीं हो सकती।
और कबीर के जीवन में कोई भी विशिष्टता नहीं है। इसलिए विशिष्टता अहंकार का आभूषण होगी; आत्मा का सौंदर्य नहीं।
कबीर न धनी हैं, न ज्ञानी है, न समादृत हैं, न शिक्षित हैं, न सुसंस्कृत हैं। कबीर जैसा व्यक्ति अगर परमज्ञान को उपलब्ध हो गया, तो तुम्हें भी निराश होने की कोई भी जरूरत नहीं। इसलिए कबीर में बड़ी आशा है।
बुद्ध अगर पाते हैं तो पक्का नहीं की तुम पा सकोगे। बुद्ध को ठीक से समझोगे तो निराशा पकड़ेगी; क्योंकि बुद्ध की बड़ी उपलब्धियां हैं पाने के पहले। बुद्ध सम्राट हैं। इसलिए अगर धन से छूट जाए, आश्चर्य नहीं। क्योंकि जिसके पास बस है, उसे उस सब की व्यर्थता का बोध हो जाता है। गरीब के लिए बड़ी कठिनाई है--धन से छूटना। जिसके पास है ही नहीं, उसे व्यर्थता का पता कैसे चलेगा? बुद्ध को पता चल गया, तुम्हें कैसे पता चलेगा? कोई चीज व्यर्थ है, इसे जानने के पहले, कम से कम उसका अनुभव तो होना चाहिए। तुम कैसे कह सकोगे कि धन व्यर्थ है? धन है कहां? तुम हमेशा अभाव में जिए हो, तुम सदा झोपड़े में रहे हो--तो महलों में आनंद नहीं है, यह तुम कैसे कहोगे? और तुम कहते भी रहो, और यह आवाज तुम्हारे हृदय की आवाज न हो सकेगी; यही दूसरों से सुना हुआ सत्य होगा। और गहरे में धन तुम्हें पकड़े ही रहेगा।
बुद्ध को समझोगे तो हाथ-पैर ढीले पड़ जाएंगे।
बुद्ध कहते हैं, स्त्रियों में सिवाय हड्डी, मांस-मज्जा के और कुछ भी नहीं है, क्योंकि बुद्ध को सुंदरतम स्त्रियां उपलब्ध थीं, तुमने उन्हें केवल फिल्म के परदे पर देखा है। तुम्हारे और उन सुदरतम स्त्रियों के बीच बड़ा फासला है। वे सुंदर स्त्रियां तुम्हारे लिए अति मनमोहक हैं। तुम सब छोड़कर उन्हें पाना चाहोगे। क्योंकि जिसे पाया नहीं है वह व्यर्थ है, इसे जानने के लिए बड़ी चेतना चाहिए।
कबीर गरीब हैं, और जान गए यह सत्य कि धन व्यर्थ है। कबीर के पास एक साधारण सी पत्नी है, और जान गए कि सब राग-रंग, सब वैभव-विलास, सब सौंदर्य मन की ही कल्पना है।

कबीर के पास बड़ी गहरी समझ चाहिए। बुद्ध के पास तो अनुभव से आ जाती है बात; कबीर को तो समझ से ही लानी पड़ेगी।
गरीब का मुक्त होना अति कठिन है। कठिन इस लिहाज से कि उसे अनुभव की कमी बोध से पूरी करनी पड़ेगी; उसे अनुभव की कमी ध्यान से पूरी करनी पड़ेगी। अगर तुम्हारे पास भी सब हो, जैसा बुद्ध के पास था, तो तुम भी महल छोड़कर भाग जाओगे; क्योंकि कुछ और पाने को बचा नहीं; आशा टूटी वासना गिरी, भविष्य में कुछ और है नहीं वहां--महल सुना हो गया।
आदमी महत्वाकांक्षा में जीता है। महत्वाकांक्षा कल की-- और बड़ा होगा,
और बड़ा होगा, और बड़ा होगा... दौड़ता रहता है। लेकिन आखिरी पड़ाव आ गया, अब कोई गति नहीं--छोड़ोगे नहीं तो क्या करोगे? तो महल या तो आत्मघात बन जाता है या आत्मक्रांति। पर कबीर के पास कोई महल नहीं है।
बुद्ध बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। जो भी श्रेस्रतम ज्ञान था उपलब्ध, उसमें दीक्षित किए गए थे। शास्त्रों के ज्ञाता थे। शब्द के धनी थे। बुद्धि बड़ी प्रखर थी। सम्राट के बेटे थे। तो सब तरह से सुशिक्षा हुई थी।
कबीर सड़क पर बड़े हुए। कबीर के मां-बाप का कोई पता नहीं। शायद कबीर नाजायज संतान हों। तो मां ने उसे रास्ते के किनारे छोड़ दिया था--बच्चे को-- पैदा होते ही। इसलिए मां का कोई पता नहीं। कोई कुलीन घर से कबीर आए नहीं। सड़क पर ही पैदा हुए जैसे, सड़क पर ही बड़े हुए जैसे। जैसे भिखारी होना पहले दिन से ही भाग्य से लिखा था। यह भिखारी भी जान गया की धन व्यर्थ है, तो तुम भी जान सकोगे। बुद्ध से आशा नहीं बंधती। बुद्ध की तुम पूजा कर सकते हो। फासला बड़ा है, लेकिन बुद्ध जैसा होना तुम्हें मुश्किल मालूम पड़ेगा। जन्मों-जन्मों की यात्रा लगेगी। लेकिन कबीर और तुम में फासला जरा भी नहीं। कबीर जिस सड़क पर खड़े हैं--शायद तुमसे भी पीछे खड़े हैं; और अगर कबीर तुमसे भी पीछे खड़े होकर पहुंच गए, तो तुम भी पहुंच सकते हो।
कबीर जीवन के लिए बड़ा सूत्र हो सकते हैं। इसे तो पहले स्मरण में ले लें। इसलिए कबीर को में अनूठा कहता हूं। महावीर सम्राट के बेटे हैं; कृष्ण भी, राम भी, बुद्ध भी; वे सब महलों से आए हैं। कबीर बिल्कुल सड़क से आए हैं; महलों से उनका कोई भी नाता नहीं है। कहा है कबीर ने कि कभी हाथ से कागज और स्याही छुई नहीं--मसी कागज छुओं न हाथ।
ऐसा अपढ़ आदमी, जिसे दस्तखत करने भी नहीं आते, इसने परमात्मा के परम ज्ञान को पा लिया--बड़ा भरोसा बढ़ता है। तब इस दुनिया में अगर तुम वंचित हो तो अपने ही कारण वंचित हो, परिस्थिति को दोष मत देना। जब भी परिस्थिति को दोष देने का मन में भाव उठे, कबीर का ध्यान करना। कम से कम मां-बाप का तो तुम्हें पता है, घर-द्वार तो है, सड़क पर तो पैदा नहीं हुए। हस्ताक्षर तो कर ही लेते हो। थोड़ी-बहुत शिक्षा हुई है, हिसाब-किताब रख लेते हो। वेद, कुरान, गीता भी थोड़ी पढ़ी है। न सही बहुत बड़े पंडित, छोटे-छोटे पंडित तो तुम भी हो ही। तो जब भी मन होने लगे परिस्थिति को दोष देने का कि पहुंच गए होंगे बुद्ध, सारी सुविधा थी उन्हें, में कैसे पहुंचूं, तब कबीर का ध्यान करना। बुद्ध के कारण जो असंतुलन पैदा हो जाता है कि लगता है, हम न पहुंच सकेंगे-- कबीर तराजू के पलड़े को जगह पर ले आते हैं। बुद्ध से ज्यादा कारगर हैं कबीर। बुद्ध थोड़े से लोगों के काम के हो सकते हैं। कबीर राजपथ हैं। बुद्ध का मार्ग बड़ा संकीर्ण है; उसमें थोड़े ही लोग पा सकेंगे, पहुंच सकेंगे। बुद्ध की भाषा भी उन्हीं की है--चुने हुए लोगों की। एक-एक शब्द बहुमूल्य है; लेकिन एक-एक शब्द सूक्ष्म है। कबीर की भाषा सबकी भाषा है-- बेपढ़े-लिखे आदमी की भाषा है। अगर तुम कबीर को न समझ पाए, तो तुम कुछ भी न समझ पाओगे। कबीर को तो समझ लिया, तो कुछ भी समझने को बचता नहीं। और कबीर को तुम जितना समझोगे, उतना ही तुम पाओगे कि बुद्धत्व का कोई भी संबंध परिस्थिति से नहीं। बुद्धत्व तुम्हारी भीतर की अभीप्सा पर निर्भर है--और कहीं भी घट सकता है; झोपड़े में, महल में, बाजार में, हिमालय पर; पढ़ी-लिखी बुद्धि में, गैर-पढ़ी लिखी बुद्धि में, गरीब को, अमीर को; पंडित को, अपढ़ को; कोई परिस्थिति का संबंध नहीं है।
ये जो वचन इस समाधि शिविर में हम कबीर के लेने जा रहे हैं, इनका शीर्षक हैः सुनो भाई साधो। और कबीर अपने हर वचन में कहीं न कहीं साधु को ही

संबोधित करते हैं। इस संबोधन को थोड़ा समझ लें, फिर हम उनके वचनों में उतरने की कोशिश करें।

मनुष्य तीन तरह से पूछ सकता है। एक कुतूहल होता है--बच्चों जैसा। पूछने के लिए पूछ लिया, कोई जरूरत न थी, कोई प्यास भी न थी, कोई प्रयोजन भी न था। ऐसे ही मन की खुजली थी। उठ गया प्रश्न, पूछ लिया। उ Ÿ मिले तो ठीक, न मिले तो ठीक, दुबारा पूछने का भी ख्याल नहीं आता--छोटे बच्चे जैसा पूछते हैं। रास्ते से गुजर रहे हैं, पूछते हैं, यह क्या है? वृक्ष क्या है? वृक्ष हरे क्यों हैं? सूरज सुबह क्यों निकलता है, रात क्यों नहीं निकलता? अगर तुमने उ Ÿ दिया तो कोई उ Ÿ सुनने के लिए उनकी प्रतीक्षा नहीं है। जब तुम उ Ÿ दे रहे हो, तब तक वे दूसरा प्रश्न पूछने चले गए। तुम उ Ÿ न दो, तो भी कुछ जोर न डालेंगे कि उ Ÿ दो। तुम दो या न दो, यह असंगत है, प्रसंग के बाहर है। बच्चा पूछने के लिए पूछ रहा है। बच्चा केवल बुद्धि का अभ्यास कर रहा है; जैसा पहली दफे जब बच्चा चलता है, तो बार-बार चलने की कोशिश करता है--कहीं पहुंचने के लिए नहीं, क्योंकि अभी बच्चे की क्या मंजिल है! अभी तो चलने में मजा लेता है। अभी तो पैर चला लेता है, इससे ही बड़ा प्रसन्न होता है; नाचता है कि मैं चलने लगा। अभी चलने का कोई संबंध मंजिल से नहीं है, अभी चलना अपने-आप में ही अभ्यास है। ऐसा ही बच्चा जब बोलने लगता है, तो सिर्फ बोलने के लिए बोलता है। अभ्यास करता है। उसके बोलने में कोई अर्थ नहीं है। पूछना जब सीख लेता है, तो पूछने के लिए पूछता है। पूछने में कोई प्रश्न नहीं है, सिर्फ कुतूहल है।

तो एक तो उस तरह के लोग हैं, वे बचकाने हैं जो परमात्मा के संबंध में भी कुतूहल से पूछते हैं। मिले उ Ÿ, ठीक; न मिले उ Ÿ, ठीक। और कोई भी उ Ÿ मिले, उनके जीवन में उस उ Ÿ से कोई भी फर्क न होगा। तुम ईश्वर को मानते रहो, तो तुम वैसे ही जिओगे; तुम ईश्वर को न मानो तो भी तुम वैसे ही जिओगे।

यह बड़ी हैरानी की बात है कि नास्तिक और आस्तिक के जीवन में कोई फर्क नहीं होता। तुम जीवन को देख के बता सकते हो कि यह आदमी आस्तिक है या नास्तिक! नहीं, तुम्हें पूछना पड़ता है कि क्या आप आस्तिक है या नास्तिक। के व्यवहार में र Ÿीभर का कोई फर्क नहीं होता। वैसा ही बेईमान यह, वैसा ही दूसरा। वे सब चचेरे-मौसेरे भाई हैं। कोई अंतर नहीं है। एक ईश्वर को मानता है, एक ईश्वर का नहीं मानता है। इतनी बड़ी मान्यता और जीवन में र Ÿ भर भी छाया नहीं लाती! कहीं कोई रेखा नहीं खिंचती! दुकानदारी में वह उतना ही बेईमान है जितना दूसरा; बोलने में उतना ही झूठा है जितना दूसरा। न इसको भरोसा किया जा सकता है, न उसका। क्या जीवन में कोई अंतर नहीं आता आस्था से? तो आस्था दो कौड़ी की है। तो आस्था कुतूहल से पैदा हुई होगी; वह बचकानी है। ऐसी बचकानी आस्था को छोड़ देना चाहिए।

सबसे सतह पर कुतूहल है।

दूसरे, थोड़ी गहराई बढ़े तो जिज्ञासा होती है। जिज्ञासा सिर्फ पूछने के लिए नहीं है--उ Ÿ की तलाश है; लेकिन तलाश बौद्धिक है, आत्मिक नहीं है। तलाश विचार की है, जीवन की नहीं है। जिज्ञासा से भरा हुआ आदमी, निश्चित ही उत्सुक है, और चाहता है कि उतर मिले; लेकिन उ Ÿ बुद्धि में संजो लिया जाएगा, स्मृति का अंग बनेगा, जानकारी बढ़ेगी, ज्ञान बढ़ेगा--आचरण नहीं, जीवन नहीं। उस आदमी को बदलेगा नहीं। वह आदमी वैसा ही रहेगा-- ज्यादा जानकार हो जाएगा।

जिज्ञासा पैदा होती है बुद्धि से।

फिर एक तीसरा तल है, जिसको मुमुक्षा कहा है। मुमुक्षा का अर्थ हैः जिज्ञासा सिर्फ बुद्धि की नहीं है, जीवन की है। इसलिए नहीं पूछ रहे हैं कि थोड़ा और जान लें; इसलिए पूछ रहे हैं कि जीवन दांव पर लगा है। इसलिए पूछ रहे हैं कि उ Ÿ पर निर्भर होगा कि हम कहां जाएं, क्या करें, कैसे जिए। एक प्यासा आदमी पूछता है, पानी कहां है? यह कोई जिज्ञासा नहीं है। मरुस्थल में तुम पड़े हो, प्यास जगती है और तुम पूछते हो, पानी कहां है? उस क्षण तुम्हारा रोआं-रोआं पूछता है, बुद्धि नहीं पूछती। उस क्षण तुम यह नहीं जानना चाहते कि पानी की वैज्ञानिक परिभाषा क्या है। उस समय कोई तुमसे कहे कि पानी-पानी क्या लगा रखा है। एच टू ओ। विज्ञान का उपयोग करो, फार्मूला जाहिर है कि उदजन और आक्सिजन से मिलकर पानी बनता है दो मात्रा, उदजन, एक

मात्रा आक्सिजन--एच टू ओ। लेकिन जो आदमी प्यासा है, उसे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि पानी कैसे बनता है, यह सवाल नहीं है। पानी क्या है, यह भी सवाल नहीं है। वह कोई जिज्ञासा नहीं है पानी के संबंध में जानकारी बढ़ाने के लिए। यहां जीवन दांव पर लगा है; अगर पानी नहीं मिलता घड़ीभर और, तो मृत्यु होगी। पानी पर ही जीवन निर्भर है। मृत्यु और जीवन का सवाल है।
मुमुक्षा का अर्थ हैः जिज्ञासा केंद्र पर पहुंच गई। अब हमारे लिए यह सवाल ऐसा नहीं है कि ईश्वर है या नहीं, पूछ लिया बच्चों जैसा, या पूछ लिया दार्शनिकों जैसा, एक बुद्धिगत सवाल, बुद्धिगत उ Ÿार खोजने में लग गए, शास्त्रों में गए! जिसको प्यास लगी है, वह शास्त्रों में नहीं खोजेगा। कि पानी का स्वरूप क्या है! जिसको प्यास लगी है, वह सरोवर चाहता है। जिसको प्यास लगी है, वह ऐसा ज्ञानी चाहता है जिसको पीकर वह भी अपनी प्यास को बुझा ले--ज्ञान नहीं चाहता, ज्ञानी नहीं चाहता, ज्ञानी को चाहता है।
मुमुक्षा गुरु को खोजता है; जिज्ञासु शास्त्र को खोजता है; कुतूहली किसी से भी पूछ लेता है।
कबीर उसको साधु कहते हैं, जो मुमुक्षु है। इसलिए उनका हर वचन इस बात
को ध्यान में रख कर कहा गया हैः सुनो भाई साधो! साधु का मतलब है जो साधना के लिए उत्सुक है--जो साधक है। साधु का अर्थ हैः जो अपने को बदलने के लिए, शुभ करने के लिए, सत्य करने के लिए आतुर है--जो साधु होने को उत्सुक है।
साधु शब्द बड़ा अदभुत है। विकृत हो गया बहुत उपयोग से। साधु का अर्थ हैः साधा, सादा सरल, सहज। साधु शब्द ही बड़ी भाव-भंगिमाएं हैं। और सीधा, सादा, सरल, सहज--यही साधना है।
इसलिए कबीर कहते हैंः साधो, सहज समाधि भली! सहज हो रहो, सरल हो जाओ।
थोड़ा समझ लेना जरूरी है; क्योंकि हम बहुत से लोगों को जानते हैं जो सरल होने की चेष्टा में ही बड़े जटिल हो गए हैं; सरल होने की ही चेष्टा में चले थे, और उलझ गए हैं।
मेरे एक मित्र हैं। लोग उन्हें साधु कहते हैं, मैं उन्हें असाधु कहता हूं; वे सीधे-सादे जरा भी नहीं हैं। अगर सुबह उन्हें दूध दो, तो वे कहते पूछते हैं कि गाय का है या भैंस का। क्योंकि भैंस का दूध वे नहीं पीते। हिंदू हैं; गाय का ही पीते हैं। और गाय का ही नहीं पीते, सफेद गाय का पीते हैं। किसी शास्त्र से उन्होंने खोज लिया है कि सफेद गाय का दूध शुद्धतम होता है। वह भी कुछ घड़ी पहले लगा हो तो ही पीते हैं। क्योंकि इतनी घड़ी देर तक दूध रह जाए, तो उसमें विकृति का समावेश हो जाता है। कुछ घड़ी पहले का तैयार घी ही लेते हैं; क्योंकि इतनी देर ज्यादा रह जाए तो शास्त्रों में उल्लेख है कि घी विकृत हो जाता है। इस तरह का पानी पीते हैं कि जो भी भर के लाए वह गीले वस्त्र पहने हुए भर के लाए, ताकि बिल्कुल शुद्ध हो। क्योंकि सूखे वस्त्रों का क्या भरोसा, किसी ने छुए हों, धोबी धो के लिया हो, लांड्री में गए हो--तो ठीक नहीं। कहीं कुएं पर स्नान करो वस्त्र पहने हुए, ताकि वस्त्र भी धुल जाएं, तुम भी धुल जाओ, फिर पानी भर के ले आओ। ब्राह्मण ने भोजन बनाया हो तो ही लेते हैं। और सब चेष्टा में उनका! ... चौबीस घंटे व्यस्त हैं। चौबीस घंटे में उन्हें भगवान के लिए एक क्षण बचता नहीं, भोजन सारा समय ले लेता है। निकले थे सरल होने, वे इतने जटिल हो गए है कि बड़ी कठिनाई है। जीना ही मुश्किल हो गया है। और जिसके घर पहुंच जाए, वह भी प्रार्थना करने लगता है परमात्मा से--उसने कभी प्रार्थना न की हो भला--कि कब इनसे छुटकारा हो।
अगर साधु आपके घर रुक जाए, तो आप एक ही प्रार्थना करते हैं कि अब ये जल्दी जाएं, क्योंकि तीन बजे रात वह उठ जाते हैं। और वह खुल नहीं उठते, पूरे घर को उठा देते हैं। क्योंकि ऐसा शुभ कार्य ब्रह्ममुहूर्त में उठने लगा! वे खुद तो करते ही हैं, लेकिन इतने जोर से ओंकार का पाठ करते हैं कि आप सो नहीं सकते। और आप उनसे यह भी नहीं कह सकते कि आप गलत कर रहे हैं, क्योंकि कुछ गलत भी नहीं कर रहे हैं। ब्रह्ममुहूर्त में ओंकार की ध्वनि कर रहे हैं। तो एक उपकार ही कर रहे हैं आपके ऊपर!
सरलता के खोज में निकला हुआ आदमी भी जटिल हो जाता है। कहीं कुछ भूल हो रही है। सरलता को समझा नहीं गया।

सरलता का अर्थ ही यह है कि तुम सहज होकर क्षण-क्षण जीना, अनुशासन से नहीं। क्योंकि अनुशासन तो जटिल होगा। जब भूख लगे, तब खाना खा लेना। जो मिल जाए, उसे चुपचाप स्वीकार कर लेना। जब नींद खुल जाए, तब ब्रह्ममुहूर्त समझना। जब नींद लग जाए तो परमात्मा का आदेश समझना कि सो जाओ। और जब नींद खुल जाए तब उसका आदेश समझना कि जग जाओ। अपनी तरफ से कुछ भी मत करना, उस पर ही छोड़ देना--जो तेरी मरजी! क्योंकि तुम कुछ भी करोगे तो जटिलता खड़ी कर लोगे। तुम जो भी करोगे, मन से ही करोगे--और मन जटिलता का यंत्र है। वह उसी में से उपद्रव निकाल लेगा--फिर उपद्रव बढ़ता जाता है। फिर उसका कोई अंत नहीं है। और जिनको तुम साधु कहते हो, वे साधु कम और असाधु ज्यादा हो जाते हैं। क्योंकि साधु का मूल अर्थ--सादगी, सीधापन--खो जाता है। हमने सादगी के दूसरे ही अर्थ कर लिए हैं। सादगी का हम मतलब लेते हैं कि जो आदमी एक ही लंगोटी पर रहता है, वह सादगी। लेकिन जो आदमी एक ही लंगोटी पर रहता है, उसका आपको पता है कि उसका अपनी लंगोटी पर इतना मोह होता है जितना कि सम्राट को अपने साम्राज्य पर नहीं। होगा भी, क्योंकि अब मोह को और कोई जगह न बची; सारा मोह लंगोटी पर ही लग जाएगा। लंगोटी और साम्राज्य का तो कोई सवाल नहीं है। सवाल तो मोह का है। सम्राट का मोह तो विस्तीर्ण होता है, बंटा होता है। भिखारी का मोह संकीर्ण होता है, एक ही जगह केंद्रित होता है। और अगर कोई गौर से देखे तो पाएगा कि भिखारी का मोह ज्यादा खतरनाक होता है, क्योंकि अनबंटा होता है, घना होता है, सघन होता है। एक ही चीज पर सब दांव लगा होता है। लंगोटी खो जाए तो भिखारी आत्महत्या कर लेगा। क्योंकि वही सब कुछ था। ऊपर से देखने पर लगता था कि सादगी है, लेकिन सादगी के पीछे बड़ी जटिलता छिपी थी। कबीर साधु उसे कहते हैं, सच में ही सीधा-साधा है।
ज्ञानी हो गए, निर्वाण को पा लिया, परमसत्य की अनुभूति हो गई, तो भी कपड़ा बुनना जारी रखा। लोगों ने पूछा भी कबीर को। सैकड़ों उनके भक्त थे। उन्होंने कहा भी कि अब यह शोभा नहीं देता कि आप जैसा परम ज्ञानी और कपड़े बुने दिनभर... और बाजार में बेचने जाए; हमको भी लज्जा आती है।
कबीर ने कहा, जब परमात्मा इतना बड़ा ताना-बाना बुनता है संसार का और लज्जित नहीं होता, तो मैं गरीब छोटा-सा ही काम करता हूं, क्यों लज्जित होऊं? जब परमात्मा इतना बड़ा संसार बनता है--जुलाहा ही है परमात्मा--में भी जलाहा; मैं थोड़ा छोटा जुलाहा, वह जरा बड़ा जुलाहा। और जब वह छोड़ के नहीं भाग गया, मैं क्यों भागूं? मैंने उस पर ही छोड़ दिया है, जो उसकी मरजी। अभी उसका आदेश नहीं मिला कि बंद कर दो।
वे जीवन के अंत तक, बूढ़े हो गए तो भी बाजार बेचने जाते रहे। लेकिन उनके बेचने में बड़ा भेद था, साधुता थी। कपड़ा बुनते थे, तो वे बुनते वक्त राम की धुन करते रहते। इधर से ताना, उधर से बाना डालते, तो राम की धुन करते। और कबीर जैसे व्यक्ति जब कपड़े के ताने-बाने में राम की धुन करें, तो उस कपड़े का स्वरूप ही बदल गया। उसमें जैसे कि राम की ही बुन दिया। इसलिए कबीर कहते हैं, झीनी झीनी बीनी रे चदरिया! और कहते हैं, बड? लगन से और बड़े प्रेम से बीनी है। और जब जाते बाजार में, तो ग्राहकों से वे कहते कि राम, तुम्हारे लिए ही बुनी है, और बहुत सम्हाल के बुनी है। उन्होंने कभी किसी ग्राहक को राम के लिए सिवा और दूसरों कोई संबोधन नहीं किया। ये ग्राहक राम हैं। यह इसी राम के लिए बुनी है। ये ग्राहक ग्राहक नहीं हैं और कबीर कोई व्यवसायी नहीं हैं।
कबीर व्यवसाय करते रहे और सादे हो गए। उन्होंने सादगी को अलग से नहीं साधा। अलग से साधोगे कि जटिल हो जाएगी। सादगी साधी नहीं जा सकती। समझ सादगी बन जाती है।
कबीर ने अपने को इतना मरजी पर छोड़ दिया परमात्मा की, सुबह लोग भजन के लिए इकट्ठे हो जाते, तो कबीर उनसे कहते कि ऐसे मत चले जाना, खाना लेकर जाना। पत्नी-बच्चे परेशान थेः कहां से इतना इंतजाम करो! उधारी बढ़ती जाती है। कर्ज में दबते जाते। रोज रात को कमाल कबीर का लड़का, उनसे कहता कि अब बस हो गया, अब कल किसी से मत कहना! कबीर कहते, जब तक वह कहलाता है, तब तक हम क्या करें? तुम्हारी सुनें कि उसकी सुनें? जिस दिन वह बंद कर देगा, कहनेवाला कौन! हम अपनी तरफ से कुछ करते नहीं और तुम क्यों परेशान हो? जब वह इतना इंतजाम करता है, यह भी करेगा!

लेकिन आखिरी वक्त आ गया। एक दिन कमाल ने कहा कि अब बस बहुत हो गया, क्या तुम चोरी करने लगें? उसने गुस्से में कहा था। कबीर ने कहा, अरे पागल, यह तुझे पहले क्यों नहीं सुझा? कमाल सोचा कि कबीर समझे नहीं की मतलब क्या है। तो दुबारा कहा कि क्या समझे? मैं कह रहा हूं, क्या हम चोरी करने लगें? कहां से लाए? कबीर ने कहा, सभी उसका है, क्या चोरी, क्या अचोरी! जो उसकी मरजी! यह ख्याल पहले क्यों न आया?
कमाल भी अदभुत लड़का था। उसने कहा, आज परीक्षा पूरी ही हो ले। उसने कहा, फिर मैं जाता हूं चोरी पर, लेकिन साथ तुम्हें भी आना पड़ेगा। कबीर उठकर खड़े हो गए। समझना हमें कठिन हो जाएगा, क्योंकि हम सीधे आदमी को जानते ही नहीं। हमारा साधु कहता है, चोरी पाप है, अचोरी पुण्य है। हमारा साधु कहता है कि नासमझ, तू खुद नर्क में जा रहा है और मुझको भी ले जाना चाहता है! लेकिन कबीर उठकर खड़े हो गए, यह सादगी बड़ी मधुर है। जैसे कुछ भेद न रहा--न चोरी में, न अचोरी में; न शुभ में, न अशुभ में। क्योंकि सब परमात्मा का है तो कैसे भेद। भेद तो चालाक बुद्धि का होता है। सादगी में कैसा भेद? वे उठकर खड़े हो गए। कबीर को भीतर से समझना बड़ा मुश्किल पड़ेगा तुम्हें, क्योंकि तुम्हारे
मन में भी भेद है। तुम भी सोचोगे कि यह क्या मामला है। क्या कबीर चोरी के पक्ष में हैं?
कमाल भी झिझका, जब कबीर उठकर खड़े हो गए। उसने सोचा कि यह भी मजाक ही थी। लेकिन कमाल आखिर कबीर का ही लड़का था, और अब बात को पूरा करना जरूरी था। गया एक मकान में, सेंध लगाई। कबीर बाहरी खड़े हैं--सेंध लगाकर, भीतर गया, एक बोरा गेहूं का घसीटकर लाया। किसी तरह बोरा तो बाहर निकल गया। जब वह खुद बाहर निकल रहा था तो घर के लोग जाग गए। जाग इसलिए गए कि कबीर ने जोर से उससे पूछा कि अरे पागल, घर के लोगों से पूछा कि नहीं? चोरी, सो तो ठीक, लेकिन घर के लोगों को बताया या नहीं? थोड़ा शोरगुल कर दे, तार्किक लोग जग जाएं, कि चोरी हो गई।
एक सीधा-सादा आदमी, जिसके लिए भेद गिर गए हैं!
यह आवाज सुनकर, बातचीत सुनकर, घर के लोग जग गए। और जब कमाल निकल रहा था, दीवाल के छेद से, तो किसी ने उसके पैर पीछे से पकड़ लिए। तो कमाल ने कहा, अब क्या किया जाए? कम से कम इतना ही करो कि मेरी गर्दन काटकर ले जाओ, ताकि कम से कम बदनामी तो न हो। कबीर ने कहा, यह भी खूब रहा! बिल्कुल ठीक सुझाया है। वक्त पर तूने भी अच्छी सूझ दी! और कहानी है कि कबीर गर्दन काटने के पहले कमाल से बोले, गर्दन तो काट ले जाता हूं, लेकिन बात छुपाए छुपेगी नहीं, उसको सब पता है; परंतु तू कहता है तो काट ले आता हूं।
हमें लगेगा यह आदमी चोर भी है, हिंसक भी। लेकिन कबीर जानते हैं कि मरता तो कुछ भी नहीं है। अगर तुम्हारा कोट खींचकर मैं अलग कर दूं तो मैं हिंसक नहीं हूं, तो तुम्हारी गर्दन काटकर अलग करने से कैसे हिंसक हो जाऊंगा। अगर सच में ही शरीर वस्त्र है, तो कबीर हिंसक नहीं हैं। यही तो कृष्ण अर्जुन को समझ रहे हैं गीत में कि तू फिकर मत कर; न हन्यते हन्यमाने शरीर! वह मारने से मरता नहीं, काटने से कटता नहीं, जलाने से जलता नहीं। कबीर वही तो कर रहे हैं। उन्होंने काट लिया कमाल का सिर; लेकिन उससे कहा कि तू कहता है तो काट लेता हूं, बाकी बात छिपाए न छिपेगी, पता चल जाएगा। क्योंकि उसको तो सब पता ही है। फिर भी ठीक है, जैसी उसकी मरजी!
घर के लोगों को शक तो हुआ शरीर को देखकर कि यह लगता है कमाल का, लेकिन बिना गर्दन के है! बड़ी अदभुत कहानी है। उन्होंने दूसरे दिन सुबह, जब कबीर निकलते थे, नदी की तरफ जाते थे--जाते गाते, भजन-कीर्तन करते स्नान करने--और उनके सौ दो सौ भक्त जाते थे, दरवाजे के सामने एक खंभे पर कमाल का शरीर लटका दिया कि शायद कबीर को भी अपने लड़के को देखकर चेहरे पर कोई फर्क आ जाए। और भक्तों को तो पता ही होगा। उनमें से कोई न कोई, कुछ न कुछ कह देगा। लेकिन यह बात कुछ और ही हो गई। अब कबीर का जुलूस वहां पहुंचा तो कबीर रुक गए और उन्होंने कहा, देखो कमाल लटा है खंभे पर! रोज बेचारा सम्मिलित होता था, आज सम्मिलित न हो पाएगा। लेकिन हम कीर्तन तो उसके पास करें ही। कहानी है कि जब उन्होंने कीर्तन किया तो कमाल के हाथ--मुर्दा हाथ ताली देने लगे।
कोई मरता नहीं। मृत्यु असंभव है। मृत्यु तो तुम्हारी मान्यता है। तुमने माना है इसलिए तुम मरते हो। और तुमने जान नहीं है इसलिए तुम मरते

हो। जीवन-ऊर्जा सब तरफ व्याप्त है। और कबीर ने कहा, पागल! पहले ही कहा था कि बात छिपाए न छिपेगी। चोरी तो ठीक, लेकिन उसको सब पता है। अब उसने खोल दिया राज।
इसलिए कबीर ने अपने भक्तों से कहा, सदा मैंने कहा, उसकी मरजी से चलो!
जीवन का बड़े बड़ा सत्य है भेद का गिर जाना--बुरे और भले का, शैतान और संत का, रात और दिन का, जीवन और मृत्यु का, अंधकार और प्रकाश का। सारा भेद जब गिर जाए शुभ और अशुभ का, तब कोई साधु है। हम तो उसे साधु कहते हैं जो अंधेरे के विपरीत, प्रकाश के पक्ष में है। हम उसे साधु कहते हैं जो अशुभ के विपरीत, शुभ के पक्ष में हैं। हम उसे साधु कहते हैं, जो संत है और शैतान नहीं। लेकिन हमारा साधु हमारी ही बुद्धि का ही प्रक्षेपण है, कबीर का साधु नहीं है।
कबीर का साधु तो वही है, जिसके लिए सारे भेद विलीन हो गए; जो अभेद में जीता है, जिसका द्वैत नष्ट हुआ; जो अद्वैत में जीता है, जो एक को पा लिया है। उस एक में कौन होगा संत, कौन होगा शैतान! उस एक में कौन होगा सज्जन, कौन होगा दुर्जन! उस एक में क्या होगा पाप, क्या होगा पुण्य! सब भेद माया है। भेद मात्र माया का आधार है। और जो भेद में गिरा, वह जटिल हो जाएगा। जो अभेद में रहा वह साधु--वह सादा, वह सीधा। वह कुछ चुनता नहीं अपनी ओर से। वह अपनी मरजी को बीच में नहीं लगता। वह सिर्फ बहता है, जैसे नदी में कोई तैर नहीं, बहे। नदी जहां ले जाए वहां जाने को राजी रहे, और जहां पहुंच जाए, वहीं मंजिल; नदी बीच में डुबा दे तो वही किनारा।
और कबीर बार-बार कहते हैं, सुनो भाई साधो। वे उसको इंगित कर रहे हैं, तुम्हारे भीतर, जो सीधा-सादा है। उस सीधे-सादे को कैसे पाओगे? क्या उसको पाने के लिए जटिल साधना करनी पड़ेगी, योगासन करने पड़ेंगे, शीर्षासन करना पड़ेगा, घंटों मंत्रोच्चार करना पड़ेगा? अगर इस सीधे-सादे को पाने के लिए कुछ भी करना पड़े, तो यह सीधा-सादा नहीं है--यह तो समझ की ही बात है, यह तो सिर्फ बोध ही है। यह तो समझ में आ जाए कि एक ही है, तो सादगी प्रकट हो जाती है। इसलिए कबीर सहज समाधि पर जोर देते हैं। सहज का अर्थ हैः जो साधनी न पड़े। साधु का अर्थ हैः जो समझ से फलित हो जाए, जिसके लिए कोई भी प्रयत्न, कोई भी श्रम न करना पड़े; जैसे तुम हो, जिसका द्वार वहीं खुल जाए; जहां तुम हो, वहीं उससे मिलन हो जाए, इंचभर चलना न पड़े। चले कि जटिलता हो जाएगी। जिसे प्रयत्न से पाया जाएगा, वह सहज नहीं हो सकता।
सुनो भाई साधो--और यहां भी मैं तुम्हारे भीतर छुपे साधु को संबोधन कर रहा हूं। तुम्हारे भीतर बुद्धि असाधुता का तत्व है, और हृदय साधुता का। हृदय न भले का जानता है, न बुरे को। हृदय के पास कोई गणित नहीं। हृदय को काटने की कला आती ही नहीं। हृदय को कैंची नहीं है। हृदय को जोड़ने की कला आती है। हृदय सुई-धागे की भांति है।
फरीद को किसी ने एक सोने की कैंची भेंट की... फरीद कबीर के जमाने में था। और फरीद और कबीर की मुलाकात हुई थी और बड़ी मीठी मुलाकात हुई थी। क्योंकि दो दिन दोनों साथ रहे, और चुप रहे! एक शब्द न यहां से बोल गया, और न वहां से बोला गया। दोनों गले मिले, दोनों हंसे, दोनों साथ बैठे। स्वागत किया जाकर गांव के बाहर कबीर ने फरीद का और विदा कर आए। लेकिन दो दिन में एक शब्द का लेन-देन न हुआ! और जब शिष्यों ने पूछा दोनों को कि यह क्या माजरा है, हम थक गए, ऊब गए, और हम बड़ी अपेक्षा रखते थे के कि कुछ होगी बात, हम भी सुन लेंगे, कुछ सार मिलेगा; सब दो दिन खराब हुए!
फरीद ने कहा, जो बोलता है वह अज्ञानी है। अगर मैं बोलता तो मैं अज्ञानी, और कबीर बोलते तो वे अज्ञानी। कबीर ने अपने शिष्यों से कहा, बोलने को कुछ था नहीं। क्योंकि दोनों हम जानते हैं। और दोनों ने एक को ही जान लिया, कहना, किससे, सुनना किसको? और पुनरुक्ति शोभादायक नहीं। अकारण मेहनत। जहां मैं हूं, वही फरीद है। न मैं हूं, न फरीद है। तुम्हारे लिए हम दो थे, हमारे लिए हम एक हैं। तुम वार्तालाप चाहते थे। और हम वार्तालाप करते तो पागल मालूम पड़ते। क्योंकि वह एकालात होता। दूसरा था नहीं, बात किससे होती?
दो अज्ञानी मिलें, बात हो सकती है; खूब होती है। एक ज्ञानी और एक अज्ञानी मिलें, तो भी बात हो सकती है; समझ में बहुत नहीं आती है। लेकिन दो

ज्ञानी मिलें तो कैसी बात! बात बिल्कुल नहीं होती, और सब समझ में आता है। सुना एक शब्द नहीं जाता और सब समझ में आता है। और दो अज्ञानी खूब चर्चा करते हैं; सुना बहुत जाता है, शोरगुल बहुत मचता है, समझ में कुछ भी नहीं आता।
एक ज्ञानी और एक अज्ञानी की भी वार्ता होती है। अगर अज्ञानी राजी हो,
तो उस वार्ता से कुछ फल मिल कसता है। अगर अज्ञानी थोड़ा खुला हो, अगर अज्ञानी में थोड़ा हृदय हो, सिर्फ बुद्धि न हो, तो कोई बीज हृदय में अंकुरित हो सकते हैं।
फरीद को किसी ने एक सोने की कैंची भेंट की। फरीद ने कहा, माफ करो, कैंची का हम क्या करेंगे? काटने का हम धंधा करते ही नहीं, हमारा धंधा जोड़ने का है। अगर तुम कुछ देना ही चाहते हो, एक सुई-धागा ले आओ।
संतों का धंधा ही जोड़ने का है। हृदय का धंधा जोड़ने का है। बुद्धि का धंधा तोड़ने का है। पंडित तोड़ते हैं, संत जोड़ते हैं। दुनिया इतनी टूटी है पंडितों के कारण--तीन सौ धर्म हैं, पंडितों के कारण। पंडित भेद निकालता है, बारीक भेद निकालता है। संत अभेद को खोजते हैं। दो के बीच जो जोड़नेवाला है, उसको खोजते हैं। पंडित दो के बीच जो तोड़नेवाला है, उसको खोजते हैं। इसलिए वास्तविक विरोध संत और असंत के बीच नहीं है, संत और पंडित के बीच है। संत और पापी के बीच वास्तविक विरोध नहीं है; संत और पंडित के बीच वास्तविक विरोध है।
धर्मों का जन्म होता है संतों से, और विनाश होता है पंडितों से। और जैसे ही जन्म होता है धर्म का, वैसे ही पंडित हावी हो जाते हैं।
तुम्हारे भीतर साधुता का तत्व है हृदय, क्यों? क्योंकि हृदय तुम्हारे भीतर अप्रशिक्षित है। बुद्धि का तो प्रशिक्षण हुआ। बुद्धि को समाज ने तैयार किया है, हृदय को परमात्मा ने। हृदय को शिक्षित करने के कोई उपाय नहीं हैं, कोई विश्वविद्यालय भी नहीं, जहां तुम्हारे हृदय की शिक्षा हो सके। प्रेम के प्रशिक्षण का आज तक कोई मार्ग नहीं खोता जा सका, और धन्यभागी हैं हम कि मार्ग नहीं खोजा जा सका। जिस दिन खोज लिया जाएगा, उससे बड़ा कोई दुर्भाग्य न होगा। उस दिन फिर तम मशीन हो जाओगे। तुम्हारी बुद्धि तो यंत्र हो ही गई है, तुम्हारा हृदय थोड़ा सा यंत्र नहीं है। तुम्हारी धड़कन में अभी भी प्रकृति धड़कती है। परमात्मा थोड़े स्वर देता है। तुम्हारी बुद्धि तो बिल्कुल यांत्रिक है और समाज द्वार निर्मित है।
बुद्धि से तुम परमात्मा तक न जा सकोगे, इसीलिए तो शास्त्र से कोई कभी वहां नहीं पहुंचता। हृदय से पहुंचता है, प्रेम से, प्रार्थना से, आस्था से। जब साधु की बात कहीं जा रही है, तब तुम्हारे हृदय को निवेदन किया जा रहा है। संबोधित है तुम्हारा हृदय। तो जो यहां कहें, उसे तुम सोचना मत, सिर्फ समझना। हृदय समझता है, बुद्धि सोचती है, और दोनों में कोई तालमेल नहीं है। बुद्धि बड़ा तर्क करती है, हृदय देखता है। हृदय के पास आंख है, बुद्धि अंधे का टटोलना है। बुद्धि अंधे की लकड़ी है, जिससे वह टटोलता है कि रास्ता कहां है। हृदय देखता है, टटोलने की कोई जरूरत नहीं तर्क व्यर्थ है, हृदय को दिखाई पड़ता है, वह निकल जाता है।
सुनो भाई साधो का अर्थ है--हृदय से सुनो; सादगी से सुनो; तर्क और विचार
से नहीं, भाव और प्रेम से सुनो! वही समझ पाएगा।
अब हम कबीर के वचन को लें।
एक-एक शब्द को गौर से हृदय तक जाने देना।
माया महाठगिनी हम जानी।
माया का क्या अर्थ है? जिसके कारण एक दो की भांति दिखाई पड़ता है, उस सूत्र का नाम माया है।
... तुमने नशा कर लिया, शराब पी ली, तब तुम्हें एक आदमी रास्ते पर आता हुआ दिखाई पड़ता है, और लगता है दो आ रहे हैं; एक मकान की जगह दो मकान दिखाई पड़ते हैं; एक दरवाजे की जगह दो दरवाजे दिखाई पड़ते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने किसी मित्र को विदा कर रहा था। रात देर तक दोनों पीते रहे। और जब विदा करना लगा तो रात अंधेरी थी, सुनसान मार्ग पर कोई भी नहीं। मित्र ने पूछा कि थोड़ा रास्ते के संबंध में समझा दो।

नसरुद्दीन ने कहा, रास्ते के संबंध में एक ही बात ख्याल रखनाः जब यहां
से तुम सौ कदम पहुंच जाओ, तो वहां तुम्हें दो रास्ते मिलेंगे; तुम बाएं तरफ मुड़ना क्योंकि दाएं तरफ कोई रास्ता है ही नहीं, सिर्फ दिखाई पड़ता है। यह मैं अपने अनुभव से कहता हूं, उस पर कई दफे मैं मुड़ गया हूं और भटक गया हूं। वहां रास्ता है ही नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे का समझा रहा था, शराबघर में बिठाकर। उसने कहा कि देख बेटा, उस कोने में देख जहां चार आदमी बैठे हैं, जब ये आठ दिखाई पड़ने लगें तब समझना कि बस, अब रुक जाना जरूरी है। बस, फिर फौरन घर की तरफ चल पड़ना। उस बेटे ने कहाः पिता जी, मुझे केवल दो आदमी दिखाई पड़ रहे हैं। वे नसरुद्दीन ज्यादा पहले ही पी चुके थे!
नशे में जब तुम हो, तब तुम भीतर कंपते हो, उस कंपन के कारण बाहर भी सब चीजें कंपती हैं।
जब नशे में तुम हो, तब तुम दो हिस्सों में भीतर बंट जाते हो; क्योंकि
एक तो तुम्हारे भीतर तत्व है, जो कभी भी नशे में नहीं हो सकता; तुम्हारी चेतना कभी भी बेहोश नहीं हो सकती। नशा तुम्हारे शरीर में जाता है, मन में जाता है आत्मा में नहीं जा सकता। जैसे ही नशा तुम्हारे भीतर प्रवेश करता है, तुम दो हिस्सों में बंट जाते हो--तुम्हारी आत्मा अलग, तुम्हारा शरीर मन अलग। और शरीर, मन तो एक ही हैं, उनमें बहुत भेद नहीं है; वे एक ही तत्व के सूक्ष्म और स्थूल रूप हैं। तुम भीतर बंट जाते हो, और सब कंपने लगता है। जब तुम भीतर कंपने लगते हो, बाहर सब कंपने लगता है।
माया एक नशा है।
कबीर कहते हैं, माया महाठगिनी हम जानी। और हमने जाना कि माया बड़ी ठगिनी है। उसके कारण सब दो हो गया है।
गिरगुन फांस लिए कर डौले, बोलै मधुरी बानी।
केसव के कमला होई बैठी, सिव के भवन भवानी।।
इस विचार को थोड़ा समझें...
राम के साथ सीता है, कृष्ण के साथ राधा है, शिव के साथ शिवानी है, विष्णु के साथ लक्ष्मी है। हिंदुओं ने बड़े विचार के ये प्रतीक चुने हैं। यह तुम्हारे कारण, क्योंकि तुम दो में बंटे हो। परमात्मा तुम्हारे लिए एक नहीं हो सकता। यह तुम्हारे भीतर जो नशा और कंपन है, तुम्हारे भीतर जो माया है, जो भ्रम का सूत्र है, तुम्हारे कंपन के कारण तुम्हें शिव और शिवानी दो दिखाई पड़ते हैं। जब तुम्हारा कंपन खो जाएगा, तब तुम अचानक पाओगे कि शिव और शिवानी एक हो गए। वही अर्धनारीश्वर की प्रतिमा है। जैसे ही तुम्हारा कंपन खो जाएगा, तुम पाओगे कि वहां भी दो विलीन हो गएः लक्ष्मी विष्णु में खो गई, विष्णु लक्ष्मी में खो गए; एक बचा। तुम्हारे कारण दो है; क्योंकि तुम कंप रहे हो।
कौन तुम्हें कंपा रहा है? शराब तुमने पी नहीं, लेकिन फिर भी तुम शराबी हो। और बहुत तरह की शराबें तुमने पी ली हैं, जिनका तुम्हें पता नहीं है। तुमने आसक्ति पी ली है, तुमने मोह पी लिया है, तुमने अहंकार पी लिया है, तुमने द्वेष पी लिया है, र ईष्या पी ली है, महत्वाकांक्षा पी ली है;- तुमने घृणा, क्रोध, लोभ--न मालूम कितनी शराबें पी ली हैं!
शराब का मतलब ही यह है कि जो बेहोश करे। शराब बोतलों में ही बंद नहीं बिकती, शराब तो जीवन के रोएं-रोएं में मिल रही है। अगर तुम पकड़ने में उत्सुक हो, तो सब जगह उसका दरवाजा खुला है।
शराब का अर्थ हैः जिससे तुम भीतर कंप जाते हो। शराब का अर्थ हैः ऐसी बेहोशी, जिसमें तुम ठीक-ठीक नहीं देख पाते, आंखें देखने की क्षमता खो देती हैं; या तुम वह देखने लगते हो जो है नहीं; या तुम्हें वह दिखाई पड़ने लगता है जो कभी था नहीं। नशे में तुम्हारी दृष्टि और दर्शन खो जाते हैं।
ख्याल करो, जब तुम मोह से भर जाते हो, तब तुम्हें वही नहीं दिखाई पड़ता,
जो है; तुम्हारा मोह तुम्हें जो दिखाता है, वही दिखाई पड़ता है। जब तुम क्रोध से भर जाते हो, तब तुम कुछ और देखने लगते हो।
एक स्त्री के मोह में तुम पड़ गए, या एक पुरुष के, तो स्त्री बहुत सुंदर दिखाई पड़ती है; ऐसा लगता है कि जगत में वैसा कोई भी नहीं, वैसा सौंदर्य कभी हुआ ही नहीं। वह स्त्री वैसी ही साधारण थी कल तक। रास्ते पर कई बार तुम

गुजरे थे और उसे स्त्री को देखा था; आज अचानक क्या हो गया? तुम्हारे भीतर कुछ मोह का उदय हुआ है। तुम्हारे भीतर कोई सम्मोहन जगा है। तुम्हारे भीतर कोई नशा छा गया है। स्त्री वहां है, कल भी वही थी। अचानक आज स्त्री सुंदर नहीं हो जाएगी। तुम्हारे भीतर कुछ फर्क हुआ है। तुम कुछ पागल हुए हो। आज स्त्री परम सौंदर्यवान दिखाई पड़ रही है। आज जो तुम देख रहे हो, वास्तविक नहीं है। आज जो तुम देख रहे हो, वह अपने ही सपने का विस्तार है। आज स्त्री केवल परदा बल गई है, और तुम अपना ही सपना उस पर देख रहे हो। रहो कुछ दिन उस स्त्री के पास, कर लो विवाह--थोड़े दिन में सपना टूटने लगेगा; क्योंकि सपने सदा नहीं चल सकते। सपनों का गुणधर्म यही है कि वे कभी होते हैं, कभी खो जाते हैं। चौबीस घंटे कोई सपना नहीं देख सकता। और चौबीस घंटे कोई नशे में नहीं रह सकता। और सदा के लिए नशे में रहने का कोई उपाय नहीं है। सत्य ही सदा रह सकता है, सपना सदा नहीं रह सकता। दो चार दिन बीतते-बीतते ही स्त्री साधारण होने लगती है। यद्यपि तुम फिर भी कोशिश करते रहते हो सपने को खींचने की, लेकिन तुम जानते हो कि सपना टूटने के करीब आ गया। महीना, दो महीना बहुत मुश्किल है कि सपना चल जाए। और जब सपना टूट जाता है, तब एक विरक्ति, तब एक उदासी, तब एक विषाद घेर लेता है। अब तुम विषाद और उदासी के माध्यम से उस स्त्री को देखने लगते हो तो वह साधार हो गई। कहां पर्वत पर थी, शिखर पर थी, अब कहां खाई में, खड्ढ में गिर गई। कल तक स्वर्ण काया थी उसकी, अब उसके शरीर से गंध आने लगी। कल तक उसके शरीर पर कभी पसीना नहीं दिखाई पड़ा था--तुम देख ही नहीं सकते थे पसीना--आज शरीर से बदबू आने लगी। कल तक सुगंध थी, आज सब दुर्गंध हो गई। अब तम क्रोध और घृणा से भी देखना शुरू करोगे, तब वह स्त्री बहुत कुरूप मालूम पड़ने लगेगी--और स्त्री वही है, पुरुष वही है, कहां कुछ भी भेद नहीं हुआ। सारा भेद तुम्हारे भीतर हो रहा है। कबीर कहते हैं, माया महाठगिनी हम जानी।
माया तुम्हारे भीतर बेहोश होने की कला का नाम है। माया, तुम्हारे सो जाने की पद्धति है। माया, तुम्हारे स्वप्न देखने की प्रक्रिया है।
कोई आदमी धन के पीछे दीवाना है, तो तुम कल्पना ही हनीं कर सकते, अगर तुम धन के दीवाने नहीं हो। उसे धन क्या दिखाई पड़ता है? वह रोज अपनी तिजोरी खोलता है, तब तुम उसकी आंखें देखो; जैसी कोई प्रेमी अपने प्रेयसी को देखता है। किसी कवि ने कवि जगत के सौंदर्य को ऐसा भाव-विभोर होकर नहीं देखा, जैसा धन का दीवाना तिजोरी खोलकर देखता है। तब उसकी आंखों में देखो, कितने सपने तैरते हैं, आंखों में कैसी चमक आ जाती है। तुम्हें अगर कोहिनूर हीरा पड़ा हुआ मिल जाए रास्ते पर, और तुम धन के दीवाने हो, तो तुम सारा होश खो दोगे। और कोहिनूर सिर्फ एक पत्थर है। लेकिन तुम्हारे भीतर सब बदल जाएगा। कोहिनूर एक परिस्थिति है, जिसने तुम्हारे भीतर के सोये हुए सारे नशे जग जाएंगे। ओर तब तुम्हें कोहिनूर में जो दिखाई पड़ेगा, वह कोहिनूर में नहीं है, वह तुमने ही डाला है।
तुम जो भी जगत में देख रहे हो, वह जगत में नहीं है, वह तुम्हारा डाला हुआ है। पद-लोलुप पद में जो देखता है... पागल होकर लोग दौड़ते रहते हैं। मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन लौट रहा था रात। वर्षा के दिन में धीमी-धीमी फुहार पड़ रही थी। रास्ते में गांव का राजनीतिज्ञ नेता, वह मिल गया। उसने कहा, नसरुद्दीन! बिना छाते के... !
नसरुद्दीन कहना नहीं चाहता था कि छाता नहीं है, और अभी सुविधा भी नहीं
है खरीदने की। नसरुद्दीन ने कहा कि यह एक आध्यात्मिक अभ्यास है, यह एक ध्यान का प्रयोग है, इसमें बड़ा अनुभव होता हैः परमात्मा वर्षा कर रहा है और तुम मूर्ख छाता लगाए हो? यह कोई बात हुई? बंद करो छाता, और जरा खड़े होकर देखो, बड़ा इलहाम होगा, बड़ा रिवीलेशन होगा, बड़ा उदघाटन होगा! परमात्मा बड़े सत्य देता है!
राजनेता को भरोसा तो न आया। लेकिन उसने सोचा, हर्ज क्या है करके देखने में। दूसरे दिन वह बड़ा क्रोधित लौटा। और उसने कहा, नसरुद्दीन मजाक की एक सीमा होती है! रात भर बुखार चढ़ा रहा। तुमने जैसा कहा था, वैसे ही मैंने किया। जब सब लोग सो गए, तो मैं बाहर गया और खड़ा रहा पानी में। कुछ हुआ नहीं। बस यह हुआ कि मेरी गर्दन से पानी उतर के कपड़े के भीतर चला गया। ठंड लगने

लगी; शरीर कंपने लगा, और मुझे ऐसा लगा कि मैं भी क्या मूरखपन कर रहा हूं, यह कैसा मूढ़ता का मैं काम कर रहा हूं! क्या मैं मूर्ख हूं या पागल हूं? नसरुद्दीन ने कहा, बस, यह क्या कोई कम इलहाम है? पहले ही अभ्यास में इतनी बड़ी अनुभूति! यह क्या कोई कम उपलब्धि है? अभ्यास किए जाओ, और आगे... अनुभव होंगे!
आदमी जैसा भीतर है, उस भीतर की परिस्थिति को अगर न बदला जाए, अगर न तोड़ा जाए, तो तुम परमात्मा को बाहर न पा सकोगे। क्योंकि तुम जो भी पाओगे, वही संसार होगा। तुम जो भी देखोगे, वह तुम्हारी ही आंखें देखेंगी। तुम जो भी पाओगे, पानेवाले तुम ही रहोगे। असली सवाल परमात्मा को खोजने का नहीं है, असली सवाल से बेहोशी तोड़ने का है। बेहोश आदमी जहां भी जाएगा, बेहोशी ही पाएगा।
भीतर से माया टूट जाए, सुषुप्ति टूट जाए, स्वप्न टूट जाए, तो तुम जहां हो, वही तुम्हें परमात्मा उपलब्ध हो जाएगा। वही तुम्हें चारों तरफ से घेरे खड़ा है। उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। तुम उससे कैसे वंचित हुए, यही चमत्कार है। तुमने कैसे उसे खोया, यही चमत्कार है। जरूर तुम किसी गहरी मूर्च्छा में हो।
महावीर ने कहा--किसी ने पूछा--साधु कौन? महावीर ने कहा, जो जागा है, वह साधु है। और असाधु?--जो सोया है।
तुम्हारे भीतर कुछ जागने की प्रक्रिया भी है, और कुछ सोने की प्रक्रिया भी है। तुम्हारे भीतर सपना देखने की क्षमता भी है, और सत्य को जानने की क्षमता भी है। तुम जाग भी सकत हो और सो भी सकते हो--ये दोनों तुम्हारे भीतर क्षमताएं हैं। सोने की क्षमता का नाम माया है।
रात तुम सपना देखते हो। सपना देखने के लिए एक चीज जरूरी है कि तुम सो जाओ। जागे-जागे सपना देखना मुश्किल है। सपना देखने के लिए सोना जरूरी है। और जैसा तुम देख रहे हो, जगत को अभी--रुपए में तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ता है; हड्डी, मांस-मज्जा में तुम्हें सौंदर्य दिखाई पड़ता है; भोजन में तुम्हें जीवन का सारा रस दिखाई पड़ता है; वस्त्रों में तुम्हें जीवन की सारी कला दिखाई पड़ती है; व्यर्थ में तुम्हें सारे दिखाई पड़ता है; सार का तुम्हें कोई पता नहीं चलता--इससे एक बात जाहिर है कि तुम सोये हुए हो और सपना देख रहे हो।
माया महाठगिनी हम जानी।
माया कोई दार्शनिक तत्व नहीं है। दार्शनिकों के हाथ में पड़ गया सिद्धांत, तो उन्होंने बड़े सिद्धांत खड़े किए हैं। और बड़े बिगूचन में डाल दिया है। अगर तुम दार्शनिकों को पढ़ोगे तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे कि यह माया क्या है। क्योंकि उन सबकी व्याख्याएं अलग हैं। कोई कहेगा, यह परमात्मा की शक्ति है; कोई कहेगा, यह परमात्मा की छाया है। और उनको बड़ी कठिनाई है। शंकराचार्य को बड़ी कठिनाई है कि यह माया कहां से आती है। क्योंकि अगर सभी कुछ ब्रह्म है, तो माया कैसे पैदा होती! कोई उ Ÿार उनके पास नहीं है। कोई उ Ÿार हो भी नहीं सकता।
लेकिन अगर गौर से समझो तो माया मनोवैज्ञानिक तत्व है। माया कोई दार्शनिक तत्व नहीं है। माया का कोई संबंध ब्रह्म से, अस्तित्व से नहीं है। माया का संबंध तुमसे है। माया तुम्हारी छाया है, ब्रह्म की नहीं। और माया तुम्हारे भीतर बेहोशी का नाम है। इसलिए जैसे-जैसे तुम भीतर जागरूक हो जाओगे, जैसे-जैसे और साक्षी हो जाओगे, वैसे-वैसे माया तिरोहित हो जाएगी।
अगर माया ब्रह्म का तत्व है तो तुम उसे कैसे तिरोहित कर पाओगे? तब तो तुम जाओगे कैसे? अगर माया ब्रह्म का अंग है तो तुम उसे कैसे मिटा पाओगे? नहीं माया तुम्हारा ही अंग है। तुम ब्रह्म की चर्चा में मत पड़ो। तुम उसे जान भी न पाओगे, जब तक तुम्हारे भीतर की माया न टूट जाए।
माया शब्द बड़ा अदभुतपूर्ण है। माया का ठीक वही अर्थ है, जो अंग्रेजी में मैजिक का है। मूल शब्द का वही अर्थ है।
तुम्हारे भीतर सपनों को गढ़ लेने की एक चमत्कारी क्षमता है। रात तुम
एक अंधेरे रास्ते से गुजरते हो, भय तुम्हारे भीतर है--अंधेरे का भय, अकेलेपन का भय, अजनबी रास्ते का भय--तुम कंप रहे हो भय से। भय एक माया का

हिस्सा है। प Ÿो हिलते हैं, तुम समझते हो कि कोई आ रहा है। प Ÿां को हिलने की आवाज, तुम कैसे किसी के आने की पदचाप में बदल लेते हो। तुम्हारे भय के कारण। दिन होता है, ऊर्जा होता, रास्ते पर लोग होते, तुम चिंता भी न करते कि प Ÿां में कोई आवाज हो रही है। सूखे प Ÿो हवा में हिल रहे हैं, तत्क्षण तुम चौंक के खड़े हो जाते हो--लगता है कोई आ रहा है। आवश्यक नहीं है प Ÿां का हिलना; अगर भय काफी हो, तो अपने ही पैर की आवाज--सुनसान रास्ते पर मालूम पड़ती है कि कोई पीछा कर रहा है! अपने ही पैर की आवाज--सुनसान रास्ते पर लगती है, कोई पीछा कर रहा है! अंधेरे में वृक्षों के रूप रंग--लगते हैं भूत-प्रेम खड़े हैं!
मरघट पर जाकर किसी दिन देखो! तुम्हें बहुत चीजें दिखाई पड़ेंगी जो वहां हैं ही नहीं। और इतनी जोर से दिखाई पड़ेंगी कि तुम्हें उनका अस्तित्व क्षीण और उनका अस्तित्व ज्यादा प्रगाढ़ मालूम पड़ेगा। और तुम भयभीत होकर भाग खड़े हुए, तो जितना तुम्हारा भय बढ़ता जाएगा, उतना ही...
कभी तुम्हें पता है, मरघट से तुम गुजर जाओ, तुम्हें पता न हो कि मरघट है, तो कुछ न होगा। कोई भूत-प्रेत रास्ते में न आएंगे। कोई ढोल न बजेगा। कोई प्रकाश न जलेगा। कोई ज्योति इस कोने से उस कोने तक न जाएगी। तुम्हें पता न हो कि मरघट है, तुम मजे से गुजर जाओगे। और तुम्हें पता है कि मरघट है, और मरघट न भी हो कि तुम मुसीबत में पड़ जाओगे।
एक मेरे मित्र हैं। सदा डींग वे मारते हैं, निर्भय होने की। जो भी आदमी निर्भय होने की डींग मरता है, समझ लेना कि भयभीत है। नहीं तो डींग मारने की कोई जरूरत नहीं। डींग हम सदा विपरीत की मारते है। तो मेरे घर मेहमान थे। मैंने उनसे कहा, क्या भूत-प्रेम से भी नहीं डरते? उन्होंने कहा, क्यों डरूं, भूत-प्रेत हैं कहां? सब मन की कल्पना है। मैं किसी से नहीं डरता। तुम मेरे सामने भूत-प्रेत लाओ!
मैंने कहा, ठहरो। तुम ठीक वक्त पर आ गए हो। वे थोड़े डरे। उन्होंने कहा, क्या मतलब?
सामने के मकान में इस समय भूतों का अड्डा है। तो मैं वहां इंतजाम तुम्हारे सोने का करवाये देता हूं। वहां कोई है भी नहीं; बस तुम और भूत! वे थोड़े हंसे, लेकिन उनकी हंसी अब खोखली थी। उन्होंने कहा, मैं डरता नहीं... क्या जरूरत वहां जाने की? मैंने कहा, अगर नहीं डरते तो फिर जाने में भय क्या?
... फंस गए! कहने लगे, अच्छा! लेकिन उनका चिŸा बड़ा उदास हो गया। सामने
के मकान में भी कभी किसी ने नहीं सुना था कि भूत हैं--थे भी नहीं। लेकिन उस मकान को एक तेल का दुकानदार अपने खाली पीपे रखने के काम ले लाता था--एक गोदाम की तरह। इसलिए उसमें कोई था भी नहीं। मगर खाली पीपे गरमी के दिनों में आवाज करते हैं; दिन में फैल जाते हैं गरमी के कारण, रात में सिकुड़ते हैं। और कोई हजार, दो हजार पीपे थे मकान में। तो आवाज एक पीपे से दूसरे पीपे में जाती। और काफी सुंदर भूत-प्रेतों की लीला उस घर में चलती थी। उनका मैंने उस मकान में जाकर बिस्तर लगवा दिया। ऊपर उनको बिठाकर सुला आया दूसरी मंजिल पर। रात को कोई दो बजे चीख-पुकार की एकदम आवाज मची। खड़े छज्जे पर सामने, बिल्कुल विक्षिप्त दशा में चिल्ला रहे थे कि बचाओ। तो मैंने कहा कि घबड़ाना क्या! चाभी मैं तुम्हें दे दिया हूं, तुम उतर के बाहर निकल आओ। उन्होंने कहा, उसी कमरे में से तो गुजरना पड़ेगा, जहां वह सब भूतलीला, भूत-प्रेतलीला चल रही है। तो बड़ी मुसीबत हो गई। तो उतारें कैसे। उन्होंने कहा, सीढ़ी लगाओ। सामने से सीढ़ी लगाई गई, वे इतने कंप रहे थे कि सीढ़ी पर से गिर पड़े। उनको मैंने लाख समझाया बाद में कि वहां कुछ भी नहीं है। पर उन्होंने कहा, मैं नहीं मान कसता। ऐसा हो ही नहीं सकता कि वहां कुछ न हो; क्योंकि मैंने बराबर पीपों में से भूतों को निकलते दूसरे पीपों में जाते देखा है-- आंख से देखा है।
अब वे डींग नहीं मारते। कम से कम मेरे सामने तो नहीं मारते। और तब से
वे भूत-प्रेतों के बड़े भक्त हो गए हैं। और मैंने भी उन्हें समझाया कि वहां कुछ नहीं है। सारी बात समझा दी कि पीपे हैं, आवाज करते हैं। उन्होंने कहा, छोड़िए, जब तक मुझे अनुभव नहीं था, एक बात थी। अपने अनुभव से कहता हूं।
यह अनुभव माया है।

और बूढ़े आदमी जो भी अनुभव से कहता हैं इस संसार के संबंध में, वह सब अनुभव ऐसा ही है। सिर्फ उस आदमी के अनुभव का कुछ सार है, जो माया से जग गया हो, बाकी सब अनुभव ऐसा ही है। इस अनुभव का कोई भी मूल्य नहीं; क्योंकि तुम्हारी कल्पना, तुम्हारे भीतर की बेहोशी से प्रसूत है।
इसलिए कबीर कहते हैं, माया महाठगिनी हम जानि! निरगुन फांस लिए कर डोलै। वे कहते हैं, इससे बड़ा चमत्कार और क्या होगा कि जो निर्गुण है... तुम निर्गुण हो, तुम ब्रह्म हो, तुम परम ऊर्जा हो जगत की--निराकार, शुद्ध, इससे बड़ा चमत्कार क्या होगा! निरगुन फांस लिए कर डोलै। निर्गुण को फांस लिया है माया ने, और हाथ में हाथ डालकर डोल रही है।
माया महाठगिनी हम जानी।
बोलै मधुरी बानी! और बड़े मधु वचन हैं माया के। होंगे ही, अन्यथा इतने लोग फंसते कैसे! बड़े मधुर वचन हैं। बड़े स्वप्न दिखाती है। एक रूप खड़ा कर देती है चारों तरफ। सपना इतना प्रगाढ़ हो जाता है, इतना इंद्रधनुषी कि तुम रुक नहीं सकते, पात्रता पर जाना होता है। सपने खोजने पड़ते हैं।
सारे लोग दौड़ रहे हैं अपने-अपने सपने की तलाश में। और उस सपनों को तुम कभी भी पाओगे नहीं, क्योंकि वे कहीं हैं नहीं, उनका कोई अस्तित्व नहीं है। आखिर में तुम पाओगे कि विषाद, हाथ खाली हैं। आखिर में तुम पाओगेः सब पा लिया तो भी हाथ खाली हैं, कुछ न पाया तो भी हाथ खाली हैं। आखिर में तुम पाओगेः मृत्यु आती है, सब सपने टूट जाते हैं, और तुमने जीवन का इतना बहुमूल्य अवसर व्यर्थ गंवा दिया। जहां सत्य जाना जा सकता था, वहां तुम सपनों के पीछे दौड़ते रहे। छोटे बच्चे तितलियों के पीछे दौड़ते हैं। अगर तुम गौर से देख सको तो बूढ़ों को भी तुम तितलियों के पीछे ही दौड़ते पाओगे। तितलियां बदल गई होंगी, क्योंकि बूढ़े अनुभवी हैं--लेकिन दौड़ नहीं बदलती। और दौड़ तितलियों के पीछे ही बनी रहती है। छोटे बच्चे को हम कहते हैं कि क्या पागल हुआ है, तितली को पकड़कर भी क्या होगा! लेकिन बूढ़े क्या पकड़ने के लिए दौड़ रहे हैं? तुम खुद क्या पकड़ने के लिए दौड़ रहे हो? तुम भी बच्चे थे, तितलियां पकड़ते रहे। तुम्हारे बच्चे भी कल बूढ़े हो जाएंगे, और वे भी अपने बच्चों को समझाएंगे, क्या तितलियों के पीछे दौड़ रहे हो! लेकिन बूढ़े भी तितलियों के पीछे दौड़ते रहते हैं।
और अगर चुनाव ही करना है, तो बच्चों की तितलियां ज्यादा ठीक मालूम पड़ती हैं, बजाय बूढ़ों की। बूढ़े नोट के पीछे दौड़ रहे हैं, पद के पीछे दौड़ रहे हैं; दिल्ली उनका मोद्व है, वे दिल्ली जा रहे हैं! धन उनकी आत्मा है, वे धन जोड़ जा रहे हैं! बच्चे कंकड़-पत्थर बीन लेते हैं, और बूढ़े हीरे-जवाहरात-- फर्क कितना है? कंकड़-पत्थर में और हीरे-जवाहरात में कोई भी तो फर्क नहीं है।
अगर आदमी इस जमीन पर न हो, तो साधारण पत्थर में और कोहिनूर में क्या फर्क होगा? कोहिनूर कुछ अकड़कर कह सकेगा कि मैं विशिष्ट हूं। लेकिन बड़े से बड़े सम्राट भी...
कोहिनूर हीरा रणजीत सिंह के पास था। रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद महारानी विक्टोरिया की नजर कोहिनूर पर लगी रहीः कोई भी हालत में कोहिनूर पाना जरूरी है।
विक्टोरिया के पास सब कुछ था। बड़ा विराट साम्राज्य था, जिसमें सूर्य
का कभी अस्त नहीं होता था। मगर यह कोहिनूर उसके हृदय में जख्म की तरह सताता रहा। और उसको सताने के लिए रणजीत सिंह कोहिनूर अपने घोड़े पर लटकाकर रखते थे। खुद नहीं लगाते थे उसको, घोड़े पर लटका रखा था।
रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद, लड़का नाबालिग था रणजीत सिंह का, तो उसको विक्टोरिया ने इंग्लैंड बुला लिया। नाबालिग था, जब तक वह बालिग न हो जाए, तब तक राज्य का मालिक भी नहीं हो सकता था। तो तब तक उसकी शिक्षा-दिक्षा का भार ब्रिटिश राज्य ने ले लिया। वह लड़का लोगों से कहता फिरता था कि मुझे रस नहीं है, रस कोहिनूर में है। और यह और चोर है यह औरत। और कोहिनूर हीरा चुरा लिया गया। नाबालिग लड़का है, कहीं खो न दे, इसलिए कोहिनूर ले लिया गया ब्रिटिश साम्राज्य में। फिर वह कभी वापिस नहीं लौटाया गया।
विक्टोरिया की नजर भी एक पत्थर पर लगी है--जिसके पास सब है! बूढ़े भी कंकड़-पत्थर बीनते रहते हैं। बच्चों की तितलियां कम से कम जीवित हैं;

तुम्हारी तितलियां बिल्कुल मृत, मरी हुई हैं। लेकिन दौड़ जारी रहती है, क्योंकि माया तो एक ही है। वह बच्चों के भीतर है, वह बूढ़े के भीतर है। जब तक तुम जाग न जाओ, जब तक तुम्हारा नया जन्म न हो जागने में, तब तक तुम जो भी मरोगे वह मूढ़तापूर्ण है। माया से निकला हुआ सभी मूढ़तापूर्ण होगा।
एक बात ठीक से समझ लेना जरूरी है।
मैं जब भी माया की बात करता हूं, तो मुझे माया और ब्रह्म के सिद्धांत
से कोई प्रयोजन नहीं है--कबीर को भी नहीं है। माया तुम्हारे भीतर बेहोशी होने की प्रक्रिया का नाम है--तुम्हारी सोये होने की दशा। तुम नींद-नींद में जी रहे हो। और सपने तुम्हारे चारों तरफ घिरे हैं। इसलिए ध्यान उपयोगी है। क्योंकि ध्यान माया को तोड़ने का प्रयोग हैः कैसे तम जाग जाओ और माया छिन्न-छिन्न हो जाए। और तुम जागकर अगर जगत को देखो, तो तुम जगत को पाओगे ही नहीं, वहां तुम ब्रह्म को पाओगे। माया जब तक भीतर है, तब तक तुम सत्य को न देख सकोगे।
निरगुन फांस लिए कर डोलै, बोलै अधुरी बनी।
बड़ी मधुर बानी है, सभी को फांस लेती है। जब रुपए की खनकार तुम्हें सुनाई पड़ती है, तब कैसी मधुर मालूम पड़ती है! जब एक सुंदर चेहरा स्त्री का तुम्हें दिखाई पड़ता है, तो कैसा मधुर मालूम पड़ता है! जब एक पद तुम्हें पुकारता है, तो कैसा मधुर मालूम पड़ता है। पीछे सब कड़वा हो जाता है, लेकिन शुरुआत बड़ी मधुर है। ऐसा लगता है, जैसे हम जहरीली दवाइयां शक्कर का लेप चढ़ाकर देते हैं; जैसे जीवन का सब जहर हम पीने को राजी हैं--सिर्फ माया का थोड़ा-सा लेप चाहिए। पीछे सब जहर प्रकट होता है, लेकिन तब बहुत देर हो गई होती है।
इस बात को ध्यान में रखना कि जिस अनुभव में सुख पहले हो और पीछे दुख आए, उसे समझना कि वह माया से पैदा हुआ है। इससे विपरीत जिस अनुभव में दुख पहलू मालूम पड़े और सुख पीछे आए, समझना कि वह माया से पैदा नहीं हुआ है।
तप की परिभाषा इतनी ही है कि वहां दुख पहले है और सुख बाद में। और भोग
की परिभाषा इतनी ही है कि वहां सुख पहले है और दुख बाद में। सुख स्वागत करता मिलेगा सदा--वह माया का सेवक है--पीछे दुख छिपा है। तपश्चर्या में, साधना में, जब तुम सत्य की खोज से भरोगे मुमुक्षा से, और जाओगे, तो पहले दुख मालूम पड़ेगा। और अगर तुम उस दुख से बहुत डर गए तो माया से कभी जाग न सकोगे। अगर तुम उस दुख के लिए राजी हो गए, तो जल्दी ही दुख नष्ट हो जाता है और महासुख के द्वार खुल जाते हैं।
दुख का अचेतन रूप से चुनना तपश्चर्या है।
सुख के पीछे दौड़ते रहना, तितलियों के पीछे दौड़ते रहना--और मजा यह है कि सुख के पीछे जो दौड़ता है, उसे सुख मिलता है; और जो दुख के लिए राजी है, वह महासुख का अधिकारी हो जाता है।
इस गणित को बहुत साफ समझ लेना जरूरी है। क्योंकि इस गणित को समझे बिना माया को तोड़ा नहीं जा सकता, उसकी मधुर वाणी से उठा नहीं जा सकता। बड़ा मीठा सपना है उसका।
केसव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत होइ बैठी, तीरथ में हूं पानी।।
जोगी के जोगिनी होइ बैठी, राजा के घर रानी।।
काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कौड़ी कानी।।
भक्तन के भक्ति होइ बैठी, ब्रह्म के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी।।
कबीर कह रहे हैं कि जो नहीं कहा जा सकता, जो अकथ है, वह कहानी तुमसे कहता हूं। कहा तो नहीं जा सकता है, क्योंकि कहना उन चीजों का संभव है, जो तर्कयुक्त हों। उन चीजों को कहना मुश्किल है, जो तर्क बिल्कुल विपरीत हों। भाषा तर्क की सरिणी है। उसमें जो तर्कयुक्त है, वह वहां जा सकता है। लेकिन यह बड़ी अतक््रय कहानी है कि तुम अपने ही कारण दुख पा रहे हो। हम कहेंगे यह बात तो हो नहीं सकती, क्योंकि हम तो सुख चाहते हैं, तो हम अपने ही कारण कैसे दुख पाएंगे! इसीलिए तो हम सदा कहते हैं कि दुख हम दूसरे के कारण पाते हैं। पति पत्नी के कारण पा रहे हैं, पत्नी पति के कारण; बेटा बाप के कारण, बाप बेटे के कारण। हम सदा सोचते हैं कि दुख हम दूसरे के कारण पा रहे

हैं, वह तर्क-युक्त मालूम पड़ता है। क्योंकि हम अपने कारण दुख क्यों पाएंगे, हम तो सुख चाहते हैं।
कहानी बड़ी अकथ है। क्योंकि तुम सुख चाहते हो, इसलिए तुम दुख पा रहे हो। यह बड़ी अतक््रय बात है, लेकिन यही सत्य है। और जब तक तुम सुख चाहोगे, तब तक तुम दुख पाओगे, और जिस दिन तुम राजी हो जाओगे दुख के लिए, उस दिन तुम दुख पाने के बाहर हो जाओगे। कहानी अकथ है।
अगर कोई तुमसे कहे कि तुम भटक रहे हो, क्योंकि तुम खोज रहे हो, तो बड़ा विरोधाभास मालूम पड़ता है। अगर कोई तुमसे कहे, अगर तुम रुक जाओ तो तुम पा लोगे, तो बड़ा विरोधाभास मालूम पड़ता है। बड़ी अकथ बात है! पर यही सत्य है। जब तक तुम दौड़ोगे, तुम न पा सकोगे। क्योंकि जिसको तुम खोजने चले हो, वह तुम्हारे भीतर छिपा है। जब तक तुम दौड़ते रहोगे, तब तक तुम भटकते रहोगे, क्योंकि जिसे तुम खोजने चले हो, वह तुम ही हो। तुम दौड़ के जाओगे कहां? और जितना तुम दौड़ोगे, उतनी ही उ Ÿोजना में तुम अपने को भूल जाओगे। रुक जाओ! अकथ कहानी है! जो रुक जाते हैं, वे पा लेते हैं। पैराडाक्स है, विरोध है। तर्क मानने को राजी नहीं होता, तर्क क्या कहेगा? तर्क कहेगा, अगर तुम दौड़ते हो और नहीं पाते, तो जरा जोर से दौड़ो। साफ है, गणित सीधा है। दौड़ के नहीं पाते, इसका मतलब है, दौड़ पर्याप्त नहीं है--तेजी से दौड़ो! या दौड़ के नहीं मिल रहा है, तो इसका मतलब है, दिशा गलत है। तो ठीक दिशा चुनो। तर्क कहेगा, दिशा बदलो, दौड़ की गति बढ़ाओ, पहुंच जाओ। लेकिन, अगर तुम्हारे भीतर ही छुपी है, मंजिल, तो तुम किसी दिशा में जाओ--किसी भी दिशा में जाओ--गलत दिशा होगी। क्योंकि इसका दिशा से कोई संबंध ही हनीं तुम्हारे भीतर... भीतर की दिशा को हमने गिना ही नहीं है कभी। हम कहते हैं, दस दिशाएं हैं। मैं कहता हूं, ग्यारह। क्योंकि दास तो बाहर हैं--आठ चारों तरफ, एक नीचे, एक ऊपर। और तुम्हारे भीतर? लेकिन भूगोल उस दिशा को बिनता ही नहीं। उसको हमने बाहर ही रख छोड़ा है और वहीं मिलेगा।
जिसे तुम खोज रहे हो, वह तुम्हारे भीतर छिपा है। तुम अपने को ही खोज रहे हो। तो तुम कोई भी दिशा चुनो, सभी दिशाएं गलत होंगी। तुम कोई भी मार्ग चुनो, तुम भटकोगे। और धीरे और जोर से दौड़ने का सवाल नहीं है। तुम कितने जोर से दौड़ो, जितने जोर से दौड़ोगे, उतने ही दूर निकल जाओगे।
रुको! सब दिशाएं छोड़ो! दसों दिशाएं छोड़ो! वहीं ठहर जाओ, जहां तुम हो! भीतर वहीं रुक जाओ जहां तुम हो। सब मार्ग छोड़ो। यही तो सहजता का अर्थ है। कोई मार्ग नहीं, कोई प्रयत्न नहीं, कहीं जाना नहीं, दौड़ना नहीं, आसन, व्यायाम नहीं। चुपचाप वहां रुक जाओ, जहां तुम हो। वहां वह सब छिपा है, जिसकी तलाश है।
दौड़ है माया, रुक जाना है ब्रह्म। तुम रुके कि उसे पा लिया। दौड़ोगे तो विचार में चलना ही पड़ेगा। मन की सहायता जरूरी है दौड़ने में। क्योंकि मन यंत्र है। वह तुम्हें मार्ग सुझाता है। वह मार्ग की कठिनाइयां दिखलाता है। वह, कैसे मार्ग को पार करो, इसकी विधि-विधान बनाता है। मन की तो जरूरत रहेगी अगर यात्रा करनी है। और जितनी ज्यादा यात्रा करनी है, उतनी ही ज्यादा मन की जरूरत होगी। और मन को तो छोड़ना है, तभी तुम पाओगे।
मन माया है। जैसे ही मन रुक जाता है, न कोई यात्रा--तीर्थयात्रा भी नहीं है। जैसे ही तुम अपने भीतर शांत और ठहर जाते हो, एक लहर भी नहीं उठती विचार की--तुम पहुंच गए! आ गई मंजिल! और तब तुम हंसोगे कि इसे खोजने को मैं कितना दौड़ा। तब तुम हंसोगे कि दौड़ने के कारण ही तुम इसे नहीं पा रहे थे। तब तुम हंसोगे कि मैं भी कैसा पागल थाः अपने ही कारण दुख पा रहा था और सोचता था दूसरों के कारण दुख मिलता है।
जब तक तुम देखते रहोगे, दूसरों के कारण दुख मिलता है, तब तक तुम भटकोगे; क्योंकि तुम्हें कोई भी दुख नहीं दे रहा है; सिवाय तुम्हारा अपना ही जीवन का ढंग। तुम्हारे जीवन की पद्धति गलत है। वह माया से लिप्त है। सोचो, तुम्हारा धन खो जाता है। एक चोर धन चोरी कर ले गया। तुम सोचते हो चोर ने तुम्हें बहुत दुख दिया? चोर क्या दुख देगा? धन में आसक्ति थी, इससे दुख हुआ। अगर आसक्ति न होती और चोर चोरी करके ले जाता, तो दुख होता? तो शायद तुम प्रसन्न होते कि चलो निर्भार हुए, इससे भी छुटकारा हुआ। तुम शायद

धन्यवाद देते चोर को कि तेरी बड़ी कृपा, तूने बोझ कम किया। लेकिन आसक्ति है धन से, इसलिए दुख होता है चोर से।
पत्नी मर जाती है, तुम छाती पीटते हो, रोते-चिल्लाते हो--मृत्यु ने दुख दिया? तुम कहते हो, हे परमात्मा! तू क्यों इतना कठोर है? तुम कहते हो कि यह कैसा दुर्भाग्य का क्षण, यह मुझ पर ही क्यों घटा, दूसरों पर क्यों नहीं घटता? आखिर मुझे ही क्यों चुना? और मैं तेरी रोज प्रार्थना करता हूं, मंदिर, भी जाता हूं, गीता भी पढ़ता हूं, कुरान भी पढ़ता हूं, मस्जिद में पांच नमाज पढ़ता हूं--और यह फल मिला।
परमात्मा तुम्हें दुख दे रहा है, विधि दुख दे रही है, या कि तुम्हारी आसक्ति दुख दे रही है? तुम बंधे थे इस स्त्री से, और तुम सोचते थे इस स्त्री में ही तुम्हारा सुख है। अब यह स्त्री न रही, अब सुख कैसे मिलेगा? इससे तुम पंडित हो रहे हो।
ख्याल करो, जब भी तुम दुखी होते हो तुम्हीं कारण हो। और जैसे ही यह बोध सघन हो जाएगा कि मेरे दुख का कारण मैं हूं, वैसे ही तुम दुख की प्रक्रिया को तोड़ने लगोगे। फिर तुम दुख चाहो तो बात दूसरी। चलो उस रास्ते पर, लेकिन तब शिकायत मत करना। और तब किसी से मत कहना कि किसी और के कारण मैं दुख पा रहा हूं। तब तुम्हारी मौज। तब दुख पाना ही तुम चुनते हो, ठीक। लेकिन तब शिकायत नहीं। लेकिन अगर तुम दुख नहीं पाना चाहते हो, तो दुख के मूल कारणों को समझने की कोशिश करो।
तुम क्रोधित होते हो, किसी ने गादी दी--और तुम कहते हो कि यह तो साफ है,
यह आदमी गाली न देता और मैं क्रोधित न होता, न दुखी होता। लेकिन गाली से कोई कभी क्रोधित नहीं होता। क्रोधित तुम इसलिए होते हो कि तुमने एक अहंकार पाल रखा है, जो गाली से चोट खाता है। तुमने एक अस्मिता बना रखी है कि मैं एक बड़ा प्रतिस्रिव व्यक्ति हूं और यह आदमी गाली दे रहा है। मेरी प्रतिस्रा खराब कर रहा है। अहंकार को चोट लगती है गाली से; लेकिन अगर भीतर अहंकार न हो, तो गाली ऐसे निकल जाएगी, जैसे हवा का झोंका आया और निकल गया। तुम अछूते रह जाओगे, अस्पर्शित।
ख्याल करोः कई बार ऐसा तुम्हें जीवन में हुआ होगा। पैर मैं चोट लग गई
तो फिर दिनभर वहीं-वहीं चोट लगती है। सीढ़ी से निकलते तो टकरा जाते हो। किसी आदमी का धक्का लग जाता है। कुर्सी के पास से निकलते हो तो कुर्सी चोट मार देती है। जूता पहनते हो तो जूता काटता है। स्नान करने जाते हो तो पानी कष्ट देता है। दिनभर कुछ न कुछ। और तुम्हें लगता है कि बड़ी हैरानी की बात है, रोज ऐसा नहीं होता था, और आज चोट क्या लगी है, सारा संसार वहीं चोट मारने को उत्सुक है! कोई संसार तुम्हें चोट मारने को उत्सुक नहीं है। रोज भी यही होता था; लेकिन रोज चोट नहीं थी, इसलिए पता नहीं चलता था। रोज कुर्सी यही लगती थी, रोज जूता यही छूता था, रोज बच्चा घर आता था। पैर पर पैर रखकर चढ़ता था। लेकिन वहां चोट नहीं थी, इसलिए पता नहीं चलता था। आज पता चल रहा है।
गाली कोई देता है, लगती है चोट; क्योंकि अहंकार एक घाव की तरह तुम्हारे भीतर है। कोई प्रशंसा करता है, तुम खिल जाते हो; कोई निंदा करता है, तुम मुरझा जाते हो। यह कैसी गुलामी? और इसमें दूसरे का कोई हाथ नहीं है, इसमें तुम ही जिम्मेवार हो। जैसे-जैसे तुम गौर से देखोगे अपने जीवन के दुखों को, तुम पाओगे कि कहीं भीतर मैं ही जिम्मेवार हूं। वहीं माया है। और जिससे तुम्हें दुख मिल रहा है, उसको गिरा दो, उसे हटा दो। गाली किसी ने दी, उसको तो कहो कि तेरी बड़ी कृपा; और जहां चोट लगी, उस घाव को हटा दो।
कबीर ने कहा है, निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय। वह तुम्हें जो गाली दे, उसको तो तुम घर ही ले आना, उसको तो कहना कि तू पास ही रह, भैया। तू दूर रहेगा, पता नहीं कभी दे न दे, मिलता हो न हो, यहीं रह, बगल में तेरे लिए भी एक घर बना देते हैं। आगन कुटी छपाय। उसको बुढ़िया सुंदर व्यवस्था कर दो रहने की, ताकि वह सतत मौजूद रहे और तुम अपने अहंकार को अनुभव कर सको।
और असली सवाल अहंकार छोड़ने का है। असली सवाल भीतर कुछ बदलने का है। लेकिन बदलोगे कैसे? अगर जिम्मेवारी दूसरे पर छोड़ते हो, तो तुम भीतर देखोगे ही नहीं।

इस भीतर के अंधेपन का नाम माया है। और यह माया अनेक रूप ले लेती है।
इसके रूप का कोई अंत नहीं है। तुम जैसा चाहो, वैसा रूप ले लेती है, क्योंकि माया सपना है। वहां कोई पदार्थ तो नहीं कि रूप देने में कोई कठिनाई हो। तो कबीर कहते हैं, भक्त के लिए मूर्ति ही माया हो जाए, वह उसी को सम्हाल सम्हालकर फिरता है।
एक घर में मैं पंजाब में मेहमान हुआ। सुबह स्नान करने के लिए निकला तो जिस कमरे से गुजरा, वहां देखा कि गुरुग्रंथ साहब रखा है, नानक की वाणी रखी है, और एक लौटा रखा पास में और एक दतौन रखी है! मैं जरा हैरान हुआ कि दतौन और लोटा यहां किसलिए रखा है! तो उन्होंने कहा कि गुरुग्रंथ साहब के लिए, सुबह दतौन करने के लिए। किताब रखी है वहां, मूर्ति भी नहीं है! गुरुग्रंथ साहब के लिए दतौन रखी है! मूर्ति भी हो तो थोड़ा समझ में आता है। ऐसे तो वह भी मूढ़तापूर्ण है, क्योंकि तुम्हारी ही बनाई मूर्ति और तुम भलीभांति जानते हो, बाजार से खरीद लाए हो, और अब दतौन लौटा रखा हुआ है। लेकिन किताब के सामने तो हद हो गई। लेकिन हो गई हद इसलिए कि किताब का नाम है गुरुग्रंथ साहब। और किताब में एक व्यक्ति डाल दिया--साहब। तो भोजन भी दिया जाएगा गुरुग्रंथ साहब को; सुलाया भी जाएगा, उठाया भी जाएगा।
कबीर कहते हैं, भक्त के भक्ति होइ बैठी, जोगी के जोगने होइ बैठी, राजा
के घर रानी। पंडा के मरत होइ बैठी, तीरथ हूं में पानी।
सारे संसार में उसने बहुत रूप लिए हैं। प्रश्न यह है कि जहां भी तुम्हारी आसक्ति हो, जहां भी तुम्हारा मोह हो, जहां भी तुम्हारा अंधापन लग जाए, राग जुड़ जाए, वहीं माया खड़ी हो जाएगी। अब किताब से राग लग गया तो किताब ही माया हो गयी। मुझसे राग लग जाए, वही माया हो गई। तो फिर मेरे कारण तुम परेशान होने लगे। और जहां माया होगी, वही परेशानी शुरू हो जाएगी। जागो! माया महाठगिनी हम जानी।
जागो! और देखो भीतर कैसे-कैसे तुमने कितने रूप खड़े कर रखे हैं! और अपने
ही हाथ... !
समझ काफी है, तोड़ने की कोई जरूरत भी नहीं है। समझ आइ तो तुम खुद ही हंसोगे--इस लोटा और दतौन को देखकर गुरुग्रंथ साहब के सामने रखा। समझ आई कि तुम खुद ही हंसोगे कि तुम मंदिर की मूर्ति के सामने हाथ जोड़े, घुटने टेके खड़े हो, तुम उससे बातें कर रहे हो। तुम पागल हो। किससे बातचीत चल रही है? लोग मूर्ति से भी नाराज, नाखुश, खुश होते हैं। बड़ा मजेदार है। और तुमने मांगा कि इस लड़के की नौकरी लग जाए। संयोग की बात लग गई तो तुम बड़े प्रसन्न होते हो, मूर्ति से चर्चा करते हो, कि बड़ी कृपा है तेरी, तेरे बिना कुछ भी न होता, लड़के की नौकरी लग गई! न लगे नौकरी, नाराज हो जाते हो, मूर्ति को फेंकने को उतारू हो जाते हो।
ऐसे लोग को मैं जानता हूं, जो गुस्से में मूर्ति फेंक आए कुएं में। क्योंकि हो गए इतने दिन प्रार्थना करते-करते, पूजा करते-करते, और न कोई सुननेवाला है, न कोई पूरा करनेवाला है।
एक आदमी को मैं जानता हूं जो नास्तिक था, फिर आस्तिक हो गया। मैंने उससे पूछा, क्या हुआ? तुम तो बड़े नास्तिक थे! उसने कहा कि अब मानना ही पड़ता। लड़के को नौकरी नहीं लगती थी, सब उपाय कर लिए, सब की खुशामद कर ली, रिश्वत देकर देख ली, कुछ हल न हुआ, आखिरी कोई रास्ता न रहा तो मंदिर गया--और वहां मैंने कहा कि अगर लग गई लड़के को नौकरी पंद्रह दिन के भीतर, तो सदा के लिए भक्त हो जाऊंगा। अब हनुमान जी का भक्त हो गया हूं।
हनुमान जी बेचारे इसके लड़के को नौकरी लगवाने के लिए कैसे जिम्मेवार हैं! कोई भी संबंध नहीं है। कोई हनुमान जी ने कोई एम्प्लायमेंट एक्स्चेंज नहीं खोला हुआ है। और अगर वे खोलेंगे भी तो बंदरों को नौकरी लगाएंगे, आदमियों को नहीं। सबके अपने रिश्तेदार, नाते-रिश्तेदार हैं।
मैंने इस आदमी से कहा कि तुम बंदर जैसे तो लगते भी नहीं। उसने कहा, क्या मतलब आपका? मैंने कहा, हनुमान जी तुम्हारी फिकर करेंगे! तुम अकारण अपने को इतना महत्वपूर्ण मान रहे हो। और इस कारण यह आदमी आस्तिक हो गया है। अब यह जाता है, हर मंगलवार निश्चित रूप से प्रसाद लेकर। मगर यह भरोसे का नहीं है। क्योंकि नौकरी छूट गयी तो नाराज हो जाएगा। पत्नी मर जाए और हनुमान जी न बचाएं--और कहां-कहां इसका साथ देंगे? हजार उपद्रव यह लाएगा।

और जहां भी इसने पाया कि नहीं हुआ काम पूरा... यह आदमी कोई भरोसे का नहीं है। इसकी भक्ति माया का हिस्सा है। इसकी पूजा-प्रार्थना झूठी है। क्योंकि जहां मांग है, वहां कैसी पूजा, कैसी प्रार्थना!
जहां आकांक्षा है, वहां वासना है। वासना का प्रार्थना से कभी कोई संबंध नहीं जुड़ता। और जब वासना खो जाती है, तब प्रार्थना करने को क्या बचता है? क्या प्रार्थना, तब तुम्हारा पूरा जीवन ही एक प्रार्थना होता है। अलग से करने को क्या बचता है? तुम ऐसे जीते हो--प्रार्थनापूर्ण हृदय से अनुगृहीत भाव से... सारा संसार तुम्हें इतना दे रहा है, जरूरत से ज्यादा दे रहा है। परमात्मा ने तुम्हें जो दिया है, वह तुम्हारी योग्यता से अनंतगुना ज्यादा है। क्या है तुम्हारी योग्यता? तुम्हें जीवन दिया है, इतना काफी नहीं है? नौकरी चाहिए, तब तुम पूजा करोगे? तुम्हें इतनी बड़ी क्षमता दी है जागने की, होश की, कि तुम बुद्ध हो सको--वह काफी नहीं है? नौकरी चाहिए, तब तुम अनुग्रह-भाव प्रकट करोगे?
जो दिया गया है, वह जरूरत से ज्यादा है--यह भक्त का भाव है। और जो मेरे पास है, वह कम है, और मुझे मिले--यह अभक्त की प्रार्थना है। अगर इस हिसाब से सोचोगे, तो तुम्हें मंदिरों में अभक्त मिलेंगे, भक्त नहीं। भक्त्त क्यों मंदिर में जाएगा? क्योंकि भक्त के लिए तो यह सारा अस्तित्व ही मंदिर है। वह जहां है, वहां मंदिर है। और वह जो कर रहा है, वही उसकी प्रार्थना है। कबीर ने कहा है, जो कुछ करूं सो पूजा! कबीर को किसी ने कभी मंदिर जाते नहीं देखा। इसलिए काशी के पंडित, पुजारी कबीर को कभी मान्यता नहीं दिए। और मरते वक्त कबीर ने कहा कि मुझे मगहर ले चलो।
कहानी है कि मगहर में जो मरता है, वह गधा होता है; और काशी में जो मरता है, वह भक्त होता है। जिंदगी भर काशी रहे, मरने के पहले कबीर ने अपने शिष्यों को कहा, मुझे मगहर ले चलो! काशी में मैं न मरूंगा। क्योंकि अगर काशी में मरे और स्वर्ग गए तो इसमें अपनी क्या खूबी! मगहर मर के स्वर्ग जाना है।
... एक मजाक कबीर का! हिम्मत के आदमी थे। भरोसे के आदमी थे। क्योंकि अगर भगवान पर भरोसा है, तो तुम मगहर में मरो कि काशी में, क्या फर्क पड़ता है? लोग मरने के लिए काशी जाते हैं! जीते हैं मगहर में गधों की तरह, मरते हैं काशी में, इस आशा में कि मोक्ष चले जाएंगे। कबीर जीये काशी में संतों की भांति, मरने गए मगहर! लोग सोचते हैं, जीयो कैसे ही, मरो काशी में! जीयो कैसे ही! मरते वक्त राम का नाम ले लेना, गंगा-जल पिला देना, काम खत्म हो गया।
तुम बड़े होशियार हो, चालाक हो! तुम्हारा धर्म भी तुम्हारी चालाकी का विस्तार है। जीयो जैसे तुम्हें जीना है--माया के साथ--मर लेना राम का नाम लेकर!
ध्यान रखना, तुमसे राम का नाम भी न निकलेगा मरते वक्त। क्योंकि मृत्यु में तो वही निकलेगा, जो जीवन में जीया गया है। जो पूरे जीवन का संग्रहीभूत सार है, वही तो मृत्यु में तुम्हारा साथ जाएगा।
तो पंडे-पुजारी हैं; आदमी मर रहा है, वे उसको कान में राम दोहरा रहे हैं। वह खुद भी नहीं दोहरा सकता। वह अपने मन में माया को इकट्ठा कर रहा है। जीवनभर में जो पाया, उसका हिसाब लगा रहा है; जो नहीं पाया उसकी शिकायतें कर रहा है। वह अपने भीतर तैयारी कर रहा है नये संसार में प्रवेश करने की, नये गर्भ में प्रवेश करने की--जहां जो-जो अधूरा रह गया, वह पूरा हो सके; जो तिजोरी खाली रह गई, वह भरी जा सके; जो स्त्री मिली, मिलनी थी, वह मिल सके; जो पर पाना था, नहीं पाया जा सका, वह पा सके। वह अपने भीतर माया के सब बीज इकट्ठे कर रहा है। इसके पहले कि शरीर छोड़े उसकी आत्मा सारे बीजों को, माया के, इकट्ठे कर लेगी, ताकि नये गर्भ में प्रविष्ट होकर फिर यात्रा शुरू हो जाए। और किराए का आदमी! किराए का आदमी, क्योंकि वह भी राम उसके कान में दोहरा रहा है और सोच रहा है कि पांच रुपये मिलनेवाले हैं। यह बड़ा मजेदार मामला है। वह आदमी भीतर माया इकट्ठी कर रहा है। जो आदमी उसके कान में राम-राम कर रहा है, वह माया का हिसाब लगा रहा है, और इन दोनों के बीच में राम फंसे हैं।
ठीक कहते हैं कबीर, निरगुन फांस लिए कर डोले, बोलै बधुरी बांनी।

सब फंसे मालूम पड़ते हैं। पुजारी फंसे हैं, पंडे फंसे हैं, भक्त फंसे हैं। माया के रूप बदल जाते हैं, फंसावट नहीं बदलती। तुम जाते जहां भी अपने को फंसा हुआ पाओ, खोजबीन करना भीतर, माया होगी। और जहां-जहां तुम फंसा हुआ पाओ, धीरे-धीरे वहां-वहां समझपूर्वक काटना। समझपूर्वक कहता हूं, क्योंकि गैर-समझपूर्वक भी तुम काट सकते हो, अक्सर लोग गैर-समझपूर्वक काट लेते हैं, तब अधूरी रह जाती है। तब नया सिलसिला शुरू हो जाता है। इस पत्नी को छोड़कर भाग जाओगे, दूसरी पत्नी कहीं न कहीं मिल जाएगी। घर छोड़ोगे, आश्रम में पहुंच जाओगे। घर में मोह था, आश्रम में मोह हो जाएगा। कच्चा कुछ भी मत तोड़ना, कच्चा तोड़ा नहीं जा सकता। इसलिए कहता हूं, समझपूर्वक। समझपूर्वक का अर्थ है, पककर। समझने की कोशिश करना। जितनी गहरी से गहरी समझने की कोशिश कर सको, क्यों फंसा हूं, क्या फंसावट है। क्यों बंधा हूं? कहां से यह बंधन मेरे भीतर पैदा हो रहा है? प्रवेश करना भीतर, कारण खोजना, और सब भांति कारण को समझना। जैसे ही समझ पूरी होगी, कारण विलुप्त हो जाएगा। तुम्हें तोड़ने की जरूरत भी न पड़ेगी। जैसे पक जाता है प Ÿा, सुख जाता है, फिर हवा का छोटा सा झोंका भी न हो, तो भी सूख प Ÿा गिरेगा ही। कोई कुल्हाड़ी लेकर काटना नहीं पड़ेगा। अक्सर लोग कुल्हाड़ी लेकर काट लेते हैं। तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी ऐसे ही लोग हैं, जिन्होंने कुल्हाड़ी से काट दिया, घाव रह गया। अब वह नई जगह उस घाव को भर रहे हैं। वही दौड़ है जो पीछे थी। कोई फर्क नहीं पड़ता। नाम बदल जाते हैं, रूप बदल जाते हैं, माया फिर जगह बना लेती है। पकाना! प्रौढ़ता! होश! समझ! जल्दी मत करना! परमात्मा को कोई जल्दी हनीं है। तुम्हें भी जल्दी की कोई जरूरत नहीं है। धैर्यपूर्वक समझ को गहरा करना। जैसे-जैसे समझ साफ होगी, जैसे-जैसे तुम्हें दिखाई पड़ेगा, गाली में कष्ट नहीं है, मेरे अहंकार में है, तब अपने अहंकार को समझने की कोशिश करना।
जिस दिन समझ पूरी हो जाएगी, उसी दिन तुम पाओगे कि भीतर एक सूखा प Ÿा लटका था, वह गिर गया। उसके गिरते ही तुम मुक्त हो।
माया महाठगिनी हम जानी।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी।
इस सूत्र से हम शुरू करते हैं। पूरी कहानी अकथ है, कही नहीं जा सकती, फिर भी कबीर ने कही है, और बड़ी मधुरता से, और बड़ी सफाई से कही है। बहुत स्पष्ट कही है। तर्क का जाल नहीं है। सीधे साफ, एक अपढ़ आदमी के शब्द हैं, तुम भी तर्क का जाल खड़ा मत करना। कबीर को सीधा-साधा समझने की कोशिश करना, कबीर का भाव अगर तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो जाए, तो तुम्हें समाधि के लिए कुछ भी करना न होगा।
समझ काफी है। समझ क्रांति है, समझ रूपांतरण है।
कुछ करना पड़ता है, इसीलिए कि समझ काफी नहीं है। इसलिए ध्यान करो, साधना करो; क्योंकि समझ काफी नहीं है। समझ काफी हो, तो कुछ करने को नहीं बचता। अनकिए सब होय--कबीर का वचन है। अनकिये सब होय। कुछ करना नहीं पड़ता। लेकिन तुम यह मत समझ लेना कि तुम्हें कुछ नहीं करना है। तुम्हें तो समझ, तुम्हें तो बहुत कुछ करना पड़ेगा। उस सबको करने से तुम्हारी समझ की क्षमता बढ़ेगी।
यहां जो ध्यान के प्रयोग चलेंगे समाधि शिविर में, उन्हें संपूर्ण भाव
से करना, उनके करने में कुछ क्षणों के लिए झलक मिलनी शुरू होगी--उस परम अवस्था की, जिसकी तरफ कबीर इंगित करेंगे।
लेकिन अगर तुमने अपने को थोड़ा भी बचाया तो चूकोगे। तुम पूरे के पूरे
ही ध्यान में डूबने की कोशिश करना। अपनी तरफ से सब पूरा कर देना और शेष परमात्मा पर छोड़ देना। फिर भी न हो तो तुम्हारा कोई दायित्व नहीं। अपने तरफ से पूरी कोशिश कर लेना, फिर परमात्मा पर छोड़ देना। लेकिन अपनी तरफ से आधी कोशिश करके परमात्मा पर मत छोड़ना। क्योंकि उसका हाथ तुम्हारे पास तभी आता है, तब तुम अपनी पूरी कोशिश कर चूके होते हो; उसके पहले कोई जरूरत भी नहीं है।
एक नाव में कुछ यात्री यात्रा कर रहे थे, और एक फकीर भी था। तूफान उठा। भयंकर तूफान था और नाव डूबने के करीब आने लगी। सारे लोग घुटने टेककर प्रार्थना करने लगे, चीख-पुकार मच गई; परमात्मा बचाओ-बचाओ! सब हैरान हुए, अकेला फकीर चुपचाप बैठा था। तूफान चला गया। तब लोगों ने फकीर को घेर लिया

और कहा, हम कुछ और अपेक्षा रखते थे! तू फकीर हो, संन्यासी हो; तुम्हें तो प्रार्थना करनी चाहिए थी। हम सब प्रार्थना कर रहे थे, तुम खाली बैठे रहे। क्या मामला है।?
उस फकीर ने कहा, जब तक हम कर सकते हैं, वह पूरा न कर लिया जाए, तब तक हम प्रार्थना के हकदार नहीं और परमात्मा का हाथ तभी आता है, जब हमने अपने हाथों का पूरा उपयोग कर चुकें। जब तक तुम्हारे पास कुछ करने को बचा है, तब तक तुम्हें परमात्मा की जरूरत भी नहीं है।
ध्यान के प्रयोग में तुम अपने को पूरा डुबा देना। अगर तुमने कुछ भी न बचाया, तुम अचानक उसका हाथ अपने सिर पर पाओगे। अचानक तुम पाओगे तुम उठा लिए गए। अचानक तुम पाओगे कोई तुम्हें ले चला। कोई नाव तुम्हें दूसरे किनारे की तरफ ले चली। फिर अनकिये सब होय। उसके पहले नहीं। अपनी तरफ से पूरा कर लेना, फिर उसकी तरफ से शुरू हो जाता है।
आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
दूसरा प्रवचन

मन गोरख मन गोविन्दौ

दिनांकः 12 नवंबर, 1974; श्री ओशो आश्रम, पूना.

सूत्र
मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय।
तीन लोक संशय पड़ा, काहिं कहूं समुझाय।।
बेढ़ा दीन्हों खेत को, बेढ़ा खेतहि खाय।
तीन लोक संशय पड़ा, काहिं कहूं समुझाय।।
मन जानै सब बात, जानत ही औगुन करै।
काहे की कुसलात, कर दीपक कुंबै पड़ै।।
मन सागर मनसा लहरि, बूड़ै बहुत अचेतन।
कहहिं कबीर ते बांचि हैं, जिनके हृदय विवेक।।
मन दीया मन पाइये, मन बिन मन नहिं होइ।
मन उन्मन उस अंड ज्यूं, अनल अकासां जोइ।।
मन गोरख मन गोविन्दौ, मन ही औघड़ होइ।
जे मन राखै जतन करि, तो आपै करता सोइ।।
तन के जोगी सब करै, मन को करै न कोई।
सब विधि सहजे पाइये, जो मन जोगी होई।।
मन ऐसो निरमल भया, जैसा गंगा गीर।
पाछे-पाछे हरि फैर, कहत कबीर-कबीर।।
मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय।
तीन लोक संशय पड़ा, काहिं कहूं समझाय।।

जैसा मैंने कल कहा, माया कोई ब्रह्म के साथ जुड़ा हुआ दार्शनिक सिद्धांत नहीं है, वरन प्रत्येक मनुष्य के मन के साथ जुड़ी प्रक्रिया है। माया कोई अण्टालाजिकल, कोई स Ÿात्मक बात नहीं है, साइकोलाजिकल, मनोवैज्ञानिक बात है। इसलिए जो माया के सिद्धांत के संबंध में शास्त्रों की खोज करते रहेंगे, सिद्धांत को जमाते रहेंगे, तर्क और विचार करते रहेंगे, वे माया को जानने से चूक जाएंगे और जो माया को ही न जान पाया, वह ब्रह्म को कैसे जान पाएगा? जो भ्रम को ही न समझा, वह सत्य कैसे समझेगा? जिसने ठीक से अंधेरे को न पहचाना, उसके आलोक को पहचानने का भरोसा नहीं। भूल को ठीक से जान कर ही व्यक्ति सत्य के निकट पहुंचता है। जैसे-जैसे असत्य की पहचान बढ़ती है, वैसे-वैसे करीब आता है। और रास्ता नहीं है। असत्य को भलीभांति पहचान लेना कि असत्य है--और सत्य के द्वार खुल जाते हैं। सबसे पहली बात पहचानने की हैः भूल क्या है, संशय कहां है, भ्रांति कहां हुई है, भटके कहां हैं।
मंजिल की फिकर छोड़ो, भटकन को ठीक से समझ लो, मंजिल सामने आ जाती है। मत चिंता करो कि सत्य क्या है। तुम जान भी न सकोगे सत्य अभी। कोई उपाय नहीं है सत्य को जानने का, जब तक असत्य के साथ तुम जुड़े हो। जब तक तुम असत्य हो, सत्य को कैसे जान पाओगे? और स्वयं के भीतर सत्य को पाने की क्या विधि है? असत्य को पहले पहचानना पड़ेगा।
तुम जाते हो एक चिकित्सक के पास। वह इसकी फिकर करता कि स्वास्थ्य क्या है, वह इसकी चिंता करनी है कि बीमारी क्या है। वह इस बात की फिकर करता है कि बीमारी कहां है। वह बीमारी का निदान करता है। स्वास्थ्य की चिंता करना व्यर्थ है, बीमारी का ठीक निदान हो जाए, बीमारी पकड़ में आ जाए, तो बीमारी को नष्ट किया जा सकता है। और जब बीमारी नहीं रह जाती, तो जो शेष बचता है वही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य को सीधे पकड़ने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए तुम सारे शास्त्र देख डालो दुनिया में चिकित्सा के, स्वास्थ्य की कोई परिभाषा न पाओगे। स्वास्थ्य की कोई परिभाषा हो भी नहीं सकती। शब्दों में बंधने का उसे कोई उपाय भी नहीं है।

स्वास्थ्य शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। उसका अर्थ हैः स्वयं में जो स्थिति हो गया। आत्मस्थिति का नाम स्वास्थ्य है। अपने से जो भटक गया, उसका नाम अस्वास्थ्य है। जो खुद के केंद्र से च्युत हो गया वह बीमार है, और जो खुद के केंद्र पर वापस लौट आया, वह स्वस्थ है। स्वस्थ यानि स्व-स्थिति। लेकिन स्थित होना हो तो पहचानी पड़ती है बीमारी। निदान स्वास्थ्य का नहीं होता है, रोग का होता है। इलाज स्वस्थ का नहीं होता, रोग का होता है। और जब रोग नहीं होता, जब रोग शून्य हो जाता है, तब तुम निरोग हो जाते हो, तब तुम स्वस्थ हो जाते हो।
ब्रह्म को पाने का कोई उपाय नहीं है। ब्रह्म तो परम स्वास्थ्य है। माया को समझने का उपाय है, वह बीमारी है। और जैसे-जैसे निदान साफ होता जाए, जैसे-जैसे तुम्हारी आंखों माया को पहचानने लगें, वैसे-वैसे माया तिरोहित होने लगेगी।
एक बात और समझ लेना। चिकित्सक को तो निदान भी करना पड़ता है, फिर इलाज करना पड़ता है। लेकिन आत्मा की चिकित्सा में निदान ही इलाज है, निदान ही उपचार है। ठीक से पहचान लिया, मुक्त हुए, और कोई अलग से औषधि को जरूरत नहीं है। क्योंकि यह बीमारी केवल भ्रांति की है। यह ऐसे ही है, जैसे दूर रास्ते पर तुम आते हो अंधेरे में, राह के किनारे लगा हुआ एक वृक्ष का ठूंठ तुम्हें लगता है कोई आदमी खड़ा है, चोर-डाकू खड़ा है। तुम जैसे-जैसे करीब आते हो वैसे- वैसे भ्रांति मिटने लगती है। और अगर तुम्हारे हाथ में दीया हो, तो तुम जान लोगे कि ठूंठ है। फिर क्या तुम यह पूछोगे कि वह जो मेरी भ्रांति थी, कि आदमी खड़ा है, जब उससे कैसे छुटकारा पाऊं? नहीं, ठूंठ को पहचान लेने से ही, वह जो आदमी होने की भ्रांति होती थी उससे छुटकारा हो गया।
असत्य को ठीक से जान लेना, सत्य को पा लेने का मार्ग है। मार्ग भी नहीं, सत्य को पा ही लिया, जिसने असत्य को पहचान लिया। इसलिए पहले माया की बात कर रहे हैं कि माया क्या है।
पहला सूत्रः मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय। तीन लोक संशय पड़ा काहिं कहूं समझाय।।
और माया के संबंध में इतने सिद्धांत गढ़े गए कि भारत का पूरा अतीत-इतिहास माया के संबंध में सिद्धांतों से भरा है।
इसलिए कबीर कहते हैं, तीन लोक संशय पड़ा, काहिं कहूं समुझाय।
किसको समझाएं? लोग बड़ी चर्चा कर रहे हैं। बड़े तत्व विचार कर रहे हैं, माया के बड़े सिद्धांत गढ़ रहे हैं। तुम्हारा सिद्धांत गलत और मेरा ठीक, इसके लिए बड़े तर्क जुटा हैं, शास्त्रों का उल्लेख कर रहे हैं। किसको समझाऊंः तीन लोग संशय पड़ा।
और बात बड़ी सीधी और सरल है। माया को कहीं और खोजने जाने की जरूरत नहीं। मन माया तो एक है। मन का ही विस्तार माया है।
माया मनहिं समाय।
और माया को नष्ट नहीं करना पड़ता। जैसे तुमने पहचाना कि माया मन में ही समा जाती है। माया मन की विकृति है, मन की अप्राकृत दशा है।
क्या है बीमारी?
बीमारी के लिए भी एक चीज जरूरी है कि तुम जिंदा रहो। मेरे हुए आदमी को कोई बीमारी नहीं होती। मरे बड़े लाभ में हैं; बीमारी का भय भी नहीं होता; चिकित्सक के द्वार पर उन्हें दस्तक भी नहीं देनी पड़ती; इलाज की परेशानी से भी नहीं गुजरना पड़ता। मरों का लाभ बड़ा है। अब दोबारा वे मर भी नहीं सकते, इसलिए मरने का कोई भय नहीं होता।
बीमारी के लिए एक जरूरी है कि स्वास्थ्य ही जीवन है। बीमारी बिना जीवन के नहीं घट सकती। इसका यह अर्थ हुआ कि बीमारी जीवन की ही एक विकृति है। जीवन कही कहीं उलझ गए, जीवन ही कहीं भटक गया। जीवन की धारा ही सागर की तरफ न जा कर, मरुस्थल की तरफ मुड़ गई--पर है धारा जीवन की ही--चाहे मरुस्थल चले जाओ, चाहे सागर चले जाओ। मरुस्थल में भटकाव हो जाएगा, मरुस्थल सोख लेगा जीवन की ऊर्जा, को, तुम्हें निर्वाण कर देगा, अशक्त कर देगा। कोई उपलब्धि न होगी, तुम सिर्फ भटकोगे और भ्रष्ट और नष्ट होओगे। सागर में उपलब्धि है।

सोचना जरूरी है। मरुस्थल में भी नहीं खो जाती है, सागर नहीं मिलता। सागर में भी नदी खोती है, लेकिन सागर को पा लेती है। खोना दोनों तरफ होता है। दोनों हालत में मिटना पड़ता है। लेकिन एक मिटने में कोई उपलब्धि नहीं है, दूसरे मिटने में सभी कुछ उपलब्ध हो जाता है।
संसार में भी आदमी खो जाता है, परमात्मा में भी खोना पड़ता है। लेकिन संसार में खो जाना ऐसे है, जैसे नदी मरुस्थल में खो गई। सूखती है, सड़ती है, चीखती है, पुकारते हैं, मुक्त होना चाहती है, लेकिन कोई मार्ग नहीं मिलता। हजार धाराओं में बंट जाती है। मरुस्थल सोख लेता है। न कोई मंजिल आती है, न कोई उपलब्धि, न वह नृत्य घटित होता, जो सागर से मिलने के समय घटित होता है। वह परम समाधिस्थ अवस्था नहीं घटती; ऐसे ही खो जाती है, मुक्त खो जाती है, बेचैनी में खो जाती है, विषाद में खो जाती है।
सागर में भी खोती है नदी खोना तो एक जैसा है, लेकिन उस खोने का मजा और है! उस खोने में आनंद ही और है! उस में दुख और पीड़ा नहीं है, क्योंकि यहां नदी खोती है, वहां नदी बड़ी होती है। वस्तुतः खोना नहीं है वह, पाना है। क्योंकि नदी मिट जाएगी नदी की तरह, एक क्षुद्र संकीर्ण धारा ही तरह; किनारे खो जाएंगे, पुराना रूप, नाम खो जाएगा--विराट हो जाएगा लेकिन उसकी जगह! नदी सागर हो जाएगी। तब तक क्षुद्र थी, अब विराट हो जाएगी। तब तक बंधी थी, अब अनबंधी हो जाएगी। तब तक सीमा में थी, अब असीम हो जाएगी।
मनुष्य भी दो तरह खोता है, जीवन की नदी भी दो तरह खोती है। एक तो माया। माया का अर्थ है मरुस्थल--जहां तुम करते हो बहुत हो, पाते कुछ भी नहीं; दौड़ते तो बहुत हो, पहुंचते कहीं भी नहीं; शोरगुल तो बहुत मचाते हो, लेकिन जीवन में कोई संगीत पैदा नहीं होता; संघर्ष बहुत करते हो, विजय हाथ नहीं आती; हार ही हार हाथ लगती है।
पराजय संसार की कथा है! वहां जो भी जाता है, हारा हुआ लौटता है। वहां मिटना तो है, लेकिन वह मिटना सड़ने जैसा है।
एक बीज को पत्थर पर रख दो, वहां भी वह मिटेगा--बिना अंकुर हुए। उसी बीज
को भूमि में दबा दो, वहां भी मिटेगा--लेकिन यहां मिटेगा और नया अंकुर आ जाएगा। अंकुर की भांति जीयेगा, बीज की भांति मिटेगा--विराट वृक्ष हो जाएगा। तुम बीज को सड़ा भी सकते हो, वही माया है। तुम बीज को वृक्ष भी बना सकते हो, वही ब्रह्म है। दोनों तुममें छिपे हैं।
माया तुम्हारा ही भटकाव है। और ब्रह्म तुम्हारा ही मार्ग पर आ जाना है। बीमारी भी तुम्हारी है, स्वास्थ्य भी तुम्हारा है। बीमारी का निंदा कर लेना जरूरी है, ताकि तुम भटक न सको।
मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय।
और जब तुम जान लेते हो, तो क्या होता है माया का? कांह खो जाती है माया?
वह जो तुम्हारी शक्ति भटक रही थी, वह भटकती नहीं, मार्ग पर आ जाती है, सागर की तरफ बहने लगती है। सारी माया मन में ही समा जाती है।
तुम क्रोध करते हो, क्रोध माया है। क्योंकि उससे तुम मिटोगे तो, पाओगे कुछ भी नहीं। इससे तुम माया की परख की कसौटी बना लो कि जिससे तुम्हारे भीतर कुछ मिटता हो, बनता कुछ भी न हो; जिससे तुम्हारे भीतर विध्वंस तो होता हो, सृजन बिल्कुल न होता हो; जिससे तुम्हारे भीतर बीज सड़ जाता हो, लेकिन अंकुर न निकलता हो; नदी नष्ट हो जाती हो, सागर न बनती हो। इसे तुम कसौटी बना लो।
विध्वंसात्मक वृŸा बीमारी है। स्वास्थ्य सृजनात्मक है। तुम क्रोध करते हो, क्रोध में शक्ति जाती है, लेकिन मिलता क्या है? सिवाय विषाद के कुछ भी हनीं मिलता है। तुम रोते हो, चीखते- चिल्लाते हो, उदास होते हो, उदासी में शक्ति खोती है मरुस्थल में--पाते क्या हो? उदासी से कहीं कोई फूल खिलते हैं। उदासी से कहीं जीवन में कोई नृत्य आता है! तुम घृणा करते हो, तब तुम शक्ति तो व्यय कर रहे हो, मिलेगा क्या? निष्पिŸा क्या है? हमेशा इसे कसौटी की तरह जांचो कि जो मैं करने जा रहा हूं, वह मरुस्थल में जाएगा, या सागर में, और अगर मरुस्थल में जाता हो, तो सजग हो जाओ। वह यात्रा-पथ नहीं है, वह भटकाव है। क्या होगा अगर तुम क्रोध न करोगे? तो जो क्रोध की शक्ति बचेगी, वह कहां जाएगी? वह मन में समा जाएगी। और जब तुम क्रोध से बच जाते हो, और क्रोध में नष्ट होने वाली शक्ति उन्मुक्त हो जाती

है, और मन में वापस समा जाती--उसी लौटती हुई शक्ति का नाम ही करुणा है। जो शक्ति खो रही थी मरुस्थल में, वह क्रोध थी। जो शक्ति मरुस्थल में खोने से रुक गई और स्वयं में लीन हो गई, सागर में डूब गई, वही करुणा है।
क्रोध और करुणा एक ही शक्ति के दो नाम है। क्रोध उसी शक्ति की रोग की अवस्था है। करुणा उसी शक्ति की स्वास्थ्य की अवस्था है। घृणा और प्रेम ही शक्ति के दो ढंग हैं। जब घृणा की शक्ति वापस तुममें प्रत्येक कृत्य में लीन हो जाती है, तो अपार प्रेम का उदय होता है। बुद्धों से बड़े प्रेमी खोजना कठिन है। क्राइस्ट और कृष्ण से बड़े प्रेमी खोजना कठिन है। घृणा लीन हो गई, मरुस्थल में नहीं खोई, सागर पा लिया। बीज को भूमि मिल गई।
मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय।
तीन लोक संशय पड़ा, काहिं कहूं समझाय।।
और कबीर कहते हैं कि लोग बड़े विवाद कर रहे हैं, और लोग बड़े शास्त्रार्थ में लगे हैं, और लोग यह सिद्ध करते हैं, और वह असिद्ध करते हैं। और मन माया तो एक है। और वे देखते ही नहीं कि यह तुम्हारा ही होने का ढंग है। निश्चित ही गलत ढंग है--पर तुम्हारा ही होने का ढंग है। माया तुम्हारे गलत होने का ढंग है; ब्रह्म तुम्हारे ठीक होने का ढंग है। और ध्यान रहे, ब्रह्म होने की चेष्टा मत करो; क्योंकि उसे सीधा खोजने का कोई उपाय नहीं। तुम सिर्फ माया से बच जाओ, और ब्रह्म मिल जाएगा। इसलिए समस्त साधना निषेध है--माया का, रोग का, विकृति का। जब विकृति नहीं होती, तो शक्ति अपने-आप सुकृत हो जाती है।
बेढ़ा दीन्हों खेतको, बेढ़ा खेतहि खाय। तीन लोक संशय पड़ा काहिं कहूं समुझाय।।
खेत के चारों तरफ बेढ़ा लगाते हैं--खेत की रक्षा के लिए। मन भी बड़ा है तुम्हारी रक्षा के लिए लेकिन तुम ऐसी बाड़ भी लगा सकते हो कि वह पूरे खेत को खा जाए। तुम ऐसी बाड़ भी लगा सकते हो कि वह पूरे खेत पर छा जाए। तो बचाए तो नहीं, उलटा नष्ट कर दे। बाड़ थी खेत को बचाने को लेकिन तुम ऐसी बाड़ भी लगा सकते हो कि बाड़ का जंगल हो जाए, खेत में जगह न बचे कुछ और फसल बोने को।
मन बाड़ है। उपयोगी है--बाड़ की तरह। लेकिन अगर तुम्हें खा जाए, अगर तुम
मन ही मन हो जाओ, तो बाड़ का क्या प्रयोजन; खेत ही न बचे!
ऐसा अक्सर हो जाता है। और माया का दूसरा सूत्र है।
जीवन में बाड़ खेत खा जाती है और लोगों को पता नहीं चलता। समझो! जीवन को चलाना है तो रोटी की जरूरत है; छाया की भी जरूरत है। एक तरह की सुरक्षा भी चाहिए, सुविधा भी चाहिए; बिल्कुल आवश्यक है। लेकिन फिर एक आदमी जीवन भर मकान ही बनाने में लगा रहता है, मकान को ही बड़ा करने में लगा रहता है। वह वक्त ही नहीं आता, जब वह रहता। मकान में निवास करता वह समय ही नहीं आ पाता। रोटी चाहिए, कपड़े चाहिए, तो थोड़ा धन तो चाहिए ही होगा। लेकिन फिर एक आदमी धन की ही राशि लगाने में जुड़ जाता है। फिर वह भूल ही जाता है। कि धन एक बाढ़ थी--धन खेत हो गई; बाढ़ खेत को खा गई!
धन की एक जरूरत है। जरूरत की एक सीमा है। कोई आवश्यकता असीम नहीं है। वासना असीम है। आवश्यकताएं तो बड़ी छोटी हैं--रोटी चाहिए, पानी चाहिए, कपड़ा चाहिए। अगर दुनिया में सिर्फ आवश्यकताएं हो तो एक भी आदमी भूखा न हो, एक भी आदमी दीन न हो, दरिद्र न हो। क्योंकि आवश्यकताएं तो सीमित हैं! पशु- पक्षियों की पूरी हो जाती हैं, कैसा आश्चर्य कि आदमी की पूरी नहीं होती! वृक्ष अपनी आवश्यकता पूरी कर लेते हैं, जिनके पास पैर भी नहीं हैं कहीं जाने को। एक ही जगह खड़े रहते हैं। और आवश्यकताएं हो जाती। पशु-पक्षी, जिनके पास बड़ी बुद्धि, विश्वविद्यालय का शिक्षण नहीं, वे भी पूरी कर लेते हैं अपनी आवश्कताओं को। आदमी आवश्यकताओं को क्यों पूरी नहीं कर पाता? लगता है कहीं कुछ भूल हो गई।
आवश्यकताएं ठीक हैं, वासना खतरनाक है। फर्क क्या है? आवश्यकता तो बाड़ है; वासना पूरा खेत हो गई। तुम्हारी जरूरतें तो पूरी हो सकती हैं, लेकिन तुम्हारी कामनाएं पूरी नहीं हो सकती।
जरूरत पर रुक जाना समझदारी है। कामना में बढ़ते जाना पागलपन है। फिर उसका कोई अंत नहीं। देखो लोगों की तरफ।

मैं एक आदमी को जानता हूं, जिसके सात मकान हैं। और कई हजार रुपए महीने
का किराया आता है। लेकिन उस आदमी ने एक छोटी-सी खोली ले ली है किराए की, उसमें रहता है! एक साइकिल है उस आदमी के पास और वह है। साइकिल का उपयोग वह किराए की वसूली के लिए करता है। खोली में रहता है, खाना होटल में खा लेता है। उस आदमी के एक बंगले में मुझे रहने का मौका मिला। तो हर महीने एक तारीख को वह आ कर अपना किराया ले जाता। जो मित्र उसके बंगले में रहते थे, जिनका मैं मेहमान था, उनसे मैंने पूछा कि यह आदमी कौन है! वे हंसने लगे, उन्होंने कहा, यह मकान-मालिक है, उसके कपड़ों में छेद है। साइकिल भी न मालूम पहला संस्करण है। वह दूर से आता है तो पता चलता है, खड़बड़-खड़बड़ चला आ रहा है। उसको देख कर कोई भी नहीं कह सकता कि इस आदमी के पास सात मकान हैं। सात मकानों की अंदाजन कीमत बीस लाख रुपया है। हजारों रुपए वह किराया वसूल करता है, लेकिन अपने लिए वह एक खोली में रहता है, पांच रुपए महीने किराए की? इस आदमी के जीवन को बाड़ खा गई।
एक बार ऐसा हुआ कि मेरे सामने एक डाक्टर रहते थे। मिलिटरी के रिटायर्ड डाक्टर थे। उन्होंने कभी शादी नहीं की। मिलिटरी में चोट लग जाने की वजह से वे समय के पहले रिटायर हुए। तो उनको कोई मिलिटरी से पेन्शन मिलती थी, काफी अच्छी। कोई लाख रुपए का बंगला था, और कोई दो लाख रुपया उनके बैंक में जमा था; लेकिन उनका कुल भोजन; चाय और पापड़! बस वे उसी पर जीते थे। बीमार पड़े, हार्टअटैक हुआ, और उनकी बोली बंद हो गई। तो उनका तो कोई भी नहीं था। आधे मकान को उन्होंने किराए पर दे रखा था। तो किराएदार ने मुझे आ कर कहा--मैं सामने ही रहता था कि डाक्टर साह का मुंह बंद हो गया है, वे बोल नहीं पा रहे हैं। और लगता है बहुत संकट की अवस्था में हैं। तो मैं गया। तो मैंने उनसे कहा कि डाक्टर को बुलाऊं? तो उन्होंने इशारा किया कि रुपये कौन देगा! तो मैंने कहा, उसकी आप चिंता न करें। डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने कहा, यह तो ज्यादा संकट की अवस्था है, और इन्हें इसी वक्त अस्पताल ले जाना पड़ेगा। तो एम्बुलैन्स बुलाई। एम्बुलैन्स में चढ़ने के पहले उन्होंने मुझसे कहा कि ताला लगा कर चाबी मुझे दे दें। तो सामने उनके उन्होंने ताला लगाया--बोलती बंद है, और घंटे भर बाद वे मर गए! लेकिन उन्होंने चाबी सामने ले कर रखवा ली। और जब वे मर गए तो उनकी जेब में पांच हजार रुपए थे! और मुझसे उन्होंने कहा कि डाक्टर की फीस कौन दगा! बोल भी नहीं सकते थे!
बाड़ खेत बन जाती है।
मन उपयोगी है; अगर समझ हो तो मन बड़ा उपयोगी है। मन राडार-यंत्र है। हवाई जहाज में यात्रा करो, तो राडार लगा होता है, वह दो सौ मील दूर तक की खबर देता रहता है। चित्र आ जाते हैं, क्योंकि हवाई जहाज तो इतना तीव्र यान है कि अगर दो सौ मील पहले पता न चले, तो टक्कर ही हो जाए। तो राडार दो सौ मील तक--बादल है, कोई यान है, कोई पक्षी है--परदे पर फोटो आते रहते हैं। सौ मील पहले ही तुम्हें बचाव करना पड़ेगा क्योंकि कोई भी खतरा है, तीव्र गति इतनी है कि तुम अगर दो सौ मील पहले नहीं बचे, तो खतरे में पहुंच जाओगे।
मन एक राडार यंत्र है, जिससे तुमको सब तरफ की झलक मिलती है। बड़ा उपयोगी है--समझदार के हाथों में; नासमझ के हाथ में बड़ा खतरा है। नासमझ मन का उपयोग ही नहीं कर पाता, मन ही उसका उपयोग कर लेता है। गुलाम मालिक हो जाता है, मालिक गुलाम हो जाता है। यही तुम्हारी दशा है। गृहस्थ की यही मेरी परिभाषा है कि जिसकी बाड़ खेत को खा गई। और संन्यासी की मेरी यही परिभाषा है--खेत खेत है, बाड़-बाड़ है। न तो खेत बाड़ को खाएगा, न बाड़ खेत को खाएगी; क्योंकि दोनों जरूरत है। बाड़ चाहिए, सुरक्षा चाहिए खेत को।
बाड़ की तरफ मन बड़ा उपयोगी है। उसकी जीवन में बड़ी जरूरत है। लेकिन रुक जाने की समझ होनी चाहिए, कहां रुक जाए।
धन आवश्यक है, लेकिन धन को ही इकट्ठे करते रहना पागलपन है। मकान जरूरी है, लेकिन जीवन भर मकान बनाते रहना, और मकान में रहने की सुविधा ही न मिल पाए, समय ही न मिल पाए और जीवन गंवा देना, पागलपन है। कपड़े चाहिए लेकिन एक आदमी कपड़े ही इकट्ठा करता रहे, कपड़ों में ही खो जो।
अगर ठीक-ठीक आदमी विवेकपूर्ण ढंग से जिए, तो मन से ज्यादा कुशल कोई यंत्र नहीं है। अभी तक कोई यंत्र वैज्ञानिक नहीं बन पाए, जो मन के मुकाबले हो। दूर देख सकता है, पास देख सकता है; परिस्थिति के गणित को पूरा समझ सकता

है; सुरक्षा के उपाय खोज सकता है; जीवन को बचाने की हजार विधियां बना सकता है। सब आवश्यक है। लेकिन, यही जीवन नहीं है। द्वार पर आप एक द्वारपाल को खड़ा कर देते हैं। जरूरी हैं। लेकिन आप खुद ही द्वारपाल की तरह खड़े रहें, तो आप पागल हैं। फिर किसकी रक्षा कर रहे हैं?
लोग अक्सर जीवन की व्यवस्था जुटाने में ही जीवन को गंवा देते हैं। जीने का तो मौका ही नहीं आ पाता। तुम रोज टालते जाते हो कि जीएंगे कल, इंतजाम पहले कर लें। इंतजाम कभी पूरा नहीं होगा। जिओगे कैसे?
ध्यान रहे, जिसे जीना है, उसे अधूरे इंतजाम में जीने की कला खोजनी पड़ती है। इंतजाम तो कभी पूरा नहीं होगा; क्योंकि मन बताए जाएगा; यह त्रुटि है, यह त्रुटि है, यह और कर लो, यह और कर लो। मन सूचना दिए चला जाएगा कि अभी रहने का वक्त नहीं आया; जब ताजमहल न बन जाए, तब तक रहोगे कैसे! अगर मन की ही मान कर चलते रहे, तो तुम्हें जीवन का अवसर न मिलेगा।
जीवन छोटा है। मन की कामनाओं का कोई अंत नहीं है। आवश्यकताएं सीमित हैं, वे सब की पूरी हो सकती है।
अब यहां एक बड़ी मजेदार घटना घटती है। या तो आदमी आवश्यकताओं को वासना बना लेता है, तब उनका कोई अंत नहीं है; और जब इससे परेशान हो जाता है, तो आवश्यकताओं को भी काटने में लग जाता है, उसका भी कोई अंत नहीं है।
दो तरह के लोग हैं दुनिया में। दो तरह के पागलों से बनी है यह पृथ्वी।
एक पागल हैं, जिन्होंने आवश्यकताओं में ही सब कुछ गंवा दिया है, फिर जब ये पागल थोड़े परेशान हो जाते हैं अपनी इस दौड़ से तो दूसरा पागलपन पैदा होता है--वह इन्हीं का शीर्षासन करता हुआ रूप है--वे आवश्यकताएं काटने में लग जाते हैं। वह बराबर भोजन न करेगा, उपवास करेगा। या तो तुम भोजन ही भोजन करोगे, और या तुम उपवास करोगे। क्या बीच में तुम्हारे रुकने का कोई भी उपाय नहीं? क्या संतुलन असंभव है?
मुल्ला नसरुद्दीन बीमार था--खांसी, अस्थमा! गया डाक्टर के पास, तो डाक्टर ने कहा, उसमें बीमारी कुछ नहीं है; तुम्हारे कपड़े से, मुंह से, धूम्रपान, सिगरेट की बात आती है। कितनी सिगरेट पीते हो?
उसने कहा, ज्यादा नहीं, यही कोई दस बारह।
डाक्टर ने कहा, बीमारी कुछ भी नहीं है। तुम्हारे फेफड़ों में निकोटिन इकट्ठा होता जा रहा है, सिगरेट का, इसको कम करना पड़ेगा। इलाज की कोई जरूरत नहीं है, धीरे-धीरे सिगरेट कम कर दो। तो ऐसा करो कि भोजन के बाद एक पी लिया करो। फिर बाद में, एक महीने बाद मुझे बताना, फिर धीरे-धीरे सोचेंगे। महीने भर बाद नसरुद्दीन आया तो डाक्टर पहचान ही न पाया; जैसे सारे शरीर पर सूजन चढ़ गई हो, वह भी थोड़ा घबड़ाया। उसने कहा, क्या सिगरेट कम करने से ऐसी अस्वस्थ हो गई? और तुम पहचान में ही नहीं आते।
नसरुद्दीन ने कहा, हुआ तो सिगरेट की वजह से ही सब उपद्रव है।
पूछा डाक्टर ने क्या तुमने, मैंने जैसा कहा था, वैसा अनुकरण किया? उसने कहा, उसी अनुसरण में तो फंसा हूं। अब दिन में दस-बारह बार भोजन करना पड़ता है।
या तो तुम भोजन के पीछे पागल रहोगे--और अगर कभी इस पागल पन से तुम बचे
तो तत्क्षण दूसरा पागलपन खड़ा है।
पागल के भी अपने तर्क होते हैं। पागल भी बड़ा संगत होता है अपने तर्कों में। और एक बार तुमने मन के तर्क को मानना शुरू कर दिया, तो पागलपन बदलेंगे। एक पागलपन से दूसरा पागलपन! लेकिन तर्क वही रहेगा।
क्या है तर्क मन का?
मन का तर्क यह है कि जब एक बार भोजन करने से ऐसा मजा आता है, तो बीस बार करने से बीस गुना आएगा। गणित साफ है। लेकिन जिंदगी अगर गणित होती तो सब ठीक होता; जिंदगी गणित नहीं है। एक बाद भोजन करने से फायदा होता है, बीस बार भोजन करने से बीस गुना फायदा नहीं होता। फिर अगर तुमने बीस गुना भोजन किया, तो तुम आज नहीं कल परेशान हो जाओगे, बीमार हो जाओगे, रुग्ण हो जाओगे, सारा शरीर इनकार करेगा, भोजन को फेंकना चाहेगा। जब तुम ऊब जाओगे, तब तुम कहोगे कि भोजन से इतनी दिक्कत होती है, उपवास ठीक है, भोजन बंद ही कर दो। अब भी गणित साफ है कि जब भोजन से इतना नुकसान हो रहा है और परेशानी हो रही है,

तो भोजन ही मूल जड़ है दुखी की। इसलिए सारी दुनिया में उपवास के पंथ हैः बंद करो भोजन। अब तुम दूसरी अति पर जा रहे हो, वहां भी दुख पाओगे।
मध्य में रुक जाना, मन से मुक्त होने की प्रक्रिया है।
मन जीता है अतियों में, एक्स्ट्रीम में--घड़ी के पैण्डलुम की भांति है;
एक कोने से दूसरे कोने पर जाता है, बीच में नहीं रुकता। बीच में रुका तो घड़ी रुकी। जिस दिन तुम बीच में रुकोगे, उस दिन मन की घड़ी भी रुक जाएगी। उसी दिन माया रुकती है। और माया की सारी तड़पन तुम में ही समा जाती है। और उस तड़पन से बड़े विराट सौंदर्य का जन्म होता है। बुद्धत्व का जन्म होता है। उससे कबीर पैदा होता है, कृष्ण, क्राइस्ट पैदा होते हैं।
बेढ़ा दीन्हों खेत को, बेढ़ा खेतहि खाय। तीन लोग संशय पड़ा, कहूं समुझाया।।
मन बड़ा उपयोगी है--उपयोगी करो; मालिक बना लोग तो बड़ा खतरनाक है। मन की
मत सुनो। मन की सलाह को मान के मत चलो। सुनो जरूर, लेकिन गुनो खुद। मन कहे-- सुनो; लेकिन गुनो खुद। और अगर तुम निर्णय की क्षमता जमा लो भीतर, तो मन तुम्हें नुकसान न पहुंचा पाएगा। तब तुम न तो अति भोजन करोगे और न अति उपवास करोगे; तुम सम्यक भोजन पर ठहर जाओगे। और सम्यक भोजन बड़ी ही अनूठी बात है; न शरीर भूखा, न ज्यादा भरा। और तब जीवन मग सब तरफ सम्यकत्व का उदय होगा।
जहां-जहां समता आएगी, जहां-जहां तुम सम्यक होओगे, बीच में रुकोगे, वहीं-वहीं सम्यकृत्व का उदय होगा। या तो तुम दिन-रात बोलते रहे हो या फिर कहते हो, हम मौन में रहेंगे। क्या सम्यक होना असंभव है? या तो तुम संसार में रहोगे, या हिमालय में जाओगे! क्या संसार में ऐसे नहीं रहा जा सकता कि जैसे संसार बाहर हो और भीतर न हो? तब सम्यकत्व उदय होता है। गुजरना पड़ेगा संसार से, लेकिन ऐसे गुजरो कि संसार की एक रेखा भी न पड़े।
कबीर ने कहा है, बहुत जतन करके मैंने चदरिया ओढ़ी संसार की। खूब जतन से ओढ़ी चदरिया, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं। जैसा पायी थी, वैसी ही वापिस लौटा दी; न इधर गया, न इधर; न गंदी की, और न सफाई की--ज्यों की त्यों दीन्ही चदरिया, खूब जतन कर ओढ़ी।
जतन की ही सारी बात है। जतन का मतलब होता हैः होश, समझ, समम्यत्व बोध। कहते हैं कबीर, किसको समझाऊं, कोई सुनने को नहीं है।
मेरी भी ऐसी प्रतीति है। अगर आपको अति को बात कही जाए तो आप समझने की तैयार हैं।
अगर तुमसे मैं कहूं, उपवास करो--तुम्हारी समझ में आता है। तुमसे मैं कहूं, सम्यक भोजन करो--तुम्हारी समझ में नहीं आता है। तुमसे अगर मैं कहूं छोड़ दो घर, यह संसार दुख है--समझ में आता है; क्योंकि इसके पहले तुम एक गति का पालन कर रहे हो कि भोग संसार, यही है आनंद। अब वह अति चुक गई। अब तुमने काफी दुख उस अति से पा लिया। अब तुम करीब-करीब तैयार हो। कोई तुम्हें कह दे कि छोड़ दो सब, भागो यह तो सब व्यर्थ है, असार है, तो तुम भाग चड़े होओ। इसलिए तो दुनिया में भगोड़ों की इतनी जमाते हैं। वे भगोड़ों की जमातें तुम्हारे कारण हैं। एक गति जब थक जाता है तो तुम दूसरी अति पर जाना चाहते हो, इसलिए भगोड़ों की जमातें हैं।
तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी सिर्फ पलायनवादी हैं। वे तुम्हारे रूप हैं। तुम घड़ी में बाएं पेण्डुलम तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी सिर्फ पलायनवादी हैं। वे तुम्हारे रूप हैं। तुम घड़ी के बाएं पेण्डलुम हो, तो वो दाएं हैं। तुम स्त्रियों के पीछे भाग रहे हो, वे स्त्रियों से भाग रहे हैं! तुम धन इकट्ठा कर रहे हो, वे धन छूने से डरते हैं!
न तो धन प्रेम के योग्य है, और न भय के योग्य; न तो धन को इकट्ठा करने में कोई समझ है, और न धन से भयभीत हो जाने में कोई समझ है--धन का उपयोग करने की बात है। और धन का सम्यक उपयोग जो करना चाहता है, वह न तो धन को इकट्ठा करेगा, और न धन को छोड़कर भाग खड़ा होगा। क्योंकि धन तो साधन है। साधन का सम्यक उपयोग हो सकता है।
मेरी भी अनुभव यह है, क्योंकि मेरी सारी चेष्टा है तुम्हें बीच में रोक लेने की। तो तुम्हीं मेरी बात समझ में नहीं आती। तुम्हें अति चाहिए। तुम भोग चुके हो एक अति, अब तुम दूरी पर जाने के लिए तैयार हो। और मैं कहता

हूं, बीच में रुक जाओ। रुकना तुम्हें आता ही नहीं, दौड़ना ही आता है। दिशा कोई भी हो, दौड़ने के लिए तुम तैयार हो। और मैं कहता हूं, तुम बैठ जाओ, दौड़ो मत।
इसलिए कबीर कहते हैं, तीन लोक संशय पड़ा, काहिं कहूं समझाय।
कबीर एकदम मध्यमार्गी हैं। कबीर सम्यक्ति हैं। उनका सम्यकत्व समझने जैसा है। रोज बाजार जाते हैं, रोज कपड़ा बुनते हैं, रोज बाजार में बेचते हैं; लेकिन सांझ जो भी बचता है, उसे बांट देते हैं। संसार छोड़ा नहीं, लेकिन फिर भी संसार को पकड़ा नहीं है। यही कला है। संसार छोड़ा नहीं, क्योंकि कपड़ा बुनते हैं, दुकान पर जाते हैं, कपड़ा बेचते हैं, धन कमाते हैं, धन लाते हैं, घर की जरूरतें पूरी होती हैं; सांझ को जो बचता है, बांट देते हैं। रात संन्यासी हैं, दिन गृहस्थ हैं।
तुम्हारे संन्यासी दिन में संन्यासी, रात गृहस्थ; ऊपर-ऊपर संन्यासी, भीतर-भीतर गृहस्थ। कबीर ऊपर-ऊपर गृहस्थ, भीतर-भीतर संन्यासी।
और जिंदगी हर ची में अति है। और मन गति का बड़ा लोलुप है। सम्यकत्व मन
की मृत्यु है--संतुलन।
मन जानै सब बात, जानता ही औगुन करै।
काहे की कुसलात, कर दीपक कुंबै पड़े।।
यह वचन बड़ा बहुमूल्य। इसे कंठस्थ ही नहीं, हृदयस्थ कर लेना।
मन जाने सब बात, जानत ही औगुन करे।
ज्ञान से कुछ भी होता नहीं, क्योंकि मन तो सब जानता ही है। फिर जान कर
भी करता तो उलटा ही है।
तुम्हें बिल्कुल पता है कि क्रोध बुरा है, पर करते तो तुम क्रोध ही हो। तुम्हें भलीभांति पता है कि घृणा पाप है, करते तो तुम घृणा ही हो। तुम्हें भलीभांति पता है कि लोभ में आदमी फंसता है, बंधता है, कारागृह बन जाता है, फिर भी करते तो तुम लोभ ही हो।
मन जानै सब, जानत ही औगुन करे। कहो की कुसलात...
फिर यह मन की कुशलता कैसी!
कर दीपक कुंबै पड़े...
हाथ में दीया था और कुएं में पड़े हो! दीया झूठ होगा। कुआं असली है, झूठे दीये काम न पड़ेंगे। इसलिए कबीर कहते हैं, काहे कि कुसलात।
पंडितों को देखो! जीवन तो उनका वैसा ही है, जैसे अज्ञानियों का--र Ÿा भर भी तो भेद नहीं है। इतना शायद भेद हो कि अज्ञानी छिपाने में इतने कुशल नहीं जितने पंडित छिपाने में कुशल हैं। पर जीवन में भेद नहीं है। वही क्रोध है, वही माया है, वही मोह है, वही लोग--कोई अंतर नहीं। यह ज्ञान बासा और उधार है, अन्यथा ज्ञान अग्नि की भांति है। जैसे सोने को डाल दो आग में, निखर कर निकल आता है, शुद्ध हो जाता है--ऐसे ही ज्ञान की अग्नि है, जो भी उसमें अपने मन को डाल देगा, मन शुद्ध होगा, निखर आएगा। लेकिन ज्ञान बासा भी हो सकता है, उधार भी हो सकता है। तब ज्ञान अग्नि नहीं है, तब ज्ञान राख है। कभी अग्नि वहां थी, अब सिर्फ राख है।
अभी मैं तुमसे जो कह रहा हूं यह आग है; मेरे मरने के बाद यह राख होगी।
और तभी तुम सुनोगे नहीं, मरने के बाद बड़ा विचार करोगे। तब यह राख होगी। फिर तुम राख को लपेट कर अवधूत बन कर बैठ जाना। लेकिन इससे तुम्हारी जिंदगी न बदलेगी।
राख को लपेटे साधु तुमने देखे हैं? आग बदलती है, राख नहीं। रख तो उस जगत है, जहां अभी आग थी। लेकिन अतीत से थोड़े ही क्रांतियां घटित होती हैं; क्रांतियां वर्तमान में घटित होती हैं। अब तुम महावीर की राख में कितना ही लपेटो अपने को, तुम्हारा मन जलेगा नहीं। अब तुम बुद्ध की राख को कितना ही ढोओ--अस्थि-कलश हैं, प्यारे हैं, लेकिन उनसे कोई क्रांतियां नहीं होतीं। जीवित गुरु खोजना जरूरी है, तो ही, तो ही जीवित अग्नि है।
अग्नि भीतर हो, तो ज्ञान के विपरीत जाना असंभव है। तब तुम जानते हो, वही तुम्हारा जीवन है। तब ज्ञान ही आचरण है। अगर तुम्हें पता चल गया कि क्रोध व्यर्थ है, तुम कैसे क्रोध कर सकोगे? लेकिन यह तुम्हें पता नहीं चला, यह दूसरे कहते हैं। बुद्ध, महावीर, कृष्ण कहते हैं कि क्रोध बुरा है। यह तुमने सुना है। यह तुम्हारी आंख अनुभव नहीं है, यह तुम्हारे कान का

संग्रह है। और, ज्ञान और ज्ञान में इतना ही अंतर है। एक ज्ञान है, जो कान से आता है--श्रवण से; और एक ज्ञान है, जो दर्शन से आता है--आंख में। माया और ब्रह्म में चार अंगुल का फासला है--कान और आंख का। कान से जो जाए, वह थोथा; अपने अनुभव से आए, वही वास्तविक। जानते तो तुम सब हो। कबीर कहते हैं, मन जानै सब बात। बताने को कुछ है भी नहीं मन को। मन कहता है, सब मुझे पता है-- क्या मुझे समझाओगे? क्या समझने की जरूरत है? सब मैंने पढ़ा है।
जानत ही औगुन करे।
लेकिन, आचरण जीवन का व्यवहार तो ठीक वैसा ही है, जैसा अज्ञानी का हो। जीवन तो सुगंध तो ज्ञान की नहीं आती। जीवन से गंध तो अज्ञान की ही हुआ रही है। लेकिन मन में ज्ञान भरा हुआ है। पंडित और ज्ञानी का यही भेद है। पंडित में तुम दुर्गंध पाओगे, शब्दों के अतिरिक्त वहां कुछ भी नहीं है। ज्ञानी में एक सुगंध है। क्योंकि वह जो भी कह रहा है, वह उसका अपना जाना हुआ है। ध्यान रहे, सत्य अपना ही हो सकता है, उधार नहीं। किसी और से ले कर सत्य
को ढोने का कोई उपाय नहीं है। न उसकी चोरी की जा सकती है, न बाजार में से खरीदा जा सकता है, न किसी से भीख में लिया जा सकता है। सत्य को स्वयं ही पाना होता है। जो स्वयं मिल जाए, वही तुम्हारे जीवन को बदलेगा।
मन जानै सब बात, जानत ही औगुन करे। काहे की कुसलात... ।
पांडित्य, ज्ञान, मन की समझ का क्या मूल्य है, जब अवगुण जारी ही रहते हैं? इस कुशलता का क्या करोगे? यह कुशलता दीपक नहीं बनाते। यह कैसा दीपक, यह कैसी कुशलता?
कर दीपक कुंबै पड़े? हाथ में दीया लिए थे। और गिर गए कुएं में!
रामकृष्ण कहते थे, चील आकाश में बड़े ऊपर उड़ती है। लेकिन इससे भ्रांति में मत पड़ना, उसकी नजर तो घूरे पर मरे हुए चूहे पर लगी रहती है। उड़ती बड़ा उड़ती बड़ा ऊंचा है, इससे यह मत समझ लेना कि चील बड़ी ऊंची है। ऊंचाई पर उड़ने का सवाल नहीं है--आंख कहां लगी है! आंख लगी है नीचे कचरे के ढेर पर पड़े हुए मरे चूहे पर--और प्रतीक्षा कर रही है, चक्कर मार रही है आकाश में। लेकिन प्रतीक्षा कर रही है कि नीचे मौका मिले, अवसर मिले, रास्ता, बंद हो, लोग न चल रहे हों--एक झपट्टा मारे और मरे चूहे का उठा ले।
पंडित उड़ता तो आकाश में है, मन मरे हुए चूहे पर, जमीन पर लगा रहता है। ज्ञानी आकाश में उड़ता है--आकाश में ही होता है। यही फर्क है। तुम्हारा जानना, तुम्हारा होना होना चाहिए। तुम्हारे जानने और तुम्हारे होने में अगर फर्क हे--तुम कितने ही बड़े पंडित हो जाओ--कबीर कहते हैं, काहे की कुसलात, कर दीपक कुंबै पड़ै।
मन सागर, मनसा लहरी बूड़ै बहुत अचेत।
मन ही सागर है, जब स्वस्थ हो जाए। मन ही लहर है, अब अस्वस्थ हो जाए। अब
उ Ÿोजित होते हो तुम तो मन लहरों से भर जाता है, जब शांत हो मन सागर हो जाता है--शांत; मौन!
क्रोध, घृणा, मोह लोभ ज्ञानियों ने पाप कहें है--किस कारण? इस कारण कि
जब तुम क्रोध में हो, तो मन लहरों से भर जाएगा, तुम अवस्था हो जाओगे, तुम उ Ÿोजित हो जाओगे। जो भी उ Ÿोजित करे, वही पाप है। और जो भी तुम्हें शांत करे, वही पुण्य है। इस परिभाषा को ख्याल में रखना।
पाप और पुण्य का दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं है।
आमतौर से लोग सोचते हैं कि क्रोध इसलिए पाप है, दूसरों को चोट पहुंचती है। नहीं, यह जरूरी नहीं है, कि दूसरों को चोट पहुंचे; क्योंकि दूसरा अगर बुद्ध हो तो तुम कितना ही क्रोध करो, उसको चोट न पहुंचेगी। फिर भी क्रोध तो पाप रहेगा ही--चाहे बुद्ध को चोट पहुंचे या न पहुंचे। नहीं, क्रोध पाप है, क्योंकि उससे तुम्हें चोट पहुंचती है। दूसरों को चोट तो अनुषांगिक है, पहुंच सकती है, मगर वह महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण यही है कि तुम्हें चोट पहुंचती है; तुम भीतर अस्त-व्यस्त हो जाते हो, आंदोलित हो जाते हो। तुम भीतर की शांति खो देते हो, भीतर का दर्पण धुंधला हो जाता है। और अगर सतत तुम क्रोध, लोभ और मोह में पड़े हो, तो तुम्हारे भीतर की झील शांत होने का अवसर ही नहीं मिलता, वह हमेशा तूफान में ही बनी रहती है। तब तुम धीरे-धीरे भूल ही जाते हो कि इन लहरों के नीचे सागर छिपा है, क्योंकि उसको देखने का

मौका ही नहीं आ पाता। जब सब लहरें सो जाए, जब एक भी लहर न हो, तब तुम्हारा सागर तुम्हें प्रतीत होगा।
तो ब्रह्म और माया में इतना ही फर्क है। ब्रह्म जब उ Ÿोजित होता है, तो माया; और जब ब्रह्म शांत हो जाता है, तो ब्रह्म। या माया जब शांत हो जाती है तो ब्रह्म। माया ब्रह्म की उ Ÿोजित दशा है; रुग्ण दशा है; अस्वस्थ दशा है; विकृति है।
मन सागर मनसा लहरि, बूड़ै बहुत अचेत।
और मन की इन लहरों में न मालूम कितने लोग डूब गए हैं। लहरें छोटी नहीं हैं, और जो भी अचेत है, वह डूब जाएगा। बूड़ै बहुत अचेत--जो भी मूर्च्छित जी रहा है, सोया-सोया जी रहा है, होशपूर्वक नहीं जी रहा है, वह डूबेगा। होश की नाव ही डूबने से बचा सकती है।
बड़ै बहुत अचेत... कहहिं कबीर ते बांचि हैं, जिनके हृदय विवेक।
इस वचन के दो तीन अर्थ हो सकते हैं। और तीनों ही अर्थ उपयोगी हैं, इसलिए तीनों ही समझ लेने जरूरी है।
मन सागर मनसा लहरि, बूड़ै बहुत अचेत।
कहहिं कबीर ते बांचि हैं, जिनके हृदय विवेक।।
इस बात को कबीर कहते हैं, वे ही समझ सकेंगे, जिनके हृदय में विवेक है, अन्यथा न समझ सकेंगे। हृदय के विवेक! बुद्धि की कुशलता काम न आएगी, कितने ही तर्कनिस्र हो, कितने ही शास्त्रों के जानकार हों, कितने ही सिद्धांतों की समझ हो--नहीं, वह काम न आएगी। जिनके हृदय में विवेक है, वे ही केवल इस बात को समझ पाएंगे।
हृदय में विवेक का क्या अर्थ होता है?
आमतौर से हम समझते हैं कि विवेक होता है बुद्धि में, और प्रेम होता है हृदय में। यह हमारी आम धारणा है। और कवियों ने इस धारणा को काफी प्रचलित कर दिया कि विवेक मस्तिष्क में, प्रेम हृदय में। यह धारणा भ्रांत है। एक विवेक है जो हृदय में भी होता है। और जिसको तुम प्रेम कहते हो वह तुम्हारे अंधेपन का नाम है। और जब तक हृदय का विवेक न जग जाए, तब तक वह प्रेम जन्मेगा नहीं, जो कृष्ण और क्राइस्ट के जीवन में फलता है।
कौन-सा विवेक है जो हृदय का है? और कैसे तुम उसे खोजोगे?
ध्यान रहे, बुद्धि में कोई विवेक नहीं होता, विचार होते हैं। मन विचार
कर सकता है, विवेक नहीं। मन सोच सकता है, यह ठीक है, यह गलत है। मन पक्ष और विपक्ष में तर्क इकट्ठे कर सकता है। और तब देख सकता है जिस तरफ तर्क इकट्ठे हों, वह ठीक है। यह विवेक नहीं है, सह सिर्फ गणित है।
जीवन में एक समस्या आती है, तुम सोचते हो कि क्या करें। तो मन बहुत से विकल्प देता है। फिर मन हर विकल्प के पक्ष और विपक्ष में तर्क देता है। फिर सारे तर्कों को देखते हो, सोचते हो, फिर जो तर्क सबसे ज्यादा वजनी, बलशाली, लाभपूर्ण मालूम पड़ते हैं, तुम उनका अनुगमन करते हो। यह विचार है, विवेक नहीं।
विवेक क्या है?
विवेक जागृति की ऐसी दशा है, जहां तुम्हें सोचना नहीं पड़ता; जहां दिखाई पड़ता है; जहां तुम्हारी आंख खुली होती है; और जहां तुम्हारे सामने विकल्प नहीं होते कि यह करूं या यह करूं। तुम्हारी आंख इतनी प्रगाढ़ रूप से खुली होती है कि जो ठीक है, वह दिखाई पड़ता है, सोचना नहीं पड़ता।
जैसे एक अंधा आदमी यहां हो, उसे बाहर जाना है, तो पूछेगा, रास्ता कहां है--बाएं कि दाएं; सीढ़ियां कहां हैं? फिर टटोलेगा अपनी लकड़ी से, फिर खोजेगा, फिर जाएगा। लेकिन जिसके पास आंख है, वह पूछता नहीं कि दरवाजा कहां है, उसे बाहर जाना है, वह दरवाजे की सोचता ही नहीं उठता है, और बाहर निकल जाता है। दरवाजे का ख्याल भी नहीं आता। आंख है तो दरवाजे को सोचने का सवाल कहां है? उठे और बाहर गए। दरवाजा बीच में जैसे पड़ता ही नहीं। आंख नहीं है तो सोचना पड़ता है कि दरवाजा कहां है--बाएं कि दाएं टटोलना पड़ता है, जब निकलना पड़ता है।
विचार, विवेक की कमी है। विचार, विवेक का परिपूरक है।
... जैसे अंधे का पूछना और टटोलना आंख का परिपूर्वक है। जिसके पास विवेक है, उसे दिखाई पड़ता है। और जो उसे दिखाई पड़ता है, वह उसके अनुसार चल

पड़ता है; वह सोचता नहीं कि जाऊं या न जाऊं। विवेक में द्वंद्व नहीं है, विचार में द्वंद्व है। विचार में आल्टरनेटिव हैं, विकल्प हैं। विवेक में कोई विकल्प नहीं है। विवेक निर्विकल्प है। दिखता है, और आदमी चलता है। इसलिए बड़ी हैरानी की बात है, समझ लेनी चाहिए कि तुम कुछ भी मान कर करो विचार में, हमेशा पछताओगे। क्योंकि जब भी मन तुम्हें कुछ कहता है करने को, तब दूसरा विकल्प भी मौजूद होता है।
समझो कि दो स्त्रियों से तुम्हें शादी करनी है, दो स्त्रियों से लगाव है। तुम तय नहीं कर पाते, किससे शादी करनी है। एक धनी है, लेकिन सुंदर नहीं है; धन में भी तुम्हारा रस है। एक गरीब है, लेकिन सुंदर हैं; सौंदर्य में भी तुम्हारा रस है। अब क्या करें!
तो या तो मन दोनों के बीच कोई समझौता खोजेगा, जो कि खतरनाक है; और या मन निर्णय लेगा कि एक से कर लो; एक कर लेगा तो पछताएगा। अगर अमीर से कर ले तो रोज सुबह उठ कर उसका चेहरा तो देखना ही पड़ेगा। कितना ही भागो पत्नी से, भाग कर कहां जाओगे? घर लौटकर आना ही पड़ेगा। और जब चेहरा देखेगा, तभी मन में पछतावा होगा कि सुंदर स्त्री से शादी कर ली होती। लेकिन यह मत सोचो कि सुंदर स्त्री के करके कुछ हल होनेवाला है। सुंदर से कर ली होती, तो सौंदर्य दो-चार दिन में समाप्त हो जाता है। तुम आदी हो जाते हो एक शक्ल देखने के--आखिर शक्ल को क्या करोगे? लेकिन रोज पैसे की कमी है। छप्पर चूता है, और खप्पड, नहीं खरीद सके; पेट भूखा है और रोटी नहीं--रोज चुभेगा--और मन होगा कि बेहतर हुआ होता, अमीर से शादी कर ली होती।
मन कुछ भी चुने, सदा पछताएगा। पछतावा मन की निष्पिŸा है; क्योंकि विकल्प सदा मौजूद था। विवेक जो भी करेगा, कभी नहीं पछताएगा; क्योंकि विकल्प था ही नहीं, पछताना किसके लिए है! इसलिए विवेकपूर्ण व्यक्ति कभी नहीं पछताता। जो भी हुआ है अतीत का उकसे लिए कोई पछतावा नहीं होता। वह कभी लौट कर पीछे देखता भी नहीं, क्योंकि दूसरे तो कोई विकल्प था ही नहीं। जो होना था, वही हुआ है। और जो होना है, वही होगा।
इसलिए विवेकपूर्ण व्यक्ति सदा शांत होगा, विचारपूर्ण व्यक्ति सदा अशांत होगा। बुद्धि विचार करती है, हृदय विवेक देता है।
तो कैसे जगाए इस हृदय के विवेक को?
ध्यान हृदय के विवेक को जगाने की प्रक्रिया है। विश्वविद्यालय बुद्धि के विचार को जगाने का प्रशिक्षण क्षेत्र हैं। बीस-पच्चीस वर्ष एक युवक को लगते हैं, तब कहीं बुद्धि प्रशिक्षित हो पाती है।
और लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि पांच सात दिन हो गए ध्यान करते, अभी तक कुछ हुआ नहीं।
बुद्धि परिधि है, हृदय केंद्र है। बुद्धि पर तुम व्यय करते हो पच्चीस वर्ष, तब भी हो सकता है कि थर्ड क्लास सर्टिफिकेट ले कर यूनिवर्सिटी से बाहर निकलो। लेकिन हृदय के लिए तुम तीन दिन भी देने का तैयार हनीं हो। और हृदय के लिए पच्चीस जन्म भी देने को कम हैं, क्योंकि हृदय केंद्र है। सारी ध्यान की प्रक्रियाएं हृदय के केंद्र को जगाने की प्रक्रियाएं हैं। सिर्फ भारत में ऐसे विश्वविद्यालय अतीत में थे, जहां हमने दोनों प्रयोग किए थे। लेकिन वे प्रयोग खो गए। नालंदा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय बौद्धों की छाया में बने वे अकेले विश्वविद्यालय थे, सारी दुनिया में फिर वैसा प्रयोग नहीं हो सका, जहां हमने बुद्धि को भी प्रशिक्षित करने की कोशिश की, और हृदय का विवेक भी जगाने की कोशिश की। वह सफल नहीं हो सका। अनेक बाधाएं पड़ गई। सबसे बड़ी बाधा तो यह पड़ती है कि हृदय के विवेक के जग जाने पर व्यक्ति सांसारिक नहीं हो पाता। तो संसार उसके विपरीत है। बाप भी डरता है बेटे को ऐसी जगह भेजने में, जहां विवेक जग जाए; क्योंकि विवेक वासना से मुक्ति है। विवेक जगेगा तो वासना खो जाएगी। सभी भयभीत हैं विवेक के जगने में। इसलिए प्रयोग किया गया, लेकिन असफल गया। महानतम प्रयोग था मनुष्य की चेतना के जगत में।
नालंदा में हम फिक्र करते थे कि जिस मात्रा में ज्ञान बढ़े उसी मात्रा में ध्यान बढ़े, और संतुलन कभी न खोए। लेकिन तब नालंदा से जो आदमी निकलता था वह संन्यस्त होकर निकलता था। यह प्रयोग कैसे चल सकता है! यह कितनी देर

संसार चलने देगा! नालंदा हमने उखाड़ कर फेंक दिया और बौद्ध जो उस महान प्रयोग को कर रहे थे, उनको खदेड़ के मुल्क के बाहर कर दिया।
बौद्ध धर्म का विनाश हो गया इस मुल्क से, क्योंकि बौद्धों ने इतने विवेक को जगाने की कोशिश कि जिन-जिनका भी विवेक जगा, वे इस जगत के बहुत काम के न रह गए। एक विराट जगत के काम के हुए; लेकिन हमारी क्षुद्र वासनाओं के जगत में काम के न रह गए।
अगर बेटे का विवेक जग जाए, तो बाप उसे धन कमाने में नहीं जोत सकता। बेटा कहेगा, ठीक है, जितना जरूरी है कर देते हैं। लेकिन गैर-जरूरी असली पकड़ है। क्योंकि जरूरी से क्या होगा? जब इतना धन हो जाए कि वह गैर-जरूरी हो, तभी तो आदमी धनी होता है। जरूरी से तो आदमी गरीब ही बना रहता है। जितनी जरूरत है, उतना ही कमा लिया तो तुम गरीब हो। विलास तो तब पैदा होगा कि गैर-जरूरी पैदा हो जाए। विवेकपूर्ण, ध्यानपूर्ण व्यक्ति गैर-जरूरी से बचेगा। बहुत कठिनाई खड़ी हो गई।
कबीर कहते हैं, कहहिं कबीर ते बांचि हैं, जिनके हृदय विवके। यह जो मैं
कह रहा हूं, वे ही समझ सकेंगे, जिनके हृदय विवेक है, जिन्होंने ध्यान किया है। क्यों? क्योंकि ध्यान करने वाले तो तत्क्षण दिखाई पड़ता हैः मन ही लहर है, और मन ही सागर है। क्योंकि ध्यान करने वाले को कई क्षण ऐसे आ जाते हैं, जब लहरें रुक जाती हैं, सिर्फ सागर रह जाता है। वही प्रतीति कबीर के वचन को समझने में सार्थक होगी। उस प्रतीति के बिना तुम कबीर को न समझ पाओगे। मेरे पास लोग आते हैं, जिन्होंने कबीर पर डाक्टरेट लिखी है। विश्वविद्यालय ने उन्हें सम्मानित किया है, डिग्रियां दी हैं। लेकिन मैं नहीं देखता कि वे कबीर को समझते हैं; क्योंकि हृदय का विवेक तो उनके पास है ही नहीं।
इस वचन का एक दूसरा अर्थ भी है। वह वचन का अर्थ है--कहहिं बकीर ते बांचि हैं, जिनके हृदय विवेक--कबीर कहते हैं, वे ही पढ़े-लिखे हैं, जिनके हृदय विवेक।
मन जाने सब बात, जगत ही औगुन करे, कहे की कुसलात, कर दीपक कुंबै पड़े।
जिनके हृदय विवेक है वे केवल पढ़े-लिखे लोग हैं; बाकी सब अपढ़ हैं। वे ही जिनके हृदय विवेक है, ऐसे है, जिन्होंने बांचा है, जिन्होंने पढ़ा है। किताब के पढ़ने का सवाल नहीं है, हृदय को पढ़ने का सवाल है। अपने को पढ़ने का सवाल है।
कहहिं कबीर ते बांचि हैं--वे ही केवल बांचे हुए, पढ़े-लिखे लोग हैं, जिनके हृदय विवेक है!
मन दीया मन पाइये, मन बिन मन नहिं होइ।
मन उन्मन उस अंड ज्यूं, अनल अकासां जोई।।
मन दीया मान पाइये--मन से ही खोया है, मन से ही मिलेगा। मन से ही भटके हैं, मन से ही पहुंचेंगे। मन से ही भिखारी हुए, मन से ही सम्राट बनेंगे। यह मन ही रुग्ण हुआ है; स्वस्थ हो जाए तो जो खाया है, वह मिल जाएगा।
मन दीया मन पाइये, मन बिन मन नहिं होइ।
सारा खेल मन का है। तुम्हारे भीतर जो शक्ति विचार बन रही, सारा खेल उस शक्ति का है। वह शक्ति दो रूपों में हो सकती है--या तो विचार बन जाए, तब लहर बन जाती है; या ध्यान बन जाए, तब सागर बन जाती है।
इसलिए निर्विचार समस्त धर्मों का सार है; क्योंकि जैसे ही तुम निर्विचार हुए, तो जो शक्ति मन के द्वारा विचार बन कर खो रही थी अनंत में, वह खोना रुक जाएगा। मरुस्थल में नदी नहीं खोएगी। तब सारी शक्ति वापिस तुम्हीं में गिरने लगी। तब तुम कुछ भी नहीं खो रहे हो। तब तुम्हारे छिद्र बंद हो गए।
अभी तो तुम एक बालटी हो, जिसमें हजार छेद हैं। कुएं डालते हैं, शोरगुल बहुत मचता है। पानी में डूबी रहती तो ऐसा भी लता है, भर गई। और जैसे ही पानी से ऊपर उठाते हैं कि खाली होना शुरू हो जाती है। खींचते-खींचते थक जाते हो, और जब बालटी हाथ में आती है तो खाली होती है। यही तो हजारों-करोड़ों लोगों का अनुभव है। जिंदगी भर खींचते हैं, तब इतना शोरगुल मचता है कि लगता है भरी हुई आ रही है, लेकिन हाथ आते-आते खाली! मौत के वक्त खाली बालटी हाथ लगती है। इतने छिद्र हैं!

हर विचार छेद है। उससे तुम्हारी ऊर्जा खो रही है। जैसे ही तुम निर्विचार हुए, ऊर्जा को खोने का मार्ग बंद हुआ। तब तुम्हारी ऊर्जा वापिस तुम्हीं में गिर जाती है। तुम सागर हो, तुम ब्रह्म हो, तुम परम हो। इस जगत की जो भगव Ÿा स Ÿा है, वह तुम हो। लेकिन तुम्हारे रंध्र, तुम्हारे छिद्र चुकाए डालते हैं।
मन दीया मन पाइये, मन बिन नहिं होइ।
मन उन्मन उस अंड ज्यूं, अनल आकासां जोइ।।
जैसे आकाश हर चीज में छिपा है, चाहे दिखे और चाहे न दिखे... आकाश दिखता कहां है? हवा के कण-कण में आकाश है। अग्नि के कण-कण में आकाश है। न तो अग्नि आकाश को जला सकती है, न हवा आकाश को उड़ा सकती है। पानी के कण-कण में आकाश है; न पानी आकाश को बहा सकता है। जैसे प्रकाश सब में छिपा है, ऐसे वह परम भगवत स Ÿा में छिपी है। वह तुमसे भी छिपी है। उस परम भगवत स Ÿा को कबीर ने जो नाम दिया है, वह बड़ा कीमती है--वह वही नाम है, जो झेन फकीर जापान में देते हैं। झेन फकीर उस अवस्था को नोमाइंड कहते हैं। कबीर ने उस अवस्था को उन्मन कहा है।
एक ऐसी अवस्था है चेतना कि जहां मन है ही नहीं।
क्या अर्थ हुआ इसका--मन के न होने का? इतना अर्थ हुआ, जहां विचार सब खो गए, लहरें सब शांत हो गई। मन उन्मन हुआ। कबीर का एक वचन है--मन उन्मन हुआ, गगन गरजे, बरसे अमी--मन, न मन हो गया।
सारा आकाश गरज रहा है, और अमृत बरस रहा है। और जब तक मन में उसकी तरंगें, उसकी विकृतियां भरी हैं, तब भी आकाश गरजता है, लेकिन जहर बरसता है।
आकाश तो तुम्हारे चारों तरफ भी खूब गरज रहा है, लेकिन जहर बरसता है।
मन उन्मन हुआ, गरजे गगन, बरसे अमी।
उन्मन का अर्थ हैः जहां निर्विचार हो गया मन।
मन उन्मन, उस अंड ज्यूं अनल आकासां सोई।
और उन्मन मन में वह ऐसा ही छिपा है, जैसे हर अंड में ब्रद्म छिपा है, ब्रह्मांड छिपा है; जैसे हर कृपा में आकाश छिपा है।
मन गोरख मन गोविदौ, मन ही औघड़ होई।
जे मन राखै जतन करि, तो आपै करता सोइ।।
गोरख एक बहुत अनूठे सिद्ध पुरुष हुए। उनका नाम तो धीरे-धीरे खो गया।
अक्सर ऐसा होता है कि बहुत अनूठे लोगों का नाम खो जाता है, क्योंकि वे हमारी समझ के बाहर पड़ जाते हैं। अब गोरख की हम सिर्फ एक ही शब्द में याद करते हैं, वह है गोरख-धंधा।
शब्दों की बड़ी कहानियां हैं। यह गोरख-धंधा से पैदा हुआ। गोरख ने पैदा नहीं किया; जिन्होंने उनको देखा, उन्होंने पैदा कर लिया। क्योंकि गोरख ने बड़ी महत्वपूर्ण विधियां खोजीं, ध्यान की। गोरख ने ध्यान की बड़ी महत्वपूर्ण विधियां खोजीं, लेकिन आम आदमी को वे विधियां ऐसी लगी कि यह सब उपद्रव क्या है; जैसा मेरे पास लोगों को लगता है। यह मेरा भी गोरख धंधा है। लोग समझते हैं कि क्या पागल हो गए हो, होश खो दिया, यह क्या कर रहे हो! तो गोरख ने इतनी विधियां खोजी कि उनके शिष्य ने मालूम किन-किन तरह की अनूठी विधियों में लीन रहे कि लोक में व्याप्ति हो गई कि यह सब गोरख-धंधा है। इसलिए शब्द सिर्फ अब इतना ही बचा है हमारे पास। जब भी कोई आदमी उलटा-सीधा करता है तो हम कहते हैं, क्या गोरखधंधा कर रहे हो! लेकिन उस शब्द के पीछे बड़े अनूठे आदमी का नाम है।
भारत में जितनी विधियां गोरख ने ध्यान की खोजीं, उतनी किसी दूसरे आदमी ने नहीं खोजीं। बुद्ध, महावीर, कोई भी गोरख का मुकाबला नहीं करते-- विधियों का जहां तक संबंध है। मन को तोड़ देने के जितने उपाय गोरख ने खोजे, किसी आदमी ने नहीं खोजे। गोरख बड़ा अनूठा आविष्कारक व्यक्ति है।
और कबीर उनकी याद करते हैंः मन गोरख मन गोविन्दो।
मन ही गोरख है, मन ही गोविंद है। विधियां भी वही खोजता है, पहुंचना भी उसी तक है। गोरख और गोविद का इसलिए उपयोग किया कबीर ने--गोरख यानी विधि, गोविद यानी मंजिल। गोरख यानी मार्ग; गोविन्द यानि अंत। गोरख साधन; गोविन्द साध्य। इसलिए उपयोग किया है।

मन गोरख मन गोविंदौ। मन ही का सब खेल है, विधि भी उसी का ही है, पहुंचना
भी उसी में है। मार्ग भी वही है, मंजिल भी वही है। पाना भी उसी को है, पाना भी उसी से है।
मन गोरख मन गोविंदो मन ही औघड़ होइ।
जे मन राखै जतन करि, तो आपै करता सोइ।।
और जो मन के जतन को समझ ले, वह स्वयं ब्रह्म हो गया तो आपै करता सोई... वही जगत का कर्ता हो गया।
जे मन राखै जतन करि... यह जतन शब्द याद रखन लेने जैसा है। क्या होता है जतन का मतलब?
तुम्हें एक हीरा मिल जाए रास्ते पर, तुम कैसे उसे रखोगे? जतन हरि। तुम उसे जल्दी से छिपा लोगे। वहां तो देखोगे भी नहीं, क्योंकि और किसी को पता न चल जाए। तुम जल्दी से उसे कपड़ों में छिपा लोगे, वहां तुम पूरी तरह से देखोगे भी नहीं, क्योंकि सड़क बाजार है, लोग चल रहे हैं, लेकिन घर अभी दूर है। घर को कर तुम द्वार बंध करके, प्रकाश जला कर फिर हीरे को देखोगे। लेकिन घर पहुंचने के पहले भी तुम कई बार जेब में छू-छू कर देख लोगे न! जतन का यही मतलब है। कई बार तुम टटोल कर देख लोगे।
जेबकट भलीभांति जानते हैं कि किसकी जैब में पैसा है--उसके जतन की वजह से। वह बार-बार देख लेता है। नहीं तो जेबकट को पता कैसे चले! टेलीपैथी थोड़ी जानता है कि तुम खीसे में नोट लिए हो, लेकिन तुम छू-छू कर देखते हो, तुम्हें पता भी नहीं होता है कि तुम छू-दू कर देख रहे हो। वही उसे खबर देता है कि है कुछ।
जतन का अर्थ हैः बड़ी होशपूर्वक, सम्हाल कर। जैसे कबीर किसी वचन में कहे हैं कि लौटती हैं स्त्रियां पनघट से तो गपशप करतीं, बात करतीं, गीत गातीं--घड़े को सिर पर रखे हाथ से पकड़ती भी नहीं! फिर कैसे पकड़ती होंगी, किससे पकड़ती होंगी? जतन से, स्त्रियां लौटती हैं पनघट से। अब तो स्त्रियां नहीं मिलती, क्योंकि पनघट नहीं हैं--नलघट हैं, और वहां उपद्रव है।
कबीर के वक्त पनघट थे और वहां से लौटती स्त्रियां थीं। एक मीठा काव्य था, उस लौटने में पनघट से। और बात करतीं, चीत करती और घड़े को सिर पर रखे, न हाथ से सम्हालतीं! फिर किससे सम्हालतीं?
भीतर एक होशपूर्वक सम्हाल है--बारीक है, जतन से--गिरता नहीं है घट, टूटता नहीं घट। चर्चा चलती रहती है, जतन जारी रहता है।
तो कबीर कहते हैं कि रहो इस संसार में ऐसे, जैसे पनघट से आती स्त्री घड़ी को रखती है जतन से। जाओ दुकान पर, लेकिन सम्हालो चेतना को। घूमो बाजार में, खो मत जाओ, सम्हालो अपने को। धन हो, स्त्री हो--सम्हालो अपने को।
जतन का अर्थ हैः एक भीतरी सुरति।
गुरजिएफ ने एक शब्द उपयोग किया हैः सेल्फ-रिमेम्बरिंग, आत्म-स्मरण।
कुछ भी करो, खुद का होश बनाए रखो--वही जतन है।
बुद्ध का शब्द हैः सम्यक स्मृति, राइट माइंडफुलनेस।
कुछ भी करो, लेकिन स्मरण बना रहे कि मैं हूं।
बुद्ध का शब्द स्मृति ही बिगड़-बिगड़ कर सुरति हो गया। कबीर और नानक जिसको सुरति कहते हैं, वह बुद्ध का स्मृति शब्द है। वह लोकभाषा में चलते- चलते सुरति हो गया। पर सुरति ज्यादा मधुर है। और स्मृति से तो मेमोरी का संबंध जुड़ जाता है--सुरति अलग ही हो गया। सुरति का तो मतलब ही हो गया--एक आत्मभाव एक बोध।
जतन शब्द भी यत्न से बना है--लेकिन वह मतलब नहीं है, जो यत्न का है।
मतलब हैः एक भीतरी सतत होश, कोई चीज भीतर न जाए! जैसे हीरा मिले तो उसको आदमी गांठ में बांध लेता है, ऐसे भीतर एक होश बना रहे, एक स्मृति बनी रहे। तुम जो भी करो, करते समय यह ख्याल रहे कि अपने को सम्हालना है।
क्या है सम्हालने का प्रयोग है, ताकि मन में लहरें न उठें। तुमने नहीं सम्हाला, लहरें उठेगी; सागर खो जाएगा, दर्पण मिट जाएगा। तुमने सम्हाला, लहरें उठेंगी; खूब सम्हाला, लहरें बिल्कुल नहीं उठेंगी। पूरा सम्हाला, लहरें बिल्कुल शांत हो जाएगी। और मन पर एक लहर नहीं होती तो मन दर्पण हो जाता है। उस दर्पण दिखाई पड़ता है, जो वही सत्य है।
मन गोरख, मन गोविंदौ, मन ही औघड़ होई।

जे मन राखै जतन करि, तो आपै करता सोई।।
तन को जोगी सब करै, मन को करे न कोई।
सब विधि सहजे पाइये, जो मन जोगी होई।।
सवाल शरीर से कुछ करने का नहीं है। सभी सवाल होश के जगत में कुछ करने
का है। तो कितना ही तुम बांधो शीर्षासन, सिद्धासन, सर्वांगासन करो, कितने ही बंध साधो, कितने ही शरीर को इरछा-तिरछा करो--वह बात बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है भीतर चैतन्य का बढ़ना--चैतन्य की बढ़ती ज्योति।
तन को जोगी सब करै, मन को करै न कोई।
इसलिए तुम पाओगे ऐसे जोगी, जिन्होंने शरीर की बड़ी कीमती उपलब्धियां
पा ली हैं। लेकिन अगर तुम उनमें झांक कर देखोगे तो पाओगे कि तुमसे गए बीते हैं।
योगी तीस दिन जमीन में पड़ा रह सकता है। उसने बड़ी कुछ साधा है; क्योंकि तीस दिन बिना आक्सीजन के, गड्ढे में दबा पड़ा रहना! तीस क्षण मुश्किल हैं। तीस दिन के बाद तुम उसे निकालो वह जीवित है! तुम चमत्कृत होओगे। लेकिन उस आदमी की आंखों में देखना और तुम उसमें वह ज्योति न पाओगे जो कबीर, बुद्ध या गोरख की आंखों में होती है। उस ज्योति की जगह तुम उसकी आंखों में एक उदासी पाओगे, एक सोया हुआ पन पाओगे। और तुम उसके जीवन में कोई चमक न पाओगे--जो होनी चाहिए। क्योंकि जिसके भीतर ब्रह्म जगा हो, उसके बाहर सब तरफ एक सुगंध और एक चमक और एक प्रकाश का विस्तार होगा--वह तुम बिल्कुल न पाओगे। मजे की बात तो यह है की तीस दिन यह जमीन में पड़ा रहा, क्योंकि पांच सौ रुपये उसे इनाम मिलने हैं। तुम किसी बुद्ध को राजी कर सकोगे कि पांच सौ रुपये के लिए तीस दिन जमीन में पड़ा रहे? तन को तो साध लिया उसने, पर मन की साधना का उसे कुछ भी पता नहीं है।
ऐसे योगी हैं कि संकल्प के केवल हाथ की नाड़ी की गति बंद कर देंगे, हृदय
की चाल बंद कर देंगे; लेकिन वे सब कर रहे हैं पैसा पाने के लिए। उनकी जगह सर्कस में है, सत्य में नहीं। वे सर्कस के लिए काम हैं, सत्य का उनसे क्या लेना देना! तुम दुकान कर रहे हो, वे भी दुकान कर रहे हैं। तुम्हारी दुकान तुमसे जरा बाहर है, उनकी दुकान शरीर से जुड़ी है। लेकिन उसकी सारी साधना एक प्रदर्शन बन गई है।
ऐसे योगी हैं, जो आंख को खींच कर बाहर लटका लेते हैं। डाक्टर पालब्रन्टन ने जब पहली दफा एक योगी को यह करते देखा, तो वह हैरान हो गया, क्योंकि वह तो खुद डाक्टर था। यह अविश्वास की बात थी, यह हो ही नहीं सकता कि दोनों आंखें खींचकर उसने लटका लीं, चार इंच आंखें नीचे लटक गई! और अब भी वह उन आंखों से देख रहा है--सारी मांस पेशियां बाहर आ गयी हैं, खून झरने लगा; फिर वापस उसने आंखें अपने गड्ढों में जमा लीं! तब उसने कहा कि दो रुपए मेरी फीस! इतना बड़ा चमत्कार, लेकिन मांग तो लोभ की!
और जब मन योगी हो जाता है... क्या है के याग का अर्थ?
योग शब्द का अर्थ हैः जोड़, संगम, मिलन, संभोग।
योग का अर्थ हैः दो का एक हो जाना।
तो मन के योग का क्या अर्थ होगा?--जहां मन की लहरें, और मन का सागर एक
हो जाए; जहां मन की दौड़ और मन का ठहरा होना एक हो जाए; जहां मन, मन में लीन हो जाए। परम संभोग का क्षण है जब मन मन में ही लीन हो जाता है, डूब जाता है।
वही समाधि है।
सब विधि सहजे पाइये, जो मन जोगी हुई।
और जिसने मन के मिलने की यह कीमिया पा ली, उसके लिए सब सरल हो जाता है।
सब विधि सहजे पाइये--वह सभी कुछ सहज पा लेता है। उसे पाने के लिए कुछ
और करना नहीं पड़ता।
मन ऐसा निरमल भया...
और इस समाधि से, इस मन के मन में डूब जाने से मन ऐसा निरमल हो जाता है...
।
ये वचन गूंजते रहें तुम्हारे मन में--उपयोगी होंगे।
मन ऐसा निरमल भया, जैसा गंगा नीर।
पाछै-पाछै हरि फिरै, कहत कबीर कबीर।।

एक वक्त है कि साधक खोजता है परमात्मा को; चिल्लाता है--राम, रहीम-- पुकारता है। और एक ऐसा वक्त भी आता है जब परमात्मा तुम्हारे पीछे-पीछे घूमता है--कहत कबीर-कबीर
यह वक्त कब आता है, जब परमात्मा तुम्हारे पीछे खोजने लगता है, बुलाता है?
एक वक्त था, तुम बुलाते थे, कोई आवाज उ Ÿार में न आती थी। वह वक्त वही था, जब तुम्हारा मन तरंगों से भरा था। तब तुम्हारी आवाज इस योग्य न थी कि सुनी जाए--इस योग्य तो बिल्कुल ही न थी कि उसका उ Ÿार दिया जाए।
तो चिल्लाते रहो, तुम मंदिरों में, मस्जिदों में,। कबीर कहते हैं कि क्या तुम्हारा खुदा बहरा हो गया है कि तुम सुबह से उठकर अजान कर रहे हो, इतने जोर से नमाज पढ़ रहे हो? क्या बहरा हुआ खुदाय? क्यों इतने जारे से चिल्ला रहे हो? चिल्लाते रहो--मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में--कुछ भी न होगा। तुम्हारे चिल्लाने से कुछ भी न होगा। क्योंकि तुम्हारा चिल्लाना भी तुम्हारे मन का शोरगुल है। चुप हो जाओ।
प्रार्थना बोलना नहीं है, चुप हो जाना है।
प्रार्थना परमात्मा से कुछ कहना नहीं है। प्रार्थना वस्तुतः परमात्मा से कहना नहीं है, परमात्मा को सुनने की विधि है। चुप हो जाओ-- सुनो।
और जब मन मन में लीन हो कर चुप हो जाता है, एक भी तरंग नहीं होती विचार की--मन ऐसा निरमल भया--तब निर्मलता, तब सब शुद्ध हो जाता है, सब विकृति खो जाती है, तब सब रोग मिट जाते हैं। तब मन एक निर्मल दर्पण हो जाता है।
मन ऐसा निरमल भया, जैसा गंगा नीर। जैसे गंगा का जल!
पाछै-पाछै हरि फिरै, कहत कबीर कबीर।
अब उलटी हो गई सब बात। अब खुद परमात्मा साधक के पीछे घूमता है, खोजता है। जब तुम योग्य हो, तब यह स्वयं तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है। और जब तक तुम अयोग्य हो, तुम कितने ही मंदिरों, गिरजों, गुरुद्वारों में दस्तक दो, वह दस्तक उसके द्वार पर नहीं पहुंचेगी।
इसलिए असली सवाल तुम्हारे निर्मल हो जाने का है। और निर्मलता का कबीर
का अर्थ मन के मन में लीन हो जाने का है--मन, मन में खो जाए।
ध्यान अर्थात मन में मन खो जाए, कुछ बचें न तरंगें--सागर बचे, लहर न बचे। पर बड़ा मुश्किल है।
तीन लोक संशय पड़ा काहिं कहूं समझाय।
किसको समझाओ--सब पहले से समझे बैठे हैं! पहले से समझदार बन गए हैं! उधार समझ ने सभी को समझदार बना दिया है। और इसलिए उनके अज्ञान के मिटने की कोई विधि नहीं है।
पहला ज्ञान--समझना कि मैं अज्ञानी हूं; तब मैं समझा के कह सकूंगा।
आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
तीसरा प्रवचन

अपन पौ आपु ही बिसरो

दिनांकः 13 नवंबर, 1974; श्री ओशो आश्रम, पूना.

सूत्र
अपन पौ आपु ही बिसरो।
जैसे श्वान कांच मंदिर मह, भरमते भुंकि मरो।।
जौं केहरि बपु निरखि कूपजल, प्रतिमा देखि परो।
वैसे ही गज फटिक सिला पर, दसनन्हि आनि अरो।।
मरकट मूठि स्वाद नहिं बिहुरै, घर घर रटत फिरो।
कहहिं कबीर ललनि के सुगना, तोहि कवने पकड़ो।।

सूत्र में प्रवेश के पहले कुछ आधारभूत बातें समझ लेनी जरूरी है।
एक सूफी फकीर हुआ, बायजीद। बैठा था अपने द्वार पर झोपड़े के, एक जिज्ञासु ने पूछा, धर्म क्या है? साधना क्या है? मार्ग क्या है? तो बायजीद ने कहा, क्या करोगे जानकर? उस युवक ने कहा, मुक्त होना है बंधन से। बायजीद हंसा। जोर से हंसा, जैसे पागल है। और उसने कहां, पहले ठीक से पता लगा कर आओ-- बांधा किसने है, जो बंधन से मुक्त होना चाहता है? जब तक इसका पक्का पता लगा कर न आओगे, तब तक मैं जवाब देनेवाला नहीं।
कहते हैं, युवक गया, वर्षों के बाद वापिस लौटा--वही पागलों जैसी हंसी
अब उसके पास भी थी। बायजीद ने पूछा, लगा लिया पता? उस युवक ने कहा, अब कुछ पूछना नहीं, सिर्फ हंसी का जवाब देने आया हूं। खुद ही बांधा था, और बंधन से मुक्त होने की तलाश भी चालाकी की थी, वह भी उस मूल सत्य से बचने का ही ढंग था। पूछता था, कैसे मुक्त हो जाऊं? मार्ग की तलाश भी स्थगन, पोस्टपोन करने की विधि थी कि जब मिलेगा मार्ग तब पहुंचेंगे; मिलेगी विधि तब बंधन कटेगा; जब मार्ग ही पता नहीं, विधि का पता नहीं, तो कैसे बंधन के बाहर निकलेंगे? ठीक किया तुमने कि जवाब न दिया और पागल की हंसी हंसे। वह हंसी चोट कर गई। वह मन में गहरा घाव कर गई। बहुत खोजा--जैसे-जैसे खोजने लगा, वैसे-वैसे साफ होने लगा कि बंधी तो मैं ही हूं, बांधा किसी ने भी नहीं। और जब मैं ही बंधा हूं तो मुक्त होने की जरूरत क्या है? मत बंधो और मुक्त हो गए।
यह पहली बात समझ लेनी जरूरी है।
मोक्ष की खोज भी तरकीब है। वह भी उपाय है बचने का। अन्यथा तुम अमुक्त हुए कब? बांधा किसने? बीमार ही नहीं हो और औषधि की तलाश करते हो! औषधि मिलती नहीं, तो सोचते हो, कर भी क्या सकते हैं हम! गुरु को खोजते हो, परमात्मा को खोजते हो--और उसे कभी खोया नहीं, वह तुम्हारे भीतर छिपा है। जब तुम खोज रहे हो, तब भी वह मौजूद है। और इसकी हली झलक तुम्हें भी है। ऐसा भी नहीं है कि इस बात को तुम बिल्कुल भूल गए हो कि बांधा किसी ने नहीं। हलकी झलक तुम्हें भी है। क्योंकि यह इतना बड़ा सत्य है, इसे पूरा का पूरा भुलाया भी नहीं जा सकता। ये जंजीर तुमने अपने ही हाथ से पहन रखी हैं। हालांकि तुमने जंजीरों की तरह उन्हें नहीं पहना है, तुमने आभूषण समझकर पहना है। तुमने जंजीरों पर हीरे जवाहरात जड़ लिए हैं। तुमने जंजीरें लोहे की नहीं, सोने की बना ली हैं। तुमने जंजीरों में बड़ा रस भर लिया है। अब तुम उन्हें छोड़ने में भी डरते हो। क्योंकि वे जंजीरें तुम्हें जंजीरें दिखाई ही नहीं पड़तीं। कारागृह को तुमने खूब सजा लिया है। और कारागृह को तुमने घर बना लिया है। अब तुम पूछते जरूर हो कि कारागृह से मुक्त कैसे हो जाऊं, लेकिन तुम भलाभांति जानते हो कि तुम मुक्त होना नहीं चाहते। अन्यथा कौन तुम्हें रोकता है।
घर में आग लगी हो, तो तुम छलांग लगाकर बाहर निकल जाते हो। तब तुम पूछते नहीं हो कि गुरु कहां है, जिससे पूछूं मार्ग? तब पूछते नहीं कि विधि क्या है बाहर निकलने की? तब तुम शास्त्रों का माध्यन-मनन नहीं करते। तब आग लगी है, इतना जानना हो गया, कि मार्ग तुम खुद खोज लेते हो। लेकिन संसार के बाहर

निकलने के लिए, तुम पूछते हो, मार्ग कहां है? तुम निकलना नहीं चाहते, और आग तुम्हें शत्रु मालूम नहीं पड़ती, मित्र मालूम पड़ती है। फिर तुम पूछते ही क्यों हो? अगर यही सच है कि तुम्हें निकलना नहीं, अगर यही सच है कि कारागृह को ही घर बनाने में तुम्हें रस आता है, तो बनाओ, फिर मार्ग क्यों पूछते हो? मन बहुत चालाक है! मार्ग पूछकर तुम दोहरी बात अपने को समझा लेते हो कि मैं कोई साधारण, सांसारिक आदमी नहीं हूं, मैं आध्यात्मिक हूं। बंधन में पड़ा हूं, लेकिन निकलना चाहता हूं; क्रोध करता हूं, लेकिन आकांक्षा अक्रोध की है; कामवासना में पड़ा हूं; लेकिन ध्यान तो ब्रह्मचर्य का है। ऐसे तुम अपनी गंदगी को भी आदर्शों में छिपा लेते हो, ऐसे तुम घाव के ऊपर फूल रख लेते हो। घाव को तुम मिटाना भी नहीं चाहते, घाव को तुम देखना भी नहीं चाहते, इसलिए तुम पूछते फिरते हो; मार्ग कहां, विधि कहां, गुरु कौन, कैसे मुक्त हो! तुम्हारी इस बेईमानी से कौन तुम्हें बाहर निकाल सकेगा?
यह बेईमानी तुम्हें पूरी खुली आंख से देखनी होगी। कष्टपूर्ण है। दूसरे की बेईमानी देखनी तो बहुत आनंदपूर्ण होती है, खुद की बेईमानी देखनी बहुत कष्टपूर्ण होती है। क्योंकि उसमें तुम्हारी अपनी ही आंखों में तुम्हारी प्रतिमा गिर जाती है। और तुमने बड़ी भव्य प्रतिमाएं बना रखी हैं! बुरे से बुरा आदमी भी यही मानता है कि आदमी तो मैं भला हूं, कभी-कभी बुराई कर लेता हूं, यह बात दूसरी है। बुरा कृत्य है, आदमी तो मैं भला हूं; संयोग से, परिस्थिति से, मजबूरी से, भाग्यशात बुराई कर लेता हूं; करना नहीं चाहता हूं। और जिस दिन सुविधा होगी, उस दिन भूलकर भी नहीं करूंगा। मजबूरी है, पत्नी है, बच्चे हैं, घर द्वार है, थोड़ी चोरी, थोड़ी बेईमानी, थोड़ा असत्य कर लेता हूं, लेकिन आदमी मैं बूरा नहीं हूं।
बुरे से बुरा आदमी भी अपनी एक सुंदर प्रतिमा बनाकर रखता है। वह सुंदर प्रतिमा बुरा होने में सहयोगी है; क्योंकि उस प्रतिमा के कारण ही तुम बुराई के घाव को नहीं देख पाते। उस प्रतिमा के कारण ही बुराई तुम्हें किस तरह बांधे हुए है, और किस भांति जहर तुम्हारे रोएं-रोएं में समा गया है, उसकी तुम्हें प्रतीति नहीं हो पाती। वह उस प्रतीति से बचने का उपाय है। इसलिए तुम विधि पूछते हो, मार्ग पूछते हो।
यह तो पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि तुम बंध हो, क्योंकि तुम बंधना चाहते हो। यह कितना ही कष्टपूर्ण हो, लेकिन इसे भलाभांति समझ लेना कि जंजीरें तुम्हारे हाथ में हैं, किसी और ने तुम्हें पहनवाई नहीं, तुमने ही पहनी हैं।
दोष दूसरे पर डालना हमेशा सुगम है। पति सोचना है, पत्नी ने बंधन डाला हुआ है। कैसी मूढ़ता है! पत्नी सोचती है, पति ने बंधन डाला हुआ है। कैसा पागलपन है! कोई दूसरा बंधन डाल कैसे सकेगा? अगर तुम बंधन न चाहो, कोई तुम्हें रोक सकता? पत्नी रोक सकती, पति रोक सकता? बच्चे रोक सकते हैं? कौन रोक सकता है? दुनिया की कोई भी शक्ति तुम्हें बंधन में नहीं डाल सकती। तुम्हारी मुक्ति अपराजेय है, उसे पराजित नहीं किया जा सकता। अगर घुटने टेककर तुम रुके हो, तो तुम जिम्मेदार हो। कोई किसी को बांध नहीं रहा है। कोई किसी को बांध ही कैसे सकता है? कम से कम एक चीज तो ऐसी है जिस पर किसी का कोई वश नहीं है--वह तुम्हारी आंतरिक परम स्वतंत्रता है।
दोस्तोवस्की, रूस का एक बहुत बड़ा लेखक, बड़ा मनसविद, बड़ा तत्वचिंतक, कारागृह में डाल दिया गया था। कारागृह से उसने अपने एक पत्र में लिखा है कि कारागृह आकर मुझे पता चला कि दुनिया में केवल मेरे शरीर को ही बंधन में डाल सकती है, मुझे नहीं। कारागृह में मैं उतना ही मुक्त हूं, जितना मैं कारागृह के बाहर था; मेरी मुक्ति में कोई आधा नहीं पड़ी।
तुम्हारे भीतर के आकाश को कौन अवरुद्ध कर सकता है? लेकिन तुम सोचते हो, पत्नी ने बांध रखा है!
ऐसा हुआ कि शेख फरीद एक गांव से गुजरता था। दो-चार शिष्य उसके साथ थे। अचानक बीच बाजार में फरीद रुक गया और उसने कहा कि देखो! एक बड़ा सवाल उठाया! बड़ा तत्व का सवाल है और सोचकर जवाब देना। एक आदमी गाय को ले जा रहा है बांधकर। फरीद ने कहा कि मैं पूछता हूं, यह गाय आदमी से बंधी है कि यह आदमी गाय से बंधा है? शिष्यों ने कहा, इसमें कौन सी बड़ी बात है। यह कौन से तत्व का सवाल है? और आप जैसे आदमी को मजाक करना शोभा नहीं देता। साफ है कि गाय

आदमी से बंधी है; क्योंकि बंधन आदमी के हाथ में है, और गाय के गले में है। तो फरीद ने कहा, दूसरा सवाल हैः अगर हम यह बंधन बीच से तोड़ दें, तो गाय आदमी के पीछे जाएगी कि आदमी गाय के पीछे जाएगा?
तब जरा अनुयायी चिंतित हुए। उन्होंने कहा, बात तो सोचने जैसी है, मजाक नहीं। क्योंकि बंधन तोड़ दो, तो गाय भाग खड़ी होगी और आदमी गाय के पीछे भागेगा।
तो फरीद ने कहा, मैं तुमसे कहता हूं कि आदमी के हाथ में बंधन नहीं है; आदमी के गले में है। ऊपर से दिखायी पड़ता है कि गाय आदमी से बंधी है; भीतर अगर देखो तो पता चलेगा, आदमी गाय से बंधा है।
नहीं कोई पत्नी पति को कैसे बांधेगी? कोई पति कैसे किसी पत्नी को बांधेगा? तुम बंधना चाहते हो, लेकिन बंधन की जिम्मेवारी भी अपने पर नहीं लेना चाहते हो; वह तुम दूसरे पर डाल देते हो। इससे बंधन सुगम हो जाता हैः हम कर भी क्या सकते हैं? चारों तरफ लोग बांधे हुए हैं, हम जाए तो जाए कहां? करें तो क्या करें? मुक्ति मिले कैसे? सारा संसार विराट है और बांधे हुए हैं।
दुकानदार सोचता है कि ग्राहक उसे बांधे हुए हैं। लोभी सोचता है कि धन उसे बांधे हुए है। कामी सोचता है कि कामिनी उसे बांधे हुए है। सांसारिक सोचता है कि संसार उसे बांध हुए है। नहीं, कोई तुम्हें बांधे हुए नहीं है। तुम चालाक हो। और तुम्हारी चालाकी गहरी है। तुम अपने को धोखा दे रहे हो। मगर धोखा कुशलता का है। दूसरा बांधे हुए है, इसलिए मैं क्या कर सकता हूं-- इससे बंधे रहने में सुगमता हो जाती है।
हम सदा दूसरे पर दोष देते हैं। किसी ने गाली दी, तुम कहते हो, इस आदमी
ने मुझे क्रोधित कर दिया। कोई तुम्हें कैसे क्रोधित कर सकेगा? तुम असंभव की बात कर रहे हो। यह कभी हुआ ही नहीं। तुम क्रोधित होना चाहते हो, तो गाली सार्थक हो जाती है। तुम क्रोधित नहीं होना चाहते, गाली व्यर्थ हो जाती है। एक सुंदर स्त्री निकलती है, तुम मोहित हो जाते हो। सुंदर स्त्री तुम्हें मोहित कर रही है? तुम मोहित हो जाते हो। राह पर हीरा दिखाई पड़ता है, तुम झपट कर उठा लेते हो। हीरे ने तुम्हें निमंत्रण दिया, या तुम वासना ले कर चलते थे, वह वासना झपट पड़ी? दूसरे को दोष देना बंद करो, अन्यथा तुम कभी मुक्त न हो सकोगे? क्योंकि अगर दूसरे ने तुम्हें बांधा है तो तुम कैसे मुक्त हो सकोगे, जब तक दूसरा तुम्हें मुक्त न करे? और दूसरे अनंत हैं। तब मुक्ति हो नहीं सकती। और यह सच है, जो तुम कहते हो कि दूसरे ने हमें बांधा है, तो फिर मोक्ष जैसी कोई संभावना नहीं है। फिर तुम कभी मुक्ति न हो सकोगे। फिर बंधन अनंत हैं, क्योंकि दूसरे अनंत हैं। और तुम्हें... यह छोड़ देगी पत्नी, तो और स्त्रियां हैं, कोई और बांध लेगी। तुम करोगे क्या तुम करोगे क्या? तुम निरवस हो। तुम बिल्कुल असहाय हो। तुम जहां जाओगे, कोई न कोई तुम्हें बांध लेगा; किसी न किसी का पट्टा तुम्हारे गले में होगा। अगर दूसरे ने बांधा है तो मोक्ष असंभव है।
इसलिए कबीर, नानक, फरीद, सभी ज्ञानी इस सत्य को पहली सीढ़ी बनाते हैं कि इसे तो तुम बिल्कुल साफ कर लो, अन्यथा यात्रा ही नहीं होगी कि तुम ही बंध हो। तब मुक्ति संभावना है। क्योंकि तब तुम ही तोड़ सकते हो। तुम ही बंधे हो, तुम ही मुक्त हो सकते हो। न कोई तुम्हें बांधता है, न कोई तुम्हें बांध सकता है।
तब एक और बात समझ लेना जरूरी है, जो बड़ी गहरी है। महावीर ने कहा है, कोई तुम्हें मुक्त भी नहीं कर सकता। तुम कितनी ही पूजा करो, कितना ही पाठ करो-- कोई तुम्हें मुक्त नहीं कर सकता। क्योंकि अगर कोई तुम्हें मुक्त्त कर सकता है, तो कोई तुम्हें बांध सकता है। अगर दूसरे ने तुम्हें बांधा ही नहीं, तो दूसरा तुम्हें मुक्त भी न कर सकेगा।
इसलिए महावीर कहते हैं, तुम इस भ्रांति में भी मत पड़ना कि कोई दूसरा तुम्हें मुक्त कर देगा। महानतम गुरु भी तुम्हें मुक्त नहीं कर सकता। क्योंकि दूसरे के द्वारा मुक्त होने की संभावना तभी है जब तुम दूसरे के द्वारा बांधे गए हो।
इसलिए बुद्ध कहते हैं, बुद्ध केवल इशारा करते हैं कि बंधन कहां है; बुद्ध मुक्त नहीं कर सकते। बंधे तुम हो, मुक्त भी तुम्हीं होओगे। महावीर

बता सकते हैं कि बंधन कैसे कटता है; बंधन क्या है; लेकिन महावीर तुम्हारा बंधन नहीं काट सकते। और यह शुभ है कि कोई दूसरा तुम्हारा बंधन नहीं काट सकता। नहीं तो इधर महावीर काटेंगे, कोई दूसरा बांध देगा। जब काटा जा सकता है तो बाधा जा सकता है। जब बांधा नहीं जा सकता, तो काटा भी नहीं जा सकता।

इसलिए गुरु तुम्हें मार्ग दे सकते हैं, लेकिन चलना तुम्हें है। गुरु तुम्हें विधि दे सकते हैं, लेकिन विधि का उपयोग करना तुम्हें है। गुरु इशारा कर सकते हैं, लेकिन इशारे को जीवन बनाना तुम्हें है। गुरु केटलिटिक एजेण्ट हो सकते हैं, उनकी मौजूदगी में तुम जाग सकते हो; लेकिन जागना तुम्हें है। और बड़ी कठिनाई यह है कि कबीर ने कहीं कहा है कि सोये, हुए को जगाना आसान है; लेकिन जो जागा हुआ पड़ा हो, उसको जगाना असंभव! तुम उसी हालत में हो--दूसरे... तुम बिल्कुल सोये भी होते तो हिला कर तुम्हें पाया जा सकता था। तुम बना कर सो रहे हो। तुमने चादर ओढ़ रखी है, आंख बंद किए पड़े हो। तुम सभी भांति दिखला रहे हो कि तुम बिल्कुल गहरी नींद में हो, और तुम जागे हुए हो। तुम्हें कैसे जगाया जाए? नींद हो, टूट सकती है; झूठी नींद को कैसे तोड़िएगा? तुम धोखा दे रहे हो। आत्मवंचना तुम्हारा करीब-करबी स्वभाव बन गया है।

इन बातों को ख्याल में रख कर कबीर के सूत्र को समझने की कोशिश करें।

कबीर तो गांव के गंवार हैं। उनके पास कोई बहुत बड़े दार्शनिक शब्द नहीं हैं, लेकिन एक ग्रामीण का गहरा अनुभव है, और ग्रामीण के अनुभव की ताजगी है। वे जो प्रतीक भी चुनते हैं, वे गांव के सहज प्रतीक हैं, लेकिन उनकी चोट बड़ी गहरी है। जितना सुसंस्कृत शब्द हो जाता है, उतना ही मृत हो जाता है। भाषा जितनी साफ-सुथरी, परिष्कृत हो जाती है, जितना उस पर रंग-रोगन हो जाता है, उतना ही जीवन से शून्य हो जाता है।

गांव का ग्रामीण जो भाषा बोलता है, वह उतनी ही जीवंत होती है जितना गांव का ग्रामीण होता है। कबीर की भाषा बड़ी जीवंत है, और उनके प्रतीक सीधे-साधे हैं। हिंदुस्तान में, जीसस के मुकाबले सिर्फ कबीर है।

महावीर, बुद्ध, कृष्ण, राम--सब बहुत परिष्कृत दुनिया के लोग हैं। बड़ी शुद्ध, सुसंस्कृत, कुलीन परंपरा के लोग हैं। कबीर ठेठ ग्रामीण हैं--ठीक जीसस जैसे--जीसस बढ़ई के लड ? के हैं, कबीर जुलाहे हैं। जीसस भी गांव की भाषा का उपयोग करते हैं। और यह जान कर तुम्हें हैरानी होगी कि जीसस का जो प्रभाव है इतना विराट, सारे जगत पर--आधी दुनिया जीसस के साथ है--उसका कारण उनकी भाषा की ताजगी है।

महावीर और बुद्ध की भाषा कागजी फूल मालूम पड़ती है। बड़े शुद्ध सिद्धांतों की चर्चा है। लेकिन हृदय को चोट नहीं करती; बुद्धि को छूती है और बिखर जाती है। कबीर और जीसस की भाषा सीधी-सादी है; अनुभव की है, शास्त्र की नहीं है। ये सारे प्रतीक अनुभव के हैं।

कबीर ने कहा--अपन पौ आपु ही बिसरो! खुद ही भूल गए हो खुद को, दूसरों को दोष दे रहे हो। खुद ही बंध गए हो, दूसरों को जिम्मेवार ठहरा रहे।

अपना पौ आपु ही बिसरो।

जैसे श्वास कांच मंदिर मह, भरमते भूंकि मरो।।

कथा है कि एक सम्राट ने एक मंदिर बनाया कांच का। विराट मंदिर था, उसमें हजारों दर्पण लगे थे! एक □□Ÿ□ भूल से वहां प्रवेश कर गया। द्वार, द्वारपाल रात बंद कर गया, □□Ÿ□ भीतर रह गया मंदिर में। बड़ा मुश्किल में पड़ गया। देखा तो चारों तरफ लाखों □□Ÿ□ थे। क्योंकि हर दर्पण से □□Ÿ□ दिखाई पड़ रहा था। इस तरह दुश्मनों को बीच में कभी □□Ÿ□ ने अपने को पाया नहीं था। एक ही हो, लड़ ले, जीत ले। लाखों थे, जहां देखता था, वहीं थे--नीचे थे, ऊपर थे--चारों तरफ थे--कु Ÿा घबड़ाया। भौंक कर उसने डराना चाहा।

ध्यान रहे, तुम जब भी दूसरे को डराना चाहते हो--डर के कारण ही। तुम पहले डर गए होते हो, नहीं तो तुम दूसरे को क्यों डराना चाहते हो? भयभीत आदमी दूसरे का भयभीत करना चाहता है। अगर दूसरा भयभीत हो जाए, तो उसके भय को थोड़ी राहत मिले।

तो ध्यान रखना, जो आदमी वस्तुतः अभय है, वह किसी भयभीत नहीं करता। जो आदमी खुद भयभीत है, वह दूसरे को भी भयभीत करता है। भयभीत करने के ढंग बड़े सूक्ष्म हो सकते हैं। कोई तुम्हारी छाती पर तलवार रख कर तुम्हें डरा सकता

है। कोई तुम्हें नर्क की पूरी व्यवस्था समझा के डरा सकता है, कि वहां आग लगेगी, लपटें होंगी, तेल होगा, तेल के बढ़ाए होंगे, उसमें तुम डाले जाओगे! सैनिक तुम्हें डराता है तलवार से, तुम्हारा साधु तुम्हें डराता हैं। नर्क से। सूक्ष्म उपाय हैं; लेकिन तुम्हारा साधु ही डरा है, तुम्हारा सैनिक भी डरा हुआ है। जो डरा हुआ नहीं है, वह दूसरे को डराएगा क्यों?
दूसरे को हम भयभीत करते हैं आत्मरक्षा के लिए। उस कुŸो ने भी सीधा- साधा उपाय किया, जैसा आदमी करते हैं। भौंका, चाहा कि डरा दे। लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ गया। क्योंकि जब भौंका तो उसने पाया कि वह लाखों कुŸो भी भौंके। और खुद ही आवाज सुनसान मंदिर में गूंज कर वापिस लौटी। रोआं-रोआं कंप गया होगा। बचने का कोई उपाय नहीं, भागने की कोई जगह नहीं। भागकर जाओगे कहां, चारों तरफ से घिरे हुए हो। नीचे-ऊपर से घिरे हुए हो। उस कुŸो की पीड़ा तुम नहीं समझ पाओगे। लेकिन अगर तुम अपने जीवन को देखोगे, तो वही पीड़ा है, और समझ में आएगी।
जैसे श्वास कांच मंदिर मह, भरमते भूंकि मरो सुबह जब द्वार खोला गया तो कुŸा मरा हुआ पाया गया। किसी ने उसे मारा नहीं। कोई वहां था ही नहीं जो मारता। मंदिर खाली था। लेकिन कुŸो के पूरे शरीर पर घाव थे। लहूलुहान था। सारे मंदिर में खून फैला था। हुआ क्या? भौंका, झपटा, दीवालों से टकराया-- अपने ही हाथ मर गया।
अपन पौ आपु ही बिसरो! और यही जीवन की कथा है--तुम्हारी भी!
किससे तुम नाराज हो रहे हो! किससे तुम मोह से भरे हो? किस पर तुम्हारी घृणा है। कभी तुमने गौर किया कि तुम्हारे सभी संबंध दर्पणों की भांति हैं। सभी संबंध दर्पण हैं। क्योंकि तुम अपनी ही तस्वीर देखोगे, तुम अपने चारों तरफ जितने संबंध बनाते हो, वे सब तुम्हारी ही तस्वीर है। उसमें तुम किसी और को नहीं देखते, अपने का ही देखते हो। जहां तुम्हारी तस्वीर अच्छी तुम्हें मालूम गलती है, मित्र; जहां बुरी लगती है, शत्रु। अपना, पराया... ! लेकिन तुम्हारे सभी संबंध, रिलेशनशिप, दर्पण की भांति हैं। उसमें दिखाई तो तुम स्वयं ही पड़ते हो, कोई और नहीं।
ख्याल करो, क्रोधी आदमी सब तरफ पाएगा कि सभी लोग उसका अपमान कर रहे हैं। कोई हंसेगा, तो वह समझेगा, मेरे लिए हंसते हैं। रास्ते पर कोई खुसफुस कर बात करेगा, तो वह समझेगा मेरे लिए बात करते हैं। अगर तुम कुछ न बोलोगे, चुपचाप खड़े रहोगे, तो वह समझेगा कि ये मेरी वजह से चुपचाप खड़े हैं। तुम कुछ भी करो, वह अपनी तस्वीर देखेगा।
मेरे एक मित्र हैं। उनका एक लड़का है। उनके लड़के ने मुझे कहा कि अब मैं मुश्किल में पड़ गया हूं, अब कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता, आप ही कुछ करें! मेरे पिता को समझा दें। अगर मैं ढंग से कपड़े पहनता हूं तो वे कहते हैं, अच्छा, कर लो राजशाही; जब मैं मरूंगा, तब पता चलेगा। अगर मैं साधारण ढंग के कपड़े पहनूं, तो वे कहते हैं, अच्छा, तो हम मर गए क्या? अभी तो ठीक से पहन लो, पीछे तो यह हालत आने ही वाली है। उस युवक ने मुझे कहा, कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता सब करे देख चुका हूं। लेकिन नतीजा वे हमेशा यह निकालते हैं, जो उन्हें निकालना है। और उनका नतीजा बिल्कुल तर्कयुक्त है। दोनों में कहीं कोई गलती आप नहीं पा सकते।
क्रोधी आदमी अपने चारों तरफ हर स्थिति से क्रोध को उपजा लेता है। लोभ आदमी अपने चारों तरफ देखता है कि सब उसको लूटने को तैयार हैं। सब मित्र, बेटे पति-पत्नी--सब उसको लूटने को तैयार हैं। सगे-संबंधी--सब एक ही नजर पर लगे हैं कि किस तरह उसको लूट लें। लोभी पाता है कि सारा संसार उसे लूटने को तैयार है। यह लोभ की तस्वीर दर्पण में दिखाई पड़ रही है।
कामी पाता है कि सारा संसार उसको कामना में ग्रस्त करना चाहता है। त्यागी पाता है कि सारा संसार त्याग की तरफ ले जा रहा है। त्यागी पाता है कि सारा संसार एक ही इशारा कर रहा है कि छोड़ो, भागो।
तुम जो हो, उसकी ही प्रतिध्वनि तुम्हें चारों तरफ सुनाई पड़ती है। और सारा जगत दर्पण है--कांच मंदिर, कबीर जिसको कह रहे हैं।
जैसे श्वान कांच मंदिर मह, भरमते भूंक मरो।
और आखिर में जब तुम मिट जाते हो--सारी जिंदगी तुम मिटते हो--तो आखिर में तुम यही पाओगे, यही सोचोगे, इन सबने मिल कर समाप्त कर दिया, सारा डाला।

पुराने समय में और अभी भी आदिवासी कबीलों में, अगर कोई बीमार पड़ जाए,
तो वे भी पता लगाते हैं कि किसने बीमार करने का जादू मुझ पर चलाया। बीमार तुम पड़ते हो! लेकिन वह जाता है ओझा के पास पता लगाने कि कौन है, जिसने मेरे खिलाफ बीमारी भेजी! वह तर्क तो यही है कि अगर बीमारी आयी है तो कोई भेजनेवाला होगा। अगर मैं दुखी हूं तो कोई दुख दे रहा होगा। अगर मैं परेशान हूं तो कोई जरूर परेशान कर रहा होगा। गणित सीधा दिखाई पड़ता है कि बिना किसी के परेशान किए हुए कैसे परेशान होऊंगा। लेकिन तुम्हें मनुष्य के मन का कुछ भी पता नहीं है। अगर तुम बिल्कुल अकेले छोड़ दिए जाओ, तुम्हारी सब जरूरतें पूरी कर दी जाए, तो भी तुम्हारी यही स्थिति होगी।
पश्चिम में बहुत से प्रयोग हुए हैं। एक प्रयोग जिसको वे सेन्स-डिप्राईवेशन कहते हैं, वह बहुत बहुमूल्य प्रयोग है। कई मनोवैज्ञानिकों ने उस पर काम किया है। उन्होंने इस तरह के गर्भ-गृह बनाए हैं, जहां सब तरह की सुविधा है। भोजन भी अपने-आप नली से खून में पहुंच जाता है; उसे करने कि कोई जरूरत नहीं। प्यास लगती है तो आटोमेटिक इंतजाम है, पानी शरीर में पहुंच जाता है, भोजन शरीर में पहुंच जाता है। घना अहंकार है। कोई आवाज नहीं सुनाई पड़ती। और उन्होंने ठीक वैसा ही रासायनिक इंतजाम किया है, जैसे बच्चे के लिए गर्भ में होता है। इस तरह के टब बनाए हैं, जिनमें ठीक वही रासायनिक द्रव्य होता है, जो मां के गर्भ में होता है, और आदमी उसमें तैरता रहता है, उसमें सोया रहता है। उस टब में सब तरफ अंधकार है। न भोजन की चिंता है, न पानी की चिंता है, न कोई तकलीफ है--सब तरह की सुविधा है, बस सुख है। लेकिन पंद्रह मिनट में आदमी बेचैन हो जाता है--पंद्रह मिनट में वह सूचनाएं भेजने लेता है, मुझे निकालो, बाहर करो। लंबे प्रयोग किए गए हैं, कुछ लोगों ने हिम्मत की और इक्कीस दिन का प्रयोग किया गया। और इक्कीस दिन में उनको खबर दी गई कि वे वक्त-वक्त पर सूचना देते रहें। उनके पास बटन लगा दिए गए थे। जब वे क्रोधित मालूम पड़ें तो लाल बटन दबा दें, तो ऊपर वैज्ञानिक नोट कर लेगा कि अभी क्रोधित हैं। जब वे भयभीत मालूम पड़ें तो हरा बटन दबा दे। जबर ईष्या से भरे मालूम पड़ें तो यह बटन दबा दें। इस तरह के सब मनोवेगों के लिए बटन लगाए रखे हैं। और बड़ी हैरानी की बात हैः कोई नहीं है सताने को वहां, लेकिन वक्त पर आदमी क्रोधित होता है। कोई कारण नहीं क्रोधित होने का। वह खुद भी बेचैन होता है कि मैं क्रोधित क्यों हूं, पर क्रोधित है।
क्रोध, लोभ, मोह, सब तुम्हारी भीतर अवस्थाएं हैं। इनका बाहर के लोगों
से कोई भी संबंध नहीं। बाहर के लोग तो खूंटियों जैसे हैं, जिन पर तुम अपने कपड़े टांग देते हो। बाहर के लोगों पर जब तुम क्रोध टांगते हो, तो वे खूंटी है; लोभ टांगते हो, वासना टांगते हो--वह खूंटी है। आता सब तुम्हारे भीतर से है। और जब तुम जीवन में विषाद से भरोगे और सब नष्ट हो जाएगा, और मौत पास आएगी, तब तुम कहोगे कि शायद सारी दुनिया के प्रति तुम्हारी शिकायत है कि लोगों ने बरबाद कर दिया; हम क्या से क्या होने आए थे, होने नहीं दिया गया! तुम्हारे जीवन से कैसी प्रतिभा और प्रकाश पैदा होता, लेकिन सबने मिल कर नष्ट कर दिया! यह जगत तुम्हारा शत्रु है?
पर कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता कि जगत तुम्हारा शत्रु क्या है! कोई तुम्हें मिटाने को उत्सुक क्यों हैं? सब अपने को पूरा करना चाहते हैं, और सभी सोचते हैं कि बाकी उन्हें मिटाने को उत्सुक हैं। तुम किसको मिटाने को उत्सुक हो? तुम अपने को पूरा करना चाहते हो, दूसरे अपने को पूरा करना चाहते हैं। लेकिन संबंधों में दर्पण के अतिरिक्त भी नहीं; तुम्हें अपनी ही तस्वीर दिखाई पड़ती है।
मैंने सुना है कि एक आधुनिक चित्रों की प्रदर्शनी थी। आधुनिक चित्र, माडर्न पेंटिंग तो तर्कहीन है। उसका अर्थ भी निकालना मुश्किल है। और पिकासो जैसे चित्रकार कहते हैं, अर्थ होता ही नहीं, निकालोगे कैसे? पिकासे से किसी ने पूछा कि तुम्हारे इन चित्रों का क्या अर्थ है? तो उसने कहा कि बाहर जो झाड़ खड़े हैं, इनका क्या अर्थ है? ये फूल खिले हैं, इनका क्या अर्थ है? झरना जो कलकल कर रहा है, इनका क्या अर्थ है? जब इनका कोई अर्थ नहीं, तो पिकासो को क्यों झंझट में डालते हो? जब परमात्मा अर्थहीन है तो मुझ गरीब को क्यों फंसाते हो? मैं भी अर्थहीन हूं।

तो आधुनिक चित्रकला बिल्कुल अर्थहिन है--प्रकृति जैसी है। उसे तुम देखकर प्रसन्न हो सकते हो, उदास हो सकते हो, दुखी हो सकते हो, सुखी हो सकते हो, मगर अर्थ वहां कुछ भी नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन देखने गया था उस प्रदर्शनी को--अधुनिक चित्रों की। चित्र देख-देखकर वह परेशान हो गयाः कुछ सूझ-बूझ के बाहर है सब; न इनका आगा, न पीछा। न यह ही पता चलता कि सीधे टंगे हैं कि उलटें टंगे हैं। आखिर एक चित्र के सामने खड़ा हो गया, और उसने कहा कि हद हो गई, इस चित्र का क्या अर्थ है?
उस चित्रकार ने कहा, महानुभाव, आप दर्पण के सामने खड़े हैं! यह चित्र है
ही नहीं।
पूरा जीवन दर्पण के सामने है। इसलिए संबंध के प्रति वही व्यवहार करना
जो दर्पण के प्रति करते हो। संबंध नाजुक भी उतना ही है जितना दर्पण--जरा गिर गया कि टूट जाता है। और संबंध एक दफा टूट जाए तो, वैसा ही जोड़ना मुश्किल है जैसा दर्पण। जोड़ भी लो टूटे हुए इस संबंध को, तो भी टूट की रेखाएं रह जाती हैं। प्रेम एक दफा टूट जाए, फिर लाख उपाय करो जोड़ने का, जोड़ भी लो, तो भी फिर वही बात वापस नहीं लौटती।
संबंध बिल्कुल दर्पण जैसा है; उतना ही नाजुक; और तुमको ही दिखाता है। तुम सदा हर संबंध में तुम्हीं खड़े हो। दूसरे को दोष मत देना। अगर जीवन व्यर्थ हो जाए, तो जानना कि तुमने ही व्यर्थ कर लिया है। और जितने जल्दी तुम समझ लो कि दूसरे का कोई हाथ तुम्हें नष्ट करने में नहीं है, उतने ही जल्दी तुम्हारी जीवन में सृजन की प्रक्रिया का प्रारंभ हो जाएगा।
जैसे श्वास कांच मंदिर मह, भरमते भूंकि मरो।
अपन पौ आपु ही बिसरौ। ऐसी ही तुम्हारी दिशा है!
जौ केहरि बपु निरखि कूपजल, प्रतिमा देखि परो। और जैसा सिंह ने गुजरते हुए नदी के तट पर अपनी छाया देखी, झपट कर कुछ पड़ा! दुश्मन को बरदाश्त करना मुश्किल है! मर गया।
तुम जब भी झपटो, थोड़ा रुकना! एक क्षण सोचा कि जिससे तुम झपट रहे हो, वहां कोई है, या तुम अपनी ही प्रतिबिंब पर झपट रहे हो?
कोई तुम्हारी निंदा करे, तुम तत्काल झपट पड़ते हो।
कभी तुमने गौर किया कि निंदा से दुख इसलिए होता है कि वह सच है, अन्यथा दुख न होगा अगर कोई तुम्हारे संबंध में सरासर झूठ बात कह रहा हो तो तुम हंस सकोगे? लेकिन अगर कोई ऐसी बात कह रहा है जो सच है, जिसको तुम छिपाए बैठे हो, और जिसको वह उघाड़े डाल रहे है, तो तुम झपट पड़ोगे। निंदा पीड़ा देती है कि तुम्हारे ढके हुए सत्य तुम्हारे सामने ही उघड़ने शुरू होते हैं।
अगर तुम गौर से निंदक का विचार करोगे तो तुम अक्सर पाओगे कि सौ मैं निन्यानबे मौकों पर वह सही है। और इसका कारण है उसके सही होने का। क्योंकि दूसरे को देखना तटस्थता से, हमेशा तुम्हें जैसा देखते हैं, तुम अपने को नहीं देख पाते। तुम्हें पता ही नहीं चलता कि दूसरे तुम्हें कैसे देखते हैं।
मनसविद कहते हैं, अगर सभी लोग वास्तविक, सच्चे हो जाए, जैसा कि धर्मगुरु समझते हैं कि सभी लोग सच्चे हो जाए, और सत्य ही बोलें तो दुनिया चार दिन चल सकती। क्योंकि अगर सभी सत्य कह दें, जैसा वह तुम्हारे संबंध में सोचते हैं, तो सब दुश्मन हो जाएंगे। मित्र तो एक खोजना मुश्किल है। क्योंकि मित्र भी इसलिए मित्र मालूम होता है कि वह कहता नहीं, जो सोचता है, या कहता भी है, तो पीठ पीछे कहता है।
दूसरा तुम्हें गौर से देख पाता है; क्योंकि एक तटस्थता है। एक बात कभी तुम्हें भी निरीक्षण में आयी होगी; कोई आदमी समस्या लेकर तुम्हारे पास आ जाए तो तुम उसे बड़ी कीमती सलाह दे पाते हो, और अगर वही समस्या तुम्हारे जीवन में हो, तो खुद की सलाह भी तुम खुद के काम में नहीं ला पाते हो। क्यों? दूसरे को सलाह देना आसान है, क्योंकि फासला है। बड़े से बड़े सर्जन की पत्नी का आपरेशन करना हो तो वह खुद नहीं करता, क्योंकि हाथ कंपेगा; फासला कम है। दूसरे की पत्नी पर कोई दिक्कत नहीं है उसकी। दूसरी की पत्नी से क्या लेना-देना है! दूसरे की पत्नी पर वह ऐसे ही आपरेशन करता है, जैसे पास्टमार्टम कर रहा हो। जिंदा है कि मुर्दा, कोई फर्क नहीं। लेकिन अपनी

पत्नी में लगाव है, बच्चे हैं, घर परिवार है; वह कहीं मर न जाए, कहीं भूल-चूक न हो जाए! भयभीत होता है, कंपता है! तो बड़े से बड़े डाक्टर को भी अगर अपनी पत्नी का आपरेशन हो, तो किसी दूसरे सर्जन को बुलाना पड़ता है। और बड़े से बड़े डाक्टर को भी अगर खुद की ही बीमारी का निदान करना हो, तो दूसरे से करवाना पड़ता है। बड़ी हैरानी की बात है! तुम, जो सभी जानते हो--क्या जरूरत है किसी और से निदान करवाने की? खुद निदान कर लो। लेकिन अब फासला और भी कम है-- पत्नी से थोड़ा बहुत फासला था भी। और पत्नी मर जाए, ऐसी कोई अचेतन आकांक्षा भी हो सकती थी, क्योंकि छुटकारा कौन नहीं पाना चाहता! शायद डर के पीछे यह भी कारण हो सकता है कि कहीं मैं मार न डालूं, कि कहीं भूल-चूक करके इसको खत्म न कर दूं; क्योंकि अचेतन में, ऐसा पति खोजना कठिन है, जिसने दस-पांच बार न सोचा हो कि यह खतम ही हो जाए पत्नी। पत्नी खोजना मुश्किल है, जिसने दस बार न सोचा हो कि यह कैसे खतम हो जाए, तो झंझट मिटे। खतम हो जाने पर रोएंगे, छाती पीटेंगे।
और वह भी कारण समझने जैसा है। जब कोई मरता है, तुम रोते हो, उस रोने में तुम्हारा अपराध का भाव भी है, क्योंकि तुमने इसे मारना चाहा था और अब यह मर गया। तुम्हें लगता है कि तुम्हारी भी जिम्मेवारी है। अगर तुमने किसी व्यक्ति को कभी मारना न चाहा हो, तो उसकी मृत्यु को तुम हलकेपन से ले लोगे। तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, पश्चाŸाप, ज्यादा नहीं होगा। पश्चाŸाप उसी मात्रा में होता है जितना अपराध का भाव हो।
बाप मर जाता है, बेटा बहुत रोता है; क्योंकि जिंदा था, कभी उसके पैर न छुए; जिंदा था, कभी उसके पास बैठकर दो प्रेम की बातें न कीं। अब कोई मौका न रहा। सदा के लिए यह अपराध मन पर रह जाएगा। अब इसको सुलझाने की कोई सुविधा नहीं है। लेकिन जिस बेटे ने बाप की सेवा की हो, जरूरत पर पैर दाबे हों, समय पर उसकी सुनी हो, उसकी चिंता की हो, उसको प्रेम किया हो, वह इस तरह का पागल नहीं होगा। बाप मर जाएगा तो वह समझेगा, सभी मरते हैं। मरना स्वाभाविक है। मैं भी मरूंगा।
लेकिन अगर तुमने बाप के साथ कुछ ऐसा किया हो, जो नहीं करना था, तो तुम्हें पश्चाŸाप भारी होगी। यह बड़ी उलटी बात है। इसलिए जो बेटा बहुत छाती पीटकर रोएगा, समाज सोचता है उसको बहुत दुख हो रहा है। और जो बेटा चुपचाप बैठकर दुख को झेल लेगा, लोग कहेंगे कि बेईमान, बाप मर गया, चुप बैठा है। लेकिन हालत यह है कि जो चुप बैठा है इसका कोई पश्चाŸाप नहीं। जो छाती पीट कर शोरगुल मचा रहा है, यह परिपूर्ति कर रहा है, सब्स्टीयूट खोज रहा है। इतनी ताकत पैर दबाने में लगाई होती, सिर दबा दिया होता। यह रोने-पीटने से कोई अर्थ नहीं है।
तो यह भी अचेतन भय हो सकता है कि कही मैं मार ही न डालूं, इसलिए भी हाथ कंप सकता है। लेकिन खुद के पास तो इतना भी फासला नहीं होता। जब मैं बीमार हूं, तो निदान खुद नहीं हो सकता। क्योंकि अब भय बहुत ज्यादा है कि कहीं भूल न हो जाए।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने डाक्टर के पास गया था। और डाक्टर ने कहा, तुम घबड़ाते क्यों हो? जब मैं हूं, तो बीमारी ठीक हो जाएगी। और तुम्हारे भरोसे के लिए यह कहता हूं कि ऐसी बीमारी से मैं भी बीमार रहा हूं। तुम बिल्कुल मत घबड़ाओ।
नसरुद्दीन ने कहा, घबड़ाहट नहीं मिटती, क्योंकि आप भला इस बीमारी से बीमार रहे होंगे, लेकिन आपका डाक्टर दूसरा रहा होगा।
इसलिए कबीर कहते हैं, काहे की कुशलात! हाथ में दीया था और कुएं में गिर पड़े! दीया दूसरों के लिए था। अपने लिए जिसके पास दीया है, वह तो बुद्ध हो जाता है। अपने लिए जिसके पास ज्ञान है, वह तो भीतर प्रकाशित हो जाता है। उसकी कुशलता का तो कोई अंत नहीं है। लेकिन दूसरों के लिए दीया हमारे पास है; अपने लिए तो हम अंधे हैं।
इसलिए यह भी हो सकता है कि तुम्हारा निंदक तुम्हारे संबंध में जो कहता हो, वह ज्यादा सच हो, जितना तुम अपने संबंध में कह सको। कबीर ठीक कहते हैं, निंदक नियरे रखिए। और उसकी बात पर सोचना। और तुम हैरान होओगे, वही बात चोट पहुंचाती है, जो सच है। सच अखरता है। सच चुभाता है। अगर तुम्हारे संबंध में कोई झूठी बातें कह रहा हो, तो कोई हर्ज नहीं।

ऐसा मैंने सुना है कि आस्कर वाइल्ड, एक पश्चिम का बड़ा लेखक, ने किसी दूसरे लेखक के संबंध में एक लेख लिखा, जिसमें उसने बड़ी निंदा की। वह लेखक उससे मिलने आया, और उसने कहा, ऐसी क्या दुश्मनी भंजा रहे हो? क्यों इस तरह की झूठी बातें मेरे संबंध में लिखते हो? आस्कर वाइल्ड ने कहा, चुप रहो। अगर सच लिखना शुरू कर दूंगा तो तुम कहीं के न रहोगे। और कहते हैं, वह आदमी चुपचाप खिसक गया। फिर उसने शिकायत न की।
झूठ तुम्हारे संबंध में कोई कहे, सहा जा सकता है। सच चुभता है। जो चीज चुभे, जान लेना कि किसी दर्पण ने तुम्हारा चेहरा दिखाया। और दर्पण को तोड़ देने का मन होता है।
मैंने सुना है कि एक महिला जो बड़ी कुरूप थी, वह दर्पणों की दुश्मन थी। जहां भी दर्पण देखती फौरन तोड़ देती। उसको यही मैनिया, पागलपन था। उसको मनसविद के पास लाया गया कि इसका इलाज करो। उस स्त्री ने कहा कि मैं, कुछ भी हो जो, दर्पण को बरदाश्त नहीं कर सकती, क्योंकि दर्पण के कारण मैं कुरूप हो जाती हूं। दर्पणों के कारण मैं कुरूप हो जाती हूं! दर्पण नहीं होता तो मैं सुंदर हूं। दर्पण होता है तो मैं कुरूप हो जाती हूं।
दर्पण तुम्हें क्यों कुरूप करने में लगेगा? दर्पण का क्या लेना- देना? दर्पण का क्या स्वार्थ, क्या संबंध? पर दर्पण वह बता देता है, जो तुम हो। सब संबंध में दर्पण हैं।
और वह स्त्री जो कर रही थी, वही लोग संबंधों में कर रहे हैं। लोग संबंध तोड़ते हैं। संन्यासी भाग जाता है पत्नी को छोड़कर कि यह अब नहीं सहा जाता। लेकिन पत्नी दर्पण थी। तुम्हारी वासना को प्रकट करती थी। तुम्हारी वासना को दिखा देती थी। दर्पण तोड़ने से क्या होगा? तुम उसी महिला जैसे पागल हो। हिमालय पर भाग कर क्या करोगे? वासना तो साथ चली जाएगी, दर्पण छूट जाएगा। खतरा ज्यादा है हिमालय में; क्योंकि दर्पण न होगा, तो तुम अपने को सुंदर समझने लगोगे। लेकिन तीस साल बाद, या तीस जन्मों बाद भी अगर वापिस लौटे हिमालय से, जैसे ही दर्पण दिखाई पड़ेगा, वैसे ही कुरूप हो जाओगे। कुरूप तो तुम थे ही।
इसलिए वास्तविक संन्यासी संबंधों से भागता नहीं, संबंधों में जागता है। दर्पण गौर से देखता है। और वास्तविक संन्यासी अपने संबंधों को धन्यवाद देगा कि तुमने मुझे दिखाया, चेताया कि मैं क्या हूं। झूठा संन्यासी भागता है; सच्चा संन्यासी जागता है।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं--भागो नहीं, जागो। उसे सूत्र बना लेना है। किसी संबंध में मत भागो; क्योंकि सभी संबंध तुम्हें जागते हैं। जागो और अपने को बदलो! दर्पण को तोड़ने से क्या होगा? जिस दिन तुम बदल जाओगे, यही दर्पण तुम्हारे संबंध में दूसरी खबर देगा। जब तुम सुंदर होओगे, दर्पण तुम्हें सुंदर कहने लगेगा। दर्पण बिल्कुल निष्पक्ष है।
जौं केहरि बपु निरखि कूपजल, प्रतिमा देखि परो।
वैसे ही गज फटिज सिला पर, दसनन्हि आनि अरो।।
और वैसे ही हाथी ने स्फटिक शिला में देखकर अपने चेहरे को, स्फटिक से टक्कर दे दी, दांत तोड़ डाले अपने।
मरकट मूठी स्वाद नहीं बिहुरै, घर-घर रटत फिरो।
कबीर के प्रतीक बड़े सीधे-साफ हैं। ऐसा अक्सर होता है कि बंदर किसी घड़े में हाथ डाल देता है--सामना निकालने को। चुने हैं, कुछ और भोजन है। और फिर मुट्ठी बांध लेता है। और स्वभावतः, जितनी बड़ी मुट्ठी बांध कसता है, उतनी बांध लेता है। हम भी वही करते हैं।
बंदर और आदमी में निश्चित ही संबंध है।
डार्विन गलत नहीं हो सकता। जब मुट्ठी को भरने का मौका मिला हो तो छोटी कौन बनायेगा! उसको हम नासमझ कहेंगे। बुद्धिमान बंदर, छोटा बच्चा बंदर का शायद थोड़ा बहुत निकाल ले बाहर। नासमझ है, अनुभवी हनीं है; लेकिन अनुभव बंदर तो जितनी बड़ी मुट्ठी भर सकेगा, उतनी भरेगा। अब मुट्ठी हो जाती है बड़ी और बर्तन के मुंह से हाथ बाहर नहीं निकलता, तो बंदर बर्तन लटकाए हुए कष्ट भोगता है, भागता है द्वार-द्वार छलांग लगाता है--लेकिन मुट्ठी नहीं खोलता। चिल्लाता है, चीखता है! निश्चित ही कष्ट में पड़ा है और शायद सोचता होगा कि

इस बर्तन में कोई तरकीब है, जिसकी वजह से मैं फंस गया। लेकिन मुट्ठी नहीं खोलता।
वही तुम्हारी दशा है। बड़ी मुट्ठी बांध ली, मुट्ठी नहीं खोलते और द्वार-द्वार सिर पटकते फिरते हैंः शांति चाहिए, आनंद चाहिए, जीवन चाहिए! और एक घड़े में फंसे हैं। उसकी वजह से बड़ी मुसीबत है।
बंदरों को पकड़नेवाले बंदरों की इस नासमझी का फायदा उठाते हैं। वह घड़े गाड़ देते हैं जमीन में, तो बंदर भाग भी नहीं सकता; मुट्ठी खोल भी नहीं सकता। तुम नहीं खोलते तो बंदर कैसे खोलेगा? कोई तुमसे कम समझदार है बंदर? कोशिश करता है कि बंधी मुट्ठी बाहर निकल आए। यही तो तुम भी कर रहे हो। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते है, बस जैसा चल रहा है चलता रहे--और मन शांत हो जाए। मुट्ठी बंधी रहे और मन शांत हो जाए--ऐसी कोई तरकीब बताएं। सब जैसा चलता है, चलता रहे, इसमें कुछ अड़चन न पड़े और मन शांत हो जाए। मन अशांत है, क्योंकि वहीं घड़े में जहां मुट्ठी बांध ली है, वहीं कष्ट हो रहा है, वहीं पीड़ा है।
एक धनपती मेरे पास आते हैं। वह अक्सर कहते हैं कि छोडूंगा, एक दिन सब छोडूंगा; लेकिन तब तक कुछ विधि बताइए! एक दिन छोडूंगा, सब छोडूंगा, लेकिन तब तक... तब तक अशांति तो मत भोगवाइये! जैसे कि मैं उन्हें अशांति भुगवा रहा हूं। कोई विधि बताइए, तब तक तो मन शांत हो जाए! और मैंने उनसे कहा कि अगर तब तक कोई विधि होती शांत होने की, तो जब तुम अशांत हालत में नहीं छोड़ रहे हो, तो शांत हो कर तुम कैसे छोड़ोगे? फिर तुम तो कहोगे कि अब जरूरत ही न रही। अगर बंदर मुट्ठी बांधे हुए घड़े के बाहर हाथ निकल ले, मुट्ठी बांधे हुए घड़े की चिंता से मुक्त हो जाए, मुट्ठी बांधे हुए घड़ा निर्भार हो जाए--तो बंदर पागल है कि फिर मुट्ठी खोलो! इतने कष्ट कर नहीं खोल रहा... तुम इतने दुख में हो और फिर तुम नहीं खोल रहे मुट्ठी, तो तुम सुख में होकर मुट्ठी खोलोगे? तुमने कभी सुना है कि किसी ने सुख के कारण संसार छोड़ दिया? दुख के कारण लोग नहीं छोड़ते, दुख रहते हुए नहीं छोड़ते, महा दुख पड़ता रहे तो नहीं छोड़ते, तो सुख के कारण कोई संसार छोड़ेगा? फिर तो असंभव है। अभी असंभव दिखता है, तो फिर तो कैसे संभव होगा?
वे कहते हैं कि आप जो भी कहते हैं, ठीक कहते हैं। अभी तो सुविधा छोड़ने
की नहीं है। क्या ऐसे ही तड़पाता रहूं? क्योंकि वे रात सो नहीं सकते। उनके घर मैं मेहमान होता था, तो वह रात मुझे भी नहीं सोने देते थे। वह बैठे हैं, बैठे हैं। मैं संकोचवश उनसे बात करता रहूं। आखिर उनकी पत्नी ने मुझसे कहा कि ऐसा न चलेगा। ऐसी ही पहले मैंने भी भूल की थी इनके साथ। आप तो सो जाओ! यह जो इनको रातभर नींद आती ही नहीं, क्योंकि आंकड़े धन के इतने बड़े हैं,
एक बार उनके घर मेहमान हुआ, तो बहुत उदास थे। एयरपोर्ट से मुझे लेकर
गए तो रास्ते में उन्होंने कहा, इस बार बहुत नुकसान हुआ है। पांच लाख का नुकसान लगा अभी पांच-सात दिन के भीतर। सटोरिये हैं। उनकी पत्नी भी साथ थी। मैं दोनों के बीच में बैठा था। पत्नी ने मेरा हाथ दबाया और उसने कहा कि उनकी बात में मत पड़ना। घर जाकर मैंने पूछा कि मामला क्या है? उनकी पत्नी ने कहा कि नुकसान बिल्कुल नहीं हुआ, पांच लाख का लाभ हुआ है; लेकिन दस का होना था। तो वे जमाने भर में कहते फिर रहे हैं कि पांच लाख का नुकसान हो गया।
अब यह जो बंदर की मुट्ठी है, अब ये शांति चाहते हैं! लाभ कल्पना का जो था, वह कल्पना पूरी नहीं हुई, उसको नुकसान कह रहे हैं।
तुम भी जिंदगी के अंत में जब मरने के करीब पहुंचोगे, तो तुम उस सब को
भी अपनी हानि में गिनोगे, जो तुम सोचते थे, होना चाहिए और नहीं हुआ। जो मिलना था तुम्हें, जिसकी तुम्हारी योग्यता और पात्रता थी, जिसके लिए तुम बिल्कुल जन्म से अधिकार लेकर आए थे, वह तुम्हें नहीं मिल गया।
मुट्ठी खोलनी पड़ेगी। बंदर पन से नहीं चलेगा! और संन्यास का इतना ही अर्थ हैः बंदरपन से मुक्त हो जाना। वह नासमझी इतनी साफ है कि तुम परेशान हो रहे हो ज्यादा लाभ के कारण। तुम परेशान हो रहे हो ज्यादा क्रोध के कारण। तुम परेशान हो रहे हो... उतनी वासनाएं इकट्ठी कर ली हैं, जिनको बांधकर रख लेने का तुम्हारे पास उपाय भी नहीं। तुम्हारी मुट्ठी छोटी है, और तुमने बहुत भर लिया है। आवश्यकता तक तो मुट्ठी काफी है; जैसे ही

आवश्यकता वासना बनती है, मुट्ठी छोटी पड़ जाती है। फिर जितनी बड़ी तुम मुट्ठी बनाते जाते हो, संसार के घड़े में उतने ही फंसते जाते हो।
कहते हैं कबीर, मरकट मूठि स्वाद नहिं बिहुरै, घर घर रटत फिरा! और फिर घर-घर चिल्लाता फिरा, रोता फिरा, मगर मटके को लटकाए रहा। कष्ट भारी था, लेकिन लोभ भी भारी था। लोभ कष्ट से ज्यादा मालूम पड़ता है। इस बात को ख्याल में रख लें।
तुम जहां हो, जो दुख है, उस दुख से ज्यादा तुम्हें सुख की आशा है। सुख
है नहीं--आशा है। आशा से आदमी बंधा हैः आज नहीं कल, कोई तरकीब निकले आएगी, कोई विधि हो जाएगी, कोई चमत्कार, किसी का आशीर्वाद--सब ठीक हो जाएगा! आशा से! मत छोड़ो। एक दफे मुट्ठी बाहर निकाल ली, फिर पता नहीं दुबारा डालने का मौका मिले, न मिले। घड़ा रोज तो मिलता नहीं। और घड़े कम हैं, बंदर ज्यादा हैं। सब अपने-अपने घड़े लिए हुए हैं; तुमने छोड़ दिया, कोई दूसरा बंदर हाथ डाल दे! तुम दुख छोड़ दो, दूसरा दुख भोगने लगे; फिर तुम क्या करोगे? तो इसको तो रखे ही रहो, इसकी लटकाए रहो, कष्ट पाओ, सो न सको, हर्ज नहीं। जीवन एक बेचैनी और नर्क हो जाए, ठीक लेकिन आशा, कभी न कभी, किसी न किसी दिन, कोई विधि हो जाएगी! प्रार्थना करो, पूजा करो, मंदिर जाओ, लेकिन मटके को साथ रखो! मंदिर में लोगों की प्रार्थनाएं सुनें, वे प्रार्थनाएं कर रहे हैं?
वे प्रार्थनाएं यह कर रहे हैं कि मुट्ठी बंधी हुई मटके के बाहर आ जाए। खलील जिब्रान ने कहीं लिखा है कि मैंने हजारों लोगों की प्रार्थनाएं सुनी और मैंने पाया, उनकी प्रार्थनाओं का एक ही मतलब है दो और दो चार न हों, कुछ असंभव घट जाए, बस यही उनकी प्रार्थनाएं हैं।
कहहिं कबीर ललनीके सुगना, तोहि कवने पकड़ो।।
तोतों को पकड़नेवाले व्याघ, एक छोटी सी तरकीब का उपयोग करते हैं। रस्सी बांध देते हैं दो वृक्षों के बीच। रस्सी के बीच में छोटी-छोटी लकड़िया अटका देते हैं। तोते उन लकड़ियों पर आकर बैठ जाते हैं। वजन के कारण लकड़ी उलटी घूम जाती है। तोते नीचे लटक जाते हैं। उलटा लटका तोता समझा है, फंस गए! डरता है कि अगर छोड़े हाथ तो नीचे गिरेंगे और मरेंगे। कोशिश करता है कि किसी तरह सीधा होकर बैठे जाए। वह रस्सी है पतली, इसलिए वह बैठ नहीं सकता; उसका वजन ज्यादा है, वह नीचे ही गिरेगा। वह जितना तड़पेगा, उतना ही फंसेगा। और इस घबड़ाहट में वह यह भूल ही जाता है कि मेरे पास पंख हैं, मैं उड़ सकता हूं, गिरने का कोई सवाल ही नहीं है। लेकिन शीर्षासन की वजह से फंस जाता है।
शीर्षासन से सावधान रहना! लेकिन उल्टे खड़े हैं, फिर डरते हैं।
कबीर कहते हैं, कहहिं कबीर ललनी के सुगना, तोहि कवने पकड़ो। तुझे पकड़ा किसने है मूर्ख! तू छोड़ दे, तो ही पकड़े है इस रस्सी को। तेरे छोड? ते ही तू मुक्त है।
बंधन नहीं है, पकड़ है। मोक्ष बंधन से मुक्ति नहीं है, पकड़ से छुटकारा है। बंधन तो बाहर होता है, पकड़ भीतर होती है। बंधन तो दूसरा भी लगा सकता है, पकड़ तुम्हीं लगा सकते हो, पकड़ दूसरा नहीं लगा सकता।
जिस-जिसको तुमने कपड़ा है, वहीं-वहीं तुम बंध गए हो। और अब तुम डरते हो।
अब तुम्हें पंखों का विस्मरण हो गया है कि तुम उड़ भी सकते हो और गिरने का कोई डर नहीं है; लेकिन इतने दिन से तुम बंधे हो, इतनी लंबी हो गई है बंधन की प्रक्रिया कि तुम भूल ही गए कि कभी तुम मुक्त थे, कभी तुम आकाश में भी उड़े थे।
तोते बहुत दिन पिंजरे में रह जाएं, फिर उड़ नहीं पाते; पंखों का स्मरण
खो जाता है। बहुत दिन तक पंख उड़ने से रुके रहें, तो उनकी क्षमता क्षीण हो जाती है। यही हुआ है।
और कबीर बड़ा गहरा व्यंग्य कर रहा है। वह कह रहे हैंः ललनी के सगुना तोहि कवने पकड़ो। किसने तुझे पकड़ा है? कोई पकड़े हुए नहीं है। तूने ही कुछ गलत चीजें पकड़ रखी हैं और कष्ट पा रहा है।
इसलिए समस्त धर्म का सार हैः पकड़, क्लिंगिंग को छोड़ना। कुछ भी मत पकड़ो। जियो सब, पकड़ो कुछ भी मत। रहो घर में, रहो दुकान पर, बाजार में--पकड़ो मत; मुट्ठी खुली रखो। जियो सारे संसार को; वह जीने के लिए है। उसके जीने से प्रौढ़ता मिलेगी। उसके जीवन से समझ बढ़ेगी। अनुभव बुद्धिम Ÿा को लाएगा।

जियो, पर जागकर जियो, पकड़ो मत। मुक्त रह कर जियो। विचारो संसार में। एक भी अनुभव ऐसा नहीं कि उसे तुम छोड़ो। सभी अनुभव कर लेने जैसे हैं। क्योंकि उसको करने से ही तुम्हारे भीतर जो छिपी हुई संभावना है, बोध की, वह जागेगी। सभी अनुभव, बुरे-भले--गुजहर जाने जैसे हैं। पर जागकर गुजरना, ताकि कोई अनुभव कारागृह न बन जाए, और तुम किसी अनुभव में बंद न हो जाओ।
अभी ऐसा ही हुआ है। एक बार तुम जो अनुभव कर लेते हो, तुम उसमें बंध जाते हो, फिर तुम बार-बार उसी को करना चाहते हो। क्लिंगिंग पैदा हो गई, पकड़ पैदा हो गई। जो भी अनुभव तुम्हें सुख देता है, जरा सी भी झलक देता है, तुम मुट्ठी बांध लेते हो। तुम इतना अविश्वास किए हो जीवन पर! तुम्हें यह पता ही नहीं कि जिस जीवन से यह अनुभव मिला, उस जीवन से और बड़े अनुभव भी मिलेंगे; बंधने की जल्दी क्या है? जो जीवन यहां लाया गया है, वह जीवन और विराट किनारों तक भी ले जाएगा। यही घर बना लेने की जल्दी क्या है? तुम रास्ते पर पहला कदम ही नहीं रखते कि वहीं पड़ाव बना लेते हो। रुको, ठहरो! रात का विश्राम बुरा नहीं है, लेकिन सुबह होते चल पड़ो। वेदों के ऋषियों ने कहा हैः चलते रहो! चलते रहो! रुको मत, ठहरो भला!
बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे, चरैवेति, चरैवेति, चरैवेŸा! चलते रहो, चलते रहो! विश्राम के लिए रुको, घर मत बनाओ। कहीं भी जहां तुमने पकड़ बनाई, वहीं घर बनता है। जहां घर बना, वह जल्दी ही कारागृह निर्मित हो जाता है।
बौद्धों की बड़ी पुरानी कथा है। एक आदमी संन्यासी हुआ। उसने गुरु से दीक्षा ली। तो गुरु ने उससे पूछा कि दीक्षा के समय कुछ बोध, जो मैं सदा याद रखूं? गुरु ने कहा, एक बात भर ख्याल रखना; बिल्ली कभी मत पालना। वह थोड़ा हैरान हुआ कि यह आदमी पागल मालूम होता है। हम ज्ञान की खोज में निकले हैं-- मोक्ष, निर्वाण, ईश्वर--और इस आदमी से दीक्षा ले फंसे; और यह क्या उपदेश दे रहा है कि बिल्ली कभी मत पालना!
फिर गुरु तो मर गया। और जो उसने कहा था, चूंकि इसने उसको कभी समझा ही नहीं। और उसने समझा कि व्यर्थ की बकवास कर रहा है, दिमाग खराब हो गया है, सठिया गया है। साठ के ऊपर था। और दो आदमी भरोसे के नहीं होते। पुराने जमाने में, जो सठिया जाते थे, साठ के पार चले जाते थे, वे भरोसे के नहीं थे। आज के जमाने में, जो कुर्सिया जाते हैं, वह सठिया गए, अब उनकी बात का कोई मतलब नहीं।
बूढ़ा तो मर गया। इसके पास बस एक लंगोटी ही थी, उसको टांगता था, तो चूहे काट जाते थे। तो गांव के लोगों से पूछा कि क्या करूं? तो उन्होंने कहा कि एक बिल्ली पाल लो। भूल ही गया बिल्कुल की गुरु ने कहा था कि बिल्ली भी मत पालना। अपने अनुभव से कहा था, क्योंकि यही कहानी उसके साथ दोहरी थी। कहानी तो वही है, पात्र बदल जाते हैं। कुछ अड़चन नहीं मालूम पड़ी, एक बिल्ली पाल ली। झंझट शुरू हो गई, क्योंकि बिल्ली को भोजन चाहिए; उसको दूध चाहिए। चूहे तो खतम किए बिल्ली ने, लेकिन बिल्ली आ गई! गांव के लोगों से पूछा। उन्होंने कहा, इसमें क्या अड़चन है? एक गाय हम आपको भेंट दिए देते हैं।
बिल्ली के पीछे गाय आ गयी। गाय के लिए घास कब तक गांव के लोग दें। उन्होंने कहा, ऐसा करो कि जमीन पड़ी है तुम्हारे पास आसपास मंदिर के, थोड़ी खेती-बाड़ी शुरू कर दो। खेती-बाड़ी शुरू की तो कभी बीमारी भी होती, पानी डालना है, कोई पानी डालने वाला चाहिए। खेती-बाड़ी में समय ज्यादा लग जाता, खुद ही खाना बनाना है। तो गांव के लोगों ने कहा, ऐसा करे, शादी कर लो। एक लड़की थी भी गांव में योग्य, बिल्कुल तैयार। उन्होंने इसकी शादी करवा दी। फिर बच्चे हो गए। फिर वह भूल ही गया। दीक्षा, संन्यास, वह सब मामला खत्म हुआ; सब बच्चों को पढ़ाना, लिखाना... ! खेती-बाड़ी हो गई, व्यवसाय फैल गया... । जब मरने के करीब था, तब उसे एक दिन याद आया, जैसे नींद से चौंका कि हद
कर दी, उस बूढ़े ने भी ठीक ही कहा था कि बिल्ली मत पालना! बिल्ली के पीछे सब चला आता है। पहला कदम तुमने उठाया, फिर मुश्किल हो जाती है।
एक घर में मैं ठहरा था, दो छोटे बच्चे सीढ़ियों पर बैठकर बात कर रहे थे।
घर के दो बच्चे--बड़ा होगा कोई चार साल का, छोटा होगा कोई ढाई साल का। बड़ा छोटे को ज्ञान दे रहा था। छोटा पूछ रहा था कि किस चीज से बचना चाहिए? स्कूल में, उसके जाने का वक्त आ गया था। बड़े ने कहा, बस एक बात ख्याल रखना, अगर

उसमें बच गए तो बिल्कुल बच गए। छोटे ने कहा, बता दो। उसने कहा, सी ए टी--कैट! कैट यानि बिल्ली। जब स्कूल में यह पढ़ाया जाए, इसको बिल्कुल सीखना ही मत। इसको सीखे कि फिर दूसरी चीजें सीखनी पड़ती हैं। बस इस पर ही तुम, इस पर अड़े रहना। फिर बड़े-बड़े शब्द आते हैं इसके पीछे। और फिर कोई अंत नहीं है। उसी में मैं फंस गया। तुम सावधान रहना!
जब उन बच्चों की बात मैं सुन रहा था, तब मुझे यह कहानी याद आयी कि ठीक है, सी ए टी कैट; कैट यानी बिल्ली! बिल्ली से जो बचा, वह सब से बचा!
एक चीज को पकड़ो, पकड़ शुरू हो गई। फिर दूसरी को पकड़ना पड़े, तीसरी को पकड़ना पड़े--सिलसिला है। एक पीछे दूसरा, दूसरे के पीछे, एक शृंखला है। जीना, गुजरना--सब अनुभव से; पकड़ना कोई अनुभव नहीं है। और सदा अनुभव की संभावना है, जल्दी क्या है पकड़ने की? और पुनरुक्ति की आकांक्षा मत करना। जो अनुभव एक बार गुजरे, फिर बार-बार मत मांगना। क्योंकि बार-बार मांगने का मतलब है कि तुम वही अटकने को खड़े हो गए, बार-बार तुमने भरोसा खो दिया जीवन का। अभी बहुत बाकी था। यह जीवन वहां तक ले जाता है जहां परमात्मा है--अगर तुम चलते रहो। रुक गए, तो तुम कहीं छोटी जगह, व्यर्थ जगह रुक जाते हो; किसी कूड़े की ढेर पर घर बना लेते हो।
इसलिए कबीर कहते है, कहहिं कबीर ललनी के सुगना, तोहि कवने पकड़ो। किसी
ने पकड़ा नहीं है, बिल्ली तुम्हीं ने पाल ली है। तुम्हीं चाहो तो छूट सकते हो। छूटने के लिए सिर्फ छूटने की चाह!
और क्या है पकड़? उसको समझने का प्रयास चाहिए; अभीप्सा कि मैं मुक्त होना चाहता हूं। और इस अभीप्सा के पीछे, स्वभावतः समझ विकसित होनी शुरू होने लगती है कि मैं बंधा क्यों हूं।
सिद्धों ने कहा है, तुम बंधे नहीं हो, तुमने अपने को बांध रखा है। अगर तुम मुक्त होना चाहते हो, इसी क्षण मुक्त हो सकते हो। एक क्षण भी गंवाने की कोई जरूरत नहीं। समझ की प्रगाढ़ता, त्वरा, तीव्रता, एक लपट की तरह सभी अतीत को राख कर सकती है। इसी क्षण तुम मुक्त हो सकते हो?
आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
चौथा प्रवचन

गुरु कुम्हार सिष कुंभ है

दिनांकः 14 नवंबर, 1974; श्री ओशो आश्रम, पूना

सूत्र
गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिए अंध।
महादुखी संसार में, आगे जम के बंध।।
तीन लोक नौ खंड में, गुरु ते बड़ा न कोय।
करता करै न करि सकै, गुरु करै सो होय।।
गुरु समान दाता नहिं, जाचक सिष समान।
तीन लोक की संपदा, सो गुरु दीन्हा दान।।
गुरु कुम्हारा सिष कुंभ है, गढ़-गढ़ काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सदार दै, बाहर बाहै चोट।।
गुरु को सिर पर राखिए, चलिए, आज्ञा माहिं।
कहै कबीर ता दास को, तीन लोक डर नाहिं।।
गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काको लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।।
हरि रूठै गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर।।

गुरु पूर्वीय चेतना की खोज है। पश्चिम की भाषाओं में गुरु जैसा कोई शब्द भी नहीं; शिक्षक है, अध्यापक है, आचार्य है, पर गुरु जैसा कोई शब्द नहीं। पहले तो गुरु शब्द को समझ लें, क्योंकि बड़े सूक्ष्म भाव उसमें समाहित हैं। शिक्षक तो वह है जो ज्ञान दे, जिससे हम कुछ सीख लें, स्मृति बढ़े, जानकारी पढ़े। गुरु शिक्षक नहीं है। वह ज्ञान नहीं देता; उससे तुम्हारी जानकारी भी नहीं बढ़ेगी। ठीक उलटा ही है गुरु शिक्षक से। वह तुम्हारा सारा ज्ञान छीन लेता है। वह तुम्हारी स्मृति को गिरा देने के लिए उपाय बताता है। वह पहले तुम्हें परम अज्ञानी बना देता है; क्योंकि जैसे ही तुम परम अज्ञान की प्रतीति से भर जाओ, वैसे ही परमात्मा के द्वार खुल जाते हैं। क्योंकि वह द्वार उसके लिए ही खुलते हैं, जो नहीं जानता है। जो जानता है कि मैं नहीं जानता हूं, बस उसी के लिए वह द्वार खुलते हैं। जिसे ख्याल है कि मैं जानता हूं, उसके लिए परमात्मा के द्वार सदा बंद है-- परमात्मा के कारण नहीं, उकसे जानने की भ्रांति के कारण।
इससे बड़ा कोई अहंकार नहीं है कि मैं जानता हूं। क्या जानते हैं आप? जो
भी जानते हैं, कचरा है। वह कचरा भी अपना नहीं है, वह भी उधार है; वह भी किसी से सीखा है। इस कचरे के बोझ को हम पांडित्य कहते हैं। इस बोझ को हम ढोते रहें, यह पत्थर की तरह हमारी छाती पर बढ़ता जाएगा। लेकिन यह बोझ कभी पंख नहीं बन सकता। इससे तुम परमात्मा के आकाश में उड़ न सकोगे। इससे मोक्ष का कोई भी संबंध नहीं, क्योंकि मोक्ष के लिए तो निर्भार होना जरूरी है। सब बोझ हट जाए, तो ही पंख उन्मुक्त आकाश में प्रवेश कर सकते हैं। और ज्ञान से बड़ा कोई बोझ नहीं है। तुम जानते हो, वही तुम्हारी मुसीबत है, वही तुम्हारा बंधन है। और अहंकार जल्दी मान लेता है कि मैं जानता हूं, क्योंकि अहंकार को यह मानना कि मैं अज्ञानी हूं, बड़ी पीड़ा से भरी बात है।
इसलिए सुकरात ने कहा है, जब कोई ज्ञानी हो जाता है तो पहली बात तो यही जानता है कि मैं नहीं जानता हूं। तब द्वार खुलते हैं। वह द्वार भी ज्ञान के नहीं, वह द्वार भी अनुभव के हैं। जब कोई अनुभव कर लेता है कि मैं नहीं जानता हूं, तभी तो शिष्य होने की क्षमता आती है। अगर थोड़ी सी भी समझ लेकर तुम मेरे पास आए हो, तो तुम नासमझ ही वापस लौट जाओगे। तुम्हारी समझ ही तो बाधा हो जाएगी। तुम मुझे मौका ही न होगे कि मैं तुम्हारे भीतर जा सकूं, दरवाजे पर तुम्हारी समझदारी खड़ी है। समझदारी का हटना जरूरी है। तुम जो भी जानते हो, उसका हटना जरूरी है। क्योंकि एक बात तो तय है कि तुम्हारे जानने से न तो तुम्हें सत्य मिला, न तुम्हें जीवन मिला, न तुम्हें प्रकाश मिला।

इस जानने से तुमने पाया क्या है? इस जानने से तुमने सिवाय अहंकार के और कुछ भी नहीं पाया है। इस जानने से यह अकड़ मिली कि मैं जानता हूं। और यह अकड़ बिल्कुल थोथी है। और यह अकड़ वैसी है, जैसे रस्सी जल जाए, उसमें अकड़ होती है। इस अकड़ में कोई शक्ति भी नहीं है। क्योंकि इस जानने से कुछ भी तो जीवन सघन नहीं होता, प्रगाढ़ नहीं होता। इन जानने से तुम कहीं भी तो पहुंचते नहीं हो। इस जानने से ही उलटे तुम भटकते हो। न जाननेवाला बैठ जाएगा, चलेगा नहीं; क्योंकि वह कहेगा, मुझे पता नहीं, कहां जाऊं; रास्ता कहां; मुझे पता नहीं, मंजिल कहां, मुझे पता नहीं। तो उचित यह है कि बैठ ही जाऊं जब तक पता नहीं है। कम से कम न जानने वाला भटकेगा नहीं।
जाननेवाले के पास नक्शे हैं, जानकारी है। वह उनकी वजह से बड़ी यात्राओं पर निकल जाते हैं। और जितनी लंबी यात्रा पर तुम जाओगे, उतने ही स्वयं से दर निकल जाओगे।
अज्ञानी बैठ जाएगा। बैठकर ही पा लेगा। क्योंकि जिसको तुम खोज रहे हो,
वह भीतर छिपा है। वह कहीं बाहर होता, तो नक्शे साथ दे सकते थे, शास्त्र काम आ सकते थे। कोई शास्त्र काम न आएगा।
शिक्षक शास्त्रों को हस्तांतरित करता है। समाज ने जो जानकारी इकट्ठी
की है सदियों-सदियों में, शिक्षक उसको नयी पीढ़ी को देता है। शिक्षक कड़ी है दो पीढ़ियों के बीच।
गुरु शिक्षक नहीं है। गुरु हमेशा, जो भी तुम्हें समाज ने दिया है, उसे छीन लेता है, और तुम्हें समाज-मुक्त कर देता है। गुरु तुम्हें ज्ञान से मुक्त करता है--उस तथाकथित ज्ञान से, जिससे तुम भरे हो। गुरु तुम्हें निर्भार करता है। इसलिए गुरु के पास सीखने नहीं जाना पड़ता; गुरु के पास अन सीखने जाना पड़ता है।
श्री रमण को किसी ने कहा, मुझे कुछ सिखाए, कुछ शिक्षा दें। रमण ने कहा,
तो फिर कहीं और जाओ, यहां तो अनलघनग, अन-सीखना करना हो तो ही आओ। यहां तो हम मिटाते हैं, पोंछते हैं। यहां हम तुम्हारी चेतना के आकाश पर कुछ लिखना नहीं चाहते। काफी लिख गया है, उसी को साफ करना चाहते हैं। यहां हम तुम्हें खाली करेंगे, भरेंगे नहीं। भरे तो तुम काफी हो, वही तो तुम्हारी विपदा है। लेकिन विपिŸायों को तुम संपिŸा समझते हो। तुम और भरने को उत्सुक हो। तुम सोचते हो, शायद मैं इसलिए भटक रहा हूं कि मेरा भराव कम है। तुम सोचते हो, शायद मैं इसलिए भटक रहा हूं कि थोड़ी जानकारी कम है और थोड़ी जानकारी आ जाए तो पहुंच जाएगा। नहीं तुम पहुंचोगे। तुम्हारी जानकारी को ही तो कबीर कहते हैं, काहे की कुसलात, कर दीपे कंबै पड़े! कैसे तुम्हारी कुशलता! कैसा तुम्हारा जानना! पड़े हो कुएं में, और कहते हो हाथ में दीया है! हाथ में दीया था, तो तुम कुएं में कैसे गिरे? और कुएं में गिर गए हो तो हाथ में बुझा दीया होगा। बुझे दीए को भी हम दीया ही कहते हैं। बुझे ज्ञान को भी हम ज्ञान ही कहते हैं।
एक तो कबीर का ज्ञान है, वह जलता हुआ दीया है; और एक पंडित का ज्ञान है,
वह बुझा हुआ दीया है। दोनों को हम दीया कहते हैं। बुझे कहते हैं। बुझे को दीया कहना नहीं चाहिए, भाषा की भूल है। उधार ज्ञान को ज्ञान कहना नहीं नहीं चाहिए; भाषा की भूल है। लेकिन अपना ज्ञान तो कभी-कभी घटित होता है करोड़ों में। तो एक को छोड़ कर बाकी का क्या होगा? वह बाकी भी मानना चाहते हैं कि ज्ञानी हैं। उस मानने से बड़ी तृप्ति मिलती है। उस मानने से कुछ भी नहीं मिलती, सिर्फ एक तृप्ति मिलती है कि मैं भी जानता हूं।
पंडित से ज्यादा भ्रांत आदमी तुम कहीं न पा सकोगे। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, पापी भी उस तक पहुंच जाए, पंडित नहीं पहुंच पाता। ऐसे कभी सुना नहीं कि पंडित मोक्ष गया हो। पापी तो कुछ पहुंचे हैं, पंडित नहीं पहुंचा, क्योंकि पांडित्य सबसे बड़ा पाप है। बाकी सब पाप छोटे हैं। क्यों?
एक चोर है, उसने किसी का धन चुरा लिया--यह पाप है। यह पाप बहुत बड़ा नहीं, क्योंकि धन मिट्टी है। और यह पाप बहुत बड़ा नहीं, क्योंकि कितना धन चुराया होगा? और यह पाप बहुत बड़ा नहीं, क्योंकि धन को चुरानेवाले को यह लगता ही रहता है कि मैंने बुरा किया। उसके अहंकार की भरती नहीं होती इससे, अहंकार में कांटा छिदता है।

फिर एक आदमी ने ज्ञान चुरा लिया... पंडित, यानी जिसने ज्ञान चुरा लिया। पंडित चोर है। लेकिन अकड़ उसकी ऐसी है, जैसे वह साहूकार हो। और जो उसने चुराया है, वह ज्यादा सूक्ष्म है। और कहीं कांटा भी नहीं छिदता कि मैंने चोरी की है। चोर को तो कांटा छिदता है; वही उसे मोक्ष ले जा सकता है। पंडित को कांटा भी नहीं छिदता। पंडित तो फूल पर सवार है; वही फूल उसे डुबायेगा।
वही संघातक है।
तो पहली बातः गुरु ज्ञान देता नहीं, तुम्हारे ज्ञान को छीन लेता है।
गुरु तुम्हें भरता नहीं, खाली करता है। गुरु तुम्हें शून्य बनाता है।
क्योंकि शून्य में ही पूर्ण का आगमन हो सकता है। गुरु तुम्हें खाली करता है, ताकि परमात्मा के लिए जगह हो सके। इसलिए गुरु और शिक्षक में बुनियादी भेद है।
दूसरी बातः शिक्षक शब्द का प्रयोग करेगा, क्योंकि शब्द ही वहां माध्यम है। कुछ भी कहना हो कुछ भी देना हो, कुछ भी ज्ञान हस्तांतरित करना हो, तो शब्द ही माध्यम है। गुरु शब्द का उपयोग करेगा, लेकिन भलीभांति जानते हुए कि शब्द केवल भूमिका है। सत्य उससे दिया नहीं जा सकता।
शिक्षक शब्द पूरा हो जाता है गुरु निःशब्द पर पूरा होता है। गुरु भी शब्द से शुरू करता है, इसलिए भ्रांति का डर है कि हम शिक्षक को गुरु समझ लें, गुरु को शिक्षक समझ लग। शब्द से शुरू करना ही होगा, क्योंकि तुम जहां हो वहीं से यात्रा शुरू हो सकती है। तुम अगर बीमार हो, तो औषधि से शुरू करना पड़ेगा; लेकिन औषधि अंत नहीं है, स्वास्थ्य अंत है। और स्वास्थ्य का अर्थ ही है। कि जहां औषधि की कोई जरूरत न रह जाए।
तुम बीमार हो--शब्दों से बीमार हो। शब्द से ही शुरू करना पड़ेगा। लेकिन, लक्ष्य होगा निःशब्द। शिक्षक शब्द ही से शुरू करता है, शब्द ही लक्ष्य है। गुरु शब्द से शुरू करता है, लेकिन शब्द लक्ष्य नहीं, निःशब्द! गुरु शब्द का उपयोग करता है, तुम्हारे शब्दों के निषेध के लिए। एक कांटा लगा हो तो हम दूसरे कांटे से पहले कांटे को निकालते हैं। गुरु शब्द का ऐसा ही उपयोग करता है। शब्द के कांटे लगे हैं, दूसरे शब्दों के कांटों से उन्हें निकालता है। लेकिन गुरु तुम्हारे पीछे छूट गए घाव में, नए कांटे को नहीं रख देता कि यह कांटा बड़ा प्यारा है, कि इस कांटे ने बड़ी कृपा की है, किसी इसी कांटे की वजह से पुराना कांटा निकला। शिक्षक तुम्हारे भीतर कांटों को चुभाये चला जाता है।
तुम जितने जानकार हो जाते हो, उतना ही जानना मुश्किल हो जाता है। तुम जितने समझदार हो जाते हो, उतनी ही समझ मुश्किल हो जाती है।
गुरु तुम्हारे एक कांटे को दूसरे कांटे से निकालता है। फिर कहता है दोनों कांटे फेंक दो। तुम बिल्कुल निर्भार हो जाओ। तुम कांटे से शून्य हो जाओ। लक्ष्य निःशब्द है, शून्य है।
शिक्षक से एक संबंध बनता है। वह संबंध बुद्धि का है। वह संबंध दो सिरों का है, हृदय का नहीं। हृदय ने शिक्षक का कोई लेना-देना नहीं। गुरु से जो संबंध बनता है, वह दो बुद्धियों का नहीं है, वह दो हृदयों का है। इसलिए पश्चिम के लोग समझ ही नहीं पाते कि गुरु के प्रति श्रद्धा की क्या जरूरत सीखना है, गुरु एक टेक्नीशीयन है, जानकार है; उससे सीख लो, बात खतम हो गई! श्रद्धा का कहां सवाल है!
काश! बुद्धि का ही संबंध होता गुरु से। तो पश्चिम ठीक कहता हैः सीख लिया, धन्यवाद दे दिया; फीस चुका दी, बात खतम हो गई। जैसे रास्ते पर तुम किसी से पूछ लेते हो कि स्टेशन का मार्ग कहां है--श्रद्धा की कोई जरूरत है? मार्ग बता दिया, धन्यवाद दे दिया--चुकतारा हो गया। तुम अपनी राह चले गए, तुम्हारा बतानेवाला अपनी राह चला गया। न तो वह अपेक्षा करता है कि तुम उस पर श्रद्धा रखो, समर्पण करो; न सोच सकते हो कि इतनी सी बात पूछने के लिए कोई श्रद्धा और समर्पण की जरूरत है। तुमने पूछ लिया ईश्वर कहां है, गुरु ने बता दिया। तुमने पूछ लिया ध्यान कैसे करें, गुरु ने बता दिया। तुमने धन्यवाद दे दिया, भेंट दे दी, अपने घर चले गए, बात समाप्त हो गई।
शिक्षक और विद्यार्थी का संबंध व्यवसायिक है; वहां श्रद्धा की कोई भी जरूरत नहीं। इसलिए अगर विश्वविद्यालय के शिक्षक विद्यार्थियों से श्रद्धा की अपेक्षा करते हों तो भ्रांति में हैं। यह हो नहीं सकता। लेकिन

पूरब की परंपरा की वजह से उनके मन में यह भ्रांति बनी है। क्योंकि पूरब में गुरु को आदर था, श्रद्धा थी--वे सोचते हैं वे भी गुरु हैं; उनके लिए श्रद्धा और आदमी होना चाहिए। नहीं, वे गुरु हैं नहीं। विद्यार्थी शिष्य नहीं है, शिक्षक गुरु नहीं है। विद्यार्थी फीस चुका रहा है। धन्यवाद दे देगा--बात खतम हो गई। शिक्षक से कोई हार्दिक संबंध नहीं है--हो नहीं सकता। लेकिन भारत में गुरु के प्रति सम्मान का भाव इतना पुराना है कि विश्वविद्यालय का शिक्षक भी सोचता है कि मैं गुरु हूं--बिना इस बात की फिकर किया कि गुरु कि गुरुता कहां; बिना इस बात की चिंता किये कि गुरु होना साधारण आदमी के बस की बात नहीं! क्योंकि गुरु तो वही हो सकता है, जो उस गुरुता को उपलब्ध हो गया; जो अंतिम महिमा की उपलब्ध हो गया; जिसने परम सत्य को जान लिया, वही गुरु हो सकता है। जिसको जानने को कुछ शेष न रहा, जिसके होने में अंतिम घटना घट गई; जो समाधिस्थ हुआ; जिसके लिए परमात्मा पारदर्शी हो गया; जो परमात्मा से एक हो गया; जिसमें और परमात्मा में र Ÿा भर भेद न रहा--गुरु वह है।
शिक्षक और विद्यार्थी में जो फर्क है, वह परिणाम का है--गुण का नहीं है; क्वालिटेटिव नहीं है, क्वांटिटेटिव्ह है। गुरु थोड़ा ज्यादा जानता है, शिष्य थोड़ा कम जानता है--ऐसा आप सोचते हैं? नहीं गुरु और शिष्य के बीच जो भेद है, कम ज्यादा का नहीं है। गुरु और शिष्य के बीच मात्रा का भेद नहीं है, गुण का भेद है। गुरु कहीं और है, शिष्य कहीं और है। दो अलग लोगों में उनका निवास है। दो अलग आयाम में वे जीते हैं। उनका अस्तित्व भिन्न है। लेकिन विश्वविद्यालय का शिक्षक और उसका विद्यार्थी, उनमें जो अंतर है, वह मात्रा का है। शिक्षक थोड़ा ज्यादा जानता है, विद्यार्थी थोड़ा कम। और इसलिए अगर विद्यार्थी थोड़ा कुशल हो तो कोई कठिनाई नहीं कि शिक्षक से ज्यादा जान सके। कोई भी कठिनाई नहीं है। मात्रा का ही फर्क है। तो जो बहुत प्रतिभाशाली विद्यार्थी होता है, वह अक्सर शिक्षक से ज्यादा जान लेता है। थोड़ी प्रतिभा, थोड़ा श्रम--बस इतनी ही बात है। और आज नहीं जानता, तो कल जान लेगा। शिक्षक एम. ए. की उपाधि लिए हुए है, विद्यार्थी कल एम. ए. की उपाधि ले लेगा। तो जो फासला है, वह मात्रा का है, गुण का नहीं। जहां तक बीइंग का, आत्मा का सवाल है, दोनों जैसे हैं। जहां तक स्मृति का सवाल है, दोनों में फर्क है। एक के पास ज्यादा, एक के पास काम। लेकिन इसमें गुणव Ÿा क्या है, गुरुता क्या है?
गुरु और शिष्य के बीच जो फासला है, वह क्वालिटेटिव है, वह गुण का है। गुरु कहीं और, शिष्य कहीं और। यह मात्रा का भेद नहीं है। यह तो पूरा तो पूरा का पूरा शिष्य का जब रूपांतरण होगा, तभी यह भेद टूटेगा। यह भेद सीखने से टूटनेवाला नहीं है। जन्मों-जन्मों तक शिष्य सीखता रहे, तो भी टूटेगा नहीं। और यह भी हो सकता है कि जानकारी की दुनिया में गुरु से ज्यादा भी जान ले, तो भी नहीं टूटेगी। इसमें क्या कठिनाई है? बुद्ध से ज्यादा कोई भी जान सकता है।
सच तो यह है कि आज विश्वविद्यालय में पढ़नेवाला एक विद्यार्थी बुद्ध
से ज्यादा जानता है। कबीर की जानकारी क्या है? कबीर से ज्यादा तो कोई भी जानता है। कबीर को न तो पता था आइंस्टीन का, न पता था हेजनबर्ग का; न कबीर को पता था हिरोशिमा, नागासकी में गिरनेवाले एटमबस का। कबीर को पता ही क्या था? अगर पते की ही बात पूछते हो, तो कबीर को अगर मैट्रिक की परीक्षा में बिठा दो तो तुम सोचते हो कि एकदम पास हो जाएंगे? टयूटर रखने पड़ेंगे, और सालों मेहनत करनी पड़ेगी, तब पास हो पाएंगे। फिर भी पक्का नहीं है। जानकारी का सवाल ही नहीं है। लेकिन हम जन्मों-जन्मों तक पढ़ते रहो, लिखते रहो, उपाधियां इकट्ठी करते रहो, पच्चीस उपाधियां इकट्ठी कर लो विश्वविद्यालय तुम्हें सम्मानित करें, डी. लिट. से, तो भी तो तुम कबीर के एक कण को न पा सकोगे। तुम्हारी तो बात दूर, तुम्हारा आइंस्टीन भी कबीर के एक कण को नहीं पा सकता।
आइंस्टीन भी मरते वक्त इसी पीड़ा से मरता है कि मैं बिना कुछ जाने मर रहा हूं; यह रहस्य जगत का अछूता रह गया। आइंस्टीन कितना जानता है! मनस्विद कहते हैं कि आइंस्टीन जितना जानता है, शायद मनुष्य जाति के इतिहास में इतना किसी आदमी ने कभी नहीं जाना, जानकारी का जहां तक संबंध है। खुद

आइंस्टीन चकित था कि इतनी जानकारी मेरे भीतर बनी कैसे रहती है! तो मरते वक्त वसीयत कर गया तो मेरे सिर की वैज्ञानिक जांच की जाए--मस्तिष्क की। तो मस्तिष्क प्रयोगशाला में रखा हुआ है और जांच चल रही है। अनूठा मस्तिष्क है, उसकी जानकारी बड़ी है! लेकिन आत्मा? आत्मा वही है, जहां तुम्हारी है; उसमें कोई फर्क नहीं है।
तो दो बातें ख्याल कर लें--एक तो जानकारी का परिणात्मक विस्तार, और एक आत्मा का गुणात्मक विस्तार।
कबीर के पास कुछ भी नहीं है, जो तुमसे ज्यादा है। तुम्हारे पास मकान बड़ा कबीर से, तुम्हारे पास दुकान बड़ी कबीर से, तुम्हारे पास स्मृति बड़ी कबीर से, तुम्हारे पास अनुभव भी बड़ा कबीर से--फिर भी कबीर तुमसे बड? हैं। और तुम जन्मों-जन्मों तक इसी यात्रा में चलते रहो, जिसमें चल रहे हो, तो तुम कबीर के पैर की धूल को भी न पा सकोगे। मामला क्या है?
कबीर किसी और आयाम में हैं--आत्मा, अस्तित्व बीइंग।
दो आयाम ध्यान रख लेंः नोइंग--जानकारी; और बीइंग--अस्तित्व, होना।
ये कबीर और बुद्ध और क्राइस्ट, और कृष्ण को हम जो इतना सम्मान देते हैं, जो इतनी श्रद्धा देते हैं--इनकी जानकारी के कारण नहीं, इनके अस्तित्व की शुद्धि के कारण। इनके होने का ढंग और है। इनके होने का ढंग हमसे बिल्कुल ही भिन्न है। ये हमारे साथ रहते हुए भी हमारे साथ नहीं; किसी और लोक के निवासी हैं। इसलिए हम इस तरह के पुरुषों को अवतार कहे हैं। अवतार का मतलब है कि वह हमारे बीच हैं, लेकिन हमसे पैदा नहीं हुए। अवतार का मतलब हैः हमारे बीच हैं लेकिन उनका आना किसी पार के लोक से हुआ है।
जैसे अंधेरे कमरे में, छोटा सा छिद्र हो, छप्पर में, और सूरज की किरण उतरती है, वह अवतरण है। वह किरण भी नहीं है, अंधेरे से भरे कमरे में, जहां अंधेरा है, वहीं वह किरण भी है। दोनों के होने का ऊपरी ढंग एक सा है, लेकिन भीतर ढंग बहुत भिन्न है। कहां अंधेरा, कहां किरण--बिल्कुल विपरीत हैं! किरण आती है सूर्य के लोक से--वह अवतरण है। अंधेरा इस पृथ्वी का है। वह कहीं से भी नहीं आता। वह सदा यहीं है। किरण आकर उसको तोड़ देती है, किरण चली जाती है, फिर वह अपनी जगह ले लेता है। वह कहीं आता-जाता नहीं। अंधेरे में कोई गति नहीं है। अंधेरे में कोई विकास नहीं है। अंधेरे में कोई रूपांतरण नहीं है। बस अंधेरा जैसा का तैसा बना रहता है। अंधेरे से ज्यादा मृत, तुम कोई और चीज न पा सकोगे। पत्थर भी थोड़ा हिलता-डुलता है। पहाड़ भी सरकते हैं। महाद्वीप भी यात्रा करते हैं। पहाड़ भी बढ़ते हैं, छोटे बड़े होते हैं। उनमें भी गति है और जीवन है। अंधकार इस जगत में सब से भयंकर मृत्यु है। इसलिए हम सारी दुनिया में मृत्यु को अंधकार की तरह चित्रित करते हैं। यमदूत हों, मृत्यु के देवता हों, उनको हम काला चित्रित करते हैं। उकसे पीछे कारण हैं। क्योंकि अंधेरे से ज्यादा जीवन-शून्य और कुछ भी नहीं। वह हिलता-डूलता भी नहीं, बढ़ता-घटता भी नहीं; बस वैसे का वैसे ही पड़ा है, जहां का तहां है। किरणें आती हैं, छेद देती हैं। किरणें चली जाती हैं, वह फिर वापिस फिर घना हो जाता है, अपनी जगह।
अवतरण कहते हैं हम उस घटना को, कि कोई हमारे पड़ोस में ही बैठा हो, फिर
भी हमारे पास न हो।
कबीर तुम्हारे पास ही बैठे हों तो भी तुम्हारे पास नहीं। परमात्मा के पास हैं--तुमसे बहुत दूर यह उनका परमात्मा के पास होना ही उनकी मह Ÿा है। तो गुरु और शिष्य के बीच गुणात्मक भेद है। शिक्षक और विद्यार्थी के बीच परिमाणात्मक भेद है। शिक्षक और विद्यार्थी के बीच किसी तरह की श्रद्धा अपेक्षित नहीं है। गुरु और शिष्य के बीच बिना श्रद्धा के कुछ भी घटेगा नहीं, क्योंकि गुरु और शिष्य हृदय से जुड़े हैं। हृदय यानी प्रेम। और प्रेम का जो परम रूप है, उसका नाम है श्रद्धा। प्रेम का जो शुद्धतम रूप है, उसका नाम है श्रद्धा। जहां वासना खो गई है बिल्कुल। प्रेम का जो निकृष्ट रूप है, वह है काम।
तो प्रेम के तीन रूप हैं। एक काम, वह निकृष्ट रूप है। जहां प्रेम नाममात्र को हैः एक प्रतिशत प्रेम, निन्यानबे प्रतिशत वासना है। फिर एक मध्य का तल है, जहां पचास-पचास प्रतिशत है; जहां प्रेम और वासना बराबर-बराबर है। हमारे जीवन में अगर में इस दूसरे प्रेम का भी पता चल जाए तो बहुत

बड़ी घटना है। फिर एक तीसरी घटना है, जहां वासना एक प्रतिशत रह गई और प्रेम निन्यानबे प्रतिशत--उस अवस्था का नाम श्रद्धा है।
कौन सी वासना बचती है श्रद्धा में एक प्रतिशत? मुक्त होने की वासना, बस। निन्यानबे प्रतिशत जहां वासना है और एक प्रतिशत प्रेम--वहां कौन सा प्रेम है? बंधने का प्रेम, किसी से बंधे हुए होने की आकांक्षा। एक प्रतिशत प्रेम बंधन का। अकेले होने में डर है, किसी से बंधा रहूं, कोई संगी साथी हो! निन्यानबे प्रतिशत शोषण है, बस वह एक प्रतिशत प्रेम हैः किसी से बंधा रहूं! बंधन! इसलिए हम अगर विवाह को बंधन कहते हैं तो ठीक ही कहते हैं। बस वहां उतना प्रेम है जितना रस्सी बांधने के लिए जरूरी है, बाकी निन्यानबे प्रतिशत एक-दूसरे का शोषण है।
श्रद्धा में शोषण बिल्कुल खो गया; बस एक प्रतिशत वासना बची है। और वह वासना इतनी ही है कि उतनी देर तक बंधा रहूं जितनी देर तक मुक्ति का मार्ग न मिल जाए। जैसे ही मुक्ति का मार्ग मिला, मुक्ति की घटना घटी, वह बंधन भी टूट जाता है। शिष्य उसी क्षण गुरु हो जाता है।

श्रद्धा का अर्थ हैः अनन्य प्रेम। अब थोड़ा समझ लेना जरूरी है। जहां वासना होती है, वहां तो कारण भी होता है। कारण की वजह से ही हम प्रेम करते हैं। एक स्त्री सुंदर है। उसके व्यक्ति से हमारा मेल खाता है, उसकी आंखें हमें पसंद हैं, उसकी वाणी मधुर है--कारण है। यह प्रेम सदा नहीं रह सकता। क्योंकि कारण कल खो जाएंगे। स्त्री बूढ़ी होगी, वाणी कर्कश हो जाएगी, चेहरा दीन-दीन हो जाएगा, चमड़ी सिकुड़ जाएगी, सौंदर्य खो जाएगा, तब कैसे प्रेम टिकेगा? क्योंकि कारण से था। कारण खो गए... इसलिए अक्सर प्रेम शुरू तो होता है, लेकिन टिकता नहीं, फिर हम ढोते हैं। फिर हम सिर्फ अभिनय करते हैं। वास्तविक तो कभी का खो गया होता है। लेकिन यह मानते में भी पीड़ा होती है कि अब प्रेम नहीं है। तो हम उसको सम्हालकर चलते हैं; एक-दूसरे को धोखा देते रहते हैं। इसलिए जिंदगी में इतना धोखा है। क्योंकि जहां प्रेम भी धोखा होगा, वहां और क्या होगा जो धोखा न हो?
श्रद्धा अकारण है। प्रेम में तो कारण है, क्योंकि वासना है-- निन्यानबे प्रतिशत। श्रद्धा तो बिल्कुल अकारण होगी; क्योंकि एक प्रतिशत वासना है--वह मुक्त होने की वासना है। तो श्रद्धा कैसे पैदा हो? और अकारण का अर्थ है, अतक््रय होगी। इसलिए तुम श्रद्धा के लिए उ Ÿार नहीं दे सकते। अगर किसी की मुझे में श्रद्धा है, तुम उससे पूछो, वह तुम्हें संतुष्ट न कर सकेगा। यह हो सकता है कि तुम उसे संतुष्ट कर दो कि गलत है तुम्हारी श्रद्धा। तुम पच्चीस तर्क देकर खंडित कर सकते हो उसकी श्रद्धा, लेकिन वह अपनी श्रद्धा के संबंध में एक भी तर्क न दे पाएगा। और अगर वह समझ गया है श्रद्धा का सार, तो वह तर्क देने कि कोशिश भी न करेगा। और अगर श्रद्धा का रस चख लिया है, उसने, तो वह हंसेगा तुम्हारे तर्कों पर। और तुम्हें उसका व्यवहार अतक््रय मालूम पड़ेगा। क्योंकि तुम पच्चीस तर्क दे रहे हो श्रद्धा को खंडित कर सकते हैं। लेकिन, वह तुम्हारे कोई तर्क उस पर कोई असर नहीं करते। तर्क पड़ते हैं उस पर और गिर जाते हैं।
श्रद्धा अतक््रय है। होती है तो होती है, नहीं होती है तो नहीं होती। कोई चेष्टा करके श्रद्धा नहीं ला सकता। इसलिए तुम कैसे गुरु को चुनोगे? तुम लाख उपाय करो, तुम श्रद्धा थोड़ी पैदा कर सकते हो? इसलिए गुरु को चुनने का एक ही उपाय है, और वह यह है कि गुरु तुम्हें चुन लें, तुम कैसे चुनोगे? पर तुम गुरु को चुनने में बाधा डाल सकते हो। इसलिए शिष्य होने की एक ही कला है कि वह उपलब्ध रहे। वह चुन नहीं सकता। कोई कारण नहीं है चुनने का कोई तर्क नहीं है चुनने का। और अगर तर्क से तुम चुनते हो, तो जानना वह श्रद्धा नहीं है, वह बुद्धि का ही खेल है। तुम कहते हो, यह आदमी जो कहता है, ठीक कहता है--इसलिए उसको हम अपना गुरु बनाते हैं। तो तुमने गुरु चुना ही नहीं। तुम शिक्षक की ही तलाश कर रहे हो अभी। तुमने देखा कि इस आदमी का आचरण ठीक है। तुम कौन हो, कैसे तुम आचरण जानोगे कि ठीक क्या है, गलत क्या है?
काश तुम्हें ठीक और गलत का ही पता होता, तो तुम खुदा ही गुरु थे। तुम्हें कोई खोजने की जरूरत न थी। तुमने कैसे चुनोगे कि इसका आचरण ठीक है?

समाज ने जो तुम्हें सिखाया है कि क्या ठीक है, क्या गलत है; क्योंकि है, क्या अनीति है--वही समाज का सिखावन तुम इस पर लगाओगे? तुम ज्ञान के माध्यम से गुरु को चुन रहे हो, श्रद्धा के माध्यम से नहीं। तो तुम उसी को गुरु चुन लोगे, जिसको तुम सोचते रहे हो कि गुरु होना चाहिए। अगर तुम जैन घर में पैदा हुए हो, तुम--यह आदमी उपवास करता है, एक बार खाना खाता है, रात भोजन नहीं लेता, पानी नहीं छूता, गरम पानी पीता है--चुन लोगे, गुरु का काम पूरा हो गया! इतनी सस्ती होती परीक्षा, काश, कि पानी पीने से तुम पता लगा लेते! ... तो अगर यह ठंडा पानी पी रहा है, तो बात खतम हो गई!
दिगंबर जैन-मुनि स्नान नहीं करते। तो अगर तुम स्नान करते हो, बात खतम
हो गई।
एक घर में मैं रुक था। मैं दिन में दो दफे स्नान करता। उन्होंने कहा, क्या कर रहे हैं आप? ज्ञानी होकर दो बार स्नान? क्योंकि पानी में तो जीवाणु हैं, उनकी हत्या होती है। जैन मुनि--दिगंबर जैन-मुनि स्नान नहीं करते। बदबू आती है शरीर से। अगर तुम्हारे समाज ने तुम्हें स्वच्छता दिखाई हो तो तुम दिगंबर जैन-मुनि को गुरु न मान सकोगे कि यह कैसा गुरु! बदबू आती है मुंह से, क्योंकि वह ठीक से दतुवन नहीं सकता, मंजन का उपयोग नहीं कर सकता; या करे तो चोरी करनी पड़ती है, छिपाकर करना पड़ता है।
मगर तुम्हारी धारणा से अगर तुमने चुनोगे तो तुमने गुरु चुना ही नहीं, तुम ही गुरु हो। क्योंकि धारणा तो तुम्हारी ही तुम लिए चल रहे हो। श्रद्धा का अर्थ है, मैं अपनी सारी धारणा छोड़ता हूं। श्रद्धा का अर्थ है, अपनी सारी धारणाओं को एक किनारे रखकर तुम्हें मैं सीधा देखता हूं। मैं सोचूंगा नहीं, देखूंगा। मैं विचार न करूंगा, तुम्हारी सुगंध लूंगा। मैं अपनी मान्यताएं तुम्हारे पास न लाऊंगा, मैं उनका बीच में परदा खड़ा न करूंगा। तुम्हारी आंख में सीधा झुकूंगा।
श्रद्धा बुद्धि को एक तरफ रखकर उत्पन्न होती है। और जो व्यक्ति भी इसके लिए राजी है, उसके लिए गुरु उपलब्ध हो जाएगा। गुरु सदा मौजूद है; जब तुम तैयार हो, तभी उपलब्ध हो जाता है। तुम्हारी तैयारी की ही कमी है। तब ऐसा व्यक्ति एक गुरु से दूसरे गुरु, तीसरे गुरु के पास जाएगा भी, तो खुले मन से जाएगा। जहां घटना घट जाएगी वहां रुक जाएगा। यह घटना है जो घटती है; तुम इसे घटा नहीं सकते। इसलिए मैंने कहा, तुम सिर्फ उपलब्ध हो सकते हो। अनेक गुरु हैं। हर काल में अनेक लोग ज्ञान को उपलब्ध होते हैं। तुम उनके पास उपलब्ध अवस्था में जाओ, बस। कहीं न कहीं हृदय का मेल बैठ जाएगा। और जब हृदय का मेल बैठ जाता है... कोई बिठा नहीं सकता। जैसे प्रेम घटता है, वैसे ही श्रद्धा भी घटती है। तुम कोई तर्क दे सकते हो कि इस स्त्री से तुम्हारा प्रेम क्यों हो गया है? तुम्हारे सब तर्क झूठे होंगे। क्योंकि वस्तुतः तर्क तुम बाद में खोजोगे, प्रेम पहले हो जाएगा। तब तुम युक्तियां खोजोगे कि क्यों हो गया।
प्रेम एक घटना है। इसलिए लोग कहते हैं, प्रेम अंधा है। ठीक कहते हैं। लेकिन बिना प्रेम के आंखें बेकार हैं। आंख रखकर भी क्या करोगे? अंधा प्रेम भी चुनने जैसा है। क्योंकि अंधे प्रेम के पास भी देखने की एक क्षमता है, जो तुम्हारी आंखों के पास नहीं है। श्रद्धा भी अंधी है। यही तो अर्थ है उसके अतक््रय होने का। होती है तो होती है, नहीं होती है तो नहीं होती। तुम्हारे किए कुछ भी न होगा। तुम सिर्फ उपलब्ध रहो। गुरुओं की सन्निधि में रहो। सत्संग में जाओ, उनकी संगत में बैठो, कहीं घट जाएगा। और जब घट जाएगा, तब तुम पाओगे कि तुम्हारे पास कहने को कुछ भी नहीं है। तुम कोई तर्क न दे सकोगे। क्योंकि तुम्हारे तर्क को खंडित करने के पच्चीस उपाय किए जा सकते हैं। अगर कबीर को तुम कहो कि मेरे गुरु हैं, तो जैन कहेगा, ये कैसे तुम्हारे गुरु हो सकते हैं; उनकी पत्नी है और बच्चा है--ये ब्रह्मचारी नहीं! और अभी भी इन्होंने पत्नी, बच्चों को नहीं छोड़ा है, ये कैसे गुरु हो सकते है! ये अभी भी कपड़ा बनाते हैं और बेचते हैं! नहीं ये गुरु नहीं हो सकते। तो कबीर के बगल में भी जैन बसा रहे तो कबीर से कोई संबंध न जुड़ेगा। सूफी फकीर हैं। अगर तुम उनसे कहो कि ये महावीर ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं, हमारे गुरु हैं, तो सूफियों को माननेवाले उनको गुरु नहीं मानेंगे। वे कहेंगे कि गुरु तो सदा अपने को छिपाता है। ये नग्न होकर घूम रहे हैं, यह तो

प्रकट होने का ढंग है। गुरु तो अपने को ऐसा छिपा लेता है कि खोजनेवाला बामुश्किल खोज पाता है। गुरु जाहिर नहीं करता; क्योंकि गुरु कोई संसार की घटना नहीं है। वह सिर्फ उसी के लिए है, जिसको परमात्मा की तलाश है। और जिसको परमात्मा की तलाश है, गुरु कहीं भी छिपा हो, वह खोज लेगा।
हिंदुओं ने महावीर का उल्लेख भी नहीं किया अपने शास्त्रों में, जैसे
यह आदमी हुआ ही नहीं, क्यों करें उसका उल्लेख? क्योंकि यह उन्हें मालूम ही न पड़ा। धारणाएं... । और तब अड़चनें हो जाती हैं।
एक भक्त से मैं बात कर रहा था। ज्ञानी है, पंडित है। जीसस की बात चल पड़ी तो उन्होंने कहा कि और कुछ भी हो, मैं जीसस को अवतार नहीं मान सकता; क्योंकि अवतार फांसियों पर नहीं मरते। निश्चित ही, न तो राम फांसी पर मरे हैं, न बुद्ध फांसी पर मरे हैं। तो जीसस फांसी पर मरे हैं। और फिर उन्होंने कहा कि फिर यह भी बात ध्यान में रहनी चाहिए कि आदमी अपने कर्मों का फल भोगता है। कर्म का सिद्धांत! जरूर जीसस ने कोई पाप कर्म किए होंगे अतीत में, उन्हीं का फल भोग रहे हैं, सूली पर लटके हैं। हिंदुस्तान में जीसस को कोई गुरु मानने को तैयार हनीं हो सकता, क्योंकि सूली पर लटका हो गुरु!
जैन कहते हैं कि महावीर अगर रास्ते पर चलते हों, कांटा सीधा पड़ा हो तो तत्क्षण उलटा हो जाता है। क्योंकि महावीर के कर्म इतने शुभ, कि कांटा चुभ कैसे सकता है। क्योंकि दुख तो अपने ही कर्मों के कारण होता है। तो कांटा सीधा पड़ा हो, महावीर को आते देख कर तत्क्षण उलटा हो जाता है, कहीं चुभ न जाए। तो सूली... सोच सकते हो महावीर को सूली पर? असंभव! सूली लग ही कैसे सकती है!
लेकिन अगर ईसाई को पूछो, तो ईसाई कहता है कि तुम्हारे महावीर, तुम्हारे बुद्ध, तुम्हारे राम, कृष्ण कुछ भी नहीं। जीसस का मुकाबला! जिसने लोगों को मुक्त करने के लिए अपना जीवन दिया; जिसने, सारा जगत पाप से मुक्त हो सके--इसलिए सूली भोगी! तुम्हारे महावीर, बुद्ध, सब स्वार्थी हैं, अपने- अपने ध्यान में लगे हैं; जगत की उनको कोई चिंता नहीं। अपनी आत्मा मुक्त हो जो, इसकी चिंता है। जीसस ने, सब कैसे मुक्त हो सकें, इसकी चिंता की। यह अवतारी पुरुष है, यह ईश्वर का बेटा है! बाकी तो सब छोटे-छोटे स्वार्थी हैं। कैसे तय करोगे, कौन गुरु है? तय करने का कोई उपाय नहीं, तुम सिर्फ उपलब्ध होना। अगर तुम उपलब्ध रहे तो तुम अचानक किसी दिन पाओगे किसी व्यक्ति के निकट श्रद्धा का जन्म हुआ। एक फूल खिला तुम्हारे भीतर जो अतक््रय है, जिसको तुम सिद्ध न कर करोगे; जिसको तुम सिद्ध करने जाओगे तो हारोगे; जिसको तुम किसी को समझाना चाहोगे तो मुसीबत में पड़ोगे। उसका कोई भी खंडन कर सकता है। गुरु, श्रद्धा के बिना घटता ही नहीं; क्योंकि श्रद्धा की आंख से ही देखा जा सकता है। और गुरु और शिष्य के बीच जो संबंध है, वह विचार का नहीं है--वह श्रद्धा का है, वह प्रेम का है। वह अत्यंत आत्मीय संबंध है। उससे बड़ा आत्मीय कोई संबंध जगत में नहीं है। पति-पत्नी का संबंध भी आत्मीय नहीं है। बाप-बेटे का संबंध भी आत्मीय नहीं है। भाई-भाई का संबंध भी आत्मीय नहीं है। फासले हैं, क्योंकि सार संबंध शरीर के ही हैं। तुम्हारे पिता, तुम्हारे पिता हैं क्यों? क्योंकि उनके शरीर से तुम पैदा हुए हो, और क्या संबंध है? तुम्हारी मां, तुम्हारी मां हैं--क्यों? क्योंकि उस शरीर से तुम पैदा हुए हो। ये संबंध सब शारीरिक हैं। इसमें आत्मा का क्या संबंध है? भाई से तुम जुड़े हो, बहन से तुम जुड़े हो; क्योंकि एक ही शरीर की तुम संतान हो। लेकिन यह संबंध शरीर का है। एक ही संबंध है जगत में जो शरीर का नहीं है, वह गुरु और शिष्य के बीच का संबंध है। उससे कोई संबंध शरीर का नहीं है। उससे संबंध आत्मा का है। और जिससे आत्मा का संबंध है, उससे ही परमात्मा की उपलब्धि हो सकेगी।
अब हम इस सूत्र को समझें।
यह सूत्र अत्यंत महत्वपूर्ण है। एक-एक शब्द को जतन करके समझना और एक-
एक शब्द को सूरती में सम्हालकर रखना।
गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिए अंध।
महादुखी संसार में आगे जम के बंध।।
जो गुरु के मनुष्य की भांति मानते हैं, उन्हें अंधा जानना। क्योंकि गुरु को तो जब भगवान की भांति जानोगे, तभी जोड़ बनेगा। अगर गुरु भी मनुष्य

है, तो तुम्हारे संबंध शारीरिक होंगे। आदर भी हो सकता है, लेकिन आदर अकारण होगा, अतक््रय नहीं होगा। श्रद्धा नहीं होगी। श्रद्धा और आदर में यही फर्क है। आदमी का अर्थ है, कारण है। यह आदमी ज्यादा जानता है, आचारणवान है, त्यागी है, ऐसा है, वैसा है। कारण है तो आदर है। श्रद्धा अकारण है। इसलिए आदर तोड़ा जा सकता है, श्रद्धा तोड़ी नहीं जा सकती। क्योंकि कल पक्का पता चल जाए कि नहीं, यह उतना आचरणवान नहीं, तो आदर टूट जाएगा, श्रद्धा नहीं टूटेगी; क्योंकि श्रद्धा कभी कारण के कारण थी ही नहीं, तो उसके आचरण के कारण टूटने क्या सवाल है? कल पता चल जाए, यह आदमी इतना ज्ञानी नहीं जितना हम सोचते थे, तो भी श्रद्धा नहीं टूटेगी, आदर टूट जाएगा।
जो गुरु को मनुष्य के भांति जानते हैं, कबीर कहते हैं, तेर नर कहिये अंध--वह अंधे हैं; उनके पास आंख नहीं है।
निश्चित ही, गुरु भी मनुष्य है, पर मनुष्य ही नहीं है। मनुष्य तो है ही। हमारे जैसा शरीर है, हमारे जैसी भूख लगती है, हमारे जैसी प्यास लगती। धूप आए तो पसीना आता--मनुष्य तो है ही। इन अंधों को समझाने के लिए बड़ा कहानियां गढ़नी पड़ीं।
तो जैन कहते हैं कि महावीर को पसीना नहीं आता।... ये अंधों को समझाने
के लिए! महावीर को पसीना आएगा ही। प्लास्टिक के बने हों तो बात अलग। पसीना स्वाभाविक है। लेकिन यह कहानी क्यों बढ़नी पड़ रही है। यह कहानी गढ़नी पड़ रही है, क्योंकि अगर पसीना आएगा तो भक्त कहेगा, फिर मनुष्य ही है।... महावीर पाखाना नहीं जाते। इससे बड़ी कब्जियत, महा कब्जियत दुनिया में कभी हुई ही नहीं है! लेकिन भक्त को समझाने के लिए महावीर को फंसाना पड़ता है। क्योंकि अगर महावीर भी पाखाना जाते हैं, तो फिर हम जैसे ही हैं। फिर भेद क्या? भेद खड़ा करने के लिए... लेकिन उस भेद से क्या फर्क पड़ेगा? ज्यादा से ज्यादा आदर पैदा होगा, श्रद्धा नहीं हो सकती। श्रद्धा तो तभी होगी जब महावीर को पसीना भी निकलता हो, भूख भी लगती हो, महावीर बीमारी भी पड़ते हों, फिर भी तुम उनमें परमात्मा को देख पाओ, तभी श्रद्धा पैदा होती है।
शरीर तो घर है। और शरीर तो वैसा ही है, जैसा तुम्हारा है। नहीं तो महावीर मरें कैसे, पैदा ही कैसे होंगे? शरीर तो ठीक तुम्हारे ही जैसा है। लेकिन तुमने अपने को शरीर ही मान रखा है, और महावीर ने अपने को उसके ऊपर जान लिया है। तुम अपने शरीर के साथ जुड़े हो, तादात्म्य हो गया है। महावीर अतिक्रमण कर गए हैं। वह शरीर में है, लेकिन शरीर ही नहीं हैं। मिट्ठी का दीया है, लेकिन ज्योति मिट्टी नहीं है। तुम्हें अगर दीया ही दिखाई पड़ा, तो तुम अंधे हो, कबीर कहते हैंः ज्योति को देखना!
वह ज्योति, निश्चित ही, उस ज्योति में कोई पसीना नहीं आता; उस ज्योति में कोई दुर्गंध भी नहीं है। इस ज्योति को भूख भी नहीं लगती, प्यास भी नहीं लगती; लेकिन उस दीए को तो प्यास भी लगेगी, तेल की भी जरूरत होगी, थकेगा भी, टूटेगा भी, मरेगा भी।
गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अंध।
जो लोग गुरु को भी मनुष्य की भांति देखते हैं, वे अंधे हैं। अंधे इसलिए हैं कि कोई संबंध भी न जुड़ जाएगा। आंखें ऊपर उठाओ।
मंसूर को सूली लगी। और जब मंसूर को सूली लगी, तो वह हंस रहा था। किसी
ने भीड़ में से पूछा कि मंसूर, क्यों हंसते हो, क्या प्रसन्नता की बात है? तो उसने कहा कि तुम कम से कम थोड़ी आंखें तो ऊपर उठा कर देख रहे हो। सूली लगी थी तो वह ऊपर लटका था, लोगों को आंखें ऊपर उठा कर देखना पड़ा रहा था। तो मंसूर ने कहा कि मैं प्रसन्न हो रहा हूं कि चलो, तुमने थोड़ी तो आंखें ऊपर उठा कर देखा।
मंसूर बड़ी प्रतीक की बात बोल रहा है, भीड़ समझी नहीं होगी। भीड़ समझ ही नहीं सकती। जो उसे सूली लगा रहे, वह उसे क्या खाक समझें होंगे! लेकिन मंसूर ने यह कहा कि अगर मेरी फांसी भी लग जाए, और तुम थोड़ी सी आंख उठा कर देख लो तो काफी है। तो फल मिल गया, पर्याप्त है। मेरी फांसी का सवाल नहीं है; तुम्हारी आंख थोड़ी ऊपर उठ जाए... ।
गुरु को देखना, शरीर में वह निश्चित है, लेकिन शरीर ही नहीं है। श्रद्धा से ही देख पाओगे। जब भी तुम किसी को श्रद्धा से देखते हो तो शरीर खो जाता है। जब भी तुम किसी को बड़े गहन प्रेम से देखते हो, तो शरीर जाता है।

शरीर की जगह व्यक्तित्व, आत्मा, अस्तित्व का बोध होना शुरू हो जाता है। जब भी तुम किसी को प्रेम करते हो, तो वहां मनुष्य नहीं होता, वहां परमात्मा होता है। साधारण जीवन में भी जब तुम किसी के प्रेम में पड़ जाते हो, तो दूसरा व्यक्ति साधारण नहीं दिखाई पड़ता, प्रेम की आंख तत्क्षण असाधारण को उघाड़ देती है।
मजनू लैला के पीछे दीवाना है। उसके गांव के राजा ने उसे बुलाया और कहा
तू पागल है। यह लैला कुरूप है और साधारण है। क्यों फालतू परेशान हो रहा है। तुम पर दया आती है। क्योंकि वह रोता है, चिल्लाता है, गांव-गांव घूमता है, लैला-लैला की रट लगाए रखता है। वह मंत्रमुग्ध है। राजा को भी दया आ गई, लोग भी उसके लिए रोने लगे। और राजा ने कहा कि मेरे महल से मैं लड़कियों को बुलवाता हूं, तू सुंदर से सुंदर लड़की चुन ले। राजा ने एक दर्जन लड़कियां लाकर खड़ी कर दीं, वह सुंदरतम लड़किया थीं। लेकिन राजा ने देखा, उसकी आंखों से आंसू टपक रहे हैं। वह हर लड़की को गौर से देखता है और कहता हैः नहीं, लैला नहीं है। फिर वह राजा से बोला, क्षमा करें, मेरी और आपकी आंख में फर्क है। आपको लैला साधारण दिखाई पड़ती है। मुझे उसके सिवाय कोई दिखाई नहीं पड़ता, कहीं कुछ गड़बड़ है। होगी भूल मेरी ही। लेकिन लैला में मुझे कुछ दिखाई पड़ता है जो आपको दिखाई नहीं पड़ता। और मैं अपनी ही आंख से जी सकता हूं, आपकी आंख से जीने का मेरे पास क्या उपाय है?
जब भी कोई आदमी साधारण प्रेम में गिरता है, वह प्रेम जहां एक प्रतिशत प्रेम होता है और निन्यानबे प्रतिशत प्रेम और एक प्रतिशत वासना होती है, तो भी दूसरे व्यक्ति में तत्क्षण कुछ अलौकिक की--...

(मिसिंग)

संगमरमर की मूर्ति न मुरझाती, न जन्मती, न मरती, सनातन है! वहां तुम घुटने टेक कर आसानी से खड़ा हो जाते हो। तुम इतने झूठे हो कि झूठे की ही पूजा कर पाते हो, सच्चे की पूजा करना मुश्किल। तुम इतने मुर्दा हो मरे की ही पूज पाते हो, जीवंत से तुम्हारा संबंध नहीं जुड़ता। गुरु जीवंत घटना है। उसकी मूर्ति बनाने से कुछ भी न होगा। मूर्ति तो तुम बनाओगे, लेकिन वह जब मर जाएगा, तब कुछ भी हल न होगा, कोई राज न मिलेगी उससे।
और ध्यान रखना, मूर्ति के सामने झुकने में अहंकार को कोई चोट नहीं लगती। वहां कोई है ही नहीं, तुम्हीं खरीद कर बाजार से मूर्ति लाए हो। तुम्हें मालिक हो। तुम चाहो तो अभी इस मूर्ति को बाहर करो। यह मूर्ति कुछ भी न कर सकेगी। तुम भोग लगाओ तो भोग लगता है। तुम कहो, भगवान सो जाओ, तो सोना पड़ता है। तुम दरवाजा बंद करो कि पट बंद हैं, तो पट बंद हो जाते। तुम मालिक हो! यह भगवान सिर्फ तुम्हारा खिलौना है। इनके सामने तुम्हारे अहंकार को कोई चोट नहीं लगती। लेकिन एक जीवित व्यक्ति के सामने तुम जब झुकते हो, तब अड़चन आती है। तुम्हारा अहंकार ही तो श्रद्धा में बाधा है। ध्यान रखना, तर्क बाधा नहीं है, अहंकार बाधा है। तर्क तो सिर्फ तरकीब
है अहंकार को छिपाने की, कि तुम कहते हो कि कैसे झुकें! जब तक वह आदमी न मिल जाए तो झुकने योग्य है--तब तब कैसे झुकें! वह आदमी तुम्हें कभी न मिलेगा, क्योंकि तुम्हारा तर्क सदा कुछ खोज लेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन बहुत दिन अविवाहित रहा। मैंने उससे पूछा कि क्या कारण है? अब काफी समय हुआ। अब तुम खोज ही लो, अन्यथा समय जा रहा है। उसने कहा, खोज में ही तो लगा हूं। लेकिन मुझे ऐसी स्त्री चाहिए, जो समग्र रूप में पूर्ण हो। सैकड़ों स्त्रियां मिलीं, लेकिन पूर्ण कोई भी नहीं और जब तक पूर्ण न हो, तब तक मैं प्रेम न होने दूंगा।
तो मैंने कहा, एक भी स्त्री न मिली तुम्हें जीवन भर की तलाश में? उसने कहा, नहीं, एक दो बार मिली भी, लेकिन वह भी पूर्ण पति की तलाश में थीं।
तुम्हें अगर कभी पूर्ण गुरु मिलेगा भी तो ध्यान रखना, वह भी पूर्ण शिष्य की तलाश में है। वह मिलेगा ही नहीं। वह तो बचने की तरकीब है।
गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिए अंध।
महा दुखी संसार में, आगे जम के बंध।।

यहां वह दुखी होंगे। दुख खबर है कि तुम गलत हो। सुख खबर है कि तुम सही हो। इसको कसौटी समझो। अगर तुम्हारा जीवन दुखी है तो जानना कि तुम गलत हो; तुम जो भी कर रहे हो वह भ्रांत है। दुनिया में भूल है। क्योंकि सुख के फूल तभी लगते हैं जब तुम बुनियादी रूप से सही हो।

और ध्यान रखना, अगर कोई मनुष्य सुखी हो तो तर्क देकर उसे, उसके सुख को नष्ट करने की कोशिश मत करना; क्योंकि सुखी होना ही एकमात्र कसौटी है कि वह सही है।
मेरे पास लोग आते हैं। दो दिन पहले एक मित्र ने कहा कि आप लोगों को पागल किए हुए हैं; मुझे तो नहीं दिखाई पड़ता कि कोई परमात्मा कहीं है, या कि उसे पाया जा सकता है। आप लोगों को पागल किए हुए हैं। मैंने कहा, वह मेरा और लोगों के बीच का मामला है। आप उसमें नहीं आते। आप स्वस्थ हैं, प्रसन्न हैं--खुशी की बात है। उन्होंने कहा, वही तो मुसीबत है कि न स्वस्थ हूं, सुखी हूं। तो मैंने कहा कि तुम अपने स्वस्थ और सुखी होने का ही ख्याल करो, तो आज नहीं कल, परमात्मा के करीब पहुंच जाओगे। तुम इसकी फिकर मत करो कि परमात्मा है या नहीं। क्योंकि परमात्मा कोई तर्क की निष्पिŸा नहीं है। परमात्मा सुख की गहन प्रतीति में उठा हुआ महोभाव है। जब तुम सुखी हो, तब तुम मान ही नहीं सकते कि परमात्मा नहीं है, अन्यथा सुख कैसे होगा? जब तुम सुखी हो और तुम्हारा हृदय गदगद है, और तुम्हारे रोएं-रोएं में गीत है, तब तुम मान ही नहीं सकते कि यह अस्तित्व चेतना से शून्य हो सकता है! क्योंकि तुम इस अस्तित्व में वही देखोगे, जो तुम्हारे भीतर घटित हो रहा है। तुम दुखी हो तो अस्तित्व नर्क है, परमात्मा शून्य है। तुम सुखी हो तो अस्तित्व स्वर्ग है--कण-कण परमात्मा से आप्लावित, भरा हुआ! यह सवाल निष्पिŸा का नहीं है कि तुम सोचो परमात्मा है या नहीं--विचार करो, दर्शनशास्त्र में जाओ, शास्त्रों का अध्ययन करो, तर्क जुटाओ--यह सब पागलपन है। तुम सुखी हो-- तत्क्षण वह है; तुम दुखी हो--वह खो गया!
तो मैंने उनसे कहा कि मुझे और मेरे पागलों को तुम छोड़ो। अगर वह सुखी हैं, तो क्या फर्क पड़ता है, परमात्मा है या नहीं। और तुम अगर दुखी हो तो क्या फर्क पड़ता है कि परमात्मा है या नहीं? आखिरी निष्पिŸा तो सुख और दुख होगी। आखिरी निर्णय तो यह होगा कि आदमी के जीवन में आनंद का फूल लग सका, या नहीं लग सका? वही निर्णायक है। तो तुम उसी तरफ ख्याल रखना। और जिस व्यक्ति के पास तुम्हारे जीवन में आनंद का फूल खिलने लगें, वहां तर्क छोड़ना, वहां बुद्धि को हटा देना, वहां हृदय को खुला करना, वहां श्रद्धा फलित होगा, वहां गुरु का उदय होगा।
क्योंकि, गुरु कोई बाहय घटना नहीं है--तुम्हारी श्रद्धा से देखा गया अनुभव है। जैसे कि तुम आंख खोलते हो, सूरज कि रोशनी दिखायी पड़ती है; तुम आंख बंद कर लेते हो, अंधेरा हो जाता; श्रद्धा खोलते हो, गुरु दिखाई पड़ता है; श्रद्धा बंद करते हो, गुरु खो जाता है।
गुरु तुम्हारी श्रद्धा की आंख का अनुभव है। और श्रद्धा की आंख बुद्धि
को हमेशा अंधी मालूम पड़ेगी। और जिन्होंने श्रद्धा को पा लिया, उनके किए बुद्धि की आंख से बड़ा अंधापन नहीं। लेकिन एक बात पक्की है...
समझो, एक छोटा बच्चा है। वह जो भी कहता है, उसकी बात अनुभव की नहीं है।
एक जवान है, उसकी बात थोड़े अनुभव की है। उसने वचन भी देखा और जवानी भी देखी। एक बूढ़ा आदमी है, उसकी बात और भी अनुभव की है। उसने बचपन भी देखा, जवानी भी देखी, बुढ़ापा भी देखा। जवान और बूढ़ा जब बात करेंगे तो बात में मेल नहीं पड़ेगा, क्योंकि जवान ने अभी दो ही चीजें देखी हैं, अभी तीसरी चीज नहीं देखी। बूढ़ा जो भी जवानी के संबंध में कहेगा, उसका अर्थ सोचने जैसा है, क्योंकि उसने जवानी भी देखी, और फिर जवान की ह्यास भी देखा, और अब जवानी की विपरीत अवस्था भी देखी। और अब वह जीवन के शिखर पर पड़ा है। इसलिए हम पूरब हम पूरब में बूढ़े आदमी को आदर देते हैं; क्योंकि उसने सब देखा है। जवान को हम आदर नहीं देते, क्योंकि अभी उसे देखने को बाकी है।
पश्चिम में जवान का आदर है। वह भ्रांत है। क्योंकि जिसने सब देखा, उसकी ही बात का कोई मूल्य हो सकता है। जिस आदमी ने सिर्फ अभी तर्क देखा, संदेह देखा, उसकी बात का कोई मूल्य नहीं है। जिसने तर्क भी देखा, संदेह भी

देखा, फिर श्रद्धा भी देखी, उसकी बात का मूल्य है। क्योंकि उसने दोनों देखे।
नास्तिक बच्चे जैसा है आस्तिक बूढ़े जैसा है। सभी को नास्तिकता से गुजरना पड़ता है, लेकिन सभी आस्तिक नहीं हो पाते; क्योंकि कई बच्चे, बच्चे ही मर जाते हैं। आस्तिक ने दोनों पहलू देखे जीवन के। इनकार करके देखा और पाया कि जितना ही इनकार करो उतने ही सिकुड़ जाते हो। जितना कहो--नहीं, नहीं, नहीं--छोटे होते जाते हो। उसने दूसरा अनुभव भी देखा कि जितना कहो हां, जितना करो स्वीकार, उतने विराट होते जाते हो। कहो नहीं--आखिर में तुम्हीं बेचते हो, सिकुड़े हुए, सड़े हुए! कहो हां--तुम खो जाते हो, विराट बचता है, परमात्मा बचता है; कहो नहीं--तुम हो जाओगे अणु की भांति--क्षुद्र! कहो हां-- तुम हो जाओगे आत्मा की भांति, आकाश की भांति विराट।
महादुखी संसार में, आगे जम के बंध।
वे यहां तो दुखी होंगे ही, और बार-बार उन्हीं मरना पड़ेगा। जम के बंध। बार-बार यम आएगा, उन्हें बांधेगा और ले जाएगा। उनके कारण यम को भी बड़ा श्रम उठाना पड़ेगा। वे बार-बार जन्मेंगे, बार-बार दुख पाएंगे और मृत्यु से बार-बार गुजरेंगे।
जो व्यक्ति जाग जाता है, उसके जन्म और मृत्यु दोनों खो जाते हैं। जो आदमी परमात्मा के साथ एक हो जाता हैः फिर न आना है, न जाना है। इसे ही पूरब ने कहा है, आवागमन से मुक्ति; आने-जाने से मुक्ति। उसकी यात्रा समाप्त हो जाती है; मंजिल आ गई।
तीन लोक नौ खंड में, गुरु ते बड़ा न कोय।
करता करै न करि सके, गुरु करै सो होय।।
बड़ा कठिन वचन है। अगाध श्रद्धा हो तो ही समझ में आ सकता है। आस्तिक भी थोड़ा डरेगाः ये कबीर थोड़ा सीमा के बाहर जा रहे हैं! आस्तिक भी कहेगा कि ठीक था कि गुरु पर श्रद्धा हो; लेकिन कबीर अब यह कह रहे हैं, तीन लोक नौ खंड नौ खंड में गुरु ते बड़ा न कोय। पर समग्र अस्तित्व में गुरु से बड़ा कोई भी नहीं। इसलिए हम गुरु कहते हैं। गुरु कहते हैं। गुरु का अर्थ है, जिससे भारी और कुछ भी नहीं।
करता करै न करि सके--और परमात्मा भी करना चाहे, तो भी न कर पाए। गुरु करै सो होय--और गुरु जो करना चाहे, वह हो जाए। क्या मतलब परमात्मा के ऊपर गुरु को रखने में? परमात्मा के साथ रखने तक भी हम जा सकते हैं कि चलो ठीक, हमें पता नहीं श्रद्धा का, होगा कि गुरु भी परमात्मा है--लेकिन परमात्मा के ऊपर! ... कबीर अतिशयोक्त्ति करते मालूम पड़ते हैं। नहीं, कबीर यह कह रहे हैं कि साधन साध्य से बड़ा है। क्योंकि साधन के बिना तुम साध्य तक तभी न पहुंच सकोगे। मार्ग मंजिल से बड़ा है, क्योंकि मार्ग के बिना तुम मंजिल तक कभी न पहुंच सकोगे। और जब मार्ग के बिना मंजिल मिल ही नहीं सकती, तो कौन बड़ा है? जब मार्ग बिल्कुल अपरिहार्य है, उसके बिना इंच भर गति नहीं तो मंजिल सिर्फ मार्ग का आखिरी छोर हुआ। जब सीढ़ी के बिना तुम चढ़ ही न सकोगे छप्पर पर, तो सीढ़ी छप्पर से बड़ी हो गई।
करता करै न करि, सके, गुरु करै सो होय।
और परमात्मा भी जो करना चाहे, तो न कर पाए, वह भी गुरु करना चाहे तो कर सकता है। क्यों? उसके कई कारण हैं। समझने की कोशिश करें।
मनुष्य की पहली अवस्थाः अंधकार, अज्ञान, भटका हुआ। परमात्मा की अवस्थाः परमज्ञान, पहुंचा हुआ। गुरु दोनों के बीच--आधा मनुष्य, आधा परमात्मा; परमात्मा और मनुष्य के बीच सेतु। परमात्मा समझ भी नहीं सकता तुम्हारी तकलीफ। तुम कितना ही रोओ-गाओ, कितना ही चिल्लाओ, परमात्मा के कान तुम्हारी आवाज न सुन सकेंगे; क्योंकि वह कान ही उसके पास नहीं हैं। वह परम अवस्था है। वहां दुख की कोई बात पहुंच नहीं सकती। वह परम शून्यता है। वहां तुम चिल्लाते रहोगे, आकाश में गूंजेगी बात और खो जाएगी, वहां से कोई उ Ÿार न आएगा। वह आखिरी अवस्था है। उससे तुम्हारा कोई संबंध नहीं जुड़ सकता। लेकिन गुरु मध्य में है। वह आधा तुम जैसा है; आधा परमात्मा जैसा है। वहां दोनों मिलते हैं। वह जैसे संपर्क की जगह है, जहां दी सीमाएं मिलती हैं। जहां तुम्हारा अंत होता है और जहां परमात्मा शुरू होता है--उस सीमा पर थोड़ी बात हो सकती है। तुम गुरु से कुछ कह सकते हो। वह समझेगा। क्योंकि वह

भी वहीं से गुजरा है, जहां से तुम गजरे हो। उन्हीं कष्टों में, उन्हीं चिंताओं और दुखों में वह भी जीया है, जिनमें तुम अब जी रहे हो। जो तुम्हारा वर्तमान है, वह उसका अतीत था। जो तुम्हारा भविष्य है वह भी उसका वर्तमान है। वह वहां खड़ा है, जहां से परमात्मा और तुम जुड़े हो, ठीक मध्य में। तुम कुछ कहोगे, अगर गुरु ने सुन लिया, तो गुरु के द्वारा परमात्मा और तुम जुड़े हो, ठीक मध्य में। तुम कुछ कहोगे, अगर गुरु ने सुन लिया, तो गुरु के द्वारा परमात्मा ने सुन लिया। तुम कुछ निवेदन करोगे, तुम्हारी भाषा उसकी समझ में आएगी, क्योंकि द्वारा परमात्मा ने सुन लिया। तुम कुछ निवेदन करोगे, तुम्हारी भाषा उसकी समझ में आएगी, क्योंकि तुम्हारी भाषा वह बोलता है। परमात्मा को तुम्हारी भाषा बिल्कुल समझ में नहीं आ सकती। कौन सी भाषा समझेगा परमात्मा? कैसे समझेगा?
दूसरे महायुद्ध में ऐसा हुआ कि एक जर्मन सैनिक और एक अंग्रेज सैनिक
की बात हो रही थी। दोनों का मिलन हो गया युद्ध के क्षेत्र में। अंग्रेज सैनिक ने कहा कि हमारी जीत सुनिश्चित है, तुम व्यर्थ कोशिश कर रहे हो। उस जर्मन ने पूछा कि सुनिश्चित होने का कारण? तो अंग्रेज ने कहा, हम रोज प्रार्थना करते हैं। परमात्मा हमारे साथ है। तो उस जर्मन ने कहा कि प्रार्थना तो हम भी करते हैं, और परमात्मा हमारे साथ है। अंग्रेज हंसने लगा। उसने कहा, तुम पागल हो। तभी तुमने सुना कि परमात्मा जर्मन भाषा समझता है? परमात्मा अंग्रेजी भाषा समझता है।
इसमें तुम्हें हंसी आती है। लेकिन सभी कौमों का यही दावा है। हिंदुस्तान के पंडितों से पूछो, वे सहते हैं, संस्कृत देव-भाषा है। उसका मतलब क्या होता है? उसका मतलब, परमात्मा इसको समझता है। हिंदी बोल रहे हो... बेकार! संस्कृत! वह भी बिल्कुल शुद्ध! क्योंकि परमात्मा व्याकरण का बड? आग्रही है! इसलिए तो काशी के पंडित कबीर की फिकर नहीं किए; अंट-संट भाषा बोलता है। काशी के पंडितों ने कबीर की भाषा को नाम ही दे दिया, सधुक्कड़ी।... आदमी की नहीं, साधुओं की। जिनका कोई ठिकाना नहीं, कुछ भी बोल रहे हैं! कबीर फारसी के शब्द भी उपयोग कर लेते हैं, संस्कृत भी कर लेते हैं, पाली के भी उपयोग कर लेते हैं--सब का घोल-मेल कर देते हैं। परमात्मा भी दिक्कत में पड़ता होगा, दस-पंद्रह व्याख्याकार रखने पड़ते होंगे। यह कबीर क्या बक रहा है, इसका मतलब निकालो!
परमात्मा, तुम्हारी भाषा कोई भी हो, न समझ पाएगा--चाहे संस्कृत, चाहे अंग्रेजी, कुछ भी हो। आदमी की भाषा परमात्मा कैसे समझ सकता है? आदमी की भाषा आदमी समझ सकता है। लेकिन आदमी ही अगर समझे तो सहायता क्या करेगा? गुरु ऐसा आदमी है जो तुम्हारी भाषा भी समझ सकता है; और एक तरफ से जिसका जीवन और प्राण परमात्मा में लीन हो गया। एक हाथ तुम्हारे हाथ में और एक हाथ परमात्मा के हाथ में। इसलिए तुम जो कहोगे, वह समझेगा। तुम जो कहोगे, वह करेगा। वह चाहेगा कि तुम्हारी मांग उचित है, तो कुछ हो सकता है। क्योंकि दूसरा हाथ उसका परमात्मा का हाथ है। वह दोनों है।
इसलिए कबीर कहते हैं, मैं भी सहमत हूं। अतिशयोक्ति नहीं है यह बात, बिल्कुल सही है।
करता करै न कर सके, गुरु करै सो होय।
गुरु के सामने दाता नहिं, जाचक शिष्य समान।
तीन लोक की संपदा, सो गुरु दीन्हा दान।।
गुरु के जैसा देनेवाला नहीं है। गुरु का अर्थ ही है जो दिए चला जाए।
पर वह जो दे रहा है, बड़ा सूक्ष्म है। अगर तुम क्षुद्र को मांगने गए हो तो वहां से खाली हाथ लौटोगे। अगर तुम विराट को मांगने गए हो तो मिलेगा।
गुरु के समान दाता नहीं! लेकिन उसका दान तभी संभव हो सकता है, जब शिष्य भिखारी की तरह आए। तुम अगर अकड़े हुए आए, तुम अगर ऐसे आए, जैसे कि तुम हकदार हो, जैसे कि तुम्हें मिलना ही चाहिए, तो तुम चूक जाओगे।
जाचक शिष्य समान! शिष्य तो ऐसा हो, परम भिखारी! शिष्य तो ऐसा हो जैसे उसका हृदय सिर्फ भिक्षापात्र है! परम याचक! तो गुरु से मेल बनता है।
क्योंकि परम दाता से परम याचक का ही मेल बन सकता है। वह उलीचता हो, और तुम उलटे घड़े की भांति हो, तो सब व्यर्थ चला जाएगा।
भिक्षुक का अर्थ है जिसका घड़ा सीधा है।

ऐसा हुआ, चीन में एक बहुत बड़ा ज्ञानी हुआ, लीहत्जू--लाओत्से की परंपरा, शिष्यों में एक। एक शिष्य उसके पास आया, कुछ पूछा। लीहत्जू ने कहा, समय आने पर जवाब देंगे, तैयारी चाहिए! पूछते तो हो, लेने की हिम्मत है? दे तो दूंगा, दब तो न जाओगे उसमें? पता है, क्या मांगते हो? शिष्य थोड़ा डर गया। वह साल भर चुप ही रहा। लेकिन उसने देखा तो उŸ दिया ही नहीं इस आदमी ने। साल भर बाद छोड़कर चला गया। दूसरे गुरु के पास पहुंचा। और उसने कहा कि साल भर लीहत्जू के पास था, कुछ मिला नहीं, इसलिए यहां आया हूं। उसने कहा, तू अभी यहां से चला जा। क्योंकि तेरे पास पात्र ही नहीं है। जब लीहत्जू न भर सका, मैं गरीब आदमी हूं, मैं तुझे क्या दूंगा? लीहत्जू के पास से खाली हाथ लौट आया, पागल! तो मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। तू जा! तू भाग! नहीं तो तू लोगों से कहेगा कि मेरे पास साल भर रहा और बेकार गया।

ऐसी बात सुनकर वह फिर लीहत्जू के पास वापिस लौटा। उसने कहा कि बड़ी हैरानी की बात है। अब मैं क्या करूं? एक-दो जगह गया, उन्होंने कहा, जब लीहत्जू के पास गए, अब उस विराट सरोवर के पास से प्यासे लौट आए, तो हम तो छोटे डबरे हैं। हम तुम्हारे काम न पड़ेंगे। तो मैं वापिस आता हूं।

तो लीहत्जू ने कहा, सुन, मैं अपने गुरु के पास आया। तो तीन साल तो मेरे गुरु ने मेरी तरफ देखा ही नहीं। पूछने का सवाल ही न उठा। क्योंकि वह देखे नहीं, वह सबकी तरफ देखे वह मुझे छोड़ दे! और वह इस तरह छोड़ दे, जैसे वहां खाली जगह है। इशारा मैं समझ गया कि मुझे खाली जगह की भांति हो जाना चाहिए, इसलिए मुझे नहीं देखता।

अगर तुम होते--लीहत्जू ने कहा, तो तुम भाग गए होते। तुम्हारे अहंकार को चोट लगती कि मैं आया हूं, और मुझे देखा नहीं जा रहा है! तीन साल बाद जब मैं बैठा रहा, और धीरे-धीरे राजी हो गया कि ठीक, जो उसकी मरजी, तो एक दिन उसने मेरी तरफ देखा--आनंद की वर्षा हो गई! इतना पुलकित हो गया, जैसा मैं कभी नहीं था। क्योंकि तीन साल, चुपचाप बैठे रहता ऐसे जैसे हूं ही नहीं...। वह देखे ही नहीं! औरों से बात करे, औरों से चीत करे, पूछे Ÿाछे, मेरी तरफ देखे ही नहीं। और एक दो दिन की बात नहीं, तीन साल का लंबा वक्त है! पर पर्याप्त हो गया, मैं भर गया। फिर तो फिकर ही न रही कि वह देखता है कि नहीं देखता। तीन साल और बीत गए। पहले उसने मुझे शून्य होने का इशारा किया। और जब उसने आंख मेरी तरफ देखी तो मैं समझ गया उसका इशारा क्या, कि अब मुझे देखनेवाला द्रष्टा हो जाना चाहिए। जैसा उसने देखा, ऐसे ही अब मैं अपने को देखूं। तीन साल मैं अपने को देखता रहा। तब एक दिन उसने नजर मेरी तरफ की और पहली दफा वह मुस्कुराया। धन्य मेरे भाग्य! मैं भर गया। अब मैं समझ गया उसका मतलब--शून्य हो जाओ, साक्षी हो जाओ, आनंदित हो जाओ। तब मैं अकारण प्रसन्न होने लगा। लोग समझे हो गया। तीन साल बाद वह मेरे पास गया। उसने मेरे सिर पर हाथ रखा। उसने कहा, तेरी साधना पूरी हो गई। अब मुझमें Ÿाझमें कुछ छेद न रहा। अब तू जा, दूसरों को जगा! तुझे मिल गया, अब बांट!

और एक तू है-- लीहत्जू ने कहा कि साल भर बैठा तो जरूर रहा, लेकिन क्षण भर को भी शांत न हुआ। और तेरे मन में वही प्रश्न गूंजता रहा कि कब उŸ मिलेगा। ... जैसे उŸ महत्वपूर्ण था, और गुरु कम महत्वपूर्ण था!

तुम्हारे प्रश्न तुम्हें बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़ते हैं--अहंकार के कारण। उŸ चाहिए--वह भी अहंकार की मांग है। लेकिन जिससे तुम उŸ पाना चाह रहे हो, जब तक तुम उसने देखोगे, तब तक कोई उŸ नहीं मिल सकता। सत्संग का यही अर्थ है।

गुरु के पास बैठ जाना; उसकी जब मर्जी होगी, जब तुम तैयार होओगे--वह भर देगा। उसके हाथों में अपने को छोड़ देना।

गुरु समान दाता नहिं, जाचक शिष्य समान।
तीन लोक की संपदा, सो गुरु दीन्हा दान।।
गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़-गढ़ काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दे, बाहर बाहै चोट।।

बड़ा प्यारा वचन है! कुम्हार को देखा कभी? घड़े को गढ़ता है। गुरु कुम्हार सिष कुंभ है--और शिष्य को तैयार कर रहा है; वह एक कुंभ कभी भांति है; एक घड़े की भांति है। वह कुम्हार है। और क्यों तुम्हें घड़े की तरह बना रहा है?--ताकि तुम भरे जा सको। घड़ा तो खालीपन है। घड़े की दीवाल घड़ा नहीं

है। घड़ा तो खालीपन है। वह जो शून्य भीतर है, वही घड़ा है। वह तुम्हारे चारों तरफ एक पतली मिट्टी की दीवाल उठा रहा है। और भीतर एक शून्य निर्मित कर रहा है।
गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़-गढ़ काढ़ै खोट। और वह जो-जो कमी है, और जहां-जहां जरूरत है, जो-जो हटाना है, जो-जो गढ़ना है, उस श्रम में लगा है। अंतर हाथ सहार दे... । कुम्हार को देखने जैसा है। क्योंकि वह भीतर से
तो सहारा देता है घड़े को, भीतर से तो मिट्टी को सहारा देता है, और बाहर से चोट करता है। गुरु की सारी प्रक्रिया यही है। वह भीतर से तुम्हें सहारा देता है, बाहर से तुम्हें चोट देता है। और अगर तुमने बाहर की ही चोट रखी तो तुम भाग खड़े होओगे। अगर तुम्हें भीतर का सहारा दिख गया, तो बाहर की चोट बड़ी प्रीतिकर हो जाएगी। तुम धन्यभागी समझोगे कि बाहर से चोट दी, क्योंकि दोनों जरूरी हैं। भीतर के सहारे से घड़े की दीवाल निर्मित होगी, अन्यथा गिर जाएगी। बाहर की चोट से मजबूत होगी; अन्यथा पहली ही प्रक्रिया पानी भरने की--और घड़ा फूट जाएगा। बाहर से चोट देनी जरूरी है, मजबूती के लिए। सब तरह की चोट देगा। वह जो भी चोटें बाद में पड़ सकती हैं, जिनसे घड़ा टूट जाता, वह सब चोट गुरु देगा। कठिन यही है; क्योंकि जैसे ही चोट लगती है, शिष्य भाग खड़ा होता है। वह सोचता है, चोट लग गई, मेरी तरफ देखा नहीं, मुझे कहा नहीं कि आओ, बैठो मुझे सम्मान न दिया या कुछ ऐसी बात कहीं कि मेरा अपमान हो गया। या कुछ इस ढंग से उ Ÿार दिया कि चोट मार दी।
बाहर से चोट जरूरी है, अन्यथा तुम मजबूत न हो सकोगे। और जब वर्षा होगी पूर्ण की, तो तुम फूट जाओगे। भीतर से सहारा... ।
गुरु के दोनों हाथ हैं। वह भीतर से तुम्हें सहारा देगा ताकि तुम अभी
भी न टूट जाओ; बाहर से चोट देगा ताकि तुम कभी भी न टूटो।
गुरु कुम्हार सिष कुंभ है; गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दे, बाहर बाहै चोट।।
गुरु को सिर पर राखिए, चलिए आज्ञा माहिं।
कहै बकीर तो दास को, तीन लोक डर नाहिं।।
गुरु को सिर पर रखिए, चलिए आज्ञा माहिं। क्या मतलब? गुरु को सिर पर रखना आसान, आज्ञा मान कर चलना कठिन। लेकिन आज्ञा मान कर चना ही सिर पर रखने का अर्थ है। बहुत सुविधापूर्ण है कि गुरु के चरणों में सिर रख दिया। उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। भीतर तो तुम झुकते ही नहीं, बाहर ही झुक जाते हो। भीतर तो तुम अकड़े ही रहते हो।
एक घर में मैं मेहमान था, और गृहिणी अपने बच्चे को डांट रही थी। वह काफी शोरगुल, उपद्रव मचा रहा था। आखिर उसने कहा कि अब बहुत हो गया, जाओ, बैठ जाओ उस कुर्सी पर, इसी वक्त। और बच्चे समझ जाते हैं कि कब सीमा आ गई। तो वह जाकर कुर्सी पर बैठ गया। और वहां से घूर कर मां को देखता रहा। उसने कहा, अच्छा, कोई बात नहीं; बाहर-बाहर बैठे हैं, भीतर तो हम खड़े ही हैं। बाहर-बाहर झुकना बहुत आसान है। बाहर-बाहर समन बताना बहुत आसान है। आज्ञा मानकर चलना बहुत कठिन है, क्योंकि वह भीतर झुकना है।
गुरु जो कहो, आज्ञा मानने का अर्थ है कि उसमें तुम तर्क मत लगाना; क्योंकि तुमने तर्क लगाया, सोचा, फिर माना, तो तुम अपनी आज्ञा मान रहे हो, गुरु की नहीं। तुम्हारी बुद्धि ने कहा, ठीक है, वह तुमने किया। लेकिन अगर बुद्धि तुम्हारी यह भी कहे कि ठीक नहीं है, तब भी तुम आज्ञा गुरु की ही मानना। तभी तो बुद्धि टूटेगी और गिरेगी। जब तुम बुद्धि की ही सुनते जाओगे, तो तुम सिर से नीचे न उतर सकोगे। हृदय तक तुम्हारी जड़ें, न पहुंच पाएंगी। गुरु बहुत बार ऐसी बात तुम्हें करने को कहेगा, जिसे वह भी जानता है कि
वह अतक््रय है, जिसे वह भी जानता है कि बुद्धि राजी न होगी; जिसे वह भी भलीभांति जानता है कि कोई भी साधारण आदमी कहेगा, क्या पागलपन है!
गुरजिएफ अपने शिष्यों को ऐसी आज्ञाएं देता था जो बिल्कुल बुद्धिहीन हैं। एक आदमी आया। उसने कभी शराब नहीं पी। सच्चरित्र आदमी है, शाकाहारी है। और उससे गुरजिएफ ने कहा कि तू मांस खा और शराब पी।
... साफ बात है कि वह आदमी पागल है। और यह आदमी चौंका होगा। उसने कहा, क्या वह रहे हैं आप? वह आदमी भाग खड़ा हुआ। गुरजिएफ के एक शिष्य ने पूछा कि क्या प्रयोजन था? गुरजिएफ ने कहा कि प्रयोजन सीधा और साफ हैः यह आदमी

मांसाहार के विरोध में है; यह आदमी शराब के विरोध में है--और मांसाहार न करने, और शराब न पीने के कारण इसने भयंकर अहंकार को जन्म दे दिया हैः मैं पवित्र! मैं नैतिक! मैं धार्मिक! मैं शाकाहारी। यह अकड़ तोड़नी पड़ेगी। शाकाहारी आदमी आए तो गुरजिएफ कहता है, यह मांस खा लो! सारी बुद्धि कहेगी कि भ्रष्ट करने का उपाय है, यह कोई गुरु है? लेकिन कुछ रुक जाते थे, और गुरु ने कहा, मांसाहार कर लेते थे। क्योंकि जब गुरु ने कहा तो ठीक। फिर दुबारा नहीं कहता था उनसे वह कभी। कभी तो ऐसा भी हुआ है कि जैसे ही शिष्य मांस को उठाने गया, उसने रोक दिया कि बस, हो गया, बात हो गई, कोई मांसाहार का प्रयोजन नहीं है।
महिलाएं आतीं गुरजिएफ के पास, तो वह कहता कि पहले ये सब जेवरात उतार दो, मुझे दे दो। एक महिला आई--एक बहुत बड़ी संगीतज्ञ महिला। बहुत धन था, बड़े बहुमूल्य जेवरात थे। और जब गुरु के पास गई तो सब जेवर पहन कर गई थी, जैसा कि लोग मंदिर में जाते हैं। वहां इतने लोग देखनेवाले होंगे... ! उसको पता भी नहीं था। और गुरजिएफ ने कहा, बात पीछे, यह रूमाल रखा है, उसमें सब तेरे जेवर रख दे। उस स्त्री ने अपने सब जेवर उतर के रख दिए। गुरजिएफ ने रूमाल बांध कर अपने कोट में डाल दिया। बातचीत हुई स्त्री चली गई। रात गुरजिएफ ने रूमाल वापिस पहुंचा दिया। स्त्री चकित हुई, क्योंकि गहने उतने ही नहीं थे, ज्यादा थे। गुरजिएफ ने कुछ और गहने उसमें डाल दिए थे।
पंद्रह दिन बाद एक दूसरी महिला आश्रम में आई, उसने कहा कि मैंने सुना
है कि गुरजिएफ अक्सर गहने मांग लेते है, तुमसे भी मांगे थे? उसने कहा, मुझसे भी मांगे थे। लेकिन रात वापिस पहुंचा दिया। उसने कहा, तब कोई भय नहीं। वह गई। गुरजिएफ ने जैसा ही गहने मांगे, सब उसने उतार के रख दिए। और चूंकि उसे यह भी पता चल गया था कि ज्यादा भी गुरजिएफ ने भेजे हैं, तो जितने उकसे पास थे, सब ले आई थी। गुरजिएफ हड़प गया! कभी न भेजे वापिस!
गुरु को तुम धोखा न दे सकोगे। वह असंभव है। श्रद्धा का अर्थ है, अब जो
तू कहेगा, वह हम पूरा करेंगे। कई बार बड़ी अदभुत घटनाएं घटी हैं।
मारपा अपने गुरु के पास गया--तिब्बत का एक फकीर सीधा आदमी था। लेकिन
वह इतना सीधा और सरल था कि दूसरे शिष्य शंकित हो गए कि जल्दी ही वह गुरु का उ Ÿाराधिकारी हो जाएगा। था भी वह उ Ÿाराधिकारी, हुआ भी। शिष्यों ने अड़चन डालनी शुरू की। शिष्यों ने मारपा को एक दिन कहा कि गुरु ने आज्ञा दी... । गुरु को पता ही नहीं था। गुरु ने आज्ञा दी है कि अगर तुम्हारी श्रद्धा सच है, तो इस पहाड़ से कूद जाओ। मारपा कूद गया। शिष्य भागे, नीचे पहुंचे। बड़ी भयंकर खाई थी। उसमें बचने का कोई उपाय ही नहीं था। और वह एक वृक्ष के नीचे ध्यान कर रहा था। उन्होंने समझा कि संयोग ही होगा। यह हो ही नहीं सकता, संयोग की बात है।
मकान में आग लगी थी, उन्होंने कहा कि गुरु कि आज्ञा है, भीतर प्रवेश कर जाओ। उसने गुरु से जा कर कभी नहीं पूछा कि तुम ये आज्ञाएं भेजते हो कि यही लोग करवा रहे हैं! इतनी भी क्या अश्रद्धा! उसकी मरजी! वह आग में घुस गया। उसके वस्त्र तक न जले।
नदी पर कर रहे थे, शिष्यों ने कहा, कूद जाओ। तुम तो पानी पर चल सकते हो; क्योंकि कहा है शास्त्रों में कि जिसको श्रद्धा अटूट है, वह पानी पर चलता है। मारपा पानी पर चल गया। तब संयोग मानना मुश्किल हो गया। उन्होंने गुरु को जा कर कहा कि महाराज! हैरानी की बात है, माफ करें, हम आपके नाम से इसको सताते रहे। लेकिन आपके नाम की महिमा अपार है! यह तो आग में चला गया--जला नहीं; पहाड़ से कूद गया--मरा नहीं; पानी पर चल गया।
गुरु को अकड़ हुई। गुरु कोई ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति नहीं थे। सच्चरित्र था, आचरणवान था। सब तरह के योग-साधन किए थे। लेकिन अभी पहुंचा नहीं था। उसने कहा, जब मेरे नाम मारपा चला गया, तो मैं खुद... । तो उसने अपने शिष्यों से कहा, इसमें क्या बात है, मारपा की क्या खूबी? मेरे नाम का रहस्य... !
एक दिन सब नाव पर चल रहे थे, तो शिष्यों ने कहा कि आज आप पानी पर चलें। उसने कहा, इसमें क्या कठिनाई है! ... वह चला और डूब गया। बामुश्किल उसको निकाला जा सका।

मारपा गुरु के नाम के कारण नहीं चल रहा था, मारपा श्रद्धा के कारण चल रहा था।
अगर तुम ठीक समझो तो श्रद्धा ही गुरु है। गुरु तो बहाना है, खूंटी है।
उस बहाने तुम्हारे भीतर श्रद्धा जग जाए। तो कभी-कभी ऐसा भी अनहोना हुआ है कि गुरु तो गुरु था ही नहीं और शिष्य पहुंच गया। और ऐसा तो रोज होता है कि गुरु गुरु था और शिष्य नहीं पहुंचे।
श्रद्धा ही सूत्र है।
आज्ञा का अर्थ है, वह जो कहे, तुम्हारी बुद्धि को संगत लगे, असंगत लगे, तुम अपना हिसाब मत लगाना। तुम बुद्धि को कहना कि तू किनारे हट, गुरु की सुनूंगा। और जैसे ही गुरु को सुनने की क्षमता बढ़ेगी, वैसे ही वैसे गुरु के सामने झुकने की क्षमता बढ़ेगी। गुरु सिर पर हो जाएगा। जिस दिन तुम्हारी बुद्धि सिर से उतर जाएगी, गुरु तुम्हारी बुद्धि हो जागा। वह तुम्हारा विवेक बन जाएगा। यही अर्थ है--गुरु को सिर पर रखिए, चलिए, आज्ञा आहिं। कहे कबीर तो दास को तीन लोक डर नाहिं।।
गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काको लागूं पाया।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो बताय।।
इस सूत्र के दो अर्थ हो सकते हैं--दोनों प्रीतिकर हैं।
गुरु गोविन्द दोउ खड़े काको लागूं पाय। फिर ऐसी घड़ी आई--कबीर अपना अनुभव कहते हैं कि गुरु गोविन्द दोनों सामने खड़े थे। ऐसी घड़ी आएगी ही एक दिन। गुरु तो द्वार हैः आज नहीं कल, गोविन्द प्रकट होगा। गुरु तो मार्ग हैः आज नहीं कल, मंजिल आएगी। और पहली घड़ी में तो ऐसा होगा कि गुरु भी मौजूद होगा और गोविन्द भी मौजूद होंगे। तब ऐसी घड़ी में किसके पैर छुऊं।
तो कबीर कहते हैंः बड़ी दुविधा में खड़ा हो गया। गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काको लागूं पाय? पहले किसके पैर छुऊं!
दूसरे वचन के दो अर्थ हो सकते हैं। पहला अर्थ--बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो बताय। तो कबीर कहते हैं कि बलिहारी गुरु तुम्हारी कि जब मैं दुविधा में था, तुमने तत्क्षण इशारा कर दिया कि गोविंद के पैर छुओ। बलिहारी गुरु आपने, जिन गेविन्द दिये बताय।... जैसे ही मैं दुविधा में था, आपने इशारा कर दिया कि गोविन्द के पैर छुओ, क्योंकि मैं तो यहां तक था। मैं तो राह पर लगे हुए मील के पत्थर की तरह था, जिसका इशारा थाः आ गया, मंजिल आ गई, अब मेरा कोई काम नहीं। अब तुम गुरु को छोड़ो, गोविन्द के पैर छू लो।
एक तो यह अर्थ है। साधारणतः यही अर्थ किया जाता है। दूसरा अर्थ तो और
भी कीमती है। और मेरी प्रतीति दूसरे अर्थ के साथ है, क्योंकि पहले जो वचन हैं, वे दूसरे अर्थ के साथ सही होंगे
दूसरा अर्थ है--गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काको लागूं पाय। बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो बताय।। दुविधा में हूं, किसके पैर लगूं। गुरु गोविन्द दोउ खड़े हैं। फिर मैंने गोविन्द को छोड़ा गुरु के ही पैर छुए; क्योंकि उसकी ही बलिहारी है, उसी ने गोविन्द को बताया है। यही अर्थ ठीक होगा। क्योंकि पूरे आगे के सूत्र जो कहे हैं, वे कह रहे हैंः
करता करै न करि सके, गुरु करै सो होय।।
परमात्मा से ऊपर कबीर जब गुरु को रख रहे हैं, तो दूसरा ही अर्थ संगत है। और होना भी वही चाहिए; क्योंकि इस आखिरी पड़ाव पर, जहां से गुरु से विदा होंगे, जहां से गोविंद कि यात्रा शुरू होगी, यही उचित है कि गुरु के ही पैर छुए जाए। उस आखिरी पड़ाव पर, वह विदाई का क्षण है। उसके बाद गुरु नहीं होगा, गोविंद ही होंगे। उस दिन बीच का सेतु हट जाएगा। उस दिन बीच में जो अब तक हाथ पकड़ कर लाए थे, वह विदा हो जाएगा। उस विदाई के क्षण में यही उचित है कि कबीर ने कहा कि मैंने फिर गुरु के ही पैर, छुए, क्योंकि बलिहारी उसी की है, उसके बिना यहां तक न आ सकता, उसके कारण ही यहां तक आया हूं। और यही बात आगे के सूत्र से भी सघन होती है। हरि रूठै गुरु ठौर है, गुरु रूठै नहीं ठौर। हरि रूठ जाए तो उपाय है; क्योंकि हम गुरु के पास जा सकते हैं। हरि रूठै गुरु ठौर है, गुरु रूठै नहिं ठौर। और गुरु रूठ जाए तो कोई उपाय नहीं; क्योंकि गुरु के बिना हरि के पास तो जा नहीं सकते। हरि बिना गुरु के पास जा सकते हैं, गुरु के बिना हरि के पास नहीं जा सकते।
हरि रूठै गुरु ठौर है, गुरु रूठै नहिं ठौर।

शिष्य की समग्र साधना गुरु की छाया बन जाने की है। वह समग्र समर्पण है। वह अपन-आप को बिल्कुल खो देना है। तभी तो गुरु तुम्हें तैयार कर पाएगा--उस पर घटना के लिए जहां तुम्हारा आपा परमात्मा में खोएगा। गुरु तैयार कैसे करेगा? अगर ठीक से समझो तो गुरु उस परम घटना की प्राथमिक तैयारी है--उस परम अनुभव की, जहां आत्मा परमात्मा में खोती है। गुरु में तुम खो कर तैयारी करते हो। वह पूर्व प्रशिक्षण है।... जब पूरा हो जाएगा, उसी क्षण द्वार खुल जाता, उसी क्षण गुरु गोविंद दोनों खड़े हो जाते हैं। जहां से गुरु विदा होगा और गोविंद की यात्रा शुरू होगी।
तो ऐसा समझो कि तीन यात्रा-पथ हैं। एक है, जो तुमने अपनी बुद्धि से चुना है, जो अहंकार का पथ है। दूसरा है, जो परम ब्रह्म का पथ है। दोनों समांतर हैं, कहीं मिलते नहीं। तीसरी एक बीच की गली हैं, जो इन समांतर पथों को जोड़ती है, वह गुरु है। वह तुम्हारे अहंकार को विसर्जित करता है, अहंकार से दूर ले जाता है; निरहंकार ब्रह्म के पास पहुंचाता है।
जितने तुम पिघलते हो उतना ही परमात्मा सघन होता है। जितने तुम मिटते
हो उतना ही वह प्रकट होता है।
लोग पूछते हैं, परमात्मा कहां है? उन्हें पूछना चाहिए कि मैं इतना ठोस क्यों हूं? परमात्मा को जगह कहां है और आने की? तुम्हारा घर बुरी तरह भरा है--तुमसे ही भरा है। गुरु खाली करेगा। और इसके पहले कि परमात्मा उतर सके-- परमात्मा तो बहुत अज्ञात है, उससे तो तुम डर जाओगे; आज अगर आ भी जाए तुम्हारे द्वार पर, तो तुम द्वार ही न खोलोगे। तुम ऐसे भागोगे वहां से अपना घर छोड़कर कि दुबारा घर लौट कर न आओगे। क्योंकि परमात्मा तो विराट है। वह विराट खाई तो तुम्हें बहुत घबड़ा देगी, तुम चक्कर खा जाओगे। गुरु तुम्हें धीरे-धीरे राजी करेगा।
ऐसा समझो कि सागर में नदी गिरती है, तुम्हें अपनी नाव को सागर में ले जाना है, तो तुम नदी में अपनी नाव को छोड़ते हो, नदी में नाव को चलाने का अभ्यास करते हो। नदी में अभ्यास हो सकता है--खतरा कम है। सागर में अभ्यास नहीं हो सकता, खतरा बहुत ज्यादा है। तैरना सीखना हो तो नदी में सीखना उचित है, जहां किनारे हैं; जहां किनारों पर लोग हैं, तुम्हारी आवाज पहुंच सकती है; जहां कोई बचा कसता है, जहां सुविधा हो सकती है।
गुरु नदी की धार है। वह गंगा है। उसमें तुम तैरना सीख लो। फिर, धीरे- धीरे गंगा तुम्हें सागर में ले जाएगी। फिर सब किनारे छूट जाएंगे। फिर वहां कोई सहारा न होगा। वहां तुम बिल्कुल अकेले हो जाओगे। उस परम एकांत के पहले, गुरु का संग साथ जरूरी है। गुरु के पहले तुम भीड़ में हो। भीड़ यानी अनेक, अनंत। गुरु यानी दो, द्वैत। ब्रह्म यानी एक, अद्वैत। इसके पहले कि तुम भीड़ से हटो, तुम्हें दो के लिए राजी होना पड़ेगा। तब दो से भी हट सकोगे और एक के लिए राजी हो जाओगे।
ठीक कहते हैं कबीरः
गुरु गोविंद दोउ खड़े काको लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविंद दियो बताय।।
हरि रूठै गुरु ठौर है, गुरु रूठै नहीं ठौर।
आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
पांचवां प्रवचन

झीनी झीनी बिनी चदरिया

दिनांकः 15 नवंबर, 1974; श्री ओशो आश्रम, पूना

सूत्र
झीनी झीनी बिनी चदरिया
काहे के ताना काहे के भरनी, कौन तार से बिनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बिनी चदरिया।।
आठ कंवल दस चरखा डोले, पांच त Ÿागुन तिनी चदरिया।
सांई को सीयत मास दस लागै, ठोक ठोक के बिनी चदरिया।।
सोई चादर सुर न मुनि ओढ़ी, ओढ़ी के मैली किनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया।।

कबीर तो जुलाहे हैं, उनके प्रतीक भी जुलाहे के प्रतीक हैं; लेकिन जुलाहे के प्रतीकों में भी उन्होंने वह सब कह दिया, जो उपनिषद नहीं कह पाते हैं, वेद जिसे कहने में थक जाते हैं, बुद्ध और महावीर वह सब कह दिया, जो उपनिषद कह पाते हैं, वेद कहने में थक जाते हैं, बुद्ध और महावीर भी जिसे अनिर्वचनीय कह कर छोड़ देते हैं।
जीवन के जितने-निकट हो प्रतीक, उतना ही सत्य को प्रकट करने में सक्षम होता है; जीवन से जितने दूर हो जाए, उतनी ही सत्य की अभिव्यक्ति की क्षमता कम हो जाती है। कबीर ठीक जीवन के निकट जी रहे हैं--साधारण जीवन के!
और ध्यान रहे, दुनिया में कोई असाधारण जीवन नहीं है। साधारण में ही असाधारण छिपा है। और जो असाधारण होने की कोशिश करेगा, वह साधारण से तो बच ही जाएगा, उसमें छिपे असाधारण से भी बच जाएगा।
अहंकार असाधारण की खाज करता है। अहंकार बड़े काम करना चाहता है; लेकिन जीवन तो छोटे-छोटे कामों में बना है। उठना है; कपड़ा बनना है, बेचना है; खाना है, पीना है; सोना है, जागना है--जीवन तो इन छोटी-छोटी चीजों से बना है। और जो भी साधारण होने की कोशिश करेगा, वह जीवन से वंचित रह जाएगा। जो इन साधारण कृत्यों में जागने लगेगा, जो इन्हीं कृत्यों को जाग कर करने लगेगा, वह असाधारण को उपलब्ध हो जाएगा। जतन का वही अर्थ है।
जतन का अर्थ है, साधारण को भी होशपूर्वक करना; अति साधारण से भी चेतना
को जोड़ देना क्षुद्र के साथ जैसे ही होश जुड़ता है, क्षुद्र विराट हो जाता है। और विराट के साथ भी बेहोशी हो तो विराट भी क्षुद्र हो जाता है। तुम जाओ मंदिर में तुम्हें परमात्मा न मिलेगा; क्योंकि तुम बेहोश ही जाओगे वहां। तुम्हें जो दिखाई पड़ेगा, वह तुम्हारी ही वासनाओं का प्रतिबिंब होगा। काश, होश होता तो मंदिर तक जाने की जरूरत क्या थी! होश तो तुम जहां हो, वहीं पाते कि उसी का मंदिर है; उसके अतिरिक्त कुछ और है भी नहीं। काशी और काबा, अज्ञानी ही यात्रा करेंगे। ज्ञानी तो जहां है, वहीं उसकी काशी है, वहीं उसका काबा है। क्योंकि चारों तरफ उसी एक का विस्तार है। वह ब्रह्म कहीं कम और कहीं ज्यादा तो नहीं, कहीं सघन और कहीं विरल तो नहीं; वह ब्रह्म कहीं उपलब्ध और कहीं अनुपलब्ध तो नहीं--सभी जगह है, एक सा बंटा है।
बुद्ध ने कहा है, सागर को चखो कहीं से, सभी तरफ से नमकीन है--चाहे इस किनारे, चाहे उस किनारे; चाहे मध्यम में, चाहे गहराई में, चाहे लहर में--चखो सागर को, सब जगह उसका स्वाद एक है; चखो ब्रह्म को सब जगह, उसका स्वाद भी एक है।
मंदिर-मस्जिद अज्ञानी का निर्माण है। इसलिए फिर वह अपने ही ढंग से निर्मित करता है। वे उसकी ही प्रतिछवियां है। तुम्हारे परमात्मा तुम से बड़े नहीं हो सकते, जब तक कि तुम्हीं परमात्मा जितने बड़े न हो जाओ। लेकिन यहीं जटिलता है। अगर तुम बड़े होना चाहोगे, तो छोटे ही रह जाओगे; क्योंकि बड़े होने की मांग, छोटे मन की मांग है। अगर तुम छोटे में राजी हो जाओगे, अचानक पाओगे कि छोटा तो कुछ है ही नहीं, सभी बड़ा है।

क्षुद्र का कोई अस्तित्व नहीं है। शूद्र तुम्हारी आंख के द्वारा दी
गई सीमा है।
जैसे कि मैं खिड़की खोलूं और प्रकाश को देखूं, तो खिड़की का चौखटा ही मालूम होता है। आकाश है। खिड़की के चौखटे से जितना आकाश दिखाई पड़ता है, लगता है वही आकाश है। और अगर मैं कभी बाहर गया ही न होऊं, मैंने कभी मुक्त आकाश देखा ही न हो, और सदा खिड़की से ही झांकता रहा हूं, तो स्वभावतः मैं मानूंगा कि इसी खिड़की के चौखटे में जितना फंसा आकाश है, यही आकाश है। यह आकाश नहीं है। खिड़की का चौखटा यह रूप दे रहा है। यह सीमा खिड़की के कारण बन रही है, आकाश की कोई सीमा नहीं है। तुम्हारी आंख खिड़कियों से ज्यादा नहीं। तुम्हारे कान भी खिड़कियों से ज्यादा नहीं। तुम्हारे हाथ भी खिड़कियों से ज्यादा नहीं हैं।
इंद्रियां छोटी खिड़कियां हैं, जिनसे हमने ब्रह्मा को देखा है; इसलिए ब्रह्म छोटा लगता है। अन्यथा इंद्रियों को हटा कर देखो, क्षुद्र तत्क्षण विराट हो जाता है, सीमाएं गिर जाती हैं। सीमाएं थीं ही नहीं, हमारे द्वार दी गई थीं। सीमाएं कल्पित हैं। किसी काम को छोटा मत कहना।
कबीर का प्राथमिक संदेश यही है कि किसी काम को छोटा मत कहना। क्योंकि
उस छोटे में विराट छिपा है। तुमने छोटा कहा कि तुम पीठ फेर लोगे। और जहां से तुम पीठ फेरोगे, वही है। तो हमेशा तुम्हारी पीठ उस पर पड़ेगी।
और बड़े को तुम खोजने जाओगे कहां? क्या है बड़ा? राष्ट्र की सेवा बड़ी है? मनुष्यता की सेवा बड़ी है? कुर्बान हो जाना बड़ा है? शहीद हो जाना बड़ा है?
ध्यान रहे, एक क्षण में शहीद होने की क्षमता किसी में भी है। क्षण भर में आत्महत्या कर लेने में कौन असमर्थ है! शहीदगी लगती है बहुत कठिन, कठिन नहीं; क्योंकि एक ही क्षण में तो निपटारा हो जाता है। सूली क्षण में लग जाती है, गोली क्षण में प्राणों में छिद जाती है। असली शहीद तो वे ही हैं, जो जीवन के लंबे विस्तार में होश से जीते हैं; क्योंकि उनको सूली पूरे जीवन कंधे पर ढोनी पड़ती है।
असली शहीद तो वे ही हैं जो शूद्र में विराट को खोजते हैं। और उनकी खोज कभी अखबारों में न छपेगा, और कोई उन्हें फूल चढ़ाने न आएगा, कोई उनको गले में मालाएं न पहनाएगा। वे चुपचाप अपने अकेले में भोजन करते वक्त जानेंगे, कपड़ा बुनते वक्त जानेंगे, स्नान करते वक्त जानेंगे। कौन उनका सम्मान करेगा? लोग कहेंगे, पागल हो गए हो? सम्मान हम करते हैं शहीदों का जो सूलियों पर लटकते हैं। तुम भोजन करने में जाग गए, तुम जानो! इससे हमें क्या प्रयोजन है, शूद्र की बात ही मत उठाओ, लोग कहेंगे। लेकिन शूद्र में ही विराट छिपा है; जैसे बीज में वृक्ष छिपा है। एक छोटे से बीज को तुम बो दो, और विराट वृक्ष पैदा होता है। वह छोटा सा बीज--जतन का बीज है, ध्यान का बीज है।
जो भी तुम करो, ध्यान पूर्वक करना।
लेकिन हमारी मनोदशा बड़ी अजीब है। हम जब एक काम से ऊब जाते हैं, तो हम विपरीत काम को तत्क्षण चुन लेते हैं। संसार से थक जाओगे, तो धार्मिक हो जाओगे। लेकिन जैसे बेहोश संसार में थे, वैसा ही बेहोश धार्मिक हो कर रहोगे। कृत्य बदल जाएगा, तुम न बदलोगे। पहले तुम दुकान पर बैठे थे और रुपया, रुपया, रुपया का मंत्र चलाते थे, अब तुम मंदिर में बैठ जाओ--राम, राम, राम, का मंत्र चलाओगे। तुम न बदलोगे। रुपया कहते वक्त भी तुम बेहोश थे, राम, राम, राम का मंत्र चलाओगे। तुम न बदलोगे। रुपया कहते वक्त भी तुम बेहोश थे, राम कहते वक्त भी तुम बेहोश रहोगे। रुपया भी तुम्हारी नींद था, राम भी तुम्हारी नींद ही होगा। तब तुम दुकान पर बैठे थे, अब भी तुम दुकान पर बैठे हो। तुमने ही तो सारे मंदिरों को दुकानों में बदल दिया है। तुम जहां जाओगे, स्वभावतः तुम तुम ही रहोगे। तुममें फर्क कैसे पड़ सकेगा? स्थिति बदलने से कभी कोई बदला नहीं है--मनोदशा बदलने से कोई बदलता है। परिस्थिति नहीं, मनः स्थिति को बदलना है। वही रूपांतरण है। इसलिए कबीर जुलाहे बने रहे लेकिन जाग गए--इस सूत्र में उन्होंने बड़ी कीमती बातें कही हैं। एक-एक शब्द को समझने की कोशिश करें।
झीनी-झीनी बिनी चदरिया।

जुलाहे को अगर कभी बुनते देखा हो, या कभी तुमने अगर चरखा काता हो, तो तुम्हें एक बात ख्याल में आएगीः जितनी बारीक तुम्हें धागा निकालना हो चरखे से या तकली से, उतना ही होश रखना पड़ेगा; जितना मोटा निकालना हो उतनी बेहोशी चल जाएगी, अगर बहुत महीन सूत निकालना हो, तो उतने ही जतन से, उतने ही होश से निकालना पड़ेगा--क्योंकि जरा सी बेहोशी और धागा टूट जाएगा।
कबीर कह रहे है, झीनी-झीनी बीनी चदरिया।... इतनी झीनी चादर बिनी--उसका अर्थ ही है कि बड़े जतन से बीनी। उसका अर्थ है, बड़े होश से बीनी। उसका अर्थ ही है कि जरा भी हाथ न कंपा, जरा भी चेतना न कंपी--अकंप हो कर बीनी।
जितनी झीनी, बारीक काम करना हो, उतना होश चाहिए। मोटे काम में बेहोशी
चल जाए, महीन काम में बेहोशी नहीं चल सकती। इसलिए तो हम महीनतम काम को कला कहते हैं; क्योंकि उसके करते समय चेतना को बड़ा सजग होना चाहिए। जरा सी चूक और सब विकृत हो जाएगा।
तो पहली बातः जीवन को जितना तुम जाग कर जीयोगे, उतने ही बारीक और सूक्ष्म जीवन का तुम्हें अनुभव होगा। और जितना सूक्ष्म का तुम अनुभव करोगे, उतना ही तुम ज्यादा जागोगे। वे दोनों संयुक्त हैं, और दोनों एक-दूसरे में सहयोगी हैं।
रास्ते पर तुम चल रहे हो, शराबी भी चलता है उसी रास्ते पर; लेकिन उकसे पैर देखो, एक भी पैर जगह पर नहीं पड़ता। ऐसे तो वह भी घर पहुंच ही जाएगा। तुम भी चलते हो। फिर तुम एक बुद्ध को भी चलते देखो। तब तुम पाओगे कि तुममें और शराबी में जितना फर्क है, उतना ही तुम में और बुद्ध में भी है। ऐसे तो शराबी भी घर पहुंच जाता है, तुम भी पहुंच जाते हो, बुद्ध भी घर पहुंच जाएंगे; लेकिन तुम्हारे चलने का गुण अलग-अलग है। शराबी बिल्कुल बेहोश चल रहा है। बुद्ध बिल्कुल होश में चल रहा हैं; तुम कहीं बीच में हो। कभी थोड़ी- सी झलक भी होती है होश की, फिर अंधेरा आ जाता है। कभी तुम जागे होते हो, कभी तुम सोए होते हो। कभी तुम्हारी आंख खुली होती है, कभी बंद होती है।
तुम अगर गौर से देखो तो तुम पाओगे कि जैसे-जैसे होश बढ़ेगा, तुम्हारे चलने में एक सुघड़ता, एक कुशलता... जिसको गीता में कृष्ण ने कहा है--योगी कर्म में कुशल हो जाता है, वह कुशलता। क्योंकि योगी को बड़ी झीनी चादर बीननी पड़ती है। उसे एक-एक पैर सम्हालकर रखना पड़ता है, एक-एक श्वास सम्हाल के लेनी पड़ती है। जीवन बड़ा नाजुक है और बड़ा बहुमूल्य है। वह शराबी की तरह नहीं चलता। कबीर ने कहा, वह ऐसा चलता है जैसे गर्भवती स्त्री चलती है-- सम्हालकर, जतन से। भीतर एक नया जीवन है! और गर्भवती के भीतर जो जीवन है, वह तो शारीरिक की है; साधक के भीतर, साधु के भीतर जो जीवन का अंकुर फल रहा है, वह तो परमात्मा का अंकुर है।
तुम ऐसा सोचो कि परमात्मा तुमसे पैदा होने को है, तो तुम कितने सम्हाल
कर न चलोगे! जरा सी चूक, और गर्भपात हो सकता है। जरा सी भूल, पैर का मुड़ जाना और गिर जाना, और सदियों का श्रम व्यर्थ हो सकता है। जैसे-जैसे करीब आती है, वैसे-वैसे ज्यादा होश की जरूरत पड़ती है। क्योंकि मंजिल से दूर थे, तब भटकने का कोई डर ही न था; क्योंकि भटकते तो और क्या भटकते, भटके ही हुए थे। मंजिल करीब आती है तो और होश की जरूरत पड़ती है, क्योंकि अब भटक सकते हो। सूफी कहते हैं, सांसारिक को क्या डर, डर तो हमें है! सांसारिक के पास खोने का क्या है, खोने को तो हमारे पास है! और सांसारिक चाहे तो कैसा भी चले, मिटने को कुछ है ही नहीं, लेकिन हम कैसे ही नहीं चल सकते; क्योंकि बड़ी संपदा है, जो मिलते-मिलते खो जा सकती है, जो हाथ में आते-आते वंचित हो जा सकती है; जिस पर पहुंचने-पहुंचने को थे और मंजिल खो जा सकती है। और जितनी ऊंचाई पर हो तुम, गिरोगे उतनी ही नीचाई में उतर जाओगे।
इसलिए जतन शब्द को बहुत ख्याल रखना
जो आदमी खाई में ही सरक रहा है, उसको क्या डर! लेकिन जो गौरीशंकर के शिखर पर खड़ा है, डर उसको है। लेकिन यह डर भय नहीं है। यह डर एक साव चेतना है। यह डर इस बात का है कि मेरे पास कुछ है जो खो जा सकता है।
ऐसा हुआ कि जापान में एक फकीर हुआः बोकोजू। वह टोकियो में, राजधानी में ही था। पुरानी कथा है, कोई तीन सौ वर्ष पहले की। सम्राट रात को, जैसा पुराने सम्राट निकला करते थे, घोड़े पर निकलता था, छिपे हुये वेश में, नगर को देखनेः कहां क्या हो रहा है। सारा नगर सोया रहता, यह एक फकीर वृक्ष के

नीचे जागा रहता। अक्सर तो खड़ा रहता। बैठता भी तो आंख खुली रखता। आखिर सम्राट की उत्सुकता बढ़ी। पूरी रात, किसी भी समय, भी जाता, मगर उसको जागा हुआ पाता। कभी टहलता, कभी बैठता, कभी खड़ा होता, लेकिन जागा होता। सोया, सम्राट उसे कभी न पा सका। महीने बीत गए, उत्सुकता घनी होने लगी। आखिर एक दिन उससे न रहा गया। वह रुका और कहा कि फकीर, एक उत्सुकता है। अनधिकार है। कोई हक मुझे पूछने का नहीं, लेकिन उत्सुकता घनी हो गयी है और अब बिना पूछे नहीं रह सकता। किसलिए जागते रहते हो रात भर?
फकीर ने कहा कि... संपदा है, उसकी सुरक्षा के लिए। सम्राट और हैरान हुआ। उसने कहां, संपदा दिखाई नहीं पड़ती। ये टूटे-फूटे ठीकरे पड़े हैं। तुम्हारा भिक्षापात्र, ये तुम्हारे चीथड़े--इनको तुम संपदा कहते हो, दिमाग ठीक है? और उनको चुरा कौन ले जाएगा?
उस फकीर ने कहा, जिस संपदा की बात मैं कर रहा हूं, वह तुम्हारी समझ में
न आ सकेगी। तुम्हें ठीकरे ही दिखाई पड़ते हैं, और ये गंदे वस्त्र... । और वस्त्र गंदे हों कि सुंदर, क्या फर्क पड़ता है--स्त्री ही हैं; और ठीकरे टूटे-फूटे हों कि स्वर्ण के पात्र हों, ठीकरे ही हैं। इनकी बात ही कौन कर रहा है? एक आर संपदा है, जिसकी रक्षा करनी है।
पर सम्राट ने कहा, संपदा मेरे पास भी कुछ कम नहीं है, मैं भी सोता हूं।
उस फकीर ने कहां, तुम्हारे पास जो संपदा है, तुम मजे से सो सकते हो, वह
खो भी जाए तो कुछ खोएगा नहीं। मेरे पास जो है, वह अगर खो गया तो सब खो जाएगा। और पहुंचने के बिल्कुल करीब हूं। हाथ में आयी-आयी बात है, चूक गया तो पता नहीं, कितने जन्म लगेंगे!
कबीर उसी संपदा की बात कर रहे हैं। उसके लिए बड़ा जतन चाहिए; रातें जागकर बितानी पड़ेंगी; दिन होश से बिताना पड़े; एक-एक कदम जतन से रखना पड़े। साधु का अर्थ हैः जो जतन से जी रहा है, सुरति से जी रहा है, स्मरणपूर्व
जी रहा है--जो भी कर रहा है।
और जैसे-जैसे तुम स्मरण से भरोगे, वैसे-वैसे तुम्हें दिखाई पड़ेगीः झीनी-झीनी बिनी चदरिया।
बड़ी झीनी चादर है जीवन की! और जितना तुम झीनापन देख पाओगे, उसकी बनावट
की बारीकी समझोगे, उतने ही अनुग्रह से भरोगे, उतनी ही संपदा बहुत मूल्य होने लगेगी। जहां कंकड़-पत्थर थे, वहां हीरे प्रकट होने लगेंगे। और जितने तुम समझोगे कि संपिŸा पास है, उतना जाओगे। उतनी बड़ी संपिŸा का द्वार खुल जाएगा। दोनों एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रित है।
कहां से शुरू करोगे? कहीं से भी शुरू कर सकते हो। या तो जीवन की झीनी चादर को देखना शुरू करो। कबीर उसको ही इस सूत्र में समझाते हैं।
कहा के ताना काहे के भरनी, कौन तार से बिन चदरिया। यह जीवन जो चादर है, इससे सूक्ष्म इस जगत में और कुछ भी नहीं। यह तुम्हारा दिखाई पड़नेवाला शरीर न दिखाई पड़नेवाले को छिपाये हुए है। यह तुम्हारे रोएं-रोएं में जिसे तुम छू सकते हो, वह छिपा है। जिसे छूने का कोई उपाय नहीं। इन तुम्हारी आंखों के भीतर वह दर्शक बैठा है, जो अदृश्य है। जब तुम हाथ बढ़ाकर किसी को छूते हो तो तुम्हारा हाथ ही नहीं छूता, तुम्हारे भीतर वह भी उस हाथ से छूता है, जिसको छूने का कोई उपाय नहीं। तुम्हारे शरीर को स्थूल है, लेकिन तुम्हारे शरीर के भीतर अशरीर छिपा है। स्थूल और सूक्ष्म का ताना-बाना है। और बड़ी झीनी चादर है। यह शरीर भी जिसे तुम देख रहे हो, यह भी इतना स्थूल नहीं जितना तुमने समझ रखा है। और पहले तो तुम अगर प्रवेश करोगे तो तुम पाओगे कि यह शरीर भी बहुत सूक्ष्म है। क्योंकि तुम इसे पहचाने ही नहीं हो, इसे तुमने देखा नहीं है।
योगी कहते हैं कि करोड़ों नाड़ियां हैं, और अब विज्ञान भी सहमत है। अब विज्ञान भी कहता है कि योगियो की प्रतीति सही है। सिर्फ तुम्हारे मस्तिष्क में सात करोड़ स्नायुŸांत्र हैं। छोटा सा मस्तिष्क है--मुश्किल से कोई डेढ़ किलो वजन--वह भी आइंस्टीन के मस्तिष्क का, सबके मस्तिष्क का नहीं! डेढ़ किलो वजन का मस्तिष्क है, उसमें सात करोड़ स्नायुŸांत्र हैं। उनसे सूक्ष्म कोई भी चीज जगत में नहीं है। उन्हें खाली आंखों से देखा नहीं जा सकता। तुम्हारा बाल बहुत मोटा है। अगर हम एक लाख मस्तिष्क के तंतुओं को एक के ऊपर एक रखें तो तुम्हारे बाल की मोटाई के होंगे। इसलिए तो मस्तिष्क

की सर्जरी जल्दी विकसित नहीं हो सकती; क्योंकि काटो कुछ, कट जाए कुछ--सब इतना बारीक है। यंत्र को भी भीतर ले जाना खतरनाक है। क्योंकि तुम कुछ काटना चाहते हो, लाखों तंतु कट जाएंगे--सिर्फ यंत्र को भीतर ले जाने में। इसलिए मस्तिष्क की सर्जरी को इतनी देर लगी। क्योंकि इतने सूक्ष्म यंत्र विकसित करने बहुत कठिन थे। और इतने सधे हुए हाथ पाने बहुत कठिन थे। फिर भी ब्रेन की सर्जरी अभी भी पूरा विज्ञान नहीं बन पायी है। क्योंकि मस्तिष्क के संबंध में पूरी जानकारी अब भी हमें उपलब्ध नहीं हो सकी।
यह जो सात करोड़ तंतुओं का जाल है, इसमें तुम्हारी चेतना छिपी है। यह जाल भी सूक्ष्म है, और चेतना तो उससे भी सूक्ष्म है। यह जाल भी खाली आंखों से नहीं दिखाई पड़ सकता। और चेतना तो आंख से दिखाई ही नहीं पड़ सकती। बड़ी से बड़ी खुर्दबीन लगा दो तो भी दिखाई नहीं पड़ सकती। यह जो छोटे-छोटे तंतु हैं सात करोड़, इनसे एक-एक तंतु एक-एक करोड़ सूचनाओं को संगृहीत कर सकता है। एक तंतु एक करोड़ ज्ञान की सूचनाओं को अपने में संगृहीत कर सकता है। मस्तिष्कविद कहते हैं कि पृथ्वी पर जितनी लाइब्रेरियां हैं अभी, अगर उपाय किया जाए तो एक आदमी के मस्तिष्क में समा सकती हैं। एक आदमी अपने में उतनी जानकारी समाविष्ट कर सकता है। तुम अपनी मस्तिष्क का दो प्रतिशत से ज्यादा उपयोग करते ही नहीं। महान से महान प्रतिभाशाली व्यक्ति पंद्रह प्रतिशत का उपयोग करता है, पचासी प्रतिशत ऐसे ही चला जाता है। हम सोच भी नहीं सकते कि जिस दिन कोई आदमी सौ प्रतिशत मस्तिष्क का उपयोग करेगा, उस दिन कैसी महाप्रतिभा का जन्म होगा। उसके सामने आइंस्टीन छोटे टिमटिमाते दीए रह जाएंगे। वह महासूर्य जैसा प्रकट होगा।
यह मस्तिष्क ही सूक्ष्म हो ऐसा नहीं है; पूरा शरीर ही ऐसा ही सूक्ष्म ताने-बाने से बना है। योगियों ने बड़ी मेहनत की और उनकी मेहनत बड़ी अनूठी है। क्योंकि वैज्ञानिक के पास तो यंत्र हैं जानने को, उनके पास कोई भी यंत्र न था। और वैज्ञानिक के पास तो सुविधा है, प्रयोगशाला हैं, निरीक्षण किसी मुर्दे को चीर फाड़ा, न उन्होंने कभी किसी दूसरे का निरीक्षण किया। उनका निरीक्षण बड़ा अनूठा है। वे भीतर जाग गए और भीतर से निरीक्षण किया। बाहर से तो उनके पास कोई उपाय नहीं।
इस मकान को देखने के दो ढंग हैं। एक तो बाहर तुम सड़क पर खड़े होकर इसे देखो; वह इसका बाहरी रूप है, बाहर का परकोटा है। और एक वह रूप है जो इस घर में रहनेवाला भीतर से देखेगा। वैज्ञानिक बाहर से देख रहा है। वह नजर सड़क से गुजरनेवाले की है। वह घर का रहनेवाला नहीं है। वह भीतर नहीं खड़ा है। बाहर से देखनेवाला भी कहता है कि बड़ी विराट सूक्ष्मता है। तो जिन्होंने भीतर से देखा है, और जिन्होंने भीतर सजग होकर इस ताने-बाने को देखा है... ये सात करोड़ तंतु जिस दिन तुम भीतर देखोगे, उस दिन तुम समझोगे कबीर क्या कहते हैंः झीनी झीनी बिनी चदरिया?
ढाका की मलमल कुछ भी झीनी नहीं है। तुम मस्तिष्क में जैसी मलमल लेकर
चल रहे हो, कोई कारीगर कभी नहीं बुन पाया। बुन भी न पाएगा, क्योंकि वह बड़े से बड़े कारीगर बुनावट है।
कबीर कहते हैं, उस साईं को भी बुनने में दस महीने लग जाते हैं, उस परमात्मा को भी बुनने में एक चदरिया, इक आदमी का शरीर निर्मित करने में दस माह लग जाते हैं।
झीनी झीनी बिनी चदरिया।
काहे के ताना काहे के भरनी, कौन तार से बिनी चदरिया!
चकित हैं। भीतर इलहाम हुआ है। भीतर प्रकाश भर गया है। उस प्रकाश में
यह शरीर का ताना बाना दिखाई पड़ रहा है। एक-एक सूक्ष्मता प्रकट हुई है। और कबीर विस्मय में कह रहे हैं, काहे के ताना काहे के भरनी! कौन सा है ताना, कौन सा है बाना! किस तारे से बुना है इस चदरिया को! यह उनका चकित, विस्मय का भाव है।
जब भी कोई योगी भीतर जागता है, विस्मय से भर जाता है। विस्मय पहली घटना है। चकित हो जाता है, आवक रह जाता है।
यह बाहर जी संसार तुमने देखा है, ना कुछ है। इससे बड़ा संसार तुम अपने भीतर छिपाये बैठे हो। उसे तुमने देखा नहीं है। क्योंकि उसे देखने के लिए भीतर थिर होने की जरूरत है। और भीतर होश को उठाने की जरूरत है। भीतर एक

ज्योति बन जाए तुम्हारी चेतना, तब भीतर का घर प्रकट होगा। और निश्चित ही मैं कहता हूं, मनुष्य जाति के इतिहास में किसी दूसरे व्यक्ति ने इससे बेहतर शब्द का प्रयोग नहीं किया है। यह जुलाहे ने ठीक चाट मारीः
झीनी झीनी बिनी रे चदरिया!
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बिनी चदरिया।
ये योगियों के पारिभाषिक शब्द हैं। सुषुम्ना, योगी करते हैं, रीढ़ को-- लेकिन सिर्फ रीढ़ को ही नहीं; रीढ़ उसका बाहय आवरण है। रीढ़ के मध्य से एक अतिसूक्ष्म ज्योति धरा, रीढ़ के ठीक मध्य से अति सूक्ष्म ऊर्जा, विद्युत की भांति ऊर्जा प्रवाहित है। और वही तुम्हारे शरीर के, तुम्हारे मस्तिष्क के जीवन का आधार है। तुम्हारा मस्तिष्क सात करोड़ सूक्ष्म तंतुओंवाला, तुम्हारी सुषुम्ना का ही एक छोर है, रीढ़ का ही एक छोर है। वैज्ञानिक कहते हैं कि रीढ़ ही विकसित होकर मस्तिष्क बन गई है। तो तुम्हारा मस्तिष्क रीढ़ का ही एक छोर है।
इसे समझने की कोशिश करो।
तुम्हारे जीवन में दो छोर हैं--शरीर के जीवन में भी। एक छोर तो मस्तिष्क है, दूसरा छोर यौन-केंद्र है। इसलिए योगियों ने दो छोर माने हैं, एक तो, जिसको वे मूलाधार कहते हैं; जो तुम्हारा यौन केंद्र है, सेक्स-सेंटर है; और दूसरा, जिसको वे सहस्रार कहते हैं। सहस्राव का तुम्हें कोई पता नहीं है। रीढ़ के दो छोर हैंः एक कामवासना और एक परमात्मा की प्रतीति-- परमात्म--वासना। एक तरफ काम, दूसरी तरफ राम। और इन दोनों के बीच जो प्रवाहित धार है ऊर्जा की, इनर्जी की, उसका नाम सुषुम्ना है। रीढ़ उसकी बाहरी खोल है। जैसे बीज के भीतर हुआ वृक्ष छिपा है। बीज बाहरी खोल है--ठीक ऐसे ही जिसको हम रीढ़ कहते हैं, इस रीढ़ के भीतर योगियों की सुषुम्ना छुपी है। और जैसे-जैसे तुम जागोगे, वैसे-वैसे यह ऊर्जा ऊपर की और प्रवाहित होती है। जितने तुम सोये रहोगे, उतना यह नीचे की ओर प्रवाहित होती है।
निद्रा का अर्थ हैः तुम्हारा जीवन सिर्फ कामवासना को ही जान पाएगा, तुम कोई और बात न जान पाओगे। तुम एक ही छोर से परिचित होओगे। वह छोर बिल्कुल द्वार था पहला। तुम महल के बाहर सीढ़ियों पर ही जीवन गंवा दिए। तुमने समझ लिया यही घर है, तुम वहीं रह गए। अधिक लोग पोर्च में ही जीवन को समाप्त कर देते हैं; सीढ़ियों के भीतर भी प्रवेश नहीं हो पाता; द्वार पर दस्तक भी नहीं देते।
जैसे-जैसे तुम जागोगे... अब जागने के लिए फिर दो उपाय हो सकते हैं। एक उपाय पतंजलि का है। वह उपाय है कि रीढ़ में वह जो ऊर्जा है जीवन की, जिसको कुंडलिनी कहते हैं, उसे तुम ऊपर उठाओ। इसलिए शीर्षासन का उपयोग है। क्योंकि शीर्षासन की अवस्था में वह ऊर्जा सहज ही मस्तिष्क की तरफ गिरनी शुरू हो जाती है। आसन इसलिए उपयोगी हैं कि उन सबके माध्यम से चेतना पर दबाव डाला जाता है, ताकि ऊर्जा ऊपर की तरफ उठने लगे। इसलिए ब्रह्मचर्य का मूल्य है। क्योंकि अगर ऊर्जा नीचे की तरफ बहती रहे तो ऊपर की तरह जाने को बचेगी नहीं। तुम नीचे का द्वार रोक देते हो; जैसे नदियों पर हम बांध बांध देते हैं। नदियों पर बांध देते हैं तो विराट विद्युत की ऊर्जा इकट्ठी हो जाती है। ऐसे ही बांध को बांधने का उपाय हैः ब्रह्मचर्य। एक तरफ से हमने द्वार बंद कर दिया, तो ऊर्जा इकट्ठी होती है। जब ऊर्जा ज्यादा इकट्ठी होती है तो उसे मार्ग चाहिए।
ब्रह्मचर्य हो, और साथ में शीर्षासन हो, तो बंध हुई ऊर्जा मस्तिष्क की तरफ गिरनी शुरू हो जाएगी। ये उपाय शारीरिक हैं। पतंजलि और हठयोग इस शारीरिक उपाय से तुम्हें जगाएंगे। जैसे-जैसे तुम्हारी ऊर्जा ऊपर की तरफ बहेगी, वैसे-वैसे तुम सजग हो जाओगे।
दूसरा उपाय--कबीर, बुद्ध--उनका है। वह दूसरा उपाय यह है कि तुम जैसे- जैसे जागते जाओगे, वैसे-वैसे ऊर्जा ऊपर बढ़ने लगेगी। जैसे-जैसे तुम होश का उपयोग करोगे जीवन में, चलोगे तो होश से, बैठोगे, तो होशपूर्वक, उठोगे तो होशपूर्वक, बिस्तर पर सोने जाओगे तो होशपूर्वक, तब तक होश को सम्हालोगे जब तक शरीर नींद में डूब जाए, और धीरे-धीरे ऐसी घड़ी आएगी कि शरीर तो नींद में डूब जाएगा, होश सम्हला ही रहेगा। फिर नींद में भी होश चलने लगा।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, योगी तब भी नहीं सोता जब सब सो जाते हैं। इसका
यह मतलब नहीं है कि वह बैठा ही हरता है, आंखें खोले ही हरता है। वह भी सोता है--लेकिन उसका शरीर ही सोता है। उसके भीतर का साक्षी-भाव जगा रहता है।
तो जैसे-जैसे साक्षी-भाव बढ़ेगा, वैसे-वैसे ऊर्जा ऊपर बढ़ेगी। अन्योन्याश्रित है। या तो ऊर्जा को ऊपर ले जाओ, तो साक्षी-भाव बढ़ेगा। लेकिन ऊर्जा को ऊपर ले जाना अति दुरूह है और उपद्रव का मार्ग है। और लंबी साधना चाहिए, और शरीर का लंबा प्रशिक्षण चाहिए। और अति लंबी यात्रा है, एक जीवन में पूरी भी नहीं हो सकती क्योंकि वह बैलगाड़ी से यात्रा करने जैसा है। इसलिए धीरे-धीरे हठयोग प्रयोग के बाहर हो गया, उसकी जगह राजयोग ने ले ली। क्योंकि राजयोग चेतना पर सीधा काम करता है। और चेतना शीघ्रता से गतिमान होती है। क्योंकि कोई शरीर का साधना की जरूरत नहीं है। चेतना की साधना बड़ी सहज है। सिर्फ तुम्हें होश ही साधना है। अगर तुम हठयोग साधना चाहो तो शरीर सर्वांगरूप से स्वस्थ होना चाहिए, जो कि आज मुश्किल है। सर्वांग स्वस्थ शरीर खोजना मुश्किल है। क्योंकि सारी प्रकृति विकृत कर दी गई, और सारा प्राकृतिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। सब अप्राकृतिक है। हवा अप्राकृतिक है, जो तुम श्वास से लेते हो।
वैज्ञानिकों ने खोजा है कि बंबई, टोकियो, न्यूयार्क की हवा इतनी ज्यादा विषाक्त गैसों से भर गई है कि वे हैरान हैं कि आदमी उस हवा में जिंदा कैसे हैं! मर जाना चाहिए। लेकिन आदमी समायोजन कर लेता है। जीने की धारा धीमी हो जाती है; हर हालत में अपने को समायोजित कर लेता है, जीने की धारा धीमी हो जाती, लेकिन मरता नहीं। जीने का ढंग मंदा-मंदा हो जाता है, बेहोश-बेहोश हो जाता है, लेकिन मरता नहीं। चारों तरफ हवा विषाक्त है; क्योंकि हठयोगियों को पता भी नहीं था कि सड़क पर कारें होंगी, ट्रेनें दौड़ रही होंगी, मोटर-साइकिलें होंगी--सब तरफ पेट्रोल जल रहा होगा और हवा में आक्सीजन धीरे-धीरे क्षीण हो जाएगी। ऐसी हालत आ गई है कि जल्दी ही, सिर्फ बहुत संपन्न लोग आक्सीजन को उपलब्ध कर सकेंगे।
इस सदी के पूरे होते-होते हर आदमी को अपने चेहरे पर आक्सीजन की एक मास्क ओढ़नी पड़ेगी--हर आदमी को--रूस में उन्होंने प्रयोग शुरू कर दिए हैं। अमरीका में वे प्रयोग शुरू कर रहे हैं। क्योंकि सदी पूरे होते-होते हवा से आक्सीजन विदा हो जाएगी। तो अपना-अपना आक्सीजन का डब्बा साथ... लेकिन, यह सिर्फ बहुत संपन्न लोग ही इसका उपयोग कर सकेंगे। गरीब आदमी को तो मुश्किल होगी। जैसी गरीब आदमी को नल के पास क्यू लगा कर खड़ा होना पड़ता है, पानी मुश्किल हो गया; ऐसे ही उसे, आज नहीं कल, हवा के लिए भी क्यू लगा कर खड़ा होना पड़ेगा, जहां वे दो-चार आक्सीजन की गहरी श्वास ले ले, ताकि चौबीस घंटे किसी तरह चल सके।
भोजन विषाक्त है। सब अप्राकृतिक है। क्योंकि जो खनिज तत्व प्रकृति में चाहिए, वे सब खो गए; आदमी ने उनका उपयोग कर लिया और उनको वापिस नहीं डाला है। अब जो भी हम फर्टिलाइजर्स डाल रहे हैं, वे सब नकली और कृत्रिम हैं, और आदमी के बनाये हुए हैं। वे सब भोजन को विषाक्त कर रहे हैं। चारों तरफ अणु के प्रयोग चल रहे हैं, सारी दुनिया में। वे सारी हवा को विषाक्त कर रहे हैं--सब जगह रेडियीधर्मी तत्व हर चीज में प्रविष्ट हो गए हैं। कोई भी चीज अब शुद्ध नहीं है--हो भी ही सकती। ऐसी हालत में हठयोग का तो कोई उपाय नहीं रहा। हठयोग बड़ी प्राकृतिक दुनिया की बात थी, जब सब प्राकृतिक था। उस प्राकृतिक दुनिया में भी हठयोगी को कई जन्म लग जाते थे। वह लंबी यात्रा है। क्योंकि स्थूल ले जो चलेगा, वह बैलगाड़ी से चल रहा है।
सूक्ष्म का जो उपयोग करेगा, उसने ज्यादा त्वरित वाहन खोज लिए। इसलिए राजयोग ने धीरे-धीरे हठयोग को समाप्त कर दिया; उसकी पूरी जगह ले ली। बुद्ध, कबीर, नानक, दादू--सब राजयोगी हैं। और उन सबने हठयोग का विरोध किया है। क्योंकि उससे अब कोई पहुंच नहीं सकेगा, वह बात आई गई हो गई।
कबीर कहते हैं कि भीतर तुम जितने जागते जाओगे, उतनी ही ऊर्जा प्रवाहित होगी। वह ऊर्जा के प्रवाह का जो मार्ग है, उसका नाम सुषुम्ना है। उसको कबीर सुषुम्ना कहते हैं। और सुषुम्ना तो बीच का मार्ग है और उसके दोनों तरफ दो नाड़ियां और हैं, जिसका नाम इड़ा और पिंगला हैं। वे दो नाड़ियां भी शरीर में हैं, और उन दोनों नाड़ियों के भीतर भी जीवन-ऊर्जा प्रवाहित

होती है। तुमने शायद ध्यान न दिया हो, और आधुनिक शरीर शास्त्र ने बिल्कुल ध्यान नहीं दिया है, लेकिन अब कुछ वैज्ञानिक उस तरफ उत्सुक हो रहे हैं। श्वास तुम लेते हो, तो कुछ देर श्वास बाएं नथुए से चलती है, कुछ देर दाएं से। जब बाएं से श्वास चलती है, तो सारे शरीर की अवस्था भिन्न होती है और जब दाएं से चलती है तो भिन्न होती है। योगियों ने इन दोनों श्वासों के द्वारों को इड़ और पिंगला से जोड़ा है। और वे जड़े हैं।
जब तुम्हारी एक श्वास बाएं से चलती है, तो तुम्हारे जीवन की ऊर्जा एक यात्रा पथ से गुजरती है; जब दाएं से चलती है, तो दूसरे यात्रा-पथ से गुजरती है। योगियों ने इनके बहुत नाम दिए हैं। कोई सूर्य-नाड़ी, चंद्र-नाड़ी। क्योंकि तुम्हारा एक नासापुट सूर्य की भांति है। उससे जब तुम श्वास लेते हो, तो पूरे शरीर में उष्णता व्याप्त होती है। तुम्हारा दूसरा चंद्र की भांति है। जब तुम उससे श्वास लेते हो तो सारे शरीर में शांति व्याप्त होती है। तुम्हारा दायां स्वर सूर्य का, तुम्हारा बांया चंद्र का है। इसलिए कभी गौर करना, अगर सिर में दर्द हो, तो तुम दाएं स्वर को बंद कर देना और बाएं स्वर से श्वास लेना। थोड़ी देर में पाओगे, दर्द खो गया। क्योंकि बायां स्वर चंद्र का है, शांतिदायी है। अगर तुम शिथिल हो, सुस्त मालूम पड़ते हो, थे मालूम पड़ते हो, बाएं स्वर को बंद कर देना, दाएं स्वर से ही श्वास लेना। थोड़ी ही देर में तुम पाओगे ऊर्जा प्रवाहित हो गई। शरीर ऊष्ण हो गया, सक्रियता आ गई। वह सूर्य का स्वर है।
इस पर, आधुनिक शरीर-शास्त्र ने बहुत कम ध्यान दिया है, लेकिन नये कुछ वैज्ञानिक उत्सुक हुए हैं; इसमें कुछ रहस्य तो है ही। जो व्यक्ति सुबह उठता है, और उठते वक्त उसका दायां स्वर चलता रहता है, वह पूरे दिन सक्रिय होगा। सुबह उठते वक्त जिसका बायां स्वर चलता है, वह दिन भर सुस्त होगा। बाएं स्वरवाला व्यक्ति रात में ज्यादा जीवंत मालूम पड़ेगा; रात देर तक जगेगा। रात उसके लिए दिन है। दाएं स्वरवाला सांझ होते ही सो जाने की तैयारी करेगा; ब्रह्ममुहूर्त में अपने-आप उसकी नींद खुल जाएगी। दिन, उसका दिन है।
और हर व्यक्ति को अपनी प्रकृति खोज लेनी चाहिए। अन्यथा बड़े उपद्रव पैदा होते हैं। क्योंकि जो सूर्य के स्वरवाले लोग है, वे ज्यादा सक्रिय हैं। स्वभावतः जो उतने सक्रिय नहीं हैं, वे उनकी निंदा करते हैं। स्वभावतः जो उतने सक्रिय नहीं हैं, वे उनको कहते हैंः आलसी हो, काहिल हो, सुस्त हो--उठो, काम में लगो! वे कहेंगे, ब्रह्ममुहूर्त में उठो! आमतौर से पुरुष दाएं स्वरवाले, स्त्रियां बाएं स्वर वाली होती हैं--होना ही चाहिए। इसलिए भारत की पुरानी परंपरा है कि पत्नी बाएं बैठे। वह बाएं स्वर का प्रतीक है। वह चंद्र स्वरी है। रात, उसका दिन है। रात वह पूरी खिलती है। स्त्रियां सुबह जल्दी उठना पसंद नहीं करती। उठना पड़ता है, क्योंकि पति परमात्मा सो रहे हैं। लेकिन उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं पड़ता। और उसके परिणाम घातक होते हैं।
मेरे अनुभव में स्त्रियां सिर के दर्द से ज्यादा पीड़ित रहती हैं-- भारीपन से, उदासी से। और उसका एक कारण, अनेक कारणों में यह है कि उन्हें जब उठना चाहिए, उसके पहले से उठती हैं। नैसर्गिक यही है कि पति ही सुबह की चाय बनाए।
अभी वैज्ञानिक भी इस शोध पर पहुंच गए हैं। उन्होंने दूसरे मार्ग से बात को समझा है। वे कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का चौबीस घंटे में दो घंटे शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है। वे जो दो घंटे हैं, वही खास नींद के घंटे हैं। उन दो घंटों में जो सो लेगा, वह दिन भर जाता रहेगा। और उन दे घंटों में जो जागेगा वह दिन भर परेशान रहेगा। वे दो घंटे सभी के एक-जैसे नहीं हैं। एक-जैसे होते तो बड़ी आसानी थी। कानून बना देते कि तीन बजे से पांच बजे तक हर एक आदमी को सोना ही है। लेकिन वे एक जैसे नहीं हैं। किसी को दो और चार के बीच वे दो घंटे आते हैं; किसी को पांच और सात के बीच आते हैं। और वे दो घंटे सबके भिन्न हैं। और आप उनका पता लगवा सकते हैं। क्योंकि चौबीस घंटे शरीर का आप तापमान रख कर देख लें, आपको पता लगा जाएगा कि आपके घंटे कब हैं। वे दो घंटे तो सोना ही--चाहे ब्रह्ममुहूर्त हो या न हो। जो उन दो घंटों में सोयेगा, वह दिनभर ताजा अनुभव करेगा। नींद पूरी हो गई। आठ

घंटे सोने की जरूरत नहीं है, वे दो घंटे काफी हैं। अगर वे दो घंटे चूक गए, तो तुम बारह घंटे सोओ, तो भी तुम पाओगे कि कुछ ही नहीं हुआ। क्योंकि दो घंटे जब तापमान शरीर का नीचे गिरता है, तब पूरा शरीर शिथिल हो जाता है। तब सारी सक्रियता खो जाती है। तब तुम करीब-करीब जैसे मुर्दा हो गए, उस वक्त न सपना आएगा। उस वक्त गहनतम निद्रा होगी।
पर इन खोजियों को भी तुम यह अनुभव में आया की पुरुषों के घंटे पहले हैं, स्त्रियों के बाद में हैं। अगर पुरुष का चार और छह के बीच, तीन और पांच के बीच है, तो, स्त्रियों का आमतौर से छह और आठ के बीच, पांच और सात के बीच है। पश्चिम में तो उन्होंने सलाहें देनी शुरू कर दी हैं कि स्त्रियां थोड़े देर से उठें; देर तक जागें तो हर्ज नहीं। पुरुष जल्दी उठे। लेकिन इसमें भी भेद है। सभी पुरुष एक जैसे नहीं है, सभी स्त्रियां एक जैसी नहीं। कोई स्त्रियां तो पुरुषों से ज्यादा पुरुष हैं। कई पुरुष स्त्रियों से ज्यादा स्त्री हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन कल ही मुझसे मिलने आया। और उसने कहा मानें या न मानें, लेकिन पत्नी को घुटने चलवा दिया है। मैंने कहा, सच! उसने कहा, बिल्कुल सच। इसमें र Ÿाभर झूठ नहीं है। तो मैंने कहा, उसमें कुछ बोली वह? उसने कहा, बोली क्यों नहीं! बोली की खाट के बाहर निकलो नीचे से, तब बताऊं? । खाट के नीचे छुट गए थे... पत्नी को घुटने के बल चलवा दिया है!
पुरुष हैं जो स्त्रैण हैं। स्त्रियां है जो पौरुषिक हैं। तब भेद है,
हर व्यक्ति को अपना ही खोजना पड़ता है। और जैसे तुम्हारे अनूठे के निशान भिन्न हैं, तुम्हारे जीवन के सब निशान भिन्न हैं, किसी दूसरे से मेल नहीं खाते। अभी मैं शरीर-शास्त्र पर एक ग्रंथ देख रहा था, तो उस शरीर-शास्त्री ने नवीनता शोधों का उल्लेख किया है कि न केवल अनूठे के चिह्न, हर व्यक्ति की किडनी दूसरे भिन्न है। हर व्यक्ति का हृदय दूसरे से भिन्न है। शरीर का एक-एक रोआं भिन्न है। प्रत्येक व्यक्ति एक अनूठी प्रक्रिया है। परमात्मा ने बहुत झीनी-झीनी चादर ही नहीं बीनी है, बड़ी भिन्न-भिन्न चादर बीनी है। परमात्मा की सृजनात्मकता अनंत है। वह दोहराता नहीं। वह दुबारा तुम्हें बनाता नहीं, तुम्हारे जैसा फिर कभी नहीं बनाएगा। इसलिए तुम धन्यभागी हो। और अगर तुम इस धन्यभाग को समझ सको, तो तुम्हारे जीवन में बड़ी शांति और बड़े आनंद का उदय हो जाएगा। तुम जैसा कभी परमात्मा ने किसी को नहीं बनाया! तुम जैसा फिर कभी नहीं बनाएगा। तो इस महान अवसर को तुम ऐसे ही मत खो देना, जो फिर कभी आनेवाला। और तुम्हारे ऊपर उसका ध्यान है; क्योंकि तुम जैसा कभी नहीं बनाया, तुम जैसा फिर कभी कोई नहीं बनेगा। तुम बिल्कुल अनूठे हो! इसलिए भूल कर तुम नकल मत करना। राम जैसे बनने की, बुद्ध जैसे बनने की, कृष्ण जैसे बनने की--भूल कर नकल मत करना, क्योंकि परमात्मा सिर्फ यही चाहता है कि तुम जैसे ही पूरे बन जाओ, प्रामाणिक रूप से तुम हो जाओ। तुम्हारा फूल खिले। वैसा फूल किसी और के पास है भी नहीं। तुम अगर गरम जैसे बनोगे तो नकली, कागजी--जापानी। तुम अपने ही जैसे बनोगे तो ही वास्तविक यथार्थ।
काहे के ताना, काहे की भरनी, कौन तार से बिनी चदरिया।
इंगला-पिंगला ताना भरनी, सुषमनतार से बिनी चदरिया।।
इधर रूस में एक बहुत बड़ा प्रयोग हुआ। किरिलियान नाम के एक फोटोग्राफर
ने एक नयी फोटोग्राफी खोजी।... इस सदी में होनेवाली अत्यंत महत्वपूर्ण खोजों में से एक है। और उसने इतनी सूक्ष्म फिल्में तैयार की हैं, कि इतनी संवेदनशील की उससे सूक्ष्म शक्तियों के भी चित्र लिए जा सकते हैं। इसे थोड़ा समझ लें, क्योंकि तभी यही इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना की बात ख्याल में आ सकेगी। क्योंकि ये एनर्जी फील्ड हैं। ये वस्तुएं नहीं है, ये विद्युत क्षेत्र हैं।
किरिलियान की खोज आकस्मिक हुई। वह सिर्फ फोटोग्राफर था। लेकिन सूक्ष्मतम, संवेदनशील फिल्म बनाने की उसकी धुन थी। एक फोटो लेते वक्त, भूल से उसका हाथ कैमरे के सामने आ गया, और हाथ की तस्वीर आ गयी। और वह बड़ा हैरान हुआ। हाथ में तीन उंगलियां तो ठीक थी, अंगूठा ठीक था, एक छींगली अजीब सी हालत में थी, रुग्ण मालूम पड़ती थी। और उंगलियां बिल्कुल ठीक थीं। लेकिन चित्र में रुग्ण मालूम पड़ती थीं। और चित्र में लगता था कि उंगली को कोई

रोग लग गया है। छह महीने बाद उंगली को रोग लगा। और जब छह महीने बाद उसने चित्र लिया, और मिलाया, तो वे चित्र बिल्कुल एक जैसे थे। तब उसे एक सूझ हुई की कहीं ऐसा तो नहीं है कि बीमारी इसके पहले कि शरीर में प्रविष्ट हो, विद्युत-क्षेत्र में प्रविष्ट होती हो। क्योंकि छह महीने पहले चित्र बीमारी का आ जाए, और बीमारी छह महीने बाद हो। तो फिर उसने दूसरे प्रयोग शुरू किए। एक द्वार खुल गया। उसने फूलों के, कलियों के चित्र लिए और फूल के चित्र आ गए। क्योंकि अत्यंत संवेदनशील फिल्मों का उपयोग किया उसने। यह फूल चार दिन बाद खिलेगा। लेकिन उसकी विद्युत-ऊर्जा पहले खिलती है। फिर उसी विद्युत-ऊर्जा के कारण इसकी पंखुड़ियां खिलती हैं। वह विद्युत-ऊर्जा हमें दिखाई नहीं पड़ती, फूल दिखाई नहीं पड़ता है। और जब उसने चित्र मिलाए तो वह चकित हुआः ये चित्र बिल्कुल मेल खाते हैं! पहले विद्युत-ऊर्जा खिल जाती है, तो ऊर्जा का फूल बन जाता है। फिर चार दिन बाद फूल खिलता है। और जब इसका चित्र उस चित्र से मिलाया जाता है तो वो बिल्कुल एक जैसे हैं।
फिर तो किरिलियान ने पिछले तीस वर्षों में बहुत प्रयोग किए और उसने
यह बात प्रामाणिक रूप से सिद्ध कर दी कि शरीर से भी एक गहरा शरीर है, और वह गहरा शरीर विद्युत ऊर्जा का है। और अगर हम विद्युत-ऊर्जा के चित्र लेने में समर्थ हो जाएं, तो जो घटना इस शरीर तक जाने में छह महीने का समय लेती है, वह वहां पहले ही घट गई होती है।
इसके बड़े उपयोग हैं। जिस दिन यह परिपूर्ण बन जाएगा--किरिलियान की फोटोग्राफी--उस दिन दुनिया में किसी आदमी को बीमार होने की जरूरत नहीं; क्योंकि हम बीमार होने के छह महीने पहले पकड़ लेंगे कि अब बीमारी आने के करीब है। इलाज वहीं हो सकता है। आदमी को भी पता नहीं कि वह बीमार है। वह अभी बीमार है ही नहीं। बीमारी को सूक्ष्म से स्थूल तक आने में छह महीने का वक्त लगता है। और तुम्हारा जो विद्युत-ऊर्जा का चित्र है, उसको पुराने योगियों ने तुम्हारा आभामंडल कहा है।
किरिलियान पाता है कि रंग में फर्क है। जब आदमी स्वस्थ होता है, तो उसके शरीर के आसपास चार इंच तक फैला हुआ अलग रंग का आभामंडल होता है; जब बीमार होता है जब अलग रंग का होता है; जब प्रसन्न होता है तो अलग रंग का होता है; जब दुखी होता है तो अलग रंग का होता है। तुम दुखी नहीं होते की तुम्हारी विद्युत-ऊर्जा भी दुख के रंग से भर जाती है। और जब तक विद्युत-ऊर्जा को न बदला जा सके तुम सुखी न हो सकोगे। तुम्हारा स्थूल शरीर तो सिर्फ छाया है, असली शरीर तो भीतर छिपा है। उस असली शरीर को ही हमने इंगला- पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बिनी चदरिया, कहा है।
आठ कंवल दस चरखा डोल, पांच त Ÿा गुन तिनी चदरिया। वह जो भीतर का इनर्जी-फील्ड, ऊर्जा-क्षेत्र है, उसमें कंवल हैं, आठ चक्र हैं। उस द्वार हैं इंद्रियों के--दस चरखा डोले। पांच तत्व, पांच महातत्वों से वह बना है। तीन गुणों से उसकी रचना हुई है।
तो कबीर कहते हैं कि आठ कंवल, जिनको हम चक्र कहते हैं, अगर ठीक से समझें... । और उनको कंवल कहने का कारण है। यह तो प्रतीक है। कभी नदी में आपने देखा, जब कोई भंवर पड़ती है, तो चक्र में पानी घूमता है! वैसे ही चक्र आपके शरीर की विद्युत में बने हुए हैं, जहां ऊर्जा घूमती है--भंवर! और उन भंवरों का जो रूप है वह कमल से मिलता-जुलता है; जैसे कमल घूम रहा हो। और जब व्यक्ति अज्ञानी होता है, तो ऐसा होता है जैसे कमल नीचे की तरफ झुका हो-- डंडी ऊपर, कमल नीचे की तरफ झुका हो, मुरझाया हुआ। जैसे-जैसे ऊपर की तरफ बहनी शुरू होती है, कमल की डंडी सीधी होने लगती है, और कमल सीधा हो जाता है। बुद्ध को, विष्णु को, हमने कमल पर खड़ा किया है--खिला हुआ कमल जिस पर वे खड़े हैं! वह कमल उसी विद्युत-ऊर्जा का प्रतीक है। उनको पूरा कमल खिल गया है। उस पूरे कमल के खिल जाने में उन्होंने परम सत्य को पा लिया है। हमारे कमल झुके हुए हैं, जब तक हमारी ऊर्जा ऊपर नहीं बहती। हमारी ऊर्जा नीचे बहती है।
ऐसा समझो कि जैसे कमल हैं, और वर्षा हो रही है जोर से, तो वर्षा को झुका देगी और नीचे की तरफ मुंह कर देगी। जब तक तुम्हारे जीवन में कामवासना हो रही है, गहन रूप से बरस रही है, तब तक ऊर्जा नीचे की तरफ बह रही है। सारे कमल झुके होंगे। जिन दिन ऊर्जा ऊपर की तरफ बहेगी, ऊर्ध्वगमन शुरू होगा--जिनको

वेद ने उर्ध्वरेतस कहा है--जब तुम उर्ध्वरेतस बनोगे कि तुम्हारी ऊर्जा ऊपर की तरफ जाएगी, सब कमल ऊपर की तरफ उठ जाएंगे, सब कमल खिलते जाएंगे! अंतिम कमल, आठवां कमल जिसको कबीर कहते हैं, वह सहस्र है।
यह गिनना अलग-अलग है। कोई सात कंवल गिनता है, कोई आठ कंवल गिनता है, कोई नौ कंवल गिनता है। कोई ग्यारह कंवल गिनता है। यह गणना संभव है। यह इस पर निर्भर करता है कि तुम... । कमल तो बहुत हैं। तुम्हारी ऊर्जा के रोएं- रोएं में कमल है। तो जितना तुम्हें गिनना हो, जिस हिसाब से गिनना हो, तुम गिन सकते हो। फिर हर आदमी की यात्रा के पड़ाव भिन्न हैं। जैसे कि तुम यात्रा पर जाओ, कोई आदमी हर दस मिल पर रुके, सौ मील की यात्रा हो तो हर दस मील पर रुके; दस पड़ाव बनाए। दूसरा आदमी पंद्रह मील पर रुके, तो दस से कम पड़ाव बनाए। तीसरा आदमी बीस मील तक चलता हो और बीस मील पर रुके तो पांच ही पड़ाव बनाए।
बुद्ध कहते हैं, छह कमल। उन्होंने छह ही पड़ाव बनाए होंगे। वह जो अनंत यात्रा है, उस पर वे छह जगह रुके होंगे। छह जगह अड़चन पायी होगी। छह जगह उनको फूलों को खिलाना पड़ा होगा तो छह। कबीर हैं, आठ। उसमें कोई विवाद नहीं है। इस पर भारी विवाद चलता है, पंडितों में कि कौन सही है। इसमें क्या अड़चन है? मैं दस मील पर अपना पड़ाव बनाऊं, मेरी मर्जी; मैं बीस पर बनाऊं, मेरी मर्जी। जहां मैं कहूंगा, वहां मेरा पहला पड़ाव होगा।
ऐसे भी लोग हैं, जिन्होंने कमलों की बात ही नहीं की; जैसे महावीर। लगता है उन्होंने पड़ाव बनाए ही नहीं। जेट जम्प! ऐसा लगता है, उन्होंने सीधे पहले केंद्र से अंतिम केंद्र पर छलांग लगाई। यह भी संभव है।... यह भी संभव है। और महावीर जैसे व्यक्ति को संभव है। इसलिए हमने उनको नाम महावीर दिया है। नाम ही दिया है कि उनके पास महान ऊर्जा है, भारी ऊर्जा है!
ऊर्जा जितनी बड़ी हो उतनी लंबी छलांग हो सकती है--कहीं बीच में पड़ाव बनाया ही न हो। तो उन्होंने कमल की बात ही नहीं की, बीच के चक्रों की बात नहीं की। लेकिन उसका मतलब यही नहीं है कि वे बीच के चक्रों से नहीं गुजरे। तुम्हारी ट्रेन चाहे बीच के स्टेशनों पर रुके या न रुके, गुजरती तो है ही। तुम जंकशन से जंकशन रुको, मेल गाड़ी में चलो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन जो आदमी ट्रेन से गुजर रहा है, फास्ट ट्रेन से और बीच के स्टेशन पर रुकता नहीं, उसे बीच के स्टेशनों की चर्चा करने का कोई कारण नहीं। वह जंकशन टू जंकशन... । वह एक जंकशन से दूसरे जंकशन की बात करेगा। फिर पैसेंजर में चलनेवाले लोग हैं। कोई खराबी नहीं है पैसेंजर में चलने में।
मेरे एक मित्र हैं, बहुत धनी, लेकिन हमेशा पैसेंजर में चलते हैं। वे कहते हैं, गरीब लोग चलते हैं तेज गाड़ी में, जिनके पास समय की कमी है। और उनकी बात भी मुझे जंचती है; क्योंकि वे कहते हैं, यात्रा का आनंद ही क्या? हर स्टेशन पर वे उतरते हैं, पानी पीते हैं, भजिये खरीदते हैं, यह करते हैं, वह करते हैं। तो यात्रा का आनंद ही क्या! गपशप करते हैं, मिलते-जुलते हैं। ट्रेन खड़ी है... ।
एक बार मेरा उनसे साथ हो गया। तो जहां मैं बारह घंटे में पहुंच जाता, तीन दिन लगा दिये उन्होंने। मगर वे आदमी प्यारे हैं। उनके साथ तीन दिन भी तीन क्षण जैसे लगे और मुझे भी लगा की बात तो उनकी भी सच है। मर्जी है, कौन कैसा चलता है। विवाद कुछ भी नहीं है।
इसलिए मेरे लिए इसमें कुछ फर्क नहीं पड़ता है कि कोई नौ कमल कहता है कि कोई दस कहता है, कि कोई ग्यारह कहता है, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। कबीर कहते हैं, बिल्कुल ठीक कहते हैं।
आठ कंवल दस चरखा डोले... । और दस हैं इंद्रियों के। दस इंद्रियां हैंः पांच कर्म-इंद्रियां, और पांच ज्ञान इंद्रियां। वे कहते हैं, इन इंद्रियों का चरखा है। वे प्रतीक तो जुलाहे के हैं। पंच त Ÿा--पांच तत्व हैं। तीन गुण--रजस, तमस, सत्व। इन सबसे मिल कर वह भीतर की चादर बनी है।
साईं को सीयत मास दस लागे, ठीक कर बिनी चदरिया।
परमात्मा को एक-एक- चादर बनाने में दस महीने लग जाते हैं।
सोई चादर सुन नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ी के मैली किनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया।।

परमात्मा को भी निर्माण करने में समय लेता है। क्योंकि जो निर्माण किया जा रहा है, वह इतना बहुमूल्य है! तुम अपने को कोई कीमत ही नहीं देते। परमात्मा पूरा अस्तित्व दस महीने तुम पर खर्च करता है--तुम्हें बनाने में। लेकिन तुम अपना कोई मूल्य ही नहीं समझते। तुम ऐसे जीते हो जैसे निर्मूल्य हो। तुम दो पैसे में अपने को बेचने को तैयार रहते हो। तुम्हें पता ही नहीं कि कितनी बड़ी संपदा तुम्हें दी गई। तुम उसे ऐसे ही बरबाद कर देते हो। तुम उसका कोई भी उपयोग नहीं कर पाते।
कबीर यहां एक बड़ी महत्वपूर्ण बात कर रहे हैं, सूक्ष्म है, और गौर से समझें। कहते हैं...
सोई चादर सुन नर मुनि ओढ़ी... ।
तीन प्रतीक उन्होंने चुने। सुर--स्वर्ग में रहनेवाला देवता; नर-- साधारण मनुष्य; और मुनि--त्यागी जन। इन सबने वही चादर ओढ़ी, लेकिन कबीर कहते हैं कि ओढ़ी के मैली किनी चदरिया--और इन तीनों ने मैली कर दी।
मुश्किल है समझना। समझेंः
सुर का अर्थ हैः स्वर्ग में रहनेवाले देवता। देवता, भोगने के शुद्ध प्रतीक हैं। वे सिर्फ भोगते हैं। स्वर्ग का अर्थ हैः भोग-स्थल। वहां हमने कल्पतरू बनाए हैं, जिनके नीचे आदमी बैठता है और जो चाहता है, चाहा नहीं इधर कि पूरा नहीं हुआ उधर... चाह और पूर्ति में कर्म नहीं है। इसलिए स्वर्ग कोई कर्म स्थली नहीं है, भोग-स्थली है। यही तो हमारी वासना है सबकी कि ऐसा हो कि इधर मैं चाहूं कि उधर पूरा हो जाए। बटन भी न दबाना पड़े, उतनी देर भी न लगे। लेकिन यहां तो पृथ्वी पर बड़ी देर लगती है।
तुम एक बड़ा मकान बनाना चाहते हो तो कोई तुमने चाहा और पूरा नहीं हो जाएगा। शायद पूरी जिंदगी तुम तड़पोगे, परेशान होओगे, तब बन पाएगा। शायद जब तक बन पाएगा; तब तक तुम रहने योग्य ही नहीं रह जाओगे। जब बन जाएगा, तब तुम पाओगे जिंदगी तो गई। तुम धन कमाओगे बड़ी कामनाओं से, बड़े सपनों से; लेकिन जब धन हाथ आएगा, तुम पाओगे कि जो भोग सकता था वह तो कभी का खो गया। समय सब नष्ट हो जाता है। इसलिए हमारी अंतिम कल्पना भोग की है। स्वर्ग, वहां वासना और पूर्ति में समय नहीं जाता। यहां तुमने चाहा, वहां पुरा हुआ। इधर तुम मांग की, तत्क्षण पूरी हुई। यही तो अमीर होने का सुख है। गरीब और अमीर में फर्क क्या है? गरीब चाहे तो उसी वक्त पूरा नहीं हो सकता, अमीर चाहे तो उसी वक्त पूरा हो सकता है। जितना उसके पास धन हो, उतनी उसकी वासना और पूर्ति में दूरी कम होती जाती है। इधर उसने कहा कि एक बड़ा महल चाहिए, एक बड़ा महल हो जाएगा।
लेकिन कबीर कहते हैं, देवता भी मैली कर देते हैं। भोग से चादर मैली हो जाती है। क्योंकि भोगा का अर्थ हैः जो अपनी वासनाओं में पूरी तरह तादात्म्य करके भटक गया। भूख लगी तो उसने समझा कि मैं भूख हूं। वासना जगी तो उसने समझा कि मैं वासना हूं। क्रोध उठा तो उसने समझा कि मैं क्रोध हूं। भोगी का अर्थ हैः वासनाओं के साथ जिसने अपने को इतना जोड़ लिया कि कोई फासला न रहा। स्वर्ग के देवता भी गिरेंगे वापिस। स्वर्ग कोई अंतिम अवस्था नहीं है। भारत ने एक अंतिम अवस्था खोजी, जिसको वे कहते हैंः मोक्ष। यह थोड़ा समझ लेने जैसा है, क्योंकि दुनिया में कहीं भी मोक्ष की धारणा नहीं है। नर्क है। नर्क है, स्वर्ग है, पृथ्वी है; मोक्ष एकदम भारतीय धारणा है-- शुद्ध भारतीय! मगर भारतीयों ने मेहनत बड़ी की है। इसलिए हकदार थे वे खोजने के उस दिशा में। जैसे विज्ञान ने पश्चिम में मेहनत की है, वैसे भारत ने धर्म में मेहनत की है। स्वर्ग को हम अंतिम अवस्था नहीं मानते। उससे भी आदमी गिरेगा; क्योंकि कब तक भोगेंगे! भोग से ऊब पैदा होती है। इसलिए स्वर्ग अगर तुम पाओगे तो सभी देवताओं को जम्हाई लेते हुए पाओगे। ऊब पैदा होती है।
तुम सोचो, तुम जो चाहो, वह उसी वक्त मिल जाए, कितनी देर तुम भोग पाओगे? दस-बारह घंटे? मुश्किल! तुम जो चाहो, उसी वक्त मिल जाए--तुम्हारी वासनाएं कितनी देर चल पाएंगी? भोग उबा देगा। इसलिए पुराणों में कथाएं हैं कि देवता ऊब जाते हैं, पृथ्वी के लिए तरसते हैं। यहां एक फायदा है। यहां वासना उसी वक्त तृप्त नहीं होती; समय लगता है। और समय में ही मजा है।

इसलिए तो कवि कहते हैं, इंतजारी में... । वह जो प्रतीक्षा है... । मिलने में कुछ खास मजा नहीं; मिल गया फिर क्या करोगे? इंतजारी में, राह देखने में, प्रतीक्षा करने में, आ रही मंजिल, आ रही; आशा में सारा मजा है। मिल जाने पर तो सब मजा खो जाता है। देवताओं को मिल गया है; भोगते हैं, लेकिन भोग के साथ तादात्म्य जुड़ जाता है। देवता कोई जागे हुए लोगों का नामन ही है। तुम इंद्र से ज्यादा सोया हुआ आदमी न पा सकोगे। खोया है--शराब, राग-रंग... अप्सराएं नाच रही हैं, और हमेशा परेशान है। हमेशा कथाओं में उसका सिंहासन डोलता रहता है। कोई मुनि कहीं ध्यान कर रहे हैं, उनसे क्या लेना-देना! कहीं कोई मुनि तपश्चर्या कर रहे हैं, तत्क्षण इंद्र का सिंहासन डोलने लगता है। इन कहानियों का बड़ा महत्व है, बड़ा मूल्य है। इसका अर्थ यह है कि त्यागी और भोगी दोनों एक ही चीज के दो छोर हैं; जैसे कि एक ही तराजू के दो पलड़े होते हैं। इस तराजू पर ज्यादा वजन रखो, यह पलड़ा डोलने लगता है। जब भी कोई मुनि ज्यादा त्याग करता है, इंद्र घबराता है। उधर पलड़ा डोलता है-- क्यों? ये दोनों एक ही चीज से जुड़े हैं, एक तराजू के दो छोर है। क्योंकि इस मुनि ने अगर ज्यादा त्याग किया तो भोग का अधिकारी हो जाएगा; इंद्र बन सकता है। तो इंद्र अपदस्थ हो सकते हैं। इंद्र की वही दशा है, जो दिल्ली के राजनीतिज्ञों की है। इंद्र को ही इंदिरा--फर्क नहीं पड़ता; सिंहासन डोलता ही रहता है। और वशिस्र और विश्वामित्र हों कि जयप्रकाश, एक ही तराजू के दो पलड़े हैं। और इस तराजू पर वजन बढ़ा कि दूसरा तराजू ऊपर उठा आर चकित हुआ कि क्या मामला है।
इसलिए कथा बड़ी महत्वपूर्ण है। कोई कथा व्यर्थ तो होती नहीं। अगर हम उसके मनोविज्ञान में प्रवेश कर सकें तो बड़ी महत्वपूर्ण है। भोगी हमेशा त्यागी से डरा रहेगा। क्योंकि त्यागी कर क्या रहा है, त्याग कर क्यों रहा है? त्यागी इसलिए सारा शोरगुल मचा रहा है, तपश्चर्या कर रहा है कि भोग का अधिकारी हो जाए।
तो भोगी और त्यागी में बहुत फर्क नहीं है। भोगी और त्यागी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उनकी कामना एक ही है। एक को मिल गया है; दूसरे मिल जाए, इसकी आशा में जी तोड़ कर लेगा हुआ है। इसलिए त्यागी भी सपने तो भोग के ही देखता है। उसने यहां सारी स्त्रियां छोड़ दी हैं, अप्सराओं के सपने देख रहा है। उसने यहां भोजन छोड़ दिया, उपवास कर रहा है; लेकिन प्रतीक्षा कर रहा हैः कब स्वर्ग के भोजन, मिस्रान्न उपलब्ध होंगे। यहां उसने शरीर को गला डाला, सुखा डाला, वहां स्वर्ण-काया की प्रतीक्षा कर रहा है, देव-काया की-- देवताओं जैसा शरीर, जो कभी मुर्झाता नहीं, जो कभी बूढ़ा नहीं होता। स्वर्ग में उम्र बढ़ती नहीं। वहां लोग ठहरे ही रहते हैं। कम से कम स्त्रियां, कहते हैं, सोलह पर ठहरी रहती हैं। कोई अप्सरा सोलह से बड़ी की है नहीं। अब कितना समय बीत गया, अभी भी वह सोलह की है। उम्र बढ़ती नहीं। यहां भी स्त्रियां कोशिश तो बहुत करती हज कि न बूढ़े लेकिन यह इस जमीन पर चलता नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने मुझे एक दिन कहा, अकेले बूढ़ा होते होते, अकेले- अकेले बहुत बुरा लगता है।
मैंने कहा, अकेले। तुम्हारी पत्नी है। उसने कहा, पत्नी दस साल से उसकी उम्र बढ़ी ही नहीं, हम अकेले ही बूढ़े हो रहे हैं।
हर पति अकेला बूढ़ा होता है। पत्नी तो ठहर चुकी होती है बहुत पहले। स्वर्ग में उम्र बढ़ती नहीं, शरीर गलता नहीं, रोग की कोई खबर नहीं। स्वर्ग में कोई वैद्य है, आपने सुना? एलोपैथी या आयुर्वेदिक या हकीम--कोई भी नहीं, यहां तो बुद्ध भी हों, तो भी वैद्य की जरूरत पड़ती है। स्वर्ग में कोई रोग नहीं, बीमारी नहीं, बुढ़ापा नहीं--बस, भोग ही भोग है। सिर्फ स्वर्ग का रोग एक ही है कि वहां ऊब पैदा हो जाती है।
धनी आदमी ऊब जाता है। गरीब आदमी उतना ऊबा हुआ नहीं दिखाई पड़ेगा। धनी आदमी बिल्कुल ऊबा हुआ दिखाई पड़ेगा। उसकी जिंदगी में अब कुछ बचा नहीं। क्योंकि इंतजारी टूट गई। अब कुछ इंतजार करने को नहीं है, सब पा लिया। अब! अचानक सब ठहर गया! गति थी, दौड़ थी, सब रुक गया। अब कहीं जाने को न बचा। अब वह मुश्किल में पड़ गया है। फिर वह तड़पने लगता है--वापिस पृथ्वी पर उतर आने को।

कबीर कहते हैं कि चाहे देवता ओढ़ें, चाहे मनुष्य--सभी उसको मैला कर देते हैं। देवता भोग के कारण मैला कर देता है, मुनि त्याग के कारण मैला कर देते हैं।
कबीर का यह वचन बड़ा क्रांतिकारी है। क्योंकि कबीर यह कह रहे हैं कि तुमने अगर त्याग भी किया और बेहोशी से किया, तो वह भोग से भिन्न नहीं है। यह भोग के विपरीत भला हो, लेकिन भोग से भिन्न नहीं है। उसका स्वभाव एक ही है। और त्यागी और भोगी की नजर में बुनियादी फर्क नहीं पड़ता। भोगी धन के पीछे पागल है, त्यागी धन छोड़ने के पीछे पागल है। लेकिन दोनों की नजर धन पर लगी है। भोगी कहता है मेरे पास दस करोड़ रुपए हैं, त्यागी कहता है मैंने दस करोड़ त्याग दिए हैं। लेकिन दस करोड़ की गिनती दोनों करते हैं। भोगी कहता है, सोना सब कुछ है। त्यागी कहता है, सोना मिट्टी है। लेकिन दोनों सोने की चर्चा करते हैं। सोना अगर सच में ही मिट्ठी है तो चर्चा भी क्या करनी? मिट्टी की कोई चर्चा क्यों नहीं करता? अगर सेना सच में मिट्टी है तो चर्चा क्या करनी?
महाराष्ट्र में एक फकीर हुआ। उस फकीर का नाम था रांका। वह गरीब त्यागी आदमी था। लकड़ी काट कर बेचता और जो बच जाता उससे अपना भोजन चलाता। सांझ को वह भी बांट देता जो बच जाता। एक दिन वर्षा देर तक होती रही, दो तीन दिन बीत गए। तीन दिन तक भोजन न मिला। उसकी पत्नी भी थी, उसका नाम था बांका। रांका पति, बांका पत्नी। चौथे दिन वर्षा रुकी, जंगल गए। लकड़ी काट कर लौटते थे, लकड़ी गीली थी, बिक भी न सकेगी; भूखे थे, थके थे। अचानक देखा पति ने, आगे चल रहा था, कि राह के किनारे स्वर्ण-अशरफियों से भरी हुई थैली पड़ी है। कुछ अशरफियां हैं, थैली खुल गयी। त्यागी आदमी था, जिसको कबीर मुनि कहेंगे। सोचा कि यह मिट्टी यहां क्यों पड़ी है, और किसी का मन मोह ले! तो उसने गढ़े में डाल के ऊपर मिट्टी डाल दी। पत्नी तब तक पीछे से आ गई। उसने उससे पूछा, क्या कर रहे हैं? तो उसने कहा, यहां कुछ सोना पड़ता था। सोना तो मिट्टी है। इसलिए उसको मैंने गढ़े में डाल कर उसके ऊपर मिट्टी डाल दी है। पत्नी ने कहा, तुम्हें मिट्टी पर मिट्टी डालते शर्म नहीं आती। मिट्टी ही है तो फिर मिट्टी पर मिट्टी काहे कि लिए डाल रहे हो?
नहीं, जो कहता है सोना मिट्टी है, उसको सभी मिट्टी नहीं हुआ, नहीं तो कहने की कोई जरूरत ही नहीं।
त्यागी-भोगी, दोनों एक ही जगह बंधे हैं। दिशाएं विपरीत हैं, नजर एक तरफ। विरोध में है त्यागी उसी के, जिसके पक्ष में भोगी है। लेकिन दोनों की बेहोशी समान है। तुम बायीं तरफ करवट लेकर सो रहे, वह दायीं तरफ करवट लेकर सो रहा--फर्क नींद में नहीं पड़ता। सो दोनों रहे हैं। सपना दोनों देख रहे हैं। पीठ किए एक-दूसरे की तरफ, दोनों सो रहे हैं। नींद असली सवाल है। दोनों के मध्य में मनुष्य है।
कबीर कहते हैं, त्यागी, भोगी दोनों नष्ट कर देते हैं चदरिया को। और बीच में जो मनुष्य है, वह खिचड़ी जैसा है। सुबह त्यागी, दोपहर भोगी; शाम त्यागी, रात भोगी। वह चौबीस घंटे में कई दफा बदलता है। चौबीस घंटे भी देर की बात हो गई।
उन्होंने अभी अमरीका में एक छोटी सी घड़ी बनाई है, और घड़ी में डायलर पर निक्सन की फोटो बनाई है और हर सेकेंड निक्सन की नजर बदलती है--उस घड़ी में। मजाक है, लेकिन अच्छी चीज बनाई है। हर सेकेंड पर आंख डोलती है। पर वह सब आदमी की तस्वीर है। हर सेकेंड पर तुम बदलते हो। भूख लगी, तुम एकदम भोगी हो जाते हो; पेट भर गया, तुम एकदम त्यागी बन जाते हो; संभोग कर लिया, करवट लेकर एकदम त्यागी हो जाते हो, ब्रह्मचर्य का विचार करने लगते हो। सोचते हो, सब बेकार; क्या रखा है इस सब में! यह तुम कई बार कर चुके हो। संभोग के बाद विषाद न आए, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है। संभोग के बाद ऊर्जा का क्षय होता है। तुम थके-हारे और कुछ पाते नहीं; और कितना सोचते थे, कितना सपना बांधते थे--यह मिलेगा, यह मिलेगा, यह मिलेगा! कुछ मिलता नहीं, विषाद से भर जाते हो। संभोग के बाद हर आदमी ब्रह्मचर्य का विचार करता है। लेकिन कितनी दूर? चौबीस घंटे में फिर ऊर्जा इकट्ठी होगी--भोजन से, हवा से, श्रम से। फिर भोजन ऊर्जा को बना देगा। चौबीस घंटे बाद फिर वासना जगेगी, फिर स्त्री का विचार उठेगा। तब तुम बिल्कुल भूल जाओगे कि चौबीस घंटे पहले ब्रह्मचर्य बड़ा

महत्वपूर्ण मालूम पड़ा था। अब स्त्री महत्वपूर्ण मालूम पड़ेगी। और यह वर्तुल घूमता रहा है सदा से। और तुम अनेक बार दोनों काम कर चुके हो। संभोग के बाद तुम सोचने लगते हो त्याग। फिर भूख जागती है, फिर तुम सोचने लगते हो भोग। दोनों के बीच में--त्यागी और भोगी अतियां हैं--इन दोनों के मध्य में खड़ा हुआ मनुष्य है। और मनुष्य बिल्कुल खिचड़ी है, कनफ्यूजन है। दोनों का समय बंटा हुआ है।
तुम अगर अपना कैलेंडर रखो, तो तुम बराबर लिख सकते होः सुबह त्यागी, दोपहर भोगी, फिर त्यागी, फिर भोगी, फिर मंदिर चले गए, फिर दुकान आ गए, फिर दुकान पर बैठे, मंदिर की सोचने लगे; फिर मंदिर में बैठे, दुकान की सोचने लगे। तुम पाओगे कि तुम दोनों का मिश्रण हो। जब दोनों शुद्ध त्यागी और भोगी नष्ट कर देते हैं तो तुम तो दोहरा नष्ट कर दोगे। तुम त्याग और भोग दोनों की धारणाओं से चादर को नष्ट कर दोगे। त्यागी बायीं करवट सो रहा है, भोगी दायीं करवट सो रहा है। तुम करवटें बदल रहे हो। तुम चादर बिल्कुल ही नष्ट कर दोगे। वे कम से कम थिर हैं, अपनी-अपनी दिशा में लगे हैं। तुम घूम रहे हो। तुम्हारी उ Ÿोजित अवस्था इस सूक्ष्म चादर को बिल्कुल ही नष्ट कर देगी। इसलिए कबीर कहते हैं, सोइ चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ी के मैली कीनी चदरिया। दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया।
लेकिन दास कबीर ने बड़े सम्हाल कर ओढ़ी, बड़ी सावचेतता से ओढ़ी, बड़े जतन से, होश से ओढ़ी, बड़े ध्यान से ओढ़ी--और ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया--जैसी दी थी परमात्मा ने, वैसी ही वापस कर दी।
यह मोक्ष है। यह मुक्त की अवस्था है। तुम, जो मिलता है, उसे वैसा ही वापस कर देना बिना विकृत किए।
बच्चा पैदा होता है, साफ चादर ले कर पैदा होता है। सब स्वच्छ, निर्दोष! फिर विकृति आनी शुरू होती, इकट्ठी होनी शुरू होती। बूढ़ा मरता है खंडहर की भांति, सब बरबाद! हाथ में कुछ भी उपलब्धि नहीं। जो पास था, वह भी गंवा कर। कबीर कहते हैं कि ज्ञानी भी करता है, लेकिन इतना उसको बचाए रखना है, जो मिला था। उस चादर को वैसा ही निर्दोष रखता है।
कैसे रखोगे इस चादर को निर्दोष? कबीर गृहस्थ हैं, पत्नी, बच्चा है, कमाते हैं, घर लाते हैं--फिर भी कहते हैं, दास कबीर जतन से ओढ़ी। कला क्या है इस चदरिया को बचा लेने की? कला हैः होश। कला हैः विवेक। कला हैः जाग्रत चेतना। करो--जो कर रहे हो, जो करना पड़ रहा है। जो नियति है, पूरी करो। भागने से कुछ प्रयोजन नहीं। लेकिन करते समय कर्ता मत बनो। साक्षी रहो, वहां कुंजी है। बाजार जाओ, दुकान करो, कर्ता मत बनो। मंदिर जाओ, प्रार्थना करो-- कर्ता मत बनो। कर्ता परमात्मा को ही रहने दो, तुम काहे झंझट में... बीच में पड़ते हो। कर्ता एक--वही सम्हाले! तुम साक्षी रहो। तुम जैसे अभिनेता हो-- जैसे एक पार्ट तुम्हें मिला है, एक रोल ड्रामा के एक हिस्सा है, वह तुम्हें पूरा कर देना है।
जैसे तुम राम बने, रामलीला में, तो जरूर तुम्हें रोना है। सीता चोरी जाएगी, वृक्ष से पूछना है, कहां है मेरी सीता, चीख-पुकार मचाना, सब करना है, लेकिन भीतर-भीतर न तुम्हारी सीता खोयी है, न कोई मामला है। अभिनय है। पर्दे के पीछे जाकर तुम फिर गपशप करोगे, चाय पियोगे। रावण से चर्चा करोगे-- पर्दे के पीछे। पर्दे के बाहर धनुषबाण लेकर खड़े हो जाओगे।
जीवन एक लीला है। अगर तुम जतन से चल सको, तो जीवन एक अभिनय है।
मेरे एक मित्र हैं; मनोविज्ञान के प्रोफेसर हैं। उनके घर में मैं मेहमान था। उनका लड़का, एक ही लड़का है। नई-नई शादी की थी। वह भोजन नहीं कर रहा था तो पत्नी बड़ी परेशान थी, डांटा-डपटा, फुसलाया, सब उपाय किए, लेकिन वह नहीं कर रहा तो पति ने कहा, ठहर, थोड़ा मनोविज्ञान का उपयोग करना चाहिए। मनोविज्ञान के प्रोफेसर हैं। नये-नये पति, नये-नये पति। तो मैं भी देखने लगा कि क्या मनोविज्ञान का प्रयोग करते हैं। तो उन्होंने लड़के से कहा कि देख, अपना कोट पहन, टोप लगा, छड़ी हाथ ले, बाहर जा, समझ कि तू हमारा मेहमान है--अतिथि।
लड़का बड़ा प्रसन्न हुआ। बच्चे हमेशा अभिनय में बहुत रस लेते हैं। वही उनकी निर्दोषता है। बूढ़ा होता है तो कहता कि क्या अभिनय करना? क्या मतलब इससे? क्या सार? लेकिन बच्चा बड़ा प्रसन्न हुआ, जल्दी उसने कोट पहना, टोप

लगाया, छड़ी हाथ में ली, बड़ी तेजी से बाहर गया। पिता ने कहा, अब बाहर से आकर घंटी बजाना, हम दरवाजे खोलेंगे मेहमान का तुम्हें पार्ट अदा करना है। लड़का गया, थोड़ी देर बाद उसके छोटे-छोटे जूतों की आवाज सीढ़ियों से सुनाई पड़ी। आ कर उसने घंटी दबाई, दरवाजा खोला। उसका स्वागत किया गया। पिता ने कहा कि आइये, आप हमारे मेहमान हैं। और ठीक वक्त पर आ गए, भोजन तैयार है। चलिए!
लड़का गया। ड्राइंग टेबल के पास हम सब पहुंचे। लड़के ने एक कुर्सी पर अपना टोप, अपनी छड़ी रखी। पिता ने कहा कि जो भी रूखा-सूखा है, मेहमान हैं आप, स्वीकार करिए! लड़के ने कहा, क्षमा करिए, मैं भोजन लेकर ही आया हूं।
जब अभिनय ही था, तो पूरा उसने किया।
जीवन एक अभिनय है। उससे ज्यादा उसे समझ कि भटके। मंच बड़ी है, माना; बहुत पात्र हैं, माना--लेकिन जीवन अभिनय है। और तुम कर्ता मत बनना! इतना अगर जतन रख लिया तो तुम भी कह सकोगे--
दस कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया।
आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
छठवां प्रवचन

भक्ति का मारग झीनी रे

दिनांकः 16 नवंबर, 1974; श्री ओशो आश्रम, पूना

सूत्र
भक्ति का मारग झीना रे।
नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौ लीना रे।
साधन के रसधार में रहै, निसदिन भीना रे।।
राम में श्रुत ऐसे बसै, जैसे जल मीना रे।
साईं सेवत में देइ सिर, कुछ विलय न कीना रे।।

कबीर एक महान समन्वय हैंः एक संगम--जैसे प्रयाग राज; एक तीर्थ--जहां जो
भी श्रेस्र है, वह सभी संयुक्त हो गया है। गंगा, यमुना, सरस्वती तीनों वहां मिल गई हैं। ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों का वहां मेल हो गया है।
कर्म तो दिखाई पड़ता है, भक्ति को छिपाना मुश्किल है। ज्ञान बहुत भीतरी धारा है। इसलिए तीर्थराज में गंगा-यमुना तो दिखाई पड़ती हैं, सरस्वती अदृश्य है। सरस्वती ज्ञान की देवी है।
इस बात को ठीक से समझ लें।
कर्म तो दिखाई पड़ेगा ही, क्योंकि कर्म का अर्थ ही हैः बाहर। भक्ति को छिपाना मुश्किल; जैसे किसी को प्रेम हो जाए तो प्रेम को छिपाना मुश्किल। इस दुनिया में सब चीजें छिपाई जा सकती हैं, प्रेम को छिपाना संभव नहीं है। प्रेमी के पैर का ढंग बदल जाएगा। आंख बदल जाएगी, एक नशा छा जाएगा, एक मस्ती घेर लेगी, एक राग प्रतिध्वनित होने लगेगा। उठेगा, बैठेगा, चलेगा--लेकिन कुछ बदल गया! कोई भी देख लेगा, अंधा भी पहचान लेगा। इसलिए प्रेमी कभी प्रेम को छिपा नहीं पाये। साधारण प्रेम नहीं छिपा पाए, तो परमात्मा का प्रेम तो असंभव है। प्रेम तो ऐसे जलेगा जैसे अंधेरे घर में दीया जलता हो। दूर-दूर तक प्रकाश दिखाई पड़ेगा।
ज्ञान प्रकट है गंगा की भांति। कर्म प्रकट है गंगा की भांति। प्रेम प्रकट और अप्रकट के मध्य में है, यमुना की भांति। ज्ञान की धारा बहुत भीतर है; वह सरस्वती है। इसलिए ध्यान को भर छिपाया जा सकता है। सच तो यह है कि ध्यान को प्रकट करना मुश्किल है।
इसलिए जिन्होंने सिर्फ ध्यान के मार्ग पर ही यात्रा की है, जैसे सूफी हैं, वे छिप कर रह सकते हैं। सूफियों का पता भी नहीं चलेगा; तुम्हारे पड़ोस में भी रहता हो तो भी पता न चलेगा। पत्नी को पता नहीं चलेगा कि पति किसी ध्यान की धारा में डूबा हुआ है। क्योंकि सारा खेल बहुत गहरे में है; छिपाया जा सकता है, वस्तुतः प्रकट करना कठिन है। प्रेम को छिपाना कठिन है। प्रेम को बताना भी कठिन है, छिपाना भी कठिन है। वह ठीक मध्य में है। कर्म प्रकट है। और कबीर तीनों हैं।
कबीर जीवन भर कर्म से कभी अलग न हटे। कर्म को उन्होंने कभी छोड़ा नहीं। भक्त वे हैं। उनका पूरा जीवन कीर्तन की मस्ती से भरा हुआ जीवन है। सुबह से रात तक वे गाते ही रहते हैं। और वे गीत कुछ साधारण नहीं। वह गीत कंठ से नहीं आया है। और उस गीत का जन्म बुद्धि और विचारों से नहीं हुआ है। वह गीत उनके प्राणों के प्राण से उठा है। उस गीत में कविता कम है; छंदबद्ध वह नहीं है। उसमें बड़ी भूल-चूक हैं। लेकिन उस गीत में हृदय है। और हृदय ने कब छंद माने हैं, कब नियम माने हैं! सब नियम तोड़कर हृदय बहता है। हृदय तो ऐसा है, जैसा वर्षा में पूरा आ गयी गंगा, सब किनारे तोड़कर बहती है।
बुद्धि सूखी है, जैसे गरमी की गंगा क्षीण हो जाती है, किनारों में बंध
कर बहती है। हृदय आपूर होकर बहता है।
तो कबीर गाते रहे जीवन भर। ये सारे गीत उन्होंने बनाये नहीं, गाए हैं।
एक तो कवि होता है, जो बनाता है, जो श्रम करता है, जो सजाता है, भाषा को बिठाता है, व्याकरण छंद, नियम सबकी व्यवस्था करता है। और एक ऋषि है जो

सिर्फ गाता है। ऋषि भी कवि है, लेकिन कवि ऋषि नहीं है। ऋषि भी गाता है, लेकिन उसका गीत कोई बौद्धिक आयोजन, कोई व्यवस्था, भाषा, व्याकरण, छंद नहीं है। उसका गीत तो सिर्फ हृदय में आ गया पर है। अपने भीतर नहीं रोक सकता, वह बाहर बहता है। उसका गीत उसकी मस्ती है।
कबीर जीवन भर गाते रहे। उस गीत में उनकी भक्ति बही है। भक्ति को वे छिपा नहीं सके--कोई नहीं छिपा सकता। लेकिन ध्यान को वे भीतर सम्हाल रखे। उसका नाम जतन है। वह भीतर घटना है। उसका बाहर के जगत से कोई लेना-देना नहीं। वह अत्यंत एकांत में घटती है। कर्म में तो तुम हो और सारा संसार है। भक्ति में तुम हो और तुम्हारा प्रेमी परमात्मा है। ध्यान में तुम बिल्कुल अकेले हो। ध्यान में परमात्मा भी नहीं है।
कबीर ने कह है, हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ। खोजते-खोजते खुद में खो गया। अब मेरा ही पता नहीं चलता कि कहां हूं। क्या खोजने निकला था, वह तो बात दूसरी है जो खोजने निकला था, उसका भी अब पता-ठिकाना नहीं।
ध्यान में ऐसी घड़ी आती है; जब तुम खोजने जो चले हो, वह तो मिलता नहीं, तुम खो जाते हो। लेकिन तुम्हारे खोते ही वह मिल जाता है। इसलिए एक बहुत बड़ा विरोधाभास, पैराडाक्स है; तुम कभी परमात्मा से मिल सकोगे। क्योंकि जब परमात्मा घटेगा, तब तुम न रहोगे। जब तक तुम हो तब तक वह घट नहीं सकता। इसलिए मनुष्य का परमात्मा से कभी मिलन नहीं होता; परमात्मा का ही परमात्मा से मिलन होता है। मनुष्य तो खो जाता है राह में। मनुष्य को खोजते-खोजते ही गल जाता है, पिघल जाता है। मिलने की घड़ी आते-आते तुम अचानक चौंककर देखोगे कि जो खोजने निकला था, वह कहीं रास्ते में छूट गया। और जो पहुंचा है मंजिल तक, इसकी तो पहचान ही न थी कि यह भी मेरे भीतर है। और जो पहुंचा है मंजिल तक, यह तो सदा मेरे भीतर था; मंजिल तक आने की कोई जरूरत न थी। जरा गर्दन झुका ली होती, तो अपने भीतर ही देख लिया होता।
मंजिल भीतर है, परमात्मा भीतर है; खोजनेवाले के खोने की कमी है। ध्यान में तुम बिल्कुल अकेले हो। ज्ञान में तुम बिल्कुल अकेले हो। ज्ञान की विधि ध्यान है। भक्ति की विधि प्रेम है। कर्म की विधि सेवा है।
क्राइस्ट, सेवा को सारा साधन माने। इसलिए ईसाइयत में सेवा आराधना बन गयी।
बुद्ध, ध्यान की सारी साधना का केंद्र बनाए। इसलिए बुद्ध धर्म में सेवा भक्ति दोनों खो गए। केवल ध्यान रह गया। कबीर तीनों हैं। मीरा हैं, चैतन्य हैं--वे अकेले भक्ति से जी रहे हैं।
इसलिए कहता हूं, कबीर तीर्थराज प्रयाग हैं, तीर्थों में श्रेस्र है; क्योंकि तीनों धाराएं उनमें आ जाती हैं; और मिल जाती हैं। उनसे बड़ी सिन्थसिस, उनसे बड़ा समन्वय घटित नहीं हुआ है। इसलिए कबीर को समझाना भी मुश्किल है। क्योंकि जहां तीन Ÿान अनूठी धाराएं आकर गिरती हों वहां बड़ी असुविधा हो जाएगी; तर्क काम न पड़ेगा। कभी कबीर यह कहते मालूम पड़ेंगे, कभी वह कहते हुए मालूम पड़ेंगे। कभी कहेंगे, कभी उसका विरोध करेंगे। क्योंकि जो कर्म के लिए सच है, वही भक्ति के लिए सच नहीं; और जो भक्ति के लिए सच है, वह ध्यान के लिए सच नहीं; जो ध्यान के लिए सच है, वही भक्ति मग बाधा बन जाता है; और जो भक्ति के लिए सच है, वह कर्म में बाधा बन जाता है। इसलिए कबीर जैसे व्यक्ति के पीछे, एक बड़ा रहस्य छूट जाता है, जिसको खोलने की चेष्टा चलती है सदियों तक, लेकिन खोला नहीं जा सकता।
आज का जो गीत है, वह भक्ति से संबंधित है। पहले हम थोड़ा भक्ति को समझ लें, फिर इस गीत में उतरें।
प्रेम हम जानते हैं, भक्ति से हमारा कोई संबंध नहीं है। और प्रेम भी
हम बहुत नहीं जानते हैं; कभी कण, क्षण। कभी थोड़ी-सी झलकें उसके जीवन में उतरी हैं। कभी क्षणभर को ऐसा लगा है किसी के साथ कि हम खो गए। जहां भी खोने का अनुभव हो, समझना प्रेम। अगर खोने का अनुभव जीवन में कभी न हुआ हो, समझना कि प्रेम से अछूते रह गए। और जो प्रेम से अछूता रह गया, वह भक्ति को न समझ पाएगा। क्योंकि जो पास के सरोवर में ही स्नान करने न गया, उसकी यात्रा सागर तक कैसे हो सकेगी! जिसने कभी खिड़की के बाहर ही न झांका, वह आकाश के नीचे कैसे जा सकेगा! जिसने सामान्य प्रेम को न जाना, वह असामान्य भक्ति को कभी न जान सकेगा।

इसलिए जीवन के द्वार खुले रखना! प्रेम कहीं से भी उतरे, उसे उतरने देना। क्योंकि वह भक्ति की पहली भनक है। वह भक्ति की पहली किरण है। और अगर तुमने प्रेम के द्वार बंद कर लिए तो तुम कितने ही मंदिरों में सिर पटको, और मस्जिदों में चीखो और पुकारो और गिरजाघरों में गीत गाओ--तुम्हारे सब गीत, चीख-पुकार व्यर्थ है, कहीं भी वह सुनी न जा सकेगी। क्योंकि तुम्हारी सब चीख पुकार तुम्हारे सिर से आएगी, वह तुम्हारे हृदय से नहीं आ सकती। हृदय तो बंद ही पड़ा रहा। वह बीज तो टूटा ही नहीं। वह तो अंकुरण ही तुम्हारे भीतर नहीं हुआ। तुम कहोगे, नहीं, प्रेम हमने किया है। पत्नी से हमारा प्रेम है, बच्चों से हमारा प्रेम है। लेकिन थोड़ा गौर करके देखना, क्योंकि प्रेम की परिभाषा यही है कि जिसमें तुम खो जाओ। कभी ऐसा क्षण आया है जब पत्नी में तुम खो गए? नहीं, सभी पतियों की चेष्टा है कि पत्नियां उनमें खो जाए। सभी पत्नियों की चेष्टा है कि पति उनमें खो जाए। प्रेम दूसरे को अपने में नहीं डुबाना चाहता, अपने को दूसरे में डुबाता है। और जो अपने को दूसरे में डुबाता है, वह दूसरे के लिए तो अनायास ही डुबाने का कारण बन जाता है।
तो तुम जिसे प्रेम कहते हो, वह प्रेम नहीं है। वह भी शोषण का एक ढंग है। वह भी हिंसा का एक मार्ग है।
अगर तुम अपने प्रेमी पर कब्जा करना चाहते हो, तो तुमने प्रेम जाना ही नहीं। तुमने प्रेम को पहचाना ही नहीं। प्रेम कब्जा नहीं करना चाहता, कब्जा देना चाहता है। प्रेम मालिक नहीं होना चाहता, मालिक बनाना चाहता है। इसलिए तो कबीर बार-बार कहते हैंः कहे दास कबीर! वह जो दास शब्द है, समझ में लेना।
वह दास का अर्थ क्या है?
उसका अर्थ है कि प्रेम कब्जा देना चाहता है; वह दूसरे को मालिक बनाना चाहता है। तुम्हारा सारा प्रेम मालिक बनना चाहता है, इसलिए झूठा है। जरा सी तरकीब और सब भूल हो गई। तुम दूसरे को दास बनाना चाहते हो। और प्रेम खुद दास बनना चाहता है।
प्रेम अति विनम्र है। प्रेम आक्रामक नहीं है। प्रेम तो निमंत्रण है, आक्रमण नहीं। प्रेम तो बुलावा है। प्रेम तो अपने को मिटाने की तैयारी है। और जब तुम मिटने को तैयार होते हो, तब दूसरा भी मिटने का भय छोड़ देता है। और जब तुम दूसरे पर कब्जा करना चाहते हो तो स्वभावतः दूसरा भी तुम पर कब्जा करना चाहता है। प्रेमियों की यही तो कलह है। प्रेम में तो कलह हो ही नहीं सकती। लेकिन प्रेमी निरंतर लड़ते देखे जाते हैं। उनकी कलह का मूल आधार यही है कि वे एक-दूसरे को मिटाने में लगे हैं। पत्नी कितना ही कहती हो कि वह दासी है, लेकिन चेष्टा उसकी मालकिन बनने की है। बाप कितना ही कहता हो बेटे के प्रति कि मेरा प्रेम है, लेकिन बाप बेटे में खोने को तैयार नहीं है। बाप चाहता है, बेटा बाप का अनुसरण करे, बाप की छाया बने। बाप बेटे को मिटाना चाहता हैः मेरी आज्ञा, मैं जो कहूं, वही ठीक हो तेरे लिए भी। मैं जो बताऊं वही मार्ग बने। मैं जो कहूं वही तेरी दिशा हो। तू मेरे इशारे से चले। तो बाप प्रसन्न है।
जब कोई तुम्हारे सब इशारे मानकर चलता है, तब तुमने उसे अपने में मिटा लिया। यह प्रेम नहीं है।
अगर बाप सच में ही बेटे को प्रेम करता है, तो वह बेटे को कहेगा कि तू मेरे पीछे चलने की चिंता मत कर। तू तू हो जा। मेरा सारा सहारा तेरे लिए, सारी शक्ति तेरे लिए; लेकिन तू मेरी छाया मत बनना। तू खुद बनना। तू स्वयं होना। तू अपने ही जीवन की सुगंध को पाना। भला उस सुगंध को पाने में तुझे मेरी आज्ञाएं तोड़नी पड़ें, क्योंकि मेरी आज्ञाओं का क्या अर्थ! भला उस सुगंध को पाने में तुझे मुझसे दूर तक जाना पड़े। मेरे पास होने का और प्रयोजन भी क्या हो सकता है, अगर तेरी सुगंध न मिले!
बाप अगर प्रेम करता है तो बेटे में खो जाएगा। बेटा अगर प्रेम करता है
तो बाप में खो जाएगा। पत्नी अगर प्रेम करती है तो पति मग खो जाएगी। लेकिन हम खोने से डरते हैं। खोने से ऐसा लगता हैः खो जाएंगे, मिट जाएंगे, तो हम बचेंगे ही नहीं। अहंकार प्रताड़ित होता है। अहंकार बहुत भयभीत होता है कि खो गया अगर तो फिर क्या होगा! इसलिए अहंकार ऐसे इंतजाम करता है कि प्रेम घट ही न पाए। ध्यान रखना, प्रेम को विरोध में अहंकार से बड़ी और कोई चीज नहीं

है। घृणा प्रेम का विरोध नहीं है, प्रेम का अभाव है। अहंकार प्रेम का विरोध है। क्योंकि अगर प्रेम मिटना है, तो अहंकार बचने की चेष्टा हैः मैं बचा रहा हूंः इसलिए धीरे-धीरे अहंकार के कारण हम मिटने के सब द्वार बंद कर देते हैं। इसलिए तो हमने प्रेम की जगह विवाह ईजाद किया है। क्योंकि प्रेम खतरनाक है। विवाह सुविधापूर्ण है। विवाह एक कनवीनीयन्स है, एक सुविधा है। प्रेम एक उपद्रव है। और प्रेम में सदा डर है कि चूके कि गए! खाई सदा पास है। और रास्ता बीहड़ है और साफ-सुथरा नहीं है। विवाह का रास्ता राजपथ है, सीमेंट कांकरीट का है। हजारों उस पर चल रहे हैं, आगे-पीछे बड़ी भीड़ है, सुरक्षा है। पुलिस चारों तरफ तैनात है। अदालतें किनारे खड़ी हैं। मजिस्ट्रेट अपनी वेशभूषा में सजे तैयार हैं।
विवाह सामाजिक संस्था है; प्रेम, व्यक्तिगत छलांग है। प्रेम में तुम अकेले हो; विवाह में पूरा जगत तुम्हारे साथ है। विवाह में कुछ गड़बड़ होगी तो अदालत में तुम पूछताछ कर सकोगे। वकील सहारा बन सकेंगे। कानून की किताबों में रास्ते खोजे जा सकेंगे।
प्रेम में न कोई वकील साथ होगा, न कोई कानून की किताब होगी। प्रेम की दुनिया में अब तक कोई किताब प्रवेश नहीं कर पायी; और किसी वकील को वहां कोई जगह नहीं है। प्रेम में तुम निपट अकेले हो। अकेले होने से डर लगता है।
और फिर प्रेम का मतलब ही मिटता है। और मिटने से लगता है, जैसे मृत्यु
हो जाएगी। इसे ध्यान रखो।
तीन चीजों से मैं अनुभव करता हूं, लोग डरे हुए हैं। सैकड़ों लोगों के जीवन की उलझनों को सुलझाते-सुलझाते तीन चीजें निकाल पाया, जिनसे वे डरे हुए हैं। एक प्रेम... और जो प्रेम से डरा है वह परमात्मा से डर गया। क्योंकि वे उसका आखिरी परिणाम है। दूसरा मृत्यु... और जो मृत्यु से डर गया, वह जीवन से डर गया। क्योंकि मृत्यु जीवन की अंतिम घटना है, शिखर है, निष्पिŸा है, सारे जीवन का निचोड़ है। और तीसरा ध्यान। क्योंकि ध्यान, और मृत्यु, दोनों जैसा है। उसमें मरना भी होता है, और परमात्मा का पाना भी होता है; इसलिए सबसे ज्यादा खतरनाक ध्यान है। प्रेम से डरे कि परमात्मा का द्वार बंद हुआ।
जब तुम सामान्य किसी स्त्री और किसी पुरुष के साथ भी न डूबकर मिट सके,
तो तुम इस विराट अस्तित्व के साथ कैसे डूब पाओगे? तुम लड़ोगे, संघर्ष करोगे, तुम अपने को बचाओगे। और जितना तुम बचाओगे, उतना ही तुम पाओगे कि तुम कमजोर होते जा रहे हो। क्योंकि किससे तुम लड़ रहे हो? तुम अंश हो इस विराट के, इससे तुम लड़ कैसे सकोगे? तुम इसी से पैदा हुए हो। तुम एक लहर की भांति हो, लहर सागर से लड़ेगी कैसे? तुम वृक्ष में खिली हुई एक नयी कोंपल हो, यह कोंपल पूरे वृक्ष से संघर्ष कैसे करेगी? और अगर संघर्ष भी करेगी तो क्या जीत सकती है? हार निश्चित है। जो भी लड़ेगा। वह हारेगा। जो भी अपने को बचायेगा, वह मिटेगा।
जीसस ने कहा है, बचाया कि तुम खो जाओगे। खो गए कि फिर तुम्हारे मिटने
का कोई उपाय नहीं है। हम समस्त से लड़ कैसे सकेंगे? जैसे मेरा हाथ मुझसे ही लड़ने लगे, तो हाथ जीतेगा कैसे? हाथ पागल हो गया--हारेगा, मिटेगा, अपने ही श्रम से, अपने को ही नष्ट कर लेगा। विराट के साथ तो लीन होना पड़ेगा। सब संघर्ष छोड़ देना पड़ेगा। वहां तो शरण--कबीर कहते हैं कि वहां तो चरनन में, वहां तो चरणों में विलीन हो जाना पड़ता।
उस विराट छलांग का पहला पाठ प्रेम है। लेकिन हम प्रेम से डर गए हैं। हमने विवाह का आयोजन कर लिया है। विवाह शुभ है, अगर प्रेम के फूल की तरह आए, अगर वह प्रेम में ही लगे। लेकिन विवाह अशुभ है, अगर वह आयोजन से आए, अगर व्यवस्था से आए।
बड़ी हैरानी की बात है। मां, बाप परिवार, पंडित, पुरोहित, समाज, पंच, वे
तय करते हैं। और जिनके बाबत वे तय करते हैं, उनसे कभी पूछते भी नहीं। वे जानते हैं कि उनसे पूछना खतरनाक है। क्यों? क्योंकि वे जानते हैं, वे अभी अनुभवी नहीं हैं। ध्यान रखो, अनुभव हमेशा प्रेम के विरोध में होगा। अनुभवी का मतलब हैः अहंकारी। गैर-अनुभवी का मतलब हैः निरहंकारी।
बच्चे प्रेम में पड़ सकते हैं, बूढ़े प्रेम में नहीं पड़ते। इतना अनुभव
हो गया है उन्हें, और अहंकार इतना अनुभव से भर गया है कि जब ऐसी भूल वे नहीं

कर सकते। और जिसे वे भूल कह रहे हैं, उन्हें पता नहीं, वह भूल नहीं है। उसको चूककर ही, वे सब चूक गए हैं। क्योंकि बड़ी से बड़ी कला मिटने की, पिघलने की कला है--इस तरह पिघल जाने की कि सीमा खो जाए; इस तरह पिघल जाने की कि मुझे पता ही न चले कि मैं हूं।
प्रार्थना की पहली झलक प्रेम में आती है। और परमात्मा की अंतिम परिणति भी प्रेम में ही होती है। भक्ति प्रेम का विस्तार है। लेकिन आज बीज हो तो विस्तार हो जाए। बूंद हो तो सागर भी बन सकता है। बूंद ही न हो तो क्या करे?
इसलिए पहले तो भक्ति के मार्ग पर जाने के क्षण में सोचना कि जीवन में प्रेम आया? अगर वह नहीं आया तो वह मार्ग भूलकर मत चुनना। क्योंकि तुम्हारा सब प्रयास व्यर्थ होगा। वह बिना बीज के फसल करने जैसी बात है। तुम बैठे रहोगे और फसल न आएगी। तुम चिल्लाओगे, कोई उ Ÿार न आएगा। तुम मंदिर में सिर पटकोगे, सिर टूट जाए, लेकिन कुछ घटेगा नहीं, क्योंकि बीज ही नहीं है। जिनके जीवन में प्रेम न आ पाया हो, भक्ति उनके लिए मार्ग नहीं है। उनके लिए ध्यान, उनके लिए कर्म--लेकिन, भक्ति नहीं। क्योंकि ध्यान बिना प्रेम के भी हो सकता है। तुम अकेले हो, दूसरे से कुछ संबंध जोड़ना नहीं है।
भक्ति तो आत्यंतिक संबंध है। ध्यान सब संबंधों से तोड़ना है। दोनों बिल्कुल विपरीत दिखाई पड़ते हैं, लेकिन परिणाम एक है।
प्रेम को समझ लेना।
प्रेम का सूत्र हैः डूबना, मिटना, पिघलना, अपने को खोना। और जब यह खोना किसी एक व्यक्ति के साथ नहीं बल्कि समस्त के साथ हो जाए, तो भक्ति। भगवान कोई व्यक्ति नहीं है। भगवान तो समष्टि है, सबका नाम भगवान है। जब तुम्हारे प्रेम ऐसा विराट हो जाए कि चाहे चट्टान हो, चाहे वृक्ष हो, चाहे आदमी हो, चाहे जानवर हो, जहां तुम आंख डालो, वहां तुम्हें भगवान दिखाई पड़ने लगे; जहां तुम्हारी आंख जाए, वहीं तुम उसे मौजूद पाओ; जब तुम्हारा प्रेम ऐसा सघन हो जाए कि प Ÿो-प Ÿो में उसकी ही झलक मिलने लगे और कण-कण में उसकी धुन सुनाई पड़ने लगे--तब भक्ति है।
पर प्रेम का पाठ सीख लेना जरूरी है।
मेरे देखे, यह संसार एक पाठशाला है, जहां हम परमात्मा के लिए तैयार होते हैं। यह संसार परमात्मा के विरोध में नहीं है, यह उसकी तैयारी है। और इस संसार के सारे संबंध उस आत्यंतिक संबंध की पूर्व-व्यवस्थाएं हैं। ऐसा होना ही चाहिए, क्योंकि संसार अगर परमात्मा के विरोध में हो, परमात्मा पर संसार के विरोध में हो, तो संसार बच ही कैसे सकता है! इसके होने का आधार ही खो जाएगा। इसलिए जिन लोगों ने सिखाया है कि परमात्मा को पाना है तो संसार के विरुद्ध हो जाओ, उन्होंने गलत सिखाया है। संसार के विरुद्ध होने से परमात्मा नहीं मिलोगे; संसार के अतिक्रमण से परमात्मा मिलेगा। और इन दोनों बातों में बड़ा भेद है।
अतिक्रमण का अर्थ हैः संसार के ऊपर उठ जाओ। वह विपरीत जाना नहीं है। संसार का अनुभव जितना सघन होगा, उतने ही तुम ऊपर उठने लगोगे। जैसे-जैसे तुम प्रेम में उतरोगे--संसारिक प्रेम में--वैसे-वैसे तुम पाओगे कि संसार खोता जाता है और परमात्मा प्रकट होता जाता है। अगर तुम एक व्यक्ति के भी प्रेम में ठीक से डूब जाओ, तो वही व्यक्ति थोड़े दिनों मग खो जाएगा और दरवाजा बन जाएगा, और उस दरवाजे से तुम पाओगेः परमात्मा की पगध्वनि सुनाई पड़ने लगी। लेकिन तुम एक के भी प्रेम में नहीं खो सकते, तुम बड़े कठोर हो। तुम्हारा हृदय बिल्कुल पत्थर की तरह हो गया है। तुम प्रेम की बातचीत भी करते हो, कविता भी गुनगुना लेते हो, लेकिन सब सिर में होती है, बातचीत; हृदय से कहीं कोई कंपन नहीं उठता; हृदय अछूता ही रह जाता है; तुम्हारी बुद्धि का ही सारा उपक्रम होता है। और जब तब हृदय न छू जाए, जब तक हृदय आप्लावित न हो जाए, जब तक हृदय में रसधार न बहने लगे, जब तक हृदय में तुम्हें अनुभव न होने लगे, कि एक नया कंपन, एक नयी सिंहरन पैदा हो गई है... ।
यह जो धड़कन है हृदय की, इस धड़कन के पीछे छिपी एक और धड़कन है, उसे तुमने नहीं सुना। यह धड़कन तो सिर्फ खून की चाल से पैदा होती है। एक और धड़कन है, जो प्रेम की चाल से पैदा होती है। सदा से, अलग-अलग कोई नहीं है पृथ्वी पर--अलग-अलग जातियों मग, अलग-अलग संस्कृतियों में, एक-दूसरे से बिल्कुल अपरिचित

अनजान, लेकिन जब भी प्रेम की बात उठती है, जब भी प्रेम की चर्चा उठती है तो लोग हृदय पर हाथ रख लेते हैं। उस संबंध में कोई भेद नहीं है। यह हैरानी की बात है। हर चीज में भेद है, सिर्फ इस एक संबंध में मनुष्य जाति में कोई भेद नहीं है। निश्चित ही, यह हृदय पर हाथ रख लेना कोई सांस्कृतिक और सामाजिक घटना नहीं हो सकती--अस्तित्वगत, एक्जिस्टेंशियल होगी; क्योंकि सामाजिक होती हो भेद होते।
हर चीज में भेद हैं। ऐसी जातियां हैं जहां हां के लिए सिर को ऊपर-नीचे हिलाया जाता है। ऐसी जातियां हैं जहां, हां के लिए दाएं, बाएं हिलाया जाता है। ऐसी जातियां हैं जहां ना के लिए हम दायां-बायां हिलाते हैं। ऐसी जातियां हैं जहां ना के लिए हम ऊपर-नीचे हिलाते हैं। निश्चित ही वह सिर का हिलाना सांस्कृतिक, सामाजिक सिखावन है; वह अस्तित्वगत नहीं है। छोटी-छोटी चीजों में फर्क हैं। मैंने बहुत खाज की, एक ही चीज में फर्क नहीं है--और वह हैः जब भी प्रेम की बात उठे तो लोग हृदय पर हाथ रख लेते हैं। यह हृदय पर हाथ रखना अस्तित्वगत है। किस हृदय पर हाथ रखते हैं? अगर हम शरीर शास्त्री से पूछें तो वह कहेगाः तुम पागल हो, यहां कुछ भी हृदय जैसा है नहीं, सिर्फ फेफड़े हैं; और पंपिंग है, खून को पंप करने की व्यवस्था, पंपिंग स्टेशन है, और तो कुछ वहां है नहीं। और यह जो धड़कन है, यह धड़कन तो सिर्फ खून की गति से पैदा हो रही है। इस हृदय की बात ही नहीं है, यह तो फेफड़ा ही है। लेकिन इस हृदय के ठीक भीतर छिपा हुआ एक और हृदय है। जब तुममें प्रेम की रसधार बहती है, तब उसकी धड़कन सुनी जाती है। कबीर उसी हृदय की बात कर रहे हैं। लेकिन वह रसधार बहती तब है, जब अहंकार की चट्टान टूट जाती है। अहंकार की चट्टान ही उस हृदय के द्वार पर रखी है। उसकी वजह से ही दूसरी धड़कन तुम सुन नहीं पाते हो।
अब हम इन सूत्रों में प्रवेश करने की कोशिश करें।
भक्ति को मारग झीना रे।
... कहते हैं कबीर कि भक्ति का जो मार्ग है, बहुत नाजुक है, बहुत डेलीकेट है। होगा ही। कर्म का मार्ग सबसे ज्यादा स्थूल है--भूखे को रोटी दो, बीमार का पैर दाब दो, गरीब की सहायता करो, असहाय की सेवा में लगो। कर्म का मार्ग सबसे ज्यादा स्थूल है। इसलिए पश्चिम में क्रिश्चियनिटी का इतना प्रभाव पड़ सका। क्योंकि पश्चिम की पकड़ बहुत स्थूल है, मैटीरयलिस्टिक है। जितना ज्यादा पदार्थवादी व्यक्ति होगा, उतना ही ज्यादा कर्म का मार्ग निकट मालूम पड़ेगा। क्योंकि पदार्थ के सबसे ज्यादा करीब कर्म है। कर्म जैसे तुम्हारे घर का पहला द्वार है।
करो, लेकिन जो भी करो, उसे परमात्मा को समर्पित करके करो। इसलिए क्रिश्चियनिटी बहुत प्रभावी हुई। आधी दुनिया आज ईसाइयत के साथ है। उसका कारण भी साफ है। क्योंकि ईसाइयत की सारी प्रक्रिया कर्म की है। दूसरे धर्मों को भी ईसाइयत से प्रतियोगिता करनी पड़ती है। इसलिए वे भी कर्म की थोड़ी-थोड़ी बातें करते हैं, लेकिन जमती नहीं बात; क्योंकि उनके प्रयोग ज्यादा गहरे और सूक्ष्म हैं और उनसे मेल नहीं खाते।
हमने कभी सोचा ही नहीं कि संन्यासी जाकर गरीब के पैर दबाएगा। यहां तो गरीब ही संन्यासी के पैर दबाता रहा है। सेवा हम संन्यासी की करते रहे हैं। संन्यासी से हमने सेवा की अपेक्षा नहीं की। हम सोच ही नहीं सकते कि बुद्ध और महावीर अस्पताल में मरीजों की सेवा कर रहे हैं। मरीज करने भी न देंगे।
बगावत हो जाएगी उनके खिलाफ, हट जाएंगे, भाग जाएंगे मरीज कि हमारी सेवा... यह कैसे हो सकता है! क्योंकि बुद्ध और महावीर, अंतिम जो गहरा से तत्व है ध्यान, वहां खड़े हैं।
ध्यान सूक्ष्म है, अति सूक्ष्म है। कर्म स्थूल है, अति स्थूल है। दोनों के माध्य में नाजुक भक्ति है। लेकिन भक्त की भी बहुत प्रभावना नहीं हो सकती। क्योंकि भक्त गाता है, नाचता है, मस्त है, लेकिन तुम्हारी मस्ती से दूसरी को क्या मिलेगा? भूखे को रोटी नहीं मिलेगी। बीमारी का इलाज नहीं हो जाएगा। इसलिए दोनों मार्ग ज्ञान और भक्ति के धीरे-धीरे धूमिल हो गए और एकदम स्थूल जो है, सबसे ज्यादा स्थूल जो है, कर्म का मार्ग, वह सामने रह गया।

गीता पर हजारों टीकाएं हैं--कोई एक हजार से ऊपर। सबसे स्थूल टीका लोकमान्य तिलक की है; लेकिन बड़ी प्रभावी हुई, इस मुल्क को खूब प्रभावित किया, क्योंकि कर्म पर लोकमान्य का जोर है। शंकर की सबसे ज्यादा सूक्ष्म है, क्योंकि ज्ञान पर जोर है। रामानुज की डेलिकेट है, नाजुक है--भक्ति पर जोर है। लेकिन रामानुज और शंकर सब फीके पड़ गए; लेकिन लोकमान्य की व्याख्या बड़ी प्रभावी हो गई।
भारत भी धीरे-धीरे स्थूल की तरफ गिरा है। जब हमको भी वही दिखाई पड़ता
है तो पदार्थ है। अब हम भी पदार्थ से ज्यादा कुछ नहीं देख पाते। सूक्ष्म को देखने की हमारी क्षमता भी हो गई है। नाजुक से हमारे संबंध टूट गए हैं। नाजुक को समझने के लिए एक सांस्कृतिक ऊंचाई चाहिए, एक परिष्कार चाहिए। मुल्ला नसरुद्दीन ने एक शास्त्रीय संगीतज्ञ को निमंत्रित किया था-- ख्यातिलब्ध शास्त्रीय संगीतज्ञ था। बड़ी कठिनाई से उपलब्ध था। सब पास-पड़ोसियों को निमंत्रित किया था। जब सभा बैठ गई। संगीत-सभा शुरू हो गई तो संगीतज्ञ ने बड़े आदर भाव से पूछा कि मुल्ला आप कौन सा राग पसंद करते है? मुल्ला ने कहा, राग-वाग कोई भी चलेगा। अपना प्रयोजन तो पड़ोसियों को परेशान करने से है।
शास्त्री संगीत बड़ी नाजुक बात है। लेकिन अगर समझ में न आता हो तो सिर्फ परेशानी पैदा होती है।
अब भक्त परेशानी पैदा करता है; समझ में नहीं आता। अगर भक्त आपके बीच खड़ा हो तो या तो आप समझेंगे पागल है, बुद्धि खराब हो गई... । अब भक्त से हमारे संबंध नहीं जुड़ते। क्योंकि हम इतने नीचे तल पर खड़े हैं कि वहां से नाजुक फूल दिखाई नहीं पड़ता है, आंखें पहचान नहीं पातीं। अगर चैतन्य वापस लौट आए और तुम्हारे गांव में नाचते हुए गुजरें, मीरा आ जाए और गीत गाए तुम्हारी गली में, तो तुम बहुत रस पा न सकोगे।
कठिन है, क्योंकि तुम यह न देख पाओगे कि कहां से यह घटना घट रही है! चैतन्य जब गा रहे हैं और नाच रहे हैं, तो उस समय भी बंगाल में लोगों ने कहा कि यह लंपट है... तो अब तो बड़ी मुश्किल है। अब तो तूम समझोगे कि मालूम होता है प्रभुदास का शिष्य है, कृष्ण-कांशयसनैस में सम्मिलित हो गया है। चैतन्य को समझने के लिए भाव-दशा चाहिए। भाव विचार नहीं है। विचार तो तुम शास्त्र से पा सकते हो, विद्यालय में सीख सकते हो। लेकिन भाव एक अनुभव है; अगर हो तो हो, न हो तो न हो! भाव का अर्थ है कि तुमने भी उसे जाना है, एक झलक तुम्हें भी मिली है, तुम भी उसे जिए हो। न सही उतना गहरा, न सही उतने दूर गए हो, लेकिन नदी में उतरकर दो हाथ तुमने भी तैरने के मारे हैंः तुम्हें भी तैरने का पता है कि क्या है।
विचार उधार हो सकता है, भाव कभी उधार नहीं हो सकता। भाव, अनुभव हो तो हो, नहीं हो तो न हो। कितना ही कहो कि तैरने में बड़ा आनंद है, बड़ी पुलक है, तैरने का बड़ा रहस्य है--और तुम अगर कभी नदी में नहीं उतरे, तुम कहोगे, होगा! तुम सोचोगे, इसमें होगा क्या, ज्यादा से ज्यादा पानी में हाथ-पैर मारने से हो क्या सकता है! लेकिन तुम्हें ख्याल भी नहीं, जो तैरनेवाले के अनुभव में आता है, वह पानी में हाथ-पैर मारना नहीं है, वह पानी और स्वयं के बीच एक लयबद्धता को पैदा करना है। और जब तैरनेवाला सच में ही शिखर पर पहुंचता है तैरने के, तो तैरना समाप्त ही ही हो जाता है। नदी ही सारा काम करती है। वह नदी पर ही तिरता है, तैरता नहीं है। उसे कोई श्रम नहीं करना होता। एक लयबद्धता नदी के प्राण के बीच और उसके बीच हो जाती है। नदी के देवता से उसकी पहचान हो गयी। अब जैसे नदी का देवता ही उसे उठाकर चलता है। अब कोई सम्हालना है उसे। नदी उसे डुबाती नहीं, नदी उसकी दुश्मन नहीं है। एक गहरी मैत्री हो गयी है।
अगर तुम कभी नदी में नहीं उतरे तो तुम्हें ज्यादा से ज्यादा इतना ही दिखाई पड़ता है कि यह आदमी हाथ-पैर फेंक रहा है, इससे फायदा क्या! व्यायाम है। हम घर पर ही कर लेंगे। अपने बिस्तर पर लेटकर हाथ पैर फेंक लेंगे। तो इतना ही व्यायाम होगा, ज्यादा भी हो सकता है। तो झंझट क्यों लेनी! खतरा क्यों मोल लेना।
लेकिन तुम्हें पता नहीं जो तैरनेवाले के भीतर घट रहा है। अगर तैरने
की प्रक्रिया ठीक हो, विचार खो जाते हैं; नदी की धार के साथ एक लीनता जुड़

जाती है। नदी ले जाने लगती है। तैरनेवाला धीरे-धीरे अपनी अस्मिता को छोड़ देता है, नदी का अंग हो जाता है; जैसे वह भी नदी है; तिरता है। और उस तिरने में जो आनंद की प्रतीति होती है, वह प्रतीति तुम्हें वह दे नहीं सकता, न बता सकता है। वह कितना ही कहे। अगर तुम्हें थोड़ा अनुभव हुआ हो... तो संतों ने कहा है, गूंगे का गुड़। गूंगे को गुड़ दे दो। स्वाद तो उसे आ जाता है। बोल वह नहीं सकता। लेकिन छोड़ो गूंगे को। तुम तो गूंगे नहीं हो, तुम्हें कोई गुड़ दे दे, तुम्हें तो स्वाद आ जाएगा। तुम बोल भी सकते हो, बोलोगे क्या? और जिसने कभी मिठास न जानी हो, जिसने कभी मीठा अनुभव न किया हो, उसे तुम कितना कहो, मीठा है... मीठा है... मीठा है... शब्द सुनाई पड़ेगा, लेकिन शब्द में कोई अर्थ तो होगा नहीं, क्योंकि अर्थ तो अनुभव से आता है।
मिठास एक प्रतीति है।
कबीर ने कहा है, गूंगे केरी सरकरा।
सभी गूंगे हैं भाव के संबंध में। विचार के संबंध में, मुखर; भाव के संबंध में, गूंगे। तुम नहीं जान सकते कि क्या भाव दशा है। अगर प्रेम का थोड़ा अनुभव हुआ हो, तो भक्ति का मार्ग इतना नाजुक है, बारीक है, झीना है, सूक्ष्म है, वह तुम्हें ख्याल में आ सकेगा।
नाजुक का क्या अर्थ हो सकता है? झीनी का क्या अर्थ होता है? झीने का अर्थ होता हैः जिसे सम्हालने में बड़ा यत्न करना पड़े। तुमने संगीतज्ञों को देखा होगा, इसके पहले कि वे अपना संगीत शुरू करें, घड़ी आधा घड़ी साज को बिठाने में लगाते हैं। नासमझ तो उसी में ऊब जाते हैं कि यह क्या लगा रखा है। कहीं हथौड़ी से ठोकते हैं, कहीं तार खींचते हैं, कहीं कुछ करते हैं, लेकिन वे क्या कर रहे हैं? वे साज को एक नाजुक हालत में ला रहे हैं, जहां संगीत संभव हो सकेगा। वे तारों को उस जगह बिठा रहे हैं, जहां न तो वे ज्यादा कसे होंगे और न ज्यादा ढीले होंगे। क्योंकि तार बहुत ढीलें हो तो संगीत को चोट नहीं पड़ती। अगर तार बहुत कसे हों, तो टूट ही जाएंगे। तो तार ऐसे होने चाहिए कि न ढीले, न कसे--ठीक मध्यम में। और जहां तार ठीक सम हो जाते हैं, वहीं सम्यकृत्व पैदा हो जाता है। वहीं संगीत का जन्म है। और ऐसे ही जीवन की कला है।
भक्ति ठीक मध्य में पैदा होती है। ज्ञान भी एक अति है। कर्म भी एक अति है। कर्मठ एक अति पर जीता है--स्थूल। ज्ञानी दूसरी अति पर जीता है-- सूक्ष्म। भक्त मध्य में जीता है। उसे साज को बहुत बिठाना पड़ता है। भक्त को संगीत के साथ बहुत ताल-मेल बिठाना पड़ता है। नाजुक है।
कबीर कहते हैं, भक्ति का मारग झीना रे। नहिं अचाह नहिं चाहना... न तार बहुत कसे, न तार बहुत ढीले।
नहिं अचाह, नहिं चाहता, चरनन लौ लीना रे। इस बात को हम समझ लें, ध्यान
से सुन लें। नहिं अचाह नहिं चाहना...
दो अतियां है। एक चाह है--वासना; और एक अचाह है--निर्वासना। और कबीर कहते हैं, भक्ति का मार्ग अति झीना रे--दोनों के माध्य में। चाही तो भोगी है--वह, जो चाह रहा है, चाहना से भरा है; यह चाहिए, वह चाहिए--मांगता चला जा रहा है। उसे समझ लेना हमें कठिन नहीं है। हमारा भी अनुभव नहीं है। चारों तरफ वही लोग हैं, उनकी ही भीड़ है, उनका बाजार है, उनकी दुकानें हैं, उनके मंदिर हैं। वे मांग रहे हैं। वे कहते हैं, वह मिल जाए... वह मिल भी नहीं पाता कि उनकी मांग आगे बढ़ जाती है। और वे कहते हैं, यह मिल जाए... ! वे याचक ही बने रहते हैं। वे कभी मालिक नहीं हो पाते। वे भिखारी ही बने रहते हैं, कभी सम्राट नहीं हो पाते। देने का तो मौका ही नहीं आता, मांगने से ही फुर्सत नहीं हो पाती। दान का तो सवाल ही नहीं उठता, सभी खुद ही भूखे हैं, अभी खुद ही का पात्र अधूरा है।
ऐसा हुआ, कबीर के जमाने में एक फकीर थाः फरीद। फरीद के गांव के लोगों
ने उससे कहा, अकबर तुम्हें बड़ा सम्मान देता है, कभी जाओ। इतना तुम कह दोगे, तो कम हो जाएगा! गांव में एक मदरसा चाहिए, एक स्कूल चाहिए। तुमने कहा कि हो जाएगा।
फरीद का भक्त था अकबर। तो फरीद ने कहा, अच्छा, जाऊंगा। और फरीद गया भी।
जब पहुंचा तो सुबह ही सुबह का वक्त था। उसके लिए कोई रोक-टोक न थी महल में, उसे सीधा ले आया गया। अकबर अपनी निजी मस्जिद के भीतर नमाज पढ़ रहा था। फरीद

पीछे जाकर खड़ा हो गया। अकबर की नमाज पूरा होने के करीब थी, तब उसने दोनों हाथ ऊपर उठाए--याचक भांति, एक भिक्षुक की भांति--और कहा, हे परमात्मा, मेरी संपदा को बढ़ा, मेरे साम्राज्य को बड़ा कर!
फरीद तत्क्षण लौट पड़ा। किसी के लौटने की आवाज सुनकर सीढ़ियों पर अकबर
ने लौटकर देखा, नमाज पूरी हो गयी थी, भागा हुआ आया। फरीद वापस लौट रहा है। और फरीद कभी आया नहीं था। अकबर ही जीता था सदा। लेकिन फरीद ने सोचा, जब मांगना हो, तो जाना चाहिए। पैर पकड़ लिए अकबर ने, और कहा कि आए और लौट चले, कुछ भूल हुई, कुछ मुझसे गलती हो गयी?
फरीद ने कहा, न, भूल तुमसे नहीं हुई, भूल मुझसे हुई। मैं तुमसे मांगने आया, और मैंने पाया कि तुम तो अभी खुद ही मांग रहे हो। नहीं, मैं तुम्हें गरीब न बनाऊंगा। वह मदरसा महंगा पड़ जाएगा। और फिर मैंने सोचा कि जिससे तुम मांग रहे हो, तो उससे हम सीधा ही मांग लेंगे। बीच में और एक भिखारी को क्या लेना? और अब तक मैंने समझा था कि तुम एक सम्राट हो, वह मेरी भ्रांति टूट गयी।
जब तक मांग है, तब तक कोई सम्राट नहीं हो सकता। तब तक तुम दोगे कैसे? दोगे भी तो तुम सौदा करोगे, दोगे भी तो पाने के लिए दोगे। दोगे भी तो ज्यादा मिले उसकी व्यवस्था से दोगे। तुम्हारा दान भी इनवेस्टमेंट होगा। उसमें कुछ पाने की आकांक्षा होगी।
चाह से भरा हुआ आदमी भिखारी है--यह साफ है। इसके कारण, जिन्होंने यह समझा कि चाह से भरा आदमी भिखारी है, उन्होंने चाह छोड़ दी, वे अचाहे में चले गए। जैसे बुद्ध, जैसे महावीर उन्होंने सारी चाह छोड़ दी। उन्होंने कहा, मांगना ही छोड़ेंगे, तभी तो यह भिखमंगापन मिटेगा। बात बिल्कुल सीधी है, तर्कयुक्त है, साफ है। मांगनेवाले का मार्ग सीधा-साफ है। और न मांगनेवाले का भी मार्ग सीधा-साफ हैः छोड़ दी चाह, नहीं रखी कोई वासना। तो महावीर और बुद्ध सम्राट हो गए। उन जैसे सम्राट खोजना कठिन है। सिकंदर, नेपोलियन, अकबर जैसे भिखारी खोजना कठिन है। महावीर, बुद्ध जैसे सम्राट खोजना कठिन है। उन्होंने चाह ही छोड़ दी। उन्होंने बात ही बंद कर दी, वह द्वार ही बंद कर दिया। मांगे ही नहीं, तो एक साम्राज्य का उदय हुआ। वे अपने आप में पूर्ण हो गए।
लेकिन कबीर कहते हैं, भक्ति का मारग झीना रे।
बड़ी नाजुक बात है।
नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौ लीना रे।
--न तो हम चाह रखते हैं, और न हम अचाह रखते हैं। हम परमात्मा के सामने ऐसे खड़े होते हैं, जैसे कोई चाह न हो, और जैसे चाहा भी हो। परमात्मा के समाने हम ऐसे खड़े होते हैं कि हम मांगते तो कुछ भी नहीं, लेकिन खड़े भिखारी की तरह होते हैं। मांगता तो कुछ भी नहीं, क्योंकि मांगा कि परमात्मा से संबंध छूट गया।
तब जो तुम मांग रहे हो, वह ज्यादा महत्वपूर्ण चीज हो गई, परमात्मा गौण
हो गया। परमात्मा साधन हो गया, जो तुमने मांगा वह साध्य हो गया। हम परमात्मा के सामने ऐसे खड़े होते हैं, जैसे भिखारी हैं और चाह हमारी जरा भी नहीं। तो हम ऐसे भी खड़े होते हैं जैसे सम्राट हैं। अचाह भी है, क्योंकि हम कुछ मांग नहीं रहे। लेकिन हम चाहनेवाले की तरह भी खड़े हैं, क्योंकि हम ऐसे झुके हैं, जैसे सारा संसार मांग रहे हों। मांगते नहीं और भिखारी की तरह खड़े होते हैं। सम्राट की तरह होते हैं, हाथ में भिक्षापात्र होता है। इसलिए भक्ति का मारग झीना रे।
भक्त न तो मांगता है, और न यह कहता है कि मैं अचाह को उपलब्ध हो गया हूं। न तो वह यह कहता है कि मैंने सब चाह छोड़ दी और न वह यह कहता है कि मेरी कोई चाह है। इसे थोड़ा सोचें।
भिखारी और सम्राट--दोनों एक साथ! उसे कुछ भी दे दिया जाए तो कोई फर्क न पड़ेगा, ऐसा सम्राट; र Ÿाभर भी जुड़ेगा नहीं, जितना था उतना ही रहेगा। और खड़ा ऐसे है, जैसे सारी चाह उसी की है; सारा संसार, परमात्मा को ही मांग रहा है, मांगा उसने र Ÿा भर नहीं है। मतलब यह हुआः जैसे सम्राट भिक्षा-पात्र हाथ में लिए खड़ा हो। भिक्षा-पात्र इसलिए कि परमात्मा के सामने खड़े होने का ढंग सम्राट का नहीं हो सकता। उसके सामने खड़े होने का ढंग भिखारी का ही हो सकता

है। उसके सामने तुम कैसे अकड़कर खड़े होओगे सम्राट की तरह? इसलिए तो महावीर और बुद्ध दोनों ने परमात्मा को इनकार कर दिया कि वह है ही नहीं। क्योंकि जब तुम सम्राट की तरह खड़े हो तो परमात्मा कैसे हो सकता है? इसलिए तो महावीर और बुद्ध की व्यवस्था में कोई परमात्मा नहीं है। कोई परमात्मा का प्रश्न ही नहीं उठता। तुम स्वयं ही परमात्मा हो, तब खतम हो गई। और तुम मंदिर जाते हो, मस्जिद जाते हो--तुम मांगने जाते हो--अगर हिंदू के मंदिर में तुम्हें न मिले, तुम हिंदू ही सही, और कोई कह दे कि फलां पीरे, कि फलां मुसलमान फकीर कि फलां मुसलमान फकीर की कब्र, वहां मिल सकता है, तो तुम चोरी-छिपे वहां भी जा सकते हो। हिंदू भी बने रहते हो, मुसलमान फकीर की मजार पर भी पहुंच जाते हो। मांगनेवाले का क्या भरोसा, उसकी क्या आस्था! भिखमंगे की कोई आस्था होती है! जहां मिलेगा, वहां जाएगा। इस घर मिला तो ठीक, नहीं तो दूसरे घर में मांगेगा।
मांगनेवाला की न तो कोई आस्था है, न तो परमात्मा से कोई प्रयोजन है।
वह जो मांगता है, अगर कोई कहे कि नास्तिक हो जा, इस शर्त पर मैं देता हूं, तो वह नास्तिक हो जाएगा। वह कहेगा, छोड़ो, परमात्मा से क्या लेना-देना! हम तो इसीलिए जाते थे... तुम जाते थे कि मुझे स्वास्थ्य मिल जाए, बीमारी दूर हो जाए। परमात्मा दूर न कर पाया। और कोई कहता है कि हम तुझे एक दवा देते है और ठीक हो जाएगा, लेकिन आज से परमात्मा को छोड़ दे। तुम कहोगे, हम बिल्कुल तैयार हैं, हम पहले से तैयार हैं।
परमात्मा प्रयोजन नहीं था। हम मांगने गए थे। आशा थी कि वह मिल जाएगा। मिल जाता तो हम धन्यवाद देते; नहीं मिलता, तो हम नाराजगी भी जाहिर करते हैं।
दुनिया में असली आस्तिक खोना मुश्किल है। भीतर तो तुम सभी नास्तिक हो। आस्तिक तो तुम बने हुए हो, क्योंकि तुम्हारी चाह है, और तुम्हें लगता है कि परमात्मा से शायद मिल जाए। शायद हो... ।
मेरे एक मित्र हैं--बूढ़े आदमी! नास्तिक रहे जीवनभर। बड़े ख्यातिनाम आदमी हैं। लेखक हैं, कथाकार हैं। एक दिन अचानक उनके घर से उनका लड़का भागा हुआ आया। और उनसे मुझसे कहा कि पिताजी एकदम बीमार हैं और आपको याद किया है। हार्ट-अटैक का दौरा पड़ा था। दौरा तो चला गया था, लेकिन बहुत कंप गए थे। हाथ-पैर में कंपन था। मैं जब पहुंचा तो राम, राम, राम,, राम धीरे-धीरे कह रहे थे। मैं बहुत हैरान हुआ क्योंकि वे तो नास्तिक हैं। मैंने उनका सिर हिलाया। मैंने कहा, क्या कर रहे हो? मरते वक्त भ्रष्ट हो रहे हो? उन्होंने कहा, छोड़ो भी वह बात मत उठाओ। पता नहीं, हो ही भगवान!
मरते वक्त आदमी भयभीत हो जाता है; सोचता है, पता नहीं हो ही! फिर वे कहने लगे, हर्ज भी क्या है? न हुआ तो कोई हर्ज नहीं, हुआ तो हमने नाम ले लिया।
तो भगवान भी तुम्हारा हिसाब है; वह भी तुम्हारे भय का ही रूप है। तुम्हारा भगवान यानी तुम्हारा भय। जब तुम भयभीत होते हो तो तुम याद करते हो; जब तुम निर्भय होते हो, बिल्कुल भूल जाते हो। जब तुम सुखी होते हो, याद नहीं आती। जब तुम दुखी होते हो, एकदम राम-राम रटने लगते हो। नहीं, तुम नास्तिक हो। आस्तिकता तुम्हारी होशियारी, चालाकी का नाम है। आस्तिकता तुम्हारे हृदय का फैलाव नहीं है, तुम्हारे तर्क की व्यवस्था है। जब जरूरत हुई, तब तुम आस्तिक; जब तुम निश्चित हो, तब तुम नास्तिक।
मुल्ला नसरुद्दीन एक नाव से यात्रा कर रहा था... और भी लोग थे। अचानक तूफान आया और नाव डूबने लगी। तो लोग चिल्लाने लगे। किसी ने कहा, हे भगवान, मुझे बचा ले, तो मैं इतने रुपये दान कर दूंगा। किसी ने कहा कि मुझे बचा ले तो मैं एक गाय दान कर दूंगा। किसी ने कहा कि मुझे बचा ले तो मैं यह कर दूंगा, वह कर दूंगा। लोग ऐसा किए जा रहे थे। तभी नसरुद्दीन चिल्लाया कि ठहरो, ज्यादा आगे मत बढ़ो, किनारा करीब है। और सब भूल गए, ये जो दान वगैरह कर रहे थे। सब अपना बिस्तर-सामान बांधने लगे।
वह हम सब दुख में याद करते हैं। जब किनारा दिखाई पड़ता है, क्या लेना- देना भगवान से! वह तो डूबती नाव में सहारा था। जब नाव किनारे लगने लगी तो क्या प्रयोजन हम मानते हैं तो भगवान के द्वार जाते हैं। फिर हमारे बीच ऐसे लोग हुए, बुद्ध और महावीर जैसे, जिन्होंने मांगना ही छोड़ दिया। देखा कि

मांगने में सिवाय कष्ट के कुछ भी नहीं है। चाह कहीं तो नहीं ले जाती, नये- नये नर्क निर्मित करती है। जितना चाहोगे उतना विषाद आता है। चाह की एक बड़ी खूबी है। अगर पूरी हो जाए तो भी दुख; अगर पूरी न हो तो भी दुख। अगर पूरी हो जाए, तो तुम अचानक पाते हो कि जिस चाह के लिए इतने सपने संजोये, इतने इंद्रधनुष जिसके आसपास बांधे, इतने फूलों का सेहरा रखा--और कुछ भी न निकला! जब निकली बात तो कुछ भी न निकली। खोदा पहाड़ निकली चुहिया। मिल जाए तो हमेशा ऐसा लगेगा कि इतना पहाड़ खोदकर इस चुहिया के लिए परेशान हो रहे थे। अगर न मिले तो तुम दुखी, क्योंकि तुम सोचते हो, पता नहीं मिल जाती तो क्या न मिल जाता।
एक पागलखाने में एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने गया। तो सुपरिटेंडेंट उसे घुमाने लगा। एक कमरे में एक आदमी चीख मार-मारकर रो रहा था, और हाथ में एक तस्वीर लिए छाती से लगाए था। तो उस मनोवैज्ञानिक ने पूछा कि इस आदमी को क्या हो गया? तो सुपरिटेंडेंट ने कहा कि यह जो तस्वीर लिए हुए है, यह इस औरत को प्रेम करता था, और यह औरत इसे मिल नहीं सकी, यह पागल हो गया। अब यह तस्वीर छाती से लगाकर पीटता रहता है, रोता रहता है, चिल्लाता रहता है। उसके बगल में ही दूसरे सीखचों में बंद आदमी को देखा कि वह अपने बाल नोंच रहा है और तस्वीर भी अपने हाथ में रखे हैं। वह उसे काटता है, फेंकता है, दीवाल पर मारता है, लात से दबाता है। पूछा, इसको क्या होगा? उस सुपरिंटेंडेंट ने कहा, इसको वह औरत मिल गयी। ये दोनों उसे प्रेम में थे। एक को नहीं मिली, वह पागल हो गया। और यह इनको मिल गयी है, इसलिए ये पागल हो गए हैं।
चाह पूरी हो तो पागल, चाह पूरी न हो तो पागल। चाह सब तरह से दुख देती है। मिले तो विषाद आ जाता है कि कुछ भी न मिला। न मिले तो विषाद बना रहता है, कि न मिला। चाही दुखी रहेगा। वासना से भरा हुआ दुखी रहेगा। जिसको यह दिखाई पड़ गया, जिसने थोड़ा जीवन को समझने की कोशिश की, जिसको यह समझ में आ गया, उसने चाह छोड़ दी; वह अचाह को उपलब्ध हो गया; निर्वासना को उसने सूत्र बना लिया
ये दोनों बातें सरल हैं।
कबीर कहते हैं, भक्ति का मारा झीना रे। मांगना कुछ भी नहीं है, फिर भी मांगनेवाले की तरह खड़े हैं। हो गए हैं, सम्राट, मांगने को कुछ भी नहीं, फिर भी दास की तरह झुके हुए हैं।
नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौ लीना रे। न तो मांगते हैं कुछ, न मांग
है कुछ, लेकिन चरनन में चरणों में--प्रेम को लगा दिया हैं।
चरनन लौ लीना रे... बस, चरणों को कपड़े हैं।
तुम चरण को पकड़ते हो--कुछ मांगना हो तो। जब मांगना ही नहीं तो चरण किसलिए पकड़ना! इसलिए कबीर कहते हैं, नाजुक मार्ग। मांगना कुछ भी नहीं और चरण को पकड़े हुए हैं। लेकिन जो भी इस अदभुत घटना को उपलब्ध हो जाता है-- मांगना कुछ भी नहीं और चरण को पकड़े हुए हैं; थे सम्राट, भिक्षापात्र लिए झुके हैं--उसे बहुत कुछ मिलता है। सब बिना मांगे मिलता है। बिन मांगे तो मोती मिले! बिना मांगे चारों तरफ बरसा होने लगती है। क्योंकि यह आदमी तो सम्राट है और दास की तरह झुका है।
महावीर को तुम झुका न सकोगे। महावीर घुटने के बल, हाथ जोड़कर प्रार्थना न कर सकेंगे। प्रार्थना का कोई संबंध ही महावीर से नहीं। जब मांगना ही नहीं है कुछ तो झुकना क्या? पागल हो गए हो, झुकने की क्या जरूरत? लेकिन तर्क तुम समझो तो एक ही है। मांगना है तो झुको, तर्क था। अब मांगना नहीं है तो मत झुको, वही तर्क है।
यह कबीर अतक््रय है। इसलिए भक्त से ज्यादा आदमी खोजना कठिन है। भक्त
तो एक पैराडाक्स है। एक विरोधाभास है, उसमें दो विपरीत मिल रहे हैं। वह दोनों के मध्य में है। एक तरफ से महावीर--एक सम्राट; दूसरी तरफ से एक साधारण भिखारी--दोनों एक साथ।
नहिं अचाह नहिं चाहन, चरनन लौ लीना रे।
और यह जो चरनन में, चरणों में लवलीन होना है, चरणों में डूब जाना है--यह क्या है?

तुम अगर झुको, तो शरीर ही झुकता है, अहंकार तो भीतर खड़ा ही रहता है, वह कभी नहीं झुकता। उसका ही झुकना झुकना है। शरीर के झुकने का तो कोई तलब नहीं। और जैसे ही अहंकार झुकता है, वैसे ही तुम लवलीन होने लगते हो; वैसे ही एक नयी मस्ती, और एक नया रंग भीतर पैदा होने लगता है। इसलिए ज्ञानी को रूखे-सूखे तुम पाओगे। महावीर से कोई कविता पैदा होनेवाली नहीं, कोई गीत भी नहीं पैदा होनेवाला। महावीर नाचेंगे भी नहीं। तुम सोच भी नहीं सकते कि महावीर नाच रहे हैं। चैतन्य नाचेंगे, मीरा नाचेगी।
भक्त तो गीला होगा, आर्द्र होगा, डूबा होगा। ज्ञानी सूखा होगा। ज्ञानी मरुस्थल जैसा होगा, जहां हरियाली है ही नहीं। अंतिम अवस्था वह भी पा लेगा। उसने भी पा ली है। लेकिन होगा मरुस्थल जैसा। भक्त तो एक झरना होगा, जो गाता ही रहता है। ज्ञानी चुप होगा, ज्ञानी मौन होगा। भक्त संगीत से भरा होगा; उसकी चुप्पी में भी गीत होगा; उसके गीत में भी चुप्पी होगी। वह मध्य में है। वह बोलेगा तो संगीत होगा; वह चुप रहेगा तो भी संगीत सुना जा सकेगा। उसके रोएं-रोएं से एक धुन बजती रहेगी।
साधन के रसधार में, रहै निसदिन भीना रे।
वह गीला होगा; जैसे कोई नदी से स्नान करके निकला हो--सद्यःस्नात! ऐसा
भी न होगा--जैसे हर वक्त रसधार में डूबा हुआ है।
साधन के रसधार में, रहै निसदिन भीना रे। और साधन यानी भक्ति। साधन यानी कीर्तन साधन यानी नाम-स्मरण। साधन यानी जप। साधन यानी परमात्मा के चरणों में सदा लगे रहना ऊपर कुछ भी करे, भीतर उसी की धुन बजती रहे। बाजार जाए, काम करे, भीतर उसी की धुन बजती रहे। और प्रतिपल अनुग्रह का भाव बना रहे। और प्रतिपल लगे कि परमात्मा ने जो दिया है, वह जरूरत से ज्यादा है, वह मेरी पात्रता से ज्यादा है। मांगने का सवाल कहां? और जब बिन मांगे मिल रहा हो, तो मांगना नासमझी है। जब उसने जीवन दिया है, जब उसने प्रेम का धड़कता हुआ हृदय दिया है, और जब उसने जीवन के आनंदित होने के इतने-इतने आयाम दिए हैं, तब और मांगने को क्या है! उसे प्रतिपल धन्यवाद देता रहे!
सूफी फकीर हुआ, बायजीद। एक रास्ते से गुजरता था अपने भक्तों के साथ।
एक पत्थर से पैर में चोट लग गई। वहीं झुककर बैठ गया। पैर से खून बहने लगा। उसके हाथ जुड़ गए और सिर आकाश की तरह उठ गया। भक्तों ने कहा कि यह क्या कर रहे हैं? हम तो समझे कि आप इसलिए झुके कि पैर में से खून निकल रहा है, चोट लग गई। पर हम देखते हैं कि आप प्रार्थना कर रहे हैं। बायजीद ने कहा, तुम्हें उसके राजों का पता नहीं। अगर आज वह न बचाता तो फांसी होनी थी। और फांसी को टालकर उसने सिर्फ पैर में जरा सी पत्थर की चोट कर दी और वह भी उसकी कृपा है, याददाश्त दिलाने को।
अगर भक्त के जीवन में कष्ट भी हो तो वह धन्यवाद देता है। अभक्त के जीवन में सुख भी हो, तो भी शिकायत करता है। क्योंकि अभक्त को कितना ही सुख मिले, वह हमेशा सोचता हैः और ज्यादा मिल सकता था... इतना ही? और भक्त को कितना ही दुख मिले, वह सदा सोचता है; और ज्यादा मिल सकता था... इतना ही? दोनों के देखने के ढंग, दृष्टियां अलग-अलग हैं। दोनों के ढंग ऐसे हैं। कि अभक्त सदा दुखी रहेगा और सदा नर्क में जीएगा। और भक्त सदा स्वर्ग में रहेगा, सदा सुखी रहेगा। और तुम जब सुख में रहना सीख जाते हो तो सुख बढ़ता है। जब तुम दुख में रहना सीख जाते हो तो दुख बढ़ता है। स्वर्ग और नर्क आदतें हैं। और आदतें बड़ी मुश्किल से छोड़ती हैं पीछा।
साधन के रसधार में, रहै निसदिन भीना रे।
राग में श्रुत ऐसे बसै, जैसे जल मीना रे।।
जैसे मछली पानी में है, ऐसे ही उस राग में सारे शास्त्र और सारा सत्य छिपा हुआ है।
रस में श्रुत ऐसे बसै, जैसे जल मीना रे।
और जिसने भक्ति का वह राग पा लिया, वह धुन बजने लगी जिसके भीतर और जो मस्त हो गया, जिसने पी ली वह शराब, जो उस नशे में डूब गया। वह पाएगा कि जैसे नदी में मछलियां हैं, ऐसे उस राग में सारा सत्य छिपा है। जो श्रुतियों में लिखा है, शास्त्र जिसका गीत गाते हैं, वह सब जहां छिपा ही हुआ है, उस रसधार में।
साईं सेवत में देइ सिर, कुछ विलय न कीना रे।

बस करना एक काम है, और वह यह है कि परमात्मा की सेवा में सिर दे देना।
साईं सेवत में देई सिर, कुछ विलय न कीना रे।
यह जो अंतिम वचन है, उसके दो अर्थ हो सकते हैं। दोनों महत्वपूर्ण हैं।
दोनों समझ लेने चाहिए। साईं सेवत में देह सिर... परमात्मा की सेवा में... ।
साईं स्वामी का अपभ्रंश है। तो जो परमात्मा है, जो स्वामी है, उसको देने में बस एक ही काम है करने को--सिर दे देना है। सिर का अर्थ हैः बुद्धि। सिर का अर्थ हैः विचार। सिर का अर्थ हैः तर्क। सिर का अर्थ हैः धारणाएं, शब्द। इन सबके संग्रहीत तत्व का नाम है, सिर। यह जो खोपड़ी है वह देने से काम न चलेगा; इसे तो कोई भी काटकर रख दे सकता है। लेकिन तुम अगर खोपड़ी काटकर भी रख दो तो भी तुम्हारी खोपड़ी में विचार चलते रहेंगे। तुम्हारी खोपड़ी हिंदू की रहेगी, मुसलमान की रहेगी, ईसाई की, जैन की रहेगी। खोपड़ी काटने से बहुत कुछ न होगा। इस खोपड़ी को काटने का सवाल नहीं है। यह तो सरल काम है। यह तो बहुत-से आत्महत्या कर लेते हैं। इसमें कुछ अड़चन नहीं है। लेकिन यह खोपड़ी तो रहे बाहर से, भीतर से चली जाए। न विचार उठे, न तर्क उठे, न धारणा बचे, न पक्षपात रह जाए। तुम भीतर से बिल्कुल खाली हो जाओ। जब उसकी ही मर्जी तुम्हारी मर्जी है, तब इस खोपड़ी की जरूरत क्या है? इसकी जरूरत तो इसलिए है कि तुम सोचते हो कि तुम असुरक्षित हो, इन्सिक्योरिटी है, तुम्हें अपना इंतजार खुद करना है। इसलिए इसकी जरूरत है। इसलिए सोचो, विचारो, रास्ता बनाओ, लेकिन जब वही खोज रहा है तुम्हारे लिए रास्ता, जब वही बना रहा है तुम्हारे लिए मार्ग, जब वही तुम्हारी श्वासों को चला रहा है--तब तुम पूरा ही क्यों नहीं छोड़ देते उसी पर?
एक राह से एक सम्राट गुजर रहा था, और एक सूफी फकीर था। सूफी फकीर को रास्ते पर पैदल चलते देखकर उस सम्राट ने कहा कि तुम आ जाओ मेरे रथ में बैठ जाओ, वह जाकर बैठ गया लेकिन सम्राट को बड़ी हैरानी हुई कि वह सिर पर जो पोटली लिए था, अब भी सिर पर लिए हुए है। उस सम्राट ने कहा, पोटली नीचे क्यों नहीं रख देते हो? दिमाग खराब है क्या? तो उस फकीर ने कहा कि नहीं, दिमाग आप ही जैसा है। इसलिए नीचे नहीं रख रहा हूं कि आपने मुझे बिठा लिया, यही क्या कम है! और रथ पर और वजन बढ़ाना ठीक नहीं।
सम्राट ने कहा कि मुझे शक हो रहा था तुम्हारे ढंग से कि तुम्हारा दिमाग खराब है। और तुम कहते हो, तुम्हारे जैसा! जब तुम रथ पर बैठे हो तो तुम सिर पर रखो अपना बोझ, अपनी पोटली, या रथ पर रखो--क्या फर्क पड़ता है? हर हालत में बोझ रथ पर है। फकीर ने कहा, तो तुम समझदार मालूम पड़ते हो। तो फिर इस सिर को ऊपर क्यों रखे हो? जब परमात्मा सब ले जा रहा है, जीवन उठता है, लीन होता है, इतने अनंत प्रकारों में लहरें उठती हैं, बिखरती हैं, जब सब उसके रथ पर चल ही रहा है, तो तुम यह सिर क्यों रखे हुए हो? मैं तो सिर्फ पोटली रखे हूं सिर पर, तुम वह सिर क्यों रखे हुए हो? और निश्चित मेरी पोटली से तुम्हारे सिर का वजन ज्यादा है।
सिर ही तो वजन है। सिर के अतिरिक्त और कोई वजन नहीं है। और जिसने सिर
को उतारकर रख दिया, वह निर्भार हो गया; उसे पंख मिल गए। फिर वह उड़ सकता है, मुक्ति के अनंत आकाश में।
तो कबीर कहते हैं, साईं सेवत में देई सिर... और चीजों से काम न चलेगा।
लोग बड़े चालाक हैं। लोग जाते हैं मंदिर में, और नारियल फोड़ आते हैं। नारियल प्रतीक है खोपड़ी का, और लगता भी खोपड़ी जैसा हैः बाल, दाढ़ी, आंखें... लोग बड़े होशियार हैं।
कबीर कहते हैं, साई सेवत में देई सिर, वे नारियल रख आते हैं! नारियल सिर जैसा लगता है, उसे रख आते हैं। सिंदूर लगा देते है मंदिर में, वह खून जैसा लगता है। लेकिन खून से ही पूजा हो सकती है। खून से पूजा का अर्थ हैः कुछ प्राण से दो। सिंदूर लगाने से क्या होगा? लेकिन लोग कुशल है। उन्होंने सब्स्टियूट खोज लिए हैं। उन्होंने परिपूरक निकाल लिए हैंः खून को बचाओ लाल रंग का टीका लगा दो, सिंदूर लगा दो, सिर को बचाओ, नारियल को चढ़ा दो! और नारियल भी मंदिर में लोग सड़े ले जाते हैं। मंदिर के नारियल अलग ही बिकते हैं बाजार में क्योंकि वे फिर-फिर आ जाते हैं, सरक्यूलेशन में रहते हैं, वर्षों चलते हैं। कई लोग उसको चढ़ा चुके। नारियल भी तुम्हारा नहीं। वह भी बासा है। चढ़ चुका कई दफा, उतर चुका कई दफा--वह घूमता ही हरता है, सरक्यूलेशन

में। वहीं मंदिर के बाहर दुकान रहती है, वह पुजारी का ही भाई-भतीजा चलता है। तुम चढ़ा आए, रात दुकान में पहुंच गया। सुबह फिर बिक गया, रात फिर दुकान में पहुंच गया। भीतर बिल्कुल सड़ जाता है।
खोपड़ी चढ़ाने की बात है। पहले तो तुम नारियल खोज लेते हो, वह भी फिर सड़ा, वह भी बासा और चढ़ाया हुआ दूसरों का। नहीं, परमात्मा के द्वार पर तुम्हारी प्रामाणिकता चाहिए। उधार, बासा, पराया, वहां कुछ भी न चलेगा। तुम ही अपने को लेकर पाओगे तो स्वीकृत हो सकते हो।
साईं सेवत में देई सिर, कुछ विलय न कीना रे।
और यह जो अंतिम आधा हिस्सा है, इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक अर्थ कि जरा भी देरी न की, जरा भी विलंब न किया--और साई की सेवा में सिर को चढ़ा दिया।
यही भक्ति का मार्ग है--कुछ देरी न की, कुछ विलंब न किया, बिना विलंब! इसे थोड़ा सोच लें।
मेरे पास लोग आते हैं। संन्यास का विचार करते हैं। उनसे मैं कहता हूं, संन्यास के दो ढंग हैं। एक तो विचार कर-कर के लेना, तो तब विलंब होगा। विलंब भी होगा और संन्यास का मजा भी खो जाएगा। क्योंकि जितना तुम विचार करोगे, और जितना तुम अपनी बुद्धि को समझाओगे, तर्क दोगे, पक्ष-विपक्ष में सोचोगे, और बुद्धि ने अगर निर्णय दिया कि हां, ले लो, तो यह संन्यास बेकार है, क्योंकि यह बुद्धि का निर्णय है। और बुद्धि के निर्णय से बुद्धि को कोई हटा नहीं सकता। और संन्यास का प्रयोजन ही इतना है कि बुद्धि हट जाए। तो अगर तुमने सोच-सोचकर लिया तो अर्थ ही खो जाता है।
एक दूसरा ढंग है छलांग का, कि तुम ले लो, तुम सोचो मत। बुद्धि को एक तरफ
रख दो और तुम ले लो। अगर तुम बुद्धि को एक तरफ रखकर लेते हो, तो संन्यास लेते ही क्रांति शुरू हो जाती है; रूपांतरण शुरू हो जाता है। लेने में ही रूपांतरण शुरू हो जाता है। क्योंकि तुमने बुद्धि से पूछा नहीं। पहली दफा तुमने कुछ किया बिना बुद्धि के। पहली बार बिना बुद्धि के, बिना तर्क के, बिना सोचे-विचारे, तुम अनजान में गए, अंधेरे में गए, अज्ञात में गए।
तो एक तो है बिना विलंब किए छलांग। उस छलांग का मूल्य है। वह छलांग है। अगर तुमने विलंब किया और सब तरफ से नाप-जोख की, सीढ़ी लगाई, फिर सीढ़ी से उतरे, सुगमता, से पहुंच गए--बात ही खो गई! क्योंकि उसी छलांग में तो सारा राज था, उसी छलांग में तो सिर कटता। इससे जो लगा है, उससे नहीं। वह व्यवस्था थी, उससे नहीं, उससे सिर नहीं काटेगा। इसलिए तर्क से जो धर्म के पास आता है, वह धर्म के पास कभी आ नहीं पाता।... अतक््रय! तर्क को कोई सवाल नहीं है; यह तो पागलों का काम है। यहां बुद्धिमानों को प्रवेश नहीं है। बुद्धिमान तो बाहर ही रह जाते हैं। उनकी बुद्धि ही उनके लिए उपद्रव हो जाती है। पागल छलांग लगा जाते हैं। यह तो मस्तों का काम है। यह तो उनका काम है, जो व्यावसायिक नहीं है; जो जुआ पर दांव लगाना जानते हैं। यह जुआरियों का काम है।
एक तो व्यवसायी चिŸा है, जो सोचता है--सोचता है, विलय करता है, विलंब करता है, पोस्टपोन करता है--कल लेंगे, परसों लेंगे। सब तरफ से व्यवस्था जमा लेंगे। सोच लेंगे, सब तरफ से पूछ लेंगे, पता लेंगे--कि ठीक होगा लेना कि नहीं ठीक होगा लेना, हजार-हजार लोगों से सलाह ले लेंगे, फिर। इस सब में ही लेने का सारा अर्थ खो जाएगा।
संन्यास एक छलांग है--निर्बिद्ध की। उसी छलांग में सिर गिर जाता है।
तो पहला तो अर्थ है कि कुछ विलय न कीना रे। जरा भी विलंब न किया, जरा भी समय न जाने दिया। समझे और छलांग लगा ली।
दूसरा अर्थ है--साईं सेवत में देई सिर, कुछ विलय न कीना रे--साईं की सेवा में, परमात्मा की सेवा में सिर चढ़ा दिया और फिर भी कुछ खोया नहीं-- पाया। कुछ विलय न कीना रे। सिर भी चढ़ा दिया और फिर भी कुछ खोया नहीं; पाया-- और डरे थे नाहक कि खो जाएगा।
बड़ी हैरानी की बात है। तुम्हारे पास कुछ है भी नहीं, फिर भी तुम डरे हो
तो कि खो जाएगा। है क्या जिससे तुम भयभीत हो कि खो जाएगा। छलांग में बाधा क्या है? तुम्हारे पास कुछ होता तो डर भी ठीक था, कुछ है भी नहीं। और अगर कुछ है तो सब ऐसा है कि जो खो ही जाए तो अच्छा है। दुख है, चिंता है, तनाव है, अशांति है। संपदा के नाम पर कुछ भी नहीं विपिŸायां बहुत हैं। सोच किसलिए

रहे हो, सिर को चढ़ाने में? लगता है कुछ खो जाएगा। तुम उस नंगे आदमी की तरह हो जो नहाता नहीं; क्योंकि नहायेगा, तो कपड़े निचोड़ेगा कहां, सुखाएगा कहां! कपड़े हैं ही नहीं, वह आदमी नंगा है, मगर इसी भय से कि अगर नहाऊंगा तो कपड़े कहां सुखाऊंगा, कहां निचोडूंगा, नहाता ही नहीं।
तुम्हारे पास कुछ होता खोने को तो भी बात अर्थपूर्ण थी। अगर तुम कभी लौटकर विचारते भी नहीं कि क्या है मेरे पास। डरते हो देखने में, क्योंकि खाली अपने को देखकर बहुत पीड़ा होगी, संताप होगा। पूरी जिंदगी व्यर्थ निकल गई है। कोई उपलब्धि नहीं है। कोई किनारा नहीं मिला, को मंजिल करीब नहीं आयी है। भीतर तुम बिल्कुल खोखले हो। लेकिन तुम उस खोखलेपन को देखने में डरते हो, क्योंकि देखोगे तो भय लगेगा। इसलिए तुम यहां-वहां भटकते रहते हो, उस तरफ कभी नजर नहीं करते। और सोचते रहते हो कि लेंगे, सोचेंगे, कहीं कुछ खो न जाए।
नहीं, कुछ खोने को तुम्हारे पास नहीं है। और जैसे ही तुम सिर दे दोगे, वैसे ही तुम पाओगे कि सब जो तुमने चाहा था और मांगा था, उस सब की वर्षा हो गई।
जीसस ने कहा हैः जो देगा, उसे मिलेगा; जो बचायेगा, वह खो देगा। और जीसस
ने कहा हैः जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा; और जिनके पास नहीं है, उनसे भी छीन लिया जाएगा। बड़ा कठिन वचन है, मगर बड़ा सार्थक है। क्योंकि तुम्हारे पास वही बढ़ेगा, जो है। अगर दुख है तो जगत में कोई भी चीज रुकती नहीं, हर चीज बढ़ती है। ख्याल रखना। अगर दुख है तो दुख बढ़ेगा। अगर प्रेम है तो प्रेम बढ़ेगा। अगर क्रोध है तो क्रोध बढ़ेगा। जगत में कोई चीज रुकती नहीं, बढ़ती है। हर चीज विकासमान है। अगर तुमने देर की तो तुम्हारे पास जो है, वह बढ़ा रहा है। तुम्हारा नर्क बड़ा होता जा रहा है।
जीसस कहते हैं, जो देंगे उन्हें मिलेगा; जो बचाएगा वे खो देंगे। क्योंकि बचाने को है ही क्या तुम्हारे पास? तुम नर्क को ही बचाओगे। तुम स्वर्ग को बिल्कुल खो दोगे। तुम अपने को बचाओगे, तुम परमात्मा को बिल्कुल खो दोगे। और दूसरा वचन कहता है कि जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा। अगर परमात्मा तुम्हारे पास है तो और परमात्मा, और परमात्मा मिलता जाएगा। क्योंकि जो तुम्हारे पास है, वह बढ़ेगा। और जिनके पास नहीं है, जीसस कहते हैं कि उनके पास जो है, वह भी छीन लिया जाएगा।
साईं सेवत में देईं सिर, कुछ विलय न कीना रे।
दे तो दिया, सब दे दिया और खोया कुछ भी नहीं, सब पा लिया। जैसे बूंद सागर में गिरती है तो इस तरफ से तो बूंद होना समाप्त हो जाता है, लेकिन उस तरफ से सागर हो जाती है। होती क्या है? बूंद होना खोती है, सागर होना पाती है। जैसे ही कोई अहंकार को खोता है, बूंद खो जाती है और ब्रह्म हो जाता है, सागर हो जाता है। क्षुद्र खोता है, विराट मिलता है।
तुम बचा क्या रहे हो? तुम किस क्षण के लिए सोच रहे हो? किसलिए देर है?
और क्यों विलंब? जो करने जैसा लगता हो... कबीर कहते हैं, साईं सेवत में देई सिर, कुछ विलय न कीना रे। जरा भी विलंब की जरूरत नहीं है--इमिजिएट, तत्क्षण, समझ आए, छलांग ली जा सकती है। और जो तत्क्षण छलांग लेंगे, वे ही ले पाएंगे। जिन्होंने जरा भी स्थगित किया, वे चूक जाएंगे। क्योंकि स्थगित किया कि क्षण खो जाता है। द्वार करीब आता है; स्थगित किया कि दूर हो जाता है। मौका पास आता है; स्थिति किया कि दूर हो जाता है। जब मौका पास आए और जब लगे कि समझ के लिए साफ हो गया।
समझ का अर्थ बुद्धि नहीं है। समझ का अर्थ तुम्हारी समग्रता है। जब तुम्हारे पूरे प्राण को प्रतीत हो कि ठीक है, उस क्षण को मत चूकना। उस क्षण को तुम बहुत-बहुत जन्मों तक चूके हो। उस क्षण विलंब न करना। उस क्षण सिर को दे ही देना। खोओगे तुम कुछ भी नहीं। बूंद खोएगी, सागर उपलब्ध होता है।
आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
सातवां प्रवचन

घूंघट के पट खोल रे

दिनांकः 17 नवंबर, 1974; श्री ओशो आश्रम, पूना

सूत्र
घूंघट का पट खोल रे, तो को पीव मिलेंगे।
घट घट में वह साईं रमता, कटुक वचन मत बोल रे।।
धन जोवन को गरब न कीजै, झूठा पचरंग बोल रे।
सुन्न महल में दियना बारिले, आसन सों मत डोल रे।।
जागू जुगुत सों रंगमहल में, पिय पायो अनमोल रे।
कह कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।।
कबीर के पद पहले, कुछ बातें समझ लें।

एक तो--और अत्यंत आधारभूत--कि परदा आपकी आंख पर है, परदा परमात्मा पर नहीं। और परदा आपने ही डाला है, किसी और ने नहीं। किसी और ने डाला होता तो आप उठाने में समर्थ न हो सकते थे; फिर कोई और ही उठाता। और पर्दा अगर परमात्मा के ऊपर होता, तो भी आप उठाने में समर्थ न हो सकते थे। क्योंकि परमात्मा विराट है, उसका परदा भी विराट होता, आपकी सामर्थ्य के बाहर होता। पर्दा आपकी आंख पर है, और आपने ही डाला है। यह पहली प्राथमिक बात समझ लेना चाहिए। इसलिए कबीर घूंघट का उपयोग करते हैं।
घूंघट व्यक्ति स्वयं ही डालता है और अपनी ही आंख पर डालता है। और यही आसान भी है। क्योंकि अपनी आंख छिप गई कि सब छिप गया। हिमालय को छिपाना हो तो बहुत बड़े पर्दे की जरूरत पड़े। छोटा-सा घूंघट, आंख बंद हो गई, हिमालय खो गया। सरल भी यही है। फिर खुद ने ही डाला है; इसलिए जब चाहें, जब मर्जी हो, उठा लें। कोई रुकावट भी नहीं है, कोई बाधा भी नहीं है--स्वयं के अतिरिक्त। इस बात को जितना गहरा उतर जाने दें भीतर, उतना ही अच्छा है। क्योंकि साधारणतः हम सोचते हैं, सत्य के ऊपर पर्दा है; तब तो यात्रा बहुत कठिन हो जाएगी। कमजोर आदमी कर भी पाएगा, इसकी कोई आशा रखनी उचित नहीं है। और सत्य के ऊपर पर्दा हो, तो तुम लाख उपाय करो, उठा कैसे पाओगे! और सत्य के ऊपर पर्दा हो तो एक बार किसी ने उठा दिया तो सभी के लिए उठ जाएगा। विज्ञान और धर्म का फर्क और फासला यही है।
आइंस्टीन एक सत्य को खोज लेते हैं, तो फिर हर पीछे आनेवाले वैज्ञानिक को, विज्ञान के विद्यार्थी को वह सत्य नहीं खोजना पड़ता--पर्दा उठ गया! फिर तो आप पढ़ लें किताब में, काफी है। जो श्रम आइंस्टीन को वर्षों करना पड़ा होगा, एक साधारण से विद्यार्थी को घंटों करना पड़ता है।
बुद्ध ने पर्दा उठा दिया, कबीर ने पर्दा उठा दिया, अब आपको करने की जरूर ही क्या है? जरा सा समझ लेना है, बात खतम हो गई। विद्यालय में पढ़ाई हो सकती है--विज्ञान की; धर्म की नहीं। क्योंकि बुद्ध ने जो पर्दा उठाया, वह अपनी आंख का पर्दा था। वह कोई सत्य का पर्दा नहीं उठा दिया था; नहीं तो सभी के लिए उठ जाता, फिर अज्ञानी कोई होता ही नहीं जगत में। फिर जैसे आइंस्टीन का सिद्धांत किताब में लिख जाता है, लोग पढ़ लेते हैं, खोजने की कोई जरूरत नहीं रह जाती, वैसे ही बुद्ध का सिद्धांत भी किताब में लिख जाता।
यह जानकर तुम्हें हैरानी होगी कि शास्त्र विज्ञान में हो सकता है, धर्म में नहीं। धर्म में कैसे शास्त्र होगा? दूसरे के उठाए तुम्हारा पर्दा तो उठेगा नहीं। और दूसरे ने जो देखा है, वह तुम्हारा दर्शन कैसे बनेगा? तुम्हारी आंख पर जब तक पर्दा है, बुद्ध कितना ही पर्दा उठा दें, कुछ भी न उठेगा। वह उनकी आंख का पर्दा है। इसलिए धर्म में कोई परंपरा नहीं निर्मित हो सकती। ट्रेडीशन धर्म की हो ही नहीं सकती। और दुख की यही बात है कि उसकी बड़ी परंपरा बन गई है।
शास्त्र धर्म का हो ही नहीं सकता। लेकिन धर्म शास्त्र है। धर्म दूसरे
से सीखा ही नहीं जा सकता, उसे खुद ही खोजना पड़ता है। लेकिन फिर भी हम दूसरे

से सीखते हैं। और इसलिए सब झूठ हो गया है। धर्म के आसपास जितना झूठ इकट्ठा हो गया है, उतना किसी चीज के आसपास झूठ नहीं है। क्या कारण होगा? और धर्म, जो की सत्य की खोज है, उसके आसपास इतना झूठ क्यों इकट्ठा हो गया? इतने शास्त्र, इतने सिद्धांत, इतने दर्शन, इतनी धारणाएं, इतने प्रत्यय धर्म के आसपास क्यों इकट्ठे हो गए?--इस मौलिक बात को भूल जाने के कारण कि पर्दा घूंघट है, तुम्हारी आंख पर है। हर आदमी को फिर से उठाना पड़ेगा। और हर आदमी को नये सिरे से उठाना पड़ेगा। किसी दूसरे के उठाये तुम्हें कुछ फर्क न पड़ेगा।
बुद्ध जाएंगे, देख लेंगे, खो जाएंगे--उनका दर्शन भी उनके साथ खो जाएगा; उनकी दृष्टि भी उनके साथ खो जाएगी। तुम जागोगे, देखोगे, पहचानोगे, तुम्हारे जीवने में अनहद आनंद का ढोल बजेगा; लेकिन किसी और को सुनाई नहीं पड़ेगा, तुमको ही सुनाई पड़ेगा। तुम्हारे जीवन में अनंत प्रकाश का अवतरण होगा, लेकिन तुम्हारे पड़ोस में भी कोई बैठा हो, उसको पता नहीं चलेगा। पत्नी को भी पता नहीं चलेगा कि पति के हृदय में प्रकाश की किरण उतरी। बेटे को पता नहीं चलेगा की बाप जाग गया तुम्हारे चारों तरफ लोग बैठे रहें, किसी को शंका भी न होगी कि तुम जाग गए। क्योंकि पर्दा तुमने अपनी आंख का उठाया है, उनकी आंखों का नहीं। और दूसरे की आंख का पर्दा उठाया ही नहीं जा सकता। यह पर्दा बाहरी नहीं है--यह दूसरी बात समझ लें। यह पर्दा बाहरी होता
तो कोई झटक कर दूसरा भी उठा देता यह नींद बाहर की होती तो हिला-डुला कर कोई भी तुम्हें जगा देता। यह नींद भीतर की है। कितना ही हिलाओ-डुलाओ, शरीर ही हिलेगा-डुलेगा, तुम्हारी चेतना नहीं। और यह पर्दा भीतर है। यह घूंघट साधारण घूंघट नहीं है, जो स्त्रियां की आंखों पर पड़ा रहता है। उसे तो कोई भी उठा सकता है। यह पर्दा, यह घूंघट भीतर की आंख पर है, जिसको हम तीसरी आंख कहते हैं।
यह इतने भीतर है कि दूसरा तो प्रवेश ही नहीं कर सकता। तुम ही जब चाहोगे, तुम ही जब भरोगे आतुरता से, तुम्हारी ही अभीप्सा जब तुम्हें आंदोलित करेगी, तुम ही जब जीवन की व्यर्थता को देखोगे, और तुम्हें जब देखोगे इस पर्दे के कारण कितनी दीवालों से टकराना पड़ता है, सब तरफ से जीवन लहूलुहान हो गया है; इस पर्दे के कारण द्वार मिलता ही नहीं; द्वार भी दीवाल हो जाती है; इस पर्दे के कारण जीवन में सिवाय कलह के, दुख के नर्क के, कुछ और नहीं होता, ऐसा क्षण आता ही नहीं जब तुम कह सको, आनंद भयो रे! ... एक क्षण भी जीवन में ऐसा नहीं आता, जब तुम नाच उठो और तुम कहो, धन्यभागी हूं कि जो भी मैंने दुख भोगे, वह इस एक क्षण मिले आनंद के लिए पर्याप्त थे; कोई हर्जा नहीं हुआ, कोई नुकसान नहीं हुआ। खूब पा लिया मैंने, वे दुख ना कुछ थे। अगर उतने दुख फिर झेलने पड़े तो मैं तैयार हूं इस एक क्षण आनंद के लिए।... लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं होता।
नहीं होता इसलिए कि न तो तूफान चल रहा हो बाहर तो तुम्हारा घूंघट हट सकता है, न आग लग जाए बाहर तो तुम्हारा घूंघट जल सकता है। भूल-चुक से भी, दुर्घटना में भी, तुम्हारा घूंघट हिलेगा नहीं।... भीतर है। और इन आंखों पर नहीं है जिनसे तुम देख रहे हो। भीतर की आंख पर है।
एक भीतर की दृष्टि है, उसके खुलते ही सारा जीवन बदल जाता है।
एक बाहर की दृष्टि है, वह खुली भी रहे तो भी काम चलता है--जीवन नहीं बदलता। वह बंद भी हो जाए तो भी काम चल जाता है। अंधा भी काम चला लेता है; आंखवाले भी काम चला लेते हैं। इन आंखों से गहरी भी आंख है, वही खुलती है, जब हम किसी को... व्यक्ति को कहते हैंः बुद्ध हो गया, जिन हुआ, जागा, होश पाया, और तब सब रूपांतरित हो जाता है! क्योंकि जब तुम भीतर जागते हो तो तुम्हारी सारी सृष्टि बदल जाती है। तुम जो देखते हो, तुम्हारे कारण ही देखते हो। मुल्ला नसरुद्दीन को एक रात पकड़ा गया।... काफी पी गया था। काफी झूम झटक की सिपाही से, गाली गलौज की। मगर वह उसे घसीटकर कोतवाली ले गया। कोतवाली में भी घुसा तो बहुत नाराज था और कहा कि यह क्या बदतमीजी है, मुझे किस लिए यहां लाया गया है? वह जो इन्स्पैक्टर था कोतवाली में, उसने कहा, शराब के लिए लाया गया है। उसने कहा, अरे, तब बात और! प्रसन्न हो गया।... फिर कब शुरू करेंगे?

शराब में डूबा हुआ आदमी, जो अर्थ भी देखेगा शब्दों में, वह भी उसका अपना होगा। शराब की अभीप्सा, आकांक्षा से भरा हुआ आदमी इतना बेहोश है कि वह जो सुनेगा, उसमें से भी अपना ही अर्थ निकालेगा। अर्थ भी उसका मूर्च्छित का अर्थ होगा। अर्थ भी उसका अपना ही होगा। स्वाभाविक यही है।
तुम जो देखते हो, वह वही नहीं है जो है। तुम वही देखते हो जो तुम देखना चाहते हो। तुम वही सुन लेते हो जो तुम सुनना चाहते हो। तुम वही खोजते हो जो तुम खोजना चाहते हो। किसी दिन उपवास कर लो फिर उसे रास्ते से गुजरो जिससे रोज गुजरे थेः जो दुकानें मिठाई की कभी नहीं दिखाई पड़ती थीं, वह पहली दफा दिखाई पड़ेंगी। वही दिखाई पड़ेंगी, बाकी जब खो जाएगा। रेस्टारेन्टस, हाटेल्डस, मिठाई की दुकान, चाय की दुकान--वे सब प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ेंगी। एक सात दिन उपवास कर लो, फिर निकलोः तुम्हें बाजार में जूते की दुकान, कपड़े की दुकान दिखाई पड़नी बंद ही हो जाएगी; सिर्फ तुम्हें भोजन की ही सामग्री की दुकानें दिखाई पड़ेंगी। क्योंकि तुम्हारी चेतना यहां भीतर भूख से भरी है। भूख देख रही है, अब तब नहीं देख रहे हो। तो दृष्टि सृष्टि है। बड़ी पुरानी कहानी है। महाराष्ट्र में संत हुए रामदास। उन्होंने राम
की कथा लिखी। वे लिखते जाते, और रोज लोगो को सुनाते जाते। कहते हैं, कथा इतनी प्यारी थी कि खुद हनुमान भी सुनने आते थे। छिपकर बैठ जाते भीड़ में। जब हनुमान सुनने आए तो बात कुछ राज की ही होगी, क्योंकि हनुमान ने तो कथा खुद ही देखी थी। अब कुछ इसमें देखने जैसा नहीं था। लेकिन रामदास कह रहे थे तो बात ही कुछ थी कि खुद देखनेवाला मौजूद जो था, चश्मदीद गवाह, वह भी यह कहानी सुनने आता था। लेकिन जब एक जगह हनुमान को बरदाश्त न हुआ। क्योंकि हनुमान का ही वर्णन हो रहा था। और रामदास ने कहा, हनुमान गए अशोक-वाटिका में, लंका में। और उन्होंने देखा कि चारों तरफ सफेद फूल खिले हैं। हनुमान ने कहा, ठहरो। सुधार कर लो। फूल लाल थे, सफेद नहीं थे। रामदास ने कहा कि कौन नासमझ बीच में सुधार करवा रहा है? तब हनुमान ने अपने को प्रकट कर दिया। उन्होंने कहा कि अब प्रकट करना ही पड़ेगा कि मैं खुद ही हनुमान हूं, जिसकी तुम कथा कह रहे हो। और मैं कहता हूं कि वहां फूल लाल थे, सफेद नहीं। रामदास ने कहा, कोई भी हो, चुप बैठो! फूल सफेद थे।
झगड़ा बहुत बड़ा हो गया। और तब एक ही उपाय था कि अब राम के पास जाया जाए। हनुमान ने कहा, तो चलो राम के पास। वे जो कह देंगे वही निर्णय। क्योंकि यह हद हो गई! मैं जब खुद चश्मदीद आदमी हूं और कह रहा हूं कि मैंने फूल देखे! तुम मेरी कथा कह रहे हो--और वह भी हजारों साल बाद कह रहे हो। और एक सी बात पर जिद्द कर रहे हो। क्या बिगड़ता है कि तुम हूल लिख दो कि लाल थे?
पर रामदास ने कहा, बिगाड़ने का सवाल नहीं; जो सच है, सच है। फूल सफेद थे। झगड़ा राम के पास गया, और राम ने हनुमान से कहा, तुम चुप रहो। रामदास जो कहते हैं, ठीक कहते हैं। तुम उस समय इतने क्रोध में थे, आंखें खून से भरी थीं, तुम्हें लाल दिखाई पड़े होंगे। रामदास को कोई क्रोध नहीं है। वह दूर तटस्थ भाव से देख रहा है! फूल सफेद ही थे। मुझे भी पता है?
जब तुम क्रोध से देखोगे तो चीजें और हो जाएगी। स्वभावतः जब तुम लोभ से देखोगे तो चीजें और हो जाएंगी। जब तुम वासना, कामना से भरकर देखोगे तो चीजों में एक सौंदर्य आ जाएगा, जो है ही नहीं। देखनेवाला अपने को ही फैलाकर देखता है। इसलिए तुम्हारी दृष्टि ही तुम्हारी सृष्टि हो जाती है। जब तुम बदलोगे और तुम्हारी दृष्टि बदलेगी, तत्क्षण सारी सृष्टि बदल जाएगी। जहां तुम्हें बहुमूल्य दिखाई पड़ता था वहां कचरा दिखाई पड़ेगा। जिससे तुमने असार समझकर छोड़ दिया था, हो सकता था वहां सार दिखाई पड़े; और जिसे तुमने सार समझकर छाती से लगा रखा था वहां तुम्हें असार दिखाई पड़े। जीवन तुम्हारी दृष्टि का फैलाव है। और जिसके भीतर की दृष्टि खोयी हो,
वह ऐसा ही जैसे भीतर है ही नहीं। सब सोया है। उस भीतर की दृष्टि के सोने के कारण तुम जीवन के भीतरी अंगों को नहीं देख पाते। बाहर की आंख बाहर को ही देख सकती है। भीतर की आंख भीतर देखेगी। तुम देखते हो मुझे, लेकिन अगर बाहर की आंख से देखते हो, तो तुम मेरे शरीर को देखोगे, तुम मुझे न देख पाओगे। अगर तुम भीतर की आंख से देखते हो तो ही मुझे पाओगे। तब यह शरीर सिर्फ घर रह जाएगा, ऊपर के वस्त्र, और भीतर के चैतन्य का आविर्भाव होगा। अगर तुम सिर्फ कानों से सुनते हो बाहर के, तो तुम मेरे शब्द सुन पाओगे; और अगर भीतर का कान

तुम्हारा जागा हो, तब तुम मेरे अर्थ को समझ पाओगे। क्योंकि शब्द तो खोल है, शरीर है; अर्थ, आत्मा है।
तुम जितने गहरे हो, उतना ही गहरा तुम देखोगे, उतना ही गहरा तुम सुनोगे, उतना ही गहरा तुम्हारा सारा अनुभव होगा। तुम अगर छिछले हो, तो अनुभव बहुत गहरा न पाएगा।
झेन कथा है कि एक सदगुरु अपने शिष्य के पास गया। वह बाहर ही बैठा था। सदगुरु ने पूछा, सत्य क्या है? उस शिष्य ने मुट्ठी बांधकर बताई। सदगुरु वापस लौटने लगा और उसने कहा कि पानी बहुत उथला है, बड़े जहाज यहां न रुक सकेंगे। शिष्य बड़ा दुखी हुआ, और उ Ÿार तो उसने बहुत सोच-समझकर दिया था। वहीं तो भूल हो रही थी। उसने सुन रखा था कि जब यह गुरु लोगों से कुछ पूछता है, तो यह शब्दों में उ Ÿार नहीं चाहता। और उसने पुरानी कहानी सुन रखी थी। कि फलां शिष्य के पास गया तो उसने मुट्ठी बांधकर बता दी और इसने कहा कि ठीक। क्योंकि मुट्ठी बांधने का मतलब है एक; पांच नहीं; पंचतत्व नहीं, एकत्व; पांच इंद्रियां नहीं एक आत्मा। सो, सुन रखी थी कहानियां तो उसने भी मुट्ठी बांध के बताई लेकिन वह मुट्ठी झूठी थी, उसके भीतर एक नहीं था। उस मुट्ठी में पांच थे। क्योंकि मुट्ठी उतनी ही गहरी हो सकती है, जितना उसका अनुभव था। वह जानता तो इतना था कि पांच सच है। एक की बात तो सुनी थी, उधार थी, बासी थी, अपनी न थी। तो गुरु ने कहा, यह जगह बहुत उथली है, और बड़े जहाज यहां न रुक सकेंगे। बड़ा पीड़ित हुआ शिष्य, बड़ा दुखी हुआ।
वर्षों के बाद फिर आया। उसने फिर मुट्ठी बांधी। गुरु ने कहा, खूब! खूब खुदाई की। पानी खूब गहरा कर लिया! जब जहाज रुक सकता है।
देखनेवालों को बड़ी हैरानी हुई, क्योंकि दोनों बार एक ही बात हुई थी--
वह मुट्ठी बांधी गई थीं; पहली दफे भी और दूसरी दफे भी। लोगों ने गुरु से पूछा कि हम कुछ समझे नहीं, रहस्य कर दिया पहेली बना दी। पहली बार भी इस शिष्य ने यही मुट्ठी बांधी थी। इसलिए बीस साल बाद दुबारा आने की जरूरत थीं?
गुरु ने कहा, इस बार मुट्ठी में पांच नहीं, एक है। तब मुट्ठी में पांच थे। मुट्ठी दिखती थी बंधी है, भीतर खुली थी। अब मुट्ठी बाहर ही नहीं बंधी है, भीतर भी बंध गई है। अब इसकी मुट्ठी में अर्थ है। अब यह मुट्ठी प्रतीक नहीं है, अनुभव है।
शब्द तो वही हैं, प्रतीक वही हैं; लेकिन जैसे ही तुम बदल जाते हो, तुम्हारे शब्दों का अर्थ बदल जाता है--तुम्हारे जीवन के ढंग तुम्हारे जीवन की सुरभि बदल जाती है। सब कुछ वैसा ही रहता है, फिर भी कुछ भी वैसा नहीं रह जाता। सब कुछ ऊपर-ऊपर वैसा ही होगा। तुम कभी बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओगे, कभी तुम्हारे भीतर का कबीर भी जागेगा ही। आखिर कितनी देर लगाओगे। सब ऊपर-ऊपर ऐसा ही होगा, जैसा आज है--दुकान जाओगे, घर काम करोगे, बच्चों का पालन-पोषण करोगे, भूख लगेगी; खाना खाओगे; नींद लगेगी, सोओगे; सब ऊपर-ऊपर वैसा ही होगा--पहली मुट्ठी! लेकिन भीतर-भीतर सब बदल जाएगा--दूसरी मुट्ठी! तुम बदल जाओगे। और तुम्हारे बदलने के साथ जीवन के सारे अर्थ और जीवन का सारा काव्य, जीवन की सारी प्रतीति बदल जाएगी।
जब भीतर की आंख खुलती है तब तुम्हें पदार्थ दिखाई नहीं पड़ता है। या, पदार्थ दिखाई पड़ता है तो हाल हो जाता है। पदार्थ के भीतर जो छिपा है परमात्मा, वह दिखाई पड़ता है; पदार्थ उनकी पारदर्शी खो जाती है।
ये दो बातें ख्याल में रख लें।
पर्दा सत्य पर नहीं, अपनी ही आंख पर है; इसलिए घूंघट किसी और ने नहीं डाला। कोई और डालेगा तो आदमी सदा के लिए परतंत्र हो जाएगा। क्योंकि जब वह उठाना चाहता, तब उठेगा। लेकिन मनुष्य की आत्मा परम स्वतंत्र है। यही उसकी गरिमा है। तुमने ही डाला है। भटके हो तो तुम, भटके हो तो जानकर, भटके हो तो बूझकर! अगर गलत भी गए हो, तुम ही गए हो! और इसलिए सुगम है कि तुम ठीक मार्ग पर आ जाओ। जिस दिन चाहोगे उसी दिन आ जाओगे।
दूसरी बातः यह ऊपर की आंखों पर घूंघट नहीं है; घूंघट भीतर की आंख पर है। इनको ख्याल में रखें, फिर कबीर के इन सूत्रों में उतरें।
घूंघट का पट खोल रे, तो को पीव मिलेंगे।
कबीर के लिए परमात्मा प्रिय है, प्रीतम है, पिया है।

सत्य को जब प्रेम की आंख से देखा जाता है, तो सत्य फिर एक रूखी-सूखी दार्शनिक धारणा नहीं होती; फिर सत्य प्रियतम होता है। फिर वही प्यारा होता है; काफी कुछ भी प्यारा नहीं रह जाता। और जहां भी वह होता है, वह सभी प्यारा हो जाता है।
तो एक तो यह बात ख्याल में लें कि सत्य को अगर तुमने एक रूखी-सूखी धारणा की तरह खोजना चाहा... जैसे विज्ञान की खोज है, वह रूखी-सुखी खोज है। उससे खोजी भीगता नहीं। उससे खोजी वही का वही रहता है। उसने खोजी के जीवन में रूपांतरण नहीं आता है, आर्द्रता नहीं आती, गीलापन नहीं आता। खोजी रूखा ही बना रहता है।
एक दार्शनिक खोजता है सत्य को; तर्क जुटाता है, बड़े सिद्धांतों के जाल खड़े करता है, सब तरह की परीक्षाएं करता है विचार से--उसका जीवन भी रूखा- सूखा रह जाता है। वह ऐसा वृक्ष है, जिस पर हरे प Ÿो कभी नहीं लगते; जिसमें कभी कभी फूल नहीं आते। वह सूखी शाखाएं हैं, जिनमें कुछ नहीं लगता। शास्त्र का ढेर बढ़ता जाता है, शब्दों के जाल बढ़ते जाते हैं और भीतर के प्राण सूखते जाते हैं।
अगर तुम दार्शनिक के शब्द भी सुनो तो भी तुम्हें रेगिस्तान का स्वाद देंगे। सब सूखा, तप्त! उनसे कभी भी तुम्हें जीवन की हरियाली न उठती हुई मालूम पड़ेगी।
कबीर दार्शनिक नहीं हैं--कबीर प्रेमी हैं। उनके शब्दों में बड़ा रस है। और वह रस खबर देता है कि भीतर की किसी रसधार में डूबते हुए वे शब्द आए हैं।
इसलिए हमने तो ऋषि को कवि कहा है। संस्कृत में ऋषि और कवि दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है। धीरे-धीरे हमें दो अर्थ करने पड़े। क्योंकि ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने बिना सत्य को जाने भी कविताएं लिखी हैं। कविताएं कितनी भी प्यारी हों उनकी, उनमें कोई आत्मा नहीं है। इसलिए वे खाली हैं। ऊपर काफी रंग-रौनक है; भीतर प्राण नहीं है। घर बहुत सुंदर है, निवासी नहीं है। देह बिल्कुल ठीक है, लेकिन प्राण-पखेरू उड़ चुके हैं, या कभी थे ही नहीं।
पश्चिम में मुर्दे को भी लोग ले जाते हैं तो खूब सजाकर ले जाते हैं। स्त्री मर जाती है तो भी उसके होंठ पर लिपिस्टिक लगा देते हैं, आंख की पलकों पर काजल लगा देते हैं, गाल पर लाली लगा देते हैंः मरी हुई स्त्री बड़ी जीवित मालूम पड़ती है।
कवियों की कविताएं ऐसी ही हैं; वहां भीतर कुछ आत्मा नहीं है, ऊपर काफी रंग रौनक है। इसलिए अक्सर एक बात ख्याल रखना, किसी कवि की कविता पसंद आ जाए तो भी कवि को खोजने मत जाना, नहीं तो कवि को देखकर बड़ी निराशा होगी। कविता तो बड़ी ऊंची मालूम पड़ती थी, और कवि बिल्कुल साधारण मालूम पड़ेगाः कोई ऊंचाई नहीं, कोई गहराई नहीं। कविता पसंद आ जाए तो कवि के पास मत जाना। क्योंकि वहां व्यक्ति नहीं है। वहां सिर्फ एक कौशल है, एक तकनीक है। वह आदमी लय, छंद, शब्द, भाषा का ज्ञाता है, और इनको इस भांति बांध सकता है कि एक संगीत का भ्रम पैदा हो जाए। लेकिन सब ऊपर-ऊपर है--लाश पर लगा हुआ लिपस्टिक है; लाश की आंखों पर लगा हुआ काजल है। और स्त्री बिल्कुल सुंदर मालूम पड़ती है। और ऐसी लगती है कि कभी-कभी कश्मीर से यात्रा करके लौटी है। लेकिन भीतर सब मृत है। भीतर कोई जीवित नहीं है। इस स्त्री के प्रेम में मत पड़ जाना। इस स्त्री को सिवाय दफनाने के और कोई उपाय नहीं है।
कविता के प्रेम में अगर कभी आ जाओ तो कवि को खोजने मत जाना, नहीं तो मुश्किल में पड़ोगे; क्योंकि कवि को देखने से कविता भी व्यर्थ हो जाएगी। उर्दू में बड़े शायर हुए हैं, और उन्होंने बड़ी ऊंचाई की बातें कही हैं; लेकिन, उन आदमियों की तलाश में मत जाना। तुम उनको अपने से गया बीता पाओगे। ऋषि और कवि में यही फर्क है। कवि को तुम हमेशा उसकी कविता से छोटा पाओगे, ऋषि को हमेशा तुम उसकी कविता से बड़ा पाओगे। तुम जब ऋषि को खोजने जाओगे, उसके गीत को सुनकर, तब तुम्हें पता चलेगा कि गीत तो नाकुछ था, और अगर हम गीत में ही प्रसन्न होकर रह जाते, तो एक अवसर खो जाता। यह जिससे गीत निकला है, वह तो अनंत है; वह गीत तो सिर्फ इसकी एक लहर थी, और गीत नाकुछ था। एक दफा तुम कबीर को देख लोगे, तो कबीर के वचनों में कुछ भी पता नहीं चलेगा; इस आदमी को

तो पीछे ही छोड़े आए वह वचन। सागर पीछे छूट गया है, और एक हल्की सी बरखा का झोंका तुम्हारे पास आ गया था। एक छोटी-सी बदली तुम्हारे घर पर आकर बरस गई थी--ऐसी थी कविता। और यह तो महासागर है--जिससे ऐसी अनंत बदलियां उठ सकती है और अनंत घड़ों पर बरस सकती हैं।
ऋषि हमेशा पाता है कि जो वह कहना चाहता था, वह नहीं कह पाया।
ऋषि हमेशा पाता है कि जो उसने कहा, वह छोटा हो गया--जो वह कहना चाहता था, उससे।
ऋषि के पास सत्य है। सत्य शब्दों से बड़ा है। जब भी सत्य शब्दों में लाया जाता है तो जैसे एक संकरी जगह में बड़े आकाश को कोई समाने की कोशिश करता हो। बड़ा कठिन है। और ऋषि के शब्दों में जो आनंद की पुलक है, वह केवल शब्दों का सार-संवार नहीं है। वह जो आनंद की पुलक है, वह जो जहां से शब्द आए हैं, जिस हृदय से जन्मे हैं, उसकी पुलक की थोड़ी सी खबर है। जैसे इस फूलों से भरे बगीचे से हवा का ए झोंका गुजर जाए तो फूलों की थोड़ी गंध साथ ले जाएगा-- राह पर चले हुए राहगीर को भी वह झोंका घेर लेगा, उसे भी थोड़ी फूलों की गंध मिल जाएगी। वह फूलों की गंध सिर्फ पास किसी बड़े बगीचे की खबर है। वह हवा के झोंके में जो थोड़ी सी शीतलता है, वह पास किसी सरोवर की झलक है।
कबीर ऋषि हैं। कविता के ढंग से उन्होंने जो कहा है, वह कविता से ज्यादा बड़ा है। और जब कवि देखता है जगत को तो सत्य रूखा नहीं रह जाता, रसपूर्ण हो जाता है। काव्य जीवन को देखने का वही ढंग है, जिस ढंग से प्रेमी प्रेयसी को देखता है। और तुम्हें शायद उसकी प्रेयसी बिल्कुल नाकुछ मालूम पड़े, लेकिन प्रेमी को वही सब कुछ मालूम पड़ती है। प्रेमी प्रेयसी को देखता ही नहीं, सृजित करता है।
कहीं खलील जिब्रान ने एक वचन लिखा है कि प्रेमी अपनी प्रेयसी में वही देखता है, जो अगर परमात्मा की मर्जी पूरी होती तो वह स्त्री होती। प्रेमी अपनी प्रेयसी में वही देखता है, जो स्त्री की अनंत संभावना है; वह उसे आज देखता है, जो वह कल हो सकती है--अगर परमात्मा की मर्जी पूरी हो पाए। वह उस फूल को नहीं देखता है जो सामने है; वह उस फूल को देख सकता है जो हो सकता है इस फूल से। वह सारी संभावनाओं को मौजूद देखता है। वह सारे भविष्य को वर्तमान देखता है।
बाप अपने बेटे में वही देखता है--वह नहीं, जो है। इसलिए तो लोग परेशान होते हैं। हर बाप अपने बेटे की चर्चा कर रहा है, और लोग कहते हैं बंद भी करो! क्योंकि लोगों को उस बेटे में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता और बाप को सब कुछ दिखाई पड़ता है। और हर बाप को दिखाई पड़ता है अपने बेटे में। और फिर बेटे साधारण निकल जाते हैं।
बाप को क्या दिखाई पड़ता है बेटे में? बाप को वह दिखाई पड़ता है जो बेटा अगर ठीक-ठीक बढ़े तो होगा, उसे उसका पूर्व-दर्शन होता है। लेकिन बेटा अगर भटक जाए तो नहीं हो पाएगा। और बेटे भटक जाते हैं। बाप झूठा साबित होता है। लेकिन बाप ने जिस प्रेम की आंख से देखा था, वह हो सकता था।
हर मां अपने बेटे में श्रेस्रतम को देखती है। वह श्रेस्रतम हो सकता है। वह संभावना है। यह कंकड़ जैसा दिखाई पड़नेवाला बेटा, थोड़े ही निखार से, थोड़े ही छैनी के प्रयोग से हीरा बन सकता है; लेकिन बनेगा या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।
प्रेम उसे देख लेता है, जो अगर सब ठीक-ठीक बीते तो, तुम हो सकते। घृणा
वह देख लेती है, जो अगर सब गलत हो जाए तो तुम हो जाओगे। घृणा तुममें नरक को देख लेती है, प्रेम तुम में स्वर्ग को देख लेता है। घृणा तुम में शैतान को देख लेती है, प्रेम तुम में भगवान को देख लेता है।
साधारण प्रेम में भी ऐसी झलक मिलती है। वह सिर्फ तुम्हारी कल्पना ही नहीं है। वह प्रेम की आंख है, जो छिपे को उघाड़ लेती है; जो दबे को प्रगट कर लेती है; जिसके सामने गुप्त अपने द्वार खोल देता है; रहस्य खुल जाते हैं। लेकिन जब कोई सारे जगत को प्रेम से देखता है, जब कण-कण को प्रेम से देखता है, जब र Ÿा-र Ÿा इस जगत की तुम्हें अपनी प्रेयसी या प्रेमी बन जाती, तब जिस विराट को उदय होता है, वही परमात्मा है।
इसलिए कबीर परमात्मा को पीव कहते हैं, प्यारा कहते हैं, प्रियतम कहते हैं। कबीर के लिए सत्य रूखा-सूखा, धारणा नहीं--प्रियतम है। विश्व और

मनुष्य के बीच जो संबंध है, वह तर्क का नहीं, प्रेम का है। इसलिए दार्शनिक जिसे उपलब्ध नहीं कर पाता उसकी झलक कवि को मिल जाती है। और कवि को झलक ही मिलती है, ऋषि उसके साथ एक हो जाता है।
घूंघट के पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे।
और आंख तुम्हारी घूंघट से दबी है।
क्या है घूंघट?
बुद्ध का एक वचन है कि तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई मित्र नहीं और तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई शत्रु भी नहीं। क्योंकि तुम अगर पीठ करके चलो, तो अपने ही सबसे बड़े शत्रु साबित होओगे। और तुम अगर सत्य की तरफ उन्मुख होकर चलो तो तुम ही अपने सबसे बड़े मित्र हो जाओगे।
क्या है घूंघट?
तुम जीवन के प्रति पीठ करके चल रहे हो। तुम भगोड़े हो, पलायन वादी हो, एस्केटिस्ट हो! तुम किसी तरह जीवन से बचना चाहते हो, साक्षात नहीं करना चाहते हो--वही घूंघट है।
समझने की कोशिश करें।
जहां भी जीवन होता है, वहीं से तुम बचने की कोशिश करते हो--और फिर भी तुम परमात्मा को पाना चाहते हो! परमात्मा महाजीवन का मार्ग है। पर क्यों आदमी जीवन से बचता है? कुछ भय है। एक तो भय है कि जीवन हमेशा प्रतिपल अपरिचित और अनजान में ले जाता है; अज्ञात में और अज्ञेय में ले जाता है। जीवन बंधी हुई लीक नहीं है, कोल्हू के बैल की भांति नहीं है कि तुम एक ही परिधि में चक्कर काटते रहते हो। जीवन एक आदत नहीं है, पुनरुक्ति नहीं है। जीवन प्रतिपल नया हो रहा है। और नये से तुम डरते हो; क्योंकि पुराने से तुम परिचित हो, नये से अपरिचित हो; पुराना जाना-माना है, तुम उसे भली भांति पहचानते हो। तुम पुराने हो। तुम पुराने के साथ जी लिए हो, सुख-दुख भोग लिए हो। नये का पता नहीं।
यह हैरानी की बात हैः तुम पुरानी बीमारी को भी पसंद करोगे नये स्वास्थ्य के मुकाबले। क्योंकि नये से भय लगता हैः पता नहीं क्या हो! बचपन से ही नये से भय लगता है। और सारा समाज सिखाता है नये से भय। अजनबी आदमी पास बैठ जाए तो तुम तत्क्षण नाम पूछते होः कहां जा रहे हो? क्या करते हो? क्या धर्म है? क्यों पूछते हो, पता हो? इसलिए कि जब तक अजनबी है तब तक भय है। पता लग जाए कि ठीक है, हिंदू धर्म मानता है... हम भी हिंदू, तुम भी हिंदू--परिचित हुए।... बाल-बच्चे हैं? क्योंकि बाल-बच्चे वाले आदमी का ज्यादा भरोसा! ... कांग्रेसी हो कि कम्युनिस्ट? कांग्रेसी ही है, चलो ठीक है।
हम व्यवस्था बना रहे हैं, उससे परिचित होने की।
ट्रेन में आदमी प्रवेश नहीं हुआ कि लोग उससे पूछना शुरू कर देते हैं। अगर वह आदमी जवाब न दे, या अनर्गल जवाब दे तो तुम शंकित हो जाओगे कि खतरा है, कि चेन खींच दो ट्रेन की, पुलिस को खबर करो। अगर वह आदमी कहे कि हां, हिंदू या मुसलमान... हिंदू ही हूं, तो संदेह पैदा करेगा। क्योंकि इसमें सोचने की क्या बात! कि तुम पूछो कितने बच्चे हैं और वह सोचे और गिनती करे, तो वह आदमी खतरनाक है! पता नहीं बिस्तर उठा ले जाए, सामान चुरा ले, जेब काट ले! भरोसा का नहीं है। अजनबी को हम जल्दी से परिचित बनाना चाहते हैं। मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में सवार था। और डिब्बे की छत की तरफ एक टकटकी लगाकर देख रहा था। दूसरा आदमी जो उसके पास बैठा था, वह थोड़ी देर में शंकित हो ही गया। उसने एक-दो दफा बात-चीत चलाने की कोशिश की, खांसा-खखारा; मगर वह एकटक देखता रहा। उसने पूछा भी, आप कहां जा रहे हैं? मुल्ला ने कोई जवाब न दिया। कहां से आ रहे हैं? उसने जरा जोर से पूछा कि हो सकता है कि आदमी बहरा हो। तो भी जवाब न दिया। वह एकटक लगाये त्राटक ही करता रहा। आखिर उस आदमी ने कहा, भाई साहब! आपका मफलर खिड़की से बाहर उड़ा जा रहा है! नसरुद्दीन ने कहा कि तुम चुप क्यों नहीं बैठते? तुम्हारी सिगरेट से तुम्हारा कोट जल रहा है। मैं तो कुछ नहीं बोला!
यह आदमी थोड़ा संदेह पैदा करेगा, यह थोड़ा डर पैदा करेगा। तुम शांति से अखबार भी न पढ़ पाओगे इसके पास बैठकर; इसी-इसी की याद आएगी। तुम्हें जगह बदलनी ही पड़ेगी।

अजनबी डराता है--क्यों? परिचित भले लगते हैं--क्यों? भय है। और हम चाहते हैं सुरक्षा हम चाहते हैं जाना-माना एक घेरा। इसलिए तो जंगल में जाने में तुम डरते हो; बगीचे में जाने में डर नहीं लगता। बगीचा जाना माना है, आदमी का बनाया हुआ है, परिचित है। सीमा है उसकी, रास्ते हैं उसके। भटकने का कोई कारण नहीं है। जंगल में न रास्ते हैं, न सीमा है; भटकने की पूरी सुविधा है। परमात्मा का बनाया है और विराट है। इसलिए तो आदमी धीरे- धीरे आदमी की बनायी हुई धारणाओं में जीने लगा। वह बगीचों की भांति है। सत्य में जाने से डर लगता है; वह परमात्मा का विराट जंगल है। वहां तुम बचोगे, लौट पाओगे? कहना मुश्किल है। लौटोगे तो तुम ही लौटोगे--यह भी कहना मुश्किल है। वहां जो गया, वह वही तो नहीं लौटता है, जैसा जाता है।
हमने बुद्ध को जाते और लौटते देखा। हमने महावीर को जाते और लौटते देखा। उन सबसे हम भयभीत हो गए हैं। हम पूजा कितनी ही करें जाकर, महावीर के सामने कितना ही सिर पटकें, लेकिन हम भयभीत हो गए हैं। क्योंकि जिन लोगों को हमने उस अनंत के रास्ते पर जाते देखा और वे लौटे, हमने पाया कि वे बिल्कुल दूसरे हो गए। उनका हमसे कोई तालमेल न रहा। उनसे हमारे सब संबंध टूट गए। वे हमारे लिए बड़े से बड़े अजनबी, आउटसाइडर से हो गए।
वह बुद्ध और महावीर की पूजा भी हमारी एक तरकीब है--परिचय बनाने की। उनसे इस तरह हम परिचय बनाते हैं। हम कहते हैं, आप तीर्थंकर हो, बिल्कुल ठीक, चौबीस तीर्थंकर होते हैं, आप चौबीसवें हो। हम अपने गणित में बिठा रहे हैं। अब कोई कह दे हम पच्चीसवें हैं, झगड़ा शुरू! क्योंकि चौबीस से ज्यादा हो ही नहीं सकते! हम खांचा बना रहे हैं। हम, जो अज्ञात उतरा है महावीर में, उसके लिए भी व्यवस्था दे रहे हैं, तर्क और गणित की। हम कबूतरों के खाने में उनको बिठा रहे हैं कि ठीक, तुम यहां बैठ जाओ, चौबीसवें तीर्थंकर... बिल्कुल ठीक! तुम इस-इस तरह आचरण करो, क्योंकि तीर्थंकर ऐसा आचरण करता है! तुम इस तरह उठो, इस तरह बैठो; क्योंकि यह तीर्थंकर का ढंग है! जब वे हमारे ढांचे में बिल्कुल हमें बैठे हुए मालूम पड़ेंगे, हम निश्चिंत हो गए; अब कोई डर न रहा।
डर की वजह से हम पूजा करते हैं। पूजा हमारा परिचय बनाने का ढंग है। तो जिन-जिनको हम पहले गाली देते है, उन-उनकी पीछे पूजा करते हैं। जिन-जिन के खिलाफ हम लड़ते हैं पहले, लड़ते हैं हम इसलिए कि जब तक वे अजनबी रहते हैं। फिर धीरे-धीरे हम उनके साथ राजी हो जाते हैं, परिचय बना लेते हैं। और तक तक वह बेचारे जा चुके होते हैं। फिर उनकी मूर्तियों को रखकर हम पूजा करते हैं। लगता है, अभी तक हम डरे हैं।
मैंने एक कहानी सुनी है। सुना है कि ईश्वर बहुत थका था एक दिन... एक दिन क्या, वह रोज ही थकता होगा। इतना विराट गोरख-धंधा, थकता ही होगा! इतने-इतने उपद्रव हैं! तो उसके एक नौकर ने, एक दास ने, सलाह दी कि आप ऐसा करो, कुछ दिन छुट्टी पर चले जाओ। और बहुत दिन से आप पृथ्वी पर भी नहीं गए। एक-दस पंद्रह दिन के लिए विश्राम करना अच्छा होगा। तो उसने कहा कि नहीं, पृथ्वी पर जाने का मन नहीं है। क्योंकि दो अढ़ाई हजार साल पहले गया कि विश्राम करने, और एक यहूदी लड़का मेरी के प्रेम में पड़ गया। अभी तक लोगों ने उसकी चर्चा बंद नहीं की पृथ्वी पर; वे लोग अभी भी चर्चा कर रहे हैं। एक लड़का मेरा पैदा हो गया था वहां--जीसस। वह छोटा सा प्रेम का मामला था। छुट्टी पर गया था और लोग अभी तक चर्चा कर रहे हैं और किताबें लिखे जाते हैं और कोई कहता है कि कुंआरी मेरी से पैदा हुआ जीसस, और कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है। वह बकवास अभी तक उन्होंने बंद नहीं की। तो वहां तो नहीं जाना चाहूंगा।
क्या होता है।
दो-दो हजार साल तक लोग क्यों व्यर्थ की चर्चा चलाते हैं? अभी तक हम जीसस के साथ परिचित नहीं हो पाए, इसलिए हमें चर्चा चलानी पड़ती है। अभी तक यह आदमी बेबूझ है। अभी तक इसके कई कोने अज्ञात हैं। अभी तक हम इसे पूरा का पूरा समझने में सफल नहीं हो पाए। अभी भी कुछ न कुछ हिस्से ऐसे हैं, जो हमें अंधेरे में ले जाते मालूम पड़ते हैं; इसलिए चर्चा जारी है। नई थीसिस, नये शोध ग्रंथ, नये शास्त्र लिखे जाते हैं। जीसस पर कोई लाखों किताबें लिखी हैं। और लोग लिखते ही चले जाते हैं। ऐसा लगता है कि यह आदमी हल नहीं हो पाएगा।

महावीर पर इतनी किताबें नहीं लिखी जाती। क्योंकि महावीर का जीवन सीधा-साफ है। हम उनसे परिचित हो गए। सच तो यह है कि महावीर के संबंध में बहुत लिखने को है ही नहीं। थोड़े से तथ्य हैं और उनको हमने चुकता कर लिया इसलिए उन्हीं-उन्हीं को जैन-बार-बार लिखे जाते हैं--कुछ है भी नहीं उनमें लिखने को।
लेकिन जीसस ज्यादा बेबूझ मालूम पड़ता है। क्योंकि किसी भी खांचे में बिठाना मुश्किल है। वेश्या के घर में ठहर जाता है। चोर के साथ रुक जाता है। जुआरी और शराबियों के साथ दोस्ती बना लेता है। इसका कुछ भरोसा नहीं। शुरू से ही कहानी गड़बड़ हो जाती है। ऐसी मां को पैदा हो जाता है, जो कुंआरी है। उपद्रव शुरू हुआ और अंत तक चलता जाता है। कुंआरी मां से पैदा होता है। और फांसी तक बहुत सेनसेशनल है। सारी कथा! और सारी कथा में कौन हैं जो कि अछूते रह गए हैं, जिनको कि समझना मुश्किल है। महावीर को हमने निपटा लिया है; सीधा-साधा जीवन है! हमने उन्हें एक ढांचे में बिठा दिया है। राम को हमने एक ढांचे में बिठा दिया है; सीधा-साधा जीवन है। कृष्ण को हम नहीं बिठा पाए इसलिए गीता पर टीकाएं लिखी जाती हैं। और कृष्ण पर चर्चा जारी रहेगी। हमारी पूरी कोशिश है कि हमारी जानकारी से बड़ा जगत न हो। जहां-जहां हम पाते हैं, हमारी जानकारी से बड़ा है, वहीं हम ठिठक जाते हैं। और ध्यान रहे, जानकारी से बड़ा है। तुम्हारा जानना है ही क्या? जानने को अनंत शेष है।
और तुम अगर अनजान अपरिचित से भयभीत हो, तो तुम सत्य को कभी भी न जान पाओगे। इसलिए हम घूंघट डाल लेते हैं। जो-जो हमारी जानकारी के बाहर पड़ता है, उसको हम घूंघट से परदा कर लेते हैं। हम घूंघट के भीतर अपनी दुनिया को सम्हाल लेते हैं, जो हमारी जानकारी है, हमारी सीमा है, घूंघट के बाहर उसको डाल देते हैं, जो हमारी सीमा के बाहर है।
मनसविद कहते हैं, इसीलिए हमारे भीतर चेतना दो हिस्सों में खंडित हो
गई हैः एक जिसको चेतन, कांशयस कहते हैं; दूसरा जिसको अनकांशस कहते हैं। उन दोनों के बीच में जो परदा है, वही घूंघट है।
चेतना तो एक है। लेकिन हमने उसके छोटे साफ सुथरे हिस्से को, जंगल के
एक कोने को साफ कर लिया है। झाड़ काट दिए, सीमा बना ली, फेंसिंग लगा ली। छोटा सा हिस्सा, दसवां हिस्सा हमने अपनी चेतना का, साफ-सुथरा कर लिया है। वहां नीति है, धर्म हैं, आदर्श हैं, सिद्धांत हैं, शास्त्र हैं, गुरु हैं, मंदिर, पूजा, प्रार्थना--वहां हमने सब जमा दिया है। उसने नौ गुना बड़ा अनंत विस्तारवाला भीतर अचेतन हैः उसके और इस चेतन के बीच हमने पर्दा डाल दिया, ताकि वह दिखाई पड़े... क्योंकि हमारे भी तर्क वही हैं जो शुतुर्मुर्ग दुश्मन को आता देखकर रेत में सिर को छिपा कर खड़ा हो जाता है और सोचता है, जो दिखाई नहीं पड़ता वह है नहीं। यही तो हम भी कहते हैं, कि परमात्मा पहले दिखाओ तब हम मानेंगे। जो दिखाई पड़ता है, वह है; जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह नहीं है! शुतुर्मुग बिल्कुल नास्तिक है, पक्का! वह सिर को छिपा लेता है रेत में। वह कहता हैः न दुश्मन दिखाई पड़ता, न हो सकता है। हो तो दिखाओ!
डर है हमें, तो हमने पर्दा कर लिया, और हम साफ-सुथरे जमीन में रहते हैं। कभी-कभी अचेतन धक्के देता है। कभी-कभी कहें से घूंघट सरक जाता है। कहीं से व्यवस्था टूट जाती है। तो उस आदमी को हम पागल कहते हैं कि यह आदमी पागल हो गया। लेकिन हमें पता नहीं कि वह पागल हो ही इसलिए गया है कि उसकी जानकारी की सीमा में अज्ञात प्रवेश कर गया।
मैं एक किताब पढ़ रहा हूं एलीवेसेल की--एक यहूदी विचारक। दूसरे महायुद्ध में जर्मनी में उसके मां-बाप, भाई-बहन सब मारे गए। अकेला वह किसी तरह बच निकला--छोटा सा लड़का! तो वह अपनी यात्रा का वर्णन कर रहा है कि जब उन्हें एक यात्रा की ट्रेन में, एक शिविर में ले जाया गया, जहां सभी को जला दिया जाना है... सब शक्ति हैं, लेकिन कोई उपाय नहीं है भागने का। और लाखों लोग हिटलर ने जलाये। उसने बड़ी-बड़ी भट्ठियां बनवाई, ऐसी भट्ठियां कभी नहीं बनाई गई।
तैमूर, चंगेज जब बचकाने साबित हो गए। क्योंकि उसने ऐसी भट्ठियां बनवाई, जिसमें दस हजार लोग एक साथ डाल दो और राख हो जाएं, एक सेकेंड में। विद्युत की भट्ठियां! ट्रेन उस तरफ बढ़ रही है। सब लोग परेशान हैं। लेकिन आदमी अपने को किसी तरह आश्वासन देता है कि कुछ न कुछ हो जाएगा; कोई चमत्कार

होगा, आज्ञा रद्द हो जाएगी; ऐसा होगा, वैसा होगा... । लोग चर्चा कर रहे हैं और बंद कारागृह जैसी ट्रेन में जा रहे हैं।
एक स्त्री पागल हो गई। एक छोटा बच्चा और स्त्री, वे दोनों हैं, वे पागल
हो गए। वह बेटा तक उसे समझाने की कोशिश करता है कि मां, घबड़ाओ मत, जल्दी पिताजी से मिलना होगा होगा। चिल्लाओ मत, रोओ मत, जल्दी सब ठीक हो जाएगा! और वह स्त्री बार-बार चीखती है कि देखो, लपटें दिखाई पड़ रही हैं! देखते हो, चिमनी आकाश में उठी है! लोग एकदम घबड़ाकर, यह जान कर कि वह पागल है, खिड़की से झांककर देखते हैं। न कोई चिमनी है, न कोई लपटें उठी जा रही हैं, न कोई लपटें दिखाई पड़ रही हैं। फिर उसको लोग डांटते हैं कि तू चुप रह। पर उसका पागलपन बढ़ता जाता है। फिर लोग उसे मारते हैं, चुप करने को। उसे कितना ही मारते हैं, लेकिन वह खिलखिला कर हंसती, वह कहती, तुम मुझे कितना ही मारो, लेकिन चिमनी है, लपटें उठ रही हैं, हजारों लोग जल रहे हैं! तुम्हें बास नहीं आती? लोग डर के मारे सूंघते हैं, लेकिन कोई बास नहीं है। फिर लोगों के पास एक ही उपाय है--जब भी वह चिल्लाती, क्योंकि वह उनके भीतर के भय को भी जगाती और अचेतन उनका भी चेतन में प्रवेश करता है। वह भी घबड़ा तो रहे हैं खुदः पता नहीं, क्या होने को है! और यह औरत एक और मुसीबत हो गई। यह घाव को छूती है बार-बार। तो वे उसके सिर पर डंडों से मारते हैं। वह जब बेहोश हो जाती तो चुप रहती है, और जब होश में आती है, तब वह फिर खिलखिलाकर हंसती है और कहती है देखो, सचेत हो जाओ, भाग खड़े होओ, तभी वक्त है! मगर धीरे-धीरे लोग समझ गए कि वह पागल है; उसकी बातों पर कोई ध्यान देने की जरूरत नहीं।
तीसरे दिन सुबह ट्रेन जब स्टेशन पर जाकर लगी शिविर में और लोगों ने बाहर देखा, तो चिमनी जल रही है, और लपटें उठ रही है। और ठीक जैसा वर्णन वह स्त्री कर रही थी, वैसी ही लपटें हैं, वैसी ही चिमनी है। और वह पागल थी! और वे सब होश में थे।
पागल को अक्सर वह बातें दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है जो तुम्हें दिखाई नहीं पड़तीं। और पागल को अक्सर भविष्य झांकने लगता है, जो तुम्हें नहीं झांकता। और पागल को ऐसे सत्य अदभुत होने लगते हैं, जो तुम्हें नहीं होते। लेकिन कोई पागलों पर ध्यान नहीं देता।
नई शोधें यह कहती हैं कि दुनिया में जितने पागल हैं उनमें से नब्बे प्रतिशत पागल वस्तुतः पागल नहीं हैं; उनके चेतन और अचेतन के बीच का पर्दा टूट गया है। और सारा मनोविज्ञान इतनी ही कोशिश करता है कि पर्दे को फिर से बिना दे, तो वह फिर सामान्य आदमी हो जाए। पर्दा तो उठाने को कबीर भी कहते हैं। तो दुनिया में पर्दा उठाने के दो ढंग है।
एक तो यह है कि पर्दा तुम्हारी समझ के बिना उठ जाए, तो तुम पागल हो जाओगे; अगर तुम्हारी समझ के साथ उठ जाए तो तुम परमहंस हो जाओगे। अगर पर्दा अपन-आप किसी तरह सरक जाए तो अचेतन टूट पड़ेगा तुम्हारे चेतन पर। अंधेरा भर जाएगा तुम्हारी रोशनी से भरे घर में। तुम्हारी सब सीमाएं अस्त-व्यस्त हो जाएंगी, भूकंप आ जाएगा। तब तुम विक्षिप्त हो जाओगे। और अगर होशपूर्वक, जुगत से तुम खुद ही घूंघट को उठाओ--होशपूर्वक, जानकर, समझपूर्वक एक-एक कदम उठाओ--तो तुम विमुक्त हो जाओगे। विक्षिप्त या विमुक्त--दो घटनाएं घट सकती हैं पर्दे के टूटने से। शायद हम इसलिए डरते भी हैं कि घूंघट को उठाया और कहीं पागल हो गए... !
मैंने जो ध्यान की विधियां खोजी हैं, वह सब ऐसी हैं जिनमें तुम जुगत
से पर्दा उठा सको। वह सब समझपूर्वक पागल होने की विधियां हैं।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, यह क्या पागलपन करवा रहे हैं। मैं उनको कहता हूं, जानकर ही करवा रहा हूं। यही तुम्हारा भय है कि पागल न हो जाओ। तो मैं तुम्हें जानकर करवा रहा हूं ताकि तुम जानकर पागल हो सको, जानकर वापिस लौट सको। जानकर चेतन में आ जाओ और जान कर अचेतन में चले जाओ, बीच का घूंघट हटाने की कला तुम्हें आ जाए। फिर तुम कभी पागल न हो सकोगे। इसलिए परमसंतों में और पागलों में थोड़ा सा तालमेल होता है। और अक्सर लोगों को वे पागल मालूम पड़ते हैं--अक्सर पागल मालूम पड़ते हैं। एक बात का तालमेल होता है कि दोनों में घूंघट मालूम पड़ते हैं--अक्सर पागल मालूम पड़ते हैं। एक बात तालमेल होता है कि दोनों में घूंघट उठ गए। पागल का अचेतन में

उठा गया हैं। परमहंस का जानबूझ कर उठाया गया है। इसलिए दोनों में एक बात समान है कि दोनों के घूंघट हट गए हैं।
अगर तुम पागल होने से बचना चाहो तो परमहंस होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। क्योंकि तुम जहां खड़े हो वहां किसी भी दिन घूंघट टूट सकता है। तुम ठेठ बीच में खड़े हो। और तुम अगर अनजाने गिर गए पागलपन में तो तुम्हें वापिस लाना बहुत असंभव है। इसके पहले कि पागलपन में प्रवेश हो जाए, तुम खुद ही जाग जाओ और पागलपन में से गुजर जाओ। होशपूर्वक जो पागलपन में गुजर जाता है वह परमहंस हो जाता है। होशपूर्वक पागल हो जाना परमहंस होने की कला है।
कबीर कहते हैं, घूंघट के पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे।
घट-घट में वह साईं रमता, कटुक वचन मन बोल रे।
घट-घट में, कण-कण में, एक का ही वास है। जीवन तो एक है। कहीं वृक्ष हो गया, कहीं चट्टान है, कहीं चांद तारा है; कहीं पशु-पक्षी है, कहीं मनुष्य है; कहीं विक्षिप्त है, कहीं विमुक्त है। जीवन तो एक है; रूप अनेक हैं। और सब रूपों के भीतर छिपा निराकार तो एक है। उसी से सब रूप पैदा होते हैं और सभी उसी में खो जाते हैं।
इसलिए कबीर कहते हैं, शत्रु को देखना बंद कर दो, शत्रु यहां कोई भी नहीं। अजनबी यहां कोई भी नहीं, अपरिचित यहां कोई भी नहीं... वही है! चोर में भी वही, साधु में भी वही। पापी में भी वही, पुण्यात्मा में भी वही। तो तू कटुक वचन मत बोल रे।
कटुक वचन मत बोल रे तो प्रतीक है कि तू एक कठोर शब्द भी मत बोल। तू क्रोध को बीच में मत ला। घृणा को बीच में मत ला। र ईष्या, वैमनस्य को बीच में मत ला। क्योंकि घृणा तू किसको करेगा, क्रोधी तू किस पर होगा? वही एक है!
लेकिन यह तो घूंघट को सरकाने की विधि है। हम क्या करते हैं? हम तो घूंघट को मजबूत करते हैं। हमारी आम दृष्टि यह है कि सारी दुनिया हमारी दुश्मन है। चाहे तुम जानकर सोचते हो या नहीं, लेकिन तुम मानते हो कि सारी दुनिया तुम्हारी दुश्मन है। इस बड़ी, दुश्मनों की दुनिया में तुमने थोड़ा सा परिवार बना लिया है। पत्नी है, बच्चे हैं--ये अपने हैं, बाकी सब पराए हैं। यह परिवार भी धीरे-धीरे छोटा होता जाता है। कभी सौ पचास लोग एक परिवार में रहते थे, वे अपने थे; अब परिवार में पांच लोग बचे हैं। पति है, पत्नी है, बच्चे हैं--वे भी पक्के मालूम नहीं पड़ते कि अपने हैं; क्योंकि तलाक हो सकता है, पत्नी किसी और की हो सकती है। वस्तुतः अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम पाओगे कि तुम अकेले ही बचे हो। सारी दुनिया दुश्मन है! और तुम्हें सारी दुनिया से लड़ना है!
और यह शिक्षा, संस्कृति, समाज के संस्कारों का परिणाम है। क्योंकि सिखायी जा रही है प्रतिस्पर्धा, काम्पटीशन, लड़ो! क्योंकि तुम्हें भी वही जाना है जो दूसरों को पाना है। चीजें कम हैं, संघर्ष जरूरी है। एक-दूसरे की गर्दन को काटे बिन पहुंचोगे कैसे! एक-दूसरे को सीढ़ी बनाओ! एक-दूसरे के सिर पर पैर रखो और ऊपर चढ़ो! ऊपर चढ़ने का एक ही उपाय है कि लड़ो! कि अगर तुम जरा चूके, जरा शिथिल हुए, विनम्र हुए, भटक जाओगे, फिर पहुंच न पाओगे। संघर्ष कठिन है। और हर आदमी दुश्मन है।
जब हर आदमी दुश्मन दिखाई पड़े तो पर्दा, घूंघट मजबूत होता जाएगा। तब तुम जब तक कारण न मिल जाएं, किसी को मित्र नहीं कहते। लेकिन शत्रु तो सब हैं ही--अकारण। जब तक बिल्कुल सिद्ध न हो जाए कि यह मित्र है, तब तक तुम किसी को मित्र नहीं मानते। लेकिन शत्रु बिना सिद्ध किए सभी हैं।
कबीर ठीक उलटी बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं कि जब तक सिद्ध न हो जाए
कि शत्रु है तब तक तो कम से कम मित्र देखो! लेकिन बड़े मजे की बात है, एक आदमी चोरी कर ले तुम्हारी, सारी मनुष्यता चोर हो जाती है। उस दिन से फिर तुम्हारा मनुष्यता पर विश्वास टूट जाता है। चार अरब मनुष्य हैं, और एक आदमी ने चोरी कर ली, और चार अरब मनुष्य चोर हो गए! अब तुम किसी पर भरोसा नहीं कर सकते। जिसने चोरी की उस पर मत करे, एक को छोड़ दो; लेकिन एक को छोड़कर जो बचते हैं, चार अरब मनुष्य, इन्होंने तो कुछ नहीं किया।

एक मुलाकात ने तुम्हारे साथ कुछ बुरा कर दिया, सारे मुसलमान बुरे हो गए! एक हिंदू ने तुम्हें धोखा दे दिया, सारे हिंदू खराब हो गए। एक जैन बेईमान निकल गया, सारे जैन बेईमान हो गए। जैसे तुम तैयार ही बैठे हो सभी को दुश्मन मानने के लिए! एक सिद्ध कर देता है, सब सिद्ध हो जाते हैं। लेकिन एक आदमी अच्छा हो, उससे कुछ नहीं होते सिद्ध। यह बड़े मजे की बात है। एक मुसलमान तुम्हें कितना ही सहायता दे, और कितना ही अच्छा हो, साधु हो, मृत्यु के क्षण में दांव पर अपने को लगा दे, तो भी सब मुसलमान साधु नहीं होंगे। तुम कहोगे, यह अच्छा आदमी, बाकी सब बेईमान।
मैं यह कहना चाह रहा हूं कि तुम मानकर ही चलते ही हो कि सब शत्रु हैं।
और जब तुम यह मानकर चलते हो, तो तुम्हारा घूंघट मजबूत होता है। इस घूंघट को तोड़ने का उपाय है कि तुम दूसरे के प्रति जो दुर्भाव है, इसे गिराओ। महावीर दुर्भाव के गिराने को अहिंसा कहते हैं। बुद्ध दुर्भाव के गिराने को करुणा कहते हैं। क्राइस्ट दुर्भाव को गिराने को सेवा कहते हैं। वे सब शब्दों के भेद हैं। एक बात पक्की है कि दूसरे में तुम दुश्मन मत देखो; क्योंकि घट-घट में साईं रमता! वह एक ही सब में रमा हुआ है, तुम उसको ही देखो। वही प्रियतम सब में छाया हुआ है। सब हृदय की धड़कनों में, सब श्वासों में की श्वास में!
कटुक वचन मत बोल रे!
धन जोवन को गर्व न कीजै, झूठा पचरंग चोल रे।
अकड़... ! बहाने अनेक, अकड़ एक है। कोई धन से अकड़ा है, कोई पद से अकड़ा है। कोई ज्ञान से अकड़ा है, कोई त्याग से अकड़ा है। कोई इसलिए अकड़ा है कि मैं जवान हूं। कोई इसलिए अकड़ा है कि मैं शक्तिशाली हूं। जितनी अकड़ उतना घूंघट मजबूत। जितना अहंकार, उतना घूंघट कमजोर। तो अकड़ करने-योग्य भी क्या है? जवानी रुकती कहां? तुम अकड़ भी न पाओगे, जवानी चली जाएगी! हवा का झोंका है-- आया और गया! और जो सदा नहीं रहनेवाला उस पर अकड़ना क्या!
अब यह बड़े मजे की बात है कि जिन्होंने उसे खोज लिया जो सदा रहेगा, वे अकड़ते ही नहीं; और जिनके हाथ में हवा के झोंकें बंध हैं, मुट्ठी बंधे हुए हैं हवा के झोंके पर, वे अकड़े जा रहे हैं!
धन का क्या करोगे? धन से क्या पा लोगे? ... क्षुद्र मिल सकता है, मिलता है! विराट तो खरीदा नहीं जा सकता।
अकड़ क्या है।
धनी से ज्यादा गरीब आदमी कहां है! धन है पास में, और तो कुछ भी नहीं है।
तो धन बोझ ही हो जाएगा। और कितनी देर पास में होगा! आज है, कल नहीं होगा। मृत्यु तो छीन ही लेगी। जवानी... कितने लोग तुमसे पहले जवान नहीं रहे! कितने लोग जवानी में अकड़े नहीं! ... और कितने लोगों ने जवानी में ऐसा नहीं समझा कि बस, अद्वितीय हैं वे! जैसे सदा यह जवानी रहेगी! हवा का एक झोंका, या पानी की एक लहर...
समुद्र के किनारे जाकर देखो, कोई पानी की लहर बड़े जोर से उठती है, बड़ी अकड़ कर उठती है--उठ भी नहीं पाई कि गिरना शुरू हो जाती है।
इधर तुम जवान हो भी नहीं पाए कि बुढ़ापा आना शुरू हो जाता है; जवानी जैसे बुढ़ापे के आने का ढंग है; जवानी जैसे द्वार है। जिससे बुढ़ापा आता है किस बात से अकड़े हो? जीवन से अकड़े हो? इस जीवन के पीछे सिवाय मौत के और कुछ भी नहीं है। यह सारा जीवन जाएगा तो मौत के गढ़े में। सब रास्ते रोम जाते हों या न जाते हों, मरघट जरूर जाते हैं।
कबीर का एक वचन हैः ई मुर्दन के गांव। कबीर कहते हैं, यह गांव, जहां तुम बसे हो, तुम समझते जीवन है? मुझे दिखाई पड़ता है, तुम सब मुर्दे हो। मुर्दे ही हैं--क्यू में खड़े; जब जिसकी बारी आ जाए। कोई जरा जल्दी, जो क्यू में आगे था। और बड़ा मजा यह है कि क्यू में आगे पहुंचने की कोशिश कर रहे हैं कि किस तरह नंबर एक खड़े हो जाएं। मुर्दे हैं! मरना ही है जब यहां, तो इन बस्तियों को तुम बस्तियां मत कहो, मरघट कहो। दूर-अबेर है... क्योंकि मरघट पर जगह खाली नहीं है। वहां लाइन लगानी पड़ती है। जब तुम्हारा समय आएगा, सुविधा होगी, कब्र खाली मिलेगी, तुम भी पहुंच जाओगे। तुम जा कहां रहे हो-- सिवाय मृत्यु के और कहीं भी नहीं! रास्ते अलग-अलग दिशाएं भिन्न-भिन्न, हाथ तो मौत आती है। गर्व करने योग्य है भी क्या!

धन जोवन को गर्व न कीजै... क्योंकि अगर इसका गर्व किया, अकड़े तो पर्दा मजबूत होगा। अगर तुमने देखा कि यह सब पानी पर खींची गयी लकीर है, खिंच भी नहीं पाती और मिट जाती है, और गर्व छोड़ दिया -- तो तुम पाओगे कि पर्दा हटने लगा, घूंघट सरकने लगा।

धन जीवन को गर्व न कीजै, झूठा पचरंग चोल रे।

और ये जो पांच तत्वों से बनी हुई काया है, यह बिल्कुल झूठी है --सपने जैसी है। माना कि सपना काफी दिन चलता है, स Ÿ साल चलता है, पर समय का ही फर्क है। सपना लगा, घूंघट सरकने लगा।

कभी तुमने ख्याल किया, रात सपने में सात दिन में स Ÿ साल हो सकते हैं। सात मिनट सपना चले, और स Ÿ साल का जीवन उसमें बीत जाए। क्या फर्क है? सुबह उठकर तुम कहो, हद हो गई, पूरा जीवन बचपन से लेकर मरने तक, सात मिनट में बी गया! कभी-कभी कुर्सी पर बैठे तुम्हें झपकी लग जाती है, तब तुमने घड़ी देखी कि बारह बजकर एक मिनट। एक ही मिनट हुआ और भीतर तुमने इतना बड़ा सपना देखा कि जो एक मिनट में कैसा समा गया! तुम उस सपने को बोलो भी, तो भी दस मिनट लगते हैं। अगर तुम किसी को बताओ भी कि क्या देखा, तो भी दस मिनट लगते हैं। वह एक मिनट में समा कैसे गया! एक क्षण में भी पूरा जीवन समा सकता है।

मनोवैज्ञानिक की कुछ खोजें इस बात की तरह इशारा करती हैं कि जीवन की लंबाई से कोई फर्क नहीं पड़ता। कुछ पक्षी हैं, पांच साल जीते हैं। कुछ कीड़े-पतंगे हैं, चार माह जीते हैं। कोई पतंगा है, एक सांझ जीता है --बारह घंटे ज्यादा। लेकिन बारह घंटे में वह उतना ही जी लेता है जितना तुम स Ÿ साल में जीते हो। प्रेम में पड़ता है, बच्चे पैदा करता है, अंडे खाता है, घर-गृहस्थी सम्हालता है, चिंता-फिकर में पड़ता है... संघर्ष, लड़ाई, झगड़े --सब होता है। बारह घंटे में सब पूरा हो जाता और मर जाता है। अगर ठीक समझो तो तुमसे ज्यादा कुशल है, क्योंकि तुम जो काम स Ÿ साल में कर पाते हो, वह बारह घंटे में कर देता है। इफिसियेन्सी तो उसकी ही ज्यादा है। कुशलता तो उसी की ज्यादा है। सब कर देता है। कुछ बचता नहीं करने को, सब पूरा हो जाता है।

स Ÿ साल चले सपना कि सात क्षण चले --क्या फर्क पड़ता है! सपना सपना है। समय की लंबाई सपने को सत्य नहीं बना सकती। फिर सपने और सत्य में फर्क क्या है? सत्य और सपने का एक ही फर्क है। सपना --जो कभी शुरू हो और कभी अंत हो; और सत्य --जो न कभी शुरू हो और न कभी अंत हो।

गर्व ही करना है तो सत्य को खोजो, उसका करो। और जिसने उसको पा लिया वह तो कभी गर्व करता नहीं। तुम सपने हाथ में लिए घूमते हो ओर बड़े अकड़े हुए हो।

धन जीवन को गर्व न की जै, झूठा पचरंग चोल रे।

सुन्न महल में दियना बारि लै, आसन सौं मत डोल रे।।

यह बड़ा बहुमूल्य वचन है। यह सारा है सभी संतों का।

सुन्न महल में दियना बारि ले। भीतर तेरा जो शून्य का भवन है, उसमें ज्ञान का, प्रकाश का, दीया बार ले। वह तेरे भीतर जो शांत शून्यता है, उस शांत शून्यता में तू जागरूक हो जा।

सुन्न महल में दियना बारि लै, आसन सों मत डोल रे।

और उस दीये को जलाने के दो अनिवार्य चरण हैं। एक कि तू अडोल हो जा। आसन सों मत डोल रे।

जापान में झेन फकीरों ने एक पद्धति विकसित की, जिसको वे झाझेन कहते हैं। झाझेन का मतलब होता हैः जस्ट सिटिंग, डूइंग नथिंग। बस बैठ रहना, कुछ करना नहीं। सिर्फ एक ही ध्यान रखना कि आसन डोले न। बड़ी कीमती है।

अगर तुम को बिना डोले थोड़ी देर बैठने में समर्थ हो जाओ, जैसे-जैसे शरीर का डोलना बंद होगा, वैसे-वैसे मन का डोलना बंद हो जाएगा। क्योंकि शरीर और मन दो चीजें नहीं, एक ही चीज के दो पहलू हैं। जब शरीर नहीं डोलता तो मन कैसे डोलेगा। या मन तो डोले तो शरीर का डोलना रुक जाता है। कहीं से भी शुरू करो, लेकिन अडोल हो जाओ। जिसको झाझेन कहते हैं वह, उसीको कबीर ने कहा है, आसन सौं मत डोल रे। बैठ जाओ बिना डोले, कुछ मत करो! एक ही ख्याल रखो कि जरा भी कंपन न बचे। शरीर ऐसे हो जाए जैसे पत्थर की मूर्ति। इस शरीर के पत्थर की मूर्ति होने में ही तुम पाओगे कि पहले मन शिथिल होगा, विचार कम होंगे, कम होंगे...। कभी-कभी एक क्षण को जब शरीर बिल्कुल अडोल होगा, उसी

वक्त विचार भी खो जाएंगे, शून्य हो जाएगा। यह पहला चरण। अडोल होकर तुम शून्म महल का द्वार खोल लोगे।
और तब दूसरा चरण कि उस शून्य महल में जगा जाओ। उसमें पूर्ण विवेक उपलब्ध हो जाओ। देखो, बेहोश को सम्हाल लो। जागरूक! सो मत जाओ।
सुन्न महल में दियना बारि ले, आसन सों मत डोल रे। क्योंकि सो भी सकते हो। अगर सो गए तो चूक गए। क्योंकि अगर तुम बिना देखे ही शून्य हो गए, तो शून्य तुम्हारा अनुभव न हो पाया। तुम दरवाजे तक पहुंचे और वहीं सो गए सीढ़ियों पर, महल में प्रवेश न हो पाया।
गहरी निद्रा में यही घटता है--शरीर अडोल हो जाता है। तुमने ख्याल किया होगा जिस दिन नींद ठीक आती उस दिन तुम करवट बहुत बदलते हो। जिस दिन नींद ठीक आती है, उस दिन करवट कम बदलते हो। जिस दिन नींद सच में ही ठीक आती--जिसे कहते हैं घोड़े बेचकर सो गए--उस दिन तुम करवट बदलते ही नहीं। क्योंकि शरीर अडोल हो जाता है। और जब शरीर अडोल हो जाता है तो भीतर स्वप्न शांत हो जाते हैं; तब सुषुप्ति आती है, जो स्वप्न रहित निद्रा है। उस सुषुप्ति का एक क्षण भी तुम्हें ऐसा लगेगा कि परम आनंद और ताजगी हुई। लेकिन कोई तुमसे पूछे कि सिर्फ सोने से आनंद और ताजगी कैसे हो गई, तो तुम भी न बता पाओगे। तुम द्वार तक पहुंच गए थे सुन्न महल के, लेकिन सोये थे, दरवाजे से वापिस आ गए, भीतर प्रवेश न कर पाए।
पतंजलि ने कहा, समाधि और सुषुप्ति में एक ही अंतर है, अन्यथा दोनों समान है। वह अंतर है कि सुषुप्ति में तुम्हें होश नहीं होता, समाधि में होश आता है; अन्यथा सुषुप्ति ठीक समाधि जैसी है। क्योंकि ठीक पहला चरण तो वही है कि शरीर बिल्कुल अडोल हो जाए, मन बिल्कुल शून्य हो जाए। और दूसरा चरण यह है कि तुम जाग जाओ, और होश से भर जाओ। फिर सुषुप्ति समाधि हो गई। फिर सोना ही परम जागना हो गया।
सुन्न महल में दियना बारि ले, आसन सों मत डोल रे।
जागू जुगत सों, रंगमहल में पिय पायो अनमोल रे।
जागू जुगत सों, जागने की जुगत की तरकीब से, पिय पायो अनमोल रे!
सुन्न महल में दियना बारि ले, आसान सों मत डोल रे।
जागु जुगत सों रंगमहल में, पिय पायो अनमोल रे।
और फिर जागा जा वहां, फिर होश से देख उस शून्य के महल को। तत्क्षण वह शून्य का महल रंगमहल हो जाता है। जागते ही शून्य नहीं रह जाता। परम भोग का द्वार खुल जाता है, परम आनंद का! इसलिए रंगमहल हो जाता है। राग-रंग, अनंत राग-रंग! क्योंकि जीवन एक उत्सव है। और परमात्मा सदा नाच रहा है, सदा गीत गा रहा है। परमात्मा एक आनंद है। वह आनंद का ही नृत्य है। तो जैसे ही तुम जागोगे, शून्य महल तत्क्षण रंगमहल हो जाता है।
जागू जुगत सों रंगमहल में, पिय पायो अनमोल रे।
और न केवल शून्य का महल रंगमहल हो जाता है, उस रंगमहल में प्रियतम से मिलने हो जाता है।
कहे कबीर आनंद भयो है, बाजतम अनहद ढोल रे।
कबीर कहता है, परम आनंद है, और ऐसा ढोल बज रहा है, ऐसा संगीत बज रहा है,
जो अनहद है।
अनहद बड़ा कीमती शब्द है। अनहद का मतलब है, जिसकी कोई हद नहीं, जिसकी कोई सीमा नहीं, जो बजता ही रहता है, जो सदा बजता रहा है; तुम जानो या न जानो, जो अभी भी बज रहा है; तुम नहीं थे, तब भी बजता था; तुम नहीं होओगे, तब भी बजता रहेगा! इस जगत का उत्सव तुम्हारे कारण नहीं चल रहा है। अनहद, यह उत्सव चलता ही रहा है। यह उत्सव चलता ही रहेगा! दिन हो कि रात, अंधेरा हो कि प्रकाश, सुबह हो कि सांझ, चांद Ÿारों हों कि सूरज--यह नृत्य चलता ही रहता है! सारा जगत नृत्य लीन है और एक अनहद ढोल बज रहा है।
कबीर उसको ढोल कहते हैं। उसी को उपनिषदों ने ओंकार कहा है। वही नाद, अनहद नाद, एक राग, एक संगीत, बिना किसी के बजाये बज रहा है। क्योंकि अगर कोई बजायेगा तो कभी थक भी जाएगा। कोई बजाएगा तो कभी रुक भी जाएगा। नहीं, बिना किसी के बजाये बज रहा है; कोई बजाने वाला नहीं।
बड़ी गहरी धारणा है, और धारणा यह है कि कोई नाचनेवाला नहीं, नृत्य चल रहा है। क्योंकि नाचनेवाला होगा तो कभी थकेगा, कभी विश्राम करेगा।

अस्तित्व एक नृत्य है--नर्तक वहां कोई भी नहीं। अस्तित्व सृजन है-- स्रष्टा वहां कोई भी नहीं। व्यक्ति कोई भी नहीं है। जिस दिन तुम शून्य महल में प्रवेश करोगे, उसी क्षण तुम्हें दिखा पड़ेगा कि यह अनहद नाद से सदा चल रहा था। तुम बहरे थे। यह शून्य महल तो सदा ही रंगमहल था, तुम अंधे थे। और यह प्रियतम तो तुम्हारे भीतर ही बैठा था।
तुम ही हो प्रियतम, तुम ही हो प्रियतमा! किसी और से तुम्हारा मिलन होने का नहीं है--अपने से ही मिलन होना है!
कहै कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।
और जब तक ऐसा क्षण न आ जाए, जहां तुम भी कह सको, आनंद भयो है, तब तक चेष्टा को शिथिल मत करना। और चेष्टा एक ही है, जुगत एक ही हैः जागु जुगत सों। एक ही चेष्टा है कि तुम जो भी कर रहे हो, होशपूर्वक करो। तुम इतने होशपूर्वक करो, जो भी कर रहे हो कि धीरे-धीरे होश की किरण तुम्हारी नींद में समा जाए। तब तुम्हारी सुषुप्ति समाधि बन जाएगी। तब तुम सोए-सोए जाग जाओगे। तब तुम सोये में जगा जाओगे। तब तुम पाओगेः सो भी रहे हो, जागे हुए भी हो। और जिस क्षण ऐसा घट जाएगा, उसी दिन तुम कहोगेः आनंद भयो है, बजात अनहद ढोल रे।
और जब तक ऐसी घड़ी न जाए, तब तक रुकना मत। क्योंकि बहुत से पड़ाव धोखा देते हैं कि मंजिल हैं। लेकिन जब तक तुम्हारा पूरा प्राण न कह दे कि आनंद भयो है, तुम नाचने न लगो और अनहद ढोल न सुनाई पड़ने लगे, कि सब तरफ राग-रंग है...
समझ लें।
यात्रा के प्रारंभ में आदमी शांति की तलाश करता है। शांति मिल जाएगी-- अगर तुम सुन्न महल में सोया हुए भी प्रवेश कर गए, तो शांति मिल जाएगी। लेकिन वह पड़ाव है, मंजिल नहीं। नींद से भी शांति मिल जाती हैं। इसलिए तो डाक्टर, चिकित्सक, मनोवैज्ञानि, अगर तुम अशांत हो तो ट्रैंकोलाइजर देते है। नींद आ जाए तो शांत हो जाओ। अच्छी नींद आ जाए तो शांति आ जाएगी। पागल का भी एक ही इलाज है उनके पास कि ट्रैंकोलाइजर दें कि वह सो जाए। सो जाए तो शांत हो जाए। सोने से शांति मिल जाएगी। इसलिए धर्म का लक्ष्य शांति नहीं हो सकता। शांति को सिर्फ प्राथमिक तैयारी है। वह तो सुन्न महल है। धर्म तो कभी पूरा होगा, जब वह रंगमहल हो जाए।
इसलिए आनंद लक्ष्य है, शांति नहीं। शांति तो निगेटिव है, नकारात्मक है। शांति का अर्थ है तनाव नहीं। परेशानी नहीं लेकिन इतना क्या काफी है... इतना क्या काफी है कि तुम परेशान नहीं? इतने से तुम कैसे कहोगे, आनंद भयो है? इतना ही कहोगे कि दुख नहीं रहा। लेकिन दुख न होना कोई बड़ी उपलब्धि तो नहीं हुई। यह तो ऐसे ही हुआ कि पैर से कांटा निकल गया, लेकिन फूलों की वर्षा कहां हुई अभी?
शांति नकारात्मक है; वह पड़ाव है। आनंद विधायक है; वह लक्ष्य है। पहले शांति और शांति मिलेगी--अगर तुम, आसन सों मत डोल रे, उसको साध लो।
यहां ध्यान के जो प्रयोग इस समाधि शिविर में चल रहे, उन सब में पहले तुम्हें डुलाने की चेष्टा है, ताकि शरीर डोल ले पूरा, मन भरकर। क्योंकि अगर शरीर में तनाव रह जाए, उ Ÿोजना रह जाए, तो जब तुम शांत खड़े या बैठे होओगे, तो वह उ Ÿोजना चहल-पहल करेगी, शरीर डोलना चाहेगा। इसलिए इन सारे प्रयोगों में पहले पूरी तरह डुला दो शरीर को, ताकि शरीर की आकांक्षा हल हो जाए। और तब तुम अगर थोड़े-से क्षणों को भी अडोल हो गए, बस, शांति का पहला कदम पूरा हुआ। पर यह आधा है। आधी यात्रा हुई; और आधी बाकी है। इसलिए ध्यान का हर प्रयोग उत्सव, अहोभाव में पूरा होना चाहिए। ध्यान के हर प्रयोग के पीछे, शांति ही नहीं, आनंद की रसधार बहनी चाहिए, ताकि तुम नाचो और धन्यवाद दो, और तुम भी कह सकोः कहे कबीर आनंद भयो है, अनहद बाजत ढोल रे। शांति--पहला पड़ाव; आनंद--लक्ष्य, वह अंतिम पड़ाव है। तुम जहां हो वहां अशांति और दुख है। अशाति तो शांति से मिट जाओगे; दुख शांति से न मिटेगा। दुख आनंद से मिटेगा। बुद्ध पहले लक्ष्य की बात करते हैं--शांति, शून्य; दूसरे की बात नहीं करते। बुद्ध का विचार अधूरा है। वेदांत, शंकर, पूर्ण की बात करते हैं--आनंद की; विधायक अहोभाव की। इसलिए वेदांत बुद्ध के विचार से

गहरा जाता है और पूरा है। बुद्ध पहले कदम हैं, शंकर मंजिल हैं। और कबीर ने दोनों को जोड़ दिया है। कबीर संगम हैं।
कबीर कहते हैं, सुन्न महल में दियना बारि ले। यह सुन्न शब्द बुद्ध से आया है, क्योंकि बुद्ध शून्य शब्द का बहुत प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं, शून्य ही सब कुछ है। शून्यता ही सिद्धावस्था है। यह सुन्न बुद्ध से आया है। सुन्न महल में दियना बारि ले। और दियना भी बुद्ध से आया है। क्योंकि वे भी कहते हैं कि दीयो जला लो। आखिरी क्षण भी, मरते वक्त भी, अंतिम वचन भी उन्होंने--अप्प दीपो भव--आनंद को कहा कि तू अपना दया जला ले; अपना दीया खुद हो जा! ये दोनों शब्द बुद्ध से आए हैं। सुन्न महल में दियना बारि ले, आसन सों मत डोल रे। लेकिन शेष हिस्सा वेदांत का है। यह पहला कदम बुद्ध, दूसरा कदम शंकर।
जागू जुगुत सौं रंगमहल में, पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।।
आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
आठवां प्रवचन

संतो जागत नींद न कीजै

दिनांकः 18 नवंबर, 1974; श्री ओशो आश्रम, पूना

सूत्र
संतो, जागत नींद न कीजै।
काल न खाय कलप नहि व्यापै, देह जरा नहि छीजै।।
उलट गंग समुद्र ही सौखे, ससिं ओ सूरहि ग्रासै।
नवग्रह मारि रोगिया बैठे, जल, मंह बिंब प्रगासै।।
बिनु चरनन को दहं दिसि धावै, बिनु लोचन जग सूझै।
ससै उलटि सिंह कंह ग्रासै, ई अचरज को बूझै।।
औंधे घड़ नहीं जल बूड़ै, सूधे सों जल भरिया।
जिहि कारन नल भींन भींन करु, परसादे तरिया।।
पैठि गुफा मंह सब जग देखै, बाहर किकुछ न सूझै।
उलिटा बान पारिघिहि लागै, सुरा होय सो बुझै।।
गायन कहे कवहूं नहिं गावै, अनबोला नित गावै।
नट वट बाजा पेखनि पेखै, अनहद होत बढ़ावै।।
कथनी बदलनी निजुके जोहै, ई सभ अकथ कहानी।
धरती उलटि आकासहि बेधै, ई पुरखन की बानी।।
बिना पियावे अमृत अंचवै, नदिय नीर भरि राखै।
कहहिं कबीर सो जुग-जुग जीवै, राम सुधारस चाखै।।
संतो जागत नींद न कीजै!

दो अर्थ हैं इस वचन में--दोनों ही जरूरी और समझ लेने योग्य। पहला तो साधारणतः हम परिचित हैं कि हम जागे हुए भी सोये-सोये हैं। हमारे जागने में त्वरा, तीव्रता नहीं है। हमारा जागरण ऐसा नहीं है कि लपट हो। हमारा जागरण बहुत ही टिमटिमाते दीये की तरह है। हमारे जागरण में नींद मिश्रित है। उठते हैं, बैठते हैं, चलते हैं, काम भी करते हैं, लेकिन जैसे कोई सोये-सोये चल रहा हो।
एक बीमारी होती है। सोमनाबुलिज्म--नींद में चलने की बीमारी। उस बीमारी का मरीज आंख खुली रखता है। रात उठ जाता है नींद से, काम कर आता है, भोजन कर आता है जाकर चौंके में, वापिस लौटकर सो जाता है। और सुबह उसे याद भी नहीं होती कि रात तो वह चौके में गया। सुबह वह खुद ही चकित होता है। अगर वह घर में अकेला है तो सोचेगा कि भूत-प्रेत हैः कौन रात भोजन कर गया! किसने रात कपड़े फाड़ डाले! वह खुद ही फाड़ लेता है रात। किसने आग लगा दी! किसीने बर्तन फेंक दिये! कोई याद नहीं रह जाती सुबह।
यह जो नींद में जागनेवाले मरीज है, ऐसी हमारी दशा भी है--थोड़ी कम मात्रा में। लेकिन हमारी नींद टूटती नहीं। धीमी-धीमी नींद हम पर छायी ही रहती है। एक गहन आलस्य हमें घेरे हुए है। एक अंधकार हमारे भीतर बना रहता है। और इस नींद का जो प्राथमिक लक्षण है, वह यह कि जो भी हम करते हैं, वहां हम नहीं होते हैं। भोजन कर रहे हैं; यंत्रवत हाथ कौर बना लेता है, मुंह में डाल लेता है। मन हमारा न मालूम कहां भटक रहा है! मन कोई सपने देख रहा है। मन वहां है ही नहीं फिर भी हम कौर बनाते हैं, मुंह में रोटी डाल लेते हैं, चबा लेते हैं, भोजन कर लेते हैं, उठ जाते हैं। देखनेवाला कहेगा कि हम जागे हुए कर रहे हैं। लेकिन हम जागे हुए नहीं कर रहे हैं, हम सोये-सोये कर रहे हैं? जागना तो तभी संभव होता है, जब हमारा पूरा होश वर्तमान क्षण में केंद्रित हो; जो भी कर रहे हम, वहीं हमारा पूरा मन हो। पूरी चेतना हो।
चेतना का वर्तमान से जुड़ जाना जागरण है; और चेतना का वर्तमान से टूट जाना निद्रा है।
नींद को हम नींद इसलिए कहते हैं कि वर्तमान से हमारा पूरा संबंध टूट जाता है। तुम सो रहे हो अपने बिस्तर पर, सोच रहे होः किसी सम्राट के महल

में विश्राम कर रहे हैं! सो रहे हो यहां--सपना देख रहे हो, कलक Ÿा, लंदन, न्यूयार्क का। और तुम जब सपना देखते हो तो तुम्हें क्षणभर भी याद नहीं आती कि तुम अपने घर में, पूना में विश्राम कर रहे हो। सुबह जागकर तुम खुद ही हंसोगे कि बड़ी दूर की यात्रा की, बड़े दूर चले गए।
अपने का अर्थ हैः जहां तुम हो वहां से दूर चले जाना; जो तुम हो उससे दूर चले जाना; जो तुम नहीं हो वह हो जाना; जहां तुम हो वहां पहुंच जाना। असत्य सत्य जैसा दिखाई पड़ने लगे तो सपना!
सत्य, सत्य जैसा दिखाई पड़ जाए तो जागना।
तो हम सब सोये हैं। इस पहले अर्थ को ठीक से समझ लें।
संतों जागत नींद न कीजै! जागते-जागते सोओ मत!
मुल्ला नसरुद्दीन एक प्रवचन में सुनने गया था। जो बोलनेवाला गुरु था,
वह थोड़ा बेचैन हुआ, क्योंकि मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी दोनों ही सामने बैठे थे। और उसकी पत्नी तो थोड़ी ही देर बाद गुर्राटे लेने लगी। और थोड़ी देर बाद अब उसने गुर्राटा लेना शुरू किया, मुल्ला ने अपनी छड़ी उठायी और चलता बना। वह और भी दुखी हुआ, बोलनेवाला। प्रवचन के बाद उसने पत्नी को पूछा, यह तो पूछना ठीक न मालूम पड़ा कि आप सो गयी... क्या मेरा व्याख्यान इतना उबानेवाला था। पर उससे यह न रहा गया कि बिना पूछे कि आपके पति उठकर चले गए, क्या मैंने कोई ऐसा बात कही जिससे उन्हें चोट पहुंची हो? पत्नी ने कहा कि नहीं, आप बिल्कुल निश्चिंत रहें, उन्हें नींद में चलने की बचपन से आदत है।
संतों जागत नींद न कीज! जब जागे हो तब पूरी तरह जागो। इसका एक परिणाम होगा कि जब तुम सोओगे तब तुम पूरी तरह सोओगे। अभी न तो तुम पूरी तरह जाग पाते हो, न पूरी तरह सो पाते हो। तुम्हारे जागरण में नींद बनी रहती है, तुम्हारी नींद में जागरण बना रहता है। सब मिश्रित है--एक कन्फ्यूजन। सब गोलमाल है। तुम एक खिचड़ी हो, एक साफ-सुथरापन नहीं। इसलिए, जो लोग भी जागते में नींद करेंगे, उनकी नींद में जागरण घुस जाएगा। यह स्वाभाविक है। इसलिए सारी दुनिया में लोगों की नींद खोती जा रही है। इस समय बड़े से बड़ा सवाल आदमी के सामने है कि नींद को कैसे बचाया जाए?
हजारों प्रकार के ट्रैंकोलायर हैं, नींद की दवाएं हैं लेकिन सब व्यर्थ होती जा रही हैं। रूस में उन्होंने विद्युत के छोटे-छोटे यंत्र बनाये हैं जिनका उपयोग किया जा रहा है। हम पागल के लिए ही सिर्फ विद्युत के शाक देते हैं। वह भी शाक ही हैं विद्युत के, झटके ही हैं, लेकिन बहुत कम मात्रा में। उस यंत्र को सिर से लगा देते हैं रात, वह यंत्र बिजली फेंकता है मस्तिष्क में, तब नींद आती है। हजारों घरों में वह यंत्र लगा दिया गया है रोजमर्रा के उपयोग की तरह। और मनोवैज्ञानिक का कहना है कि इस सदी के पूरे होते-होते, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल होगा, कम से कम पश्चिम में, जो स्वाभाविक नींद सोता हो; जो कहे कि बिस्तर पर सिर रख लेता हूं और सो जाता हूं। सौ साल बाद लोग भरोसा ही न कर सकेंगे कि एक जमाना था दुनिया में जब लोग बिन कुछ किये सो जाते थे। हम भी भरोसा नहीं कर पाते। जब कोई कहता है कि महावीर या बुद्ध वृक्ष के नीचे बैठे या खड़े-खड़े ध्यान को उपलब्ध हो गए। और जब कोई कहता है, बुद्ध ने कुछ न किया और ध्यान को उपलब्ध हो गए, तो हमें भरोसा नहीं आता।
ठीक ऐसी ही हालत नींद के संबंध में हुई जा रही है--अभी भी हो गई है। जो अनिद्रा से पीड़ित है, इन्सोमेनिया से, उससे कहो, वह तुमसे पूछेगा, वह जगह-जगह पूछता फिरता है कि मुझे नींद नहीं आती, आप कैसे सो जाते हैं? तो तुम कहोगे कि हम कुछ करते नहीं सोने के लिए कोई उपाय, विधि भी नहीं है। हम तो सिर्फ सिर रखते हैं तकिये पर और सो जाते हैं। तो वह कहेगा कि जरूर झूठ बोल रहे हो, क्योंकि सिर तो मैं भी रखता हूं तकिये पर और करवटें बदलता हूं, रात भर उठाता हूं और रखता हूं--नींद नहीं आती। जरूर कोई तरकीब होगी, जो लोग छिपा हैं। जरूर कोई षडयंत्र है मेरे खिलाफः सारी दुनिया सो रही है और मैं जाग रहा हूं!
क्या हो गया है उस आदमी के भीतर जो रात सो नहीं पाता? वह दिन में नींद
कर रहा है। जब वह जागा हुआ है, तब वह नींद कर रहा है। और जब तुम्हारे में नींद चली जाएगी, स्वभावतः तुम्हारे नींद में जागना चला जाएगा। तुम एक

घोलमेल हो जाओगे। तुम्हारे जीवन में कुछ भी साफ-सुथरा नहीं रह जाएगा।
तुम्हारे प्रेम में घृणा घुस जाएगी। तुम्हारी घृणा में प्रेम घुस जाएगा।
तुम मित्र को भी नफरत करोगे। तुम शत्रु को भी प्रेम करोगे। तुम्हारी जिंदगी एक बेबूझ पहेली हो जाएगी।
यह तो पहला अर्थ है कि जागते समय तुम जागना, ताकि सोते समय तुम सो सको।
रात, रात है; दिन दिन है। दिन को पूरी तरह जागना, ताकि रात पूरी तरह सो सको।
लेकिन कुछ भी तुम्हारी जिंदगी में साह-सुथरा नहीं। घर आते हो तो तुम दफ्तर की सोचते हो। दफ्तर जाते हो जब घर का सोचते हो। तुम पागल मालूम होते हो। जब दफ्तर गए हो तब दफ्तर को पूरा कर लो।
मैं एक हाईकोर्ट के न्यायाधीश के घर मेहमान हुआ करता था। जब उनसे निकटता बढ़ गई तो उनकी पत्नी ने एक दिन कहा कि मेरे पति आपके भक्त हैं। एक बात भर उन्हें समझा दें कि न्यायाधीश अदालत में रख आए। रात सोते समय बिस्तर पर भी वे मजिस्ट्रेट बने रहते हैं। हम जैसे नौकर-चाकर हैं, या अपराधी हैं। वे मजिस्ट्रेट होने से नीचे उतरते ही नहीं। सारा घर पागल हुआ जा रहा है उनके मजिस्ट्रेटपन से।
तुम व्यापार को घर ले आते हो। पत्नी के पास बैठते हो, बीच में तिजोरी रखी हैं, खाते बही का ढेर लगा है--फिर से मिल नहीं पाते, प्रेम नहीं कर पाते, बच्चे के साथ खेल नहीं पाते, हंस नहीं पाते। पहुंचे दफ्तर--वहां पत्नी खड़ी है, बच्चे आसपास खड़े हैं।
तुम जो भी करते हो, अधूरा है। तो जो अधूरा लटका रह जाता है। जो हैंगओव्हर, वह तुम्हारा पीछा करता है। जागा हुआ आदमी हर काम को पूरा करता है; पूरे होश से करता है; अपनी समग्र चेतना को दांव पर लगा देता है--वह चाहे क्षुद्र से क्षुद्र काम क्यों न हो। प्यासी लगी है, और वह पानी क्यों न पी रहा हो, चाय क्यों न ले रहा हो--वह होश में चाय लेता है। वह बात को वहीं समाप्त कर देता है। वह आगे-पीछे कुछ हिसाब-किताब बाकी नहीं रखता। वैसा आदमी जागता भी पूरी तरह है, सोता भी पूरी तरह है। वैसे आदमी के जीवन में एक प्रगाढ़ शांति फैल जाती है। उसका कोई भी काम अधूरा नहीं है। मौत अगर अभी आ जाए और उससे कहे, उठो, तो वह तैयार पाएगी, क्योंकि उसको कुछ बचा नहीं है, जो करना है। जो भी उसे करना था, वह हमेशा पूरा कर लिया है।
लेकिन अगर मौत आज तुम्हारे द्वार पर आ जाए, तुम तैयार न पाओगे अपने को। तुम कहोगे, थोड़ी देर... । कल किसी किसी को गाली भी दी, उससे क्षमा मांगनी है। और कल किसी से रुपये उधार लिए थे, उसके वापिस लौटाने है। और न मालूम कितने कल बीत गए हैं, और न मालूम कितने जाल अधूरे रह गए हैं, वे सब पूरे करने हैं। अभी तो वक्त नहीं है।
इसलिए हर आदमी असमय मरता है। सिर्फ जागा हुआ आदमी समय पर मरता है--कभी
भी मरे! तुम यह नहीं कह सकते कि बुद्ध समय के पहले मर गए। बुद्ध समय के पहले कभी करते ही नहीं। क्योंकि हर घड़ी जब भी मौत आए, समय है।
एक अमीर आदमी था। उसने एक बहुत मूल्य तोता पाल रखा था। तोते को दरवाजे
पर लटका रखा था। और उसको सिखा रखा था। कि जब भी मैं बाहर जाऊं, तब तक कहना कि मालिक! हुजूर! स्वामी! जल्दी करिये। वैसे ही बहुत देर हो गयी है। भाग-दौड़ की दुनिया, उसमें उसने तोते को भी भगाने की तरकीब सीखा रखी थी। सीढ़ियां उतरता तो वह तोता फौरन कहता, मालिक, जल्दी करिये, वैसे ही बहुत देर हो गयी। फिर वह आदमी मरा, और जब अर्थी निकाली जा रही थी, तब तोता बोलाः मालिक, जल्दी करिये, वैसे ही बहुत देर हो गई है।
तोते को क्या पता कि अब मालिक मर चुका है! लेकिन मालिक मरा जल्दी ही जल्दी करने में, कुछ भी पूरा नहीं कर पाया। हर चीज में भागा हुआ था। इधर पूरा नहीं हो पाता कि हम भागते हैं दूसरी चीज को पूरी करने; दूसरी पूरी हो नहीं पाती कि तीसरी को पूरा करने... पूरी जिंदगी एक भाग-दौड़ हो जाती है। एक आपाधापी! आखिर में हम पाते हैं, कुछ भी तो पूरा नहीं हुआ।
और ध्यान रखना, अगर तुम्हारे सब काम अधूरे रह गए तो तुम अधूरे रह गए। अगर तुम्हारा सब काम पूरे हो गए तो तुम पूरे हो गए। एक ही पूर्णता है कि सब काम पूरे हो जाए। और एक ही तृप्ति है, जब तुम्हारा सब काम पूरा हो जाता है। तो उस काम के पूरे होने के बीच में एक गहन शांति तुम पर छा जाती है! एक शांति से भरा आकाश तुम पर उतर आता है। वह परिपूर्णता का, फुलफिलमेंट का

आकाश है। वह तृप्ति का, एक संतोष... सब काम पूरा हो गए। लेकिन तुम्हारे तो सब काम पूरे नहीं होते। तुम्हारे क्षुद्र काम पूरे नहीं होत। वह भी तुम्हारा पीछा करते हैं। खाते वक्त तुम भागे हुए हो। किसी तरह खा लिया--अब सड़क पर तुम भोजन के संबंध में सोच रहे हो! प्रेम करते वक्त किसी तरह प्रेम कर लिया, जल्दी की, अब रास्ते पर तुम दूसरी स्त्रियों को, पुरुषों को देख रहे हो और प्रेम की कामना उठ रही है। तुम्हारा सब अधूरा है।
अधूरापन तुम्हारा रोग है। तुम अगर ठीक से स्वाद ले लो तो भोजन का विचार न आएगा। तुमने अगर ठीक से प्रेम किया तो वासना तिरोहित हो जाएगी।
जिस चीज को भी हम परिपूर्णता से भोग लेते हैं, उससे छुटकारा हो जाता है।
मुक्ति अनुभव का नाम है। और जो अनुभव अधूरा है, वह तुम्हें बांध रखेगा।
संतों जागत नींद न कीजै।
यह तो पहला अर्थ है। दूसरा अर्थ तुम्हें अभी ख्याल में शायद न आ सके, क्योंकि दूसरा अर्थ तो उन्हीं को ख्याल में आएगा जो ध्यान में गहरे उतर रहे हैं। एक ऐसी घड़ी आती है, जैसा कल मैंने कहा कि समाधि और सुषुप्ति समान हैं। एक ही फर्क है कि सुषुप्ति में गहरी नींद, समाधि में परिपूर्ण जागरण है; बाकी सब एक-जैसा है।
जो लोग ध्यान की गहराई में उतर रहे हैं, उनके ख्याल में आ जाएगी बात।
एक ऐसी घड़ी आती है जब ध्यान सधन के करीब होता है, तो तुम सुषुप्ति और समाधि के बीच की रेखा पर खड़े होते हो। वहां तुम चाहो तो सो भी जा सकते हो, तुम चाहो तो जाग भी सकते हो। पतंजलि ने उसके लिए अलग ही नाम खोज लिया है। वह नाम हैः योग-निद्रा। ठीक जब तुम शांत हो गए--परिपूर्ण शांत हो गए--अभी आनंद नहीं उतरा है--अभी तुम कबीर की तरह नहीं कह सकते कि आनंद भयो है, अनहद बाजत ढोल रे! नहीं, अभी कोई ढोल नहीं बजा नहीं--अभी कोई आनंद नहीं हुआ, अभी अमृत की कोई वर्षा नहीं हुई है, लेकिन तुम शांत हो गए हो! संसार गया, मोक्ष अभी अभी नहीं आया। रात बीत गई है, सूरज अभी नहीं ऊगा--भोर है, मध्य में खड़े हो। इसको हिंदुओं ने संध्याकाल कहा है। इसलिए वह जो संध्याए बनाई हैं उन्होंने... सुबह--रात जा चुकी सूरज अभी ऊगा नहीं--वह प्रार्थना का क्षण है। सांझ--जब सूरज डूब गया, रात अभी आयी नहीं--वह भी प्रार्थना का क्षण है। ये दो संध्याए प्रार्थना के काल हैं। लेकिन ये प्रतीक हैं। ऐसी ही संध्या भीतर घटित होती है। वही असली संध्या है। जब नींद, संसार, अंधेरा जा चुका; सूरज अभी ऊगा नहीं; आनंद अभी हुआ नहीं; अभी ढोल बजा नहीं; संसार का शोरगुल खो गया। एक शांति का संगीत भीतर है लेकिन अभी आनंद नहीं हुआ है। गलत छूट गया है, ठीक अभी आया नहीं। यह किनारा तो चला गया, अभी वह किनारा नहीं आया है--मझधार है। उस हालत में दो संभावनाएं हैंः या तो तुम सो जाओ, क्योंकि शांति इतनी घनी है, नींद बड़ी आनंदपूर्ण होगी। ऐसी नींद तुमने कभी देखी न होगी। वह इतनी गहन होगी। और जब उस नींद से तुम उठोगे तो इतना जाता पाओगे कि जैसे हजारों साल सोये हो इतनी ताजगी है। लेकिन वह नींद खतरनाक है; क्योंकि उस नींद में तुम अगर डूब गए... सुखद है वह नींद, लेकिन अगर डूब गए तो आनंद की जो घटना घटने के करीब थी, वह चूक गयी।
योग-निद्रा बड़ी शांतिदायी है; लेकिन नकारात्मक है। और योग-निद्रा के वक्त अपने को सम्हाल कर रखना बहुत कठिन है। क्योंकि तुम साधारण निद्रा के समय ही अपने को नहीं सम्हाल सकते, जब नींद आती है, जम्हाई उठती है, पलकें झपकी जाती हैं, भारी हो जाती है जैसे पत्थर बंधे हों, तब तुमसे कोई कहे कि जागे रहो एक क्षण और, तो जागना मुश्किल हो जाता है। जब साधारण नींद इतने जोर से पकड़ती है तो वह तो असाधारण नींद है--योग Ÿांद्रा। उस समय तो तुम्हारा रोआं-रोआं इतना शांत होता है, तुम एक शांति के सागर हो गए होते हो। उस समय तो बिल्कुल सो जाने की तबियत होती है। और इतना सुख मालूम होगा उस सो जाने में कि तुम भूल ही जाओगे। शायद तुम यह भी समझ लो कि यही आनंद है, जिसकी कबीर, नानक चर्चा करते हैं।
बहुत से साधन योग Ÿांद्रा तक ही ले जाते हैं। जैसे महेश योगी की ध्यान की विधि, बस योग Ÿांद्रा तक ले जाती है। भावातीत ध्यान जिसे वह कहते हैं-- ट्रान्सन्डेंटल मेडिटेशन--वह योग Ÿांद्रा के आगे नहीं ले जाती। इसलिए पश्चिम में उसका बहुत प्रभाव पड़ा, पूरब में कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पश्चिम

में प्रभाव पड़ा, क्योंकि पश्चिम में नींद बड़ी कठिन हो गई है। पूरब में तो लोग अभी भी मजे से सो रहे हैं। पश्चिम में नींद बड़ी मुश्किल हो गई है। नींद बड़े से बड़ा सवाल है। इसलिए महेश योगी की ध्यान-पद्धति का अमरीका पर काफी प्रभाव पड़ा लोगों को नींद आने लगी। यह कोई छोटी घटना नहीं है, कीमती है। और लोगों ने बड़ा सुख भी पाया।
लेकिन सुख आनंद नहीं है। सुख केवल दुख का अभाव है। बीमारी चली गई, लेकिन अभी स्वास्थ्य का नर्तन नहीं हुआ है। और बीमारी का चले जाना ही स्वास्थ्य नहीं है। स्वास्थ्य एक पाजिटिव, एक विधायक स्थिति है। इसे थोड़ा समझने की कोशिश करें।
अगर आपके शरीर में कोई बीमारी नहीं है, तो चिकित्सक कहेगा, स्वस्थ हो; मैं कोई गड़बड़ नहीं देखता। सब जांच-पड़ताल कर ली, कोई बीमारी नहीं है, ठीक हो। लेकिन आप जानते हो कि ठीक होने और ठीक होने में फर्क है। एक ऐसा ठीक होना है, जिसमें एक वैलबीइंग, एक भीतरी आनंद की भाव-दशा होती है। जैसे भरे- पूरे, फूल ही फूल खिल गए। जैसे धारा जीवन की बाढ़ से भर गई, दोनों किनारे तोड़कर बहने लगी। एक मस्ती स्वास्थ्य की! पैर रखते हैं, लेकिन पैर में एक नृत्य है। बोलते हैं, बोलने में संगीत है। आंख खोलते हैं, आंखों में एक माधुर्य है। शक्ति प्रगाढ़ होकर बह रही है। एक तो स्वास्थ्य की वह दशा है। और एक स्वास्थ्य की वह दशा है, जब कोई बीमारी नहीं है।... तो चिकित्सक बीमारी नहीं पकड़ता; वह कहता है, स्वस्थ हैं। लेकिन आप बिल्कुल ढीले बैठे हैं, मुर्दे की तरह। बीमारी कोई भी नहीं--न सिर दुख रहा है, न पेट दुख रहा है, न हाथ-पैर टूटा हुआ है, न कोई पलस्तर बंधा है--ठीक बैठे हैं; लेकिन कहीं कोई मस्ती नहीं है; कहीं कोई अहोभाव नहीं है। ऐसा नहीं है कि उठें और नाचें, ऐसा नहीं है कि गीत गाएं। ऐसा नहीं है। बस, बैठे हैं--एक सुस्त... मुर्दे की भांति।
मुर्दा भी बीमार नहीं होता। आप भी बीमार नहीं हैं। मुर्दे में भी बीमारी नहीं पाई जा सकती; आपमें भी बीमारी नहीं है। आपका स्वास्थ्य सिर्फ अभाव है, बीमारी की गैर मौजूदगी है। ठीक ऐसी ही घटना योग Ÿांद्रा में घटती है। तनाव खो जाते हैं, मस्तिष्क की संताप की अवस्था खो जाती, चिंता मिट जाती, कोई फिकर नहीं रह जाती। बड़ी शांति मालूम पड़ती है। लेकिन योग-निद्रा समाधि नहीं है; बस समाधि के द्वार तक तक ले जाती है। असली यात्रा उसके आगे शुरू होती है।
इसलिए कबीर कहते हैं, संतों जागत नींद न कीजै... वे साधुओं से बोल रहे हैं, संन्यासियों से बोल रहे हैं। इसलिए मैं भी कबीर पर इतने दिन तक नहीं बोला; पहले साधु और संन्यासी तो मेरे पास हों। तो कबीर पर चुप ही रहा, क्योंकि कबीर पर बोलना है तो संतों से ही बोला जा सकता है, जो ध्यान कर रहे हों। नहीं तो उनकी समझ में ही न आएगा। जो यहां ध्यान में गहरे उतर रहे हैं, उनको ख्याल में आएगी बात। यह भीतर अनुभव हैः सब शांत हो जाता है, सुख मिलता है। इतना काफी नहीं है, रुक मत जाना। अभी मंजिल नहीं आयी; यह भी पड़ाव है। और आगे जाना है!
योग Ÿांद्रा सुखद है, लेकिन वह बुद्धत्व नहीं है; वह अवस्था नहीं है। संसार की विकृति छूट गई, लेकिन अभी परमात्मा का स्वाद नहीं आया है। व्यर्थ हट गया, सार्थक आने का है। उस वक्त अगर झपकी लग गई कि चूक गए, फिर वापिस संसार में आ गए; फिर वही किनारा; दूसरा किनारा हट गया।
संतो जागत नींद न कीजै।
काल न खाय, कालप नहिं व्यापै, देह जरा नहिं छीजै।।
उलट गंग समुद्रहि सोखै, ससिं और सूरहि ग्रासै।
नवग्रह मारि रोगिया बैठे, जल मंह बिम्ब प्रगासै।।
बिनु चरनन को दहं दिसि धावै, बिनु लोचन जग सूझै।
ससै उलटि सिंह कहं ग्रासै, ई अचरज को बूझै।।
कबीर के वचनों में एक विशिष्ट सूत्र है, उसे समझ लें, फिर ये वचन ख्याल में आ सकेंगे। उस विशिष्ट सूत्र का नाम हैः उलटबांसी। उलटबांसी का अर्थ हैः उलटे वचन जैसे। कोई बांसुरी बजाता हो, और एक ऐसा वक्त आ जाए जब कि बजानेवाला तो बांसुरी हो जाए और बांसुरी बजानेवाले हो जाए। सब उलटा हो जाए कि बांसुरी बजानेवाले को बजाने लगे।

उलटबांसी का अर्थ होता है, कि बांसुरी बजानेवाले को बजाने लगी। ऐ ऐसी घड़ी आती है... एक ऐसी घड़ी आती है, जब जीवन का सब भिन्न हो जाता है। उसे थोड़ा समझ लें, तो ये वचन समझ में आएंगे, क्योंकि ये वचन प्रतीकात्मक हैं, और पहेलियों जैसे हैं।... पहेलियों जैसे हमें लगते हैं।
समझें...
आप श्वास लेते हैं। श्वास भीतर जाती, बाहर जाती। आप सोचते हैं, मैं श्वास लेनेवाला हूं। लेकिन कभी आपने इस पर विचार किया कि अगर आप श्वास लेने वाले हैं तब तो आप मर ही न सकेंगे; क्योंकि आप जब तक लेना चाहेंगे, लेते जाएंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन सौ साल का हो गया था। तो लोग उसके पास पहुंचे धन्यवाद देने और उससे पूछने कि तुम्हारी इतनी लंबी उम्र का राज क्या है, हमें भी कोई तरकीब बताओ!
नसरुद्दीन ने कहा, बस सांस लेते रहो।
पर सांसें कैसे लेते रहोगे? अगर रुक गई तो तुम क्या करोगे? सांस तो रुकते ही तुम खो जाओगे; तुम बचोगे ही नहीं जो कि सांस को फिर से ले सके। सांस का बंद हो जाना, तुम्हारा समाप्त हो जाना है। अगर तुम एक क्षण भी बच सको सांस के बाद तो तुम फिर से ले सकते हो, लेकिन तुम बचने ही नहीं। श्वास तुम हो; वह तुम्हारा प्राण है। इधर खोई सांस, उधर तुम खो गए। एक क्षण का भी तो मौका न मिलेगा कि सांस खो गई, तुम्हें पता चले कि सांस खो गई, तुम फिर से ले लो। कोई भीतर रहेगा ही नहीं, जिसके सांस की खबर लग सके। सांस बंद हो गई, यह दूसरों को पता चलेगा, तुम्हें नहीं। घर के लोगों को पता चलेगा, पास पड़ोस के लोग रोने लगेंगे, चिल्लाने लगेंगे कि सांस रुक गई। तुम्हें पता नहीं चलता। तुम्हें पता चलता तो तुम ही रहते, रुकने ही कैसे देते?
अगर सांस की बात को ठीक से समझ लो तो तुम्हें समझ में आ जाएगा कि तुम
ले नहीं रहे हो, सांस घट रही है; तुम लेनेवाले नहीं। तुम कर्ता नहीं हो। तब एक दूसरी दृष्टि है, उसको कबीर कहते हैं कि तुम यह बात ही छोड़ दो कि तुम सांस ले रहे हो; सांस तुम्हें ले रही है। तुम संसार में जी रहे हो, ऐसा नहीं; संसार तुम में जी रहा है। तुम जीवित हो, यह बात ही गलत है--परमात्मा जीवित है। वही तुममें श्वास ले रहा है। तब तो उल्टी बांसी हो गई कि सांस लेनेवाला, लेने वाला नहीं है बल्कि सांस ही तुम्हारा जीवन है।
इससे तुम्हें ख्याल आ सकेगा। मनोवैज्ञानिक एक छोटी-सी तरकीब का प्रयोग करते हैं, जिसे वे गेस्टाल्ट कहते हैं। तुमने कभी बच्चों की बिताबों में चित्र देखे होंगे कि एक मामला रखा हुआ है। अगर तुम गमले को और से देखते रहो तो थोड़ी देर में तुम्हें गमला खो जाएगा और दो आदमियों के चेहरे दिखाई पड़ने लगेंगे जो गमले के पास मिल रहे हैं। उनकी नाक--गमले की कगार; उनका माथा--गमले का हिस्सा है। दो चेहरे, उनके बीच की जो खाली जगह थी, वह गमला मालूम हो रही थी। अगर तुम गौर से देखते रहो उन दो चेहरों को, थोड़ी देर में वे दो चेहरे खो जाएंगे, फिर गमला प्रकट हो जाएगा। अगर तुम और भी गौर से देखते रहो तो गमला फिर खो जाएगा, दो चेहरे प्रकट हो जाएंगे। यह बदलता रहेगा, यह बदलता रहेगा। मजे की बात यह है कि जब तुम गमला देखोगे, तब तुम दो चेहरे न देख पाओगे; हालांकि तुम भलीभांति जानते हो कि चित्र में दो चेहरे भी छिपे हैं। जब तुम दो चेहरे देखोगे तब तुम गमला न देख पाओगे; हालांकि तुम भलीभांति जानते हो कि गमला भी चित्र में छिपा है, क्योंकि मन एक समय में एक ही चीज को जान सकता है। और मन इतना सतत परिवर्तनशील है कि तुम एक गमले को भी बड़ी देर तक नहीं देख सकते; बदलाहट हो जाएगी, चेहरे दिखाई पड़ने लगेंगे; फिर गमला दिखाई पड़ेगा, फिर चेहरे दिखाई पड़ेंगे। जर्मन शब्द है इसके लिए गेस्टाल्ट। और इस तरह की विचारधारा पर एक पूरा शास्त्र निर्मित हो गया हैः गेस्टाल्ट सायकालाजी। वे कहते हैं, जीवन गेस्टाल्ट है।
अगर तुम ऐसा देखते हो कि मैं श्वास ले रहा हूं तो तुम्हारी पूरी जीवन-दृष्टि नास्तिक की होगी। और अगर तुम ऐसा देखते हो कि मुझमें कोई सांस ले रहा है, तुम्हारी पूरी जीवन-दृष्टि आस्तिक की हो जाएगी। इतने छोटे-से फर्क से सारे जीवन का दृश्य बदल जाता है। अगर तुम्हें यह समझ में आ जाए कि कोई

और मुझमें श्वास ले रहा है, तब तुम्हारा अहंकार खो जाएगा। जब श्वास तक हम अपनी नहीं ले सकते, तो और हमारे कर्तृत्व का क्या अर्थ है?
तुम कहते हो, मैं प्रेम कर रहा हूं--वह भी श्वास है। प्रेम तुम्हारे द्वारा किया जा रहा है, तुम कर नहीं रहे हो। क्योंकि अगर तुम प्रेम कर रहे हो, तो मैं कहता हूं यह रही स्त्री, तुम इसके प्रेम में गिर जाओ। तुम कहोगे, ऐसे कैसे गिर जाए? हर किसी स्त्री के प्रेम में तो नहीं गिर जाएंगे। जब घटता है, तब घटता है; जब नहीं घटता तो नहीं घटता। हां, अभिनय करना हो तो बात अलग; लेकिन अभिनय तो प्रेम नहीं है।
तुमने कभी प्रेम किया है या कि प्रेम हुआ है? किया है तो बात अलग होगी, तुम समझोगे कि मैंर क Ÿा हूं। हुआ है, तो तुम समझोगे मैं निमिŸा हूं, र क Ÿा नहीं हूं। मेरे द्वारा किसी और ने प्रेम किया है। तुम अगरर क Ÿा बनना चाहो, तो तुम्हारे प्रेम सिर्फ वेश्या से हो सकता है, और किसी से नहीं और वेश्या से कहीं प्रेम होता है?
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन वेश्या के घर गया। उसने कहा मैं तुम्हें प्रेम करना चाहता हूं। वेश्या ने कहा, करो। उसने कहा, मैं तुम्हें अपने जीवन का दीपक बनाना चाहता हूं। वेश्या ने कहा, बनाओ। उसने कहा कि मैं तुम्हें अपने हृदय में संजो लेना चाहता हूं। वेश्या ने कहा, संजोओ। उसने कहा कि मैं तुम्हारे लिए मर जाना चाहता हूं। वेश्या ने कहा, मरो; लेकिन जो भी करना है जल्दी करो, क्योंकि दूसरे ग्राहक बाहर खड़े हैं। नाटक तो एक बात है; धंधा एक बात है। जीवन को तुम जितना समझोगे, उतना ही पाओगे तुम कि तुमर क Ÿा नहीं हो, घटनाएं घट रही हैं; हैप्पनिंग्स हैं। प्रेम उतरता है, हो जाता है। इसलिए तो बड़ी मुसीबत है प्रेम के साथ। लोग समझाते हैं किसी को कि तुम पति हो, चार बच्चे हैं, पत्नी है, तुम किस पागलपन में पड़े हो? पति को भी समझ में आता है। बात सीधी है, साफ हैः चार बच्चे हैं, पत्नी है--और किसी के प्रेम में पड़ गए हो, नासमझ हो। होश सम्हालो। पति भी होश सम्हालने की कोशिश करता है। लेकिन वह कहता है कि क्या करूं, हो गया! वह यह भी समझता है कि कुछ गलत हो रहा है, फिर भी रोक नहीं सकता। वह यह भी जानता है कि न होता तो अच्छा था। अपने बच्चों और पत्नी का ख्याल भी आता है, लेकिन कर भी क्या सकता है! घटना घट गई! जिम्मेवार हम उसे ठहराते जरूर हैं, लेकिन वह भ्रांति है।
प्रेम की घटना आदमी के हाथ के बाहर है। जब तक कि तुम बुद्धत्व को उपलब्ध न हो जाओ, तब तक तुम्हारे हाथ के बाहर है। और जब तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाते हो, तब एक दूसरा ही आयाम प्रेम का खुलता है। तब तुम किसी के प्रेम में नहीं पड़ते, तुम प्रेम हो जाते हो। तब तुमसे प्रेम मिलता है, बंटता है, बिखरता है; लेकिन तुम किसी के प्रेम में नहीं गिरते। तुम उस दीए की भांति हो जाते हो जो जल रहा है; रास्ते से जो भी निकलता है, उसको भी उसका प्रकाश मिल जाता है। तुम उस फूल की तरह हो जाते हो, जो खिल गया है; उसकी सुगंध, जो भी राहगीर होता है, उसको मिल जाती है। लेकिन अब तुम्हारा तुम पुराना प्रेम नहीं है--जबकि तुम अवश गिर जाते थे; जब कि तुम अपन को परवश समझते थे, जबकि तुम्हें लगता था, अब क्या कर सकता हूं! समझते थे, बूझते थे; बुद्धि कहती थी, ठीक है।
बुद्धि के अपने तर्क हैं, लेकिन हृदय उनको मानता नहीं। तुम दबा भी ले सकते हो, द्वार बंद कर दे सकते हो; बुद्धि की मानकर प्रेम की तरफ न भी जाओ-- तो भी हृदय किसी और के लिए धड़कता है, उसी के लिए धड़कता रहेगा। तुम पत्नी की फिकर करोगे, पैर दबाओगे। बीमारी में चिंता करोगे, आलिंगन करोगे--लेकिन तुम पाओगे, सब झूठा है; सब बुद्धि से कर रहे हैं।
कर्ता तुम हो कहां? न श्वास तुम्हारी अपनी, न प्रेम तुम्हारा अपना, न जीवन तुम्हारा अपना। इसी के कृष्ण ने गीता में अर्जुन से कहा है कि निमिŸा-मात्र हो जा। तू यह छोड़ ही दे ख्याल कि तू कर्ता है। ये जो सामने खड़े हुए योद्धा हैं, ये मेरे लिए तो मर ही चुके हैं। तू तो सिर्फ निमिŸा है। तू सिर्फ धक्का देगा, ये मुर्दे की तरह खड़े हैं और गिर जाएंगे। ये मर ही चुके हैं। इनका मरना निश्चित है। तू नहीं करेगा यह काम कोई और करेगा। ये मरेंगे। कौन मारता है, यह बात गौण है।

जीवन अगर निमि Ÿा है, ख्याल में आ जाए ... । निमि Ÿा शब्द बड़ा बहुमूल्य है। इस शब्द के मुकाबले दुनिया की किसी भाषा में शब्द खोना मुश्किल है। निमि Ÿा पूरब का, हिंदुओं का अपना शब्द है। और बड़ा गहरा है। निमि Ÿा का अर्थ है कि मैं कारण नहीं हूं, नर क Ÿ हूं --मैं तो सिर्फ कहना हूं। मेरे बहाने हो गया! मेरे बहाने न होता तो किसी और के बहाने होता। जो होना है वह होता। बहाने कोई भी होते। खूटियां कोई भी होतीं, जो टंगना है, वह टंगता;; जो घटना है, वह घटता मैं इसमें, बीच में अपने अहंकार को न लाऊं।

अगर तुम्हारा कर्ता का भाव छूट जाए और निमि Ÿा का भाव गहन हो जाए --बस फिर उलटी बांसी समझ में आएगी। क्योंकि फिर सब उलटा दिखाई पड़ने लगेगा। गेस्टाल्ट बदल गया। फिर कल तक तुम जैसा दुनिया को देखते थे, वैसी नहीं दिखाई पड़ेंगी; बिल्कुल उल्टी दिखाई पड़ने लगेगी। उस उलटे की सूचना देने के लिए कबीर ने प्रतीक चुने हैं।

कबीर कहते हैं, काल न खाए कलप नहीं व्यापै, देह जरा नहीं छीजै।

जब तुम्हारा निमि Ÿा का भाव आ जाता है, कर्ता का नहीं ... जब तब तुम कर्ता हो, तब तक कल तुम्हें खायेगा; तब तक मौत घटेगी; तब तक तुम मरोगे। क्योंकि कर्ता का भाव ही मरता है, आत्मा तो मरती नहीं। लेकिन तुम समझते हो, मैं कर्ता हूं, तो मरोगे।

मृत्यु का भय अहंकार को है, आत्मा को नहीं। तुम जब तक समझते हो, मैं, मैं, मैं --और दोहराए चले जाते हो अपने मैं को, सजाए हो, संवारे जाते हो, तब तक तुम्हें मृत्यु डराएगी।

जितना अहंकारी मनुष्य, उतना मृत्यु से भयभीत होगा; जितना निरहंकारी मनुष्य, उतना ही मृत्यु का भय खो जाएगा। और अगर पूर्ण निरहंकार घट जाए, मृत्यु समाप्त हो गयी; क्योंकि जो बचता है, वह मरता ही नहीं। गेस्टाल्ट बदल जाता है।

काल न खोए कलप नहिं व्यापै। ... न तो काल खाता है, न कोई दुख व्याप्तता है। किसी तरह की पीड़ा किसी तरह का संताप नहीं व्यापता। देह जरा नहिं छीजै ... और जरा भी देह छीजती नहीं, जरा भी बुढ़ापा नहीं आता।

पर शरीर का तो बुढ़ापा आता है। यह शरीर तो मृत्यु में आता है। यह शरीर तो नष्ट होता है। लेकिन तुम यह शरीर तभी तक हो, जब तक तुमने मान रखा है कि मैं हूं। जिस दिन तुम छोड़ दोगे यह ख्याल कि मैं हूं, उसी क्षण सारा Ÿ बदल जाएगा। तब तुम शरीर नहीं हो, परमात्मा हो। तब तुम्हारे भीतर जो छिपा है, वह दिखाई पड़ेगा।

और ध्यान रखना, एक ही दिखाई पड़ सकता है, दोनों एक साथ नहीं। जब तक तुम्हें लगता है मैं शरीर हूं, तब तक आत्मा दिखाई न पड़ेगी। जिस दिन तुम्हें दिखाई पड़ेगा मैं आत्मा हूं, शरीर खो जाएगा।

इसलिए तो ज्ञानियों ने कहा है कि संसार माया है। क्योंकि जैसे ही ब्रह्म दिखाई पड़ा, संसार दिखाई नहीं पड़ता। और जब तक संसार दिखाई पड़ता है, ब्रह्म दिखाई नहीं पड़ता। गेस्टाल्ट है। एक ही दिखाई पड़ सकता है। क्षमता तुम्हारी ऐे को ही जानने की है, दो नहीं जान सकते।

काल न खाये, कलप नहिं व्यापै, देह जरा नहिं छीजै। उलट गंग समुद्रहि सोखै --

और हालत बिल्कुल उलटी हो जाती है। हम तो ऐसा देखते हैं कि गंगा सागर में गिर रही है; और कबीर कहते हैं कि सागर गंगा में गिर रहा है।

कबीर के दो वचन हैं। एक वचन हैः हेरत-हेरत हे सखी, रहया कबीर हेराइ। बूंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाइ। यह गेस्टाल्ट का एक पहलू है। कबीर कहते हैः खोजते-खोजते-खोजते कबीर खो गया, बुंद सागर में गिर गई, अब उसे कैसे वापिस पाए। फिर दूसरा, इसके बाद ही लगा हुआ वचन है, और कहता है, हेरत-हेरत हे सखी, रहया कबीर हेराइ। समुंद समाना बूंद में, सो कत हेरी जाइ। और समुद्र बूंद में गिर गया, अब कैसे अपने को खोजूं। एक में वे कहते हैं कि बूंद सागर में गिर गई, कैसे अपने को खोजूं! दूसरे में कहते हैं, सागर बूंद में गिर गया, कैसे अपने को खोजूं! बस ये दो ही पहलू है।

जब तक तुम अपने को मान रहे हो, मैं हूं, तब तक तुम सागर से डरोगे; क्योंकि बूंद सागर में खोयेगी, फिर उसका क्या पता लगेगा। जिस दिन तुम जानोगे मैं नहीं हूं, उस दिन सागर तुम में खोयेगा। बात एक ही है। बूंद सागर

में खोये कि सागर बूंद में खोए, एक ही घटना घटती है; लेकिन दृष्टि बड़ी अलग हो गई। जब तुम खोते हो सागर में, तब घबड़ाते हो; और जब सागर तुममें खो जाएगा तब तुम घबड़ाओगे नहीं; तुम सोचोगे, मेरी संपदा बढ़ती है। जब तक तुम परमात्मा में खोओगे, तुम डरोगे; और जब परमात्मा तुम में खोएगा, तब तुम आनंद से नाच उठोगे।
परमात्मा के संबंध में भी तुम्हारे मन में भय है, क्योंकि तुम्हें लगता हैः हम खो जाएंगे; हमारा अस्तित्व नहीं बचेगा; हमारी आइडेन्टिटी, हमारे तादात्म्य का क्या होगा; हमारा नाम, पता-ठिकाना, सब खो जाएगा! तो ऐसे परमात्मा को पाकर क्या करेंगे, जहां हम खो जाएंगे! लेकिन दूसरा पहलू, जो कि सत्य के ज्यादा करीब हैः तुम परमात्मा में नहीं खोते हो, परमात्मा ही तुममें खोता है; तुम मिटते नहीं, तुम विराट हो जाते हो। बूंद सागर हो जाती है।
कबीर कहते हैं, उलट गंग समुद्रहि सोखै, ससिं और सूरहि ग्रासै। गंगा सागर को पी जाती है; सूरज और चांद को सोख लेती है, समा लेती है अपने में। यह तो इसका ऊपरी अर्थ है। इसका भीतरी अर्थ, क्योंकि सूर्य और शशि चांद और सूरज दो प्रतीक हैं तुम्हारी दो श्वास के। तुम्हारा दायां श्वास का द्वार, सूर्य; तुम्हारे बाएं नाक का द्वार, चंद्र; और इन दोनों से जुड़ी हुई दो नाड़ियां हैं तुम्हारे भीतर--इड़ा, पिंगला; एक सूर्य-नाड़ी, एक चंद्र-नाडी। वे योगियों के प्रतीक हैं।
जब तुम्हारी चेतना निमिŸा-मात्र हो जाती है, जब तुम अपने को कर्ता नहीं मानते हो, तब तुम्हारा अहंकार तुम छोड़ देते हो--तुम कहते ही नहीं, मैं; तुम कहते हो, तू ही है; न तो मैं कभी था, न हूं, न होऊंगा, मैं सिर्फ एक भ्रम था। जब तुम इस भाव-दशा में गहरे उतरते हो, तब सागर बूंद में गिरता है। तब तुम्हारी चेतना सूर्य और चंद्र दोनों को अपने में समा लेती है। अभी तुम श्वास लेते हो और अभी तुम श्वास पर निर्भर हो, अभी श्वास खो जाएगी तो तुम मिट जाओगे। अभी सांस तुम्हारा सहारा है। अभी श्वास के बिना तुम जी न सकोगे। तब, तब तुम चेतना से जीते हो। और श्वास चेतना में लीन हो जाती है। इसलिए समाधिस्थ योगी कभी-कभी बिल्कुल श्वास-शून्य हो जाते हैं। पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि श्वास चल रही है या नहीं चल रही।
तुममें से जो गहरे ध्यान के प्रयोग कर रहे हैं, अपने परिवार के लोगों
को कह देना कि कभी ऐसी घड़ी आ जाए कि तुम बिल्कुल मुर्दे जैसे हो जाओ, तो वे घबड़ा न जाए, क्योंकि श्वास बिल्कुल रुक सकती है। चिकित्सक भी जाकर कह सकता है कि यह आदमी मर गया। क्योंकि श्वास करीब-करीब बिल्कुल तो नहीं रुकती, लेकिन निन्यानबे प्रतिशत रुक जाती है। एक हल्की सी ध्वनि रह जाती है। और जब श्वास बिल्कुल रुक जाती है, तब मन बिल्कुल रुक जाता है।
यह तो तुम्हारे भी अनुभव में आया होगा कि तुम्हारे मन और श्वास का गहरा संबंध है। जब तुम क्रोधित होते हो तो श्वास अलग तरह से चलती है, उद्विग्नता होती है श्वास में; जैसे ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चलती हो; जैसे कि कार में स्प्रिंग न हों और रास्ता गड्ढोंवाला हो, ऐसी श्वास चलती है--जब तुम क्रोध में होते हो। जब तुम कामवासना से भरते हो, तब श्वास और तरह से चलती है; तब विक्षिप्त हो जाती है; तुम पसीने-पसीने हो जाते हो। जब तुम शांत होते हो तो श्वास धीमी चलती है--एक रिदम, एक छंद होता है श्वास में; एक लयबुद्धता होती है। जब तुम बिल्कुल आनंदित होते हो, तब श्वास और ढंग से चलती है। तुम्हारे हर मनोभाव के साथ श्वास बदलती है। और अगर तुम होशियार हो जाओ थोड़े, तुम अगर श्वास को बदल लो, तुम्हारा मनोभाव बदल जाएगा; क्योंकि दोनों एक-दूसरे से जुड़े हैं। दुबारा जब तुम्हें क्रोध आए, तब तुम जरा गौर से जांच कर लेना कि श्वास की गति क्या है, किस ढंग से चल रही है; उसे ठीक से पहचान लेना।
जब तुम दुबारा कभी शांत हो जाओ, तब उसकी भी जांच कर लेना कि श्वास कैसी
चल रही है, शांति की अवस्था में। जब कभी तुम पाओगे कि तुम प्रफुल्लित हो, तब श्वास को नोट कर लेना। और अगर तुम ठीक से श्वास की गति को पहचानने में समर्थ हो जाओ--आनंद के साथ, क्रोध के साथ, सुख के साथ, शांति के साथ--फिर तुम प्रयोग कर सकते हो। क्रोध आने को है, तुम श्वास को क्रोध की गति मत पकड़ने दो; तुम शांत बैठ जाओ और श्वास को गति दे दो, जो शांति में होती है--तुम

अचानक पाओगे, क्रोध तिरोहित हो गया, क्रोध आ नहीं सकता। क्योंकि जब तक श्वास न बदले, तब तक क्रोध शरीर में प्रवेश नहीं कर सकता। अगर तुम श्वास की गति को ठीक से पहचान लोग कि शांति में कैसी होती है, तो चौबीस घंटे उस गति को वैसा ही बनाए रखने की कोशिश करो। तुम पाओगे तुम गहन शांति से भर गए। अगर तुम समझ लोग कि जब तुम प्रफुल्लित होते हो, कैसी श्वास होती है, वैसी ही श्वास को बनाए रखो, प्रफुल्लता झर-झरकर बहती रहेगी।
बुद्ध ने श्वास के और मन के संबंध पर बड़े गहरे प्रयाग किए हैं। और उनको जो ध्यान का प्रयोग है--अनापानसतीयोग--वह सिर्फ श्वास की ही कला है। बस श्वास को देखना, श्वास को पहचानना, श्वास को मनोभावों के साथ संबंधित करना, और फिर जिन भावों को छोड़ना है, श्वास की उन गतियों को पकड़ लेना और उन्हीं को धीरे-धीरे बढ़ाते जाना। तो श्वास के रूपांतरण से चिŸा पूरा रूपांतरित होता है। लेकिन जब चिŸा बिल्कुल ही खो जाता है, तब श्वास भी खो जाएगी। एक छोर श्वास और दूसरा छोर चिŸा--एक ही ऊर्जा के दो छोर हैं।
तो अगर कभी तुम्हारे जीवन में ऐसी घड़ी आ जाए, जब तुम पाओगे कि श्वास बंद हो रही है... मेरे पास बहुत से संन्यासी आकर कहते हैं... तो भय लगेगा। तुम भयभीत मत होना। और घर के लोगों को भी बता देना, क्योंकि घर के लोग तुम्हारी न मानेंगे। अगर तुम मर गए, झूठे भी मरे, और डाक्टर ने कह दिया मर गए, तुम्हारी न मानेंगे।
मैंने सुना है, एक आदमी मरा। मरा नहीं था, सिर्फ श्वास धीमी हो गयी थी। चिकित्सक ने कह दिया, मर गया। उसकी अर्थी सजा ली। मरघट ले गए। मरघट तक पहुंचते-पहुंचते उस आदमी को होश आ गया। तो वह हिला-डुला। लोग बहुत घबड़ा गए। उसने चिल्लाया भीतर से कि खोलो, मैं जिंदा हूं। लोगों ने कहा, यह हो ही नहीं सकता। क्योंकि किसी साधारण चिकित्सक ने नहीं कहा, बड़ा विशेषज्ञ है। तो विशेषज्ञ की मानें कि इस मूर्ख की! सौ आदमी आए थे पहुंचाने। पुरोहित जो आया था, अंतिम संस्कार करवाने, उसने कहा, भाइयो, तुम सब भी मौजूद थे। वह आदमी अंदर से चिल्ला रहा है कि मैं जिंदा हूं, मुझे खोलो--और पुरोहित लोगों का वोट ले रहा है! डेमोक्रेसी के दिन हैं, लोकतंत्र! उसने कहा, तुम सब मौजूद थे। हाथ उठाओ, विशेषज्ञ ने क्या कहा था? किसकी हम मानें? इस मूर्ख की? पढ़ा, न लिखा, अ ब स मालूम नहीं है जिंदगी और मौत का--और कह रहा है हम जिंदा हैं! या उस विशेषज्ञ की, जो लंदन से शिक्षित होकर लौटा है--एफ. आर. सी. एस.है! और लाखों जिंदा, मुर्दा आदमियों का अध्ययन कर चुका है।
लोगों ने, सभी ने कहा और सभी ने हाथ उठाया कि विशेषज्ञ की मानना ही उचित है, इसकी बात का क्या भरोसा। यह आदमी जिंदगी में भी भरोसे का नहीं था, तो मर कर इसकी बात का क्या खाक भरोसा! जला दिया उन्होंने।
लोग विशेषज्ञ को मानते हैं। तो घर के लोगों को भी बता देना कि अगर ऐसी घड़ी आ जाए, और श्वास बंद हो जाए, तो घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं। हिलाने- डुलाने की भी कोई जरूरत नहीं, क्योंकि उससे खतरा हो सकता है। जब तुम्हारी श्वास बिल्कुल शांत हो, कोई जोर से हिला दे, तो शरीर और आत्मा का संबंध टूट सकता है; क्योंकि उस वक्त संबंध नाजुक से नाजुक होता है। उस वक्त तुम अपने शरीर से दूर से दूर होते हो। बस, एक बारीक सी रेखा जुड़ी रह जाती है। अगर कोई हिला दे, तो कठिनाई हो जाएगी।
इसलिए ध्यान की अवस्था में, न तो तुम भयभीत होना भीतर; क्योंकि यही तो परम घड़ी है, जिसकी हम तलाश कर रहे हैं। इसी क्षण की तो खोज है। इसी क्षण में तो तुम्हें अमृत का पता चलेगा। इसी क्षण में तो तुम जानोगे कि शरीर अलग पड़ा है, मैं अलग खड़ा हूं, शरीर भिन्न-मैं भिन्न। एक दफा यह दिख जाए, फिर तुम्हारी जिंदगी वही न हो सकेगी जो कल तक थी, गेस्टाल्ट बदल गया। अब तुम पाओगे परमात्मा ही श्वास लेता है, वही तुममें जीता है। तुम नहीं हो, वही है! तुम सिर्फ उसके वाहन हो। तुम सिर्फ उसके हाथ हो। तुम सिर्फ उसके लिए एक माध्यम हो। जीवन उसका है। तुम बांसुरी हो, बजानेवाला वह है।
और अभी तक तुमने यह समझ रखा है कि बजानेवाला तुम हो। अभी तक तुम सोचते
हो, गीत तुम गा रहे हो। तुम माध्यम हो, गीत वह गा रहा है। अगर बांसुरी को भी थोड़ी अकल आ जाए, और बांसुरी भी थोड़ा पढ़ लिख ले, तो वह भी सोचती होगी कि गीत मैं गा रही हूं; यह आदमी नाहक ही मुंह लगाकर मेहनत कर रहा है। क्योंकि गीत तो बांसुरी से आता है। और बांसुरी कैसे भरोसा करेगी कि इस आदमी से आता है!

इस आदमी का क्या लेना-देना। और बांसुरी कहेगी, मेरे बिना तू गीत बजाकर बता।... तो मैं ही बजा रही हूं।
तुम भी बांसुरी से ज्यादा नहीं हो।
कबीर ने कहा है कि मैं बास की पोंगरी हूं। गीत तेरे, धन तेरी... और समझ रखा है मैंने कि मेरे... उससे ही अकड़ पैदा हो गयी है।
बांस की पोंगरी जो हो गया, वह संत हो गया; फिर कुछ उसे पाने को न बचा।
उलट गंग समुद्रहि सोखै, ससि और सूरहि ग्रासै।
नगग्रह मारि रोगिया बैठे, जल मंह बिंब प्रसासै।।
सब उलटा हो जाता है। नव-ग्रह को रोगी मार देता है। जिनकी वजह से रोगी सोचता था कि मैं रागी हूं, मैं रोगग्रस्त हूं। नव गलत ग्रह जुड़ गए है, इनकी वजह से मैं परेशान हूं!
नवग्रह मारि रोगिया बैठे, जल मंह बिंब प्रगासै। और अब उलटा हो जाता है। पानी के भीतर आग आ जाती है। जल में बिंब प्रकट हो जाता है, प्रकाश हो जाता है।
बुन चरनन को दहं दिसि धावै, बिन लोचन जग सूझै।
और फिर वैसी घड़ी आ जाती है, जब तुम पाते हो कि न तो पैर की जरूरत है।
चेतना दसों दिशाओं बिना पैर के जा सकती है। पैर शरीर को चाहिए। चेतना के लिए कोई स्थान और समय की बाधा नहीं है। बिन चरनन को दहुं दिसि धावै, बिन लोचन लग सूझै।
और सत्य को देखने के लिए इन आंखों को कोई भी जरूरत नहीं है।
महावीर की आंखें बंद हैं। मूर्तियों में देखो। जैनों के दो पंथ हैं-- श्वेतांबर और दिगंबर। उनमें एक झगड़ा है कि महावीर की आंखें खुली रखें कि बंद। श्वेतांबर खुली रखते हैं; दिगंबर बंद। कुछ ऐसे मंदिर हैं जहां दोनों पूजा करते हैं। तो समय बांट लिया उन्होंने। आधे दिन महावीर की आंखें खुली रखते हैं, आधे दिन बंद। तो नकली आंखें ऊपर से लगा देते हैं--खुली। इस संबंध में श्वेतांबर गलत हैं, क्योंकि महावीर की आंखें खुली रखने का कोई भी प्रयोजन नहीं। इन आंखों से सत्य देखा नहीं जाता। ये आंखें तो बंद ही हो जाती हैं। एक भीतर की आंख है, लेकिन वह शरीर की नहीं, वह चेतना की है; वह जागरण की है; वह होश की है।
बिन लोचन जग सूझै... ।
और इन आंखें की जरूरत ही नहीं खोलने की। इनसे तो कोई जगत का सत्य दिखाई नहीं पड़ता। इनसे तो माया ही दिखाई पड़ती है। इन आंखों से तो जो ऊपर-ऊपर है, वही दिखाई पड़ता है। भीतर... भीतर के लिए तो भीतर की आंख चाहिए। आंख तो बंद ही हो जाएगी। ये पैर गति खो देंगे। ये हाथ शक्ति खो देंगे। इनका कोई अर्थ न रह जाएगा। तुम्हारे भीतर जो जीवन की ऊर्जा है, वही ऊर्जा दसों दिशाओं में घूम सकती है; बिना आंख देख सकती है, बिना हाथ छू सकती है। चेतना के लिए, आत्मा के लिए, समय और स्थान की कोई बाधा नहीं है। टाईम
और स्पेस है ही नहीं; वे दोनों शरीर के लिए हैं।
बुद्ध से किसी ने पूछा कि जब आप देह को छोड़ देंगे तो कहां होंगे? तो बुद्ध ने कहाः या तो सब जगह, या कभी भी नहीं। क्योंकि शरीर कहीं होता है-- स्थान में, समय में; आत्मा के लिए न तो स्थान है न समय। जब आप, जैसे-जैसे ध्यान में गहरे उतरेंगे, वैसे-वैसे आप पाएंगे कि न तो स्थान है न समय-- दोनों के अतीत।
ससै उलटि सिंह कंह ग्रासै, ई अचरज को बूझै!
और जैसे कि खरगोश उलट कर शेर को खा जाए, ऐसा अचरज घटित होता है। ई अचरज
को बूझै! तुम जो इतने कमजोर हो, अचानक तुम पाते हो कि तुम विराट शक्ति बन गए। खरगोश सिंह को खा गया! तुम जो इतने दीन हीन हो, तुम जो जीवन भर भिखारी की तरह जीते हो, मांग कर ही जीते हो, अचानक पाते हो कि तुम मालिक हो गये, सम्राट हो गई! ई अचरज को बूझै।
स्वामी राम अमरीका गये। वे अपने को सम्राट कहते थे। बादशाह! था उनके पास कुछ भी नहीं। दो लंगोटी और एक लौटा। लेकिन वे कहते अपने को--बादशाह राम! उन्होंने एक किताब लिखी, उसको नाम दियाः बादशाह राम के छह हुक्मनामे। और वे बोले, तब भी वे हमेशा अपने को बादशाह राम कहते। वे कहते बादशाह राम को प्यास लगी है, जरा पानी ले आओ। अजीब लगता, और अमरीका में और भी अजीब

लगता। खुद अमरीका का प्रेसीडेंट उनसे मिला था। और उसने कहा, और सब तो ठीक है, लेकिन यह मेरी समझ में नहीं आता कि आप किसी भांति के बादशाह हैं। कुछ है नहीं आप के पास। राम ने कहा, इसीलिए हम बादशाह हैं; क्योंकि हमारी कोई मांग नहीं; कोई जरूरत नहीं। हम पूरे हैं। तुम्हारा अमीर से अमीर आदमी भी गरीब है, क्योंकि उसकी मांग अभी बाकी है।
फकीर हुआ एक सूफीः जुन्नैद। एक सम्राट आया। सम्राट था, तो कोई दस हजार स्वर्ण-अशरफियां लेकर उसने चरणों में रखीं। जुन्नैद ने पूछा कि तुम्हारे पास काफी है न? और तो तुम्हारी कोई मांग नहीं, तुम और तो नहीं चाहते? सम्राट ने कहा, मांग कहीं समाप्त होती! इसलिए तो आपके चरणों में आया हूं कि आशीर्वाद मिल जाए! तो जुन्नैज ने कहा कि ये जो अशरफियां तुम ले आए हो, दस हजार, वापिस ले जाओ, क्योंकि इनके कारण तुम गरीब हो जाओगे और हमारे सम्राट होने में कोई फर्क न पड़ेगा। हमें कुछ बढ़ती न होगी इनसे, क्योंकि हम वैसे ही पूरे हैं। घड़ा पहले से भरा है। लेकिन तुम थोड़े खाली हो जाओगे। तुम अभी गरीब हो, तुम ये ले जाओ।
जुन्नैद गरीब आदमी था, नहीं कुछ उसके पास था। यह किस तरह का स्वामित्व है। यह किस तरह की मालकियत है!
कबीर कहते हैंः ससै उलटि सिंह कंह ग्रासै, ई अचरज का बूझै।
जो बिल्कुल दीन-हीन था, अचानक गेस्टाल्ट के बदलते ही, ध्यान के बदलते ही, शरीर से ध्यान हटा, भीतर गया कि मालिक हो गया! जो कमजोर था, वह महाशक्तिशाली हो गया। जो अज्ञानी था, वह परमज्ञानी हो गया। जो बंधा था, वह मुक्त हो गया... ई अचरज को बूझै! जो रो रहा था क्षुद्र के लिए, तड़प रहा था, वह आनंद से नाचने लगेगा। वह परमात्मा हो गया। ई अचरज को बूझै!
कबीर कह रहे हैं कि तुम्हारे भीतर दोनों छिपे हैं। दरिद्र तुम तब तक रहोगे जब तक वासना है। दरिद्र तुम तब तक रहोगे जब तक कर्ता का भाव है। मालिक तुम उसी वक्त हो जाओगे, जब वासना गई। और यह वासना को पूरा करने से न जाएगी, क्योंकि वासना कभी पूरी होती नहीं--दुष्पूर है। बुद्ध ने कहा, वासना दुष्पूर है। उसे तुम पूरा न कर पाओगे। तुम कितने ही उपाय करो, तुम कितने ही दौड़ो, तुम्हारे दौड़ने या उपाय से उसका कोई संबंध ही नहीं है। उसका स्वभाव दुष्पूर है।
तुम्हारे पास दस हजार रुपये हैं, वासना कहती है मिल जाएं तो सब ठीक हो जाए। लाख हो जाते हैं, वासना कहती है, दस लाख, हो जाए तो सब ठीक हो जाए। तुम कितना ही बढ़ते जाओ, वासना दस गुना होती जाएगी। हजार थे, दस हजार! दस हजार थे, लाख! लाख हैं, दस लाख! करोड़ हों, दस करोड़! वासना का और तुम्हारा फासला उतना ही रहेगा--दसगुने का। तुम्हारे पास कितना है, इससे क्या फर्क पड़ता है! गुणित दस--वासना इतना मांगती रहेगी। इसलिए वासना और आदमी का फासला कभी कम नहीं होता--दुष्पूर है। तुम गरीब ही रहोगे।
दुनिया में दो तरह के गरीब हैंः एक, जिनके पास धन है; और एक, जिनके पास
धन नहीं है। दो तरह के गरीब हैः एक, जिनके पास बहुत कुछ है, गरीब हैं; और जिनके पास कुछ भी नहीं, वे भी गरीब हैं। मालिक तो तब पैदा होता है, जब यह दृष्टि बदल जाती है कि वासना के पीछे जा-जा कर कुछ भी नहीं पाया। तो आदमी उलटी कर देता है गंगा को। अब वह बाहर वासना की तरफ नहीं जाता, अपनी तरफ जाता है।
और दो यात्राएं हैं चेतना की--या तो वस्तुओं की तरफ या अपनी तरफ; या तो कुछ पाने के लिए दौड़ते रहो, या खुद को पाने के लिए शांत होकर भीतर बैठ जाओ। जो खुद को पा लेता है, वह सब पा लेता है। और तुम पा लो, और खुद से बच जाओ, कुछ भी न पाओगे। आखिर में तुम पाओगे कि तुम दरिद्र मर रहे हो; भिखारी की तरह तुम्हारी मृत्यु हो रही है।
औंधे घड़ नहिं जल बूड़ै, सूधे सों जल भरिया।
जिहि कारन नल भींन भींन करु, गुरु परसादे तरिया।।
बड़ा बहुमूल्य वचन है।
औंधे घड़ नहिं जल बड़ै! अगर नदी पार करनी हो तो घड़े को औंधा करना पड़ता है। औंधा घड़ा सहारा बन जाता है। तुम औंधे घड़े के सहारे नदी पार कर लेते हो।
औंधे घड़ नहिं जल बूड़ै, सूधे सौ जल भरिया।
और अगर तुम सीधा घड़ा लेकर नदी पार करने गए तो घड़े की वजह से ही डुबोगे।

औंधे घड़े में पानी नहीं भरता; सीधे घड़े में पानी भर जात है। तुम जैसे हो, अभी डूब रहे हो। जरूर घड़ा तुमने सीधा कर रखा है। तुम जैसे हो अभी सिवाय डूबने के और कुछ भी नहीं हो रहा है। तुम रोज डूब रहे हो, प्रतिपल डूब रहे हो। एक बात साफ है कि तुम्हारे डूबने से पता चलता हैः तुम्हारा दुख कम नहीं होता, बढ़ रहा है। कल था, उससे आज ज्यादा है; हालांकि कल तुमने सोचा था कि कल कम होगा। कल तुम्हारी चिंता थी, आज ज्यादा है, कल और ज्यादा होगी। तुम रोज डूब रहे हो। तुम्हारे सब सहारे, सब नावें डूबी जा रही हैं। एक बात साफ हैः औंधे घड़ नहिं जबल बूड़ै, सूधे जो जल भरिया।
तुम्हारा घड़ा सीधा है, इसे उलटा कर लो। तुम जिस तरफ दौड़ते रहे हो, सोच रहे हो; उससे उलटी तरफ दौड़ो। तुम जो कर रहे हो, सोच रहे हो; उससे उलटा करो, उलटा सोचो। अभी अहंकार है तो निरहंकार को यात्रा बनाओ। अभी विचार है तो निर्विचार को यात्रा बनाओ। अभी वासना है तो निर्वासना को यात्रा बनाओ। औंधे घड़ नहिं जल बड़ै, सूधे सों जल भरिया।
जिहि कारन नल भींन भींन करु, गुरु परसादे तरिया।
और, जो लोग सीख गए का घड़े को उलटा करने की, वह गुरु के प्रसाद से अनेक तरह के लोग तर गए... भिन्न-भिन्न तरह के लोग। जिहि कारण नल भींन भींन करु... भिन्न-भिन्न तरह के लोग, भिन्न-भिन्न तरह के तैरने के ढंग, भिन्न-भिन्न तरह की उनकी जीवन-चेतना की व्यवस्था--लेकिन वे सब तर गए। सार की बात एक हैः औंधे घड़ नहिं जल बूड़ै, सूधे जो जल भरिया... गुरू परसादे तरिया।
पर एक बात उसमें कबीर जोड़ते हैं, जो कि सभी संतों की वाणी में कहीं न कहीं छिपी है। और वह यह है कि तुम्हारा घड़ा भी अगर तुमने उलटा कर लिया हो, और गुरु न हो, तो भी तुम सर न पाओगे। क्योंकि पहली तो यही बात है कि तुम घड़े को उलटा कर ही न पाओगे बिना गुरु के। न पाओगे। क्योंकि पहली तो यही बात है कि तुम घड़े को उलटा कर ही न पाओगे बिना गुरु के। लेकिन समझ लो कि भूल-चूक संयोगवशात तुमने घड़े को उलटा कर लिया, तो भी तुम तर न पाओगे। क्योंकि तुम्हारा अहंकार कि मैं तैर रहा हूं, कौन छीनेगा? तुम्हारा अहंकार कि मैंने घड़ा उलटा कर लिया, कौन हटाएगा? तुम्हारा अहंकार कि अब मैं दुखी नहीं हूं, शांत हूं, ध्यानस्थ हूं, कौन मिटायेगा? और यह अहंकार किसी भी क्षण घड़े को सीधा कर दे सकता है। क्योंकि घड़ा पूरा उलटा तभी होता है जब अहंकार बिल्कुल नहीं होता। तब तुम उलटे घड़े हो जाते घड़े हो जाते हो। यह कौन चिंता लेगा? यह कौन तुम पर सतत ध्यान रखेगा? यह कौन तुम्हें बार-बार चेताएगा? गुरु का इतना ही अर्थ है, जो खुद पार हो गया, वही तुम्हें चेतायेगा। अगर दस लोग यात्रा पर गए हों, जंगल हो घना, खतरा हो, तो क्या करते हैं। यक हरते हैं कि पाली-पालजी से जागते हैं। नौ सा जो हैं, एक जागता है। क्योंकि खतरा आएगा तो जाग रहा है वही जगा सकेगा। तब उसकी नींद का वक्त आता है, तब वह दूसरे को जगा देता हैः अब तुम जागो, अब मैं सो जाता हूं। एक तो जागता हुआ चाहिए, नहीं तो खतरा आएगा; पता ही नहीं चलेगा, नींद में ही सब घट जाएगा। गुरु का अर्थ हैः जो स्वयं जागा हुआ है, वह तुम्हारी नींद में उपयोगी होगा। तुम बार-बार सो जाओगे। नींद में बार-बार घड़ा सीधा हो जाएगा। बार-बार तुम भूलोगे। बार-बार तुम चुक जाओगे।
ऐसा हुआ, एक सूफी फकीर हुआ। उसका असली नाम किसी को पता नहीं, लेकिन जिस नाम से जाना जाता है, वह है नस्साज--खैर नमाज--फकीर था। एक वृक्ष के नीचे ध्यान कर रहा था--स्वस्थ! एक आदमी गुलाम की तलाश में निकला था। गुलाम खरीदना था और एक मजबूत गुलाम चाहिए था। इस आदमी को झाड़ के नीचे इतना स्वस्थ बैठा देखकर--और फकीर, फटे कपड़े--उसे लगा कि यह कोई भागा हुआ गुलाम है। किसी का गुलाम है, भाग गया है, यहां जंगल में छिप रहा है। आदमी मजबूत दिखता है, काम का है। उस आदमी ने जाकर पूछा कि क्या तुम भागे हुए गुलाम तो नहीं?
नस्साज ने आंखें खोली और कहा, तुम ठीक ही कहते हो। भागा हुआ हूं और गुलाम हूं। उसका मतलब था कि परमात्मा से भाग गया हूं, और वही तो मेरी गुलामी हो गई। वह आदमी प्रसिद्ध हुआ यही तो मुसीबत है, संसारी और फकीर की भाषा में कहीं मेल नहीं बैठता।
नस्साज ने कहा कि ठीक कहते हो, भागा हूं और गुलाम हूं। उस आदमी ने कहा, ठीक वक्त पर मिल गए, मैं भी एक गुलाम की तलाश में हूं। मैं तुम्हारा मालिक

होने को तैयार हूं। मेरे पीछे आ जाओ। तुम्हें मालिक की खोज है? उस गुलाम ने कहा, बड़े गजब के आदमी हो! यही तो मेरी खोज है; मालिक को खोज रहा हूं।
वह आदमी उसे घर ले गयाः और उसने कहा, मैं हुआ तुम्हारा मालिक, तुम हुए मेरे गुलाम! और जो काम मैं बताऊं, वह करो। उसने कहा, यही तो मैं चाहता था कि कोई बतानेवाला मिल जाए कि क्या करूं, क्या न करूं। अपने किए तो सब अनकिया हुआ जा रहा है। खुद कर-करके तो फंस गया हूं। तुम भले मिले।
थोड़ा शक उस आदमी को होना शुरू हुआ कि या तो यह आदमी पागल है और या फिर कहीं कुछ भूल-चूक हो रही है; कहीं भाषा का भेद है। पर उसने सोचा कि अपने को प्रयोजन भी क्या, वह आदमी राजी है, ठीक। और मुक्त मिल गया। बिना कुछ दिए-लिए! और आदमी तगड़ा स्वस्थ! उसने उससे काम लेना शुरू कर दिया। वह आदमी इतना भला पाया, उस संसारी आदमी ने, इस फकीर को, उसने इसका नाम खैर रख दिया। खैर यानी--अच्छा, भला। फिर उसने इसे--वह उसका खुद का काम था कपड़े बुनावाई का-- उसने इसे कपड़ा बुनना सिखाया। तो उसका दूसरा नाम हो गया--नस्साज। नस्साज यानी कपड़ा बुननेवाला। खैर-नस्साज उसका नाम हो गया। दस साल बीत गए, उसने बड़ी सेवा की इस मालिक की। उसने इतनी सेवा की और इतना सम्मान दिया और इतना श्रम किया कि इस मालिक को भी चोट लगने लगी भीतर कि मैं बड़ा शोषण कर रहा हूं। एक पैसा मैंने इस आदमी पर खर्च नहीं किया है, जो इसकी वजह से बड़ी धन-दौलत आ गई है। और मैं शोषण कर रहा हूं। अब वक्त आ गया है कि मैं इस मुक्त कर दूं। तो उसने इसे बुलाया और कहा कि बहुत हो गया। तुम बड़े काम के साबित हुए, लेकिन मुझे मन में खटकता है कि मैं शोषण कर रहा हूं। उस खटकन को अब और ज्यादा नहीं सहा जा सकता। अब मैं तुम्हें मुक्त करता हूं। अब तुम अपने मालिक हुए।
नस्साज ने कहा, बड़ी कृपा कि तुमने मुझे मेरा मालिक बना दिया! और बहुत कुछ सीखने को मिला। तुम्हारे पास दास होने की कला सिखने को मिली। और अब परमात्मा से फासला नहीं है। क्योंकि गुलाम होना जब से मैंने जान लिया, अहंकार टूट गया। अहंकार टूटा कि गुलामी मिटनी शुरू हो गई। और देखो, तुम तक मुझे मुक्त किए दे रहो हो! मैं तो मुक्त हो गया, लेकिन अब तुम्हारे संबंध में क्या ख्याल है? तुम कब तक गुलाम बने रहोगे?
फकीरों की भाषा और सांसारिकों की भाषा भला एक हो, एक हो नहीं सकती। उनके गेस्टाल्ट, उनके ध्यान अलग हैं। वे कुछ और देख रहे हैं, तुम कुछ और देख रहे हो।
कबीर कहते हैं कि तुम इतने सोये-सोये हो कि तुम्हें कोई सतत जगानेवाला न हो, तो असंभव है कि तुम जाग सको; असंभव है कि तुम्हारा घड़ा उलटा रह सके। तुम डूब ही जाओगे। और न मालूम कितने जन्मों में तुम कितनी बार डूबे हो? और धीरे-धीरे तुम डूबने के आदी हो गए हो। डूबना तुम्हारी आदत हो गई है। और अब तुम डूबने से परेशान भी नहीं होते। तुम समझते हो, यही जिंदगी है। कारागृह में कोई बहुत दिन रह जाए, तो कैदी समझने लगता हैः यही जिंदगी है। कारागृह से जब पुराने कैदी बाहर निकलते हैं, तो दूसरे कैदी पूछते हैं, कब तक लौटोगे? और कारागृह कैदियों को घर जैसा लगने लगता है-- बाहर आकर उनको बड़ी बेचैनी होती है। आदत! कारागृह से ज्यादा सुरक्षित जगह भी तो तुम न पा सकोगे। न कोई झगड़ा, न कोई झांसा, न कोई चिंता, न कोई फिकर! चारों तरफ पहरा, जैसे तुम सम्राट हो। बड़ी दीवालें हैं कि कोई भीतर नहीं आ सकता। रात निश्चित सो सकते हो। भोजन की फिकर नहीं, कोई अकाल नहीं पड़ता कारागृह में कभी। भोजन मिलेगा ही। न काम की फिकर है। कभी कोई बेकाम नहीं रहता। बेरोजगार कोई भी कारागृह में नहीं है। चिंता है ही नहीं। निश्चित, सुरक्षित!
तो जब आदमी कारागृह से बाहर आता है तो खुला आकाश बहुत डराता है। तुम कभी अपने तोते को छोड़ दो पिंजरे से, खुले आकाश में, देखो उसकी कैसी गति हो जाती है! भयभीत, कंपता हुआ! ज्यादा देर नहीं कि वह वापिस लौट जाएगा पिंजरे में तुम खुला ही छोड़ दो; पिंजरे में आकर अंदर बैठ जाएगा। तुम किसी तोते को पिंजरे के बाहर खींचकर मुक्त करने की कोशिश करो, वह अपने को पिंजरे से जकड़ेगा, रोकेगा। वह अपनी चोंच तुम्हारे हाथ पर मारेगा कि बंद करो दरवाजा, बाहर मत निकालो! पिंजरे जैसा सुख कहां! खुला आकाश खतरनाक है।

डूबने के तुम आदी हो गए हो। कारागृह तुम्हारा बन गया है। और तुमने खूब सजा लिया है। और तुमने भीतर की दीवालों को खूब रंग-रोगन कर लिया है। अब तुम भूल ही गए हो कि तुम जहां हो, वहां तुम रोज-रोज डूब रहे हो।
जिहि कारन नल भींन-भींन करु, गुरु परसादे तरिया।
इसलिए अगर तुम अपनी ही तरफ से कोशिश करते रहोगे, करीब-करीब असंभव है
कि तुम तर जाओ। कोई चाहिए जागा हुआ जो तुम्हें सतत सचेत करता रहे। उसका ही अर्थ है गुरु-प्रसाद। गुरु-प्रसाद? ... प्रसाद इसलिए कि वह तुमसे कुछ लेता नहीं। तुम्हारे पास कुछ है नहीं कि तुम उसे दे सको। प्रसाद इसलिए कि वह बेशर्त दान है। वह तुम्हें दे रहा है; तुम ले लो, बस इतना ही काफी है, कुछ और उ Ÿार में चाहिए नहीं। इसलिए गुरु जो भी देता है, वह प्रसाद है। तुम उसको कभी भी उ Ÿार चुका नहीं सकते।
कहावत है पुरानीः पिता का ऋण चुकाए जा सकता है, मां का ऋण चुकाया जा सकता है, शिक्षक का ऋण चुकाया जा सकता है; लेकिन तुम गुरु का ऋण कैसे चुकाओगे? तुम क्या दोगे वापिस, जिससे गुरु का ऋण चुक गए?
बुद्ध से उनके शिष्य आनंद ने पूछा कि हम क्या दें कि हम उऋण हो जाएं? बुद्ध ने कहा, तुम एक ही काम करो, तुम जाओ और सोये हैं उनका जगाओ। और कोई उपाय नहीं है।
गुरु से उऋण होने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए हम उसे प्रसाद कहते हैं।
वह जो भी दे, वह प्रसाद। वह राख उठाकर दे देता है, तो प्रसाद। उसके स्पर्श से राख भी स्वर्ण हो जाती है। वह दे रहा है, उसका देना ही हर चीज को मूल्यवान बना देता है। जो जागा हुआ है, उसके हाथ की राख भी मूल्यवान है। जो सोया हुआ है, उसके हाथ का स्वर्ण भी राख है। क्योंकि असली सवाल तो जागने और सोने का है। जागने से हर स्वर्ण हो जाती है; सोने से हर चीज मिट्टी हो जाती हो।
मूर्च्छा सभी चीजों को नष्ट कर देती है; वह मृत्यु है। जागरण, सभी चीजों को जगा देता है; वह जीवन है, महाजीवन है।
पैठि गुफा मंह सब जग देखै, बाहर किछुअ न सूझै।
भीतर बैठे जाता है गुफा में--हृदय की गुफा। पैठि गुफा मंह सब जग देखै, बाहर किछुअ न सूझै। और बाहर देखता नहीं; भीतर देखता है। वही जागरण का उपाय है कि तुम भीतर देखने लगो। आंख बंद कर लो, कान बंद कर लो, हाथ शिथिल छोड़ दो, शरीर को ऐसा कर दो, जैसे है ही नहीं--और भीतर देखो!
पैठि गुफा मंह सब जग देखै, बाहर किछुअ न सूझै।
उलिटा बान पारधिहि लागै, सूरा होय सो बूझै।
और तब ऐसी घटना घटती है कि जो बहुत अभय हो--सूरा होय सो बूझै--जो बहुत बहादुर हो, साहसी हो, वही सूझ सकेगा, वही बूझ सकेगा। उलिटा बान पारधिहि लागै... जैसे कि तुम तीर चलाओ, और तीर जाए न उस तरफ पक्षी को मारने, चला जाए भीतर, और व्याघ्र खुद उससे छिद जाए।
उलटबांसी है। तुम्हारी चेतना अभी बाहर की तरफ जाता हुआ तीर है। सब निशाने बाहर हैं। किसी को धन पाना है; वह उनका उसका निशाना है। किसी को पद पाना है, यह उसका निशाना है, किसी को कुछ और पाना है। बड़ा संसार है, अनंत लक्ष्य हैं। और तुम्हारी चेतना का तीर उनकी तरफ जा रहा है। इससे उलटी यात्रा भी है कि तुम्हारा तीर चेतना का बाहर की तरफ नहीं जाता। तुम आंख बंद कर लेते हो, तीर भीतर की तरफ मुड़ता है। तुम भीतर देखते हो। आंखें उलटी हो जाती हैं। देखने का ढंग बदल जाता है और चेतना भीतर की तरफ बहती है; जैसे गंगा गंगोत्री की तरफ बहे। मूलस्रोत की तरफ तुम्हारी चेतना आती है। जहां से आयी है, वहीं वापस ले जाते हो। उदगम ही लक्ष्य हो जाता है। तब, तब जीवन की परम घटना घटती है। तब जीवन की परम धन्यता उतरती है।
लेकिन कबीर कहते हैं, सूरा होय सो बूझै। यह कमजोरों का काम नहीं! यह तो बहुत बहादुरों का काम है। इसलिए तो हम महावीर कहते हैं महावीर को। नाम उनका वर्द्धमान था। जिस दिन तीर उलटा हुआ, उस दिन से हमने उन्हीं महावीर कहा। वर्द्धमान तो मर गए, महावीर का जन्म हुआ। महावीर इसलिए कहा कि यह परम साहस है।
ध्यान रखना, धर्म कमजोरों की बात नहीं। भीरु, भयभीत, डरे हुए लोग, तुम्हें मंदिरों में मिलेंगे--घुटने टेके, हाथ जोड़े--लेकिन वे धार्मिक लोग

नहीं हैं। वहां भी उनका तीर बाहर की तरफ जा रहा है। वहां भी वे मांग रहे हैं संसार की चीजें।
ऐसा हुआ कि विवेकानंद के पिता मर गए। तो घर बड़ा दीन था--कर्ज छोड़ गए थे। चुकाने का कोई उपाय नहीं था। और विवेकानंद को लग गया रंग-रंग एक दूसरी दुनिया का। विवेकानंद पर छा गए रामकृष्ण। तो अब तो कोई उपाय नहीं न रहा। विवेकानंद के दिन बीतने लगे रामकृष्ण के सत्संग में। साधु-संग में। मां विधवा, कर्ज भारी! ऐसी हालतें थीं कि कभी भोजन भी होता, नहीं भी होता। कई दिन ऐसे हो जाते कि विवेकानंद घर जाते और पाते कि इतना ही भोजन है कि अकेला कोई भी एक ले सकता, या तो मां या बेटा। तो विवेकानंद कहते कि मैं आज भोजन नहीं लूंगा, कहीं निमंत्रण है। किसी मित्र के घर भोज है। तू भोजन ले ले। चक्कर लगाकर गलियों में भूखे पेट, रास्ते के किनारे लगे नल से पानी पीकर हंसते हुए घर लौटते, जैसे भर-पेट आए हैं। डकार लेते घर में आते कि बड़ा गजब का भोजन था। बड़ी सुंदर चीजों का नाम गिनाते, ताकि मां आश्वस्त हो जाए। रामकृष्ण को पता लगा कि यह तो बहुत बुरी हालत है, तो उन्होंने कहा कि
यह नहीं चलेगा। तू पागल हुआ है। तू जाकर मां से क्यों नहीं मांग लेता? मंदिर में मां की मूर्ति है। तू जा और जो मांगना है, मांग ले।
विवेकानंद भीतर गए। रामकृष्ण द्वार पर बैठे हैं। घंटा बीत गया।
विवेकानंद बाहर आए, आंखों से आंसुओं की धार लगी है। परम आनंदित हैं। रामकृष्ण ने कहा, मांग लिया? विवेकानंद ने कहा, अच्छी याद दिलाई, मैं तो भूल ही गया। फिर भेजा भीतर, फिर घंटे भर बाद बाहर आए, बड़े प्रसन्न हैं। रामकृष्ण ने कहा, मांग लिया? विवेकानंद ने कहा, नहीं मांग सकूंगा। क्योंकि मां जब सामने खड़ी हो, तो मांगना कैसा! और क्या उसे पता नहीं? परमात्मा से मांगना क्या? और जो उसकी मर्जी, वही हो। उसकी मर्जी से हम ज्यादा समझदार तो नहीं हो सकते। अगर वह चाहता है यही, तो जरूर कोई राज होगा। तो जाता हूं भीतर, आप कहते हैं, आपको भी इनकार नहीं कर सकता और भीतर जाकर धुन में लीन हो जाता हूं। ऐसे आनंद बरसता है कि वहां किसको याद रहती है कि पेट भूखा है, कि हाथ में भिक्षा-पात्र लिए हूं। नहीं, यह नहीं होगा, यह मैं न मांग सकूंगा। रामकृष्ण ने कहा, यही मैं सोचता था कि अगर तू मांग ले, तो मैं समझ लूं
कि तू संसारी है, और धार्मिक न हो सकेगा। अगर तू न मांग सके तो फिर इस रास्ते पर चल सकता है। क्योंकि इस रास्ते पर तो वे ही चलते हैं--सूरा होय सो बूझै। हिम्मत है जिनकी, साहस है जिनमें--अज्ञात में जाने का, अनजान में उतरने का, क्षुद्र को छोड़ने का, विराट में खोने का। सूरा होय सो बूझै। गायन कहै कवहूं नहिं गावै, अनबोला नित गावै।
गायन कहै कवहुं नहिं गावै--आता है साधक, फिर भी गाता नहीं। वह कोई गीत नहीं है। वह कोई संगीत नहीं है, एक आनंद-भाव है।
गायन कहै कवहुं नहिं गावै, अनबोला नित गावै। और नहीं भी बोलता, तो भी गीत चलता रहता है। ये उलटबांसियां हैं। तुम गाते हुए पाओगे मीरा को, चैतन्य को--और कबीर कहेंगे फिर भी वे गाते नहीं, भीतर तो सब शांत है, एक शब्द नहीं उठता। तुम बुद्ध को और महावीर को बैठा हुआ पाओगे अनबोला, और कबीर कहेंगे, गाते हैं, भीतर तो धुन उठ रही है, अनहद नाद बाजे!
संत की जो स्थिति है, वह इस उलटबांसी में छिपी है। संत बोलता है तो भी बोलता नहीं। तुम चुप रहते हो तो भी बोलते हो। चुप्पी ऊपर-ऊपर होती है, भीतर तो बोले चले जाते हो। संत बोलता है तो भी बोलता नहीं; बोलता ऊपर-ऊपर होता है, भीतर तो गहन चुप्पी होती है। संत चुप रहता है, तब भी बोलता है, लेकिन उसके चुप रहने मग बोलने का ढंग और, तुम्हारे चुप रहने में बोलने का ढंग और। संत चुप रहता है, तब चुप्पी से बोलता है। तब वह तुमसे भी कह रहा है, चुप हो जाओ। तब वह तुमसे भी कह रहा है, जैसा मैं हूं ऐसे तुम हो जाओ। तब वह तुमसे भी कह रहा है, निमंत्रण है, द्वार खुला है, भीतर आ जाओ, चुप हो जाओ। और अगर तुम संत के पास चुप बैठ सको, तो तुम सब सीख लोगे जो सीखने जैसा है।
संत बोले तो भी वही बोलता है कि चुप हो जाओ। संत चुप रहे तो भी वही बोलता है कि चुप हो जाओ। मौन हो जाना द्वार है। सब भांति शब्द से मुक्त हो जाना विधि है।
गायन कहै कवहुं नहिं गावै, अनबोला नित गावै।
नटवट बाजा पेखनि पेखै, अनहद हेत बढ़ावै।।

संसार को तो वह खेल की तरह लेता है। नटवट बाजा पेखनि पैखै... देखता है
कि यह सारा साज जो बज रहा है, खेल-कूद चल रहा है, अभिनय हो रहे, नाटक हो रहा है--इसको वह नाटक की तरह देखता है, एक द्रष्टा!
अनहद हेत बढ़ाव... इधर देखता है संसार को एक नाटक, और उधर भीतर अनहद से प्रेम बढ़ाता जाता है।
तुम जब तक इस संसार को वास्तविक मानते हो, तब तक तुम इसके साथ प्रेम को बढ़ाते हो। क्योंकि प्रेम, जहां भी वास्तविकता दिखती है, वहीं बढ़ता है। जब तुम संसार को खेल समझ लेते हो... लेकिन तुम बड़ी मुश्किल में हो। तुम संसार को खेल क्या समझोगे! तुम फिल्म में जाते हो, फिल्म को तुम सत्य समझ लेते हो! फिल्म में देखो। वहां तो अंधेरा रहता है, अच्छा है; नहीं तो सभी अपने आंसू पोंछ रहे हैं। लोगों के रूमाल गीले हो जाते हैं। लोग दो-दो जोड़ी रुमाल लेकर जाते हैं। अंधेरा अच्छा है। कोई देख नहीं रहा है। जल्दी से पोंछ कर फिर सजकर बैठ जाते हैं। फिल्म कुछ भी नहीं है वहां; पर्दे पर धूप-छांव का खेल है।
और संत कहते हैं, यह सारा संसार धूप-छांव का खेल है। संत इस सार संसार
को नाटक बना लेते हैं। तुम नाटक को भी संसार बना लेते हो। तुम वहां भी रोते हो, हंसते हो, प्रसन्न होते हो। वहां भी किसी की हत्या होती है, तुम कहते हो... तुम खुद प्रकट करते हो। वहां कोई किसी की छाती में छुरा भोंक रहा है, तुम एकदम सीधे होकर बैठ जाते हो; जैसे कोई दुर्घटना घटने जा रही है। तुम नाटक को भी वास्तविक कर लेते हो, तो तुम संसार को कैसे नाटक कर पाओगे! और कला यही है कि संसार नाटक हो जाए।
नटवट बाजा पेखनि पेखै, अनहद हेत बढ़ावै।
कथनी बदनी निजुके जोहै, ई सभ अकथ कहानी।
और इस सारे खेल को, न केवल संसार के खेल को खेल की तरह देखता है, बल्कि अपनी कथनी-करनी, खुद के आचरण, शरीर, क्रिया, गतिविधि को भी द्रष्टा की तरह ही देखता है। भूख लगती है संत को भी, लेकिन लगने का ढंग और है। जब तुम्हें भूख लगती है, तुम्हें लगता है तुम भूखे हो गए; मैं भूखा हूं। जब संत को भूख लगती है तो उसे दिखाई पड़ता है, शरीर भूखा है। भूख से वह जोड़ नहीं लेता है अपने को। तुम्हारे पैर में चोट लगती है तो तुम्हें चोट लगती है। संत को चोट लगती है तो वह देखता है कि पैर को चोट लगी है। जो करना जरूरी है, करता है; लेकिन है सब खेल।
संत साक्षी बना रहता है। और साक्षीभाव इस जगत में सबसे रहस्यपूर्ण दशा है। इसलिए कबीर कहते हैं, कथनी-बदनी निजुके जोहै। निजुके जोहै--अर्थात साक्षी हो जाए। सब देखे और साक्षी भाव से देखे। कोई भी चीज छुए न। किसी भी चीज में बंध ने। सबसे गुजर जाए, लेकिन अस्पर्शित रहे। रहे संसार में, लेकिन संसार को भीतर न घुसने दे। संसार में हो और संसार का न हो। यही तो साधु का लक्षण है।
ई सभ अकथ कहानी। और यह बड़ी अदभुत कहानी है, वही नहीं जा सकती। क्योंकि जिस दिन सारा संसार तुम्हें नाटक दिखाई पड़ेगा, उस दिन तुम कैसे रहस्य-लोक में प्रवेश न कर जाओगे। जिस दिन तुम्हारा खुद का जीवन भी एक पार्ट मालूम पड़ेगा, उस दिन तुम्हारे जीवन में कैसी चिंता! उस दिन तुम्हारे जीवन में कैसा कष्ट, कैसा संताप!
ई सभ अकथ कहानी।
धरती उलटि अकासहि बेधै, ई पुरखन की बानी।
और जिन्होंने जाना है, उन पुरखों की यह वाणी है कि धरती उलटी होकर आकाश को बेंध देती है। तुम्हारी चेतना उलटी होकर सारे संसार को बेंध देती है।
बिना पियाले अमृत अंचवै, नदिय नीर भरि राखै।
कहहिं कबीर सो जुग-जुग जीवै, राम सुधारस चाखै।।
बिना पियाले अमृत अंचवै... और अमृत बरसता है, और ऐसा बरसता है कि तुम्हारे चारों ओर बरसता है। प्याले की जरूरत भी नहीं भरने की। तुम ही उससे भर जाते हो। बिना पियाले अमृत अंचवै। यह कोई प्यालियों में नहीं बरसता, जब बरसता है तो। जब बरसता है तो सब बांध तोड़ कर बरसता है। तुम्हारे चारों तरफ सागर की तरह हो जाता है। नदिय नीर भरि राखै... इस तरह बरसता है कि

तुम्हारे भीतर नदियों जैसा भरा रह जाता है। जैसे आकाश से जब बरसा होती है तो सुखी नदियों में भर जाती है। ऐसा तुम्हारे भीतर भर जाता है और चारों तरफ बरसने लगता है।
कहहिं कबीर सो जुग-जुग जीवै... और जिस पर यह अमृत बरस गया वह सदा जीता है; उसकी कोई मृत्यु नहीं, वह अमृत हो जाता है। राम सुधारस चाखै... और अनंत-अनंत, सदा-सदा परमात्मा के रस का स्वाद लेता रहता है।
दो स्वाद हैं, जगत में। एक स्वाद है शरीर का, और एक स्वाद है आत्मा का। भोजन करते हो, तब जो स्वाद मिलता है, वह शरीर का स्वाद है। संभोग करते हो, तब जो स्वाद मिलता है, वह शरीर का स्वाद है। सुगंध आती है फूलों से, तब जो स्वाद मिलता है वह शरीर का स्वाद है। एक और स्वाद है, जो इंद्रियों से नहीं मिलता--और वही स्वाद परमात्मा का है। लेकिन वह भी संभव होगा, जब तुम्हारी गंगा सागर को ग्रस लग; जब तुम्हारे तीर तुम्हीं को लग जाए; जब तुम उलटी यात्रा पर निकल जाओ। वह तभी संभव है, जबः
औंधे घड़ नहिं जल बूड़ै, सूधे सौं जल भरिया।
जिहि कारण नल भींन भींन करु, गुरु परसादे तरिया।।
बस इतना ही राज है कि तुम औंधे घड़े हो जाओ। जिस दिन संसार का जल तुममें
न भरेगा, उसी दिन परमात्मा की वर्षा तुम पर हो जाएगी। सीधे घड़े में संसार भर जाएगा और तुम डूब जाओगे।
बहुत बार तुम डूबे हो। चेत जाना चाहिए! काफी समय हो गया, अब होश आ जाना चाहिए।

सुनो भाई साधो
नौवां प्रवचन

रस गगन गुफा में गजर झरै

दिनांकः 19 नवंबर 1974; श्री ओशो आश्रम, पूना

सूत्र
रस गगन गुफा में अगर झरै।
बिन बाजा झनकार उठे जहां, समुझि परै जब ध्यान धरै।।
बिना ताल जहं कंवल फुलाने, तेहि चढ़ि हंसा केलि करै।
बिन चंदा उजियारी दरसै, जहं तहं हंसा नजर परै।।
दसवें द्वार तारी लागी, अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।
काल कराल निकट नहिं आवै, काम-क्रोध-मद-लोभ जरै।।
जुगत-जुगत की तृषा बुझानी कर्म-कर्म अध-व्याधि टरै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहूं न मरै।।
धर्म है अमृत की खोज।

मनुष्य के जीवन में सर्वाधिक सुनिश्चित है मृत्यु। उससे ज्यादा निश्चित और कोई तथ्य नहीं। और सब संयोग है।... हो भी सकता है, न भी हो। मृत्यु संयोग नहीं है--होगी ही! कितने ही बचने के उपाय हों, सब व्यर्थ हो जाएंगे। मृत्यु से कभी बचा नहीं। मनुष्य को छोड़कर और कोई पशु-पक्षी, पौधा, पत्थर, मृत्यु, के प्रति सचेतन नहीं है। मरते वे भी हैं, लेकिन उन्हें पता नहीं कि मृत्यु होगी। इसलिए मनुष्य के अतिरिक्त और कोई मनुष्य धर्म को पैदा नहीं कर पाएगा।
धर्म पैदा होता है मृत्यु के बोध से। जितना गहन मृत्यु का बोध होगा, उतनी ही गहन धर्म की खोज होगी। अगर मृत्यु न हो तो धर्म खो जाएगा। अगर ऐसा हो जाए कि आदमी कभी न मरे, तो सब मंदिर, मस्जिद, बस गिर जाएंगे। इसीलिए तो जैसे-जैसे उम्र हाथ से खोती है, वैसे-वैसे व्यक्ति को धर्म की चिंता शुरू होती है। जैसे-जैसे मौत करीब आती है, वैसे-वैसे आदमी विचार करता है। जवानी में आदमी भुलाए रख सकता है मंदिर को। तब नशा गहरा होता है जीवन का।... चढ़ाव पर होती है; गति होती है जीवन में। जीवन के भोग का नशा होता है। जैसे-जैसे पहाड़ से उतार शुरू होता है, बुढ़ापा करीब आता है, वैसे-वैसे आश्वासन टूटने लगते हैं, भरोसा गिरने लगता है, जिंदगी हाथ से जाती मालूम पड़ती है। मौत के कदम जैसे ही सुनाई पड़ने लगते हैं, वैसे ही धर्म की खोज शुरू हो जाती है। मृत्यु के कारण धर्म की खोज शुरू होती है--इसीलिए स्वभावतः धर्म की खोज अमृत की खोज होगी। और जब तक अमृत का अनुभव न हो जाए तब तक मनुष्य भयभीत रहेगा, कंपता रहेगा तुम कितनी ही भुलाओ, तुम कितना ही छिपाओ। और हमने मौत को छिपाने की बड़ी कोशिश की है।
इस संबंध में एक बात ख्याल में ले लेनी जरूरी है। दुनिया में दो तरह
की संस्कृतियां हैं। एक संस्कृति है, जो कम को दबाती है, सेक्स छिपाती है। और दूसरी संस्कृति है, जो मृत्यु को दबाती है, मृत्यु को छिपाती है। पश्चिम में मृत्यु को छिपाया जाता है, सेक्स की खुली छूट है; रोज-रोज छूट बढ़ती जा रही है, लेकिन मृत्यु को बिल्कुल भुलाया जा रहा है। पूरब में सेक्स को दबाया गया है, कामवासना को दबाया गया है; मृत्यु को नहीं दबाया गया। ये दो तरह की संस्कृतियां हैं।
कामवासना और मृत्यु दो छोर हैं। क्योंकि कामवासना यानी जन्म। कामवासना यानी जन्म का सूत्र। अगर तुम जन्म को दबाएगा तो मृत्यु को तुम्हें देखना ही पड़ेगा। मृत्यु पर तुम्हारी आंखें अटक जाएगी। क्योंकि दो ही तो तथ्य हैं जीवन मेंः या तो जन्म को देखते रहो तो मृत्यु को भूला सकते हो; अगर मृत्यु को देखो तो जन्म को भूला सकते हो। पूरब ने तय किया कि हम जन्म को भूला दें, कामवासना को भूला दें, जैसे है ही नहीं; ऐसी जिंदगी बना लें कि पता ही न चले आदमी के जीवन में कोई कामवासना है।

समझो... अगर मंगल से कोई यात्री अचानक आए, और हमारे गांव में घूमे, बाजारों में, लोगों से मिलने-जुले, दुकान-दफ्तर में जाए, उसे पता ही न चलेगा कि कामवासना जैसी कोई चीज भी मनुष्य के जीवन में है। हमने उसे रात के अंधेरे में छिपा दिया है। उसे पता ही नहीं चलेगा, क्योंकि हमारे जीवन के बाहर वह कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती। उसे हमने भीतर मन में छिपा लिया है। जो संस्कृति कामवासना को छिपाएगी, उसे मृत्यु को गौर से देखना पड़ेगा। इसलिए पूरब धार्मिक हो गया; क्योंकि मृत्यु को ज्यादा देखेंगे, अनिवार्य रूप से अमृत की खोज शुरू होगी। पश्चिम ने कामवासना को नहीं दबाया, मृत्यु को दबाया। इसलिए पश्चिम में मृत्यु को भुलाने की बड़ी कोशिश की जाती है। इस बात को अशिष्ट समझा जाता है कि आप मृत्यु की चर्चा करें। पूरब में कामवासना की चर्चा करने को अशिष्ट समझा जाता है। पश्चिम में मृत्यु की बात नहीं की जाती; मृत्यु को चर्चा के बाहर डाल दिया गया है। कामवासना की जितनी चर्चा करनी हो करो; मृत्यु की भर बात मत करना। कोई मर भी जाए तो लोगों ने अलग शब्द खोज लिए हैं मृत्यु को छिपाने को कि स्वर्गवासी हो गया। हममें से अधिक तो नर्कवासी होंगे। लेकिन जो भी मरा उसी को हम कहते हैं, स्वर्गवासी हो गया। मृत्यु शब्द की जगह स्वर्गवासी शब्द बड़ा मधुर है। बैकुंठ-लोक चले गए, बैकुंठवासी हो गए। इससे ऐसा लगता है मरे नहीं, कहीं हैं। यह मृत्यु को छिपाने की तरकीब है। लोग कहते हैं; चोला छोड़ दिया... जैसे चोला ही छोड़ा; मरे नहीं, कहीं हैं।
हजार तरह की अभिव्यक्तियां हमने खोज रखी हैं, जिनमें हम छिपाते हैं मृत्यु का तथ्य--और पश्चिम में बहुत ज्यादा। आदमी मर जाए तो भी उसको बड़ी शान-शौकत से, बड़ी व्यवस्था से, फूलों से सजा कर ले जाते हैं, जैसे कोई मृत्यु नहीं घटी है; जैसे कुछ दुख और शोक नहीं हो गया है; जैसे कोई उत्सव है, भुलाने की व्यवस्था है। और इसलिए हम मरघट को बाहर बना लेते हैं गांव के। मरघट पर भी पश्चिम में पत्थर लगाते हैं तो वहां लिखते हैंः यहां फलां- फलां आदमी सो रहा है, मर नहीं पाया है; सो रहा है, चिरनिद्रा में लीन है! ये सार शब्द इस बात को छिपाने की कोशिश हैं कि कोई चीज टूट गई, समाप्त हो गई। पश्चिम ने छिपा लिया है मौत को, इसलिए विज्ञान पैदा हुआ। क्योंकि अगर मौत मनुष्य की चेतना से हट जाए तो फिर जन्म ही रह जाता है, कामवासना रह जाती है, जीवन रह जाता है। तो फिर जीवन कैसे अधिक सुविधापूर्ण बनाया जाए-- कैसे जीवन को अधिक रंगा जाए, कलात्मक बनाया जाए; कैसे अच्छे मकान हों, कैसे अच्छी सड़क हो, कैसे अच्छा बाथरूम हो--तो जीवन के काम में लग गई
सारी चेतना। मृत्यु को भूला दिया, तो जीवन को बसाने का ख्याल आया। इसलिए पश्चिम में विज्ञान विकसित हुआ।
पूरब ने कामवासना को भूला दिया, इसलिए जीवन उपेक्षित हो गया। कैसे तुम जीते हो, कुछ मतलब नहीं; कूड़े-कबाड़ में जीते हो, कोई मतलब नहीं। झोपड़े में जिंदा हो कि मरे हो, भूखे हो कि प्यासे हो, दुर्गंध है कि बीमारी है कि मक्खियां हैं घेरे हुए--कुछ मतलब नहीं। यह तो दो दिन का खेल है, समाप्त हो जाएगा! असली चीज तो मौत है। वह आ रही है, चाहे तुम महल में रहो, चाहे झोपड़े में! तो हमने जीवन को और जन्म को छिपाया। इसलिए विज्ञान विकसित नहीं हुआ, धर्म विकसित हुआ। और जिस दिन कोई व्यक्ति दोनों को आंख खोलकर देखता है, उस दिन सही अर्थों में क्रांति घटित होती है। क्योंकि एक को तुम छिपाओगे, दूसरे को तुम देखोगे, तो तुम्हारा बोध आधा रहेगा, तुम अधूरे रहोगे। और आधा सत्य असत्य से भी बदतर है। क्योंकि आधा सत्य जैसा मालूम होता है, और सत्य है नहीं। पूरा सत्य ही सत्य होता है। और अब तक दुनिया में कोई संस्कृति पैदा नहीं हुई है जिसने पूरे सत्य को देखा हो।
तुम्हें मैं उसी संस्कृति के वाहक बनाना चाहता हूं कि तुम पूरे सत्य
को देखोः जन्म भी है, जीवन को ढंग से जीना भी है--और यह जानते हुए जीना है कि मौत होनेवाली है। विज्ञान विकसित हो, उससे हम जीवन की सुविधा खोजे; और धर्म विकसित हो, उससे हम अमृत खोजें।
अगर अकेला विज्ञान होगा तो खोज मृत्यु की हो जाएगी। इसलिए विज्ञान एटमबम और हाईड्रोजन पर पहुंच गया। खोजते-खोजते मृत्यु ही हाथ में लगेगी। जिसको तुमने छिपाया है, वही हाथ में लगेगा। क्योंकि जब तुम खोजोगे, जिसको तुमने दबाया है, वह हाथ में लग जाएगा। कहीं भी छिपाओ, तुम्हें तो पता ही है

कि कहां छिपाया है। कितना ही भूलो, तुम्हें पता ही है। और जिसको तुमने छिपाया है, वह तुम्हारे अचेतन को प्रभावित करता करेगा।
एक वैज्ञानिक ने जीवन भर की तलाश पूरी कर ली थी। वह भागा हुआ घर आया। जिस काम के पीछे पचास साल से लगा था, वह पूरा हो गया। द्वार पर ही उसे अपना छोटा बेटा बैठा हुआ मिला। उसने कहा, बेटे तू भी जानकर खुश होगा कि मैं जो खोज रहा था, वह खोज पूरी हो गई, मंजिल आ गई। मैंने वह अदभुत चीज खोज ली, जिसकी तलाश थी। बेटे ने पूछा, तो क्या है अदभुत चीज? बाप ने कहा कि मैंने वह रहस्य खोज लिया है कि अगर मैं चाहूं तो एक सेकेंड में सारी दुनिया के लोगों को मार डाल सकता हूं। बेटे ने कहा, डैडी तो पहले मुझे मारकर दिखाओ। बेटा बड़ा प्रसन्न था। और उसने कहा, जैसे कि बच्चे कहते हैंः अच्छा पहले हमें करके दिखाओ! तो उसने कहा कि डैडी पहले मुझे मारकर दिखाओ। वैज्ञानिक उदास हो गया।
सभी वैज्ञानिक उदास हैं, आज, क्योंकि उन्होंने अनजाने मौत खोज ली है।
गए थे जीवन को खोजने, खोज ली मौत। जिसको छिपाया था, वह हाथ में आ गया। पश्चिम के लोगों ने मृत्यु का सूत्र खोज लिया हैः कैसे मारना सुगमता से, जल्दी तेजी से, कुशलता से। अब एक क्षण में ही सारी दुनिया नष्ट की जा सकती है। यह बड़ी अजीब बात हुई--खोजने गए थे जीवन, हाथ लगी मौत!
पूरब के लोगों ने कामवासना को छिपा-छिपाकर सारे चिŸा को कामग्रसित कर दिया है। खोजने गए थे ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य मिला नहीं; मिली है बहुत गर्हित वासना। चिŸा में चौबीस घंटे काम की ही धुन बजती रहती है। और जब तक तुम काम की धुन बज रही है तब तक कबीर की धुन न बजेगी। और जब तक कामवासना रोएं-रोएं को घेरे हुए है, तब तक कबीर लोक की बात कर रहे हैं, वह दशम द्वार न खुलेगा।
कामवासना पहला द्वार है। और पहले ही द्वार पर जो अटका है, वह दसवें तक कैसे पहुंचेगा? दसवां तो आखिरी द्वार है। पहले में ही उलझ गए, तो दसवें तक कौन जाएगा? लेकिन जितना हमने कामवासना को दबाया, उतना हम कामवासना से भर गए। और पश्चिम में जितना मृत्यु को दबाया, उतनी मृत्यु हाथ में आई।
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि जो तुम छिपाओगे, वह आज नहीं कल प्रकट होगा। छिपाना कुछ भी मत। जीवन के तथ्यों को सीधा-सीधा देख लेना। जीवन में जन्म भी तथ्य है, मृत्यु भी। जन्म को भी देखना और मृत्यु को भी। तब तुम दोनों को अतिक्रमण कर सकोगे। भय के कारण जिसको तुम छिपा लोगे वह बार-बार तुम्हारे रास्ते में आएगा। भय से कभी कोई मुक्त नहीं हुआ है--अभय चाहिए! रोमारोलां ने अपनी एक डायरी में एक बहुत कीमती वचन लिखा है। उसने लिखा हैः मैं एक ही अभय जानता हूं। और जिसने अभय सीख लिया, उसने सब सीख लिया। और वह अभय यह है कि जिंदगी जैसी है तुम उसे उसकी पूरी सत्यता में देखने की कोशिश करना; न तो कुछ छिपाना, न कुछ जोड़ना। जिंदगी जैसी है, उसे पूरा का पूरा देखना। और जिंदगी जैसी है, उसके पूरे अनुभव के साथ तुम्हें जीना। छिपाया कि तुम मुश्किल में पड़ोगे, जिंदगी अधूरी हो गई, खंडित हो गई। दबाया, तुम मुश्किल में पड़ेंगे।
ध्यान रखना, कामवासना जीवन का सूत्र है। उसी का अंत मृत्यु में होता है। जो जन्म में शुरू होता है, वही मृत्यु में करता है। जो जन्म के पहले था, वह मृत्यु के बाद भी रहेगा।
अगर तुम जन्म और मृत्यु को गौर से देखो, तो जल्दी ही तुम्हारी आंखों में वह तीव्रता और वह रोशनी आ जाएगी कि तुम जन्म और मृत्यु के पार भी देख पाओगे। अगर तुमने एक छोर छिपा लिया, तो तुम इतने डर जाओगे, तुम इतने भयभीत हो जाओगे कि तुम कुछ भी देखने में समर्थ न रह जाओगे; तो तुम इतने डर जाओगे, तुम इतने भयभीत हो जाओगे कि तुम कुछ भी देखने में समर्थ न रह जाओगे; तुम्हारी आंखों में भय समा जाएगा। और जिस आंख में भय है, वह आंख धुएं में दबी है। फिर तुम तर्क खोजते रहोगे, तर्क तो सभी खोज लेते हैं। लेकिन तर्क कोई सत्य नहीं है। तर्क तो पागल भी खोज लेते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन गया था मनस-चिकित्सक के पास। परीक्षा के तौर पर मनस-चिकित्सक ने कहा, जांचने को कि इस आदमी की बुद्धि डांवाडोल कितनी हुई है, या नहीं हुई है। कहा कि नसरुद्दीन, अगर हम तुम्हारा एक कान काट लें, तो क्या होगा? नसरुद्दीन ने कहा, साफ है कि मैं जितना सुनता हूं, उससे आधा सुन

पाऊंगा। मेरी सुनने की क्षमता आधी हो जाएगी। उस मनसविद ने कहा, और तुम्हारा दूसरा कान भी काट लें तो क्या होगा? तो नसरुद्दीन ने कहा, फिर मैं देख न पाऊंगा। मनसविद हैरान हुआ। उसने कहा, मतलब? अचरज की बात कहते हो! दूसरा कान काटने से तुम देख क्या न पाओगे? नसरुद्दीन ने कहा, उल्लू के पट्ठे, मेरा चश्मा जो गिर जाएगा।
झक्कियों के भी तर्क होते हैं।... उसके तर्क खंडित नहीं कर सकते। कह
तो बात पते की रहा है।
जैसे ही तुमने जीवन में एक चीज को छुपा लिया, और दूसरी चीज तुमने इतनी महत्वपूर्ण बना दी कि वह दोनों का ध्यान बांट ले, वैसे ही तुम्हारे दिल में, तुम्हारे जीवन में एक तरह का झक्कीपन आ जाएगा। झक्कीपन का अर्थ हैः असंतुलन; तुम एक तरफ ज्यादा झुक गए। और संतुलन सम्यकत्व है; मध्य में होना। जैसा कोई नट रस्सी पर चलता है, तो जरा बाएं झुकता है। तो तत्काल दाएं झुकता है, ताकि संतुलन न खो जाए। और हर घड़ी संतुलन को बनाना पड़ता है। संतुलन कोई चीज नहीं है की एक दफे जमा लिया, जम गई; प्रतिपल संतुलन सम्हालना पड़ता है। हर कदम पर नट को फिर से संतुलन सम्हालना पड़ता है। क्योंकि हर कदम नया कदम है, नई स्थिति है। ऐसा नहीं कि एक दफे संतुलन सम्हल गया, फिर आप मजे से सा जाएं।
जीवन भी रस्सी पर चलते हुए नट की भांति है। वहां चुनाव नहीं करना है;
दो के बीच संतुलन सम्हालना है। बाएं झुके तो बाएं गिरोगे, दाएं झुके तो दाएं गिरोगे। गिरो कहीं भी, दोनों हालत में मौत हो जाएगी। अगर मध्य में रहे तो बच सकोगे।
तो न तो जन्म के साथ एक हो जाना है, न तो मृत्यु के साथ। न तो कामवासना
को सब कुछ बना लेना है, और न मृत्यु से मुक्त होना की वासना को सब कुछ बना लेना है। न तो काम सब कुछ है, न मोक्ष। दोनों के मध्य अतिक्रमण कर जाना, ट्रान्सेन्डेन्स चाहिए। कोई कामना न रह जाए, मोक्ष की भी न रह जाए--तभी तुम दोनों के पार हो सकोगे। और जैसे ही कोई दोनों के पार होता है, उसके जीवन में ये अनूठी घटनाएं घटनी शुरू हो जाती हैं, जिसकी कबीर चर्चा कर रहे हैं। ये घटनाएं बड़ी अतक््रय हैं। और भाषा में कहना बड़ा विरोधाभासी है। क्योंकि जो भी कहो, वही अधूरा मालूम पड़ता है। जो भी कहो, बहुत कुछ कहने को शेष रह जाता है। जो भी कहो, लगता है कि सीमा बांध दी उस पर जो असीम था। और जो भी कहो, सुननेवाले को लगेगा कि नशे में बातें कर रहे हैं। क्योंकि सुननेवाला जहां से सुन रहा है, उसका जो अपना अनुभव है, उनसे इन बातों का कोई तालमेल न खाएगा।
तुम्हें एक ही अनुभव है जीवन का--वह पहले द्वार का है। या अगर तुम्हारा अनुभव बहुत गहरा हो गया हो, तो भी नौवें द्वार से तुम्हारा अनुभव ऊपर नहीं जाता। दसवें द्वार का तुम्हें कोई भी अनुभव नहीं है।
नौ द्वार हैं हमारे शरीर केः दो आंखें, दो नाक के नासापुट हैं, मुंह है, दो कान हैं, गुदा है, जननेंद्रिय है--ये नौ द्वार हैं। तुम्हारा सारा जीवन इन्हीं में समाया हुआ है। और ये सब द्वार शरीर के हैं। दसवां क्षार सहस्रार है। वह शरीर में है और फिर भी शरीर का द्वार नहीं है। क्योंकि ये जो नौ द्वार हैं, इनसे तुम दूसरे शरीरों के संबंधित होते हो। आंख से तुम क्या देखोगे? दूसरे को देखोगे। कान से तुम क्या सुनोगे? दूसरे को सुनोगे। हाथ से तुम क्या छुओगे? दूसरे को छुओगे।
दसवां द्वार अनंत का द्वार है, समस्त का द्वार है। कोने पर कामवासना है, और दूसरे कोने पर दसवां द्वार है। कामवासना से जो पैदा होता है, वह मरता है। और दसवें द्वार से जो प्रविष्ट हो जाता है, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है। कामवासना से शरीर पैदा होता है; शरीर मरणधर्मा है। दसवें द्वार से अशरीर की झलक मिलती है; उसकी कोई मृत्यु नहीं। वह दसवां द्वार तुम्हारे सिर में है। और इन पहले पहले और दसवें द्वार के बीच में सारा खेल है, सारा नाटक है।
पहले द्वार से तुम प्रविष्ट होते हो संसार में, दसवें द्वार से तुम बाहर निकलते हो संसार के। पहला द्वार, वहां लिखा है। एन्ट्रेन्स। दसवां द्वार, वहां लिखा है--एक्जिट। और यह तो बात पक्की है कि जहां एन्ट्रेन्स

होगा, वहां एक्जिट भी होगा। यह तो बात पक्की है, जहां प्रवेश द्वार होगा, वहां बाहर जाने का मार्ग भी होगा।
कामवासना से तुम प्रविष्ट हुए हो संसार में। जननेंद्रिय तुम्हारा द्वार है आने का। इसको भी हमने भुला रखा है। इसका हम विचार ही नहीं करते कभी। कोई आदमी सोच ही नहीं सकता, इसके मां-बाप संभोग कर रहे थे, इसलिए वह संसार में प्रविष्ट हुआ है। ऐसी बात ही सोचने में लगेगा पाप... कि कही मां- बाप... और संभोग करते! यह तो सब गलत लोग करते हैं!
कभी तुम सोचे हो, सजग रूप से कभी तुमने इस पर ध्यान किया है, कैसे तुम संसार में आए? यह सोचकर ही मन में बड़ी ग्लानि होगी कि मां-बाप और संभोग कर रहे हैं। यह सोचकर ही मन में बड़ी चिंता होगी की जननेंद्रिय के द्वार से तुम्हारा आगमन हुआ है! इन बातों को हमने भुला रखा है। इन बातों को हमने छुपा लिया है। लेकिन ये सचाइयां हैं और छिपाने से झूठ नहीं हो जाएगी, सचाइयां ही रहेंगी।
तुम कभी सोचते ही नहीं कि तुम कैसे इस जगत में आए हो। और अगर पहले द्वार से तुम जगत में आए हो, और उसी द्वार पर अटके रहे तो जगत में ही बने रहोगे। अगर तुम एन्टेस पर, प्रवेश-द्वार पर ही बैठे रहे, तो जीवन में कोई गति नहीं होगी; कोल्हू के बैल की भांति घूमते रहोगे। ऐसा अनंत जन्मों से तुम घूम रहे हो।
जैसे आने का मार्ग है, वैसा जाने का मार्ग भी है। उसकी ही तलाश धर्म है।
अमृत की खोज धर्म है। इस जीवन में तो मृत्यु है ही। और जब तक तुम समझते हो, यही जीवन तुम्हारा सब कुछ है, तब तक तुम मृत्यु से भयभीत रहोगे; तब तक तुम ज्वालामुखी पर बैठे हो, किसी भी क्षण मौत हो सकती है। और होगी ही, एक क्षण का भरोसा नहीं है!
फकीर हुआ एक सूफी बायजीद। यात्रा पर जा रहा था तीर्थ की, हज करने जा रहा था। सस्ते जमाने थे; एक पैसे में एक दिन का भोजन और एक दिन का खर्च पूरा हो जाता था। तो उसने एक पैसा जेब में रखा लिया और यात्रा पर निकलने को ही था उसके एक धनपति भक्त ने कहा कि यह तुम क्या कर रहे हो? एक पैसा लेकर हज करने जा रहे हो, कभी सुना? वह साथ में एक थैली ले आया था, जिसमें बहुत अशरफियां थीं। उसने कहा, ये साथ में रख लो। एक पैसे से कहीं हज हुई है! इतनी लंबी यात्रा, आना-जाना, कम से कम छह महीने लगनेवाले हैं।
बायजीद ने कहा, रख लूंगा तुम्हारी थैली भी, लेकिन तुम मुझे पहले पक्का भरोसा दिला दो कि मैं एक दिन से ज्यादा जियूंगा? कल भी मैं रहूंगा। अगर तुम मुझे आश्वासन दे दो कि कल भी मैं रहूंगा, तुम्हारी थैली स्वीकार!
तो उस धनपति ने कहा, मैं कैसे आश्वासन दे सकता हूं कि कल आप रहेंगे? कल
का किसको भरोसा है! तो बायजीद ने कहा, यह एक पैसा आज के लिए काफी है। कल का जब भरोसा ही नहीं तो कल का इंतजाम... ।
बायजीद की भीड़ में एक फकीर और बैठा हुआ था। बायजीद तब ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ था, लेकिन फिर भी ज्ञान के करीब ही करीब रहा होगा, ठीक कगार पर रहा होगा; अभी छलांग नहीं लग गयी थी। तभी तो हज की यात्रा को जा रहा था। कहीं ज्ञानी तीर्थयात्रा को गए हैं! मगर फिर भी समझ गहरी थी, तब तो धनपति के पैसे को कह दिया कि सम्हालकर रख लो, तुम्हारे काम पड़ेगा। मुझे तो कल का भरोसा कोई दिलाये तभी कल कि चिंता हो।
एक फकीर हंसने लगा और भीड़ से उठ गया। बायजीद उसके पीछे दौड़ा और कहा कि तुम हंसे क्यों? उसने कहा, जब एक दिन का भरोसा है तो कल के भरोसे में क्या दिक्कत है? जब एक पैसा रख सकते हो, तो बात तो हो गई। फिर एक पैसा रखो कि करोड़ पैसा रखो, क्या फर्क पड़ता है? आज का भरोसा है? और जब एक पैसे पर भरोसा है तो परमात्मा पर कितना भरोसा है? है ही नहीं!
बायजीद ने वह पैसा भी वहीं गिरा दिया। और कहते हैं, उस पैसे के गिरने
के साथ बायजीद ज्ञान को उपलब्ध हुआ।
एक क्षण का भरोसा नहीं, और इंतजाम कितना बड़ा! इंतजाम करते-करते ही तुम समाप्त हो जाओगे। पैसा, धन तो पेट्रोल की भांति है; वह कोई मंजिल नहीं है। लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं कि वे पेट्रोल इकट्ठा करते चले जाते हैं। उनके घर में पेट्रोल हो जाता है। खुद भी रहने की जगह नहीं रह जाती, वे बाहर हरते

हैं। वे यात्रा की तैयारी कर रहे हैं; क्योंकि जब तैयारी पूरी हो जाए तो यात्रा पर जाएंगे! इस संसार में कोई चीज कभी पूरी नहीं होती, इसलिए वह कभी यात्रा पर नहीं जा पाते। वे पेट्रोल इकट्ठा करते-करते मर जाते हैं।
धन मंजिल नहीं है। धन मार्ग पर विनिमय का साधन है। और धन पर तुम्हारी पकड़ यह बताती है कि तुम्हें कल का बहुत भरोसा है। क्षण भर भी भरोसे का कोई कारण नहीं, मौत किसी भी क्षण द्वार पर दस्तक दे सकती है। इस जीवन मग तो मौत छिपी है। इस जीवन में तो जन्म के साथ ही मौत तुम्हारे भीतर आ गई है। जन्म की घड़ी में ही तय हो गया कि कैसे तुम मरोगे, कब तुम मरोगे। एक-एक क्रोमोसोम, जिससे शरीर बनता है, उसकी उम्र तय है कि वह स Ÿार साल जीएगा कि अस्सी साल जीएगा। बस, उतनी ही तुम्हारी उम्र होगी। थोड़े व्यवस्था से जिए तो थोड़े दिन ज्यादा। थोड़ी अव्यवस्था से जिए तो थोड़े दिन कम। लेकिन आमतौर से उम्र तय हो गई; जन्म के साथ मौत भीतर प्रवेश कर गई है। प्रवेश द्वार पर ही मत बैठे रहो, निकास का मार्ग भी खोजो! उसी को निर्वाण द्वार कहा है बुद्ध ने। वह सहस्रार!
तुम्हारे मस्तिष्क में, आखिरी मस्तिष्क की जगह, जहां हिंदू चोटी उगाते हैं, वह चोटी सिर्फ सहस्रार का प्रतीक है कि वहां केंद्र है। लेकिन चोटी उगाने से कुछ नहीं होता। सारे बाल काट डालते थे, सिर्फ चोटी छोड़ देते थे। वह चोटी तो सिर्फ जगह थी बताने को कि यहां दसवां द्वार है, और इस पर ध्यान रखो। चोटी तो बहुत लोग रखे हुए हैं, ध्यान वगैरह कोई भी नहीं करता। ध्यान तो पहले द्वार पर ही लगा रहता है, चोटी कितनी ही बड़ी हो। उसे चोटी भी इसलिए कहते हैं कि वह शिखर है। वह जीवन का शिखर वहां पर छिपा है, इसलिए चोटी! तुमने शायद कभी सोचा न होगा कि चोटी क्यों कहते हैं। शिखर है, गौरशंकर है वहां। वहीं छिपा है जीवन का आखिरी द्वार, जहां से तुम परमात्मा में प्रवेश पाओगे।
और ये वचन उस दसवें द्वार की उपलब्धि के बाद के हैं। इसलिए बड़े कठिन होंगे समझने में, तर्क मुश्किल डालेगा। विचार कहेगा, यह कैसे हो सकता है! लेकिन तुम जल्दी निर्णय मत करना। अनुभव करने के बाद निर्णय करना। तब तुम भी नाचोगे, जैसा कबीर नाच उठे होंगे।
रस गगन गुफा में अजर झरै।
गगन गुफा दसवें द्वार का नाम है। गगन-गुफा इसलिए कि उसके बाद गगन शुरू होता है, अनंत आकाश शुरू होता है; सीमाएं समाप्त हो जाती है, असीम शुरू होता है; आकार विदा हो जाता है, निराकार शुरू होता है--इसलिए गगन-गुफा।
रस गगन गुफा में अजर झरै... और एक अनंत अमृत-रस उस गगन-गुफा में झर रहा है।
तुमने एक तरह के रस का अनुभव किया है, वह है काम में संभोग का। जब तुम्हारा वीर्य-रस झरता है तब तुम्हें क्षण भर को सुख मालूम पड़ता है। यह जिस रस की बात कर रहे हैं, यह तुम ऐसा समझो कि सारे परमात्मा की तुम्हारे ऊपर वर्षा हो रही है, तुम नहा गए हो उसमें, तुम्हारा रोआं-रोआं नहा रहा है, रोआं-रोआं पुलकित होकर नाच रहा है। और यह अजर है। एक बार शुरू हो गया, फिर अंत नहीं है। यह शाश्वत है। यह क्षण भंगुर नहीं है। यह ऐसा नहीं कि आज वर्षा हो गई, कल सुखा पड़ गया। यह वर्षा तो अभी भी हो रही है, तुम्हें पता नहीं है। वर्षा तो अभी भी हो रही है, तुम तरफ जागे नहीं हो। खजाना तो अब भी है, लेकिन तुमने उस तरफ ध्यान नहीं दिया। यह तो सदा से होती रही है। यह जीवन का स्वभाव है कि वहां अजर अमृत बरसता रहे।
रस गगन गुफा में अजर झरै।
बिन बाजा झनकार उठे जहं, समुझि परै जब ध्यान धरै।
बिन बाजार झनकार उठे जहं... दो तरह की ध्वनियां हैं। एक ध्वनि को कहते हैंः आहत ध्वनि। जैसे मैं ताली बजाऊं तो दो हाथ टकराएं; यह जो ध्वनि पैदा हुई, यह आहत ध्वनि है; दो की टकराहट से हुई। तबला बजाओ कि वीणा बजाओ कि कोई भी वाद्य बजाओ--टकराहट, सब आहत ध्वनि है। लेकिन परमात्मा तो एक है, अस्तित्व तो एक है; वहां तो कोई दूसरा हाथ नहीं है ताली बजाने का। वहां भी एक संगीत है। उस संगीत का नाम अनाहत है। इसलिए फकीर निरंतर कहते रहते हैं, खोजो अनाहत को।

अनाहत का मतलबः एक हाथ की ताली। झेन फकीर जापान में शिष्यों को कहते हैं कि जाओ और खोजो कि एक हाथ से ताली कैसे बजेगी। यह उनकी खास साधना है। साधक को वर्षों लग जाते हैं। वह कई तरकीबें सोचकर लाता है; लेकिन गुरु कह देता है, नहीं, तुझे कहने की जरूरत नहीं, जब बजेगी तो देख ही लूंगा। तुझे बताने की जरूरत नहीं; जब बजेगी, तो तेरा पूरा अस्तित्व बजेगा। रस गगन गुफा में अजर झरै।
बिन बाजा झनकार उठे जहं...
कोई बाजा नहीं, कुछ बज नहीं रहा, कोई टकराहट नहीं--और अनंत ध्वनि का उदघोष हो रहा है। उस ध्वनि को हिंदुओं ने ओंकार कहा है। ओम उस ध्वनि का प्रतीक है।
नानक कहते हैं, एक ओम सतनाम। बस, वह एक ओंकार की ध्वनि है सत्य का नाम है; और उसका कोई नाम नहीं। और सब नाम आदमी के खोजे हुए हैं। ओम शब्द का कुछ अर्थ नहीं होता। ओम शब्द, शब्द ही नहीं, ध्वनि है।
और सारे संसार में जब भी कोई व्यक्ति दसवें द्वार पर पहुंचता है, तो
वह ध्वनि सुनाई पड़ती है। लेकिन इस ध्वनि को भाषा में लोगों ने अलग-अलग लिखा है, यह दूसरी बात है। हिंदुओं ने उस ओम कहा है। मुसलमान, यहूदी, क्रिश्चियन उसे ओमीन कहते हैं, इसलिए ओमीन पर उनकी प्रार्थना पूरी होती है। वह ओम का ही रूप है--दसवें द्वार पर सुनी गई ध्वनि। उसकी व्याख्या बदल सकती है, क्योंकि ध्वनि के साथ एक दिक्कत है कि तुम कैसी व्याख्या करोगे। रेलगाड़ी जा रही हो--छक, छक, छक कहोगे कि भर, भर कहोगे, कि फक, फक कहोगे--क्या कहोगे, यह तुम पर निर्भर है। रेलगाड़ी एक ही जा रही है। और अगर तुम्हें पहले से कोई धारणा है तो वही सुनाई पड़ जाएगा। जैसे हिंदुओं को धारणा है कि ओंकार, ओम्। जब तुम धारणा ही लेकर गए हो, तो तत्क्षण तुम्हें जब वह ध्वनि गूंजेगी, तुम्हें ओम सुनाई पड़ जाएगा। तुमने जो धारणा बना ली होगी, वह धारणा उस ध्वनि को रूप दे देगी। लेकिन ध्वनि के लक्षण सभी फकीरों ने सारी दुनिया में एक ही बताए हैं। और सबसे बड़ा लक्षण तो हैः बिन बाजा इनकार! ... कोई चीज से पैदा नहीं हो रही। इसे थोड़ा समझ लें।
जो चीज किसी से पैदा होगी, वह मरेगी। क्योंकि दो चीजों से चीज पैदा होगी, उसकी सीमा और शक्ति सीमित होगी। मैंने हाथ से ताली बजाई, कितनी ताकत मैं डालता हूं, उतनी देर तक ताली गूंजेगी। ताकत नष्ट हो जाएगी, ताली खो जाएगी। कितने जोर से तुम चिल्लाते हो, उतनी देर तक आवाज गूंजेगी। जितनी ताकत तुमने दी है, उतनी ताकत चुक जाने पर आवाज खो जाएगी। तो जो भी चीज पैदा होती है, पैदा होने के साथ उसकी शक्ति और सीमा निर्णीत हो गई।
समझो कि एक स्त्री और एक पुरुष मिले, दोनों की उम्र परंपरा से, उनके मां-बाप और उनके मां-बाप और उनके मां-बाप सौ वर्ष तक जीते रहे, तो उन दोनों के हाथ से जो बजेगी, जो बच्चा पैदा होगा, वह सौ साल तक जी सकता है। लेकिन एक परंपरा है मां-बापों कि पचास साल में मरते रहे हैं लोग उस घर में, तो उनके हाथ से जो ताली बजेगी, जो बच्चा पैदा होगा, वह पचास साल में मर जाएगा। तो तुम्हारी उम्र करीब-करीब तय की जा सकती है। तुम्हारी पिछली पांच-छह पीढ़ियों की उम्र जोड़ ली जाए, और उसका औसत निकाल लिया जाए, तो तुम्हारी उम्र वही होगी। इसमें बहुत अड़चन नहीं है। तुम्हारी मां-पिता, तुम्हारे मां के पिता-मां, तुम्हारे पिता के मां-पिता, ऐसे एक तीन-चार पीढ़ी पीछे लौटकर तुम सबकी उम्र जोड़ लो। और अगर दस आदमियों को उम्र जोड़ो, दस का भाग दे दो, जो भी उ Ÿार आएगा वह करीब-करीब तुम्हारी उम्र होगी। स Ÿार तो कभी एकह Ÿार है, कभी उनह Ÿार, बस वही तुम्हारी उम्र होगी। क्योंकि दो हाथ से जो ताली बजी है, हाथ कितनी ताकत दे सकते हैं, उतने ही दूर तक जाएगी।
जब भी कोई चीज पैदा होती है, तो पैदा होने में ही उसका अंत तय हो जाता है--कितनी शक्ति... ।
अनाहत कभी अंत न होगा, क्योंकि वह किसी से पैदा ही नहीं हो रहा। इसलिए परमात्मा को हम सनातन कहते हैं, शाश्वत कहते हैं, क्योंकि वह किसी से पैदा नहीं हुआ है। अगर वह पैदा हुआ है तो वह भी मरेगा। ब्रह्मा, विष्णु, महेश मरेंगे, क्योंकि वे पैदा हुए हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध मरेंगे। क्योंकि वे पैदा हुए हैं। लेकिन जिससे वे पैदा हुए हैं, और जिसमें वे डूब जाएंगे, मरकर लीन हो जाएंगे, वे कभी नहीं मरेगा। वही ब्रह्म है। वही एक ओंकार सतनाम!

बिन बाजार झनकार उठे जहं, समुझि परे जब ध्यान धरै। जब समझ में आने लगता है, तब आदमी उस पर ध्यान करता है। बज तो वह सदा रहा है। वह झनकार तो गूंज ही रही है। वह झनका ही तो तुम हो। वह झनकार इस समय भी तुम्हारे भीतर गूंज रही है; लेकिन जब समुझि परै, जब समझ में आ जाए तो आदमी उस तरफ ध्यान देता है। और स्मरण रखना, जिस तरफ तुम ध्यान दोगे, वही सत्य होगा।
एक युवक खेल रहा है हाकी के मैदान पर, पैर में चोट लग गई, खून बह रहा है। लेकिन वह खेल में लीन है। सारे दर्शकों को दिखाई पड़ रहा है कि पैर से खून बह रहा है, लकीरें बन गई हैं जमीन पर; लेकिन वह खेलने में लीन है, उसे पता ही नहीं कि दर्द हो रहा है, उसे पता नहीं कि खून बह रहा है। खेल खतम हुआ, एकदम पता चला। वह बैठ गया। पैर से खून बह रहा है, उसका चेहरा पीला पड़ गया। पहली दफा दुख का पता चला।
क्या हुआ? चोट लगी तब पता न चला! ध्यान वहां न था; ध्यान खेल में लगा था। खून बहा तब पता न चला, ध्यान वहां न था। ध्यान खेल में लगा था। जिस तरफ तुम्हारा ध्यान होगा, उसका ही पता चलेगा। इसलिए इस दुनिया में हर आदमी को अलग-अलग चीजें पता चलती हैं।
अगर एक कवि आ जाए बगीचे में, तो उसे कुछ और बातें पता चलती हैं। एक वैज्ञानिक आए, उसे कुछ और पता चलता है। दोनों को कोई मेल ही न होगा। अगर दोनों जाकर बताए कि एक ही बगीचे को देखकर लौटे हैं, तो कोई भरोसा न कर सकेगा। क्योंकि कवि को सौंदर्य दिखाई पड़ेगा। काव्य का जन्म होगा। एक रोमांस का अनुभव लेकर वह लौटेगा। वैज्ञानिक को न कोई कविता का जन्म होगा, न कोई रोमांस का भाव ले कर लौटेगा। वह शायद कुछ नये पौधों की जाति, उन के नाम, क्लासिफिकेशन, कौन-सा पौधा किन खनिज द्रव्यों से मिलकर बनता है, इस सबका पता लेकर लौटेगा। इन दोनों की डायरी देखकर आप पता न लगा सकेंगे कि ये एक ही बगीचे से लौटे हैं। यह असंभव है। कहते हैं कि चमार जब किसी को देखता है तो आदमी को नहीं देखता, जाते को देखता है, और जूते से आदमी को पहचान लेता है। जूते की हालत सब बता देती है, आदमी की पूरी हालत बता देती है कि आर्थिक हालत कैसी चल रही है, जूता कह देता है। दुकान ठीक चल रही है कि नहीं चल रही है, जूता देता है। पत्नी से बन रही है कि नहीं बन रही है, जूता कह देता है। जूते की भी कथा है। चमार पढ़ना जानता है।
डाक्टर जब किसी को देखता है, तो आदमी नहीं दिखाई पड़ता, बीमारी दिखाई पड़ती हैं। देखते से ही तुम डाक्टर के घर में प्रविष्ट हुए कि बीमारी दिखाई पड़ती है। तुम चाहे मित्र की तरह ही मिलने आए हो... ।
एक बड़े चित्रकार ने, मानेक नाम था, एक चित्र बनाया--एक पोट्रेट एक गरीब आदमी का, एक भूखे आदमी का--बड़ी पीड़ा से कराहता हुआ! और अपने एक मित्र डाक्टर को निमंत्रित किया दिखाने को। डाक्टर दस मिनिट तक देखता रहा।
मानेक भी हैरान हुआ। उसने कहा तुम्हारी चित्रकला में इतनी रुचि, मुझे कभी पता नहीं था! उसने कहा, कैसी चित्रकला! इस आदमी को अपेंडिक्स का दर्द है। यह जो चित्र बनाया है। अपेंडिसाइटिस की तकलीफ है।
डाक्टर देखेगा वही, जो देख सकता है। चमार देखेगा वही, जो देख सकता है। जहां ध्यान है, वही दिखाई पड़ता है। ध्यान की तुम्हारा सत्य है। तुम्हारे भीतर भी बह रही है रस की धार, पर तुम खेल में लगे हो। कोई धन के खेल में लगा है, कोई पद के खेल में लगा है। तुम खेल में लगे हो, वह रसधार तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती। तुम ठीकरे इकट्ठे कर रहे हो। तुम बाहर उलझे हो। जब तुम सुलझोगे बाहर, तब ध्यान जाएगा। बाहर से सुलझने का नाम, समझ।
समझ का मतलब बहुत ज्यादा सूचनाओं का पता चलना नहीं। समझ का मतलब है, खेल की समझ। समझ का मतलब है, बाहर के उपद्रव की समझ; समझ का मतलब है, अब बाहर से चुके; देख लिया बहुत, अब आंख भीतर बंद करेंगे; खेल लिया बहुत, अब सुसताएंगे, विश्राम करेंगे, दौड़ लिए बहुत, अब जरा रुकेंगे! जिस दिन तुम्हें यह दिखाई पड़ जाएगा कि बाहर की दौड़ का कोई भी फल नहीं है--कितना ही पा लो, कुछ भी मिलता नहीं; कितना ही इकट्ठा कर लो, सब खाली रहता है; धन का ढेर लग जाता है, तुम गरीब बने रहते हो--जिस दिन यह समझ पड़ जाएगा, उस दिन ध्यान भीतर जाएगा।
कबीर कहते हैं, समुझि परै जब ध्यान धरै! बिन बाजा झकार उठे जहं।
बिना ताल जहं कमल फुलाने।

कोई सरोवर नहीं है, लेकिन कमल खिल रहे हैं। तेहि चढ़ि हंसा केलि करै।
कमल पूरब में बहुत गहरा प्रतीक है। और कमल का फूल है भी बहुत रहस्यपूर्ण। बाहर जो कमल का फूल है वह भी रहस्यपूर्ण है। तो भीतर के कमल का तो तुम अंदाज नहीं लगा सकते। बाहर के कमल की कुछ खूबियां समझ लो, क्योंकि बाहर के कमल में भी भीतर के कमल की थोड़ी सी झलक है।
बाहर के कमल की पहली तो खूबी यह है कि यह मिट्टी से, गंदी मिट्टी से पैदा होता है--और उस जैसा पवित्र फूल नहीं है! कूड़ा-करकट, कचरा, कीचड़--उससे कमल पैदा होता है; लेकिन कमल जैसी पवित्र पंखुरी तुम कहीं भी न पा सकोगे। कमल जैसी कोमल, ताजी... और कीचड़ से पैदा होता है! तो कमल बड़े से बड़ा रूपांतरण है। कीचड़ से कमल--बड़े से बड़े क्रांति है। तो तुम अपनी कीचड़ से परेशान मत होना। माना कि कीचड़ है, बहुत कीचड़ है--उस पर तुम ध्यान भी मत देना। भीतर कमल भी खिल रहे हैं उस कीचड़ में। तुम ध्यान कमल पर देना। चोरी है, बेईमानी है, झूठ है, फरेब है, ईर्षा है, द्वेष है, घृणा है, माया, मोह-मत्सर है--बहुत कीचड़ है। लेकिन कीचड़ है तो कमल भी होगा। तुम जरा भीतर ध्यान देना--बाहर कीचड़, भीतर कमल। और कीचड़ को मिटाने में मत लगना। क्योंकि उसी कीचड़ से कमल को पोषण मिल रहा है। कीचड़ के दुश्मन भी मत हो जाना; तुम तो कमल की तलाश करना। और जिस दिन तुम कमल को पहचान लोगे उस दिन कीचड़ को भी धन्यवाद दोगे। उस दिन तुम कहोगे, इस शरीर का भी मैं अनुगृहीत हूं, क्योंकि इसके बिना यह कमल कैसे खिलता! अगर तुम कीचड़ होते तो किसको यह ख्याल उठता कि कीचड़ को बदलें; किसको यह ख्याल उठता कि रूपांतरण करें; किसको यह ख्याल आता कि क्रांति करें; किसको यह ख्याल आता कि शुभ, सत्यम्, सुंदरम की यात्रा करें? यह ख्याल कमल का है।
तुम भीतर ध्यान दो, और तुम्हें वहां कमल खिलते दिखाई पड़ेंगे।
तो पहली तो खूबी है कमल की कि गंदी से गंदी कीचड़ से शुद्धतम, पवित्रम पंखुडियां उभरती हैं। और अगर कीचड़ में कमल छिपा है, तो माया में ब्रह्म छिपा है; शरीर में आत्मा छिपी है। दूसरी कमल की खूबी है कि रहता है यानी में, लेकिन पानी छूता नहीं; रहता है पानी में लेकिन अस्पर्शित यही तो साधक की यात्रा; रहे संसार में, और अस्पर्शित! पानी तो चारों तरफ है, लेकिन कमल ऊपर उठ जाता है पानी के। कीचड़, पानी, सबको पीछे छोड़ देता है; भाग नहीं जाता, रहता वही है--ऊपर उठ जाता है। और फिर वर्षा का पानी भी गिरे, ओस का पानी भी गिरे, कमल को छूता नहीं। बूंद आती है और जाती है--सरक जाती है।
कमल के पास बैठकर कभी कमल से सरकती बूंद को देखना, उस पर ध्यान करना।
एक बूंद गिरती है, छूती भी नहीं, दूर ही दूर बन रहती है। इतने पास होकर भी! कमल भी पंखुडी पर होती है। फिर भी कहीं कोई स्पर्श नहीं होता। बूंद ऐसी लगती है जैसे पानी की नहीं है, मोती है। क्योंकि अगर स्पर्श होता तो बिखर जाती, फैल जाती। स्पर्श होता नहीं, बंद ही रह जाती है। और जैसे ही वजन होता है, वैसे ही अपने-आप गिर जाती है। कमल अछूता रह जाता है। कमल अलग रह जाता है। कमल प्रविष्ट ही नहीं होता। बूंद अपने ही भार से गिर जाती है।
संसार अपने ही भार से गिर जाएगा। तुम परेशान मत होओ। क्रोध अपने ही भार से गिर जाएगा, तुम परेशान मत होओ। लोभ अपने ही भार से गिर जाएगा, तुम परेशान मत होओ। गिराने की कोई चेष्टा भी मत करो। तुम कमलवत हो जाओ! बस तुम कमल जैसे हो जाओ! छूने न दो चीजों को। क्रोध आए दूसरी बार अब, तो तुम भीतर अपने का अस्पर्शित रखो, बाहर नाटक करो क्रोध का; क्योंकि शायद जरूरत है जिंदगी में क्रोध के नाटक के बिना जिंदगी को चलाना मुश्किल है। कभी उसका उपयोग भी है। करो क्रोध--नाटक की तरह, अभिनेता की तरह--और भीतर अछूते बने रहो।
ये दो खूबियां कमल की हैं। ये दोनों खूबियां भीतर के कमल की भी हैं। फर्क एक है कि बिना ताल जहं कंवल फुलाने। वहां कोई ताल नहीं है--और कमल खिलता है। क्योंकि ताल में जो कमल खिलेगा वे मर जायेगा; आज नहीं कल, समाप्त होगा। बिना ताल के जो खिलेगा, अकारण जो खिलेगा, वह सदा रहेगा।
अकारण सदा होने का सूत्र है।
तुम्हारा किसी से प्रेम हुआ, अगर उसमें कोई कारण है, वह समाप्त होगा।
वह कारण कोई भी हो--धन हो, सौंदर्य हो, पद-प्रतिस्रा हो--कारण कोई भी होः जो प्रेम कारण से पैदा हुआ, वह समाप्त होगा। अकारण प्रेम सदा रहेगा। अगर तुम

प्रार्थना भी कारण से करते हो, वह भी मुरझा जाएगी। कारण पूरा हो जाएगा, फिर क्यों प्रार्थना करोगे!
एक छोटे बच्चे को उसकी मां कह रही थी कि तूने रात की प्रार्थना कर ली
या नहीं? ईसाई घर था, मैं वहां मेहमान था। उस बच्चे ने कहा, लेकिन अभी कोई जरूरत ही नहीं है। सब ठीक ही चल रहा है, तो प्रार्थना किसलिए करनी?
जब सब ठीक चलता है, तब तुम प्रार्थना क्यों करोगे? कारण से उठी प्रार्थना, कारण के पूरे होते ही मुरझा जाएगी। अकारण प्रार्थना!
अकारण प्रार्थना तुमने कभी की है? तभी तुम्हें प्रार्थना का रस मिलेगा। तुम कर रहे हो, क्योंकि करने में आनंद है, कोई कारण नहीं है। अकारण प्रेम तुमने कभी किया है? तब तुम्हारा प्रेम ही दिव्य का द्वार बन जाएगा। अकारण तुम जो भी कर सकोगे, वही साधना है। रास्ते पर एक आदमी गिर पड़ा है, तुमने अकारण उठा दिया। अगर कोई भी कारण है, इतना भी कारण है कि लोग देख रहे हैं, कहेंगे कि कितना सेवा भावी है--इतना भी नम में भाव हो, तो यह साधना न रही। कोई नदी में डूब रहा है और तुम कूदे और तुमने उस बचा लिया; और तुमने इतना भी चाहा कि से कम वह धन्यवाद दे दे; अगर उसने धन्यवाद न दिया, तुम उदास और दुखी हुए; और तुमने सोचा मैंने जान दांव पर लगाई, इस आदमी ने धन्यवाद भी न दिया--तो यह साधन नहीं है। फिर तुम संसार को ही फैला रहे हो। उसके नये-नये ढंग हैं।
एक स्त्री तालाब में डूबकर। मरी। मुल्ला नसरुद्दीन किनारे पर खड़ा था, खड़ा ही रहा। बाद में भीड़ इकट्ठी हो गई। जब लाश निकाली गई, नसरुद्दीन से पूछा कि तुम यहां मौजूद थे, चाहते तो बचा लेते। नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने कहानियां भी पढ़ी हैं, फिल्में भी देखी हैं। मैं तो उसे बचा लेता। लेकिन अगर वह विवाह का प्रस्ताव करती, जैसा सभी फिल्मों में होता है, फिर मुझे उससे कौन बचाता?
कारण--इस तरह या उस तरफ--और तुम संसार में हो! अकारण--और तुम संसार के बाहर हुए! क्योंकि परमात्मा का एक ही गुण-धर्म है कि वह अकारण है। उसका कोई कारण नहीं है। तुम यह नहीं पूछ सकते कि परमात्मा क्यों है। यह बात ही व्यर्थ है। तुम यह नहीं पूछ सकते कि अस्तित्व क्यों है। यह बस है--इसका कोई कारण नहीं है।
अकारण तुम अगर हो गए, तो तुम अस्तित्व जैसे हो गए।
अकारण की सूचना कबीर देते हैंः बिना ताल हजं कंवल फुलाने, तेहि चढ़ि हंसा केलि करै।
और जिस दिन तुम्हारे जीवन में अकारण फूल खिलेंगे, उस दिन तुम्हारी आत्मा हंस की तरह उन पर क्रीड़ा करेगी। तुम्हारी आत्मा की क्रीड़ा तभी शुरू होगी, तुम्हारी आत्मा की प्रफुल्लता, उत्सव तभी शुरू होगा, जब जीवन में अकारण कमल खिलें। नहीं तो तुम दुख ही पाओगे। तुम्हारी आत्मा, तुम्हारा हंस रोता ही रहेगा। कारण से अगर तुम जिये, तो तुम्हारी आत्मा तरसती ही रहेगी, उसकी तृषा न बूझेगी। अकारण तुम जिये कि फिर भीतर का जो हंस है, फिर वह क्रीड़ा कर पाता है। उस क्रीड़ा करनेवाले हंस को ही हमने परमहंस कहा है। हंस तो सभी हैं--रोते, परेशान होते, व्यर्थ ही दीन हुए, व्यर्थ ही भीख मांगते; मिलता भी कुछ नहीं है।
जिस दिन तुम्हारे भीतर अकारण कमल खिलता है, उसी दिन तुम्हारा हंस परमहंस हो जाता है।
बिन चंदा उजियारी दरसै, जहंŸाहं हंसा नजर परै।
और जहां तक तुम्हारी भीतर की आंख जाती है... और उसके जाने की कोई सीमा नहीं, असीम है। क्योंकि भीतर की आंख के लिए कोई बाधा नहीं है। वह वहां तक जाती है जहां तक अस्तित्व है--और अस्तित्व सब तरफ है, सब जगह है। अस्तित्व कहीं समाप्त नहीं होता। एक जगह नहीं आती जहां लगा हो कि बस, रुक जाओ, रास्ता बंद है। अस्तित्व अनंत है, असीम है। और उस भीतर के हंस की आंख सब तरफ जाती है, सब दिशाओं में डोलती है।
बिना चंदा उजियारी दरसै, जहंŸाहं हंसा नजर परै। और जहां तुम नजर जाती है, वहां तक एक उजाला दिखाई पड़ता है--जो बिना चांद के है। इसे थोड़ा समझ लें। एक तो रोशनी है सूरज की। सूरज की रोशनी में रोशनी भी है, ताप भी है; गर्मी भी है, उष्णता भी है। रोशनी तो है, लेकिन रोशनी में पीड़ा है। तुम

ज्यादा देर उसे न झेल सकोगे। और तुम सूरज की तरफ आंख भी न कर सकोगे। और उन ताप में एक पीड़ा है जो जल्दी ही तुम्हें झुलसा देगी। चांद की रोशनी में फर्क हैः चांद में रोशनी तो है, लेकिन शीतल है। तुम चांद की तरफ देख भी सकते हो। और तुम चांद की रोशनी में घंटों बैठ सकते हो--और तुम शीतल होते जाओगे, तुम शांत होते जाओगे।
ध्यान सूरज की रोशनी जैसा नहीं है; ध्यान चांद की रोशनी जैसा है।
दूसरी बातः कबीर कहते हैं, वहां चांद भी नहीं है, बस रोशनी है--बिना स्रोत, बिना कारण। क्योंकि चांद की रोशनी भी होगी तो चांद बुझेगा, तो चांद ढलेगा। तो कभी पूर्णिमा होगी, कभी अमावस होगी। कभी चांद दिखेगा, कभी नहीं दिखेगा। बिना स्रोत की रोशनी सदा रहेगी।
दसवें द्वार तारी लागी, अलख पुरुष जाको ध्यान धरै। यह दसवें द्वार तारी लागी... दसवां द्वार है, सहस्रार। वहां तारी लागी। यह तारी शब्द बड़ा मधुर है। शब्दकोश में उसका जो अर्थ है, उससे पूरी बात समझ में न आएगी। क्योंकि शब्दकोश तो कहेगाः नींद लगी--तारी लगी! लेकिन तारी का अर्थ सिर्फ नींद नहीं है। तारी का अर्थ हैः एक सम्मोहित चिŸा की दिशा। जैसे तुम अपनी प्रेयसी को देखते हो, जैसे मजनू ने लैला को देखा होगा--वह तारी है! तारी का मतलब यह है कि सारी दुनिया का होश खो गया, बस लैला रह गई; सारी दुनिया के प्रति मजनू सो गया, सिर्फ लैला के प्रति जागा रहा है।
अगर तुमने किसी हिप्नोटिस्ट को, सम्मोहन करनेवाले को देखा हो, तो वह
जब आदमी को सुला देता है, सम्मोहित करके, तो सबके प्रति तो सो जाता है, लेकिन सम्मोहन करनेवाले के प्रति जगा रहता है। वह अगर कहता है कुछ तो वह सुनता है, वह कहता है, उठकर खड़े हो जाओ, दौड़ो, तो वह दौड़ता है। लेकिन अगर कोई और बोलेगा, तो वह नहीं सुनेगा। सबके प्रति सो गया, जिसने सम्मोहित किया है बस, उसके प्रति जागा रह गया। ध्यान अपलक एक की तरफ लग गया।
तारी का मतलब है, सारे संसार के प्रति नींद हो गई, जैसे संसार है ही नहीं, और सिर्फ परमात्मा की तरफ आंख अटकी रह गई। अपलक, पलक झपती भी नहीं। यह होगा ही। क्योंकि जब दसवें द्वार पर पहली दफा कोई खड़ा होता है, और उसे विराट सौंदर्य को देखता है, उस अनंत ध्वनि को सुनता है, उस अमृत की धार में स्नान करता है, पहली बार ब्रह्मानंद का रस चखता है, तारी लग जाती है। तारी लग गई। अब सब संसार भूल गया।
ऐसा रामकृष्ण को बहुत बार हो जाता था कि वे छह-छह दिन तक बेहोश पड़े रह जाते थे--वह तारी की दशा थी। उनको कहीं भी लग जाती। वे रास्ते पर चल रहे हैं, और किसी ने कह दिया जय राम जी--उनमी तरी लग लग गई, वे वही रास्ते पर खड़े रह गए; हाथ-पैर वैसे ही रह गए। लोग तो समझते कि विक्षिप्त हो गए। उठाकर घर लाना पड़ता। घंटों लग जाते तब तो होश में आते। कोई उनसे पूछता कि क्या हो जाता है, तो वे कहते ये शब्द ऐसे हैं कि याद आ जाती है। राम! ... और मैं भीतर चला गया। वे दसवें द्वार पर पहुंच गए। यह शब्द जैसे चाबी हो गया। इसने एकदम दसवां द्वार खोल दिया। और जब कोई दसवें द्वार पर पहुंच जाता है, तो संसार से खो गया। वह रास्ते पर खड़ा हो, खतरा हो ट्रैफिक का कि कार में दबेगा कि बस में, कोई फिकर नहीं--वह वहीं खड़ा ही रहेगा।
रामकृष्ण को उनके भक्त जब कहीं ले जाते थे, तो ख्याल रखते थे रास्ते में, कोई परमात्मा का नाम न ले दे! तो रास्ते में एक उपद्रव हो जाता है। और लोगों की तो कुछ समझ नहीं। लोग समझते हैं, यह पागल हो गया, दीवाना है! रामकृष्ण को लोग उत्सव, जलसों में नहीं बुलाते थे। क्योंकि यदि वह वहां पहुंच जाए तो वे खुद ही जलसा हो जाए। किसको रोको, कोई कुछ कह दे!
किसी के घर शादी थी। भक्त थे रामकृष्ण के, उनको बुलाया। पहले ही वे प्रार्थना कर गए थे कि आप ख्याल रखना, क्योंकि शादी का वक्त है। पर रामकृष्ण कैसे ख्याल रख सकते हैं! ख्याल रखने वाला कौन! जब तारी लग जाती तो कैसा ख्याल! कबीर ने कहा है कि पूरी मधुशाला पी गया हूं, और तुम ख्याल की बात करते हो! थोड़ी-बहुत शराब नहीं पी है--परी मधुशाला... । रामकृष्ण गए। और जैसे ही वे दरवाजे में प्रवेश कर रहे थे, किसी ने कह दिया, जय राम जी--वे वहीं खड़े हो गए! छह दिन तक! सब शादी-विवाह ठंडा हो गया। दूल्हा-दुल्हन को लोग भूल गए, उनकी फिकर करनी जरूरी हो गई। वे गिर पड़ते और जब भी उठते, रोते उठते। आंख से आंसुओं की धार बह रही और चिल्लाते उठते कि मां, मुझे दूर

क्यों किए दे रहे है? क्यों द्वार बंद हो रहा है? क्यों मुझे वापिस भेजा जा रहा है? उठते और रोते।
तारी का अर्थ हैः दसवें द्वार का सम्मोहन। वहां से परमात्मा दिखता है। जिसकी आंख उस पर पड़ गई, सारा संसार खो जाता है। शुरुआत में तो चाहिए साथी-संगी, भक्त, जो ध्यान रख सके; अन्यथा वह आदमी मर जाएगा। क्योंकि वह छह दिन बेहोश पड़ा... पानी भी देना पड़ता है मुंह में, दूध भी देना पड़ता, पंखा भी करना पड़ता, ओढ़ाना भी पड़ता। उसे तो कुछ भी पता नहीं। वह इस दुनिया में है ही नहीं। लाश पड़ी है इस दुनिया में। वह तो किसी और देश में उड़ गया! कबीर कहते हैं--चल हंसा वा देश--वह जो दूसरा देश है, चल वहां!
नानक एक गांव से गुजर रहे थे। और हंस उड़ गए आकाश में। सरोवर के किनारे खड़े थे। और हंसो की एक कतार उठी और नानक उनके पीछे भागने लगे। मरदाना, उनका भक्त साथ था। उसने बहुत रोकने की कोशिश की कि यह क्या कर रहे हो; लेकिन वह रुके नहीं। मरदाना भी पीछे भागता रहा। जब तक हंस न रुक गए, तब तक नानक न रुके। लगता है हंस भी समझे। हंस रुक गए। नानक उनके पा पहुंच गए। मरदाना तो डरा कि वह पास जाएंगे तो वह फिर उड़ जाएगा, मगर वे नहीं उड़े। नानक उनके बीच बैठ गए। और आंखों से आंसुओं की धार बह रही है। और उन्होंने जो वचन कहे, वे बड़े अदभुत थे। उन्होंने कहा, हंसो, तुम तो बड़े दूर आकाश में उड़ते हो, तुमने जरूर उस बनानेवाले को कभी देखा होगा! तुम तो बड़ी-बड़ी दूर की यात्रा पर जाते हो--चल हंसा वा देश--तुमने जरूर मेरे बनानेवाले को देखा होगा! मैं उसकी तलाश में हूं, कुछ खोज-खबर तो मुझे दो, कुछ पता-ठिकाना! फिर आंसू बह रहे हैं और वे वहीं रुके हैं। और एक परम मस्ती ने उनको घेर लिया।
मरदाना को वे हमेशा साथ रखते थे। मरदाना एक संगीतज्ञ था। जैसे ही नानक खोने लगते, वह अपना एकतारा छेड़ देता। वह एकतारा तरकीब थी उनको वापिस लाने की। वह मरदाना के एकतारा को सुनकर, तत्क्षण वापिस आ जाते थे। वह कुंजी थी। नहीं तो वे दसवें द्वार पर अटक जाएं, तो जो रामकृष्ण की हालत होती थी, वह नानक की होती।
लेकिन रामकृष्ण के पास मरदाना जैसा कोई कुशल कलाकार नहीं था, क्योंकि
वह वही धुन बजाता था, जो वापिस लौटा ले। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे नानक वापिस आ जाते, स्वस्थ हो जाते, शरीर में हो जाते। मरदाना को उन्होंने जीवनभर साथ रखा। मरदाना मुसलमान था, नानक हिंदू थे। मंदिर में भी जाते तो तभी जाते जब मरदाना साथ जा सके, क्योंकि मंदिर में तारी लग जाए! अगर कोई मंदिर कहता कि मुसलमान को न जाने देंगे तो वह मंदिर नानक के जाने के लिए बंद थे।
तारी का अर्थ है, जब कोई दशम द्वार पर खड़ा होगा। जब कोई दसवें द्वार के आगे निकल जाता है, तब फिर तारी नहीं लगती। बुद्ध और महावीर को तारी नहीं लगती। इस दसवें द्वार पर खड़े हो कर जब कोई देखता है, उस अनंत के सौंदर्य को, तब तारी लगती है। इसलिए याद रखना इस बात को। रामकृष्ण को जैसी बेहोशी थी, ऐसी बुद्ध और महावीर के जीवन में कभी नहीं आई। दसवें द्वार पर रुककर उन्होंने देखा नहीं। वे तो सीधे उतर गए, द्वार पर ध्यान ही नहीं दिया। द्वार के पार कौन है, उस तरफ भी नहीं देखा--वे चले ही गए। वे खुद ही एक हो गए उसके साथ। फिर तारी नहीं लगती, क्योंकि द्वैत चाहिए, तारी लगने को। परमात्मा अलग, मैं अलग। मैं अपने घर पर खड़ा हूं। परमात्मा मुझे दिखाई पड़ रहा है--तब तारी लगती है। जब मैं डूब ही गया परमात्मा में, एक हो गया, तब तारी नहीं लगती। तारी किसकी लगेगी? तारी भक्त की लगती थी, भगवान की नहीं। तो इसलिए यह एक बड़ी बेबूझ घटना है। लोग पूछते हैं कि रामकृष्ण को जैसा होता था, वैसा बुद्ध को क्यों नहीं हुआ? महावीर को क्यों नहीं हुआ? या तो राम-कृष्ण गलत हैं, या बुद्ध और महावीर गलत हैं। कोई भी गलत नहीं है। रामकृष्ण दसवें द्वार पर खड़े होकर झलक ले रहे हैं। और वह भक्त की मनोदशा है। भक्त कहता हैः हे भगवान थोड़ी दूरी बनाए रखना, ताकि मैं तुझे देख सकूं, और तेरा रस पी सकूं, और तेरे सौंदर्य को निहार सकूं, थोड़ी दूरी बनाये रखना! भक्त भगवान होना नहीं चाहता। भक्त कहता हैः आखिर तक थोड़ा फासला बनाए रखना। मैं तेरे सिंहासन के पास आ जाऊं, लेकिन तेरे चरणों को छुऊं--बस इतना काफी है। जन्मों-जन्मों तक भक्त रहूं।

निश्चित ही बड़ा अपरंपार सौंदर्य है, जो ज्ञानी को नहीं मिलता, जो भक्त
को मिलता है; क्योंकि भक्त थोड़ा फासला बनाए रखना है। और कहता हैः तुम भगवान, मैं भक्त। तुम मालिक, मैं दास।
इसलिए कबीर बार-बार कहते हैं, कहे दास कबीर। मालिक नहीं-- दास। तुम्हारे चरण पकड़ लूं, बस इतनी मेरी मंजिल। वही मेरा बैकुंठ, वही मेरा मोक्ष!
भक्तों ने गाया है कि मैं मोक्ष नहीं चाहता; मुझे तुम्हारे चरणों की सेवा चाहिए। तो भक्त दसवें द्वार पर रुकता हैः उससे आगे नहीं बढ़ता; क्योंकि उससे आगे बढ़ा कि सागर में गया। जैसे गंगा वहीं रुक जाए जहां से सागर में गिरती है, और वहां से खड़े होकर सागर को देखे। यह तो नानक, कबीर और रामकृष्ण की दशा है।
बुद्ध और महावीर सीधे सागर में चले जाते हैं; वे सागर हो जाते हैं। वहां भक्त और भगवान का कोई फासला नहीं रह जाता। वे स्वयं भगवान हो जाते हैं। फिर तारी नहीं लगती--तारी किसकी लगे, किस पर लगे? द्वैत खो गया, तारी खो गई।
दसवें द्वार तारी लागी, अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।
काल कराल निकट नहिं आवै, काम-क्रोध-मद-लोभ जरै।।
और इस दसवें द्वार पर अब न तो मौत पास आती; क्योंकि पहले द्वार पर मौत है, दसवें द्वार पर अमृत है। पहले द्वार पर जीवन-मौत, दोनों हैं। दसवें द्वार पर, जीवन के पार जो जीवन है--जिसका कोई जन्म नहीं, जिसका कोई अंत नहीं--महाजीवन है।
काल कराल निकट नहिं आवै, काम-क्रोध-मद-लोभ जरै... और अब काम, क्रोध, मद, लोभ सब अपने-आप जल गया। हटाना नहीं पड़ता, लड़ना नहीं पड़ता। वे तो सब पहले द्वार के अनुषांगिक अंग हैं। जो पहले द्वार पर खड़ा है, काम के द्वार पर जो खड़ा है, उसे क्रोध भी होगा, मद भी होगा, लोभ भी होगा। क्योंकि जब तक कामना है, जब तक तुम क्रोध से कैसे मुक्त होओगे? जो भी तुम्हारी कामना में बाधा डालेगा, उसी पर क्रोध आएगा। तब तक तुम मद से कैसे मुक्त होओगे? क्योंकि अगर मद से तुम मुक्त हो गए, बेहोशी से मुक्त हो गए, तो कामवासना में कौन गिरेगा? तब तक तुम लोभ से कैसे मुक्त होओगे? क्योंकि लोभ का इतना ही अर्थ है, कामवासना को पूरी करने का साज-सामान जुटाना। अगर तुम झोपड़े में हो तो बहुत सुंदर स्त्री न पा सकोगे। सुंदर स्त्री पाने के लिए महल चाहिए। झोपड़े में हो तो झोपड़े के लायक स्त्री मिलेगी।
तो लोभ का अर्थ इतना ही है कि कामवासना ठीक से पूरी हो सके, उसका इंतजाम जुटाना। जब तक काम है तब तक क्रोध, लोभ सब जारी रहेंगे। काम कैसे मिटेगा? लड़-लड़ कर कभी नहीं मिटता। जिसकी जीवन-ऊर्जा दसवें द्वार पर पहुंच जाती, वह अचानक पाता है, सब जल गया! अब न काम है, न क्रोध है, न लोभ है। जुगत-जुगत की तृषा बुझानी... और जन्मों-जन्मों की जो प्यास थी वह बुझ गई। क्योंकि जिसकी तलाश तुम संसार में कर रहे हो, वह संसार में है नहीं। तो प्यास तो बनी ही रहती है। कितना ही पियो इस पानी को, प्यास बुझती नहीं। जीसस के जीवन में उल्लेख है। एक कुएं के पास गए। राह से गुजरते थे। एक औरत पानी भरती थी। जीसस ने कहा कि मुझे पानी पिला दे, मैं बहुत प्यासा हूं। धूप थी, लंबी यात्रा थी। दूर गांव से चलकर आए थे। उस स्त्री ने कहा, क्षमा करें, लेकिन मैं अछूत जात की हूं, छोटी जात की हूं। और बता देना उचित है।
मेरे हाथ का छुआ पानी बड़ी जात के लोग नहीं पीते।
जीसस ने कहा, तू उनकी फिकर छोड़। और अगर तू मुझे पानी पिलाएगी इस कुएं का, तो मैं तुझे उस कुएं का पानी पिलाऊंगा कि फिर प्यास कभी लगती नहीं। मैं तुझे वह पानी पिला सकता हूं कि उसे पीने के बाद प्यास फिर कभी लगती नहीं। जीसस जिस कुएं की बात कर रहे हैं, वह दसवां द्वार है। उस दसवें द्वार
पर जो खड़ा हो जाता--जुगत-जुगत की तृषा बुझानी, कर्म-कर्म अध-व्याधि टरै--सब पाप, कर्म इत्यादि सब समाप्त हो गए, सब जल गए।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहूं न मरै। और इस दसवें द्वार को जिसने जान लिया, वह अमर हो गया। उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है।

धर्म अमृत की खोज है। अमृत दसवें द्वार का अनुभव है। कैसे तुम्हारी ऊर्जा, तुम्हारी जीवन शक्ति, पहले द्वार से उठे और दसवें तक पहुंच जाए--यही सारी ध्यान-विधियों का लक्ष्य है।
यहां हम कुंडलिनी ध्यान का प्रयोग कर रहे हैं। वह ध्यान तुम्हारी ऊर्जा को पहले द्वार से उठा कर दसवें तक ले जाने का मार्ग है। इसलिए पहले दिस मिनिट तुम शरीर को कंपाते हो। कंपाने का अर्थ है कि जो-जो ऊर्जा जहां- जहां दबी पड़ी है, वह पिघल जाए; जहां-जहां रुकी पड़ी है, वहां-वहां से गतिमान हो जाए। अगर तुमने ठीक से शरीर को दस मिनिट संपूर्ण भाव से कंपाया तो सारी दबी हुई ऊर्जा प्रकट हो जाएगी, बहने लगेगी।
फिर दूसरे चरण में नृत्य है। नृत्य का अर्थ है कि जो ऊर्जा अब फैल गई
है सब तरफ, वह आनंद भाव से रूपांतरित हो, तुम नाचो; जैसे तुम एक उत्सव में हो; जैसे कोई महा घटना घटी; जैसे तुम्हारे जीवन में कोई प्रकाश उतरा! तुम नाचो आनंद भाव से! क्योंकि जितने तुम आनंदित होते हो, उतनी ही ऊर्जा ऊपर उठती है; जितनी ऊर्जा ऊपर उठती है, उतने तुम आनंदित होते हो। तो अगर तुम मस्त होगे, नाचने लगे, जैसे पूरी मधुशाला पी गए... ऐसा कंजूस का नाच--उससे कम न चलेगा--कि नाच रहे हैं ऐसा, जैसे कि बड़ी मजबूरी है, कि क्या करें, अब आ फंसे हैं; या कि देख लें शायद कुछ हो! न, ऐसे चलेगा। कुनकुना काम, काम नहीं आएगा। त्वरा चाहिए! नाच रहे हैं, जैसे पागल होकर!
पागल हुए बिना परमात्मा नहीं मिलता। तुम अपनी बुद्धि से चले तो तुम तुम जहां हो वहीं रहोगे। तुम्हारी बुद्धि से थोड़ा पार जाने की जरूरत है। और जब तुम्हारी पूरी ऊर्जा आनंदमग्न हो गई है, ऊपर की तरफ बह रही है... आनंदमग्न होने का अर्थ ही है कि ऊपर की तरफ बह रही है। क्योंकि आनंद का भाव ही ऊपर की तरफ बहने से होता है। जितनी नीचे बहती, इतना दुख का भाव होता है, उतना ही जीवन में नर्क उतरता है। इसलिए हम कहते हैं नर्क नीचे, और स्वर्ग ऊपर। उसका मतलब कुल इतना ही है कि पहले द्वार के साथ जुड़ा है नर्क और दसवें द्वार के साथ जुड़ा है स्वर्ग। ऊपर-नीचे का और कोई मतलब नहीं।
जब तुम्हारी ऊर्जा पहले द्वार से नीचे गिरती है, तब तुम अपने जीवन में नर्क पैदा कर रहे हो। और जब तुम्हारी ऊर्जा दसवें द्वार पर खड़े होकर विराट की तरफ बहती है, तब तुमने अपने जीवन में स्वर्ग बना लिया। दोनों तुममें छिपे हैं। जब ऊर्जा प्रवाहित हो रही है और तुम आनंदमग्न हो, तब ठहरकर खड़े हो जाना या बैठ जाना; ताकि ऊर्जा को अब पूरा मौका मिल जाए प्रवाहित होने का। बैठ जाना उपयोगी है, ताकि सिर्फ रीढ़ बचे। सारा शरीर खो जाए, सिर्फ रीढ़ बचे। और रीढ़ से ऊर्जा ऊपर जाए और सारी रीढ़ में संगृहीत हो जाए। फिर लेट जाना है, ताकि जो ऊर्जा संगृहीत होकर ऊपर बह रही है उसको और सुबह हो जाए, वह दसवें द्वार पर टक्कर मारने लगे। कुंडलिनी का पूरा प्रयोग दसवें द्वार पर टक्कर मारने का है। अगर तुमने ठीक से किया, तो तुम भी कह सकोगेः
जुगत-जुगत की तृषा बुझानी, कर्म-मर्म अध-व्याधि टरै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहूं न मरै।।
आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
दसवां प्रवचन

मन मस्त हुआ फिर क्यों बोले

दिनांकः 20 नवंबर, 1974; श्री ओशो आश्रम, पूना

सूत्र
मस्त हुआ तब क्यों बोले।
हीरा पायो गांठ गठियायो, बारबार बाको क्यों खोले।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले।।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
हंसा पाये मानसरोवर, ताल Ÿालैया क्यों डोले।।
तेरा साहब है घर मांही, बाहर नैना क्यों खोले।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले।।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, उसके बाद वे दो सप्ताह तक चुप रहे। कथाएं कहती हैं कि सारा अस्तित्व खिन्न हो गया, उदास हो गया। और देवताओं ने आकर उनके चरणों में प्रार्थना की कि आप बोलें, चुप न हो जाए; क्योंकि बहुत-बहुत समय में कभी मुश्किल से कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। और करोड़ों आत्माएं भटकती हैं प्रकाश के लिए। वह प्रकाश आपको मिल गया है; उसे छिपाए मत, उसे दूसरों को बताए, ताकि दूसरे अपने अंधेरे मार्ग को आलोकित कर सकें। जो खोज लिया है उसे अपने साथ मत डुबाए, उसे दूसरों के साथ बांट लें, ताकि उन्हें भी कुछ स्वाद मिल सके। चुप न हों, बोलें!
कहते हैं, बुद्ध ने कहाः अगर बोलूंगा, तो जो मैं कहूंगा वह समझ में न आएगा। इसलिए चुप रह जाना ही उचित है। क्योंकि जो भी मैं बोलूंगा वह दूसरे ही लोक का होगा। और उसका कोई स्वाद न हो तो समझ में न आएगा। अनुभव के सिवाय समझ का और कोई मार्ग नहीं है; इसलिए चुप रह जाना ही उचित है।
पर देवताओं ने फिर आग्रह किया और कहा कि कुछ की समझ में आएगा। थोड़ा-सा
भी धक्का लगा उस यात्रा पर--न भी समझ में आया, थोड़ा सा रस पदा हुआ, थोड़ा सा कुतूहल जगा, जिज्ञासा जन्मी, मुमुक्षा पैदा हुई--तो भी उचित है।
बुद्ध ने कहाः जो सच मैं जिज्ञासु है वे स्वयं ही खोज लेंगे, कुछ कहने
की जरूरत नहीं; और जो जिज्ञासु नहीं हैं; वे सुनेंगे ही नहीं; उन्हें कहने में कुछ सार नहीं।
लेकिन देवताओं के सामने बुद्ध हारे, क्योंकि देवताओं ने कहा कि कुछ ऐसे हैं, जो बिल्कुल सीमांत पर खड़े हैं। अगर न सुनेंगे तो खोजने में बहुत समय लग जाएगा; अगर सुन लेंगे तो छलांग लग जाएगी। और फिर वे सुनें या न सुनें, जो आपने पाया है आप बांटें।
क्योंकि करुणा प्रज्ञा की छाया है। जो जान लेगा वह महाकरुणा से भर जाएगा। वह इसलिए नहीं बोलता है कि बोलना उसकी कोई मजबूरी है। हमारे बोलने और उसके बोलने में फर्क है। हम बोलते हैं इसलिए कि बिना बोले नहीं रह सकते। बिना बोले रहेंगे तो बड़ी बेचैनी होगी। बोलना हमारा रेचन है, केथार्सिस है। बोल लेते हैं, निकल जाता है।
इसलिए तो लोग अपने दुख की चर्चा करते रहते हैं। क्योंकि जितनी दुख की चर्चा कर लेते हैं, उतना दुख हल्का हो जाता है। जितनी बार कर लेते हैं, उतना बिखर जाता है। न बात करने को मिले कोई, तो दुख भीतर-भीतर इकट्ठा होगा, घाव बनेगा।
मनसविद कुछ भी नहीं करते, सिर्फ बीमारों की बात सुनते हैं। सुन-सुन कर
ही उन्हें ठीक कर देते हैं। सुनने से मन हल्का हो जाता है। जो बोल रहा है, वह खाली हो जाता है।
हम बोलते हैं इसलिए कि बोलना हमारी रुग्ण दशा में जरूरी है, अन्यथा हम
जी न सकेंगे। कुछ भी न बोलने को हो, तो हम व्यर्थ की बातें बोलते हैं। कहते हैं, मौसम कैसा है! वह दूसरे को भी दिखाई पड़ रहा है, हमको भी दिखाई पड़ रहा

है। सुंदर सूरज उगा है! दूसरे के पास भी आंखें हैं, कहने की कोई जरूरत नहीं।
ऐसा हुआ कि एक सम्राट ने अपने वजीर से कहा कि मैं जानना चाहता हूं, इस राजधानी में अंधे कितने हैं, तुम उनकी गिनती करो।
वजीर ने कहा, सचमुच अंधों को जानना चाहते हैं या सिर्फ जिनकी आंखें बंद हैं, उनको?
सम्राट ने कहा, सचमुच जो अंधे हैं! ... क्या मतलब? ... फर्क है क्या दोनों बातों में?
उस वजीर ने कहा, अंधों का पता लगाना हो तो गांव में वैद्य ही खबर दे देंगे, अस्पताल से पता चल जाएगा। वह कठिन बात नहीं है। लेकिन, अगर सच में अंधे जानने हों तो जरा मुश्किल है। समय चाहिए।
वजीर दूसरे दिन सुबह जाकर बाजार में बैठ गया! उसने आसपास जूते फैला लिए। जूते सीने लगा, ठोकने लगा! जो भी आदमी निकला, वही पूछे, क्या कर रहे हैं? वह उसका अंधे में नाम लिख ले। क्योंकि जो वह कर रहा है, वह देख रहा है। पूछना क्या है--क्या कर रहे हैं! खुद सम्राट तक का नाम अंधों में आ गया। क्योंकि सम्राट भी जब निकला दोपहर में तो उसने पूछा, यह क्या कर रहे हो? उसने तत्क्षण नाम लिख लिया। जब फेहरिस्त आयी तो बहुत लंबी थी। सिर्फ कुछ बच्चों को छोड़कर, जो इधर से निकले थे और उन्होंने जरा भी फिकर न की और न पूछा, बाकी सब अंधे थे।
अगर कोई हमारी बातचीत पर ध्यान दे तो बहुत हैरान होगा। हम वे बातें कर रहे हैं जिनका कोई भी अर्थ नहीं है। जो दूसरे को भी दिखाई पड़ रहा है, वह हम दिखा रहे हैं। जो दूसरे को भी पता है, वह हम बता रहे हैं। जो दूसरे ने भी सुन लिया है, वह हम सुना रहे हैं। जो दूसरे ने भी सुन लिया है, वह हम सुना रहे हैं। जो दूसरे ने भी पढ़ लिया है, वह हम समझा रहे हैं। हम क्या कर रहे हैं? और दूसरा हमें बर्दाश्त कर रहा है--सिर्फ उस आशा में कि थोड़ी देर बाद जब हम चुप होंगे तो वह भी अपना रेचन करेगा। हम बैठे रहते हैं तब, सुनते रहते हैं तब तक, जब तक हमें मौका न मिले। बस मौके की बात है। जब हम सुनते हैं, हम सुनते नहीं--क्योंकि हम बोलने को तैयार हैं। दूसरा भी तुम्हें जब सुनता है, सुनता नहीं--वह भी बोलने को तैयार है। हम सब बोलनेवाले हैं, सुननेवाला कोई है ही नहीं।
अगर तुम दो आदमियों की बातें बड़े साक्षीभाव से सुनो तो तुम हैरान होओगे, वह एकालाप है, वार्तालाप नहीं! वे एक-एक अपने-अपने से बोल रहा है। दोनों सिर्फ जुड़े हुए मालूम पड़ते हैं। वह बहाना है। तुम कोई शब्द चुन लेते हो दूसरे की बातचीत से, उस शब्द की खूंटी पर अपनी टांग देते हो और चल पड़ते हो। तुम्हारी गाड़ी किसी और तरफ जाती है। इसलिए तो दो व्यक्ति के बीच विवाद आसान है, संवाद मुश्किल है। संवाद तो तभी हो सकता है, जब सुनना भी आता हो। हमें सिर्फ बोलना आता है। तो अगर हम परमात्मा के द्वार पर भी जाते हैं तो वहां भी बोलते हैं। वहां भी उसको हम बोलने का मौका नहीं देते।
वास्तविक प्रार्थना जब तक शुरू होती है तब तुम उसे बोलने का मौका दो।
तुम्हारे बोलने की वहां जरूरत क्या है? तुम जो भी कहोगे, परमात्मा पहले से जानता है। तुम कृपा करके चुप हो जाओगे थोड़ा उसे बोलने दो।
लेकिन चुप होना हमें आता नहीं। चुप होना बहुत कठिन है। बीमार चिŸा के साथ चुप होना एकदम कठिन है। स्वस्थ चिŸा के साथ बोलना कठिन हो जाता है। क्योंकि जब तुम शांत हो जाते हो, तब कैसे बोलोगे? जब तुम शांत हो जाते हो, तब एक-एक शब्द को बोलना कठिन हो जाता है।
संतों ने बोला है--करुणा के कारण, लेकिन बोलना बड़ी कठिनाई है। भीतर जो गहन शून्य में खड़े हो गए हैं, वहां एक शब्द बनाना भी मुश्किल है। फिर भी उनकी करुणा है कि वे शब्द बनाते हैं। उनकी करुणा है कि वे जानते हुए शब्द देते हैं कि शब्द से बहुत कुछ होगा नहीं। उनकी करुणा है वे तुम्हारे चेहरे को देखते हैं कि तुमने शब्द तो सुन लिया, अर्थ तुम्हारी समझ में नहीं आया। फिर भी बोले जाते हैं इस आशा में कि शायद संयोग बन जाए, निमिŸा बन जाए और कोई जग जाए।
कबीर के ये वचन बहुत महत्वपूर्ण हैंः मन मस्त हुआ तक क्यों बोले!

जब मस्ती आ जाएगी, जब उस ज्ञान की मदिरा उतरेगी, और जब तुम इतने आनंदित
हो जाओगे... जब मन मस्त हुआ तब क्यों बोले, ... तब बोलोगे कैसे! तब बोलना होगा ही क्यों!
इसका यह अर्थ हुआ कि जब तक तुम मस्त नहीं हो तभी तक बोल रहे हो। आदमी आनंदित होता है तो चुप होता है, दुखी होता है तो बोलता है। आदमी स्वस्थ होता है तो स्वास्थ्य की चर्चा नहीं करता; बीमार होता है तो बीमारी की बड़ी चर्चा करता है। जब तुम पूरे स्वस्थ होते हो तब तुम शरीर की बात ही भूल जाते हो। तब शरीर की बात ही क्या करनी, शरीर का पता ही नहीं चलता।
च्चांगत्सु कहता है, जब जूता ठीक आ जाता है पैर पर तो भूल जाता है। जब जूता काटता है, तब पैर की याद आदती है। जब तुम्हारा सिर स्वस्थ होता है तब तुम सिर को भूल जाते हो। सच तो यह है, तुम बेसिर हो जाते हो। जब सिर में दर्द होता है तभी सिर का पता चलता है, बीमारी का बोध होता है।
इसलिए संस्कृत में दुख के लिए जो शब्द है, वही शब्द ज्ञान के लिए है। वेदना दुख का अर्थ भी रखता है और वेदना वेद का अर्थ भी रखता है--ज्ञान का। दुख का ही बोझ होता है। आनंद तो, जैसे शराब हो--सब बोध खो जाता है।... होश ही दुख का होता है। पैर में कांटा चुभता है तो पैर का पता चलता है, कांटा न चुभे तो पैर का पता नहीं चलता। पीड़ा का बोध है, आनंद का क्या बोध? आनंद के साथ तो हम इतने एक हो जाते हैं कि बोध किसको होगा, किसका होगा! दुख के साथ फासला होता है।
... इसलिए ज्ञानियों ने कहा हैः आनंद तुम्हारा स्वभाव है, दुख तुम्हारा स्वभाव नहीं; क्योंकि जिसके साथ हम एक नहीं हो पाते, वह हमारा स्वभाव कैसे होगा? पैर में कांटा लगा होना अस्वाभाविक है, इसलिए दुखता है। जब पैर में कांटा नहीं है--यह स्वाभाविक है--सब दुख खो गया, पैर भी खो गया! जितने-जितने तुम स्वस्थ होते जाओगे, उतना-उतना कहने को क्या बचेगा? जब कोई परिपूर्ण स्वस्थ होता है--शरीर, मन, आत्मा, सब शांत हो जाते हैं--तब कहने को भी कुछ भी नहीं बचता।
मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।
बोलना दुख के जगत का अंग है। और इसलिए जब कोई आदमी विक्षिप्त हो जाता है, तो चौबीस घंटे बोलता रहता है। सिर्फ विक्षिप्त बोलता है चौबीस घंटे! रात में भी बड़बड़ाता है, दिन में भी बोलता रहता है। एक छोर विक्षिप्त का है, जब वह चौबीस घंटे बोलता है; दूसरा छोर विमुक्त का है, जब वह बिल्कुल चुप हो जाता है। उसके घर में कोई भी नहीं होता, सन्नाटा होता है। उसके घर में कोई आवाज नहीं होती, कुछ कहने को नहीं होता, कोई शोर नहीं उठता, एक पर शून्यता की लयबद्धता होती है।
विक्षिप्त आदमी को देखो, पागल को ठीक से अध्ययन करो, तो तुम अपने को भी पागल पाओगे। क्योंकि तुम बोलो, न बोलो, भीतर तुम्हारी बातचीत जारी रहती है।
सूफियों के पास एक विधि है, जो भीतर की बातचीत को रोकने के काम के काम में लग जाती है। और सूफी कहते हैं कि जो इंन्टनल डायलाग है, वह जो भीतर बात चल रही है, वही बाधा है, परमात्मा और तुम्हारे बीच। जैसा ही तुम वहां चुप हो गए, सब परदे गिर गए। वही घूंघट है। और भीतर तुम चर्चा किये ही जाते हो। भीतर एक क्षण भी ऐसा नहीं आता, जब चर्चा बंद होती हो। या तो तुम बाहर बात करते हो। अगर बाहर कोई न मिले तो भीतर बात करते हो; लेकिन बात जारी रहती है।
इसे थोड़ी होशपूर्वक जांचने की कोशिश करना। यह जो भीतर वार्तालाप चल रहा है, यही परदा है। और इसके तुम सजग, साक्षी हो जाना। दुखना। एक दूरी निर्मित करना। तुम खुद नहीं कर रहे हो यह वार्तालाप, यह तुम्हारा मन कर रहा है। तुम दूर होकर देख सकते हो। तुम एक साक्षी हो सकते हो। जब तुम देखनेवाले बन जाओगे, तुम धीरे-धीरे पाओगे कि भीतर का वार्तालाप बंद होने लगा। कभी-कभी बीच में अंतराल के क्षण आ जाएंगे। कभी बादल हट जाएंगे, खाली आकाश दिखाई पड़ेगा। उसी खाली आकाश में पहली समाधि का अनुभव होगा।
तुम बादल नहीं हो, तुम शून्य आकाश हो। बादल आते हैं, चले जाते हैं-- शून्य आकाश सदा वहीं है। बादल तुम्हारा स्वभाव नहीं है, शून्य आकाश तुम्हारा स्वभाव है। जो सदा रहता है, जो कभी नहीं बदलता, वही स्वभाव है।

शब्द तुम्हारा स्वभाव नहीं, शून्यता तुम्हारा स्वभाव है। शब्द तो आते हैं, बादलों की तरह चलते जाते हैं, उठते हैं लहरों की तरफ, खो जाते हैं। तुम शब्द नहीं हो। लेकिन तुम चौबीस घंटे शब्दों में खोये हुए हो। जैसे हम किसी आदमी को आकाश देखने भेजें और वह बादलों की खबर लेकर आ जाए--ऐसे ही जब भी भीतर जाते हो, शब्दों को लेकर बाहर आ जाते हो। आकाश तक पहुंच ही नहीं पाते।

तुम्हारी जब तक आकाश की तरफ पहुंच न हो, तब तक गगन-गुफा कैसे खुलेगी? तब तक कैसे झरेगा अजर अमृत? तब तक कैसे डूबोगे तुम रसधार में? और जब कोई उस रसधार में डूब जाता है तो कबीर ठीक ही कहते हैंः मन मस्त हुआ तब क्यों बोले। ... जब आनंद आ गया, तो चुप्पी सध जाती है।

इसलिए संतों को बड़ी कठिनाई है बोलने की। श्रम से बोलते हैं। तुम श्रम से अपने को चुप रखते हो। अगर तुमसे कहा जाए कि कोई मर गया और दो क्षण शांति रखो, तो दो क्षण ऐसे लगते हैं जैसे दो वर्ष। बड़े लंबे मालूम पड़ते हैं। लगता है, कोई भूल-चूक कर रहा है... बंद करो। दो क्षण हो गए होंगे कब के। ... और ऊपर से तुम चुप भी हो जाते हो। भीतर तो सब चलता ही रहता है, भीतर जरा भी चुप्पी नहीं होगी।

... दो क्षण तुम चुप नहीं रह सकते। ... कैसी तुम्हारी योग्यता! ... कैसी तुम्हारी समझ! ... काहे की कुसलात! और दो क्षण तुम चुप नहीं रह सकते हो तो तुम जान लेना कि तुम विक्षिप्त हो। तुम करीब-करीब पागल हो।

पागल और तुममें जो फर्क है, वह मात्रा का है। तुम अभी अपने पागलपन को भीतर दबाये हो, वह कभी भी फट सकता है। वह तैयार हो रहा है। वह मवाद की तरह भीतर इकट्ठा हो रहा है; कभी भी मुंह मिल जाएगा, घाव हो जाएगा और वह फूट पड़ेगा। डिग्रीज के फर्क हैं। कोई नब्बे डिग्री का पागल है, कोई पच्चानबे डिग्री का, कोई सौ डिग्री का। सौ डिग्री पर विस्फोट हो जाता है; तब लोग उन्हें पागलखाने पहुंचा आते हैं।

लेकिन तुम दस मिनट अपने घर के कोने में बैठकर मन में जो भी चलता हो, उसे एक कागज पर लिख लेना। तो तुम जो भी पाओगे, तुम अपने मित्र को--निकटतम मित्र को भी बताने को राजी न होओगे। क्योंकि वह बिल्कुल पागलपन मालूम पड़ेगा। जो तुम्हारे मन में चलता है, उसे लिखना कागज पर और बेईमानी मत करन--जो चलता हो, वही लिखना। तुम बड़े हैरान होओगेः मन कैसी छलांगें लगा रहा है।

... रास्ते से गुजरते हो, □□Ÿ□ दिखाई पड़ता है। □□Ÿ□ दिखाई पड़ा कि यात्रा शुरू हो गई। मित्र का □□Ÿ□ याद आ गया। मित्र के □□Ÿ□ की वजह से मित्र याद आ गया। मित्र की वजह से मित्र की पत्नी याद आ गई। और चल पड़े तुम! अब इस □□Ÿ□ से उसको कोई लेना-देना नहीं। पर भीतर की यात्रा शुरू हो गई; अंतरंग वार्तालाप, इंटरनल डायलाग चल पड़ा।

अगर तुम किसी से कहोगे कि □□Ÿ□ को देखकर यह सब हुआ...। यह भी हो सकता है कि मित्र की पत्नी के प्रेम में पड़ गए, शादी हो गई, बाल-बच्चे हो गए। उनका तुम विवाह कर रहे हो!

तुमने शेखचिल्लियों की कहानियां पढ़ी हैं? वह तुम्हारी ही कहानियां हैं। मन शेखचिल्ली है। यह मत समझना कि वे बच्चों को बहलाने के लिए लिखी गई कहानियां है, यह तुम चौबीस घंटे कर रहे हो। यही तंद्रा है, यही नींद है। जिसको कबीर कहते हैंः संतों जागत नींद न कीजै।

जागे तुम ऊपर-ऊपर से लग रहे हो, भीतर बड़े सपने चल रहे हैं। पर्त-दर-पर्त सपनों ही तुम्हें घेरे हुए हैं। पर्त-दर-पर्त बादलों की आकाश को घेरे हुए है। और यह पर्त-दर-पर्त जो पागलपन है, इसे तुम दूसरे पर उलीचते रहते हो; इसे तुम दूसरों पर फेंकते रहते हो। वही तुम्हारा वार्तालाप है।

मन मस्त हुआ तब क्यों बोल। ... लेकिन जब तुम मस्त हो जाओगे, नील गगन हो जाओगे, खुलेगी गगन की गुफा और बरसेगी अजर धार--तब तुम क्यों बोलोगे! तब तुम चुप हो जाओगे।

फिर भी जो चुप हो गए हैं, वे बोले हैं। उनके बोलने और तुम्हारे बोलने में बुनियादी फर्क है गुणात्मक फर्क है, क्वालिटेटिव फर्क है। वे बोलते हैं इसलिए कि उन्होंने कुछ जाना है। तुम बोलते हो इसलिए कि तुम विक्षिप्त हो। वे बोलते हैं इसलिए कि बोलने से वे कुछ देना चाहते हैं। तुम बोलते हो इसलिए कि तुम बोलने से कुछ रेचन करना चाहते हो।

तुम्हारा बोलना दूसरे के लिए अहितकर है, क्योंकि तुम बीमारी फेंक रहे हो। उनका बोलना दूसरे के लिए मर कल्याण है, क्योंकि वे अपना आनंद बांट रहे हैं। उनके शब्द-शब्द में भीतर की झनकार होगी। उनके शब्द-शब्द में भीतर का रस थोड़ा सा भरा आ जाएगा। उनके शब्द-शब्द में थोड़ी सी सुगंध साथ चली आएगी। तुमने अगर फूल भी हाथ में रखे तो हाथों में सुगंध आ जाती है। तुम अगर बगीचे से गुजर भी गए तो फूलों की गंध तुम्हारे वस्त्रों में आ जाती है।
संत के शून्य से जब कोई शब्द गुजरता है तो थोड़ी सी शून्यता, थोड़ी सी ताजगी उस भीतर के संसार से ले आता है। इसलिए संतों को समझने के लिए बस सुनना काफी है, विचारना जरूरी नहीं है।
नानक निरंतर कहते हैं कि तीन चीजें हैं महत्वपूर्ण। एक है परमात्मा, जिसका हमें कोई पता नहीं। उस तक पहुंचने के लिए द्वार है गुरु। लेकिन गुरु का भी हमें कोई पता नहींः कौन गुरु? उस तक पहुंचने का द्वार है, साधु-संगत-- साधुओं का संग साथ। जहां भले लोग हों, जहां भली बात होती हो, जहां उस संसार की कुछ चर्चा चलती हो--साधु संगत--वहां बैठकर सुनना। उसी... सुनते-सुनते... साधु-संगत में गुरु मिल जाएगा। और गुरु मिल गया तो तुम मार्ग पर आ गए। साधु-संगत से मिलेगा गुरु, गुरु से मिलेगा परमात्मा।
बड़ा मूल्य है--जहां भली बात चलती हो, वहां बैठकर सुन लेने का भी बड़ा मूल्य है।
और समझोगे कैसे तुम संतों को? समझ तो तभी होती है जब तुम भी उसी अवस्था में पहुंचोगे। रस ले सकते हो। उनकी वाणी को अपने भीतर प्रवेश हो जाने दे सकते हो। तुम ग्राहक भाव रख सकते हो--खुला मन--ताकि उनके शब्द तुम्हारे भीतर चल जाए। शायद उनके शब्द जिस अज्ञात लोक से आ रहे हैं, उसकी थोड़ी सी चोट तुम्हारे भीतर जब जगे।
संतों के पास अगर तुम मस्ती सीख लो, तो तुमने सीख लिया।
मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।
हीरा पाया गांठ गठियायो, बार-बार बाको क्यों खोले।
हीरा मिल गया, गांठ में बांध लिया, अब बार-बार उसको क्या खोलना?
... तुम बोलते हो। अगर रास्ते पर तुम्हें हीरा मिला जाए, तुम गांठ तो गठियाओगे, लेकिन बार-बार खोलकर देखोगे।... क्यों? तुम्हें संदेह है, तुम्हें पक्का भरोसा नहीं है कि हीरा मिल सकता है, कि यह हीरा है, और मुझे मिल गया। तुम्हें अपने पर भी भरोसा नहीं है, तुम्हें हीरे पर भी भरोसा नहीं है। तुम संदेहग्रस्त हो, इसलिए बार-बार खोलकर देखते हो।
जहां श्रद्धा है, वहां संदेह कैसा? जहां श्रद्धा है, वहां हीरा मिला, गांठ गंठाया--बाको बार-बार क्यों खोले?
तो जब, बुद्ध, कबीर, नानक उपलब्ध हो जाते हैं, मिल गया हीरा, उसको गांठ गठिया लिया, अब उसको बार-बार क्या खोलना है... वे उसकी चर्चा भी नहीं करते। वे उस संबंध में तो चुप ही रहते हैं, जो उन्होंने पा लिया है। अगर वे चर्चा भी करते हैं तो चर्चा परोक्ष है।
ऐसा हुआ, एक सूफी फकीर बायजीद के पास एक औरत को लाया गया। वह बहुत मोटी थी। उसके पति ने कहा कि इससे बच्चे पैदा नहीं होते, आपकी कृपा हो जाए।
बायजीद बोले, बच्चे! कृपा! तुम पागल हुए हो? चालीस दीन में यह मरनेवाली है। यह औरत बचेगी नहीं। साफ देख रहा हूं इसकी माथे की रेखा। इसके लिए हम क्या करें। कुछ भी नहीं किया जा सकता।
पति-पत्नी उदास लौटे। चालीस दिन बाद मौत! पत्नी खाट से लग गई, खाना- पीना बंद हो गया। लेकिन चालीस दिन आए और गुजर गए, और वह नहीं मरी। फिर बायजीद के पास जाना पड़ा कि अच्छी मुसीबत खड़ी कर दी। चालीस दिन मौत में गुजरे, रोते गुजरे... और यह पत्नी तो जिंदा है!
बायजीद ने कहा, अब जाओ, इसको बच्चा को सकेगा, सिर्फ इसका मोटा पा कम करना था। वह मौत की बात तो दवा थी।
यह इनडायरेक्ट, परोक्ष हुआ। वह माननेवाली नहीं थी--अगर इससे कहा जाए
कि तू मोटापा कम कर। यह सीधी बात नहीं हो सकती। थी। मोटापा कम करने को तो बहुत वैद्य कह चूके थे। फकीरों के पास र्को आता ही तब है जब चिकित्सक और वैद्य चुक जाते हैं, तभी तो कोई आशीर्वाद के लिए जाता है। वह आखिरी उपाय है।

तो बायजीद ने देखा कि बात तो साफ है, इतनी मोटी स्त्री को बच्चे नहीं
हो सकते। और मोटापा यह कम करेगी नहीं। मौत की बात तो झूठी थी। लेकिन हम इतने झूठे हैं कि झूठ ही हम पर काम करता है।
तो संत हीरे की बात नहीं करते। वे तो कुछ और ही बात करते हैं जिससे हीरे के प्रति रस लग जाए। हीरा तो तुम्हें दे भी दें तो तुम पहचान न सकोगे; क्योंकि पहचान के लिए अनुभव चाहिए।
ऐसा हुआ, सूफी फकीर हुआ झुन्नून एक आदमी उसके पास आया और उसने झुन्नुन
को कहा कि यह सब बकवास है। मैं कई सूफियों के पास गया, यह सब बातचीत है, कुछ नहीं पाया। वह फलां सूफी है, धोखेबाज है। और फलां सूफी है, उसके आचरण का कोई भरोसा नहीं। और एक सूफी है, वह बातचीत तो ऊंची करता है, लेकिन अनुभव उसे बिल्कुल नहीं हुआ।
झुन्नून ने कहा, बात पीछे करेंगे, जरा मुझे जरूरत है एक काम की, तुम थोड़ा-सा काम कर दो। यह एक पत्थर मेरे पास है, तुम चले जाओ बाजार में, सोने और चांदी की दुकानों पर, अगर कोई इसे एक सोने के सिक्के में खरीद ले तो तुम बेच आओ।
वह आदमी गया। बाजार पास ही था। सोने-चांदी की दुकानों पर गया, कोई उसे
एक सोने के सिक्के में लेने को राजी नहीं था। ज्यादा से ज्यादा एक चांदी का सिक्का कोई देने को राजी हुआ था--वह भी बड़े पसोपेश में! वह आदमी लौट आया। उसने कहा कि यह पत्थर बिल्कुल बेकार है! सोने की बात तो छोड़ो, उस वहम में मत रहो, चांदी का एक सिक्का मिलता है। और वह भी आदमी संदिग्ध है, वह भी पक्का नहीं है कि ले या न ले।... क्या करना है?
झुन्नुन ने कहा कि जब तुम जौहरी की दुकान पर चले जाओ। और बेचना मत पत्थर को, सिर्फ दाम पूछकर आना। वह गया। जौहरी एक हजार सोने के सिक्के देने को तैयार था। जब वह बेचने को राजी न हुआ तो वह दस हजार सोने के सिक्के देने को तैयार हो गया। तब भी वह बेचने को राजी न हुआ तो जौहरी ने कहा, तुम कितना चाहते हो, तुम बोलो? लेकिन पत्थर वापिस न ले जाने देंगे? उसने कहा, बेचने को कहा ही हनीं उसने, जिसका यह पत्थर है; सिर्फ दाम पूछने को कहा है। वापिस लौटकर आया। कहने लगा, बद हो गई! अच्छा हुआ कि मैं बेच नहीं आया, नहीं तो एक चांदी का सिक्का मिलता। दस हजार तो वह देने को तैयार है और पूछता है, तुम बोलो!
फकीर ने कहा, पत्थर बेचना नहीं है, सिर्फ तुम्हें इसलिए भेजा था कि तुम पता लगा लो। हीरे की पहचान के लिए जौहरी होना जरूरी है। तुम जौहरी हो कि सूफी की पहचान कर सको?
चांदी-सोने के दुकानदार को हीरे की क्या पहचान। फिर भी थोड़ा बहुत ख्याल होगा कि पत्थर रंगीन है, थोड़ा बहुत चमकदार है, तो चलो खरीद लो, शायद किसी काम आ जाए। और कहीं तुम शाक-सब्जी की दुकान पर चले जाओ इसे बेचने, तो यह कहेगाः दो पैसा में दे जाओ, शाक-सब्जी तौलने के काम आ जाएगा।
उसने कहा, पत्थर वापिस रख दो, जौहरी चाहिए हीरे की पहचान के लिए।
कौन पहचानेगा सूफी को? कौन पहचानेगा संत को, साधु को? हीरा तुम्हें दिया नहीं जा सकता। तुम पहचानोगे नहीं, तुम गंवा दोगे--या बच्चों को खेलने को दे दोगे--
आज जो कोहिनूर है, वह गोलकोंडा में एक गरीब आदमी के घर में बच्चों का खिलौना था, उसको खेत में मिल गया था, और बच्चे उससे खेलते थे।
हीरे की पहचान जौहरी कोः ज्ञान की पहचान ज्ञानी को। हीरा तो तुम्हें दिया नहीं जा सकता। दे भी दें तो तुम उसका दुरुपयोग करोगे। इसलिए कबीर कहते हैंः
हीरा पायो गांठ गठियाओ, बार बार क्यों खोले।
और खुद को तो कोई संदेह नहीं है, क्योंकि वह जो अनुभूति है, संदिग्ध है।
लोग मुझसे पूछते हैं, लोग सदा से पूछते रहे हैं कि यह कैसे पता चलेगा
कि ध्यान लग गया? यह कैसे पक्का पता चलेगा कि परमात्मा मिल गया? यह कैसे पक्का पता चलेगा कि समाधि है? मैं उनसे कहता हूं कि तुम्हारी खोपड़ी में कोई लट्ठ मार दे, तब तुम्हें कैसे पक्का पता चलता है कि दर्द हो रहा है?

उसको तुम किसी और से पूछने जाते हो कि क्यों भाई, मुझे दर्द हो रहा है कि नहीं?
जब तुम्हें दर्द का अनुभव हो सकता है तो तुम्हें आनंद का अनुभव न होगा? जब तुम पीड़ा को पहचान लेते हो तो तुम आनंद को पहचानने की खबर दे दिए। क्योंकि पीड़ा उसी का तो अभाव है। जब तुम्हें बीमार का पता चल जाता है तो स्वास्थ्य है तो स्वास्थ्य का भी पता चल ही जाएगा। जब नर्क को तुम पहचान लेते हो तो स्वर्ग को भी पहचान लोगे। यह पूछना न पड़ेगा कि जो मुझे मिला है, वह मिला है या नहीं?
नहीं, जब हीरा मिलता है--हीरा पायो, गांठ गठियायो, बार बार बाको क्यों खोले--संदेह तो कुछ होता नहीं। वह अनुभव असंछिग्ध है।
परमात्मा का अनुभव संदेहातीत है। जब होता है, बस हो गया। फिर सारी दुनिया कहे कि नहीं हुआ तो भी कोई सवाल नहीं। सारी दुनिया सिद्ध कर दे कि नहीं हुआ तो भी कोई सवाल नहीं सारी दुनिया कहे कि ईश्वर नहीं है, तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। जब तुम्हें अनुभव हो गया--तो वही प्रमाण है।
परमात्मा का अनुभव सेल्फ-एविडेंट है, स्व-प्रमाण है। उसके लिए किसी
और प्रमाण की जरूरत नहीं है। वह खुद ही अपना प्रमाण है। हो गया, हो गया। लेकिन जब तक नहीं हुआ है, तब तक बड़ी मुश्किल है। कोई दूसरा अपना अनुभव तुम्हारे हाथ में रख दे, तुम न पहचान सकोगे; क्योंकि पहचान तो केवल अपने ही अनुभव की होगी, दूसरे के अनुभव की नहीं होगी। इसलिए कबीर लाख सिर पटकें, तुम्हें न आएगा; भरोसा तो तभी आएगा, जब तुम्हें घटना घट जाएगी।
और तब हीरा पायो गांठ गठियायो, बारबार बाको क्यों खोले।
हलकी थी तो चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले।
तराजू का पलड़ा जब तक हलका रहता है, तब तक ऊपर रहता है। जैसे-जैसे भारी होने लगता है, नीचे उतरने लगता है। और जब पूरा ही भर जाता है तो जमीन से लग जाता है, फिर तौलना बंद हो जाता है।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू पूरी भाई तब क्यों तोले।
... फिर तौलना ही बंद हो जाता है।
अभी तुम्हारी जिंदगी में तौलना ही तालौना चलता है। तौलने का अर्थ हैः तुलना कम्पेरिजन। तुम अभी जब भी कुछ सोचते हो, हमेशा तुलना में सोचते हो।
एक सौंदर्य की प्रतियोगिता थी। देश की बीस सुंदरियां इकट्ठी थी।
उनमें से चुनाव होना था कि कौन पूरे देश की प्रथम सुंदर होगी। निर्णायकों ने मुल्ला नसरुद्दीन को भी निमंत्रित कर लिया था। बढ़ा और अनुभवी आदमी था। जिंदगी के बहुत उतार-चढ़ाव देखे थे। बहुत स्त्रियों के संबंध, विवाह, तलाक-- सब देखा हुआ था। पहली युवती आई, उसने कहा--फू! दूसरी आई, आई, तीसरी आई, वह फू- फू कहता रहा। एक से एक सुंदर स्त्रियां थीं, तय करना मुश्किल था कि कौन किससे ज्यादा है। जिन्होंने उसे बुलाया था, वे थोड़े संदिग्ध हुए। बीसवीं युवती आई, तब भी उसने कहा--फू! तो मित्रों ने पूछा, कि नसरुद्दीन! कोई भी स्त्री पसंद नहीं आती? फू-फू किए जा रहे हो!
उसने कहा, इन स्त्रियों को नहीं कह रहा हूं, अपनी औरत को कह रहा हूं!
वे तुलना कर रहे हैं।
तुम्हारी जिंदगी तुलना से भरी है।
... तुम अमीर हो... सच में तुम अमीर हो? ... तुम अमीर हो नहीं सकते। हां, किसी गरीब की तुलना में अमीर हो, किसी अमीर की तुलना में गरीब हो।
तो अमीर से अमीर भी गरीब बना रहता है; क्योंकि कोई और है जो ज्यादा अमीर है। तुलना से छुटकारा नहीं हो सकता। तुम दस को पीछे छोड़ आए हो, लेकिन दस तुम्हारे सदा आगे हैं।
... तुम सुंदर हो? ... हां, किसी की तुलना में होओगे। लेकिन तुम कुरूप भी
हो, क्योंकि किसी और की तुलना चल रही है।
... तुम स्वस्थ हो? ... समझदार हो?
हर वक्त तुलना चल रही है। जब तुम कहते हो कि मैं स्वस्थ हूं, तब भी तुलना; जब तुम कहते हो कि सुंदर हूं, तब भी तुलना।
तुलना के साथ तुम कभी शांत न हो सकोगे, क्योंकि कोई न कोई आगे बना ही रहेगा। ऐसा असंभव है। और जीवन इतना जटिल है कि हो सकता है एक चीज में तुम सबसे ज्यादा आगे पहुंच जाओ--तुम सबसे ज्यादा धन इकट्ठा कर लो...

हैदराबाद के निजाम के पा शायद सबसे ज्यादा धन था दुनिया में। बोलकुंसा के इतने हीरे-जवाहरात इकट्ठे कर लिए थे। उनसे बड़ा धनी आदमी दूसरा नहीं था। वर्ष में एक बार जब वह अपने सब हीरे-जवाहरातों को रोशनी दिखाने के लिए निकालते थे, तो सात छतों की जरूरत पड़ती थी उनको फैलाने के लिए। चोटी पर थे। लेकिन जब रात सोते थे, तो एक पैर एक बड़ी मटकी में--जिसमें नमक भरा हो--उसमें डालकर और बांधकर सोते थे। क्योंकि भूत से उन्हें बहुत डर लगता था। और यह भूत से बचने की तरकीब थीः नमक पास हो तो भूत हमला नहीं करता। इस भय के कारण, इस भूत के भय के कारण वे कमजोर से कमजोर, गरीब से गरीब नौकर से भी दीन थे। नौकर भी उन पर हंसते थे कि यह क्या मालिक, आप और ऐसे भयभीत। हम नहीं डरते, वहां का भूत। यह क्यों इतनी बड़ी कुंडी बांधकर आप सोते हैं? लेकिन पूरी जिंदगी ही वे कुंडी बांधकर सोते रहे। उस भूत के भय के कारण जीवन उनका बड़ा दुखी था; क्योंकि चौबीस घंटे एक ही चिंता थी और वे मन ही मन में कई बार कहते भी थे कि गरीब से गरीब आदमी होना मैं पसंद करता, मगर निर्भय। दुनिया का सबसे बड़ा अमीर होकर भी क्या सार हैः ऐसा भयभीत हूं। फकीर को, नंगे भिखारी को देखकर भी वेर ईष्या से भर जाते थे कि कैसे निर्भय चला जा रहा है, कहीं भी सो जाता है; कोई चिंता नहीं, कोई डर नहीं।
... क्या करोगे? हैदराबाद के निजाम के पास पांच सौ स्त्रियां थीं, इस जमाने में। तुमने कृष्ण का सुना है कि सोलह हजार स्त्रियां थीं। संदेह मत करना; क्योंकि बीसवीं सदी में जब पांच सौ हो सकती हैं तो सोलह हजार कोई ज्यादा नहीं हैं--सिर्फ ब Ÿास गुनी।... हो सकती हैं।
पांच सौ स्त्रियां थीं, लेकिन यह आदमी सदा दीन-हीन था। धन था, लेकिन यह आदमी दरिद्र सेर ईष्या करता था। मौत का भय इतना ज्यादा था कि जीना ही असंभव था।
अमेरिका का बहुत बड़ा करोड़ पति था, इन्डरू कार्नेगी। जब वह मरा तो उसके सेक्रेटरी ने उससे पूछा कि आप अपार संपदा के मालिक हैं, (दस अरब रुपये वह कैंश बैंक में छोड़कर गया) आप प्रसन्न तो मर रहे हैं? प्रसन्न तो छोड़ रहे हैं इस जगत को?
उसने कहा, कैसी प्रसन्नता? मुझसे असफल आदमी खोजना कठिन है, क्योंकि मेरे इरादे सौ अरब रुपये इकट्ठे करने के थे और दस अरब ही कर पाया। हारा हुआ आदमी हूं।
उसने दस अरब इस तरह कहे, जैसे कोई कहेः दस पैसे। लेकिन उसके लिए वे दस पैसे ही थे। क्योंकि जिसके इरादे सौ के रहे हों, दस ही उपलब्ध कर पाये, वह हारा हुआ ही है--नब्बे से हारा हुआ।
तो वह दुखी ही मर रहा है। और उसके सेक्रेटरी ने उसकी जीवन कथा लिखी है। तो उसमें लिखा है कि अगर मुझसे कोई कहता कि बदल लो जगह एन्डरू कार्नेगी से, तो मैं न बदलता। वह अगर सेक्रेटरी बनना चाहता और मैं मालिक, तो मैं न बनता। क्योंकि उसका सेक्रेटरी होकर जितना मैं प्रसन्न था, उतना वह मालिक होकर नहीं था।
उसने लिखा है कि दफ्तर का चपरासी दस बजे आए, क्लर्क साढ़े दस बजे आए, मैनेजर बारह बजे आए; मैनेजरर्स तीन बजे चले जाए, क्लर्क साढ़े चार बजे छुट्टी पा लें, चपरासी पांच बजे चला जाए। लेकिन एन्डरू कार्नेगी सुबह सात बजे से जुट जाए दफ्तर में, रात बाहर बजे तक।
कहानियां प्रचलित हैं कि एन्डरू कार्नेगी अपने बच्चों को नहीं पहचान पाता था, क्योंकि फुर्सत ही कहां थी! सात बजे से लेकर बारह बजे रात तक जो जुटा हो, वह क्या बच्चों को पहचानेगा! उसके साथ कभी खेला नहीं, कभी दो बात नहीं की, कभी बैठा नहीं।
तुम धन पा लो तो और हजार चीजें हैं। तुम पद पा लो तो भी हजार चीजें हैं। तुम कुछ भी पा लो, तुम तृप्त न हो सकोगे--जब तक तुलना है, जब तक तराजू तौलता है। जिस दिन तुम कंपेरिजन छोड़ दोगे, उसी दिन तुम मुक्त हो जाओगे। जिस दिन तुम यह ख्याल ही छोड़ दोगे कि दूसरे से तौलना है स्वयं को, उसी दिन दुख खो जाएगा। उस दिन तुम पाओगे कि तुम तुम हो; दूसरे दूसरे हैं; बात खतम हो गई।
एक झेन फकीर से किसी ने पूछा कि तुम्हारे जीवन में इतना आनंद क्यों है? ... मेरे जीवन में क्यों नहीं? उस फकीर ने कहाः मैं अपने होने से राजी

हूं और तुम अपने होने से राजी नहीं हो। फिर भी उसने कहा, कुछ तरकीब बताओ। फकीर ने कहा, तरकीब मैं कोई नहीं जानता। बाहर आओ मेरे साथ यह झाड़ छोटा है, वह झाड़ बड़ा है। मैंने कभी इन दोनों को परेशान नहीं देखा कि मैं छोटा हूं, तुम बड़े हो। कोई विवाद नहीं सुना। तीस साल में मैं यहां रहता हूं। छोटा अपने छोटे होने में खुश है, बड़ा अपने बड़े होने में खुश है; क्योंकि तुलना प्रविष्ट नहीं हुई। अभी उन्होंने तौला नहीं है।
घास का एक प Ÿा भी उसी आनंद से डोलता है हवा में, जिस आनंद से कोई देवदार का बड़ा वृक्ष डोलता है। कोई भी नहीं है। घास का फूल भी उसी आनंद से खिलता है, जिस आनंद से गुलाब का फूल खिलता है। कोई भेद नहीं है।
तुम्हारे लिए भेद है। तुम कहोगेः यह घास का फूल है, और यह गुलाब का फूल। लेकिन घास और गुलाब के फूल के लिए कोई तुलना नहीं, वे दोनों अपने आनंद में मग्न हैं। जो तुलना छोड़ देता है, वह मग्न हो जाता है। जो मग्न हो जाता है, उसकी तुलना छूट जाती है।
तो कबीर कह रहे हैंः हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले।
और अब तब पूरा आनंद बरस गया है, गगन-गुफा में अमृत की धार बह रही है, तो
अब क्या तौलना।
उससे उलटा भी सही हैः तुम तौलना बंद कर दो तो गगन की गुफा का द्वार खुल जाएगा। तुम तौलना बंद कर दो तो तुम अभी आनंदित हो जाओगे; या आनंदित हो जाओ तो तौल बंद हो जाएगीः दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, कहीं से भी शुरू करो।
कबीर ठीक ही कह रहे हैं, सिद्ध की दशा है, कि जब तक हलकी थी तराजू, तब तक तौलती रही है--और अब जब पूरी हो गई तो अब क्या तौले।
... लेकिन तुम्हारी दशा तो सिद्ध की नहीं है--साधक की है।... तुम कहां से शुरू करोगे? तुम तौलना छोड़ो। जैसे-जैसे तुम तौलना छोड़ोगे, मैं तुमसे कहता हूंः तराजू भारी होती जाएगी। किसने तुमसे कहा कि तुम किसी से तौलो? तुम अकेले हो, तुम जैसा कोई दूसरा नहीं। न तुम जैसी बुद्धि है, न तुम जैसे चेहरा; न तुम जैसी आंखें हैं; तुम्हारे जैसे हाथ नहीं, तुम्हारे अंगूठे का निशान बस तुम्हारा ही है।
सारी दुनिया में आज चार अरब आदमी हैं, चार अरब आदमियों में एक के भी अंगूठे का निशान तुम जैसा नहीं हैं। आज तब जमीन पर अरबों-खरबों लोग हो गए हैं, उन सबको कब्रों से उखाड़ लो, उनका एक का भी अंगूठे का निशान तुम जैसा नहीं। भविष्य में अरबों-खरबों लोग होंगे, उनमें से एक भी ऐसा नहीं होगा जिसको अंगूठे निशान तुम जैसा हो। तुम बिल्कुल अद्वितीय हो, तौल कैसी? तुम मुर्गे से नहीं तौलते कि देखो इसके सिर पर कैसी सुंदर कलगी और हमारे सिर पर नहीं है, और दुखी होकर बैठ जाते हो। तुम वृक्ष से तो नहीं तौलते कि देखो यह सौ फीट आकाश में उठ गया और हम केवल छह फीट--गए काम से! जब तुम वृक्ष से नहीं तौलते, मुर्गे से नहीं तौलते, तो पड़ोसी से क्यों तौल रहे हो? किसी से क्यों तौल रहे हो?
तौलोगे तो दुखी रहोगे; क्योंकि तुम तौलते ही जाओगे। कोई न कोई भिन्न रहेगा, कोई न कोई ज्यादा रहेगा, कोई न कोई... । हजार तरह के फर्क रहेंगे और तुम दुख में घने गिरते जाओगे। तौल बंद कर दो, तराजू पूरी हो जाएगी। यह साधक के लिए कह रहा हूं।
सिद्ध की बात... कबीर ठीक कह रहे हैं--हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तौले।
स्मरण रखना कि जो सिद्ध के लिए सही है, ठीक उससे विपरीत तुम शुरू करना, क्योंकि यह तो अंतिम दशा का वर्णन है; तुम जहां खड़े हो वहां का वर्णन नहीं है। वहां तो तुम्हारी तराजू तौले चली जाती है। और तब तुम व्यर्थ ही दुखी बने हो। दुख अस्तित्व में नहीं है, तुम्हारे तौलने वाले मस्तिष्क में है।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवाद पी गई बिन तोले।
यह आखिरी बात कबीर कह रहे हैं। इसे गहरे उतर जाने देना।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
कलारी है शराब की दुकान का नाक--मधुशाला। सारे पीनेवाले--सुरत कलारी-- जितने पियक्कड़ इकट्ठे हो गए थे... सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन

तोले। और बिना तौले मधुशाला को पी गए! बिना तौले! तब सारे पियक्कड़ मस्त हो गए।
तौल-मौल कर क्यों पी रहे हो? आनंद को इंच-इंच क्यों प्रवेश करने देते हो। आनंद से इतने भयभीत क्यों हो? उसे पूरा क्यों नहीं उतरने देते? पूरा आकाश तुम्हारा है। पूरा परमात्मा है। तौलने की जरूरत क्या है? यह कोई दुकान है? यहां तुम कुछ खरीदने तो नहीं आए। अस्तित्व पूरा खुला है, तुम किसलिए भयभीत हो? तुम बिना तौले पी जाओ।
इसे थोड़ा समझें।
आदमी दुख से इतना भयभीत नहीं होता जितना आनंद से भयभीत होता है; क्योंकि दुख का तो इलाज है, आनंद का तो कोई इलाज नहीं है; और दुख से तो बचने के लिए औषधियां हैं, आनंद से बचने के लिए कोई औषधि नहीं। आनंद से आदमी भयभीत होता है, क्योंकि आनंद इतना बड़ा है कि तुम उसके नीचे खो जाओगे, तुम बच न सकोगे। दुख के ऊपर तुम बैठे रह सकते हो। दुख की गठरी पर तुम बैठते हो; आनंद की गठरी तुम्हारे ऊपर बैठेगी। आनंद इतना विराट है!
दुख से तुम इतने भयभीत नहीं हो, जितने तुम आनंद से भयभीत होते हो--इस तथ्य को विशिष्ट करके समझ लो।
बचपन से ही तुम्हें आनंद से भय सिखाया गया है। अगर बच्चा नाच रहा है अकारण तो मां-बाप कहेंगे--क्या बात है? हंसने की क्या जरूरत? अगर बच्चा कूद रहा है, प्रफुल्लित हो रहा है--और बच्चे अकारण होते हैं प्रफुल्लित। कारण का जगत अभी खुला नहीं। अभी बुद्धि के द्वार बंद हैं।
... छोटी-छोटी चीजें अकारण। एक तितली जा रही है, और बच्चा प्रसन्न हो गया, और भागने लगा तितली के पीछे। एक लाल पत्थर मिल गया, उसे उठा लाया, और समझा कि हीरा मिल गया और प्रसन्न है। कभी कुछ भी नहीं मिलता है, बैठा है और प्रसन्न हो रहा है।
एक घर में मैं मेहमान था। दो छोटे बच्चे, जिनकी उम्र करीब-करीब छह साल
की रही होगी--एक लड़का और एक लड़की; और एक और छोटा बच्चा, जिसकी उम्र मुश्किल से तीन, साढ़े तीन साल रही होगी-- वे तीनों खेल रहे थे। घर के लोग बाहर गए थे, मैं अकेला था। मैंने देखा कि बच्चे एक कमरे में हैं--एक लकड़ी और एक लड़का-- और सबसे बड़ा बच्चा बाहर सीढ़ियों के पास बैठा बड़ा प्रसन्न हो रहा है, गदगद हो रहा है। कुछ कारण नहीं दिखाई पड़ता। वह खेल में भागीदार भी नहीं है, जो खेल चल रहा है।
तो मैं उसके पास गया और मैंने पूछा, क्या मामला है, तुम खेल नहीं रहे हो?
उसने कहा, मैं खेल रहा हूं।
... तू यहां बाहर बैठा हुआ है सीढ़ियों पर! खेल तो वहां भीतर चल रहा है?
उसने कहा, वह खेल है--लड़का डैडी बना है, लड़की मम्मी बनी है, और मैं होनेवाला बच्चा हूं। अभी मैं पैदा नहीं हुआ।
अभी वह पैदा भी नहीं हुए हैं गदगद हो रहे हैं! और तुम्हें पैदा हुए कितने साल हो गए, तुम अब तक गदगद नहीं हुए हो।... कब होओगे? क्या मरने की रात देख रहे हो?
वह बड़ा प्रसन्न हो रहा है, क्योंकि जल्दी वक्त आ रहा है।
बच्चे अकारण प्रसन्न होते हैं, और हम उनकी प्रसन्नता को तोड़ते हैं; तुम उन्हें गंभीर बनाना चाहते हैं। गंभीरता रोग है। लेकिन बाप पढ़ रहा है, या हिसाब लगा रहा है, या नोट गिन रहा है--वह समझता है, बहुत भारी काम कर रहा है। वह बच्चे से कहता है--चुप रहो, मुझे गिनती भूल जाती है।
तुम नोट गिन रहे हो--जिससे ज्यादा व्यर्थ काम दुनिया में खोजना मुश्किल है; जिनको गिन-गिन कर तुम कहीं न पहुंचोगे--और बच्चे से कहते हो, चुप रहो! और बच्चो आनंद गिन रहा था, वह अकारण नाचना चाहता था, अमकारण कूदना चाहता था--तुमने क्षुद्र के लिए विराट को रोक दिया!

और जब सब तरफ से बच्चे पर यह रुकावट पड़ती है, तो धीर-धीरे वह गंभीर होने लगता है। और तब एक बात उसका समझ में आ जाती है कि इस समाज में निमंत्रण, कंट्रोल का मूल्य हैः अपने को नियंत्रित रखो! और जितना तुम ज्यादा अपन को नियंत्रित रखोगे, उतना ही आनंद का द्वार बंद हो जाएंगे।

क्योंकि आनंद तो उतारता है तुम्हारे स्वच्छंद चिŸा में, स्वतंत्र चिŸा में--जहां कोई नियंत्रण नहीं, जहां सब कंट्रोल, सब नियंत्रण नीचे रख दिए गए हैं। तभी तुम पूरी मधुशाला को पीने में समर्थ हो पाते हो।
हमारी सारी शिक्षा-दीक्षा व्यक्ति को उपयोगी बनाने की है, आनंदित बनाने की नहीं। उपयोगी का अर्थ है--कहीं क्लर्क हो जाना, कहीं स्कूल में मास्टर हो जाना, किसी दफ्तर में किसी आफिस में, मशीनरी में फिट हो जाना और जिंदगी भर काम करना, और जिंदगी भर पैसे कमाना, और बच्चे पैदा करना--और उनको भी इसी के लिए तैयार करना कि वे भविष्य में फैक्टरी चलाएं।
कुछ फर्क नहीं मालूम पड़ताः पहले तुम्हारे बाप फैक्टरी चलाते थे, अब तुम फैक्टरी चलाते हो। उन्होंने तुम्हें तैयार किया, कभी सुख न जाना जीवन का, तुम्हें तैयार किया कि फैक्टरी चलाओ, अब तुम और बच्चे पैदा करके तैयार कर रहे हो कि अब तुम फैक्टरी चलाना। जैसे कि फैक्टरी कोई बड़ी भारी बात है, जिसको चलाने के लिए सब को पैदा होने की जरूरत है।
फैक्टरी न चली तो कुछ फर्क नहीं है। फैक्टरी चल गई तो होना क्या है? आदमी व्यवस्था से कम कीमत का हमने कर दिया है। और जैसे-जैसे फैक्टरी चलती जाती है, वैसे-वैसे आदमी कम कीमत का होता जाता है।
तुम्हारा उपयोग क्या है? तुम्हारा उपयोग इतना है कि तुम समाज के ढांचे में काम के हो जाओ। हमारी सारी शिक्षा-दीक्षा बस इसीलिए है कि आदमी मशीन हो जाए और मशीन की जगह काम करने लगे। जितना कुशल आदमी हो मशीन होने में, उतना हमारी व्यवस्था में ऊपर पहुंच जाता है। हम कहते हैं, यह आदमी बड़ा कुशल है। जितना अकुशल आदमी हो, उतनी हमारी व्यवस्था में नीचे छूट जाता है। लेकिन कुशलता का क्या अर्थ है, जिससे आनंद उपलब्ध न होता हो?
जीवन व्यवसाय नहीं है। और यही गृहस्थ और संन्यासी का फर्क है--मेरे लिए। जिसने जीवन को व्यवसाय समझा है, वह गृहस्थ। और जिसने जीवन को उत्सव समझा है, वह संन्यासी।
तुम्हें मैंने संन्यास के लाल रंग के कपड़े दिये हैं--सिर्फ इस ख्याल
से कि तुम समझोगे कि लाल फूलों का स्वाभाविक रंग है। जिसका जीवन फल की आकांक्षा रखता है, वह गृहस्थ; और जिसका जीवन सिर्फ फूल होना चाहता है, वह संन्यासी। फूल का उपयोग है; फूल का क्या उपयोग है? फल तो तुम खा सकते हो, पचा सकते हो, खून बना सकते हो; फूल का क्या करोगे? फूल का कोई भी तो उपयोग नहीं है। इसलिए जब हम आनंदित होता हैं, किसी के उत्सव में सम्मिलित होते हैं, तो फूल ले जाते हैं। फूल निरुपयोगी है, नान-यूटिलिटेरियन है। वह कविता की तरह है। उसका कोई भी तो उपयोग नहीं है। उससे तुम प्रसन्न हो सकते हो, उससे तुम तिजोड़ियां नहीं भर सकते हो। तिजोडि? यां भरने के लिए तो मुर्दा नोट चाहिए, जिंदा फूल काम न पाएगा। क्योंकि जिंदा फूल अगर तुमने तिजोड़ी में भर लिए तो वे सब सड़ जाएंगे। मरे नोट चाहिए, जो सड़ते ही नहीं। मरी-मरायी चीज फिर नहीं मरती, जिंदा चीज तो मरती है।
संन्यास का अर्थ है, जो जिंदगी को फूल की तरह देखता है, फूल की तरह नहीं। यही कृष्ण गीता में अर्जुन को कह रहे हैं। प्रतीक अलग, कहानी और है, पृस्रभूमि भिन्न है, पर सार तो यही है। वे यही कह रहे हैं कि तू कर्म-फल की आकांक्षा मत कर। तू फल की आकांक्षा मत कर। तू रिजल्ट की, परिणाम की, आकांक्षा मत कर। तू फूलों की भांति हो जा। जो हो रहा है, होने दे; जो हो सकता है, कर; लेकिन तू इसको प्रयोजन मत बना, तू सिर्फ निमिŸा रह।
फूल की भांति होने का अर्थ है, तुमने जीवन में उत्सव को जगह दी। अब तुम नाचोगे, गाओगे, प्रसन्न होओगे। लेकिन, अगर तुमसे मैं कहूं, नाचो, तो तुम्हारा मन तत्काल पूछेगा--क्या फायदा होगा?
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ध्यान करने से फायदा क्या?
... तुम बैंक के बाहर कभी निकलोगे कि नहीं? ... तुम दुकान के बाहर कभी आओगे कि नहीं, फायदा... प्राफिट! ... तुम्हारे सोचने का सभी ढंग रुपयों में बंधा है। अगर मैं उनको कह दूं कि जब समाधि लगेगी, तो एकदम हजार का नोट प्रकट होगा, तो वे कहेंगे, करने जैसा है! जल्दी राज बताइये, गुर क्या है? देर क्यों की? लेकिन अगर मैं उनको कहता हूं कि आनंद बरसेगा, ऐसी घड़ी आएगी-- सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले--तो वे कहेंगे, यह अपने बस की बात नहीं! फिर अभी समय भी नहीं आया! वे इसके लिए मरने की प्रतीक्षा करेंगे।

लोग ठीक मरते वक्त धार्मिक होते हैं। आखिरी वक्त पर टालते रहते हैं। इसीलिए लोग कहते हैंः जब बूढ़े हो जाओ तब सुनना संतों की बातें। अभी तो जवान हो, अभी कहां जा रहे हो?

लोग मेरे पास आते हैं। एक बूढ़े सज्जन मेरे पास आए। उनके लड़के ने संन्यास ले लिया। लड़का भी ऐसा कि अब कोई लड़का नहीं है--पचास साल का है! उनकी उम्र होगी कोई पचह Ÿ साल की। वे कहने लगे, यह आपने क्या किया? लड़कों को संन्यास देने लगे! अभी उसकी उम्र है? अभी मैं जिंदा हूं! अब जब तक बाप जिंदा है, तब तक बेटा लड़का ही है। आपने उसको संन्यास दे दिया? यह तो आखिरी बात है!

मैंने कहा, अब आप आ ही गए, चलो छोड़ो, एक गलती मुझसे हो गई, मगर दूसरी न होने दूंगा। उन्होंने कहा, क्या मतलब?

मैंने कहा, आपको संन्यास... ।

... मुस्कुराने लगे। वह मुस्कुराहट खोखली... कि नहीं, सोचूंगा, आऊंगा।

मैंने कहा, अब और क्या देर है?

... कि नहीं, मैं इसलिए तो आया ही नहीं था। यह सवाल नहीं है।

अगर तुम कहते हो लड़के के लिए थोड़ी देर से देना, तो देर तुम्हारे लिए हो गई। पचह Ÿ साल काफी हैं। और सबसे ज्यादा तुम जी गए हो। मूल तो चूक गया, ब्याज में जी रहे हो! अब अभी संन्यास की हिम्मत नहीं?

नहीं, कहने लगे, सोचूंगा, अभी कोई काम-धाम पड़े हैं, उलझनें हैं, नाती-पोतों की शादी करनी है। पर आऊंगा, एक दिन जरूर आऊंगा!

वे कहकर गए थे। लेकिन वह एक दिन नहीं आया, क्योंकि वे मर गए। कुछ दिन पहले उनके लड़के का पत्र आया कि पिताजी चल बसे।

व्यवसाय में ही मत चल बसना।

जीवन आनंद-उत्सव है। इसका अर्थ नहीं है कि तुम व्यवसाय मत करना। तुम व्यवसाय आनंद उत्सव के लिए ही करना। तुम कमाना तो भी गंवाने को। तुम इकट्ठा करना तो भी लुटाने को। तुम बचाना तो भी बांटने को। लक्ष्य तुम्हारा आनंद रहे। लक्ष्य तुम्हारा फूल रहे। खिले और लूटा दे अपनी सारी सुगंध।

सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी पाई बिन तोले।

तुम आनंद को तौल Ÿ के मत पीयो, तुम बिना तौले पी जाओ। यहां कुछ दाम भी तो नहीं लग रहे हैं! आनंद का कोई मूल्य भी तो नहीं है! तुम्हें कुछ भी तो नहीं चुकाना पड़ रहा है। सिर्फ पीने की तैयारी काफी है--और कलारी खुली है; और मधुशाला के द्वार खुले हैं!

एक रात मुल्ला नसरुद्दीन ने मधुशाला के मालिक को फोन किया। कोई तीन बजे होंगे, कि मधुशाला कब खुलेगी? उसने कहा कि बड़े मियां! आधी रात, यह भी कोई पूछने की बात है। नींद से जगा दिया नाहक! मधुशाला नियम से खुलेगी, सुबह नौ बजे। उसके पहले एक मिनट पहले नहीं। सो जाओ!

पांच-दस मिनट बाद फिर फोन की घंटी आई। गुस्से में उस आदमी ने फिर फोन उठाया। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, कि कब तक खुलेगी मधुशाला? उसने कहा कि कह दिया एक दफा कि नौ के पहले--एक मिनट पहले नहीं, चुपचाप सो जाओ!

पंद्रह मिनट बाद फिर फोन आया। तब तो वह आदमी नाराज हो चुका था कि सोने ही नहीं दे रहा है! उसने कहा कि मामला क्या है? क्या ज्यादा पी गए?

नसरुद्दीन ने कहा कि ज्यादा पी गए हैं। और असली बात यह है कि मैं मधुशाला के भीतर बंद हूं, बाहर नहीं। तो मुझे निकलना है, भीतर नहीं आना। मधुशाला कब खुलेगी?

तुम सोचोगे, ज्यादा पी गया होगा। पूरी मधुशाला मिल गई बिना मालिक के। जब वह रात को दुकान बंद हुई, तब वे किसी तरह भीतर रह गए।

तुम भी आनंद को ऐसे ही पीना, खरीद के नहीं। खरीदने की कोई बात ही नहीं। तौल Ÿ के क्या पी रहे हो?

... लेकिन क्यों आदमी तौल Ÿलकर पीता है? ... डरता है!

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि अगर हम ठीक से नाचने लगते हैं तो थोड़ा सा भय पकड़ता है कि कहीं ऐसा न हो कि नियंत्रण खो जाए। कंट्रोल है अपने पर, वह कहीं खो न जाए! ध्यान में जाते हैं, जैसे ही घड़ी करीब आती है जब कि

विस्फोट हो, तभी भयभीत हो जाते हैं। मुझसे आकर कहते है कि वहां ऐसा लगता है कहीं हम खो न जाएं! अब तक अपने पर नियंत्रण रखा है।
नियंत्रण खोने का डर क्या है?
... डर इसलिए है कि तुम्हारे समाज ने तुम्हें सप्रैशन, दमन सिखाया है। तुमने इतनी चीजें दबा रखी हैं कि नियंत्रण खो जाएगा। तो तुम्हें डर है कि वह प्रकट न हो जाएं। तुम दबाकर बैठे हो बहुत सी चीजें। अगर तुमने आनंद खुलकर पिया, तो जो तुमने दबाया है वह उठ जाएगा। तब बड़ी मुश्किल होगी। तब बड़ा कठिन हो जाएगा।
गुरजिएफ के पास जब भी कोई नया साधक जाता था, तो वह पहला काम करता था उसे काफी शराब पिलाने का। गुरजिएफ अनूठा गुरु था, लेकिन बहुत काम का। अनूठे ही काम के होते हैं। जिन मुर्दों को तुम पूजते हो, वे तो किसी काम के नहीं होते। तुम उनको इसलिए ही कि बिल्कुल मुर्दा हैं, और तुम्हारे नियंत्रण को कहीं से भी नहीं तोड़ते; बल्कि तुम्हारे नियंत्रण में सहयोगी हैं, तुम्हारे दुख में सहयोगी हैं; तुम्हारे दुख को बढ़ाते हैं, जमाते हैं। तुम जाओ अपने गुरुओं के पास। कोई कहेगा, चाय पीना छोड़ो।... कोई कहेगा, सिगरेट पीना छोड़ो।... कोई कहेगा, ब्रह्मचर्य का व्रत ले लो। कोई वह... तुम वैसे ही काफी दुखी हो, तुम वैसे ही काफी बंधे हो, तुमने वैसे ही काफी नियंत्रण थोप रखे हैं--वे और थोड़ा नियंत्रण बढ़ा देंगे; वे तुम्हारे हाथ पर थोड़ी और जंजीरें डाल देंगे। वे तुम्हें आनंद पाने के लिए नहीं उकसाएंगे; वे तुम्हें और बंधन में जाने के लिए उकसाएंगे।
यह सच है कि आनंद के उतरने पर ये सब चीजें खो जाती हैं--जो क्षुद्र आज तुम्हें पकड़े हुए हैं। वे पकड़े ही इसलिए है।
अगर एक आदमी शराबी है, तो उससे शराब छुड़ाने के दो उपाय हैं। एक तो उपाय
यह है कि उससे वचन लो, उसको आज्ञा दो, उससे कसम खवा लो, कि व्रत दे दो कि अब मैं शराब नहीं पीयूंगा। यह तुमने उसके हाथ पर एक और जंजीर डाल दी। और दूसरा रास्ता यह है कि उसे परमात्मा की शराब पीने की तरफ ले जाओ। और जिस दिन वह परमात्मा की शराब पी लेगा, उस दिन यह शराब छूट जाएगी। यह तुमने मुक्ति की तरफ, आनंद की तरफ बढ़ाया--बंधन नहीं डाले, तोड़े।
शराब तो छूट ही जाएगी; जब उसकी शराब पी ली तो यह शराब बदबू देने लगेगी।
जब उसकी शराब पी ली तब यह शराब गंदी नाली का पानी मालूम पड़ने लगेगी। जब उसका प्रेम पा लिया तो ब्रह्मचर्य तो अपने-आप घट जाएगा; उसे घटाने की कोई जरूरत नहीं। और जब उसका संपदा मिल गई, तब इस संपदा पर, कौड़ियों पर आग्रह तुम्हारा अपने-आप छूट जाएगा। पाओ, ताकि यह संसार छूट जाए। यही तो परम-ज्ञानियों का सदा से संदेश है।
लेकिन, जिन मुर्दों को तुम पूजते हो, वे तुम्हें और हथकड़ियां डाल देंगे। उन्होंने ही तो हथकड़ियां डाली हैं; या उनके बाप-दादा ने। और उन्होंने सब तरफ से तुम्हें बांध दिया है। तुम मुस्करा भी नहीं सकते खुलकर, क्योंकि लोग कहेंगे, यह असंस्कारी है। ऐसे कहीं खिलखिला कर हंसा जाता है। हंसते भी तुम ऊपर-ऊपर हो। तुम्हारी हंसी पेट तक नहीं आती; क्योंकि वहां भय है। क्योंकि पेट में ही सब दमन है। वहीं कामवासना दबी पड़ी है। अगर हंसी पेट तक गई, तो तुम तत्क्षण पाओगे कि वासना जग रही है। तो डरते हो तुम। ऊपर ही ऊपर हंसते हो; श्वास तक पूरी नहीं लेते।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि श्वास तुम पूरी तभी ले सकोगे, जब कामवासना
के प्रति तुम्हारा विरोध मिट जाए। तुम श्वास भी ऊपर-ऊपर लेते हो; छाती के ऊपरी हिस्से से लेते हो, भीतर तक नहीं क्योंकि अगर श्वास भीतर तब जाएगी, तो वह काम के केंद्र पर चोट करती है।
मेरे पास लोग आते हैं। जब वे ठीक से सक्रिय ध्यान करते हैं, तो वे कहते हैंः क्या मामला है? हम तो सोचते थे ब्रह्मचर्य आएगा--वासना जग रही है। मैं उनसे कहता हूंः जगेगी, क्योंकि अब तक तुमने दबाया है। पर जगने दो, भयभीत मत होओ। उसे जाग ही जाने दो, ताकि भय मिट जाए। तुम उससे गुजर जाओ। और ध्यान तुम किए जाओ। क्योंकि वासना की ही शक्ति जब ऊपर चढ़ेगी, तभी ब्रह्मचर्य बनेगी।

ब्रह्मचर्य काम का दुश्मन नहीं है--काम का रूपांतरण है। रूपांतरण के लिए पहले तो वासना का जगना जरूरी है। शक्ति हो तभी तो रूपांतरित होगी; शक्ति ही न हो तो रूपांतरण वैसा? तो तुम भयभीत मत होओ।
तुम्हारे साधु-संत तुम्हें सब तरफ से भयभीत करते हैं। एक बात सूत्र
की तरफ समझ लोः जो तुम्हें भयभीत करे, उससे बचना। जो तुम्हें निर्भय करे, उकसे पास जाना।
गुरजिएफ के पास कोई जाता तो वह पहला करता कि शराब पिला देता--इतना पिला देता कि लोग पूछते कि यह किसलिए करते हैं? तो वह लोगों को कहता कि अब बैठ जाओ। जब आदमी शराब पी लेता तो सारा रूप बदल जाता उस आदमी का। क्योंकि जो-जो दबा पड़ा है, वह बाहर निकलना शुरू हो जाता है। शराब जब तक नहीं पी थी तब तक रात-राम, राम-राम कर रहा था, अब वह गालियां देना शुरू कर देता है। तुम जानते हो शराबियों को? भला आदमी, लेकिन शराब पीकर... तुम कहते हो शराब की वजह से कर रहा है। कोई शराब गाली को पैदा नहीं कर सकती। कोई केमिस्ट्री सिद्ध नहीं कर सकती कि शराब से गाली कैसे पैदा हो सकती है। गाली भीतर दबी पड़ी थी, शराब ने बंधन हटा दिया, गाली उठ कर ऊपर आ गई। अब राम-राम नहीं कहता, राम चदरिया उतार कर फेंक देता है। अब तक बिल्कुल शांत मालूम पड़ता था, एकदम क्रोधित हो जाता है!
मधुशाला में जाकर देखो, वहां तुम्हें असली तस्वीर दिखाई पड़ेगी आदमी की। वही तुम्हारी असली तस्वीर भी है। तुम सिर्फ छिपाये खड़े हो। इसलिए तो तुम डरते हो शराब पीने से, कि कहीं शराब पी ली तो प्रकट हो जाएगा।... कभी भांग-वगैरह पीकर देखी, अनर्गल आदमी बकने लगता है! वह सब भीतर दबा पड़ा है। भांग कैसे उसे पैदा करेगी? भांग सिर्फ इतना करती है कि नियंत्रण को हटा लेनी है। तुम भूल गए--समाज, संस्कार, सभ्यता--सब भूल गए; सब तुम शुद्ध आदमी हो गए, जैसे तुम हो भीतर। अब शुद्ध आदमी बाहर प्रकट होने लगा। तो जब तुम होश में थे, तब तुम कह रहे थे कि बड़ी कृपा की कि आप आए! बड़ा शकुन हुआ! आप जब आते हैं तो घर में मंगल की वर्षा शुरू हो जाती है। आपका चेहरा ही देखकर फूल खिल जाते हैं। फिर शराब पी गए और कहने लगे--निकलो बाहर! इस शकल को सुबह से यहां ले आए! जब भी तुम दिखायी पड़ जाते हो, तभी दिन खराब जाता है।
यही भीतर दबा पड़ा था, वह बाहर आ गया।
गुरजिएफ पहले भीतर के आदमी को बाहर लाता है। वह कहता है, पहले यह जान लेना जरूरी है कि यह आदमी भीतर कैसा है! फिर उस हिसाब से इसकी विधियां तय करेंगे। तुम सक्रिय ध्यान करते हो, कुंडलिनी करते हो, और ध्यान करते हो-- उसमें तुम्हारे भीतर जो-जो दबा है, वह बाहर आ जाता है। गुरजिएफ शराब पिलाता था, मैं उसे जरूरी नहीं मानता। सक्रिय ध्यान बाहर ले जाता है। देखो! सक्रिय ध्यान में जो आदमी बिल्कुल शांत था। चीख रहा है, पुकार रहा है! जो आदमी बिल्कुल भूला मालूम होता था, कि कभी चोट नहीं करेगा, वह एकदम घूंसे तान रहा है हवा में, युद्ध कर रहा है; जैसे किसी को मार डालेगा। यह असली आदमी है।
शराब की कोई जरूरत नहीं है, थोड़ा नियंत्रण ढीला करने की जरूरत है, और चीज बाहर आ जाएगी। यही असली है और इसी को बदलना है। वह जो नकली ऊपर-ऊपर है, वह तो रंग-रोगन है। उसका कोई भी मूल्य नहीं है। उससे कुछ सार भी नहीं है। उसमें बदलाहट करने से कुछ बदलाहट होगी भी नहीं। असली को ही बदला जा सकता है, क्योंकि वही शक्ति के स्रोत हैं।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
तुम डरे हो आनंद पाने से, क्योंकि नियंत्रण... । जागो! नियंत्रण की फिक्र छोड़ो, आनंद की फिकर मन में लाओ! थोड़े ही दिन में जैसे-जैसे आनंद उतरेगा, नियंत्रण अपने-आप हट जाएगा। इसका यह अर्थ नहीं कि तुम अनियंत्रित हो जाओगे! इसका यह भी अर्थ नहीं कि तुम असामाजिक तत्व बन जाओगे, कि तुम कुछ गलत करने लगोगे, नहीं अभी डर है, तब कोई डर न होगा अभी तुम कभी भी असामाजिक कृत्य कर सकते हो।
हत्यारों का जीवन पढ़ो। उन हत्यारों में से कोई भी ऐसा नहीं था कि कोई
भी कह सकता कि यह आदमी हत्या करेगा। ठीक तुम जैसे अच्छे-भूल लोग थे; एक दिन हत्या कर दी! मनोवैज्ञानिक तो बड़े विपरीत निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। वे कहते हैं, जो आदमी रोज थोड़ा-थोड़ा क्रोध करता रहता है, वह हत्या कभी नहीं कर

सकता। वह अच्छा आदमी है क्योंकि इसका क्रोध रोज ही निकल जाता है। जो आदमी रोज चेहरा बनाये रखता है शांति का और इकट्ठा करता जाता है, वह किसी दिन हत्या कर सकता है।
विस्फोट के लिए, काफी आग चाहिए। रोज ही चिनगारी निकल जाए तो विस्फोट क्या! इसलिए वह पति बेहतर, वह पत्नी बेहतर जो चौबीस घंटे में एकाध दफे कलह कर लेती है। वह पति खतरनाक है, कि पत्नी कलह करती है, वह बुद्ध बने रहते हैं। यह खतरनाक है। यह किसी दिन गर्दन दबा देगा। इससे कम में उसका काम नहीं चलेगा। इतना इकट्ठा कर लेगा कि यह किसी दिन मार ही डालेगा।
साधुओं से सावधान!... हत्यारे वही हो जाते हैं। तुम देखा हिंदू- मुस्लिम दंगा हो जाए, अच्छे-भले लोग--कल तक दुकान कर रहे थे, बाजार जा रहे थे--खरीद रहे थे, बेच रहे थे--मित्र थे--अचानक सब समाप्त हो गया। वही आदमी जो कल रोज मस्जिद जाता था, नमाज पढ़ता था पांच बार, वह आदमी जो रोज मंदिर जाता था, राम-चदरिया ओढ़े रहता था--वे ही एक-दूसरे के मकान में आग लगा रहे हैं, हत्याएं कर रहे हैं; छोटे बच्चों को काट रहे हैं!
यह कैसे संभव होता है। यह सब भीतर दबा पड़ा है। तुम खतरनाक हो, जैसे तुम हो, तुम्हें विस्फोट के लिए जरा सी जरूरत है--बस आग पकड़ जाती है। इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते है, हर दस साल में दुनिया में एक बड़ा युद्ध चाहिए ही; क्योंकि लोग इतना इकट्ठा कर लेते हैं कि अगर युद्ध में नहीं निकलेगा तो लोगों का जीवन मुश्किल हो जाएगा। और छोटे-छोटे पागलपन चाहिए ही। किसी भी बहाने पागलपन बाहर निकल आता है; कोई बहाना मिल जाए।... फुटबाल खेल रहे हैं लोग। अब बड़ी हैरानी की बात है, लाखों लोग देखने इकट्ठे हो जाते हैं, कुछ भी नहीं कर रहे हैं वे लोग, गेंद इधर-उधर फेंक रहे हैं। और ये धूप सह रहे है, और खेलने वालों से भी ज्यादा उछल-कूद मचा हरे हैं। झगड़े हो जाएंगे, मारपीट हो जाएगी।
घोड़ों की रेस चल रही है, उस पर लोग जाकर दांव लगा रहे हैं; बिल्कुल पुलकित हो रहे हैं; दुखी हो रहे हैं; रो रहे हैं; हंस रहे हैं अगर तुम इनको गौर से देखो, तो तुम पाओगे; यह बड़ा पागलपन है, यह किस तरह चल रहा है! तुम किसी घोड़े को राजी न कर सकोगे। आदमियों को दौड़ाओ, घोड़े कभी न आएंगे देखने! घोड़े कहेंगे कि यह क्या पागलपन है! गधे भी न आएंगे, घोड़ों की तो छोड़ो! लेकिन घोड़े दौड़ रहे हैं और आदमी वहां खड़े हैं। बड़े समझदार लोग हैं; पैसा है, पद है--सब है; बुद्धिमान हैं।... क्या कर रहे हैं? कुछ पागलपन है, जिसको निकास के लिए रास्ते चाहिए।
मुर्गे लड़ा रहे हैं! बड़े-बड़े नवाब हैं, बैठे हैं, मुर्गे लड़ा रहे हैं। मुर्गे के लड़ाने से हिंसा निकल रही है। अगर मेरे मुर्गे ने तुम्हारे मुर्गे को मार डाला तो यह प्रतीक हैः मैंने तुम्हें मिटा डाला। यह बहाना है। अगर मेरा मुर्गा हार गया तो मैं रात सो न सकूंगाः हार हो गई।
फिर, मुर्गे-वगैरह महंगे काम हैं, तो लोग सस्ते काम--शतरंज! उस पर घोड़े हाथी--नकली--असली तो महंगा, है, असली हाथी रखो, घोड़ा रखो--वे जमाने गए, राजा- महाराजा न रहे--तो शतरंज! बैठे हैं लोग, शतरंज खेल रहे हैं। और ऐसे लीन हैं कि जैसे कबीर का वचन इन्हीं के लिए हैः सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले। हिंसा, क्रोध शतरंज से निकल रहा है।
हमारे खेल युद्ध के संक्षिप्त संस्करण हैं, हिंसा के रूप हैं। हम सब भांति भरे हुए हैं व्यर्थ कचरे से! तुम्हें उसे हटाना पड़ेगा। नहीं तो तुम आनंद से भयभीत रहोगे। और जो आनंद से भयभीत हो गया, वह भ्रष्ट हो गया।
क्योंकि सारा जीवन आनंद के लिए है। और ये सारा जीवन, सारे जीवन की यात्रा एक ही मंजिल को मानती है--वह आनंद है।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
हंसा पाये मानसरोवर, ताल Ÿालैया क्यों डोले।
यह सूत्र है सार काः हंसा पाये मानसरोवर पर, ताल Ÿालैया क्यों डोले। ... अगर हंस को मानसरोवर मिल गया तो अब वह क्षुद्र ताल Ÿालैया में क्यों भटकेगा। जिसको परमात्मा मिल गया, वह अब क्षुद्र में क्यों भटकेगा। जिसको वह आखिरी शराब मिल गई, वह सब इन मधुशालाओं में क्या जाएगा! इनमें भी तो उसी की तलाश में जाता है। पत्नी में तुम उसी प्रेम को खोज रहे हो, जो तुम्हें प्रार्थना से मिल सकता है--पति में भी तुम उसी प्रेम को खोज रहे हो--जो परम

धन में ही मिल सकता है। पद में भी तुम वही खोज रहे हो, जो कोई पति से कभी नहीं मिल सकता--सिर्फ परमात्मा से मिल सकता है। धन में भी तुम वही खोज रहे हो, जो परमधन में ही मिल सकता है। पद में भी तुम वही खोज रहे हो, जो परमपद में मिल सकता है। संसार में तुम उसी को खोज रहे हो--जो परमधन में ही मिल सकता है। पद में भी तुम वही खोज रहे हो, जो संसार में नहीं है।

हंसा पाये मानसरोवर, ताल Ÿालैया क्यों डोल।

इसलिए असली सवाल ताल Ÿालैया छोड़ने का नहीं है, मानसरोवर खोजने का है। यह सवाल नहीं है कि तुम क्षुद्र को छोड़ो। क्षुद्र छोड़ने योग्य भी नहीं है--इतना क्षुद्र है। उसकी बात ही उठानी व्यर्थ है। अगर तुम क्षुद्र को छोड़ने में लगोगे, तुम उसको बड़ा महत्व दे दोगे। इतना महत्व भी नहीं है उसका। तुम तो विराट को पाने में लगो।

संसार को छोड़ना नहीं है, परमात्मा को पाना है। कबीर और नानक का यही गहनतम संदेश है। इसलिए उन्होंने संन्यासी नहीं बनाये। उनका संन्यासी गृहस्थ है। वह घर में है।

संसार को क्या छोड़ना! छोड़ने-योग्य भी नहीं है। परमात्मा को पाना है। और जिसने परमात्मा को पा लिया, संसार उसके लिए क्या बाधा है? रहा आए। ताल Ÿालैया जहां हैं, रहे आए। मेरा मानसरोवर मुझे मिल गया, मैं ताल Ÿालैयों में नहीं डोलता। ताल Ÿालैया को छोड़कर भागने की कोई जरूरत नहीं। ताल Ÿालैया को मिटाने का भी कोई जरूरत नहीं। अभी जिनको मानसरोवर नहीं मिले हैं, तो उनके लिए कुछ तो बचने दो। जिनको मानसरोवर नहीं मिला है, कम से कम ताल Ÿालैया रहने दो!

जीवन के दो ढंग हैं--एक ढंग है--नकारात्मक, निगेटिव; एक ढंग है--विधायक, पाजिटिव एक ढंग है कि जो गलत है, उसको छोड़ो; वह नकारात्मक है। और दूसरा ढंग है कि जो सही है, उसे पाओ; वह विधायक है। तुम नकारात्मक से बचना, क्योंकि निषेध सिर्फ मृत्यु में ले जाता है।

मैं तुमसे नहीं कहताः धन छोड़ो। मैं तुमसे नहीं कहताः घर छोड़ो। मैं तुमसे कहता हूंः जागो! यह घर तुम्हारे लिए काफी नहीं है, बड़े घर को खोजो! और बड़ा घर मिल जाए तो तुम इस घर में भी रहे जाओगे, लेकिन कमलवत हो जाओगे। यह घर तुम्हें छुएगा नहीं। तुम रहोगे संसार में और संसार के बाहर रहोगे, संसार तुम्हारे भीतर प्रवेश न करेगा।

हंसा पाये मानसरोवर, ताल Ÿालैया क्यों डोले।
तेरा साहब है घर मांही, बाहर नैना क्यों खोले।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले।।
तेरा साहब है घर मांही, बाहर नैना क्यों खोले।

संसार को अर्थ हैः जो भीतर है उसे हम बाहर खोज रहे हैं; धर्म का अर्थ हैः जो जहां है उसे हम वहीं खोज रहे हैं।

सूफी फकीर औरत हुईः राबिया। बड़ी बहुमूल्य! स्त्रियों में दो-चार स्त्रियां ही मनुष्यजाति के इतिहास में इस ऊंचाई तक पहुंची हैं, जहां राबिया है। एक दिन लोगों ने देखा, घर के बाहर कुछ खोजती है। बूढ़ी औरत! तो दूसरे लोग भी साथ देने आ गए। पुरानी कहानी है, अब तो कोई नहीं आता। छोटा गांव, पास-पड़ोस के लोग आ गए। उन्होंने कहा कि राबिया, क्या खो गया है।

उसने कहा, मेरी सूई खो गई है।

तो खोजने लगे वे भी। सांझ का ढलता सूरज, अंधेरा उतरता है। फिर एक आदमी ने पूछा कि सुई बहुत छोटी चीज है, रास्ता बड़ा है, कहां गिरी? ठीक जगह बताओ तो मिल भी जाए। अन्यथा रात उतरने के करीब है।

राबिया ने कहा, वह मत पूछो कि कहां गिरी, क्योंकि गिरी तो घर के भीतर है।

वे सब हंसने लगे, उन्होंने कहा, राबिया, पागल तो नहीं हो गई? अगर सुई घर के भीतर गिरी है तो बाहर क्यों खो रही है?

राबिया ने कहा, मजबूरी है। घर में दीया है, अंधेरा है। और अंधेरे में खोजने से क्या सार! बाहर खोजती हूं, सूरज की थोड़ी रोशनी शेष है। रोशनी में ही खोजा जा सकता है।

लोगों ने कहा, पागल, रोशनी में खोजा जा सकता है, वह सच है। लेकिन अगर खोया ही न हो वहां, तो रोशनी भी क्या करेगी? रोशनी कोई सुई को बना तो न

देगी। अच्छा हो राबिया कि दीये को हम घर के भीतर ले जाए। क्योंकि जो जहां खोई है, वहीं मिलेगी।
राबिया ने कहा कि तुम बड़े समझदार हो, लोगो। लेकिन अपनी जिंदगी में तुमने ऐसा नहीं किया। और मैं वैसा ही कर रही हूं, जैसा तुमने अपनी जिंदगी में किया है। भीतर जिसे खोया है, तुम बाहर खोज रहे हो। तो मैंने सोचा यही तर्क तुम्हारा है; तुम्हारी बस्ती में रहती हूं, इसी तर्क को मानकर चलना ठीक है। लेकिन तुम मुझे पागल कह रहे हो।
तुमने कभी सोचा कि तुमने आनंद कहां खोया है?
तुमने आनंद कारों में खोया है, बड़े मकानों में खोया है, तिजोड़ियों में खोया है--तुम्हें याद आता है कभी? तुम जब इस संसार में आए थे, तो न तो तिजोड़ियां साथ लाए थे, न बड़ी कारें, न बड़े मकान। तुम क्या लेकर आए थे? लेकिन आनंद तुम्हारे साथ था--तुम प्रफुल्लित थे। बच्चे की भांति तुम परम आनंदित थे, आ òादित थे। आनंद तुम भीतर लेकर आए थे।
इस बात को समझ लेना जरूरी है कि जिसका हमने स्वाद न लिया हो, उसे हम खोजेंगे कैसे। हर आदमी आनंद खोज रहा है। इसका मतलब है। कि कभी न कभी उसने आनंद को जाना है, कोई स्वाद पहचाना है, खोजोगे कैसे?
हर बच्चा आनंद से पैदा होता है। हर बच्चा आनंद के जगत से आता है। हर बच्चा अपने भीतर आनंद की धन लाता है। फिर धीरे-धीरे हम उस पर हावी हो जाते हैं, समाज संस्कारित करता है।
... इसलिए तो तुम्हें चार साल के पहले की याद नहीं आती। तुम खोजने की कोशिश करो अपने अतीत में, तो तीन साल, चार साल, पांच साल--बस उस उम्र तक तुम याददाश्त ले जा सकोगे। फिर याददाश्त समाप्त हो जाती है। क्यों? ... क्या कारण है? ... तुम थे, तो याददाश्त तो होनी चाहिए। लेकिन तुम इतने आनंदित थे कि याददाश्त तो दुख की बनती है, आनंद की नहीं बनती। जब जूता पैर में ठीक आ जाता है तो दर्द होता ही नहीं, तो याददाश्त कैसे बनेगी? तुम चार-पांच साल की उम्र तक याद नहीं कर पाते, क्योंकि तुम इतने प्रफुल्लित थे इतने प्रसन्न थे, याददाश्त बनी ही नहीं। दुख ही न था तो लकीर ही न खिंची। तुम्हारा मन कोरा का कोरा ही रहा।
आनंद की कोई लकीर नहीं खिंचती। आनंद तो आकाश में उड़ते हुए पक्षियों
की भांति है, उनके पद-चिह्न नहीं छूटते। इसलिए तुम याद नहीं कर पाते। मगर कुछ अनजानी धुन भीतर गूंजती रहती है। इसलिए बूढ़े से बूढ़ा आदमी भी कहता है कि बस, बचपन सब कुछ था। बचपन के गीत गाता है। जीसस कहते हैंः जब तुम पुनः बच्चों की भांति न हो जाओगे तब तक प्रभु का राज्य तुम्हें मिल सकेगा। इसका अर्थ ही हुआ कि बच्चों को प्रभु के राज्य की कुछ झलक थी। निश्चित थी। आनंद भीतर था, समाज ऊपर से छा गया। शिक्षा और संस्कार ने सब दबा दिया। तुम्हें फिर से शिक्षा और संस्कार काटना पड़े, और अपने भीतर के आनंद की तलाश करनी पड़ेगी।
तेरा साहब है घर मांही, बाहर नैना क्यों खोले।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले।।
तिल शब्द को समझना उपयोगी है। आंख खोलकर तुम देखते हो, हिमालय दिखाई पड़ता है--विराट हिमालय! उ Ÿांग उसके शिखर! आकाश को छूती हुई उसकी भुजाएं। हिम से ढके हुए हिमालय को तुम देखते हो। इतना विराट हिमालय और तुम्हारी छोटी-सी आंख इतने बड़े हिमालय को देख पाती है। अगर हिमालय को छिपाना हो तुम्हारी आंख से, तो कया करना पड़े? एक छोटा-सा रेत का टुकड़ा तुम्हारी आंखों में डाल देना जरूरी है। बस, आंख तिलमिला गई, हिमालय खो गया। हिमालय छिप गया तिल की ओट में। आंख में किरकिरी--और हिमालय खो गया। एक जरा से रेत के टुकड़े ने, जो आंख से दिखाई भी न पड़े, उसमें हिमालय दब गया इतना विराट! कबीर कहते है, ऐसा ही तुम्हारा साहब खो गया है। आंख में जरा सा तिल, जरा सा कचरा पड़ गया है, और इतना विराट परमात्मा छिप गया है! तुम्हें कुछ परमात्मा को खोजने के लिए और नहीं करना, सिर्फ आंख को साफ कर लेना है; आंख की किरकिरी को साफ करना है। साफ आंख--और परमात्मा उपलब्ध है। वह सादा वहां मौजूद है।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले।

तिल की ओट में छिपा है--साहब, मालिक, प्रभु! उसको खोजने कहीं दूर जाने
की जरूरत नहीं, बस आंख से तिल हट जाए।
क्या है तिल? किस आंख और किस तिल की बात कर रहे हैं कबीर।
तुम्हारा अहंकार बस रेत की तरह तुम्हारी आंख पर पड़ा है। मैं हूं--यही
है तिल। इसी के नीचे वह छिप गया है--जो वस्तुतः है। और जैसे ही तुम हटा दोगे कि मैं हूं, यह गया, वही हो गया। मैं के कटते ही तिल हट जाता है, साहब मिल जाते हैं।
तुम तब तक हो, तब तक तुम उसे न पा सकोगे। तुम अपने को जिस क्षण खोने को राजी हो जाओगे, उसी क्षण वह मिला हुआ है। वह मिला ही हुआ था। उसे खोया ही न था, बस आंख में तिल पड़ गया था।
इस पद को मैं पूरा दोहरा देता हूं, ताकि तुम्हारे हृदय में गूंजता रह जाए...
मस्त हुआ तब क्यों बोले।
हीरा पायो गांठ गठियायो, बारबार बाको क्यों खोले।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले।।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
हंसा पाये मानसरोवर, ताल Ÿालैया क्यों डोले।।
तेरा साहब है घर मांही, बाहर नैना क्यों खोले।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले।।
आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
ग्यारहवां प्रवचन

अन्तर्यात्रा के मूल सूत्र

दिनांकः 11 मार्च, 1975; श्री रजनीश आश्रम, पूना

सूत्र
तेरा जन एकाध है कोई।
काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्है सोई।।
राजस तामस सातिग तीन्यू, ये सब तेरी माया
चौथे पद को जे जन चीन्हैं, तिनहि परमपद पाया।।
अस्तुति निंदा आसा छाड़ै, तजै मान अभिमाना।
लोहा कंचन सम करि देखै, ते मूरति भगवाना।।
च्यंतै तो माधो च्यंतामणि, हरिपद रमै उदासा।
त्रिस्ना अरु अभिमान रहित हवै, कहै कबीर सो दासा।।

तिब्बत के एक आश्रम में कोई हजार साल पहले एक छोटी सी घटना घटी। उससे
ही हम कबीर में प्रवेश
शुरु करें। बड़ा आश्रम था यह, और इस आश्रम ने एक छोटा नया आश्रम भी दूर तिब्बत के सीमांत पर प्रारंभ किया था।
आश्रम बन गया। खबर आयी कि सब तैयारी हो गई है, अब आप एक योग्य संन्यासी
को पहुंचा दें जो गुरु का संभाल ले।
प्रधान आश्रम के गुरु ने दस संन्यासी चुने और दसों को उस आश्रम की तरफ भेजा। पूरा आश्रम चकित हुआ। कोई हजार अंतःवासी थे। उन्होंने कहा, बात समझ में न आई--एक बुलाया था; दस भेजे। उत्सुकता बहुत तीव्र हो गई। जिज्ञासा सम्हाले न सम्हली। तो कुछ संन्यासी गए और गुरु को कहा, हम समझ न पाये। एक का ही बुलावा आया था, आपने दस क्यों भेजे?
गुरु ने कहा, रुको। जब वे पहुंच जाएं, तब तुम्हें समझा दूंगा। तीन सप्ताह बाद... यात्रा लंबी थी--पहाड़ी थी, पैदल यात्रा थी। तीन सप्ताह बाद खबर पहुंची कि आपने जो एक संन्यासी भेजा था, वह पहुंच गया।
अब और भी मुसीबत हो गई। अब तो पूरा आश्रम एक ही चर्चा से भर गया कि यह
तो रहस्य सुलझा न, और उलझ गया। दस भेजे थे; खबर आई, एक ही पहुंचा। फिर उन्होंने फिर से पूछा। तो गुरु ने कहा, दस भेजो तो एक पहुंचता है।
फिर पूरी कहानी बाद में पता चली। दस यात्रा पर गए। पहले ही गांव में प्रवेश किया और एक आदमी ने सुबह ही सुबह नगर के द्वार पर, पहला जो संन्यासी था, उसके पैर पकड़ लिए और कहा, ज्योतिषी ने कहा है कि जो भी व्यक्ति कल सुबह पहला प्रवेश करे, उसी से मैं अपनी लड़की की शादी कर दूं। लड़की यह है और इतना धर मेरे पास है, और कोई मालिक नहीं। एक ही लड़की है, कोई और मेरा बेटा नहीं। ज्योतिषी ने कहा, अगर पहला आदमी इनकार कर दे तो जो दूसरा आदमी हो; दूसरा इनकार करे तो तीसरा। तो तुम दस इकट्ठे ही हो, कोई न कोई स्वीकार कर ही लेगा।
पहले ने ही स्वीकार कर लिया। लड़की बहुत सुंदर थी। धन भी काफी था। उसने अपने मित्रों से कहा कि मेरा जाना न हो सकेगा आगे; परमात्मा की मर्जी यही दिखती है कि मैं इसी गांव में रुक जाऊं।
दूसरे गांव में जब वे पहुंचे तो गांव के राजा का जो पुरोहित थज्ञ, वह
मर गया था, और वह एक नये पुरोहित की तलाश में था। अच्छी नौकरी थी, शाही सम्मान था; काम कुछ भी न था। एक संन्यासी वहां रुक गया। और ऐसे ही... । पहुंचते-पहुंचते, जब सिर्फ दस मिल दूर रह गया था आश्रम, वे एक गांव में
एक सांझ रुके। दो ही बचे थे। गांव के लोगों ने प्रवचन आयोजित किया था। उनमें से एक बोला। जब वह बोल रहा था तो एक नास्त्कि बीच में खड़ा हो गया और उसने कहा कि यह सब बकवास है; ये बुद्ध और बुद्ध वचन, ये सब दो कौड़ी के हैं, कचरा हैं, इनमें कुछ सार नहीं। जो संन्यासी बोल रहा था, उसने अपने मित्र से

कहा, अब तुम जाओ। मैं यहीं रुकूंगा। जब तक इस नास्तिक को बदलकर आस्तिक न कर दिया, तब तक मैं इस गांव से निकलनेवाला नहीं हूं।
ऐसे एक पहुंचा।
दस चलते हैं तब एक पहुंचता है।
इस घटना के आधार पर तिब्बत में यह कहावत बन गयी कि दस चलते हैं तब एक पहुंचता है। मार्ग कंटकाकीर्ण है; और बहुत प्रलोभन हैं मार्ग में। जगह-जगह रुकने की संभावना है। और प्रलोभन है। नीचे उतरनेवाला मार्ग नहीं है, जहां सुविधा से कोई ढलक सकता है; चढ़ाव है, भारी चढ़ाव है। गिरने की सब तरह की संभावनाएं हैं। गिरने के सब तरह के सूक्ष्म कारण मौजूद हैं। इसलिए दसचलें और एक भी पहुंच जाए तो काफी है।
इजिप्त में वे कहते हैं कि हजार बुलाये जातेहैं, और एक चुन जाता है।
और मु लगता है, तिब्बत से उनकी कहावत ज्यादा सही है। दस चले और एक पहुंच जाए, यह भी संभव नहीं मालूम होता। हजार बुलये जाते हैं और एक चुना जाता है। जीसस से किसी ने पूछा कि तुम्हारे प्रभु का राज्य कैसा है, तो जीसस ने कहा, मछुए के जाल की तरह। मछुआ जाल फेंकता है, सैकड़ों मछलियां फंस जाती हैं। जो योग्य हैं, खाने के योग्य हैं, चुन ली जाती हैं; बाकी वापस पानी में फेंक दी जाती हैं।
तो जीसस ने कहा, प्रभु का राज्य भी मछुए के जाल की तरह है। परमात्मा जाल फेंकता है, लाखों फंसते हैं; पर इने-गिने चुने जातेहैं, जो तैयार हैं; बाकी वापस पानी में फेंक दिए जाते हैं। पानी यानी संसार।
इसी तरह तो तुम बार-बार फेंके गए हो। ऐसा नहीं है कि जाल में नहीं फंसे, कई बार फंसे हो; पर तुम योग्य नहीं थे कि चुने जा सको। जाल में फंस जाना काफी नहीं है; मछुए की आंख में जंचना भी जरूरी है। जाल में तो तुम फंस जाते हो--जाल के कारण; लेकिन मछुआ तो तुम्हें चुनेगा--तुम्हारे कारण। हजार बार तुम फंस गए हो--न मालूम कितनी बार संन्यास लिया होगा; न मालूम कितनी बार भिक्षु बने होओगे; न मालूम कितनी बार घर-द्वार छोड़ा होगा, आश्रम में वास कर लिया होगा; कितनी बार प्रार्थना की है, कितनी बार संकल्प किए, कितने व्रत, कितने उपवास! तुम्हारे अनंत जन्मों की अनंत कथा है। लेनिक एक बात पक्की है कि तुम जाल में कितने ही बार फंसे होओ; बार-बार वापस जल में फेक दिए गए हो; चुने तुम नहीं जा सके।
चुने जाने के लिए पात्रता चाहिए। चुने जा सको, इसके लिए भीतरी बल चाहिए, ऊर्जा चाहिए चुने जा सको, इसके लिए पात्रता चाहिए।
और उस पात्रता को उपलब्ध करना दुर्गम है, अति दुर्गम है। इस संसार में सभी कुछ पा लेना आसान है। तुम जैसे हो वैसे ही रहते हुए इस संसार की सब चीजें पाई जा सकती हैं। परमात्मा को पा लेना कठिन है, क्योंकि तुम जैसे हो वैसे ही रहते हुए परमात्मा को नहीं पाया जा सकता; तुम्हें बदलना होगा। और बदलाहट ऐसी है कि तुम्हें कुछ न कुछ परमातम जैसे होना होगा, तभी तुम परमात्मा को पा सकोगे। क्योंकि जो परमात्मा जैसा नहीं है, वह कैसे परमात्मा को पा सकेगा? कोई समानता चाहिए जहां से सेतु बन सके। कुछ किरण तो चाहिए तुममें सूरज की, जिसके सहारे तुम सूरज तक यात्रा कर सको।
हम दुध से दही बनाते हैं, तो थोड़ा सा दही उसमें डाल देते हैं, फिर सारा दुध दही हो जाता है। तो तुमने थोड़ा सा परमात्मा तो होना चाहिए--तभी तुम्हारा पूरा दूध दही हो सकेगा। उतना ही न हो तो यात्रा नहीं हो सकती। और कहीं कठिनाई है, क्योंथक थोड़ा सा भी परमात्मा जैसा हेना तुम्हारे सारे जीवन की व्यवस्था को बदलने के अतिरिक्त न हो सकेगा; तुम्हारी पूरी जीवन की शैली और पद्धति रुपांतरित करनी होगी।
इसलिए कबीर कहते हैं, तेरा जन एकाध है कोई।
ऐसे करोड़-करोड़ लोग हैं, मंदिर हैं, मस्जिद हैं, गुरुद्वार हैं। लोग प्रार्थनाएः कर रहे हैं, पूजा कर रहे हैं, अर्चना कर रहे हैं--पर तेरा जन कोई एकाध ही है।
बड़ी पृथ्वी है। करोड़ों-अरबों लोग हैं। मंदिरों की भी कोइ कमी नहीं है; प्रार्थना-पूजा भी खूब चल रही है। अर्चना की धूप जल रही है, दीये जल रहे हैं; लेकिन अचना की आत्मा नहीं है। पूजा हो रही है बाहर के मंदिर में; भीतर के मंदिर में पूजा का कोई स्वर नहीं है। बड़ा सजावट है मंदिर में बाहर; भीतर

का मंदिर बिल्कुल खाली है। तो जाओ तुम कितना ही मंदिरों में, पहुंच न पाओगे; क्योंकि उसका मंदिर कोई पत्थर-मिट्टी का मंदिर नहीं है। उसका मंदिर तो परम चैतन्य का मंदिर है। उसका मंदिर कोई आदमी के बनये नहीं बनता। बात तो बिल्कुल उलटी है--उसके बनाये आदमी बना है। आदमी उसके मंदिर बनाकर किसको धोखा दे रहा है?
तुम्हारे बनाये मंदिरों से तुम कहीं भी न पहुंच सकोगे। तुम्हारे बनाये मंदिर तुमसे छोटे होंगे। उचित भी है, गणित साफ है। तुम जो बनाओ वह तुमसे बड़ा हो सकता है? बनानेवाले से बनायी गई चीज बड़ी नहीं हो सकती। कविता ही सुंदर हो, कवि से बड़ी थोड़ी ही हो पाएगी। और संगीत कितना ही मधुर हो, संगीतज्ञ से तो बड़ा न हो पाएगा। मूर्ति कितनी ही सुंदर हो, मूर्तिकार से तो सुंदर न हो पाएगी। बनानेवाला तो ऊपर ही रहेगा, क्योंकि बनानेवाले की संभावनाएं अभी शेष हैं, सब चुक नहीं गया; वह इससे भी श्रेस्र बना सकता है। जिसने एक सुंदर गीत गाया, वह इससे भी सुंदर हजार गीत गा सकता है। और वह कितने ही गीत गाए, हर गीत के ऊपर ही वह रहेगा। तुम्हारे बनाये मंदिर बड़े नहीं हो सकते। तुम्हारी बनाई हुई परमात्मा की प्रतिमाएं तुमसे छोटी होंगी। तुम्हीं उनके स्रष्टा हो। तुम्हारा काम, तुम्हारा क्रोध लोभ, माया-मोह, सब तुम्हारी मूर्तियों में समाविष्ट हो जाएगा। तुम्हारा हाथ ही तो छूएंगे और निर्माण करेंगे। तुम्हारे हाथ का जहर तुम्हारी मूर्तियों में भी उतर जाएगा। तुम्हारे बनाए हुए मंदिर तुमसे बेहतर नहीं हो सकते। और अगर तुम्हारा मन वेश्यालय में लगा है तो तुम्हारे मंदिर वेश्यालयों से बेहतर नहीं हो सकते। तुम जहां हो, तुम जैसे हो, तुम्हारी ही अनुकृतिम तो गूंजेगी। तुम्हारी ही धुन तो छूट जाएगी जहां। इसीलिए तो परमात्मा के मंदिर हैं; नाम भर परमात्मा के हैं, बनाये आदमी के हैं।
और शायद इसीलिए जितना मंदिरों से नुकसान हुआ जगत का, सिकी और चीज से नहीं हुआ। मंदिरों और मस्जिदों ने लोगों को लड़ाया है; क्योंकि जिन्होंने बनाया था, उनकी हिंसा उनमें उतर गई। मंदिर और मस्जिद ने आदमी को जोड़ा नहीं, तोड़ा है। उनके कारण पृथ्वी पर स्वर्ग नहीं उतरा, यद्यपि नर्क की झलकें कई बार मिली हैं।
ठीक भी लगता है, साफ है बात--क्योंकि जिन्होंने बनाया है उनकी घृणा, उनकी हिंसा, उनकी आक्रमण की वृŸा, उनकी दुष्टता, उनकी क्रूरता, सभी मंदिरों और मस्जिदों में प्रवेश कर गई है।
तुम्हारे मंदिर में तुम किसकी पूजा कर रहे हो? अपनी ही पूजा कर रहे हो। तुम्हारे मंदिर तुम्हारे ही दर्पण हैं, जिनमें तुम्हारी छवि ही दिखाई पस? रही है। इसलिए तो मंदिर और मस्जिद में तुम कितने ही भटको, तुम पहुंच न पाओगे। तुम्हें अगर परमात्मा को खोजना है तो तुम्हें वह मंदिर खाजना होगा जो उसने ही बनाया। वह मंदिर तुम्हीं हो। इसलिए कबीर कहते हैं, कस्तूरी कुंडल बसै।
तुम्हें पता होगा कस्तूरी मृग का। कस्तूरी तो पैदा होती है मृग की नाभि में। कस्तुरी का नाफा नाभि में पैदा होता है। और कस्तूरी की जो सुगंध है, वह मादा मृग को आकर्षित करने के लिए है। जब मृग-नर कामातुर होता है, जब कामातुरता बढ़ती है तो उसके शरीर से एक सुगंध फैलनी शुरू हो जाती है। वह सुगंध बड़ी मादक है। कस्तूरी जैसी कोई गंध नहीं; बड़ी आकर्षक है, चुंबक जैसा उसमें आकर्षण है। मस्ती से भर देती है वह गंध मादा को। मादा पागल हो जाती है; वह अपना होश खो देती है।
यह तो ठीक है। यह तो प्रकृति की व्यवस्था हुई। प्रकृति ने वैसी व्यवस्था की है कि मादा और नर एक-दूसरे से चुम्बकीय आकर्षण से बंधे रहें। मोर नाचता है। उसके पंख, उसके रंग, कामातुर हैं। उसका नृत्य, उसके नृत्य की भनक मादा को आषर्षित करती है। कोयल गाती है। उसकी ध्वनि पुकार है; उसकी ध्वनि में मादा बंधी चली आती है। वैसे ही कस्तुरी-मृग है। उसकी नाभि में कस्तुरी पैदा होती है और उसकी गंध शराग जैसी है। उस गंध में मादा अपना होश खो देती है समर्पण कर देती है। यहां तक तो ठीक है, लेकिन कस्तूरी- मृग की एक तकलीफ है कि उसको खुद भी बास आती है।
मोर नाचता है तो खुदा तो अपने पंखों को नहीं देख सकता। पपीहा पुकारता
है या कोयल गीत गाती है, तो भी कोयल को पता है कि गीत मेरा है। लेकिन

कस्तूरी-मृग को गंध आनी शुरू होती है और उसकी समझ में नहीं आता कि गंध कहां से आ रही है। मादा तो पागल होती है, नर भी पागल हो जाता है, और वह भागता है मदहोशी में कि कहीं से आ रही होगी--आ तो रही है--तो वह स्रोत की तलाश करता है। वह भागा फिरता है। वह जहां भी जाता है, वही गंध को पाता है। वह करीब-करीब पागल हो जाता है, सिर लहूलुहान हो जाता है, भागते--वृक्षों में, जगल में, खोजते कि कहां से गंध आती है? और गंध उसके भीतर से आती है--कस्तूरी कुंडल बसै।
कबीर ने बड़ा प्यारा प्रतीक चुना है। जिस मंदिर की तुम खोज कर रहे हो,
वह तुम्हारे कुंडल में बसा है; वह तुम्हारे ही भीतर है; तुम ही हो। और जिस परमात्मा की तुम मूर्ति गढ़ रहे हो, उसकी मूर्ति गढ़ने की कोई जरूरत नहीं; तुम ही उसकी मूर्ति हो। तुम्हारे अंतर-आकाश में जलता हुआ उसका दीया, तुम्हारे भीतर उसकी ज्योतिर्मयी छवि मौजूद है। तुम मिट्टी के दीये भला हो ऊपर से, भीतर तो चिन्मय की ज्योति हो। मृण्यम होगी तुम्हारी देह; चिन्मय है तुम्हारा स्वरूप। मिट्टी के दीए तुम बाहर से हो; ज्योति थोड़े ही मिट्टी की है। दीया पृथ्वी का है; ज्योति आकाश ही है। दीया संसार का है; ज्योति परमात्मा की है।
लेकिन तुम्हारी स्थिति वही है जो कस्तूरी मृग की हैः भागते फिरते हो; जन्मों-जन्मों से तलाश कर रहे हो, उसकी जो तुम्हारी भीतर ही छिपा है। उसे खोज रहे हो, जिसे तुमने कभी खोया नहीं। खोजने के कारण ही तुम वंचित हो। यह कस्तुरी-मृग पागल ही हो जाएगा। यह जितना खोजना उतनी मुश्किल में पड़ेगा; जहां जाएगा, वहीं भी जाए, सारे संसार में भटके तो भी पा न सकेगा। क्योंकि बात ही शुरु से गलत हो गई--जो भीतर था उसे उसने बाहर सोच लिया, क्योंकि गंध बाहर से आ रही थी, गंध उसे बाहर से आती मालूम पड़ी थी।
तुम्हें भी आनंद की गंध पागल बनाये दे रही है। तुम भी आनंद की गंध को बाहर से आता हुआ अनुभव करते हो, कभी किसी स्त्री के संग तुम्हें लगता है, आनंद मिला; कभी बांसुरी की ध्वनि में लगता है, आनंद मिला; कभी भोजन के स्वाद में लगता है कि आनंद मिला; कभी धन की खंकार में लगता है कि आनंद मिला; कभी पद की शक्ति में, अहंकार में लगता है कि आनंद मिला। बड़ा जंगल है! हर वृक्ष से तुम सिर तोड़ चुके हो, लहूलुहान हो--कभी यहां, कभी वहां, कभी इधर, कभी उधर खोजते हो और झलक मिलती है। झलक इसलिए मिलती है कि कस्तूरी कुंडल बसै। जहां भी जाओगे वहीं झलक मिल जाएगी।
जब यह जरा कठिन है। जब तुम किसी स्त्री के पाते हो कि आनंद मिला, तब ठीक वही दशा है जो कस्तूरी-मृग की है। आनंद तुम्हें अपने कारण मिल रहा है-- क्योंकि तुममहारा ही मन बदल जाएगा और इसी स्त्री में आनंद न मिलेगा; कल इसी स्त्री से तुम बचना चाहोगे। आज सब न्योछावर करने को राजी थे; कल इसकी शक्ल देखना मुश्किल हो जाएगी। अगर आनंद स्त्री से मिलता था, तो सदा मिलता, शाश्वत मिलता। तुम्हारे ही भीतर से कोई गंध उठी थी, और स्त्री में प्रतिफलन हुआ था। तुम्हारे ही भीतर से उठी थी गंध, और तुमने उसे स्त्री से आते हुए अनुभव किया था। स्त्री ने शायद तुम्हारे भीतर जो था उसकी ही प्रतिध्वनि की थी। कभी धन के संग्रह में, कभी अहंकार की तृप्ति में, पद-प्रतिस्रा में तुम्हें गंध आती अनुभव हुई।
मैंने सुना है, एक जंगल में ऐसा हुआ, एक लोमड़ी ने एक खरखोश को पकड़ लिया। वह उसे खाने ही जा रही थी, सुबह का नाश्ता ही करने की तैयारी थी कि खरगोश ने कहा, रुको! तुम लोमड़ी हो, इसका सबूत क्या? ऐसा कभी किसी खरगोश ने इतिहास में पूछा ही नहीं था। लोमड़ी भी सकते में आ गयी। उसे भी पहली दफे विचार उठा कि बात तो ठीक है, सबूत क्या है? उस खरगोश ने पूछा, प्रमाण पत्र कहा है, सर्टिफिकेट कहां है? उसने खरगोश से कहा, तू रूक, मैं अभी आती हूं। वह गई जंगल के राजा के पास, और उसने कहा, एक खरगोश ने मुझे मुश्किल में डाल दिया। मैं उसे खाने ही जा रही थी तो उसने कहा, रुक सर्टिफिकेट कहां है? सिंह ने अपने सिर पर हाथ मार लिया और कहा कि आदमियों की बीमारी जंगल में भी आ गई। कल मैंने एक गधे को पकड़ा, वह गधा बोला कि पहले सबूत, प्रमाण-पत्र क्या है? पहले तो मैं भी सकते में आ गया कि आज तक किसी गधे ने पूछा ही नहीं। इस गधे को क्या हो गया है? वह आदमी के सत्यंक में रह चुका था।
सिंह ने कहा, मैं लिखे देता हूं, उसने लिखकर दिया कि यह लोमड़ी ही है।

लोकड़ी गई, बड़ी प्रसन्न, लेकर सर्टिफिकेट। खरगोश बैवा था। लोकड़ी को तो
शक था कि भाग जाएगा--कि सब धोखा है। लेकिन नहीं, खरगोश बैठा था, खरगोश ने सर्टिफिकेट पढ़ा। लोमड़ी के हाथ में सर्टिफिकेट दिया और भाग खड़ाहुआ। पास के ही बिल से, जमीन में अंतर्ध्यान हो गया। लोमड़ी सर्टिफिकेट के लेने-देने में लग गई और उस बीच वह खिसक गया। वह बड़ी हैरान हुई। वह वापस सिंह के पास आई कि यह तो बहुत मुश्किल की बात हो गई। सर्टिफिकेट तो मिला गया, लेकिन वह खरगोश निकल गया। तुमने गधे के साथ क्या किया था? सिंह ने कहा कि देख, जब मुझे भूख लगी होती है, तब मैं सर्टिफिकेट की चिंता नहीं करता; पहले मैं भोजन करता हूं। वही काफी सर्टिफिकेट है कि मैं सिंह हूं। और जब मैं भूखा नहीं होता, तो मैं सर्टिफिकेट की बिल्कुल चिंता नहीं करता। मैं मानता ही नहीं। मगर यह बीमारी जोर से फैल रही है।
आदमी में यह बीमारी बड़ी पुरानी है, जानवरों में शायद अभी पहुंची होगी। बीमारी यह है कि तुम दूसरों से पूछते हो कि मैं कौन हूं। जब हजारों लोग जय-जयकार करते हैं, तब तुम्हें सर्टिफिकेट मिलता है कि तुम कुछ हो। जब कोई तुम्हें उठाकर सिंहासन पर बिठाल देता है, तब तुम्हें प्रमाण-पत्र मिलता है कि तुम कुछ हो। दूसरों से प्रमाण-पत्र लेने की जरूरत है? दूसरों से पूछना आवश्यक है। कि तुम कौन हो?
लेकिन तुम सदा दूसरों से पूछ रहे हो। स्कूल से सर्टिफिकेट ले आए हो कि तुम मैट्रिकुलेट हो, कि बी. ए. हो, कि पी. एच. डी. हो। सब तरफ से तुमने सर्टिफिकेट इकट्ठे किए हैं कि तुम कौन हो। कोई प्रमाण-पत्र तुम्हें खबर न दे सकेगा कि तुम कौन हो। क्योंकि, दूसरे तुम्हें कैसे पहचानेंगे?
सिंह भी कैसे प्रमाण-पत्र दे सकता है लोमड़ीको कि तू लोमड़ी ही है। अगर कोई प्रमाण है तो भीतर है। तुम कौन हो, इसको अगर कोई भी खबर मिल सकती है, तो भीतर से मिल सकती है। तुम दूसरों के दरवाजे मत खटखटाओ; तुम अपना ही दरवाजा खोल लो। और तुम्हें दूसरों के दरवाजे पार जो भनक भी मिलेगी, वह भी तुम्हारे भीतर की ही गंध की है। दूसरे के दरवाजे से टकराकर तुम्हारी ही गंध तुम्हारे नासापुटों में आ जाएगी, और तुम समझोगे कि दूसरे ने कुछ दिया है।
इस जगत में कोई किसी को कुछ नहीं देता, दे नहीं सकता। स्त्री दुख नहीं
दे सकती पुरुष को, पुरुष सुख नहीं दे सकता स्त्री को; लेकिन एक-दूसरे के आस-पास खड़े होकर अपनी गंध की प्रतिध्वनि सुनने में सुविधा हो जाती है। अगर तुम्हें एक शून्य घर में छोड़ दिया जाए, तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हो, क्योंकि वहां कोई दूसरा व्यक्ति नहीं जिसके माध्यम से तुम अपनी गंध को वापस पा सका। इसलिए आदमी भीड़ की तरफ जाता है--क्लब, समाज, समुदाय, मित्र, परिवार।
तुम सदा दूसरे को खोजते हो, क्योंकि दूसरे के बिना प्रतिध्वनि कैसे पता चलेगी? तुम भागे फिरते हो। बहुत जगह तुम्हें झलक मिलती है। वह सब झलक झूठी है--झूठी स्रोत की दृष्टि से। तुम्हें लगता है, वह बाहर से आ रही है। तब तुम बाहर पर निर्भर होते जाते हो। और जितना तुम बाहर पर निर्भर होते हो, उतनी ही भीतर की सुधि खो जाती है।
पहचानो, जब स्त्री के संभोग में कभी तुम्हें सुख का कोई क्षण मिला है,
तो होता क्या है? होता इतना ही है कि संभोग के क्षण में विचार बंद हो जाते हैं; विचार बंद हो जाते हैं; भीतर के ध्यान की धुन बजने लगती है; मार्ग खुल जाता है--कस्तुरी बाहर तक आ जाती है। क्षणभर को तुम्हें सुख का अनुभव होता है; क्षणभर को झरोखा खुलता है, फिर बंद हो जाता है।
जहां कहीं भी कोई सितार बजाता हो, औरतुम बैठ जाते हो, लीन हो जाते हो-- जैसे ही तुम लीन होते हो, वैसे ही सुगंध आनी शुरू हो जाती है। वह सुगंध सितार से नहीं आ रही है; वह तुम्हारी लीनता से आ रही है। तल्लीनता ही तो ध्यान है।
तुम भोजन करते हो, स्वादिष्ट भोजन है; तुम बड़े रस से भोजन लेते हो; तुम इतने तल्लीन होकर भोजन करते हो कि भोजन ही ध्यान हो जाता है। उसी क्षण में तो उपनिषद के ऋषियों ने कहा है कि अन्न ब्रह्म है। अन्न से भी इतनी ध्वनि उठी होगी कि ब्रह्म जैसा प्रतीत हुआ।
होता क्या है?

समझ लो कि तुम भोजन कर रहे हो--बड़ा स्वादिष्ट है, तुम बड़े तल्लीन हो, बड़ा सुख आ रहा है, स्वाद रोएं-रोएं में डूबा जा रहा है--तभी कोई खबर लेकर आता है कि बाहर पुलिस खड़ी है और मीसा के अंनर्गत तुम गिरफ्तार किए जाते हो--तत्क्षण स्वाद खो गया। भोजन अब भी वही है, लेकिन लीनता टूट गई। भोजन वही, जीभ वही है, शरीर में अब भी वही रस काम रह रहे हैं, लेकिन लीनता टूट गयी। अब भोजन में कोई स्वाद नहीं है, भोजन बेस्वाद हो गया। अब भोजन में नमक है या नहीं, तुम्हें पता न चलेगा।
अचानक क्या बदल गया? सब तो वही है। और फिर एक आदमी भीतर आता है, वह कहता है, घबड़ाओ मत, सिर्फ मजाक की थी, कोई पुलिस नहीं आई है, कोई सीमा के अंतर्ग Ÿा गिरफ्तार नहीं किए गए हो--फिर लीनता आ गई! जो भोजन बेस्वाद हो गया था, बड़ा फासला हो गया था--वह फिर स्वादिष्ट हो गया; फिर तुम मग्न हो। तुम्हीं दान देते हो, तुम्हीं भोग करते हो। तुम्हीं पहले भोजन में रस डाल देते हो लीनता के द्वारा, फिर तुम्हीं स्वाद लेते हो। तुम्हीं स्त्री या पुरुष में अपनी कामना के द्वारा ध्यान को केंद्रित कर देते हो, फिर अपनी ही धुन सुनते हो।
कस्तूरी कुंडल बसै।
जहां भी तुमने कहीं आनंद पाया हो, स्मरण रखना कि वह तुमने ही डाला होगा, क्योंकि दूसरा कोई उपाय नहीं है। धन में डाल दो तो में आनंद मिलने लगेगा, पद में डाल दो तो पद में आनंद मिलने लगेगा--जिस बात में भी डाल दो वहीं से आनंद मिलने लगेगा। आनंद तुम्हारा स्वभाव है; वह तुम्हारी नाभि में ही छिपा है और तुम मदमाते भाग रहे हो; और वहां खोज रहे हो जहां वह नहीं है; और वहां से तुम्हारी आंख बिल्कुल चूक गई है जहां वह है।
तेरा जन एकाध है कोई।
कोई एकाध करोड़ों में भीतर की तरफ मुड़ता है। कोई एकाध करोड़ों में इस राज को समझ पाता है कि जिसे मैं बाहर पा रहा हूं वह मेरे भीतर है। इस राज की कुंजी हाथ में आते ही, जीवन में क्रांति घटित हो जाती है; तुम्हारी हाथ में स्वर्ग का द्वार आ गया पहली दफा। अब कहीं खोजने की कोई जरूरत न रही। अब तो जब भी चाहा, सुंगध भीतर है, स्वर्ग भीतर है। जब जरा गर्दन झुकाई, देख ली। दिल के आईने में है तस्वीर यार। अब बस गर्दन झुकाने की बात रही। धीरे-धीरे तो गर्दन झुकाने की भी बात नहीं रह जाती। तुम्हीं हो, गर्दन भी क्या झुकानी है! जहां रहे, जैसे रहे, वहीं आनंद फैलता रहेगा। जहां रहे, जैसे रहे; सुविधा में रहे, असुविधा में रहे; स्वस्थ थे कि बीमार थे; गरीब थे कि अमीर थे; जवान थे कि वृद्ध थे; जन्म रहे कि मर रहे थे--कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हीं हो परम स्वर्ग। अब कुछ भी बाहर होता रहे, वह सब बाहर है और भीतर अनाहत संगीत गूंज रहा है; और भीतर उस भीतर के महासुख में जरा भी दरार नहीं पड़ती, कोई विध्न नहीं आता। क्योंकि जो बाहर है, वह बाहर है, और उसके भीतर पहुंचने का कोई उपाय नहीं। एक बार तुम्हें अपने भीतर का मंदिर मिल गया और एक बार तुमने राह पहचान ली, फिर तुम्हें भटक का कोई उपाय नहीं। क्योंकि, कोई भटका भी नहीं रहा था, तुम खुद ही भटक रहे थे। क्योंकि, तुम्हें लगता था, गंध आती है बाहर से; और गंध छिपी थभ तुम्हारे नाभि में। तेरा जन एकाध है कोई।
करोड़ो में कोई एक भीतर की इस बात को पहचान पाताहै। अड़चन क्या है? खोजते तो सभी हैं, पाना भी सभी चाहते हैं; फिर पा क्यों नहीं पाते। कहां अवरोध है? कहां मार्ग में दीवाल आ जाती है?
काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्हैं सोई।
ये तीन को... कबीर कहते हैंः काम, क्रोध और लोभ--इन तीनों की विवर्जना है, अवरोध है। इनके कारण ही पहचान मुश्किल हो जातीहै। इनके कारण ही हरिपद को चीन्हना मुश्किल, करीब-करीब असंभव हो जाता है। इन तीन हम समझने की कोशिश करेंः
काम, क्रोध, लोभ--
काम हैः जो हमारे पास है, उससे ज्यादा पाने की आकांक्षा। जो मिला है उससे तृप्त न होना काम है। जो है, उससे असंतोष काम है। इसलिए मोक्ष की कामना भी कामना ही है। परमात्मा को पाने की इच्छा भी काम है। धन पाने की

इच्छा तो काम है ही, स्त्री पाने की, पुरुष पाने की इच्छा तो काम है ही; परमात्मा को पाने की इच्छा, मोक्ष को पाने की इच्छा भी काम है।
काम का अर्थ इतना ही है कि जो है, उतना काफी नहीं। और अकाम का अर्थ है,
जो है वह काफी से ज्यादा है; जो है वह परम तृप्ति दे रहा है; जो है वह परितोष दे रहा है। उतने से हम राजी ही नहीं हैं; हम प्रफुल्लित भी हैं; जो मिला है उससे हम अनुगृहीत हैं। फिर काम विसर्जित हो जाता है।
इसलिए ध्यान रखना, दो तरह के कामी हैं; सांसारिक और धार्मिक। सांसारिक कामी बाजार में बैठा है--वह धन इकट्ठा कर रहा है, पद प्रतिस्रा इकट्ठा कर रहे है, मकान बड़े से बड़े किए चला जा रहा है। और एक धार्मिक कामी है--वह संन्यासी हो गया है, मुनि हो गया है, मंदिर में बैठा है, आश्रम में बैठा है; लेकिन वह भी कामी है। उसकी कामना का विषय बदल गया है; लेकिन कामना नहीं बदली। कल वह धन चाहता था; अब वह ब्रह्म चाहता है--चाह काफी है।
और चाह है काम। क्या तुम चाहते हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक तुम चाहते हो तब तक तनाव रहेगा, और जब तक तनाव रहेगा तब तक अवरोध रहेगा। जब तक तुम मांगते रहोगे तब तक तुम्हारी आंख बाहर लगी रहेगी। जब तक तुम चाहना से भरे रहोगे तब तक तुम भविष्य से भरे रहोगे; तुम्हारा मन दौड़ता रहेगा कल की तरफ। भीतर कैसे जाओगे? भीतर जाना तो आज और अभी हाग। बाहर जानेवाला मन हमेशा कल आनेवाले भविष्य में डोलता रहेगा, डांवाडोल रहेगा।
काम भविष्य का पैदा करता है। कामना से भविष्य पैदा होता है। और जो आदमी निष्काम है, वह अभी और यहीं जीता है, उसके लिए कोई भविष्य नहीं है। यह क्षण काफी है। क्या कमी है इस क्षण में? सब पूरा है। तुम पूरे के पूरे हो; र Ÿाभर कमी नहीं है। लेकिन अगर कामना हुई तो कामना से कमी पैदा होती है। यह गणित ठीक से समझ लो।
जितनी बड़ी कामना, उतनी बड़भ कमी। जितना मांगोगे, उतने बड़े भिखारी रहोगे।
मैं एक घर में मेहमान था कलक Ÿा में। एयरपोर्प से मेरे मेजमवान मुझे लेकर चले तो बड़े उदास थे। मैंने पूछा, कया हुआ कि बहुत नुकसान हो गया। उनकी पत्नी, जो पीछे बैठी थी, उसने कहा, इनकी बातों में मत पड़ना। आप तो जानते ही हैं नुकसान बिल्कुल नहीं हुआ है, लाभ हुआ है। तो मैं थोड़ा परेशान हुआ कि मामला क्या है? मैंने कहा, विस्तार से कहो। तो उसने कहा, इनको किसी धंधे में दस लाख मिलने की आशा थी, पांच लाख मिले। ये कहते हैं, पांच लाख का नुकसान हो गया और उससे बड़े परेशान हैं। ये रात सो नहीं सकते। और मैं इनको समझा-समझाकर मरी जा रही हूं। और इसलिए मैंने चाहा कि आप आए और इनको थोड़ी याद दिलाए कि पांच लाख का लाभ हुआ है।
कामना दस की हो और पांच ही मिलें तो पांच को तो नुकसान हो गया। अगर कामना पचास की होती तो और बड़ा नुकसान होता। अगर कामना करोड़ की होती तो भिखारी ही हो गए थे, दिवाला ही निकल जाता था। जितनी बड़ी कामना होती चली जाती है, उतना बड़ा भिखारीपन बढ़ता चला जाता है। इसलिए सम्राटों से बड़े भिखारी तुम कहीं न पा सकोगे, और धनियों से बड़े दरिद्र खोजना मुश्किल है। उनके पास क्या है, उसकी गिनती मत करना; क्योंकि उसकी गिनती वे खुद ही नहीं कर रहे हैं, तुम क्यों करो? उनके पास जो नहीं है उसका हिसाब करना, तब तुम्हें पता चलेगा। यहीं भूल हो रही है। तुम देखते हो धनी तो तुम उसका हिसाब लगाते हो जो-जो उसके पास है--कितना बड़ा मकान, कितनी बड़ी कार, कितनी बड़ी जमीन। तुम इसका हिसाब लगा रहे हो, तुम कह रहे रहो, आदमी के पास कितना है! वह आदमी इसका हिसाब ही नहीं लगा रहा है। वह हिसाब लगा रहा है उसका जो हानो चाहिए और जो नहीं है।
तुमर ईष्या से मरे जा रहे हो कि काश, इतना हमारे पास होता! और वह आदमी अपनी तृष्णा से मरा जा रहा है, क्योंकि यह तो कुछ भी नहीं है।
सपने कभी पूरे नहीं होते, क्योंकि अगर पूरे भी हो जाए तो सपने बड़े लोचपूर्ण हैं। जब तक वे पूरे होते हैं तब तक वे फैलकर और बड़े हो जाते हैं। सपने तो, बच्चे रबड़ के गुब्बारों से खेलते हैं, वैसे हैं--तुम फूंकते जाते हो, वे बड़े होते जाते हैं। कुछ और हनीं करना पड़ता, सिर्फ फूंकना पड़ता है, सिर्फ थोड़ी हवा और डाल दी कि फुग्गा बड़ा हो जाता है, और बड़ा होता चला जाता है। कामना फूंकने से ज्यादा नहीं है। कोई कामना के लिए क्ुछ करना नहीं

पड़ता; आराम कुर्सी में बैठकर तुम जितना दिवास्वप्न देखना चाहो उतना देख सकते हो। और बच्चों के फुग्गे तो फूट भी जाते हैं, अगर ज्यादा फूंक जाए; कामना के फुग्गे कभी नहीं फूटते, क्योंकि वे हों तो फूटें। फुग्गा कम से कम कुछ तो है--माना कि कुछ पतली रबड़ है और भीतर सिर्फ गर्म हवा है; लेकिन सपने के फुग्गे में उतनी पतली रबड़ भी नहीं, वह हवा ही हवा है। उसको तुम फैलाते चले जाते हो। यह आकाश भी छोटा है तुम्हारे सपने से। उसकी कोई सीमा नहीं।
दुनिया में दा चीजें असीम हैंः एक सपना और एक ब्रह्म। बस दो चीजें असीम हैं। उनमें से एक है औरएक बिल्कुल नहीं है।
फिर सपना जितना बड़ा होता है, उससे तुम तुलना करते हो जो तुम्हारे पास है--बड़ी अतृप्ति पैदा होती है, बड़ा असंतोष जगता है। कोई तुम्हें गरीब नहीं बना रहा है; तुम्हीं अपने को गरीब बनाए चले जा रहे हो। जिस दिन यह समझ में आया बुद्ध और महावीर को, वे तत्क्षण राजमहल छोड़ सड़क पर खड़े हो गए। राजमहल नहीं छोड़ा; वह जो सपना था, जिसके कारण गरीब से गरीब हुए जा रहे थे, वह सपना छोड़ दिया।
इसलिए दुनिया में बड़ी अनूठी घटना घटती हैः सम्राट दीन रह जाते हैं और कभी-कभी राह के भिखारी ने ऐसी गरिमा पायी है कि उसकी महिमा का बखान नहीं किया जा सकता।
राज क्या है? कुंजी कहां है?
जो तुम्हारे पास है उससे जो तृप्त है, जिसकी वासना र Ÿाभर भी भविष्य की तरफ नहीं जाती, जिसने वर्तमान को काफी पाया--और काफी शब्द ठीक नहीं है, काफी से ज्यादा पाया, क्योंकि काफी में थोड़ी कमी मालूम पड़ती है; बस काफी है, ऐसा लगता है कि कुछ और बाकी है--जितना है काफी ही नहीं, जो है उसमें पर्याप्त से ज्यादा पाया, परितृप्ति पायी, परितोष पाया; और इतना ही नहीं कि वह राजी है, वह अनुगृहीत है, वह अहोभागी है; जो मिला है उसके लिए उसके हृदय में बड़ा गहन धन्यवाद है--तो कामना टूट जाती है। संतोष कामना को मिटा देता है। असंतोष कामना की अग्नि में घी की तरह बढ़ता चला जाता है।
संतुष्ट होना सीखो, तो पहली बाधा गिर जाएगी--काम। अगर कामना बनी रही
तो भविष्य का जाल बना रहता है। और वह जाल बड़ा है। और वर्तमान का क्षण बड़ा छोटा है। वह उस जाल में कहां खो जाएगा, तुम्हें पता ही न चलेगा।
वर्तमान का क्षण तो ऐसे है जैसे रेत का एक कण; और भविषे का जाल ऐसे है जैसे सारे सागरों के किनारे की रेत। वर्तमान का कण कहां तुम खो दोगे उस रेत में, पता ही न चलेगा। अगर तुम यह वर्तमान के क्षण के द्वार को पकड़ लो, और वही द्वार है। और उसके अतिरिक्त्त कोई द्वार नहीं है। वहीं से कोई मंदिर में प्रवेश करता है। क्योंकि वहीं तुम हो वही वृक्ष है, वहीं आकाश हैं, वहीं चांद Ÿारे हैं, वही परमात्मा है।
वर्तमान का क्षण एकमात्र अस्तित्व है। भविष्य तो कल्पना का जाल है;
वह तो आंखें खुली रखकर सपने देखने का ढंग है--दिवास्वप्न।
अगर तुम्हारी कामना भविष्य की तरफ बढ़ती जाती है तो एक अवरोध दूसरे अवरोध को सहायता देता है। जिस आदमी की कामना भविष्य में होगी उसका लोभ अतीत में होगा। लोभ अतीत है, और कानमा, काम भविष्य है। लोभ का मतलब है, जो उसे जोर से पकड़े रहो। काम का अर्थ है, जोनहीं है उसको मांगे जाओ। और लोभ का अर्थ है, जो तुम्हारे पास है उसे जोर से पकड़े रहो, वह कहीं खो न जाए, उसमें से र Ÿाभर कम न हो जाए।
अब यह बड़े मजे की बात है कि उससे तुम्हें कोई सुख नहीं मिल रहा है, उससे तुम संतुष्ट नहीं हो; संतोष की तो तुम कामना कर रहे हो, कभी भविष्य में कोई स्वर्ग मिलेगा; लेकिन तुम उसे पकड़े जोर से हो।
आदमी अतीत को पकड़े रखता है, और जो-जो उसने अतीत में कमाया है--धन, पद, त्याग, जो भी, उसको संभाले रखनता है कि कहीं यह खो न जाए। आंखें लगी रहती हैं भविष्य पर और पैर अड़े रहते हैं अतीत में। दोनों हाथा से अतीत को पकड़े रहते हो और दोनों आंखों से सपना देखते रहते हो भविष्य का। और इन दोनों के बीच में क्षण है एक, जहां अस्तित्व समाधि में सदा ही लीन है; जहां अस्तित्व क्षणभर को भी कंपा नहीं है; जहां निष्कम्प चैतन्य की ज्योति जल रही है; जहां मंदिर का द्वार खुला है।

संकीर्ण है वह द्वार।
जीसस ने अपने शिष्य से कहा है, नैरो इज माइ गेट। संकीर्ण है मेरा द्वार। स्टेट इज दि वे, बट नैरो इज माइ गेट। मार्ग तो सीधा-साफ है, लेकिन द्वार बहुत संकीर्ण है। वही तो कबीर कहते हैं, प्रेम गली अति सांकरी, तामे दो न समाय। बड़ी संकीर्ण है गली; वहां दो भी साथ न जा सकेंगे।
जीसस ने कहा है, सुई के छेद से ऊंट निकल जाए, लेकिन धनी स्वर्ग के द्वार से न निकल पाएगा। आखिरी धनी पर ऐसी क्या नाराजगी है? धनी से प्रयोजन है, जिसने पकड़ रखा है अतीत को, लोभ को।
लोभ और काम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक अतीत की तरफ देख रहा है कि
जो है वह खो न जाए--दमड़ी-दमड़ी को पकड़े हुए है। और काम भविष्य की तरफ देख रहा है कि जो है उससे ज्यादा होना चाहिए। इन दोनों के बीच खिंचे हुए तुम हो। अगर तुम्हारा जीवन बिल्कुल संकट में पड़ा है तो कुछ आश्चर्य नहीं! अगर तुम इस तरह खिंचे जा रहे हो दो अभावों के बीच--अतीत जा चुका, उससे तुमने जो भी इकट्ठा कर लिया है, कचरा है। और भविष्य आया नहीं है, तुम जो भी सोच रहे हो, सपना है। उन दोनों के मध्य तुम खिंचे जा रहे हो। तुम्हारी दुर्गति हुई जा रही है। फिर तुम कहते हो कि बड़ी चिंता है, बड़ा संताप है। होगा ही! आश्चर्य है कि तुम जिंदा कैसे हो?
मनस्विद जितना अध्ययन करते हैं, उतना ही वो चकित होते हैं। 50 साल पहले मनस्विद लिखते थे कि इतने ज्यादा लोग पागल होते हैं, क्यों? अब वो लिखते हैं कि बस इतने थोड़े ही पागल होते हैं, बाकी नहीं होते, क्यों? स्थिति तो ऐसी है कि सभी को पागल होना चाहिए। पागल हैं ही--कमोबेश--मात्रा का फर्क है, कोई अपने को थोड़ा ज्यादा संभाले हुए है। वह कम पागल दिखाई पड़ता है किंतु भीतर सारा पागलपन उबल रहा है। कब विस्फोट हो जाएगा... कोई भी नहीं जानता। किसी भी क्षण हो सकता है।
वो तो अच्छा है कि मौत जल्दी आ जाती है! थोड़ा सोचो, कि जिंदगी अगर दो सौ साल की हो, तो तुम एक आदमी न पाओगे जो बिना पागल हुए मर जाए। जिंदगी कम है। जिंदगी अगर हजार साल की हो, तो पूरी जमीन पागलों से भर जाएगी। पागलखाने बनाने की जरूरत न होगी। बुद्धखाने बनाने पड़ेंगे। कुछ लोग जो ठीक हालत में हैं, उनको बचाना पड़ेगा कि एक दीवार बनाकर इनको भीतर बैठा दो, वरना ये पागल मार डालेंगे। दीवार के बाहर पागलखाना है। दीवार के भीतर बुद्धखाना बनाना होगा। उम्र कम है, जल्दी चुक जाती है। अन्यथा अगर तुम जैसे हो वैसे ही बढ़ते जाओ, तो तुम सोच सकते हो कि अंत क्या होगा? इसके पहले कि तुम विक्षिप्त होओ, मौत आ जाती है, विश्राम दे देती है। मौत की बड़ी अनुकंपा है।
काम तो संतोष से चला जाता है। लोभ कैसे जाएगा? सिर्फ संतोष काफी नहीं है। लोभ का अर्थ है कि तुम पकड़ते हो। तुम्हारी देने की क्षमता खो गई, तुम बांट नहीं सकते। और जो आदमी बांट नहीं सकता, वो आदमी अपनी चीजों का मालिक नहीं, गुलाम है। जब तुम देते हो तभी पहली दफा तुम मालिक होते हो। तुमने जो चीजें दे दीं, उन्हीं के तुम मालिक हो। देने से पहली दफा मरलकियत पता चलती है। वही दे सकता है जो मालिक है। जो मालिक ही नहीं, वह कैसे दे सकता है! इसलिए कृपण से ज्यादा कुरूप इस जगत में कोई दूसरा व्यक्तित्व नहीं है। कृपणता सबसे बड़ी कुरूपता है। जीवन का सारा सौंदर्य खो जाता है। कंजूस की शक्ल देखो। उसके जीवन का ढ़ांचा देखो। उसमें तुम्हें कहीं भी कोई सौंदर्य न दिखाई पड़ेगा। उसमें तुम्हें कहीं प्रेम की गंध न मिलेगी। कंजूस प्रेम नहीं कर सकता, क्योंकि प्रेम में खतरा है... बांटना पड़े! देना पड़े! प्रेम में यह खतरा है कि दूसरा पास आएगा तो कुछ न कुछ ले जाएगा।
मैं एक घर में रहता था। घर के जो मालिक थे, उनको मैंने कभी नहीं देखा
कि वे अपने बच्चों से बात करते हों या अपनी पत्नी के पास बैठते हों। वे जब घर में आते तो बच्चे कंपते, पत्नी डरती। और पत्नी डरे तो समझो, कोई खास मामला है, क्योंकि आमतौर से पत्नियां डरती नहीं हैं। कभी-कभार ऐसा होता है, सौ मैं से एकाध मौके पर ही पत्नी डरे। पत्नी डरती, नौकर कंपते, और उनको मैंने कभी नहीं देखा कि वे राह से निकलते, तो इधर-उधर देखते हों; बिल्कुल सीधा वे अपना... चलते रहते; एकदम चले जाते, तीर की तरह।
मैंने उनसे पूछा कि मामला को है? तो उन्होंने कहा कि अगर जरा ही हंसकर पत्नी से बोले, कहती है, फलाना गहना ले जाओ, यह करो। हंसकर बोले कि फंसे, तो

चेहरा सख्त रखना पड़ता है। अगर बच्चे की जरा सी पीठ थपथपाओ, वह खीसे में हाथ डालता है। अगर नौकर की तरफ देख भी लो तो तैयार खड़ा है कि तनख्वाह बढ़ाओ। मगर इस अदमी की जिंदगी सोचो। पैसा तो यह बचा लेगा और सब खो जाएगा। इसकी जिंदगी में कोई सुख का क्षण नहीं हो सकता। क्योंकि जो अपने बच्चे की पीठ थपथपाने में भी भयभीत होता हो, जो पत्नी के पास बैठकर मुस्कुराने से डरता हो, यह आदमी न हुआ, एक तरफ का पत्थर हो गया। इसक हृदय धीरे-धीरे धड़कना बंद हो जाएगा, सिर्फ फेकड़ा हवा फेंकता रहेगा, हृदय की धस? कन खो जाएगी। इसके जीवन में जो भी संवेदनशील है, वह सब नष्ट हो जाएगा। क्योंकि यह डरा हुआ है, यह कंजूस है, यह भयभीत है। इसने संपिŸा को सब कुछ मान लिया है। यह संपिŸा की रक्षा करेगा लेकिन मालिक नहीं है। पहरेदार हो सकता है। मालकियत तो तभी होती है जब तुम बांट पाते हो। और देने की कला सीख लेना इस जगत में सबसे बड़ी कला है, क्योंकि उसी द्वार से सब कुछ आता है। जो देता है, उसे मिलता है; जो लुटाता है, उस पर बरसता है।
कबीर ने कहा है, जैसे कि नाव में पानी भर जाए, तो तुम क्या करते हो?-- दोनों हाथ उलीचिए। ऐसे ही जीवन में जो तुम्हें मिल जाए, तुम दोनों हाथ उलीचना।
जीसस ने कहा है, जो बचाएगा, वह खो देगा; और जो खोने को राजी है, उससे कोई
भी नहीं छीन सकता। यह बड़ी उल्टी बातें हैं। क्योंकि हमें तो लगता है, जितना बचाओगे उतना ही बचेगा, बांटोगे तो खो जाएगा। लेकिन तब तुम्हें जीवन के रहस्य की कोई भनक भी तुम्हारे जीवन में नहीं पड़ी। तुम दो और देखो।
दान लोभ के अवरोध को गिराता है; संतोष काम के अवरोध को गिराता है। दान
का मतलब इतना ही नहीं कि तुम पैसा किसी को दे दो; दान का मतलब है देने का भाव। एक मुस्कुराहट भी दी जा सकती है। कुछ खर्च नहीं पस? ता। लेकिन कृपण उससे भी डरता है। क्या खर्च पड़ता है किसी की तरफ मुस्कुराकर देखने में? जरा भी खर्च नहीं है; लेकिन खर्च की संभावना शुरू हो जाती है--डर है, भय है। कृपण ऐसे जीता है, जैसे दुश्मन के बीच में जी रहा है--सब तरफ दुश्मन हैं, और हर चीज से डरा हुआ है। कृपण भय से कंपता रहता है--सब तरफ चोर हैं, डकैत हैं; लुटेरे हैं, सब तरफ बेईमान हैं और सबकी नजर उस पर लगी है कि उसकी चीजों को झटके लें, छीन लें।
सिर्फ दानी अभय हो पाता है। और दान का मतलब बहुआयामी है। राह पर कोई गिर पड़ा है, तुम हाथ पकड़कर उसे उठा लेते हो, तुम अपनी राह चल जाते हो, वह अपनी राह चला जाता है; लेनिक तुमने थोड़ी सी जीवन ऊर्जा बांटी। तुम एक कुम्हलाए हुए पौधे को देखते हो और एक लौटा पानी लाकर डाल देते हो--तुमने दिया, तुमने जीवन-ऊर्जा बांटी। तुम एक बीमार आदमी के पास जाते हो, एक फूल उसके बिस्तर पर रख आते हो--तुमनें जीवन-ऊर्जा बांटी, तुमने जीवन दिया। और बहुत बार ऐसा होता है कि दवा जो नहीं करती, वह किसी मित्र का लायाहुआ एक छोटा सा फूल कर जाता है। कोई अब भी प्रेम करता है, यह बात जितनी बड़ी बचानेवाली हो जाती है, कोई दवा नहीं बचा सकती। और कोई अब भी उत्सुक है... ! जब कोई मरण के मुंह के पास पड़ा हो, तब किसी का आकर कुशल-क्षेम पूछ जाना भी बड़े काम का हो जाता है। फिर शक्ति जग जाती है, आत्म-विश्वास उभर आता है। वह आदमी मौत के खिलाफ पैर टिकाकर खड़ा हो जाता है कि संबंध सब टूट गए हैं; अभी भी कुछ खूंटियां जीवन में गड़ी हैं; कोई भी प्रतीक्षा करता है; कोई प्रेम करता है!
एक छोटा-सा फूल, एक प्रेम से भरा हुआ शब्द किसी के जीवन को क्रांति दे देता है, किसी के जीवन को गिरने से बचा लेता है। एक शुभ आशीष प्राणों में नई ज्योति भर देता है।
कोई धन ही बांटने की बात नहीं है। धन तो निकृष्टतम है बांटने में। जिसके पास कुछ न हो वह धन बांटे।
एक करोड़पति एक बार मुझे मिलने आया। बहुत से रुपये लाकर सामने मेरे पैर पर रख दिए। वह बहुत अनूठा आदमी था। फिर मुझे वैसा दूसरा अनूठा आदमी पूरे मुल्क में घूमकर भी नहीं मिला। और बड़ी हैरानी की बात, वह एक सटोरिया था, जिनको लोग बुरा समझते हैं। जिंदगी बहुत अनूठी है! यहां कभी-कभी बुरी स्थितियों मग छिपे हुए साधु मिल जातेहैं, और कभी-कभी साधु के वेश में सिवाय शैतान के और कोई भी नहीं होता। जिंदगी बहुत रहस्यपूर्ण है। इसीलिए

तुम ऊपर से पहचानना मत। जब तब भीतर न पहुंचो, तब तक निर्णय मत लेना। उस सटोरिये ने बहुत रुपये लाकर मेरे पैर पर रख दिए। मैंने कहा कि अभी मुझे जरूरत नहीं है; जब जरूरत होगी तब मैं आपसे ले लूंगा। सटोरिये की आंख से आंसू गिरने लगे। उसने कहा, आप ऐसा कहते हैं, लेकिन तब मेरे पास होंगे कि नहीं। मैं सटोरिया हूं--आज हैं, कल नहीं हैं। इसलिए कल का मैं कोई वचन नहीं दे सकता। मैं डटोरिया हूं; मैं तो आज ही जीता हूं। और फिर उसने कहा कि अगर आप इनको इनकार करेंगे, तो आप मुझे बड़ी पीड़ा देंगे। मैंने कहा, क्या मतलब? उसने कहा कि मैं बहुत गरीब आदमी हूं; सिवाय रुपये के मेरे पास कुछ भी नहीं। मुझे इससे कीमती शब्द कहनेवाला कोई आदमी फिर नहीं मिला। उस आदमी ने कहा कि मैं बहुत गरीब आदमी हूं! मेरे पास सिवाय रुपये के और कुछ भी नहीं। और जब आप मेरा रुपया इनकार कर दें तो मुझे इनकार कर दिया, क्योंकि मेरे पास और कुछ भी नहीं है जो मैं भेंट कर सकूं।
तो रुपया तो सबसे गरीब आदमी बांटता है; वह तो आखरी है, उसकी कोई बहुत कीमत नहीं है। कैसे नापोगे एक मुस्कुराहट को कि कितने रुपये है? एक प्रेमभरा शब्द, कहां तौलोगे कि कितने कैरेप का है?
अमूल्य है तुम्हारे पास देने को। और राज यह है कि तुम जितना देते हो, उतना तुम्हारे पास बढ़ता है। जितना तुम बांटते हो, उतना बढ़ता है। जितना तुम बांटते हो, उतना नया तुम्हार भीतर उभरता है। क्योंकि, तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है। तुम उसे बांट-बांट कर भी बांट न पाओगे। तुम अपने ही हाथ से कृपण हो गए हो। तुम देते जाओगे और तुम पाओगे, ताजा निकलता आता है। तुम जितना दोगे, उतना बढ़ेगा।
और जो व्यक्ति देने की कला सीख लेता है, उस व्यक्तिकी लोभ की जो दीवाल है, वह गिर जाती है।
लोभ और काम के बीच में क्रोध है।
क्रोध बड़ा महत्वपूर्ण है, समझ लेने जैसा है, क्योंकि इन दोनों से ज्यादा जटिल है।
क्रोध क्या है?
अगर तुम्हारी कामना में कोई बाधा डाले तो क्रोध करता है, या तुम्हारे लोभ में कोई बाधा डाले, तो क्रोध आता है। कबीर ने ठीक कहा है, काम, क्रोध और लोभ। ठीक व्यवस्था से उन्होंने शब्द रखे हैं। क्रोध बीच में है, सेतु है। कब आता है तुम्हें क्रोध?
तुम एक स्त्री के प्रेम में पड़ गए हो और पत्नी बाधा डालती है--क्रोध आता है। तुम शराबखाने जा रहे हो, और बीच में एक संन्यासी मिल गया है, और शराब के खिलाफ बोलने लगता है, और रुकावट डालता है--क्रोध आता है। तुम कृपण हो और एक भिखारी हाथ फैलाकर खड़ा हो जाता है और चार आदमियों के सामने बड़ी फजीहत में डाल देता है--क्रोध आता है। तुमने अक्सर भिखारियों को पैसे क्रोध में दिए होंगे निन्यानबे मौकों पर; तुमने सिर्फ इसलिए दिए होंगे कि झंझट छूटे; तुमने सिर्फ इसलिए दिए होंगे कि चार आदमियों के सामने लोग क्या सोचेंगे, दे दो। इसलिए भिखारी भी बड़े कुशल हैं। वे तभी हाथ फैलाते हैं, जब देखते हैं कि भीड़-भाड़ है। अकेले में अगरी तुम मिल गए सड़क पर, तो वे अपना जेब बचाकर निकल जाते हैं। तुमसे पाने की तो आशा नहींम तुम और निकाल लो! अकेले में भिखारी तुमसे सावधान रहता है कि एकांत में ठीक नहीं झंझट में पड़ना उचित नहीं।
वह हमेशा तुम्हें भीड़ बाजार में, सड़क पर पकड़ता हैः पैर पकड़ लेता है, चार आदमियों के साथ जा रहे थे और फजीहत हुई जाती है। अभी यह इज्जत का सवाल है। भिखारी इज्जत का सवाल खड़ा कर रहा है। वह यह कह रहा है कि अब दे दो एक पैसा, एक पैसे के पीछे मत बदनामी करवाओ, लोग क्या कहेंगे? तुम देते हो क्रोध में, जो क्रोध में दियागया वह दिया ही नहीं गया, क्योंकि दान सिर्फ प्रेम में है।
अगर तुम्हारे लोभ में कोई बाधा डालता है, तो उस पर क्रोध आता है। अगर तुम्हारे काम में कोई बाधा डालता है तो उस पर क्रोध आता है। इसलिए तो पानी कहावत हैः जरा, जोरू, जमीन; ये उपद्रव के तीन कारण बड़े प्राचीन समय से लोग समझते रहे हैं। जर, जोरू, जमीन का मतलब यह है कि धन और या काम, ये दो ही उपद्रव में उतार देते हैं; दोनों ही क्रोध का कारण बनते हैं। क्रोध दोनों

क बीच में है। जैसे नदी क्रोध की बहती है और दो किनारे हैं--एक काम का और एक लोभ का। अगर काम और लोभ विसर्जित हो जाए, क्रोध तत्क्षण विलीन हो जाता है। अब यह बड़े मजे की बात है कि मेरे पास लोग आते हैं, जो पूछते हैं, क्रोध कैसे मिटे? मेरे पास कोई आदमी नहीं आया जिसने पूछा हो कि लोभ कैसे मिटे? कोई आदमी नहीं आया अब तक जिसने पूछा हो, काम कैसे मिटे? रोज आदमी आते हैं, जो पूछते हैं, क्रोध कैसे मिटे?
क्रोध मिट नहीं सकता। क्रोध पर सीधा हमला करने का उपाय ही नहीं है। क्योंकि क्रोध बाइप्राडक्ट है। वह तो काम और लोभ के बीच में जीता है।
लोग जब पूछते हैं, क्रोध कैसे मिटे, तो मैं बड़ी मुश्किल में पड़ जाता हूं। इनको क्या कहो? इनको निराश करना भी उचित नहीं है। कम से कम इतना भी पूछने आए हैं, यह भी क्या कम है। लेकिन उनको कहो क्या? क्योंकि अगर उनको कहो कि लोभ मिटाओ, वे नदारद हो जाएंगे, दुबारा कभी आएंगे ही नहीं। वे क्रोध मिटाना चाहते हैं। और क्रोध भी वे क्यों मिटाना चाहते हैं, ताकि लोभ सुविधा से कर सकें और काम का भोग शांति से हो। और कोई कारण नहीं है क्रोध मिटाने का। कोई परमात्मा को पाने के लिए कोध मिटाना चाहते हैं, ऐसा भी नहीं है। क्रोध से अड़चन आती है। कभी-कभी ग्राहक पर क्रोध आ जाता है, पीछे पछतावा होता है। कभी पत्नी पर क्रोध आ जाता है, फिर पीछे पछतावा होता है, क्योंकि इससे काम में और लोभ में बाधा पड़ती है। तुम दिन में पत्नी पर क्रोध कर लो, रात में वह बदला लेगी--वह तुम्हारे काम में बाधा डालेगी। क्रोध से अड़चन आती है काम और लोभ में। इसलिए लोग क्रोध को मिटाना चाहते हैं। लेकिन क्रोध मिटता है तभी जब काम और लोभ विसर्जित होते हैं, और मिटने का कोई भी उपाय नहीं है; हो भी नहीं सकता, क्योंकि वह दोनों के मध्य में जीता है। और जब तक वे दोनों मौजूद हैं तब तक क्रोध रहेगा ही। यह सोचा भी नहीं जा सकता कि लोभी क्रोध को कैसे छोड़ पाएगा। क्योंकि जब उसके लोभ में कोई बाधा डालेगा तो वह क्या करेगा? क्रोध रक्षा है। और जब उसके काम में कोई बाधा डालेगा तब वह क्या करेगा?
क्रोध सब अवरोधों को तोड़कर काम के विषय तक पहुंचने की चेष्टा है। क्रोध तुम्हारे भीतर की आक्रमक हिंसा है, जो रक्षा करती है लोभ की और काम की। लेकिन जब काम और लोभ ही न रहें, रक्षा कोई न बचा, रक्षक अपने-आप विदा हो जाता है, वह व्यर्थ हो जाताहै। उसका कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।
कबीर कहते हैं, काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्है सोई। जो व्यकिŸा इन तीनों की विवर्जना कर देता है, इन तीन के पार हो जाता है, वही केवल हरिपद का पहचान पाता है। हरिपद तो तुम्हारे भीतर है। अगर ये तीन हों तो तुम कहां होओगे? अगर लोभ न हो, तो जो तुम्हारे पास है, तुम उसमें न रहोगे। अगर काम न हो, तो जो तुम्हारे पास नहीं है, उसमें तुम न रहोगे। तब तुम रहोगे कहां? तब तुम्हारी चेतना कहां आवास करेगी? कहां होगा तुम्हारा डेरा? अचानक तुम अपने भीतर खड़े हो जाओगे--और केई जगह न रही जाने की। न पीछे जाने की कोई जगह रही, न आगे जाने की कोई जगह रही। यहीं और अभी, तुम अपने भीतर खड़े हो जाओगे। तुम अपने स्वरूप में लीन हो जाओगे। वही स्वरूप हरिपद है। वही परममात्मा के चरण हैं।
यह हरिपद शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। तुम हरि को न पा लोगे इतने जल्दी, लेकिन हरिपद को पा लोगे। तुम्हारे भीतर, तुम्हारे हृदय के अंतरतम में परमात्मा के चरण हैं--लेकिन जब चरण पा लिए तो परमात्मा ज्यादा दूर नहीं।
जब चरण पर हाथ पड़ गए, परमातम ज्यादा दूर नहीं। तुम्हारे भीतर उसके पद है।
उसका पूरा शरीर तो ब्रह्मांझ है। उसका पूरा शरीर तो यह सारा अस्तित्व है। लेकिन हर हृदय में उसके पैर हैं। हर हृदय से उसकी तरफ जानेवाला मार्ग है। उसके पैर को पकड़ लेना ही उसके मार्ग पर चल पड़ता है।
पैर पकड़ने का अर्थ हैः समर्पण। परमात्मा के पैर तुम्हारे हृदय में हैं। उसका अर्थ है कि अगर तुम हृदय में समर्पित हो जाओ, तो तुमने किरण को पकड़ लिया--अब सूरज ज्यादा दूर नहीं; कितने ही दूर हो तो भी ज्यादा दूर नहीं। जिसने किरण पकड़ ली, उसने सूरज का पैर पकड़ लिया। काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्है सोई।
राजस तामस सातिग तीन्य, ये सब तेरी माया। चौथे पद को जे जन चीन्हैं तिनहि परमपद पाया।।

सत्व, रज, तम--इन तीन गुणों में संख्या ने सारे जगत को बांटा है। यह तीन
की संख्या महत्वपूर्ण है, क्योंकि जिन्होंने भी जाना है, नाम इनके अलग-अलग हो, कोई और नाम दे, कोई और, लेकिन इन सभी ने अस्तित्व को तीन हिस्सों में बांटा है। सत्व, रज, तम--ये सांख्य के शबद हैं। त्रिमूर्ति--ब्रह्मा विष्णु, महेश--हिंदुओं की सामान्य धारणा है। ट्रिनिटी ईसाइयों का विचार हैं। और अब वैज्ञानिक कहते हैं कि पदार्थ आखिरी खोज में उन्होंने तीन को पाया। विश्लेषण के अंतिम क्षण में उन्होंने पाया कि इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन और पाजिट्रान, तीन से सारा अस्तितव बना है। ऐसा लगता है कि तीन सच्चाई की खबर है। कहीं से भी कोई खोजा है, एक तक पहुंचने के पहले उसने तीन को पाया है।
इस आश्रम के लिए जो प्रतीक चुना है--फाउंडेशन के लिए--वह इसकी तरफ इशारा है। एक तीन हो जाता है--संसार शुरू हुआ, मूल गुण शुरु हो गए। तीन नौ हो जाते हैं--संसार भरपूर हो गया; बाजार पूरा भर गया। फिर नौ से वापस एक हो जाता है। संसार को जी लिया, देख लिया, स्रोत की और वापस पहुंच गए, स्रोत उपलब्ध हो गया, एक से तीन, तीन से नौ, नौ से पुनः एक। नौ का मतलब है अनंत--यह सारा वस्तुओं का जगत है। तीन का अर्थ है, इस अनंतता का आधार। और एक, जहां सब माया खो गई, जहां सब दृश्य विलीन हो गए, जहां केवल द्रष्टा रह गया। वह द्रष्टा एक है। वह चौथा है।
इसलिए कबीर कहते हैं, राजस तामस सातिग तीन्यू--इन तीनों को ही--यह सब तेरी माया।
माया का अर्थ होता हैः जो दिखाई पड़ती है और है नहीं।
पूरब में हमने तीन विभाजन किए हैं। एक, जो दिखाई नहीं पड़ता और है--उसको
हम ब्रह्म कहते है। दो, जो दिखाई पड़ता है और नहीं है--उसको हम माया कहते हैं। वह सपने जैसी है। और तीन, वह जो उसे भी देखता है जो माया है, और उसे भी देखता है जो माया नहीं है--वह द्रष्टा है।
चौथे पद को जे जन चीन्हैं, तिनहि परमपद पाया। वही परम अवस्था को उपलब्ध हो जाता है जिसने चौथे को पहचान लिया। तीन को देखते-देखते धीरे- धीरे चौथे की पहचान आ जाती है।
ऐसा समझो कि तुम एक नाटक देखने गए होः जब तुम नाटक देखते हो तो तुम बिल्कुल ही भूल जाते हो कि तुम भी हो, नाटक ही रह जाता है। सिनेमा-गृह में बैठ-बैठ तुम्हें ख्याल ही नहीं रह जाता कि तुम हो। और अगर तुम्हें बार-बार ख्याल आए कि तुम हो, तो तुम समझते हो कि नाकट ढंग का नहीं है--दिल ही न लगा, लीनता ही न बली; करवटें, बदलते रहे कुर्सी पर बैठकर; बार-बार मन होता रहा कि कब खतम हो; तुम्हें अपनी याद आती रही; बेचैन रहे। नाटक की कुशलता ही यही है कि तुम अपने को बिल्कुल भूल जाओः देखनेवाले को याद ही न रहे कि मैं हूं; जो दिखाई पड़ता है वही रह जाए। कुशल अभिनेता वही है जो द्रष्टा को बिल्कुल ही विस्मृत करवा दे, याद ही न रह जाए।
ऐसा कई बार होता है। फिल्म तुम दुखते हो, वहां कुछ भी नहीं है परदे पर, सिर्फ धूप-छाया का खेल है; लेनिक कोई घड़ी आ जाती है कि तुम सिसक-सिसक कर रोने लगते हो। वहां सिर्फ धूप-छाया है। पीछे भी कुछ नहीं है। एक प्रोजेक्टर लगा है, वह सिर्फ रोशनी फेंक रहा है, फिल्म के माध्यम से। परदे पर भी कुछ नहीं है, वह तुम भली-भांति जानते हो, क्योंकि जब तुम आए थे तो परदा खाली था। अब सब खेल रच गया है। अब कोई ऐसी घड़ी आ गई है जहां तुम बिल्कुल जार-जार हो जाते हो, रोने लगते हो। वह तो अच्छा है कि अंधेरा रहता है हाल में। सब अपने-अपने रुमाल निकाल कर आंसू पोंछते रहते हैं। अंधेरे की वजह से सुविधा होती है, अन्यथा अड़चन हो। अंधेरा होना जरूरी है, अन्यथा द्रष्टा का खोना मुश्किल हो जाए। अंधेरे के कारण द्रष्टा खो जाता है। अंधेरे के कारण है, अन्यथा द्रष्टा का खोना मुश्किल हो जाए। अंधेरे के कारण द्रष्टा खो जाता है। अंधेरे के कारण दृश्य उभरकर दिखाई पड़ता है। कभी तुम हंसते हो, कभी तुम रोते हो, कभी तुम उदास हो जाते हो, कभी तुम प्रसन्न हो जाते हो--और तुम कभी सोच भी नहीं रहे कि वहां परदे पर कुछ भी नहीं है।
तीन का--सत्व, रज, तम या कहो इलेक्ट्रोन, न्युट्रान, प्रोट्रोन--यह जो सारा खेल है--जानने वालों ने जाना है कि यह एक बड़ा रंगमंच है, बड़ा गहन नाटक

चल रहा है। तुम देखनेवाले हो, पर तुम बिल्कुल खो गए हो, क्योंथक नाटक बड़ा कुशल है, होना भी चाहिए, क्योंकि उसका लिखनेवाला भी परमात्मा है और उसको चलानेवाला भी परमात्मा है। सारा खेल बड़ी कुशलता से चल रहाहै। कुशलता ऐसी है कि तुम्हें बिल्कुल ही याद नहीं कि तुम हो। और नाटक साधारण ढंग का नहीं है।
जापान में एक नाटक होता है, या अभी अमरीका में एक नया नाटक शुरू हुआ है, वे उसको नो ड्रामा कहते हैं। उसका नाम ही है अ नाटक। और वह बढ़ रहा है और जोर से, अमेरिका का फैलेगा क्योंकि उसमें बड़ा रस है। और उस नाटक की खूबी यह है कि उसका संसार से कुछ संबंध है गहरा। नाटक ऐस है कि उसमें मंच नहीं होता और दर्शक और अभिनेता अलग-अलग नहीं होते। अभिनेता दर्शकों के साथ ही बैठते हैं। फिर नाटक शुरू हो जाता है। उसमें दर्शक भी भाग लेत हैं। तुम्हें बीच में दिल आ गया, तुम बीच में पहुंच गए और तुमने कुछ-कुछ कहना शुरू किया। उसकी कहानी पहले से लिखी नहीं होती, डायलोग बंटे नहीं होते; कोई नहीं जानता कि क्या होगा। पर उसमें बड़ा रस है, क्योंकि अन-अपेक्षित हो सकता है। उसमें देखने वाले और नाटक करनेवाले अलग-अलग नहीं होते। सब उसमें सहभागी होते हैं। और जो लोग उसमें भाग लेते हैं, उनको ज्यादा रस आता है, नाटक देखने के बजाय क्योंकि तुम भी भागीदार हो जाते हो। तुमको अगर रोना ही है तो आंखें छिपाकर रोने की जरूरत नहीं। तुम उठकर बीच में पहुचं जाते हो, दिल खोलकर रोते हो। और तुम पूरे नाटक की धारा बदल देते हो, क्योंकि तुम्हारे रोने को भी संभालना पड़ता है कि वे जो अभिनेता हैं, कि... अब इनका क्या करो। इनको कुछ कहना पस? ता है--इनके कहने की वहज से पूरी कथा बदल जाती है, पूरी वार्ता बदल जाती है; जहां अंत होगा, कुछ पता नहीं; कहां प्रारंभ होगा, कुछ पता नहीं
यह नाटक संसार का ठीक प्रतीक है। यहां तुम देखनेवाले अलग नहीं बैठे
हो कुर्सियों पर, और मंच पर नाटक नहीं चल रहा है। मंच पर चलता है नाटक, तुम कुर्सी पर बैवे रहते हो। वहां तुम भूल जाते हो, तो यहां तो तुम भूल ही जाओगे। यहां मंच ही मंच है; यहां कोई अलग नहीं है। यहां सब ही अभिनेता है और सभी देखनेवाले हैं।
भूलना बिल्कुल स्वाभाविक है। कुछ बुरा भी नहीं है कि भूल गए। लेकिन अगर याद आ जाए, अगर याद आ जाए कि जिन दुखों से तुम पीड़ित हो, चिंताओं से परेशान हो, तनावों से ग्रस्त हो--वे सब विलीन हो जाते हैं। अगर यह याद आ जाए कि तुम देखनेवाले हो, करनेवाले नहीं तब नाटक चलता रहेगा, तुम एक कोने में बैठ जाओगे और मुस्कुराओगे। तुम्हारी दशा वही होगी जो कबीर कहते हैं, गूंगे केरी सरकार, खाये और मुस्कुराय। तुम एक कोने में बैठकर स्वाद लोगे अपना, क्योंकि वही मधुरतम है। और तुम हंसोगे लोगों पर कि नाहक परेशान हो रहे हैं, बहुत परेशान हो रहे हैं। तुम बैठोगे एक कोने में। यह बैठना ही संन्यास है। इस बैठने का कल इनता ही मतलब है। कि मुझे समझ आना शुरू हो गई कि कर्ता होने की कोई जरूरत नहीं है; मेरा स्वभाव द्रष्टा का है; मैंने तीन के पार चौथे को पहचान लिया है।
चौथा है तुम्हारे भीतर देखनेवाला। इसलिए समस्त ध्यान की पद्धतियां चौथे को जगाने की पद्धतियां हैंः कैसे तुम जागरुक बनो; कैसे तुम ज्यादा से ज्यादा होश से भर जाओ; कैसे तुम्हारी मूर्च्छा और तंद्रा टूटे; कैसे तुम दृश्य से हटो और द्रष्टा में थिर हो जाओ।
चौथे पद को जे जन चीन्है, तिनहि परमपर पाया।
अस्तुति निंदा आसा छाड़ै, तजै मान अभिमाना। फिर न तो कोई प्रशंसा का सवाल है, न कोई निंदा का; न कोई आशा का, न कोई अपेक्षा का। जैसे ही तुम्हें द्रष्टा का बोध होना शुए हुआ, स्तुति और निंदा व्यर्थ हो गई क्योंकि स्तुति और निंदा तो अभिनेता की अपेक्षा है। अभिनेता चाहता है कि तुम ताली बजाओ, स्तुति करो। अभिनेता चाहता है कि लोग निंदा न करें, क्योंकि अभिनेता का सारास रस इसमें है कि लोग क्या कहते हैं।
अभिनेता का अर्थ है किर क Ÿा में इतना ज्यादा तादाम्य कर लिया है उसने
कि उसके दृष्टा का उसे कुछ पता ही नहीं है। वह चाहता है कि यह लोग क्या कहते हैं। गंध उसके भीतर है--कस्तूरी कुंडल बसै; लेकिन उसकी भनक दूसरों की आंखों द्में देखना चाहता है। लोग प्रशंसा करें तो वह प्रसन्न है; लोग

निंदा करें तो वह दुखी है। लेकिन जिसने द्रष्टा को पा लिया, उसके लिए तो न तो कोई अब स्तुति है, न कोई निंदा है। तुम उसकी निंदा करो तो वह दुखी नहीं; तुम उसकी स्तुति करो तो वह प्रसन्न नहीं। तुम फूल-मालाएं चढ़ाओ तो तुम उसके सुख को चढ़ाते नहीं; तुम उस पर गालियों की बौछार करो, तो तुम उसके सुख को घटाते नहीं। तुम क्या करते हो इससे अब उसको कोई संबंध न रहा। जब तक वह खुद कर्ता था तब तक तुम्हारे करने से संबंध था; अब वह द्रष्टा हो गया; अब तो तुम्हारे द्रष्टा से ही संबंध हो सकता है, तुम्हारे कर्ता से कोई संबंध नहीं हो सकता। क्योंकि हम जैसे होते हैं, वैसा ही हमारा संबंध होता है। वह तुम्हारे कर्तुत्व के जगत से हट गया, पार हो गया। और ऐसे व्यक्ति की अब कोई आशा अपेक्षा नहीं, क्योंकि भविष्य नहीं है। वह परमात्मा से भी कुछ नहीं मांगता; उसकी मांग ही जाती रही। और वह अब कोई आशा भी नहीं रकता कि कल कुछ होनेवाला है। सब जो बड़ा हो सकता था, वह अभी हो रहा है; जो अभी हो सकता है, वह हो ही रहा है। ऐसा नहीं है कि ऐसा आदमी निराश हो जाता है; निराश तो वे ही लोग होते हैं जिनकी आशा है।
इस फर्क को ठीक से समझ लेना क्योंकि पश्चिम में ऐसी बहुत-सी धारणाएं हैं कि पूरब के लोग इस तरह की बातों में उलझकर निराश हो गए, पैसिमिस्ट हो गए। नहीं; निराश तो वही हो सकता है जिसकी आशा है। जिसकी कोई आशा ही नहीं उसको तुम निराश कैसे करोगे? उसकी प्रफुल्लता अक्षुण्ण रहेगी। उसकी प्रफुल्लता भिन्न होगी उस आदमी से जो आशा में जीता है। और उसके आनंद में एक तरह की उदासीनता होगी, लेकिन हताशा नहीं।
थोड़ा बारीक भेद है।
एक आदमी उदास बैठा है, क्योंकि जुंए में हार गया है--बड़ी आशा लगाई थी;
कि लाटरी हार गया-- बड़ी आशा बांधी थी--उदास बैठा है। इसकी उदासी और एक व्यक्ति द्रष्टा को उपलब्ध हो गया है, वह भी उसी के पास बैठा है, वह भी एक तरह से उदास दिखाई पड़ेगा; उसका भी कोई रस संसार में नहीं दिखाई पड़ेगा। लेकिन दोनों की उदासी में बड़ा फर्क है। पहले की उदासी कामना की उदासी है। दूसरे की उदास निष्काम भाव की शांति है। उसमें उ Ÿोजना नहीं है। इसलिए उदासी मालूम होती है। वह कहीं भाग नहीं रहा है, इसलिए शांति से बैठा है। बुद्ध बैठे हैं, महावीर बैठे हैं--उनके बैठने में भी तुम्हें उदासी दिखाई पड़ सकती है, क्योंकि वे कहीं जा नहीं रहे हैं; सब जाना बंद हो गया। अब वे इतने शांत हैं कि तुम उनकी शांति को भी न पहचान सकोगे। उनकी शांति बड़ी गहन है। उस गहनता के कारण उदास मालूम पड़ती है।

तुमने कभी गहरा जल देखा है नदी का? जब नदी का जल बहुत गहरा होता है तो उदास मालूम पड़ता है। जब नदी छिछली होती है और कंकड़ पत्थरों पर से और चट्टानों पर से नदी की धार दौड़ती है तो बड़ी प्रफुल्ल मालूम होती है, बड़ा शोरगुल मचाती है; लेकिन शोरगुल हमेशा ही उथलेपन का सबूत है। जहां नदी सच में गहरी होती है, वहां जल नीला हो जाता है; लहर का भी पता नहीं चलता। नदी इतनी मंथर गति से चलती है कि तुम्हें पता भी नहीं चलता कि कोई गति है। वहां नदी उदास मालूम पड़ेगी; लगेगा कि कोई गीत नहीं, कोई नाच नहीं। जब भी कोई चीज बहुत गहन हो जाती है तो गीत भी बाधा मालूम पड़ता है। जब कोई चीज बहुत गहन हो जाती है तो शोरगुल क्या?
ज्ञानियों ने कहा है कि घड़ा जब अधभरा होता है तब आवाज होती है; जब पूरा
भर जाता है तो सब आवाज खो जाती है। आधा भरा धड़ा आवाज करता है। छिछलापन आवाज करता है।
इसलिए ज्ञानी में एक तरह की उदासी तुम्हें दिखाई पड़ेगी, जो उदासी नहीं है; जो उसकी बड़ी गहन अनुभूति के कारण सघन हो गई शांति है। वह इतना गहरा चला गया है कि सतह पर तुम्हें वे उदास मालूम पड़ेगा। उसका होना अब केंद्र पर है, परिधि पर नहीं।
"अस्तुति निंदा आसा छाड़ै, तजै मान अभिमाना।
ऐसी दशा में मान-अभिमान सब छूट जाते हैं।
मान और अभिमान में क्या फर्क है?

अभिमान को पहचान लेना बहुत आसान है; मान जरा सूक्ष्म बात है। अभिमान फूल जैसा है, मान सुगंध जैसा। मान को पकड़ने के लिए बड़ी गहरी आंख चाहिए। अभिमान बहुत साधारण है, जड़ है, स्थूल है; मान बहुत सूक्ष्म है।
ऐसा हुआ, एक रास्ते पर तीन ईसाई फकीर मिले--अलग-अलग संप्रदायोंए के माननेवाले, अलग-अलग आश्रमों में रहने वाले। एक ने अपने आश्रम की प्रशंसा में कहा कि इस बात को तो तुम्हें भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जैसे पंडित हमारे आश्रम में पैदा हुए हैं, वैसे पंडित तुम्हारे आश्रमों में पैदा नहीं हुए और जैसे शास्त्र हमारे आश्रम के संन्यासियों ने लिखे हैं और जैसी महान टीकाएं की हैं, वैसा तुम्हारे आश्रम में कुछ भी नहीं हुआ। उन दोनों ने कहा, यह बात सच है। इसे तो तुम्हारे दुश्मन भी स्वीकार करेंगे। हम भी स्वीकार करते हैं। दूसरे ने कहा, लेकिन इस बात को तुम्हें भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जैसे त्यागी हमने पैदा किए हैं, जैसे महान तपस्वी, वैसे तुम्हारे आश्रम में पैदा नहीं नहीं हुए; पंडित जरूर हुए हैं, लेकिन त्यागी नहीं।
बाकी दो ने स्वीकार किया कि यह बात सच है और इनकार नहीं की जा सकती। फिर दानों ने तीसरे से पूछा कि तुम्हारे संबंध में क्या कहना है, क्योंकि तुम्हारे संबंध में कुछ भी नहीं सुना गया--तुम्हारे आश्रम के न पंडितों की कोई वहां से खबर आई, न कभी बड़े महात्यागियों की खबर आई।
उस तीसरे ने कहा कि अगर तुम हमारी भी पूछते हो तो हमने ऐसे विनम्र आदमी पैदा किए हैं कि जिनको न पांडित्य का अभिमान है, और न जिन्हें त्याग का अभिमान है। वी आर टॉप इन ह्यमिलिटी--हमारा कोई मुकाबला नहीं विनम्रता में। यह बड़ा सूक्ष्म है।
अहंकारी आदमी अभिमानी है। निरहंकार का जो दावा कर रहा है, वह मानी है।
जिसके पास धन है, वह अकड़ से चल रहा है सड़क पर, समझ में आता है--यह अभिमान है।
फिर यही आदमी कल लात मार देना है धन को, त्यागी हो जाता है, फिर अकड़कर चलता है सड़क पर, क्योंकि यह कहाता है कि याद है, लाखों पर लात दी! अब यह मान है।
यह सूक्ष्म है।
संसारी अभिमानी हाता है; साधु, संन्यासी, त्यागी, मुनि हो जाते हैं।
उनकी चाल में तुम्हें मान दिखाई पड़ेगा। बड़ी सूक्ष्म है।
देखते हो संन्यासी को चलते हुए! उसके पास कुछ नहीं है, इसकी अकड़ है--सब छोड़ दिया, सब लत मार दिया! उसकी आंखों में एक झलक है कि "तुम क्षुद्र में उलझे हो, हम परमात्मा के खोजी हैं! तुम लोभी, कामी, क्रोधी; हम ध्यानी हैं। यह मान है। और अगर मान है तो अभिमान छिपा है, कहीं गया नहीं; थोड़ा भीतर सरक गया है; और गहरे में चला गया है; जहर सूक्ष्म हो गया है। और जहर जितना सूक्ष्म हो जाता है उतना खतरनाक हो जाता है। इसलिए मैं अक्सर पाता हूं कि सांसारिक व्यक्ति को तो उसके अहंकार के प्रति जागना आसान है; तुम्हारे तथाकथित धार्मिकों को उनके अहंकार के प्रति जगाना बहुत कठिन है। वह इतना सूक्ष्म है कि उनको खुद भी पकड़ में नहीं आता। उनको, ख्याल में नहीं है कि विनम्रता भी अहंकार हो सकती है।
जहां दावा है वहां अहंकार है।
कबीर कहते हैं, जिसने द्रष्टा को जाना--तजै मान अभिमाना।
"लोहा कंचन सम करि देखै--अब उस लोहा और सोना समान ही दिखाई पड़ते हैं।
ते मूरति भगवाना--और ऐसा व्यक्ति स्वयं भगवान की मूर्ति हो जाता है। उसका द्वैत मिट गया, अच्छे-बुरे में फासला न रहा, संपिŸा-विपिŸा में भेद न रहा, मिट्टी-सोना बराबर हो गए। ते मरति भगवाना।
च्यंतै तो माधो च्यंतामणि--अगर वह सोचता है कभी, विचार करता है, तो परमात्मा का।
परमात्मा का कैसे विचार करोगे? न तो उसका कोई नाम है, न उसका कोई रूप है--इसलिए परमात्मा के विचार का अर्थ ही निर्विचार हो जाना होता है। क्योंकि परमात्मा का कैसे विचार करोगे? परमात्मा का विचार करते-करते ही अचानक आदमी को समझ मएं आता है कि विचार हो ही नही सकता; यहां तो सिर्फ निर्विचार होने का उपाय है। निर्विचार है परमात्मा का विचार।
"च्यंतै तो माधो च्यंतामणि--अगर वह सोचता है कभी तो सोचने के जगत में
जो चिंतामणि है, जो आखिरी बात है, वह माधव की, परमात्मा की याद करता है।

"हरिपद रमै उदासाप् और अगर रमता है कहीं तो परमात्मा के चरणों में रमता है; लेकिन उसके रमण में उदासी है। इसी उदासी की मैं बात कर रहा था। संसार को लगेगा यह आदमी उदास हो गया; और वह रम रहा है परमात्मा के चरणों में।
"हरिपद रमै उदासाप्--ऐसे भीतर उतर जाता है हरिपद में, ऐसे गहरे चला जाता है कि बाहर से लगता है कि मौजूद ही न रहा, वह अनुपस्थित हो गया--उदास लगने लगता है।
वह उदासी भ्रांति है। लेकिन उस उदासी के कारण बड़ा उपद्रव पैदा हुआ।
कई लोगों ने समझा कि उदास होने से हरिपद मिल जाएगा। वे उदास बैठ गए। इसलिए उदासियों के संप्रदाय हैं--उदासी संप्रदाय। वे उदास होना सिखाते हैं। बैठे हैं बिना नहाए-धोए, मक्खियां उड़ रही हैं। मक्खियों को भी नहीं उड़ा रहे हैं, क्योंकि उदास आदमी हैं, क्या करें। हारे, थके-हारे, हताश बैठए हैं। यह तो मरना हो गया। यह कोई जिंदगी न हुई। और इससे कोई हरिपद मिलेगा, इस भ्रांति में मत पड़ना। लेकिन अक्सर धर्म के मार्ग पर यह कठिनाई होती है, क्योंकि लोग बाहर से पकड़ते हैं।
जिन्होंने हरिपद पाया, उनके जीवन में एक उदासी आती है। उदासी गहराई
से आती है। उनके चेहरे पर एक गहनता आ जाती है। वे गहरी नदी की भांति हो जाते हैं। चहल-पहल खो जाती है गति विलीन हो जाती है। वे ज्यादा से ज्यादा अपने से रमने लगते हैं। भीतर इतना आनंद है कि सारी जीवनधार भीतर की तरफ मुड़ जाती है; बाहर कोई बचता ही नहीं।
तो ऐसा भी हो सकता है कभी कि ऐसा व्यक्ति, जो नहीं जानते, उनका उदास मालूम पड़े। वह परम आनंद में लीन है; वही हरिपद में रमा है।
तो फिर कठिनाई है, दूसरे लोग सोचकर कि ऐसे उदास होने से हरिपद मिल गया
इस आदमी को, हम भी बैठ जाएं उदास होकर। उदास बैठने से हरिपद नहीं मिलता; हरिपद मिलने से बाहर के जगत में उदासी हो जाती है। हो ही जाएगी। जिसको हीरे मिल गए, वह कंकड़-पत्थर के प्रति उदास हो जाता है। वह कंकड़ पत्थरों को किसलिए सभांले फिरेगा, किसलिए ध्यान देगा? कल तक संभालता था, क्योंकि हीरों का उसे पता न था। अब हीरे मिल गए, कंकड़ पत्थर के प्रति उदासी हो गई। अब रस परमात्मा में लग गया तो संसार से विरस हो गया। यह स्वाभाविक है। लेकिन इससे उलटी बात नहीं होती कि तुम संसार में विरस हो जाओ तो परमात्मा में रस मिल जाए, कि तुम कंकड़ पत्थर छोड़ दो तो हीरे मिल जाएं। हीरे मिल जाएं तो कंकड़ पत्थर छूट जाते हैं। लेकिन कंकड़ पत्थर छोड़ने से कैसे हीरे मिल जाएंगे? कंकड़ पत्थर छोड़ने से हीरे मिलने का क्या संबंध है? हीरे मिल जाए तो कंकड़ पत्थर की याद भूल जाती है।
"हरिपद रमै उदासा--बात खतम हुई। कंकड-पत्थर भूल गए।
छोटा बच्चा खेल रहा है अपने खिलौनों से। तुम और कीमती खिलौने ले आए, शानदार खिलौने ले आए। चलने वाला गड्डा ले आए कि दौड़ने वाली रेलगाड़ी ले आए-- वह फेंक देता है अपने पुराने खिलौंनो के बाहर। कल इन्हीं पर लड़ता, झगड़ता, अब इनकी कोई फिक्र नहीं करता; चीर-फाड़कर अलग कर देता है, टांग तोड़कर भीतर देख लेता है कि क्या है--निपटार कर दिया; अब अपने नए खिलौने में लग गया। लेकिन तुम अगर सोचते हो कि यह बच्चा पुराने खिलौने छोड़ दे, फेंक दे, तो इसको नए खिलौने मिल जाएंगे--इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, इनकी कोई अनिवार्यता नहीं है।
संसार छोड़ने से नहीं परमात्मा मिलता; परमात्मा मिलने से संसार छूट जाता है। क्षुद्र छूट जाता है, विराट की झलक आने से।
तो बहुत लोग हैं जो उदास बैठे हैं। ये सिर्फ बीमार तरह के लोग हैं- सुस्त काहिल। बुद्ध के बैठने में सुस्ती नहीं है, आलस्य नहीं है, काहिलता नहीं है। वासना चली गई, दौड़ चली गई; लेकिन ऊर्जा परिपूर्ण है। फिर अनेक बुद्धू बैठे हैं, वे बैठे हैं। वे सिर्फ सुस्त हैं। वे काहिल हैं; चलने तक की हिम्मत नहीं है, इच्छा नहीं है, उठने की भी नहीं--कोई भी नहीं।
उनकी हालत वैसी है कि मैंने सुना है, दो आदमी एक वृक्ष के नीचे लेटे हुए थे। जामुन का वृक्ष था और एक पकी जामुन गिरी। तो एक आदमी ने कहा कि भाई बिल्कुल मेरे पास पड़ी है, तू जरा इसे उठाकर मेरे मुंह में डाल दे। उसने

कहा, छोड़ो भी! तुम भी कोई साथी हो, कुŸा मेरे कान में मूतता रहा और तुमने उसे नहीं भगाया।
ऐसे लोग उदासीन हो जाते हैं; ऊर्जा नहीं है, मरे-मरे जी रहे हैं। अगर
ये बैठ जाएंगे तो क्एया परमात्मा मिल जाएगा? परमात्मा मिलता है विराट ऊर्जा से। जब तुम्हारी वासना सब तरफ से छूट जाती है--काम से, क्रोध से--तो तुम्हारे पास इतनी शक्ति होती है। क्योंकि, इनमें ही तुम्हारी शक्ति व्यय हो रही है। उसी शक्ति के पंखों पर चढ़कर तुम परमात्मा की यात्रा करते हो। परमात्मा कोई सुस्ती से नहीं मिलता। वह कोई आलस्य और प्रमाद की घटना नहीं है। वह कोई बिस्तर में पड़े रहने से नहीं मिल जाएगा। अगर ऐसे वह मिलता होता तो काहिलों ने उसे कभी का पा लिया होता।
"च्यंतै तो माधो च्यंतामणि, हरिपद रमै उदासा।
वह रमण है, वह परमात्मा के साथ रमण है। वह उसके आनंद-उत्सव में लीन हो जाना है। वह ऐसे ही है कि जैसे तुम खाना खाने बैठे थे, रूखी-सूखी रोटी थी और महल का निमंत्रै आ गया--तुमने थाली फेंक दी; तुमने कहा, बस काफी हुआ। तुम भागे महल की तरफ!
परमात्मा का निमंत्रण जब सुनाई पड़ता है, तुम्हारी ऊर्जा सारे संसार
से हटकर भीतर की तरफ बहने लगती है--अंतरगमन शुरू होता है। इसलिए बाहर से तुम कभी-कभी उदास दिखाई पड़ सकते हो। वह उदासी नहीं है।
"त्रिस्ना अरु अभिमान रहित ख्रै कहै कबीर सो दासा।।
और ऐसे क्षण में जब कोई परमात्मा में लीन हो जाता है तो तृष्णा अभिमान कैसे बच सकते हैं? जिसने परमात्मा की जरा-सी झलक पाली, उसके मन में कोई भी तृष्णा कैसे बच सकती है। जिसने सब पा लिया, पाने को ही कुछ न बचा... । परमात्मा से ज्यादा पाने को कुछ ही भी नहीं।
इसे थोड़ा समझ लें, क्योंकि कबीर पहले कहते हैं कि कामना छूटे; जब कामना छूट जाए तो परमात्मा की झलक मिलती है। जब परमात्मा की झलक मिलती है, तब तृष्णा छूटती है। आमतौर से शब्दकोश में लिखा है कि कामना और तृष्णा का एक ही अर्थ है। वह नीहीं है; जीवन के अर्थकोश में भिन्न है।
तृष्णा बहुत सूक्ष्म है; तुम्हारे कुछ करने से न मिटेगी। तुम तृष्णा
को न मिटा पाओगे। तुम कामना को मिटा सकते हो; वह स्थूल है। लेकि न सूक्ष्म अंतरतलों में तृष्णा बाकी रहेगीत तृष्णा का मतलब यह कि कामना मिट जाएगी, लेकिन कातना मिटाकर भी तुम इस कामना के टिने से कुछ पाने की बाट जोहते रहोगे--मोक्ष मिल जाए, परमात्मा मिल जाए। कहीं सूक्ष्म से सूक्ष्म तुम्हारे प्राणों में एक तरंग उठती ही रहेगी कि देखो अब कामना छोड़ दी, अब क्या मिलता है! और ज्ञानियों ने कहा है, कामना छोड़ दो, सब मिल जाएगा--अब जल्दी ही सब मिलने के करीब है! यह तृष्णा है।
लोग मुझसे पूछते हैं कि ठीक, आप कहते हैं सब चाह छोड़ दो, फिर क्या मिलेगा? या तो वे मुझे नहीं समझे कि मैं को कह रहा हूं--सब चाह छोड़ दी, सब में यह चाह भी आगई। नहीं आई? वे समझ गए मेरी बात; लेकिन वे भी क्या करें, तृष्णा बहुत सूक्ष्म है। वह नहीं आई सब चाह में। शब्द सुन लिया उन्होंने। उनकी भी समझ में आ रहा है कि मैं कह रहा हूं कि सब चाह छोड़ दो। वे कहते हैं, सब चाह छोड़कर क्या मिलेगा? ठीक है, आपक कहते हैं कि वासना-रहित हो जाओ, हो गए फिर? वह जो "फिरप् है, वह तृष्णा है। वह आखिरी सूक्ष्मतम बीज है। वह निर्विचार की दशा तक पतंजलि कहते हैं, वह बना रहेगा। निर्विचार समाधि में भी तृष्णा का बीज बना रहेगा। और जब तृष्णा का बीज जलेगा तभ निर्बीज समाधि, अंतिम समाधि उपलब्ध होगी।
कामना छोड़ी जा सकती है--स्थूल है, बाहर की है। छोड़ो। जब तुम सब छोड़ दोगे, कुछ छोड़ने को न बचेगा; सिर्फ एक भाव का कंपन रह जाएग कि सब छोड़ दिया, अब? यह तृष्णा है। कामना छोड़ने से परमात्मा की झलक मिलेगी; परमात्मा की झलक मिलने से तृष्णा छूटेगी।
और वैसा ही अभिमान छोड़ दोगे; लेकिन फिर भी "मैं हूंप् यह भाव तो रहेगा। अभिमान छोड़ दोगे, मान छोड़ दोगे, "मैं कौन हूंप् यह भाव छोड़ दोगे; लेकिन "मैं हूंप् यह भाव तो बना ही रहेगा। जब परमात्मा की झलक मिलेगी तो यह भाव भी मिटेगा। अहंकार को तुम छोड़ दोगे, आत्मा का भाव बना रहेगा; और जब परमात्मा

की झलक मिलेगी तो आत्मा का भाव भी मिट जाएगा। तब बूंद पूरी तरह सागर में लीन हो गई। "त्रिस्ना अरु अभिमान रहित ख्रै कहै कबीर सो दासा।।
कबीर कहते हैं, वही दास है; परमात्मा के चरणोंाके उपलब्ध हो गया।
यात्रा कठिन है। दस चलते हैं, एक पहुंच पाता है। तुम उस एक को बनने की कोशिश करना। नौ बनना बहुत आसान है। तुम एक बनने की कोशिश करना। और अगर स्मरणपूर्वक चलो तो कोई कारण नहीं है कि तुम क्यों होओ वह एक जो पहुंच जाता है। तुम भी वह एक हो सकते हो--पूरी संभावना है; होशपूर्वक चलने की बात है। पच्चीस निमंत्रण मिलेंगे बीच तें यहां-वहां जाने के, तुम इनकार कर देना। तुम अपना ध्यान एक ही बात पर रखना कि हरिपद तक पहुंच जाना है।
और आखिरी बात तुमसे आज के पद में कहूं--तुम्हें हरिपद तक पहुंचना है;
फिर तो हरि खुद ही तुम्हें छाती से लगा लेते हैं। उसके आगे तुम्हें नहीं पहुंचना है--बात खतम हो गई; तुम्हारी यात्रा पूरी हो गई। तुम जो कर सकते थए, कर दिया। इससे ज्यादा तुमसे अपेक्षा भी नहीं हो सकती। इसलिए कबीर कहते हैं कि हरि का दस हो जाने तक ही यात्रा है--"कहे कबीर सो दासा।" इसके बात तुम्हें फिर फिक्र करने की बात नहीं है; अब जिम उसका है। और जिसने उसके चरणों तक पहुंचने की यात्रा की, वह निश्चित ही उठाकर आलिंगन कर लिया जाएगा। वह परमात्मा के हृदय में लीन हो जाएगा।
पद तक तुम पहुंचो; हृदय तक परमात्मा तुम्हें उठा लेगा। आधी यात्रा तुम करो, आधी वह करेगा।
और स्मरण रखना कि परमात्मा कोई निष्क्रिय तत्व नहीं है। तुम अगर उसकी तरफ चलते हो, तो वह भी तुम्हारी तरफ चलता है। कहीं बीच में मिलन हो जात है।
तुम नहीं चलते, वह भी नहीं चलता। तुम जब पुकारते हो तो पुकार सुनी जाती है। जब तुम प्रार्थना से भरते हो तो प्रार्थना भी सुनी जाती है। तुम जब सचमुच ही अभीप्सा से भर जाते हो तो परमात्मा भी तुम्हारे प्रति इतनी ही अभीप्सा से भर जात है।
परमात्मा कोई निष्क्रिय तत्व नहीं है कि तुम्हीं को ही यात्रा करनी है। अगर ऐसा होता तो जिंदगी बड़ी आखिरी अर्थों में उदास होती।
परमात्मा प्रेमी है। जब तुम प्रेम से भरकर उसकी तरफ चलते हो, वह तुम्हारी तरफ चलना शुरू कर देता है। बहुत पुरानी कहावत है चीन में कि "तुम एक कदम चलो, वह हजार कदम चलता है।
बस, हरि के पद तक तुम पहुंच जाओ। और तुम पहुंच सकते हो क्योंकि दूर नहीं है पद; तुम्हारे हृदय में विराजमान है। औरकई बार तुम्हें उनकी भनक भी पड़ी है। लेकिन सदा तुमने बाहर समझा कि कहीं बाहर से आवाज आ रही है। आवाज भीतर से आ रही है। आनंद का झरना भीतर से बह रहा है।
"कस्तूरी कुंडल बसै।"
आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
बारहवां प्रवचन

धर्म कला है--मृत्यु की, अमृत की

सूत्र
जग सूं प्रीत न कीजिए, समझि मन मेरा।
स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा।।
एक कनक अरु कामिनी, जग में दोइ फंदा।
इन पै जो न बंधावई, ताका मैं बंदा।।
देह धरै इन मांहि बास, कहु कैसे छूटै।
सीव भए ते ऊबरे, जीवत ते लूटै।।
एक एक सूं मिलि रह्या, तिनही सचु पाया।
प्रेम मगन लौलीन मन, सो बहुरि न आया।।
कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया।
संसा ता दिन का गया, सतगुरु समझाया।।

कबीर के वचनों के पूर्व कुछ बातें समझ लें।
पहली बातः संसार, जिसे छोड़ने को सारे संत कहते रहते हैं, बाहर नहीं है, जिसे छोड़कर कोई भाग सके। संसार मन का ही खेल है, और भीतर है। और बाहर तुम कितने ही भागो, कोई फर्क न पड़ेगा; क्योंकि संसार तुम अपना अपने भीतर ही लिए फिरते हो।
संसार जीवन को देखने का तुम्हारा ढंग है। ज्ञानी यहीं पत्थरों में छिपे परमात्मा को देख लेता है; तुम चारों तरफ मौजूद परमात्मा में केवल पत्थर को देख पाते हो। देखने की बात है। दृष्टि की ही सारी बात है। तुम वही देखते हो, जो तुम्हारे मन की धारणाएं हैं। तुम वही नहीं देखते, जो है। पूर्णिमा की रात हो और तुम उदास हो, तो नाचता-गाता चांद भी उदास मालूम पड़ता है। अमावस की रात हो, आकाश में बादल घिरे हों, सब उदास और खिन्न मालूम पड़ता हो; लेकिन तुम प्रसन्न हो, तुम आनंदमग्न हो, तो अमावस भी पूर्णिमा मालूम पड़ती है, अंधेरा भी ज्योतिर्मय हो जाता है; आकाश में बादलों की गड़गड़ाहट सुमधुर नाद मालूम होती है।
तुम जो हो, उसे ही तुम फैलाकर बाहर देखते हो!
धन में कुछ भी नहीं है; तुम्हारे मन में ही सब छिपा है। तुम्हारा मन जो लोभ से भरा हो, तो संसार में सब जगह तुम्हें धन ही धन दिखाई पड़ता है--ऐसे ही जैसे उपवास किया हो तुमने किसी दिन और तुम बाजार गए, तो कपड़े की दुकानें, जूते की दुकानें उस दिन दिखाई नहीं पड़तीं; उस दिन सिर्फ मिठाई मिस्रान्न के भंडार दिखाई पड़ते हैं; सब तरफ से भोजन की ही गंध मालूम पड़ती है; सब ओर भोजन का ही निमंत्रण दिखाई पड़ता है। तुम भरे पेट हो, तब यही बाजार बदल जाता है।
तुम जैसे हो वैसा ही तुम अपने चारों तरफ एक संसार निर्मित करते हो। इसलिए संसार एक नहीं है; संसार उतने ही हैं, जितने मन हैं। हर व्यक्ति का अपना संसार है, जो अपने चारों तरफ लपेटे हुए घूमता है। और जब तक तुम यह न समझोगे, तब तक तुम कभी भी संन्यासी न हो सकोगे। क्योंकि तुम उस संसार को छोड़ोगे, जो बाहर है; और तुम उस संसार को पकड़े ही रहोगे, जो भीतर है। और बाहर संसार है ही नहीं, बस भीतर है। तो तुम संन्यासी का संसार बना लोगे, कोई भेद न पड़ेगा। हिमालय की गुफा में भी बैठ जाओगे, तो तुम तुम ही रहोगे। और तुम अगर तुम ही हो, तो गुफा क्या करेगी, पहाड़-पर्वत क्या करेंगे? तुम वहां भी धीरे-धीरे अपनी दुनिया फिर से सजा लोगे। तुम्हारे भीतर ब्लू-प्रिंट है, नक्शा छिपा है कि कैसे संसार बनाना है। उस संसार को बनाने के लिए अगर कोई भी सामग्री न हो, तो भी तुम बना लोगे।
मनसविद कहते हैं कि अगर एक व्यक्ति को सारी संसारी की दौड़धूप से अलग
कर लिया जाए, और एक ऐसी कालकोठरी में रख दिया जाए, जहां सब तरह की सुविधाएं हैं, कोई असुविधा नहीं है; भोजन करने के जिए भी उसे कुछ न करना पड़े, नलियां जुड़ी हुई हैं, जिनसे उसके रक्त में सीधा भोजन पहुंच जाएगा--इस तरह के

प्रयोग किए गए हैं--और जितनी सुविधापूर्ण हो सके, उतनी सुविधापूर्ण शय्या पर वह विश्राम करता रहे, तो वे कहते हैं कि तीन दिन के बाद वह अपना संसार बचाना शुरू कर देता है। अब कल्पना में बनाता है, क्योंकि बाहर तो कुछ भी नहीं है, सिर्फ अंधकार से भरी हुई कोठरी है। धीरे-धीरे उसके ओंठ चलने लगते हैं। वह बात करने लगता है उससे, जो मौजूद नहीं है। सुंदर स्त्रियां उसे घेर लेती हैं। धन के आंकड़े वह खड़े करने लगता है। तीन सप्ताह में वह आदमी पागल हो जाता है।
पागल का कुल इतना ही मतलब है कि जिसने अपने संसार को बनाने के लिए अब किसी भी पदार्थ की जरूरत नहीं समझी; अब बिना किसी कारण के भी वह संसार खड़ा कर लेता है। स्त्री बाहर हो तो ठीक, न हो तो ठीक--अब पर्दे की कोई जरूरत ही नहीं है; बिना पर्दे के वह स्त्री का बना लेता है। पागल का इतना ही मतलब है कि वह तुमसे भी ज्यादा कुशल हो गया है। तुम्हें स्त्री में रस लेने के लिए कम-से-कम कुछ सहारा चाहिए, बाहर कोई स्त्री चाहिए; वह बिल्कुल सहारे से मुक्त है; उसे कोई स्त्री बाहर नहीं चाहिए। वह अपने भीतर के मन से प्रगाढ़ प्रतिमाएं खड़ी कर लेता है।
तुमने ऋषि-मुनियों की कहानियां पढ़ी हैं कि इंद्र अप्सराओं को भेजता
है उन्हें डिगाने को। तुम इस भ्रांति में मत पड़ना। न तो कहीं कोई इंद्र है, और न कहीं कोई परमात्मा ने ऋषि-मुनियों को डिगाने का इंतजाम कर रखा है। क्यों करेगा परमात्मा किसी को डिगाने का इंतजाम? परमात्मा तो चाहता है कि तुम थिर हो जाओ। तो कोई भी डिपार्टमेंट नहीं है, जहां ऋषि-मुनियों को हिलाने की कोशिश की जा रही है। ऋषि-मुनि खुद ही हिल रहे हैं। ऋषि-मुनि उसी अवस्था में हैं, जिसकी मनोवैज्ञानिक चर्चा कर रहे हैं। उन्होंने खुद ही अपने चारों तरफ सब संसार बाहर का छोड़ दिया है, अपनी गुफा में बैठ गए हैं, अब धीरे-धीरे मन खेल पैदा कर रहा है। अब कोई जरूरत ही नहीं है। अब बाहर की स्त्री नहीं चाहिए, जिस पर तुम प्रक्षेपण करो; अब शून्य आकाश में भी तुम्हारा प्रक्षेपण होने लगा। अब तुम अप्सराओं को देख रहे हो! धन के अंबार लगे हैं! तुम सोचते हो, कोई प्रलोभन दे रहा है; तुम्हारा मन ही... । कोई और तुम्हें डिगाने को नहीं है।
यह तो पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि संसार भीतर है; अन्यथा तुम वही भूल करोगे, जो संसारी कर रहा है। संसारी भी सोचता है कि संसार बाहर है, और संन्यासी भी सोचता है कि संसार बाहर है--तो दोनों के ज्ञान में फर्क क्या? तो दोनों की समझ में कौन सा बुनियादी रूपांतरण हुआ? संसारी भी धन बाहर देखता है और संन्यासी भी धन बाहर देखता है--तो दोनों एक ही तल पर हैं; कोई क्रांति घटित नहीं हुई; कोई बोध नहीं जगा; कोई ध्यान का आविर्भाव नहीं हुआ।
पहली क्रांति इस सत्य को देखने में है कि संसार मेरे भीतर है। जैसे ही तुम यह सत्य समझ लोगे तो पाओगे कि संसार मेरे भीतर है; बाहर तो केवल सहारे हैं, खूंटियां हैं, जिन पर हम अपने कोटों को टांग देते हैं। कोट हमारे हैं; खूंटियों का कोई कसूर नहीं है। और खूंटियों ने कभी कहा नहीं कि कोट टांगो। और एक खूंटी पर न टांगेंगे तो दूसरी खूंटी पर टांगेंगे। खूंटी नहीं मिलेगी तो दरवाजे पर ही टांग देंगे। कुछ भी नहीं होगा तो अपने कंधे पर ही रखेंगे। कोट तुम्हारा है।
इसलिए कबीर जैसे संत जब बात करते हैं--"जंग सूं प्रीत न कीजिएप्-- भ्रांति में मत पड़ जाना, क्योंकि कबीरपंथी उसी भ्रांति में पड़े हैं। वे सोचते हैं कि जग बाहर है, उससे प्रेम नहीं करना है। जग भीतर है; तुम्हारे ही मन का हिस्सा है। कुछ और नहीं छोड़ना है, बस मन को छोड़ना है। कुछ और नहीं त्यागना है, बस मन को त्यागना है। और हर आदमी का अपना मन है। इसलिए तो दो आदमियों का मिलना भी बहुत मुश्किल हो जाता है। जब भी दो आदमी करीब आते हैं, तो दो संसार टकराते हैं। मित्रता बड़ी मुश्किल है। प्रेम असंभव जैसा है। इसलिए तो हर प्रेम-प्रेयसी कलह में पड़े रहते हैं। पति-पत्नी लड़ते ही रहते हैं। कारण क्या होगा? दोनों ने चाहा था कि साथ रहें; दोनों ने बड़ी आशाएं बांधी थीं, बड़े सपने संजोए थे। फिर सब बिखर जाता है। सब इंद्रधनुष टूट जाते हैं। सब सपने धूल में गिर जाते हैं, और कलह हाथ में रह जाती है।

दो दुनियाएं हैं। जहां दो व्यक्ति मिलते हैं, वहां दो संसार मिलते हैं। और जब दो संसार करीब आते हैं, तो उपद्रव होता है; क्योंकि दोनों भिन्न हैं।
ऐसा हुआ, मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर बैठा था। उसका छोटा बच्चा--रमजान उसका नाम है, घर के लोग उसे रमजू कहते हैं--वह इतिहास की किताब पढ़ रहा था। अचानक उसने आंख उठाई और अपने पिता से कहा, "पापा, युद्धों का वर्णन है इतिहास में... युद्ध शुरू कैसे होते हैं?
पिता ने कहा, "समझो कि पाकिस्तान हिंदुस्तान पर हमला कर दे। मान लो... । इतना बोलना था कि चौके से पत्नी ने कहा, "यह बात गलत है। पाकिस्तान कभी हिंदुस्तान पर हमला नहीं कर सकता और न कभी पाकिस्तान ने हिंदुस्तान पर हमला करना चाहा है। पाकिस्तान तो एक शांत इस्लामी देश है। तुम बात गलत कह रहे हो।
मुल्ला थोड़ा चौंका। उसने कहा कि मैं कह रहा हूं, सिर्फ समझ लो। सपोज...
। मैं कोई यह नहीं कह रहा हूं कि युद्ध हो रहा है और पाकिस्तान ने हमला कर दिया है; मैं तो सिर्फ समझाने के लिए कह रहा हूं कि मान लो... ।
पत्नी ने कहा, "जो बात हो ही नहीं सकती, उसे मानो क्यों? तुम गलत राजनीति बच्चे के मन में डाल रहे हो। तुम पहले से ही पाकिस्तान-विरोधी हो, और इस्लाम से ही तुम्हारा मन तालमेल नहीं खाता। तुम ठीक मुसलमान नहीं हो। और तुम लड़के के मन में राजनीति डाल रहे हो, और गलत राजनीति डाल रहे हो। यह मैं न होने दूंगी।
वह रोटी बना रही थी, अपना बेलन लिए बाहर निकल आई। उसे बेलन लिए देखकर मुल्ला ने अपना डंडा उठा लिया। उस छोटे बच्चे ने कहा, "पापा रुको, मैं समझ गया कि युद्ध कैसे शुरू करते हैं। अब कुछ और समझाने की जरूरत नहीं है। जहां दो व्यक्ति हैं, जैसे ही उनका करीब आना शुरू हुआ कि युद्ध की संभावना शुरू हो गई। दो संसार हैं; उनके अलग-अलग सोचने के ढंग हैं; अलग-अलग देखने के ढंग हैं; अलग उनकी धारणाएं हैं; अलग परिवेश में वे पले हैं; अलग-अलग लोगों ने उन्हें निर्मित किया है; अलग-अलग उनके धर्म हैं, अलग-अलग राजनीति है; अलग-अलग मन हैं--सार-संक्षिप्त। और जहां अलग-अलग मन हैं, वहां प्रेम संभव नहीं--वहां कलह ही संभव है।
मन कलह का सूत्र है। इसलिए तो संसार में इतनी कठिनाई है--प्रेमी खोजने में। मित्र खोजना असंभव मालूम होता है। मित्र में भी छिपे हुए शत्रु मिलते हैं। और प्रेमी में भी कलह की ही शुरूआत होती है।
दो संसार कभी भी शांति से नहीं रह सकते।
उसका कारण?
एक संसार भी अपने भीतर कभी शांति से नहीं रह सकता; दो मिलकर अशांति दुगुनी हो जाती है।
तुम अकेले भी कहां शांत हो? तुम्हारा मन वहां भी अशांति पैदा किए हुए है। फिर जब दोनों मिलते हैं तो अशांति दुगुनी हो जाती है।
जितनी ज्यादा भीड़ होती जाती है उतनी अशांति सघन होती जाती है, क्योंकि उतने ही कलह में पड़ जाते हैं।
जिस दिन तुम इस सत्य को देख पाओगे कि तुम्हारा संसार तुम्हारे भीतर है, और तुम उसी संसार के आधार पर बाहर की खूंटियों पर संसार निर्मित कर रहे हो, इसलिए सवाल बाहर के संसार को छोड़कर भाग जाने का नहीं है; भीतर के संसार को छोड़ देने का है--तब तुम कहीं भी रहो, तुम जहां भी होओगे, तुम वहीं संन्यस्थ हो। तुम कैसे भी रहो--महल में या झोपड़ी में, बाजार में या आश्रम में, कोई फर्क न पड़ेगा। तुम्हारे भीतर से जो भ्रांति का सूत्र था, वह हट गया।
इसलिए जब जग को छोड़ने की बात कही है, तो समझ लेना, किस जग को छोड़ने की; अन्यथा ना-समझ बाहर के जग को छोड़कर भागे फिरते हैं; और खुद को साथ लिए रहते हैं। खुद को ही छोड़ना है; कुछ और यहां छोड़ने योग्य नहीं। बस खुद को ही त्यागना है; कुछ और यहां त्यागने योग्य नहीं।
इन प्रतीकों के कारण बड़ी उलझन पैदा होती है, क्योंकि कबीर कहते हैं, "एक कनक अरु कामिनी, जग में दोइ फंदा।" तो शब्द तो साफ हैं और लगता है स्त्री को छोड़कर भाग जाओ--कामिनी; धन को छोड़ दो--कनक। स्वर्ण को छोड़ दो, धन

को छोड़ दो, पत्नी को छोड़ दो, ब्रह्म उपलब्ध हो जाएगा। काश, इतना आसान होता, तो भगोड़े कभी के परम पद को पा गए होते! इतना आसान नहीं है।
कामिनी को छोड़ने का सवाल नहीं है, काम को छोड़ने का सवाल है। कामिनी तो खूंटी है। तो कबीर प्रतीक की बात कर रहे हैं। और कोई रास्ता नहीं है; प्रतीक, मेटाफर से ही बोला जा सकता है।
कबीर कह रहे हैं, कामिनी को छोड़ दो--इसका अर्थ होता है, कि जैसे ही काम छूटा तुम्हारे लिए कोई कामिनी न रही। जब तक काम है, कामिनी रहेगी। कामिनी नहीं है वहां; तुम्हारा काम ही कामिनी को निर्मित करता है। सोना थोड़े तुम्हें पकड़े हुए है; तुम्हारा लोभ है। सोने को छोड़ने से क्या होगा, अगर लोभ भीतर है? तुम कुछ और पकड़ लोगे। जब तक पकड़ने की आकांक्षा भीतर है, तब तक तुम एक चीज को छोड़ोगे, दूसरी चीज पकड़ोगे; मुट्ठी खुलेगी, बंधेगी, लेकिन खुली न रहेगी। धन तुम छोड़ दो, लेकिन पकड़ किसी और चीज पर बैठ जाएगी। तो ऐसा भी हो सकता है कि तुम महल छोड़ दो और लंगोटी पकड़ लो, और लंगोटी छोड़ना मुश्किल हो जाए।
कथा है कि जनक के घर एक संन्यासी मेहमान हुआ और संन्यासी ने सब वैभव देखा, विस्तार देखा, उसने कहा कि मैंने तो सुना था कि आप परम ज्ञानी हैं; यह वैभव-विस्तार, यह कनक-कामिनी--यह कैसा ज्ञान?
जनक ने कहा, "समय पर कहूंगा। थोड़ी प्रतीक्षा रखो, जल्दी न करो।
दूसरे दिन ही सुबह समय आ गया। आ नहीं गया, जनक ले आए, स्थिति निर्मित
कर दी। लेकिन संन्यासी को गए, महल के पीछे ही नदी थी, स्नान करने को। और जब दोनों स्नान कर रहे थे नदी में, तब अचानक महल में आग लग गई; लगवा दी गई थी, लग नहीं गई थी। क्योंकि संन्यासी का कोई भरोसा नहीं था; वह इतनी जल्दबाजी में था और वह इतना बेचैन था महल से भागने को, भयभीत था कि कहीं महल में फंस न जाए। कनक और कामिनी--सब वहां मौजूद--तो जल्दी करनी जरूरी थी। जनक ने आज्ञा से महल में आग लगवा दी। दोनों स्नान कर रहे हैं। संन्यासी चिल्लाया कि "देखो, तुम्हारे महल में आग लग गई!
जनक ने कहा, "क्या अपना है, क्या किसका है! आए थे कुछ लेकर नहीं, जाएंगे बिना कुछ लिए! खाली हाथ आना, खाली हाथ जाना! किसका महल है! लगने दो, चिंता न करो। स्नान पूरा करो।
लेकिन यह सुनने को वह संन्यासी वहां मौजूद न था; वह लंगोटी छोड़ आया था किनारे पर, वह महल के पास ही थी। वह भागा। उसने कहा कि महल तो ठीक, मेरी लंगोटी भी महल के पास रखी है, दीवाल के बिल्कुल पास।
महल और लंगोटी में कोई फर्क नहीं है--तुम्हारे लोभ के लिए कोई भी खूंटी बन सकता है। तुम बड़ी छोटी खूंटी पर, बड़े विराट लोभ को लटका सकते हो। क्योंकि लोभ का कोई वजन थोड़े ही है; विस्तार है, और सपने का है, खाली हवा है। तो खूंटी कोई बहुत बड़ी चाहिए, ऐसा नहीं है; खीली भी, तीली भी काम दे जाएगी। लोभ में कोई वजन नहीं है, बिना खूंटी के लटक जाएगा।
तो जब कबीर कनक और कामिनी की बात करें तो समझना कि उनका प्रयोजन क्या है। कबीर कोई पंडित नहीं हैं कि गलती कर रहे हों; कबीर परम ज्ञानी हैं। ये प्रतीक हैं। वे यह कह रहे हैं कि कामिनी तो पैदा होती है काम से। तुम्हारा काम ही किसी स्त्री को खूंटी बना लेता है। और जब तुम्हारे काम की ऊर्जा किसी स्त्री पर खूंटी की तरह टंग जाती है, तब अचानक तुम पाते हो, इस स्त्री से सुंदर स्त्री जगत में दूसरी नहीं है। कल तक भी यही स्त्री थी। अनेक बार रास्ते पर तुमने इसे देखा था; तुम्हारे भीतर कोई भनक भी न पड़ी थी। यह स्त्री बहुत बार निकली थी, तुम्हारा ध्यान भी आकर्षित न हुआ था। एक हवा का छोटा-सा झोंका भी इस स्त्री की तरफ न बहा था। आज अचानक क्या हो गया कि यह स्त्री परम सुंदर हो गई? और दूसरे अब भी हंस रहे होंगे कि तुम किस स्त्री के चक्कर में पड़ गए हो; कुछ भी वहां नहीं रखा है।
मजनू को उसके नगर के राजा ने बुलाकर कहा था कि तू बिल्कुल पागल है। लैला कुरूप है। (लैला सच में काली-कलूटी थी।) तू बिल्कुल पागल हो गया है। नाहक चिल्लाता फिरता है लैला-लैला।
राजा को भी दया आ गई थी, तो उसने महल के बाहर सुंदर युवतियां सामने खड़ी करवा दीं। उसने कहा, तू कोई भी चुन ले। महल की सुंदर युवतियां थी, निश्चित सुंदर थीं; लेकिन मजनू ने आंख उठाकर भी न देखा। उसने कहा, "मुझे सिवाय लैला

के और कोई दिखाई ही नहीं पड़ता। और आप शायद ठीक कहते होंगे कि आपको लैला काली-कलूटी दिखाई पड़ती है।
असल में मजनू ने बड़े सार की बात कही कि लैला को देखना हो तो मजनू की आंख चाहिए।
जब तुम काम की आंख से किसी स्त्री की तरफ देखते हो, तब अपूर्व सौंदर्य
की वर्षा हो जाती है; तब तुम्हें कुछ दिखाई पड़ने लगता है जो वहां नहीं है। यही संसार है। तब तुम्हें वहां कुछ दिखाई पड़ने लगता है जो वहां कभी भी नहीं था; तुमने ही डाल दिया, तुम्हारे काम ने ही कामिनी को निर्मित कर लिया।
जब तुम सोने पर नजर डालते हो, तो सोने में क्या है? क्या हो सकता है? ऐसी जातियां हैं जिनमें सोने का कोई मूल्य नहीं रहा है। आदिम जातियां हैं कुछ अभी भी। अफ्रीका के कुछ कबीले हैं जिनमें सोने का कोई मूल्य नहीं है। सोने की डली पड़ी रहे, उस कबीले को कुछ दिखाई नहीं पड़ता। कोई मूल्य ही नहीं है, तो बात खतम हो गई। मूल्य तो हम डालते हैं। लेकिन तुम्हें सोना दिखाई पड़ जाए तो प्राणों की बाजी लगा दोगे। कुछ सोने में है या तुम्हारा लोभ खूंटी बनाता है।
लोभ से सोना निर्मित होता है, सोने से लोभ नहीं। काम से कामिनी निर्मित होती है, कामिनी से काम नहीं।
उलटे मत चलना, नहीं तो भटक जाओगे। बहुत भटक गए हैं। इसलिए बार-बार इसको दोहराता हूं। बहुत हैं जो स्त्रियों को छोड़कर भाग रहे हैं। बेचारी स्त्री का कोई कसूर नहीं है। बहुत हैं जो सोने को छोड़कर भाग रहे हैं। सोने ने किसी का कभी कुछ बिगाड़ा नहीं। सोना बिगाड़ेगा भी क्या? सोने की सामर्थ्य क्या है?
और जो बात स्त्री के संबंध में लागू है, वही पुरुष के संबंध में लागू है। स्त्री की कामवासना ही पुरुष को पुरुषोŸाम बना लेती है। जैसे ही स्त्री की कामवासना किसी पुरुष के आसपास खड़ी होती है, रूपांतरण हो जाता है। अब उसका सपना है वहां। इसलिए बड़ी कठिनाई होती है जीवन में। तुम अपना सपना एक स्त्री पर ढाल देते हो, स्त्री अपना सपना तुम पर ढाल देती है। न तुम उसके सपने हो, न वह तुम्हारा सपना है। अड़चन आएगी, क्योंकि तुम अपेक्षा करोगे कि वह तुम्हारा सपना पूरा करे। वह अपेक्षा करेगी कि तुम उसका सपना पूरा करो। और जल्दी ही असलियत जाहिर होनी शुरू हो जाएगी, क्योंकि असलियत किसी का सपना नहीं मानती। असलियत को तुम्हारे सपने से लेना-देना क्या है? तुम जब किसी स्त्री के प्रेम में पड़ते हो तो तुम कहते हो--"स्वर्ण-काया! सोने की देह! स्वर्ग की सुगंध!" तुम्हारे कहने से कुछ फर्क न पड़ेगा। गर्मी के दिन करीब आ रहे हैं--पसीना बहेगा, स्त्री के शरीर से भी दुर्गंध उठेगी। तब तुम लाख कहो--"स्वर्ग की सुगंध," तुम्हारे सपने को तोड़कर भी पसीने की बास ऊपर आएगी। तब तुम मुश्किल में पड़ोगे कि धोखा हो गया। और शायद तुम यह कहोगे, इस स्त्री ने धोखा दे दिया। क्योंकि मन हमेशा दूसरे पर दायित्व डालता है, कहेगा, यह स्त्री इतनी सुंदर न थी जितना इसने ढंग-ढौंग बना रखा था। यह स्त्री इतनी स्वर्ण-काया की न थी जितना इसने ऊपर से रंग-रोगन कर रखा था। वह सब सजावट थी, शृंगार था--भटक गए, भूल में पड़ गए।
स्त्री भी धीरे-धीरे पाएगी कि तुम साधारण पुरुष हो और जो उसने देवता देख लिया था तुममें, वह जैसे-जैसे खिसकेगा, वैसे-वैसे पीड़ा और अड़चन शुरू होगी। और वह भी तुम पर ही दोष फेंकेगी कि जरूर तुमने ही कुछ धोखा दिया है, प्रवंचना की है। और जब ये दो प्रवंचनाएं प्रतीत होंगी कि एक-दूसरे के द्वारा की गई हैं तो कलह, संघर्ष, वैमनस्य, शत्रुता खड़ी होगी। तुम्हारा मन किसी और स्त्री की तरफ डोलने लगेगा। तुम नई खूंटी तलाश करोगे। स्त्री का मन किसी और पुरुष की तरफ डोलने लगेगा। वह किसी नई खूंटी तलाश करेगी। और इसी तरह तुम जन्मों-जन्मों से करते रहे हो। लाखों खूंटियों पर तुमने सपना डाला। लाखों खूंटियों पर तुमने अपनी वासना टांगी। लेकिन अब तक तुम जागे नहीं और तुम यह न देख पाए कि सवाल खूंटी का नहीं है; सवाल कामिनी का नहीं है; काम का है। यह तुम्हारा ही खेल है। तुम जिस दिन चाहो, समेट लो। लेकिन जब तक समझोगे न, समेटोगे कैसे? भागना कहीं भी नहीं है; तुम जहां हो वहीं ही अपने मन की वासनाओं के जाल को समेट लेना है। जैसे सांझ मछुआ अपने जाल को

समेट लेता है, ऐसे ही जब समझ की सांझ आती है, जब समझ परिपक्व होती है, तुम चुपचाप अपना जाल समेट लेते हो। वह तुमने ही फैलाया था, कोई दूसरे का हाथ नहीं है। कोई दूसरा तुम्हें भटका नहीं रहा है।
सोने का क्या कसूर है? तुम नहीं थे तब भी सोना अपनी जगह पड़ा था। तुम्हारी प्रतीक्षा भी नहीं की थी उसने। तुम नहीं रहोगे तब भी सोना अपनी जगह पड़ा रहेगा।
भर्तृहरि ने अपने जीवन में उल्लेख किया है। राज्य छोड़ दिया। और राज्य ऐसे ही नहीं छोड़ दिया था, बड़ी परिपक्वता से छोड़ा था, जानकर छोड़ा था। भोगा था जीवन को और जीवन के भोग से जो पीड़ा पाई थी और जीवन के भोग में जो व्यर्थता पाई थी, उसके कारण छोड़ा था। लेकिन तब भी छोड़ते-छोड़ते भी धुएं की एक रेखा भीतर रह गई होगी।
जीवन जटिल है। पर्त-दर-पर्त अज्ञान है। एक पर्त पर छोड़ देते ही, दूसरी पर्त पर प्रगट होना शुरू हो जाता है।
सब छोड़कर संन्यस्त होकर जंगल में भर्तहरि बैठे हैं, अपनी गुफा में बैठे हैं। एक पक्षी ने गीत गुनगुनाया, आंख खुल गई। पक्षी को तो देखा ही देखा, राह पड़ा एक चमकदार हीरा दिखाई पड़ा। अनजाने कोने से, अचेतन की किसी पर्त से, जरा-सा लोभ सरक गया, जरा-सा हल्का झोंका, पता भी न चले--भर्तहरि को ही पता चल सकता है जो कि जीवन को बड़ा समझकर बाहर आया था--जरा-सा कंपन हो गया। लौ हिल गई भीतर--उठा लूं! फिर थोड़ी हंसी भी आई। इससे भी बड़े-बड़े हीरे- जवाहरात छोड़कर आया, और अभी भी उठाने का मन बना है। बहुत कुछ था, बड़ा साम्राज्य था। यह हीरा कुछ भी नहीं है। ऐसे बहुत हीरों के ढेर थे। वह सब छोड़ आया, और आज अचानक इस साधारण से हीरे को राह पर पड़ा देखकर मन में यह बात उठ आई।
खूंटियां छोड़ने से लोभ नहीं छूटता। महल छोड़ देने से भी लोभ नहीं छूटता। धन के अंबार त्याग देने से भी त्याग नहीं हो जाता।
मगर भर्तहरि बड़ा सचेत, जागरूक व्यक्तित्व है। पहचान लिया, पकड़ लिया, होश में आ गया कि नहीं, यह बात क्या हुई! और जब यह मन में मंथन चलता था, यह जब मन का विश्लेषण चलता था कि लोभ कहां से उठ आया, क्षणभर पहले नहीं था; आंख बंद थी, ध्यान में लीन था--कहां से, किस पर्त से? बाहर से तो नहीं आया? कोई हीरा तो नहीं भेज रहा है यह लोभ?--इस विश्लेषण में लगे थे, तभी देखा कि दो घुड़सवार दोनों तरफ से राह पर आ गए हैं और दोनों की नजर एक साथ ही हीरे पर पड़ गई। दोनों की तलवारें बाहर निकल आईं। दोनों सैनिक हैं। दोनों ने अपनी तलवारें हीरे के पास टेक दीं और कहा कि पहले नजर मेरी पड़ी, तो दूसरे ने कहा, तुम गलती में हो, पता भी नहीं कि एक तीसरा व्यक्ति भी छिपा गुहा में बैठा है, जो देख रहा है। तलवारें चल गईं। क्षणभर पहले दोनों जीवित थे, क्षणभर बाद दोनों की लाशें पड़ी थीं। हीरा अब भी अपनी जगह था--न रोया, न पछताया, न चिंतित, न बेचैन। जैसे कुछ हुआ ही नहीं है। हीरे को क्या हुआ? लेकिन भर्तहरि को बड़ा बोध जागा--हीरा अपनी जगह ही पड़ा रहेगा; हम आएंगे और चले जाएंगे; हम चलेंगे संसार में और विदा हो जाएंगे। हीरे हमारे लिए पछताएंगे न। न विदा देते समय एक आंसू उनकी आंखों में झलकेगा, न हमें देखकर वे प्रसन्न हैं। सब अपने ही मन का खेल है। हम ही टांग लेते हैं।
देखकर यह घटना भर्तहरि ने फिर आंख बंद कर ली। और इस घटना ने भर्तहरि
को बड़ा बोध दिया।
सब पड़ा रह जाएगा। न तुम लेकर आते हो, न तुम लेकर जाते हो; लेकिन घड़ीभर
को बड़े सपने संजो लेते हो, बड़े इंद्रधनुष फैला लेते हो।
मन संसार है। काम कामिनी का निर्माता है, स्रष्टा है। लोभ स्वर्ण का जन्मदाता है।
अब हम इन सूत्रों में प्रवेश करें।
बड़ी बारीक बात है और बड़े सरल शब्दों में कही गई है। शब्द इतने सरल हैं
कि लगेगा, समझाने जैसा क्या है? इन सरल शब्दों में इतना कुछ भरा है कि समझाए-समझाए भी समझाया नहीं जा सकता। तुम समझते रहो, मैं समझाता रहूं--कोई अंत न आए।
ज्ञानियों के शब्द सदा ही सरल होते हैं। सिर्फ अज्ञानी पंडितों के शब्द कठिन होते हैं। पंडित कठिनाई से जीता है। कठिनाई पर ही उसका धंधा है।

वह जितना कठिन बना लेता है चीजों, को उतना ही लोगों में भ्रांति फैलती है कि बड़े रहस्य की बात है। अगर चीजें बिल्कुल सरल करके पंडित कह दे, तो पंडित की कौन पूजा करे? वह जटिल बनाता है। वह उलझाता है। वह गोल-गोल रास्तों से चलता है। वह बड़े कठिन शब्दों का प्रयोग करता है। वह बड़े पारिभाषिक तर्कों का जाल बुनता है। वह ऐसा धुंआ खड़ा कर देता है चारों तरफ कि कुछ दिखाई न पड़े; सिर्फ इतना ही समझ में आए कि पंडित कोई बड़ा महान कारीगर है।
ज्ञानी सदा सरल होते हैं। शब्द उनके सीधे होते हैं; गोल-गोल नहीं, सीधे हृदय पर चोट करते हैं। उनका तीर सीधा है। और इसलिए कई बार ऐसा होता है कि लोग पंडितों के जाल में पड़ जाते हैं और ज्ञानियों से वंचित रह जाते हैं। क्योंकि, लोगों को लगता है कि इतनी सरल बात है, इसमें है ही क्या समझने जैसा?
ध्यान रखना, जहां सरल हो वहीं समझने जैसा है; और जहां कठिन हो वहां सब कचरा है। वह कठिनाई इसीलिए पैदा की गई है ताकि कचरा दिखाई न पड़े।
तुम डाक्टर के पास जाते हो तो डाक्टर इस ढंग से लिखता है कि तुम्हारी समझ में न आए कि क्या लिखा है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने तय कर लिया कि अपने लड़के को डाक्टर बनाना है। मैंने पूछा, आखिर कारण क्या है? उसने कहा, आधा तो यह अभी से है; क्या लिखता है, कुछ पता नहीं चलता। आधी योग्यता तो उसमें है ही। अब थोड़ा-सा और, सो पढ़ लेगा कालेज में।
पता नहीं चलना चाहिए। क्योंकि जो लिखा है वह दो पैसे में बाजार में मिल सकता है। और डाक्टर लेटिन भाषा का उपयोग करता है, जो किसी की समझ में न आए। क्योंकि अगर वे उस भाषा का उपयोग करें तो तुम्हारी समझ में आती है तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि तुम कहोगे कि यह चीज तो बाजार में दो पैसों में मिल सकती है, इसका बीस रुपया! तुम कैसे दोगे? बीस रुपया लेटिन भाषा की वजह से दे रहे हो।
जो डाक्टर का ढंग है, वह पंडित का ढंग है। वह संस्कृत में प्रार्थना करता है, या लेटिन में, या रोमन में, या अरबी में, कभी लोकभाषा में नहीं। लोगों की समझ में आ जाए तो प्रार्थना में कुछ है ही नहीं। समझ में न आए तो लोग सोचते हैं, कुछ होगा। बड़ा रहस्यपूर्ण है। पंडित की पूरी कोशिश है कि तुम्हारी समझ में न आए, तो ही पंडित का धंधा चलता है। ज्ञानी की पूरी कोशिश है कि तुम्हें समझ में आए, क्योंकि ज्ञानी का कोई धंधा नहीं है।
कबीर के शब्द बड़े सीधे-सादे हैं; एक बेपढ़े-लिखे आदमी के शब्द हैं। पर बड़े गहरे हैं। वेद फीके हैं। उपनिषद थोड़े ज्यादा सजाए-संवारे मालूम पड़ते हैं। कबीर के वचन बिल्कुल नग्न हैं, सीधे! र Ÿाभर ज्यादा नहीं हैं; जितना होना चाहिए उतना ही हैं।
"जंग सूं प्रीत न कीजिए, समझि मन मेरा। स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा।
संसार से प्रेम न कर मेरे मन; समझ! क्योंकि संसार से जिसने प्रेम किया--और संसार से अर्थ है तुम्हारे ही खड़े किए संसार से--वह भटका। भटका क्यों? क्योंकि वह सत्य को कभी जान न सका। उसके अपने ही मन ने रंग इतने डाल दिए सत्य में, कि सत्य का रंग ही खो गया। वह कभी स्त्री को सीधा न देख पाया; देख लेता तो मुक्त हो जाता।
बुद्ध कहते हैं, क्या है स्त्री में--हड्डी, मांस-मज्जा! क्या है स्त्री की देह में?--अस्थिपंजर। काश! तुम काम को हटा दो, तो दूसरे की देह में क्या दिखाई पड़ेगा? मल-मूत्र, मांस-मज्जा! लेकिन काम से भरी आंखें स्वर्ण-काया को देखती हैं। काम से भरी आंखें जो हैं, उसे देखती ही नहीं। ऐसा हुआ कि बुद्ध एक वृक्ष के नीचे एक पूर्णिमा की रात ध्यान करते थे। शहर से कुछ युवक एक वेश्या को लेकर जंगल में आ गए हैं। नशे में धुत उन्होंने वेश्या को नग्न कर दिया है। वे हंसी-मजाक कर रहे हैं। वे अपनी क्रीड़ा में लीन हैं। उनको बेहोश देखकर, शराब में धुत देखकर वेश्या भाग निकली। थोड़ी देर बाद जब उन्हें होश आया और देखा कि वेश्या तो जा चुकी है, तो वे उसे खोजने निकले। कोई और तो न मिला, राह के किनारे, वृक्ष के नीचे बुद्ध मिल गए। तो उन्होंने पूछा कि "ऐ भिक्षु, यहां से तुमने एक बहुत सुंदर स्त्री को नग्न जाते देखा?

बुद्ध ने कहा, "कोई यहां से गया--कहना मुश्किल है कि स्त्री है या पुरुष। क्योंकि वह भेद तभी तक था जब अपनी कामना थी। अब कौन भेद करता है! किसको लेना-देना है! क्या पड़ी है! कोई गया जरूर; तय करना मुश्किल है कि स्त्री थी या पुरुष था। और तुम कहते हो, सुंदर!--तुम और कठिन सवाल उठाते हो, सुंदर और असुंदर भी गया। वह अपने ही मन का खेल था। हां एक अस्थिपंजर, मांस-मज्जा से भरा, गुजरा है जरूर। कहां गया, यह कहना मुश्किल है। क्योंकि, मैं आंखों को भीतर ले जाने में लगा हूं। बाहर कौन जा रहा है, यह देखता रहूं तो भीतर कैसा जाऊं? तुम मुझे क्षमा करो। तुम किसी और को खोजो। वह तुम्हें ठीक-ठीक पता दे सकेगा। मैं अपना पता खोज रहा हूं, दूसरों के पते की मुझे अब कोई चिंता न रही।
काश! काम के बिना तुम स्त्री को देखो या पुरुष को देखो क्या पाओगे वहां? शरीर में तो कुछ भी नहीं है। और अगर कुछ है तो वह अशरीरी है। लेकिन काम की आंखें तो उसे देख ही न पाएंगी--उस आत्मा को जो इस हड्डी-मांस-मज्जा की देह में छिपी है। उस चैतन्य को, उस ज्योति को तो काम से भरी आंखें तो देख ही न पाएंगी। तुम देह पर ही भटक रहोगे।
जब काम गिर जाता है, शरीर ना-कुछ हो जाता है; मिट्टी से उठा, मिट्टी में वापस लौट जाएगा। लेकिन जैसे ही शरीर ना-कुछ हुआ, वैसे ही शरीर के भीतर जो छिपा है, उसकी पहली झलक मिलनी शुरू हो जाती है। तब न तो तुम स्त्री को पाते हो न पुरुष को; तुम सब जगह परमात्मा को पाते हो।
"जग सूं प्रीत न कीजिए... ।
इसलिए काम की आंख से मत देखो। जो जग तुमने अपने चारों तरफ धारणाओं का, दृष्टियों का बना रखा है, वासनाओं का, तृष्णाओं का--उससे मत देखो।
"जग सूं प्रीत न कीजिए, समझि मन मेरा।
मेरे मन समझ! ना-समझी काफी हो चुकी।
"स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा।
लेकिन मन सदा कहता है कि बड़ा स्वाद है। समझ से बचना चाहता है, क्योंकि
डर लगता है कि समझ कहीं स्वाद न छीन ले; कहीं देख लिया स्त्री की मांस-मज्जा को, हड्डी को, मल-मूत्र को, भीतर छिपी हुई देह की जो स्थिति है, अगर एक बार दिख गई तो फिर स्वाद लेना मुश्किल हो जाएगा।
पश्चिम में एक बड़ा विचारक है, मनोवैज्ञानिक है--विक्टर फ्रेन्कल। वह हिटलर के कैदखाने में था। और वहां उसने एक घटना देखी। और उस घटना के बाद उसका भोजन में रस चला गया, जो नहीं लौटा अब तक।
कैसी घटना रही होगी?
उसने देखा, कैदी थे। एक बार रोटी के कुछ टुकड़े मिलते थे, और दिन भर भूखे रहते थे। लोग अपने टुकड़ों को बचाए रखते थे, ताकि थोड़ा-सा जब भूख लगे तो फिर खा लेंगे, फिर थोड़ा-सा खा लेंगे। चौबीस घंटे की भूख!
एक दिन उसने देखा कि एक कैदी को वमन हो गया, उलटी हो गई। इसमें तो कुछ बड़ी बात न थी। बहुत लोगों को वमन करते हुए देखा होगा। लेकिन फ्रेन्कल ने देखा कि वह उस वमन को ही उठाकर फिर से खा रहा है। उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि उस दिन के बाद फिर मेरा भोजन में रस नहीं रहा। भोजन करता हूं, मुझे वह आदमी जरूर दिखाई पड़ता है।
एक बार तुम्हें सत्य दिखाई पड़ जाए तो बड़ा मुश्किल हो जाएगा। इसलिए तो
मन कहता है कि समझ से बचो; यह समझदारी अपने काम की नहीं, नासमझी भली। नहीं तो स्त्री की देह पर हाथ रखोगे, कविता कहती है कि संगमरमरी देह है; लेकिन अगर तुम्हें भीतर की मांस-मज्जा और हड्डी दिखाई पड़ रही हो, तो संगमरमरी देह तुम न कह सकोगे। सत्य सब कविताओं को तोड़ देगा। तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे।
इसलिए मन कहता है, समझ-वमझ में मत पड़ो, नासमझ भली। इसलिए तो कहते हैं
कि अज्ञान में भी बड़े आशीर्वाद छिपे हैं। स्वाद ले लो; जल्दी क्या है--मन कहता है--थोड़ा और! और स्वाद के साथ बड़ी हैरानी है कि स्वाद काल्पनिक है और दूसरे से नहीं आ रहा है। दूसरे से आ नहीं सकता स्वाद। स्वाद तुम्हारा डाला हुआ है।
कभी तुमने कुŸो को देखा? सूखी हड्डी को कुŸा चूसता है। सूखी हड्डी में कुछ भी नहीं है। कोई रस तो निकल नहीं सकता, इसलिए चूसोगे क्या? सूखी हड्डी

कोई गन्ने की पोंगरी नहीं है। उसमें कुछ है ही नहीं, बिल्कुल सूखी है। कोई मांस भी नहीं लगा है आसपास। खून का धब्बा भी नहीं है। बिल्कुल सूखी हड्डी है और □□Ÿ□ चूसता है, बड़ा रस लेता है; और अगर कोई दूसरा □□Ÿ□ उस हड्डी को छीनने आ जाए तो जी-जान से बचाने की कोशिश करता है।

क्या, हो क्या रहा है?

एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना घट रही है। वह तुम्हारे जीवन में भी घट रही है। उसे समझ लेना ठीक है।

जब □□Ÿ□ सूखी हड्डी चूसता है, तो सूखी हड्डी की टकराहट से उसके भीतर मुंह का मांस कट जाता है, खून बहने लगता है। खून का स्वाद आने लगता है। स्वभावतः □□Ÿ□ सोचता है, हड्डी से खून आ रहा है। तर्क बिल्कुल सीधा साफ है। वह जितना चूसता है सूखी हड्डी को, उतना ही मुंह भीतर कटता जाता है। जीभ कट जाती है। मसूढ़े कट जाते हैं। तालु कट जाता है। खून बहने लगता है। खून गले में आता है, □□Ÿ□ को स्वाद आता है।

और सभी स्वाद ऐसे हैं। स्वाद बाहर से नहीं आते; तुम्हीं ले रहे हो। तुम्हारा ही खून बह रहा है। सूखी हड्डियां चूस रहे हो। वहां कुछ है ही नहीं कि कुछ आ जाए।

जब तुम सोचते हो कि स्त्री से तुम्हें सुख मिल रहा है, तब तुम्हीं सुख पा रहे हो--तुम्हारी धारणा का ही सुख है। तुम जब सोचते हो कि सोने से सुख मिल रहा है, तो तुम ही सुख पा रहे हो--तुम्हारी धारणा का ही सुख है। और सोने के कारण कितनी जगह से तुम कट जाते हो, तुम्हें पता नहीं। सोने का बोझ तुम्हें कैसे दबा देता है, इसका तुम्हें पता नहीं। तुम्हारे लोभ और काम में तुम कैसे कारागृह में बंद हो जाते हो जहां कि जीना ही असंभव हो जाता है, इसका तुम्हें पता नहीं!

"स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा।

कबीर कहते हैं, स्वाद के कारण उलझ जाता है व्यक्ति, और फिर कोई बहुत बहादुर ही हो, शूरवीर हो, तो ही बाहर निकल पाता है। सिर्फ साहसी ही बाहर निकल पाते हैं--दुस्साहसी। क्योंकि, दूसरे से लड़ना तो बहुत आसान है; अपने ही मन से लड़ना बहुत कठिन है। और अपने ही मन को समझना बहुत कठिन है कि क्या हो रहा है।

□□Ÿ□ को कैसे पता चले कि सूखी हड्डी से अपना ही खून बह रहा है, उसका ही मैं स्वाद ले रहा हूं। जब मनुष्यों को पता नहीं चलता, तो बेचारे □□Ÿ□ का तो कोई कसूर नहीं।

तुमने जहां-जहां स्वाद लिया है, वह तुम्हारे ही रक्त का स्वाद है। और जहां-जहां तुमने स्वाद लिया है वहां-वहां तुमने अपने जीवन को गंवाया है। जहां-जहां तुमने स्वाद लिया है, वहां अपनी ऊर्जा खोई है। उससे तुम दीन हुए हो। उससे तुम निर्धन हुए हो। और मैं भीतर के धन की बात कर रहा हूं, जब कहता हूं, निर्धन हुए हो। और मैं भीतर की दीनता की बात करता हूं, जब मैं कहता हूं, दीन हुए हो। क्योंकि, जितने तुमने स्वाद लिए हैं, उतना ही तुमने अपने को खोया है। और आज एक ऐसी घड़ी आ गई है कि तुम्हें पक्का पता नहीं कि तुम कौन हो, क्या हो, हो भी या नहीं? इस बुरी तरह खो दिया है तुमने, गंवा दिया है अपने को कि कोई बहादुर ही इसके बाहर निकल सकता है, कोई शूरवीर--"को निकसै सूरा।

क्यों साहस की जरूरत है? सबसे बड़े साहस की जरूरत वहां पड़ती है, जहां आदतों के जाल से बाहर निकलना हो। अब तुम्हारी यह आदत हो गई है--अपने को ही काटना और गलाना और अपना ही स्वाद लेना। इस आदत से तुम इतने ज्यादा ग्रस्त हो गए हो कि अब बाहर आना करीब-करीब असंभव मालूम पड़ता है। करीब-करीब ऐसा लगता है कि तुम अपनी आदतों के जाल ही हो, बाहर कौन आएगा? भीतर बचा कौन है जो बाहर आ जाए? इसलिए तुम टालते हो कि कल, परसों, आगे देखेंगे; अभी तो उम्र शेष है, थोड़ा और भोग लें।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, आप युवकों को संन्यास दे रहे हैं; संन्यास तो बुढ़ापे के लिए है। संन्यास का क्या बुढ़ापे से संबंध? बुढ़ापे तक क्यों टाल रहे हो? तब तक टालोगे तुम जब तक तुम बिल्कुल अशक्त न हो जाओ। जब कुछ बचेगा ही नहीं, जब तुम बिल्कुल मरने की घड़ी में आ जाओगे, तभी तुम अपनी सूखी हड्डी छोड़ोगे। वह भी तुम छोड़ोगे नहीं, छूट जाएगी। क्योंकि तब पकड़ने

योग्य सामर्थ्य, क्षमता भी न रह जाएगी। तब भी तुम तो चेष्टा करोगे कि थोड़ी देर और। क्योंकि बूढ़ा भी अपने को बूढ़ा थोड़े ही मानता है; भीतर तो अपने को जवान ही मानता है। क्योंकि वासना कभी बूढ़ी होती ही नहीं। वासना सदा जवान है। शरीर थक जाए, मन नहीं थकता; शरीर टूट जाए, मन नहीं टूटता। मन कहता है, चले जाओ, और खींचो, थोड़ा और स्वाद ले लो। आखिर मरते क्षण तक भी मन स्वाद से लपटाए रखता है।
इसलिए कबीर कहते हैं, "स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा।
वह जो निकल आए बाहर, वह बड़ा वीर।
संन्यास केवल साहसियों के लिए है; संसार कायरों के लिए। बड़े से बड़ा साहस है जाग जाना और देख लेना स्थिति को। जागने में डर है, क्योंकि तुमने स्थिति में बहुत सा अतीत गंवा दिया है।
ऐसा समझो कि एक आदमी आंख बंद किए कागज की नाव में बैठा सागर को पार कर रहा है, और तुम अचानक उससे कहो, "आंख खोल ना-समझ! यह कागज की नाव; लेकिन जब तक पता नहीं है, तब तक तो निश्चिंत है, तब तक तो वह नाव ही मान रहा है। अब तुमने उसे झंझट में डाल दिया--यह बताकर कि यह कागज की नाव है, डूबेगी। अब मुश्किल खड़ी होगी। अब वह कंपेगा और डरेगा और परेशान होगा। वह तुम पर नाराज होगा। अब तक सपना ही सही; लेकिन भरोसा तो यह था कि ठीक है, पहुंच जाएंगे। धन में तुमने अपना जीवन गंवाया। आज अचानक कोई कहता है कि धन में कुछ
भी नहीं है, तो तुम्हारा पूरा अब तक गंवाया जीवन व्यर्थ हो जाता है। एक आदमी पचास मील चल कर आया और तुम कहते हो कि "फिर लौटो, यह तो रास्ता ही नहीं है। पचास मील वापस जाओ। वहीं से चौराहे से बदलाहट होगी, दूसरा रास्ता पकड़ना।
पहला मन तो उसका तुम पर नाराज होने को होता है। होता है, क्योंकि तुम उसकी पचास मील की यात्रा को खराब किए दे रहे हो। और फिर पचास मील जाना है वापस। तो पहले तो वह तुम पर भरोसा न करेगा। वह कोई ऐसा आदमी खोजेगा जो कहेगा कि नहीं ठीक हो, बिल्कुल ठीक जा रहे हो।
इसलिए तो लोग ज्ञानियों के पास जाने से डरते हैं, भयभीत रहते हैं। कितने थोड़े-से लोग बुद्ध के पास पहुंचे। कितने थोड़े-से लोग कबीर के पास पहुंचे। क्यों इतना बड़ा विराट संसार, जब सत्य का कहीं आविर्भाव होता है तो दौड़कर नहीं पहुंच जाता? हजार कारण वे खोज लेते हैं न जाने के। जाने का कारण वे नहीं खोजते, क्योंकि भीतर एक भय है कि इस तरह के आदमी के पास जाने का मतलब यह है कि अब तक तुम जो थे, तुमने जो भी किया, वह सब गलत। यह जरा जरूरत से ज्यादा घबड़ाने वाला है। तो फिर पूरा जीवन अब तक का बेकार गया? तो तुम मूढ़ थे, ना-समझ थे?
ज्ञानी के पास जाने का भय यह है, वही भय जो ऊंट को हिमालय के पास जाने
से लगता है। इसलिए ऊंट रेगिस्तान में रहते हैं, हिमालय की तरफ नहीं जाते। रेगिस्तान में वही ऊंट हिमालय हैं।
जब तुम ज्ञानी के पास जाते हो तो अचानक तुम्हारा अज्ञान साफ होता है-- घबड़ाहट होती है। ज्ञानी की प्रकाश-रेखा के समझ तुम्हारी अंधेरी रेखा बिल्कुल प्रगट हो जाती है। तो आदमी मित्रता अपने से ज्यादा अज्ञानियों की करता है। कोई साहसी, कोई शूरवीर ही ज्ञानियों के पास जाता है। इससे बड़ा कोई साहस नहीं है कि कोई इस बात को समझने को राजी हो कि अब तक जो मैं था वह गलत था। इससे बड़ा कोई साहस नहीं है कि अब तक जिस रास्ते पर मैं चला, वह भ्रांत था, और मैं फिर से अ, ब, स से शुरू करने को राजी हूं।
मन समझाएगा कि इतने दिन चले लिए, थोड़े दिन और बचे हैं, अब क्यों परेशानी में पड़ते हो? थोड़े दिन और गुजार लो इसी रास्ते पर। पहुंचें, नहीं पहुंचें; लेकिन पहुंचने की आशा तो बनी है।
मेरे एक शिक्षक थे। आस्तिक थे--भजन-कीर्तन, पूजा-पाठ करते थे। मैं जब
भी गांव जाता, मुझे स्कूल में पढ़ाया था, तो उनको मैं मिलने जाता। कुछ बात होती। एक बार मैं गांव गया, तो उनका लड़का आया और मुझे कह गया कि "आप घर मत आना। पिताजी ने खबर भेजी है। यद्यपि वे दुखी हैं, असमर्थ हैं, लेकिन घर मत आना।
मैंने कहा, "एक बार तो आऊंगा, कम से कम यह पूछने के लिए कि मामला क्या है? फिर कभी नहीं आऊंगा।

मैं गया तो वे रोने लगे और उन्होंने कहा कि वर्ष भर तुम्हारी राह देखता हूं कि कब आओगे। पर मैं बूढ़ा आदमी हूं, और तुम सब गड़बड़ कर देते हो। मेरी पूजा ठीक चलती है, प्रार्थना ठीक कर लेता हूं, मंदिर जाता हूं, उपवास करता हूं, और अब बूढ़ा आदमी हूं; और तुम जब आते हो तो तुम सब गड़बड़ कर देते हो कि "इस पूजा से कुछ भी न होगा। यह प्रार्थना व्यर्थ है। यह उपवास से क्यों अपने को भूखा मार रहे हो?" और तुमसे मैं भयभीत हो गया हूं। और अब मेरी मौत करीब है। कृपा करके अब मुझे मत डगमगाओ। मैं जैसा हूं... । क्योंकि अब इस क्षण में नए रास्ते पर जाना मुश्किल है। अब तुम मुझे आश्वस्त मर जाने दो। नहीं तो मरते वक्त भी तुम्हारी आवाज मुझे सुनाई पड़ती रहेगी कि यह गलत है; जिंदगी मैंने ऐसे ही गंवा दी। तुम मुझे कम से कम भरोसा दो। तुम मुझे कहो, सब ठीक है।
मैंने उन्हें कहा, "क्रांति के लिए समय की जरूरत ही नहीं है; एक क्षण में क्रांति हो सकती है। क्योंकि यह क्रांति समय के बाहर की घटना है। तो तुम यह मत सोचो कि जिंदगी गंवा दी, तो अब एक क्षण में, अब थोड़े से दिनों में, थोड़ा सा समय जो हाथ में बचा है--हाथी तो निकल गया है, अब पूंछ ही बची है--अब कैसे बदलाहट होगी? तुम यह बात ही छोड़ो। सौ साल अंधेरा रहा हो, अगर दिया जलाओ, एक क्षण में अंधेरा विलीन हो जाता है। भयभीत मत रहो कि अब सौ साल दिया जलाना पड़ेगा, तब सौ साल का पुराना अंधेरा जाएगा। यह गणित यहां लागू नहीं है। और अंधेरा यह भी नहीं कह सकता है कि मैं सौ साल पुराना हूं, इसलिए इतनी जल्दी नहीं जाऊंगा।
"एक क्षण में में घटना घट सकती है। लेकिन मन गणित करता है। और मन कहता
है कि अब आखिर में आश्वस्त मर जाने दो। आश्वस्त तुम मर ही नहीं सकते, क्योंकि तुम्हें खुद ही भरोसा नहीं है। और मैं तुम्हें नहीं डिगा रहा हूं; तुम खुद ही जानते हो कि जो तुम कर रहे हो वह थोथा है। अन्यथा मैं कैसे डिगाऊंगा?
गलत करने वाला बिल्कुल भलीभांति जानता है, कितना ही समझाए, कितना ही अपने को उलझाए, कितना ही शब्दों का जाल रचे, सांत्वना का घर बनाए, गलत करने वाला गहन तल पर जानता है कि गलत हो रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन मर रहा था। जिंदगी भर अल्लाह ही का नाम लिया; प्रार्थना, पूजा, मस्जिद, कुरान का पाठ किया नियमित; और मरते वक्त, आखिरी क्षण में उसने जोर से कहा, "हे शैतान! हे अल्लाह! कृपा कर!
पास खड़े हुए मौलवी ने पूछा कि नसरुद्दीन, मरते वक्त यह क्या कह रहे हो? उसने कहा कि अब सच्ची बात ही कह दूं। मुझे पक्का नहीं है कि अल्लाह मालिक है दुनिया का कि शैतान। और अभी पक्का नहीं रहा। और मरते वक्त दोनों को राजी कर लेना उचित है, जो भी हो। यह मौका कोई जिद्द करने का नहीं है। जीवन भर का संदेह मरते क्षण उठ आएगा, ऊपर आ जाएगा। मरते क्षण में तुम धोखा न दे पाओगे, जीवन में भला धोखा दिया हो। मरते क्षण में सत्य जाहिर हो जाएगा। मरते क्षण में तुम जानोगे, सोना मिट्टी था। मरते क्षण में तुम जानोगे कि कोई स्त्री सुख देने वाली नहीं थी, कोई पुरुष सुख देने वाला नहीं था। मरते क्षण में तुम जानोगे कि जिंदगी गंवाई। लेकिन तब करने को कुछ भी न बचेगा।
शूरवीर वही हैं जो मरने से पहले मरने की हिम्मत रखते हैं। और क्या मतलब होता है शूरवीर का? कायर किसको कहते हो तुम? कायर उसको कहते हो कि जहां भी मरने की बात उठी कि वह भागा, उसने पूंछ दबाई। शूरवीर वही है जो जीवन के लिए जीवन को दांव पर लगा सकता है। शूरवीर का अर्थ हैः जो जीवन के लिए जीवन को गंवा सकता है, जो मरने के लिए भी तैयार है, जिसकी तैयारी में आखिरी तैयारी सम्मिलित है--मरने की तैयारी।
और हम पढ़ेंगे आगे, कबीर कहते हैं कि जो जीते-जी मरने की कला जानता है, वही केवल परमात्मा को उपलब्ध होता है।
मरते तो सभी हैं, संन्यासी वही जो मरने से पहले मर जाता है--और जो कह देता है कि इस जीवन में कोई सार नहीं। इस जीवन के लिए मैं मरा हुआ हूं। मैं एक नए जीवन की शुरूआत करता हूं और एक नए प्रकाशपथ की यात्रा... । बाहर खोजकर देख लिया, नहीं कुछ पाया। अपने ही मन की भ्रांतियां थीं, अपने ही मन का

फैलाव था। अब पसारा वापस उठा लेता हूं, जाल उठा लेता हूं। अब भीतर की यात्रा पर चलता हूं।
अंतर्यात्रा निर्णय है साहस का। बाहर की तरफ तो सभी जाते हैं; भीतर की तरफ कोई शूरवीर... । बाहर की तरफ तो पशु भी जाते हैं, पक्षी भी जाते हैं; तुम्हारा कुछ गुण-गौरव नहीं है कि तुम बाहर की तरफ जाते हो। भीतर की तरफ न पशु जाते हैं, न पक्षी जाते हैं, न पौधे जाते हैं; केवल मनुष्य जा सकता है; सभी मनुष्य नहीं जाते--कोई शूरवीर जा सकता है।
अंतर्यात्रा सबसे कठिन यात्रा है। चांद पर पहुंचना आसान है, क्योंकि
वह भी बाहर की यात्रा है। अपने भीतर आ जाना सबसे कठिन यात्रा है। क्योंकि उस भीतर आने में तुम्हें अपने जन्मों-जन्मों की आदतों के जाल तोड़ने पड़ेंगे; जन्मों-जन्मों के स्वाद व्यर्थ हैं, ऐसे जानने की क्षमता जुटानी पड़ेगी। और अब तक तुमने जो भी किया वह सपना था--इसे झेल लेने की हिम्मत बड़ी- से-बड़ी हिम्मत है। मैं अब तक गलत था, जन्मों-जन्मों तक गलत रहा--ऐसी जिसकी प्रतीति सघन हो जाती है, उसके जीवन में सही शुरूआत हो गई, सत्य की तरफ पहला कदम उठा। जिसने जान लिया कि मैं अज्ञानी हूं, उसने ज्ञान के मंदिर की तरह पहला कदम उठा लिया।
"एक कनक अरु कामिनी, जग में दोइ फंदा।" लोभ और काम--जग में दोइ फंदा। "इन पै जो न बंधावई ताका मैं बंदा।।" और कबीर कहते हैं, मैं उसके पैर दाबूं, जो इन दो में न बंधे--मैं उसका बंदा।
"देह धरे इन मांहि बास कहु कैसे छूटे।
लेकिन सवाल यह है कि देह में रहते हुए, देह में बसते हुए, इनसे कैसे संबंध छूटे? लोभ, काम कैसे छूटे? यह बड़ा गहन है। क्योंकि देह में हम हैं ही इसलिए कि अतीत में हमने कामना की जन्मों-जन्मों तक हमने वासना जुटाई, उसके कारण ही हम देह में हैं। इसलिए तो ज्ञानी को फिर देह नहीं है; उसका पुनरागमन समाप्त है, उसका आना-जाना बंद।
हम देह में आए ही इसलिए हैं कि हमने न मालूम कितनी वासना इकट्ठी की है,
और हम देह को चाहे हैं। मरते वक्त भी आदमी चाहता है, और दो क्षण रुक जाऊं। मरते वक्त भी नए जन्म की आकांक्षा रहती है, फिर जन्म-जन्म की आकांक्षा रहती है--फिर जन्म पा लूं। वही आकांक्षा नए जन्म में ले आती है, नई देह में ले आती है।
काम के कारण हम देह में हैं। देह का कण-कण कामवासना से बना है।
तीन वासनाएं तुममें मिल रही हैं। तुम एक संगम हो महावासनाओं के। एक तुम्हारी वासना जो कि मूल आधार है, जिससे तुम पिछले जन्म से इस जन्म में आए। फिर तुम्हारे पिता की वासना, तुम्हारी मां की वासना, जिन दोनों ने मिलकर तुम्हें देह दी। इन तीन वासनाओं से तुम बने हो। तुम्हारी देह इन तीन वासनाओं का संगम है। दो तो दिखाई पड़ती हैं, जैसे गंगा और यमुना। तीसरी सरस्वती दिखाई नहीं पड़ती। दो तो दिखाई पड़ते हैं--तुम्हारे पिता और तुम्हारी माता, और तीसरी तुम्हारी वासना सरस्वती की तरह दिखाई नहीं पड़ती। वह असली है। ये दो तो सहयोगी हैं। क्योंकि तुमने न चाहा होता तो तुम्हारे पिता और तुम्हारी माता की वासना तुम्हें इस जगत में न ला सकती। तुमने चाहा, उनकी वासना सहयोगी बन गई--"तुम गर्भस्थ हुए।
तुम्हारे शरीर का रोआं-रोआं, कण-कण वासना से बना है।
और लोभ--इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए कि और सब लोभ शरीर के प्रति हमारी जो लोभ की दृष्टि है, उसी के फैलाव हैं। तुम अपने घर के प्रति लोभी हो। क्यों? जो व्यक्ति अपने शरीर के प्रति लोभ छोड़ देता है, उसका घर के प्रति लोभ अपने-आप छूट जाता है। क्योंकि शरीर ही मूल घर है। फिर बाहर का घर तो इसी घर के लिए सुविधा है। जो व्यक्ति शरीर के प्रति लोभ छोड़ देता है उसका सोने के प्रति लोभ छूट जाता है। क्योंकि सोना तो फिर इसी घर की सजावट है। और जो इस शरीर के प्रति लोभ छोड़ देता है, धन-संपिŸा से उसका लोभ अपने-आप छूट जाता है, क्योंकि उस सबका उपयोग इस शरीर के लिए ही है।
तो शरीर तुम्हारे काम और तुम्हारे लोभ का आधार है। इसलिए जगत में एक बहुत बड़ा चमत्कार है! अनेक बार बुद्ध से पूछा गया है कि जब आपकी वासना खो गई, जब आपको ज्ञान का आविर्भाव हो गया, जब बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए, तो फिर आप शरीर में कैसे जी रहे हैं? यह प्रश्न संगत है क्योंकि अब कोई कारण नहीं

रहा है; न शरीर के प्रति वासना है, न कामना है, न लोभ है। अब आप शरीर में कैसे हो?
कठिन है समझना।
लेकिन बुद्ध कहते हैं, अतीत के बल के कारण--मोमेन्टम; जैसे एक आदमी साइकल चलाता है, पैडल चलाता है, तो ही साइकल चलती है, फिर पैडल रोक लेता है तो भी कुछ दूर तक साइकल चलती जाती है। मोमेन्टम--वह जो गति इतनी देर तक चलाने से पहियों को मिल गई है, अब पैडल की जरूरत नहीं है। कुछ यात्रा बिना पैडल के भी हो जाती है।
लोभ और काम, ये दो शरीर के पैडल हैं। इन दोनों से ही शरीर टिका है। इसलिए बुद्ध-पुरुष भी जी जाते हैं थोड़े दिन; लेकिन उनका जीना बड़ा कठिन हो जाता है। लोग आमतौर से सोचते हैं कि बुद्ध-पुरुष बहुत स्वस्थ होंगे। गलत है। बुद्ध-पुरुष बड़ी मुश्किल में जी पाते हैं।
जैसा तुम्हें पता होगा--अगर तुम साइकल चलाते हो, चलती है, लेकिन कब गिरी, कब गिरी। बिना पैडल के भी थोड़ी चलती है, लेकिन कभी भी गिरना बना रहता है।
बुद्धपुरुष का संबंध शरीर से तो टूट जाता है। अब वह शरीर में ऐसे है जैसे नहीं है। ऐसे जैसे तुम वृक्ष की जड़ें उखाड़ लो तो भी दो-चार दिन हरा रह जाता है--बस! जड़ें तो टूट गईं हैं जमीन से लेकिन वृक्ष दो-चार दिन हरा रह जाता है। इतनी संचित जल-राशि उसके भीतर है जिससे हरा रह जाता है--संचित बल है अतीत का जिससे हरा रह जाता है।
बुद्ध भी, महावीर, रमण, रामकृष्ण--ऐसे ही शरीर में रहते हैं... !
रामकृष्ण कैंसर से मरे। रमण भी कैंसर से मरे। बड़ी हैरानी मालूम होती
है कि रमण और रामकृष्ण अगर कैंसर से मरते हैं तो बड़ा अन्याय है। अन्याय वगैरह कुछ भी नहीं है; सीधी बात साफ है कि अब शरीर में कोई भीतरी बल नहीं है, किसी तरह चल रहा है। इसलिए किसी तरह की बीमारी के लिए आधार हो सकता है। क्योंकि भीतर का धक्का तो अब बंद हो गया है; अब तो पुराने धक्के पर चल रहा है। ऐसा समझो कि मूलधन तो चुक गया है, ब्याज से जी रहा है।
"देह धरे इन मांहि बास कहु कैसे छूटै।
और फिर देह है, काम और लोभ से बना उसका सारा रूप है, आकार है--फिर कैसे इनसे संबंध छूटे?
सूत्र याद रख लेनाः "सीव भए ते ऊबरे, जीवत ते लूटै।" जो मुर्दे की भांति हो गए, वे उबर गए और जो जीए वे लुटे। "सीव भए ते ऊबरेप्--शव हो गए जो वे उबर गए। "जीवत ते लूटैप्--और जो जीते रहे, वे लुट गए।
जीसस ने कहा है, "बचाओगे--खो दोगे। खोने को राजी हो--कोई तुमसे छीन नहीं सकता। जियोगे--मरोगे। मरने को राजी हो--अमृत तुम्हारा है।
कायर हजार बार मरता है--कहते हैं--बहादुर एक बार। कायर रोज मरता है, मरने से डरता है, हर घड़ी मौत मालूम होती है; साहसी एक बार। क्योंकि जैसे ही कोई मरने को राजी हो गया है इस संसार के प्रति, उसने कहा, अब मैं ऐसे जिऊंगा, जैसे मुर्दा, वैसे ही कोई फिर मौत नहीं है। क्योंकि ऐसी प्रतीति में तत्क्षण भीतर के अमृत का अनुभव हो जाता है।
मरने की कला धर्म है। इसलिए मैं कहता हूं कि मैं मृत्यु सिखाता हूं।
कुछ और सिखाने योग्य है भी नहीं। जीवन तो तुम सीखे ही हो, जरूरत से ज्यादा सीख गए हो; इतना सीख गए हो कि अब उसको अन-सीखा करना मुश्किल हो रहा है।
मृत्यु सीखनी है।
धर्म मृत्यु की कला है; और तुम चाहो तो कह सकते हो, अमृत की कला भी। क्योंकि इधर मरे, उधर अमृत हुए। इधर तुमने संसार की तरफ से आंख बंद की कि अपनी तरफ आंख खुली। और आंख एक ही तरफ खुल सकती है--या तो बाहर देखो, या भीतर; दोनों तरफ एक साथ न देख सकोगे। कैसे देखोगे? दृष्टि या तो बाहर जा रही है तो तुम बाहर यात्रा कर रहे हो, तब अपनी तरफ पीठ है। इसलिए अमृत का पता नहीं चलता, कि तुम कौन हो।
जब जीवन-ऊर्जा भीतर की तरफ जा रही है--दृष्टि भीतर मुड़ती है, अंतर्मुखी होती है--तो आंख बंद हो जाती है, सब द्वार बंद हो जाते हैं। बाहर तुम अब नहीं जा रहे हो; अब तुम उन्मुख हो अपनी तरफ; अब तुम अपने सन्मुख हो-- तत्क्षण अमृत की वर्षा हो जाती है।

सहजोबाई ने कहा है, "उस घड़ी में--"बिन घन परत फुहारप्।" कोई बादल नहीं दिखाई पड़ता और अमृत की वर्षा होती है। "बिन घन परत फुहार। रोआं-रोआं नहा जाता है। परमात्मा में स्नान हो जाता है।
एक ही तीर्थ है--वह तुम हो। लेकिन तुम अपनी तरफ पीठ किए चल रहे हो।
"सीव भए ते ऊबरे, जीवत ते लूटै।
क्या करो, कैसे करो, कि तुम जीते-जी मुर्दा हो जाओ?
ऐसा हुआ रूस में एक बहुत बड़ा विचारक और लेखक हुआ--दोस्तोवस्की। वह जब जवान था तो क्रांति के कारण पकड़ा गया और जार ने उसे मृत्यु का दंड दिया। दस और साथी थे, सब को मृत्यु का दंड मिला। एक दिन सुबह छः बजे उनको गोली मार देने का तय था। गड्ढे खोल दिए गए। दसों को गड्ढों के ऊपर खड़ा कर दिया गया। सैनिक संगीनें लेकर खड़े हो गए। चर्च की घड़ी में देख रहे हैं कि जैसे ही छः का घंटा बजे और कांटा छः बजाए, गोली मार दी जाए। एक-एक पल भारी हो गया होगा। पांच मिनट बचे, चार मिनट बचे, दो मिनट बचे--कि एक मिनट बचा--कि अब सेकंड-सेकंड का हिसाब होने लगा होगा। सबकी आंखें घड़ी पर टिकी हैं। छः बजे घड़ी का घंटा हुआ। गोली चलती इसके पहले एक घुड़सवार आया, भागा हुआ। संदेश दिया कि मृत्यु की सजा आजीवन कारावास में बदल दी गई है। लेकिन जैसे ही छह की घड़ी का घंटा बजा, एक आदमी तो गिर गया, यह सोचकर कि मरे, मर गए, खत्म हुआ मामला। एक आदमी तो गिर गया। खबर दे दी गई कि घबराइए मत, आजीवन कारावास में बदल दी गई है सजा।
लेकिन वह आदमी जिंदगी भर जिंदा रहा, लेकिन और ही ढंग से जिंदा रहा। वह लोगों से कहता, मैं तो मर गया। लोग उसे पागल समझते। लोग उसका मजाक उड़ाते। लेकिन उस आदमी की जिंदगी में क्रांति हो गई। न लोभ रहा, न मोह रहा, न कोई लगाव रहा, न कोई आसक्ति रही; रहता, चलता, उठता, बैठता, काम करता--लेकिन जब भी कोई उससे पूछता तो वह कहता कि फलां तारीख को सुबह छह बजे मैं मर गया। अचानक वह आदमी संन्यस्थ हो गया।
दोस्तोवस्की भी उनमें एक था। उसने भी लिखा है कि उस घड़ी के बाद मैं दूसरा ही आदमी हो गया। क्योंकि पक्का ही मान लिया था कि मौत होने ही वाली है। छह बजते बजते साफ हो गया था कि बस खत्म हो गए। फिर बच गए। लेकिन उस घड़ी जो खत्म होने का भाव हो गया, वह क्रांति ले आया।
संन्यस्थ ऐसी ही भावदशा है कि तुम्हारा बोध एक ऐसी जगह आ जाए, जहां तुम इस बात को ठीक से समझ लो कि इस जिंदगी में कुछ भी पाने जैसा नहीं है। इस जिंदगी में सिवाय मौत के और कुछ मिलता ही नहीं है। बोध इतना सघन हो जाए कि तुम अपने हाथ से ही कह दो कि हम मर गए। उसी दिन से तुम जल में कमलवत हो जाओगे। चलोगे, काम करोगे, उठोगे, बैठोगे; लेकिन जीवन का जो स्वाद है, जो रस है, वह खो जाएगा; बाहर की तरफ जो दौड़ है वह मिट जाएगी; रहे तो ठीक, न रहे तो ठीक--सब बराबर हो जाएगा।
कभी इसका छोटा-सा प्रयोग करो--एक सात दिन के लिए ही सही--कि सात दिन के लिए ऐसे जियोगे जैसे मर गए। कोई गाली देगा तो क्रोध का कोई उपाय नहीं; क्योंकि तुम मर गए। कोई जेब से पैसे निकाल ले तो क्या करोगे?
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी से पूछता था कि इस बात का पक्का कैसे होता होगा, जब आदमी मर जाता है, उसको खुद को कि मैं मर गया? वह कभी-कभी बड़े दार्शनिक सवाल उठा लेता है। पत्नी ने कहा, "सिर न खाओ और बेकार की बातें मत उठाओ। जब मरोगे, तब पा चल जाएगा। हाथ-पैर ठंडे हो जाएंगे।
अब और क्या कहे?
एक दिन गया था जंगल में लकड़ी काटने, सर्दी के दिन थे और ठंडी हवा चल रही थी, हाथ-पैर ठंडे होने लगे। उसने कहा, मारे गए। कुल्हाड़ी नीचे पटककर जैसा कि मुर्दा आदमी को करना चाहिए वह जल्दी से लेट गया। अपने गधे को जिस पर लकड़ी ले जानी थी उसने वृक्ष से बांध रखा था। वह लेट गया, आंखें बंद की लीं, उसने कहा, अब कुछ करने को नहीं बचा; मामला ही खत्म। अब घर खबर भी नहीं भेज सकते, काई है ही नहीं, और हाथ-पैर ठंडे हो रहे हैं। जाहिर है, पत्नी ने ठीक कहा था। वह बिल्कुल मर गया। तभी दो भेड़िये आ गए और उन्होंने हमला किया गधे पर। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, "अब क्या कर सकता हूं? काश! आज जिंदा होता तो यह भेड़िये मेरे गधे के साथ ऐसा व्यवहार न कर पाते। मगर अब बात खत्म हो गई।

अगर तुम सात दिन के लिए भी सोच लो कि मर गए, तुम्हें जीवन का एक नया दर्शन होगा। कोई गाली देगा, तुम सुनोगे--करोगे क्या? जब मर जाओगे और कब्र में पड़े रहोगे और कोई आदमी आकर गाली देगा तो क्या करोगे?
च्वांगत्सु एक मरघट से निकलता था, एक खोपड़ी में लात लग गई। किसी की खोपड़ी पड़ी थी। उसने बड़ी क्षमा मांगी। उसके शिष्यों ने कहा, "क्या ना-समझी कर रहे हो? बुढ़ापे में सठिया गए? इस खोपड़ी से क्या माफी मांगनी है? च्वांगत्सु ने कहा, "यह कोई छोटे लोगों का मरघट नहीं है; सिर्फ राजा- महाराजा यहां दफनाए जाते हैं। पता नहीं कौन हो और पीछे झंझट दे।" उन्होंने कहा, "अरे, यह मर चुका है। यह राजा हो कि महाराजा, या भिखारी--सब बराबर। मौत बिल्कुल समाजवादी है। तुम इसकी फिक्र छोड़ो। तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है? इतने बड़े ज्ञानी पुरुष... ?
लेकिन च्वांगत्सु खोपड़ी को साथ ले आया। जिंदगी भर उसने उसको अलग न किया। उसको हमेशा बगल में रखे रहता। लोग कहते कि जरा अच्छा नहीं मालूम पड़ता, भद्दा लगता है यह। आप क्या करते हो यह?
च्वांगत्सु कहता, "इससे मुझे याद बनी रहती है कि, आज नहीं कल, मेरी खोपड़ी मरघट में पड़ी होगी। तुम जैसे लोग निकलेंगे तो माफी भी नहीं मांगेंगे, पैर मार देंगे और मैं कुछ भी न कर सकूंगा। तो क्या फर्क है, आज भी कोई सिर में मार जाता है, तो मैं उस खोपड़ी की तरफ देख लेता हूं। खोपड़ी तो यही है। अभी चमड़ी से दबी है, ढकी है; कल चमड़ी से ढकी नहीं होगी, और क्या फर्क होगा? और जब जिंदगी तो स Ÿार साल की, अस्सी साल की है, लेकिन खोपड़ी पड़ी रहेगी, न मालूम कितनी सदियों तक मरघट में! कितने लोग निकलेंगे! कितने लोग ठोकर मारेंगे! कोई क्षमा भी न मांगेगा। जब अनंत काल तक यह व्यवहार होना ही है, तो स Ÿार साल के लिए क्यों व्यर्थ विवाद उठाना!
सात दिन के लिए भी अगर तुम तय कर लो, तुम दुबारा वही आदमी न हो सकोगे। खेल-खेल में भी अगर तुम यह तय कर लो सात दिन के लिए कि मैं मर गया हूं, तो भी तुम पाओगे कि एक नई समझ का जन्म हुआ।
लेकिन जो लोग जीवन के अनुभव से जानकर मृतवत हो जाते हैं, उनका तो कहना क्या! तब वे जीते हैं, जहां तुम जी रहे हो, तुम जैसे ही जीते हैं, सब काम करते हैं, जो जरूरी है वह होता है; लेकिन उनके जीवन में फिर उन्माद नहीं रह जाता। लोभ, काम, क्रोध उनके जीवन से तिरोहित हो जाते हैं। क्योंकि लोभ, काम, क्रोध तो जीवन की आकांक्षा के हिस्से हैं। जीवेषणा, लस्ट फार लाइफ--वह जो जीने की आकांक्षा है, वही तो लोभ, काम, क्रोध बन गई है। और जब तुम अपनी तरफ से ही मर रहे, अपनी मौत से ही मर रहे, तो कैसा लोभ, कैसा काम? कुछ करना नहीं पड़ता, वे अपने-आप ही खो जाते हैं।
इसलिए इसको मैं कहता हूं कुंजीः "सीव भए ते ऊबरे, जीवत ते लूटै।
"एक एक सूं मिलि रह्या तिनही सचु पाया।" और जो बाहर के जगत के लिए मर गया, वह भीतर के जगत के लिए जाग गया। जो बाहर के जगत के लिए सो गया, वह भीतर के जगत में प्रतिस्रित हो गया। और वहां जो मिलन हो रहा है, वह मिलन है एक का एक से। बाहर जो मिलन है, वह एक का अनेक से। भीतर जो मिलन है, वह एक का एक से है।
"एक एक सूं मिलि रह्या तिनही सचु पाया।
और अनेक झूठ हैं--जैसे अनेक लहरें सागर की झूठ हैं; एक सागर सच है।
लहरें बनेंगी, मिटेंगी; सागर रहेगा। जो सदा रहे वही सच है। जो बने और मिटे वह सपना है। अनेक असत्य है, एक ही सत्य है।
"एक एक सूं मिलि रह्या तिनही सचु पाया।
जो एक से मिल गया, उसने सत्य पा लिया।
"प्रेम मगन लौलीन मन सो बहुरि न आया।।
और वहां जो घटना घटती है, वह बड़ी अनूठी है। प्रेमी, प्रेम-पात्र दोनों
ही वहां मिट जाते हैं और प्रेम ही शेष रह जाता है।
जब प्रेमी मिलता है, इस संसार में भी बाहर किसी प्रेम-पात्र से तो वे
दो हो जाते हैं। और फिर जीवन भर यही तो कोशिश होती है कि किस भांति एक हो जाएं, और नहीं हो पाते। इसलिए जीवन में दुख और पीड़ा होती है। वह हो ही नहीं सकता बाहर। एक होने का कोई उपाय नहीं, कितनी ही चेष्टा करो। जितनी चेष्टा करो उतनी असफलता हाथ लगेगी। इसलिए प्रेमी बड़े दुखी हो जाते हैं। उनकी

आकांक्षा तो सच है। वहां वे आकांक्षा को पूरा करने की चेष्टा कर रहे हैं, वह स्थान गलत है। वह आकांक्षा भीतर तृप्त होगी। उनकी प्यास तो सही है, लेकिन जिस सरोवर पर वे बैठे हैं, वह सूखा है, वहां जल नहीं है।
जैसे ही कोई भीतर आया, वहां तत्क्षण जैसे एक ज्योति आए, और दूसरी ज्योति से मिलकर एक हो जाए। दो दीयों की ज्योतियों को पास रखो, दीये तो दो ही रहेंगे, ज्योतियां एक हो जाती हैं। दीये तो कैसे एक हो सकते हैं? दीया तो अनेक की दुनिया का हिस्सा है।
शरीर दीया है मिट्टी का। उसके भीतर जलती आत्मा की ज्योति है। तुम दीयों को एक करने की कोशिश कर रहे हो, बड़ी मुश्किल में रहोगे, अड़चन ही अड़चन हाथ लगेगी, असफलता अंत में, विषाद, संताप, चिंता, रोग... ; लेकिन कभी तुम स्वस्थ न हो पाओगे। ज्योति मिल सकती है, क्योंकि ज्योति निराकार है।
एक ज्योति दूसरी ज्योति के आकार से टकराती नहीं है; आकार है नहीं। एक ज्योति दूसरी ज्योति में ऐसे लीन हो जाती है जैसे वह सदा से एक थी। तुम फर्क भी न कर पाओगे। गंगा और यमुना भी मिलती है तो तुम फर्क कर सकते हो कि यह रही गंगा, यह रही यमुना, रंग अलग-अलग; लेकिन जब दो ज्योतियां मिलती हैं तो तुम कोई फर्क न कर पाओगे।
अंर्तज्योति! जब तुम भीतर जाते हो, अचानक एक लपक--और सिर्फ एक बचा। वहां न प्रेमी है न प्रेयसी है, न भक्त है न भगवान है; सिर्फ प्रेम ही बचा, ऊर्जा बची, ज्योति बची।
"प्रेम मगन लौलीन मन सो बहुरि न आया।" और जो ऐसा प्रेम-मग्न हो गया, वह फिर दुबारा नहीं आता। उसके आने की जरूरत न रही, उसका पाठ पूरा हो गया।
"कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया।
और जो ऐसे अंतस में प्रवेश कर गया, उसकी ज्योति थिर हो गई, अब उसमें कोई कंपन नहीं--निश्चल! कोई हवा के झोंके अब उसे कंपाते नहीं; क्योंकि भीतर कोई हवा के झोंके पहुंचते ही नहीं।
जब तक तुम बाहर हो, तब तक तुम कंपते ही रहोगे। वहां हजार तूफान चल रहे हैं। लेकिन जब तुम भीतर अपने घर में लौट आए, वहां कोई तूफान कभी नहीं पहुंचता। वहां निश्चल... !
"कहै कबीर निहचल भया, निर्भय पद पाया।" और जब चेतना निश्चल होती है, तभी निर्भय होती है; इसके पहले निर्भय हो नहीं सकती, भय से कंपती रहती है। "संसा ता दिन का गया, सतगुरु समझाया।
कबीर कहते हैं, जिस दिन सतगुरु ने यह बात समझा दी, यह कुंजी थमा दी, उसी दिन सब शंका मिट गई; उसी दिन सब मन के संदेह खो गए।
लेकिन समझ बड़ी कठिन है। बुद्धि की समझ का नाम समझ नहीं। तुम समझ रहे
हो जो मैं समझा रहा हूं, इसमें कोई अड़चन नहीं है, बात सीधी साफ है। तुम्हारी बुद्धि कहती है, ठीक है; मगर इससे तुम्हारा संशय न मिटेगा। अभी कहेगी, ठीक है; घड़ी भर बाद हजार संशय खड़ी कर देगी। क्योंकि बुद्धि की समझ असली समझ नहीं है। जब तुम अपने तन-प्राण से, जब तुम हृदय से, जब तुम अपनी समग्रता से समझोगे--तभी। सदगुरु के समझाने से नहीं; तुम्हारी समग्रता की समझ से... । सदगुरु तो समझाते रहे हैं और तुम न मालूम कितने सदगुरुओं को पा कर आए हो और समझे नहीं। तुम्हारी समग्रता से, प्राणपन से, तुम्हारे पूरे अस्तित्व से जब तुम समझोगे... ।
"संसा ता दिन का गया, सतगुरु समझाया।
समझाने को कुछ है भी नहीं; छोटी-सी बात हैः "कस्तूरी कुंडल बसै!"

आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
तेरहवां प्रवचन

मन के जाल हजार

सूत्र
चलत कत टेढ़ौ रे।
नऊं दुवार नरक धरि मूंदै, तू दुरगंधि कौ बेढ़ौ रे।।
जे जारै तौ होइ भसम तन, रहित किरम उहिं खाई।
सूकर स्वान काग को भाखिन, तामै कहा भलाई।।
फूटै नैन हिरदै नाहिं सूझै, मति एकै नहिं जानी।
माया मोह ममता सूं बांध्यो, बूड़ि मुवौ बिन पानी।।
बारू के घरवा मैं बैठो, चेतत नहिं अयांना।
कहै कबीर एक राम भगति बिन, बूड़े बहुत सयांना।।

मन की चाल समझ लें, तो सब समझ लिया। मन को पहचान लिया, तो कुछ और पहचानने को बचता नहीं। मन की चाल समझते ही चेतना अपने में लीन हो जाती है। जब तक नहीं समझा है, तभी तक मन का अनुसरण चलता है। मन के पीछे चलता है आदमी यही मानकर कि मन गुरु है--जो कहता है, ठीक कहता है; जो बताता है, ठीक बताता है। एक बार अपने मन पर संदेह आ जाए, तो जीवन में क्रांति की शुरुआत हो जाती है। और मजा यही है कि मन सभी पर संदेह करता है। और तुम कभी मन पर संदेह नहीं करते। मन पर तुम्हारी श्रद्धा अपूर्व है; उसका कोई अंत नहीं। और मन रोज तुम्हें गड्ढे में डाले, तो भी श्रद्धा नहीं टूटती।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, लोगों की श्रद्धा उठ गई है। मैं उनसे कहता हूं कि लोगों की जैसी श्रद्धा मन पर है, उसे देखकर ऐसा नहीं लगता कि लोगों की श्रद्धा उठ गई है। कितना ही भटकाए मन, कितना ही सताए मन, कितना ही भरमाए मन--श्रद्धा नहीं टूटती। श्रद्धा तो भरपूर है--गलत दिशा में है। आज तक मुझे कोई अश्रद्धालु आदमी नहीं मिला। श्रद्धा गलत दिशा में हो सकती है; जिस पर नहीं आनी चाहिए, उस पर हो सकती है--लेकिन अश्रद्धालु कोई भी नहीं है।
और दो ही श्रद्धाएं हैं; या तो मन की श्रद्धा है और या आत्मा की श्रद्धा है। या तो तुम अपने पर भरोसा करते हो--अपने का अर्थ है, जहां मन की कोई भनक भी नहीं, जहां एक विचार भी नहीं तिरता, जहां शुद्ध चेतना है--या तो उस शुद्ध चेतना का तुम्हारा भरोसा है। अगर उसका भरोसा है, तो तुम जीवन में कहीं भी गड्ढे न पाओगे; तुम्हारा कोई पैर गलत न पड़ेगा। और या फिर आदमी भरोसा करता है मन पर। तब तुम गड्ढे ही गड्ढे पाओगे; तब तुम जीवन में जहां भी जाओगे, भटकोगे ही--क्योंकि मन की चाल ही ऐसी है।
मन की चाल को समझ लें।
एक, कि मन तुम्हें देखने नहीं देता। मन तुम्हें अंधा रखता है। मन तुम्हारी आंखों को धुंधला रखता है, धुएं से भरा रखता है। वह धुंआ ही विचार है। इतनी तीव्रता से मन विचारों को चलाता है कि तुम्हें जगह भी नहीं मिलती कि तुम देख पाओ, कि तुम्हारे बाहर क्या हो रहा है, कि तुम्हारे जीवन में क्या घट रहा है। मन तुम्हें विचारों में उलझाए रखता है। जैसे छोटे बच्चे को हम खिलौने दे देते हैं--फिर उसकी मां मर भी रही हो, तो भी वह अपने खिलौने से खेलता रहता है, खिलौनों में उलझा रहता है।
मन तुम्हें विचार देता है; विचार खिलौने हैं। खिलौनों में भी थोड़ा- बहुत सत्य है, विचारों में उतना भी नहीं। लेकिन एक खिलौने से तुम चुक भी नहीं पाते कि मन तत्क्षण दूसरा निर्मित कर देता है। इसके पहले कि तुम जागकर देख पाओ, मन तुम्हें नया खिलौना दे देता है। पुराने से तुम ऊब जाते हो, तो मन नई उलझनें सुझा देता है। एक उपद्रव बंद भी नहीं हो पाया कि मन दस उपद्रवों में रस जगा देता है। और यह इतनी तीव्रता से होता है कि दोनों घटनाओं के बीच खिड़की बनाने लायक भी जगह नहीं मिलती, जहां से तुम देख लो कि जिंदगी में हो क्या रहा है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन जब बहुत बूढ़ा हो गया, नब्बे वर्ष
का हुआ, तब उसका बड़ा भरा-पूरा परिवार था। उसका बड़ा बेटा ही स Ÿार वर्ष पार कर रहा था। उसके बेटों के बेटे पचास पार रहे थे। उसके बेटों के बेटे विवाहित हो गए थे। उनके भी बच्चे हो गए थे। अचानक एक दिन बूढ़े नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने फिर से शादी करने का तय कर लिया है। पत्नी मर चुकी थी। पहले तो लड़कों ने मजाक समझी; हंसे कि "अब इस बुढ़ापे में... । हम भी बूढ़े हो गए हैं। अब शादी! पिताजी मजाक कर रहे होंगे।" लेकिन नसरुद्दीन ने जब बार-बार दुहराया, तो उन्होंने गंभीरता से बात ली। और जब नसरुद्दीन ने एक दिन सुबह आकर घोषणा ही कर दी कि "मैंने लड़की भी तय कर लीप्, तब जरा सोचना पड़ा। सारा परिवार इकट्ठा हुआ। उन्होंने विचार किया कि इससे बड़ी फजीहत होगी, लोग हंसेंगे। ऐसे ही नसरुद्दीन की वजह से लोग जिंदगी भर हंसते रहे; और अब यह बुढ़ापे में आखिरी उपद्रव खड़ा कर रहे हैं। क्या कहेंगे लोग? बड़े लड़के को सबने कहा कि तुम्हीं जाकर कहो। बड़े लड़के ने जो सुना तो चकित हो गया। सुना कि सामने ही एक रंगरेज की लड़की से तय किया है नसरुद्दीन ने। लड़की की उम्र मुश्किल से सोलह साल है। उसने कहा, "यह नहीं हो सकता। पापा, यह बंद करो। यह सोच ही छोड़ दो। यह भी तो सोचो, उस लड़की की उम्र सिर्फ सोलह साल है।" नसरुद्दीन ने कहा, "अरे पागल! सोलह साल ही तो शादी की उम्र है। और जब फिर मैंने तेरी मां से शादी की थी, तब उसकी भी उम्र सोलह साल ही थी। इसमें बुरा क्या हुआ जा रहा है?
मन तर्क दे रहा है। मन पीछे लौटकर नहीं देखता। मन अपनी तरफ नहीं देखता, मन सिर्फ दूसरे की तरफ देखता है।
लड़के बहुत परेशान हुए और बड़े बूढ़ों से सलाह ली। डॉक्टर से भी पूछा। डॉक्टर ने कहा, "यह बहुत खतरनाक है। इस उम्र में शादी जीवन के लिए खतरा हो सकती है।
फिर बेटे को समझा-बुझाकर भेजा। बेटे ने कहा कि "हम सब सलाह-मशविरा किए हैं। डॉक्टर कहता है, जीवन के लिए खतरा हो सकता है। जीवन को दांव पर मत लगाओ।" नसरुद्दीन ने कहा, "अरे पागल, यह लड़की मर भी गई तो कोई लड़कियों की कमी है? दूसरी लड़की खोज लेंगे।
मन कभी पीछे की तरफ देखता नहीं--अपनी तरफ नहीं देखता है। मन सदा दूसरे में खोजता है सुख, दूसरे पर थोपता है दुख; दूसरे से पाना चाहता है शांति, दूसरे से ही पाता है अशांति। सदा ही नजर दूसरे पर लगी है, जबकि नजर अपने पर लगी होनी चाहिए। तो मन के जगत का उपद्रव, मूल आधार दूसरे पर दृष्टि है। दूसरे से क्या प्रयोजन है? दूसरा मौलिक नहीं है, मौलिक तो तुम हो; लेकिन मन सदा भरमाता है। अगर तुम दुखी हो तो मन कहता है, जरूर कोई तुम्हें दूसरा दुखी कर रहा है। तो तुम किसी न किसी पर दुख थोप देते हो। जब तुम सुखी होते हो तब भी मन कहता है, किसी दूसरे के कारण सुख मिल रहा है। तब तुम सुख दूसरे पर थोप देते हो; और मजा यह है कि दुख भी अपने कारण मिलता है, सुख भी अपने कारण मिलता है। नरक भी भीतर है, और स्वर्ग भी भीतर। अंततः तुम ही निर्णायक हो; क्योंकि तुम्हारी व्याख्या पर ही निर्भर करेगा कि क्या सुख है और क्या दुख है। चाहो तो सुख दुख जैसा हो जाता है; चाहो तो दुख सुख जैसा हो जाता है। क्षणभर में बदल जाती है बात।
दूसरा निर्णायक नहीं है; लेकिन मन सदा दूसरे पर मन को अटकाए रखता है।
और जन्मों-जन्मों से तुम यही कर रहे हो, और दूसरे पर थोप रहे हो। जहां से सुख-दुख उठते हैं, अगर वहां नजर जाए, तो सुख भी छोड़ दोगे और दुख भी छोड़ दोगे। तब जो शेष रह जाता है, वही आनंद है। तब जो सुगंध तुम्हें मिलेगी, तब जो सुवास तुम्हारे जीवन को भर देगी--वही मोक्ष है।
जब तुम दूसरे पर देखते हो कि दूसरा सुख दे रहा है तो तुम्हारी कोशिश होती है दूसरे को बदलने की; स्वभावतः, जो सुख देता है उसको बदलता है, ताकि दुख न मिले। अनंत लोग हैं। तुम उनको बदलने में लगे हो। पति पत्नी को बदल रहा हो, पत्नी पति को बदल रही है; बाप बेटे को बदल रहा है, बेटा भी कोशिश में लगा है कि बाप को बदल दे; मित्र मित्र को बदल रहे हैं--सब एक-दूसरे को बदलने में लगे हैं।
दूसरे को तुम कैसे बदल सकते हो? दूसरा स्वतंत्र है। उसकी अपनी नियति है। दूसरे का अपना आधार है, अपना केंद्र है, दूसरे का अपना स्रोत है, जहां

से उसके मनोभाव उठते हैं। तुम दूसरे को नहीं बदल सकते। तुम अगर किसी को बदल सकते हो, तो स्वयं को। लेकिन वहां तो नजर ही नहीं। मन वहां देखने ही नहीं देता।
जैसे ही कोई व्यक्ति स्वयं को देखता है, वह पाता है सुख भी यहीं से उठते हैं, दुख भी यहीं से उठते हैं। न केवल यही, जल्दी ही उसको दिखाई पड़ने लगता है कि हर सुख के साथ उसका दुख जुड़ा है; हर फूल के पास उसका कांटा है; और हर दिन के पीछे छिपी उसकी रात है। जैसे-जैसे तुम भीतर आते हो, वैसे-वैसे साफ होने लगता है कि अगर तुमने सुख चुना, तो दुख भी चुन लिया। हर सुख का अपना दुख है। हर स्वर्ग के पास उसका नरक है; जरा भी दूर नहीं--संयुक्त हैं। एक ही द्वार है दोनों का। जैसे ही तुमने सुख को चुना, तत्क्षण तुमने दुख को चुन लिया--जैसे ये एक ही सिक्के के दो पहलू हों।
जिस दिन यह दिखाई पड़ जाता है--पहला अनुभव कि सुख-दुख भीतर उठते हैं, दूसरा अनुभव कि हर सुख और दुख संयुक्त हैं--तब दुख और सुख में कोई भी भेद नहीं रह जाता। और जो आदमी जान लेता है कि स्वर्ग और नरक में कोई भी भेद नहीं, वह दोनों को छोड़ देता है।
मन कोशिश करता है, दुख को छोड़ने की और सुख को बचाने की, ज्ञानी दोनों
को छोड़ देता है; क्योंकि दोनों या तो साथ बचते हैं, या साथ जाते हैं।
तुम सिक्के का एक पहलू बचाओगे--कैसे बचा पाओगे? दूसरा पहलू भी बच जाएगा। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कर सकते हो कि जो पहलू तुम्हें पसंद है उसे ऊपर कर लो, जो पहलू तुम्हें पसंद नहीं है उसे नीचे कर दो; लेकिन वहीं दूसरा छिपा है।
हर दीये के तले अंधेरा है, और हर सुख के नीचे छिपा दुख है। देर-अबेर वह
जो नीचे छिपा है, प्रगट होगा। और जीवन का एक महत्वपूर्ण नियम है कि अगर तुमने सुख का ऊपर रखा और सुख को भोगा तो सुख चुक जाएगा; और जब सुख चुक जाएगा तो दुख उठना शुरू हो जाएगा। जिसको तुमने भोगा, वह चुकेगा; और जिसको नहीं भोगा, वह बचा हुआ है--उसको कौन भोगेगा? एक पहलू तुमने खर्च कर लिया; अब दूसरा पहलू बचा है, अब उसे भी भोगना पड़ेगा।
यह दूसरी प्रतीति है भीतर जाते यात्री की कि सुख-दुख संयुक्त हैं। तो इसका अर्थ हुआ कि सुख दुख हैं, उनमें जरा भी भेद नहीं। भेद मन की भ्रांति थी। मन की टेढ़ी-मेढ़ी चाल के कारण भेद मालूम पड़ता था। सुख-दुख दोनों छूट जाते हैं। छोड़ना भी नहीं पड़ता। यह एहसास, यह प्रतीति, यह अनुभव कि दोनों एक हैं--फिर छोड़ना भी नहीं पड़ता। जैसे अंगारा हाथ में रखा हो--छोड़ना पड़ेगा? समझ में आया कि अंगारा है, कि छूट जाएगा। जैसे घर में आग लगी हो, तो निकलने के लिए कुछ प्रयास करना पड़ेगा? पता चला कि आग लगी है कि तुम बाहर हो जाओगे। तुम फिर यह भी न पूछोगे कि कहां से बाहर जाऊं, रीति-रिवाज क्या है, सभ्य मार्ग क्या होगा? तुम खिड़की से छलांग लगाकर निकल जाओगे; तुम यह न पूछोगे कि खिड़की से निकलना उचित-अनुचित, शिष्ट-अशिष्ट है। जब घर में आग लगी हो तो शिष्टाचार को कोई पूछता है? तब तुम कहीं से भी छलांग लगाकर निकल जाओगे। तुम बाहर हो जाओगे--घर में आग लगी है, यह एहसास भर हो जाए।
जैसे कोई भीतर जाता है, वैसे ही सुख-दुख एक ही हो जाते हैं, तत्क्षण छूट जाते हैं; जो शेष रह जाता है, वही मोक्ष है; जो शेष रह जाता है वही तुम हो; जो शेष रह जाता है वही परमात्मा है। लेकिन मन तुम्हें भीतर नहीं जाने देता; मन कहता है, दूसरे ने दुख दिया। मन कहता है, दूसरे ने सुख दिया। मन दूसरे पर अटकाए रखता है, यह मन की पहली कुशलता है।
दूसरी कुशलता मन की, कि वह हमेशा आधे को दिखलाता है और आधे को नहीं देखने देता। जैसे कि चांद को हम देखते हैं, तो आधा चांद दिखाई पड़ता है, आधा नहीं दिखाई पड़ता; उस तरफ का पहलू छिपा रहता है। मन जो भी देखता है, हमेशा आधे को देखता है। मन पूरे को नहीं देख सकता। चांद तो बड़ी चीज है। तुम्हारे हाथ में एक कंकड़ भी रख दें, छोटा सा, एक रेत का कण रख दें, उसको भी तुम पूरा नहीं देख सकते, आधा ही दिखेगा; आधा उस तरफ जो है, वह छिपा रहेगा। मन आधे को ही देख सकता है। मन आधे को देखने की व्यवस्था है।
इसलिए तो मन के कारण द्वैत पैदा होता है; क्योंकि आधे को देखता है, उसे समझता है; यह पूरा है; फिर दूसरे आधे को देखता है, उसे समझता है, यह पूरा है--और दोनों को कभी साथ तो देख नहीं सकता। इसलिए उनको एक कैसे माने? इसलिए

जहां एक है वहां मन दो देखता है। और जब तुमने एक की जगह दो देख लिया, संसार खड़ा हो जाता है।

तुम देखते हो, यह आदमी मित्र है और वह आदमी शत्रु है; लेकिन मित्र में शत्रु छिपा है। मित्र कभी भी शत्रु हो सकता है। और शत्रु में मित्र छिपा है। शत्रु कभी भी मित्र हो सकता है--कोई अड़चन नहीं है, कोई बाधा नहीं है।

तुम्हारे प्रेम में घृणा छिपी है, घृणा में प्रेम छिपा है। लेकिन मन दो करके देखता है--घृणा को अलग, प्रेम को अलग; शत्रु को अलग, मित्र को अलग; सुख को अलग, दुख को अलग। और जब तुम एक को दो करके देख लेते हो, फिर तुम जो भी करोगे वह गलत होगा। बुनियाद से गलती शुरू हो गई। प्रारंभ से ही भूल हो गई।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात शराब पीकर घर लौट रहा है।

शराबी को एक की जगह अनेक चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं। चीजें अनेक हो नहीं जातीं। अगर तुमने कभी शराब पी है या भांग के नशे में आ गए हो, तो तुम्हें पता होगा कि एक चीज दो दिखाई पड़ने लगती हैं, तीन दिखाई पड़ने लगती हैं, चार दिखाई पड़ने लगती हैं। जैसे-जैसे नशा बढ़ता है--क्या होता है? जैसे-जैसे नशा बढ़ता है, भीतर तुम्हारी चेतना कंपने लगती है। उसकी जो थिरता है खो जाती है, चैन है वह खो जाता है, चेतना कंपने लगती है। और जब चेतना कंपने लगती है, तो उसके कंपन के कारण एक चीजें बहुत होकर दिखाई पड़ती हैं। जैसे चांद झील पर प्रतिबिंब बना रहा है; झील शांत है--अकंप, तो एक चांद दिखाई पड़ता है झील में। एक कंकड़ फेंक दो, झील में लहरें उठ गई हैं, कंपन हो गया, झील कंप गई--अब एक चांद हजार चांद में टूट गया। अगर तुम झील को बहुत ही कंपा दो तो चांद दिखाई ही न पड़ेगा, बस चांद के टुकड़े ही टुकड़े पूरी झील पर फैल जाएंगेः चांद एक है; झील कंप गई।

नशा तुम्हारी चेतना को कंपा देता है। झील कंप गई है--अब चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन घर आया है, नशे में डूबा है। ताले में चाबी डालने की कोशिश करता है, लेकिन ताले में चाबी नहीं जाती। छेद और चाबी को मिला नहीं पाता। हाथ कंप रहे हैं। एक पुलिसवाला रास्ते पर खड़ा देख रहा है। आखिर उसने कहा, "नसरुद्दीन, क्या मैं सहायता करूं? ताले में चाबी डाल दूं?

नसरुद्दीन ने कहा, "अगर सहायता ही करनी है तो जरा तुम मकान को सम्भाले रखो, तो मैं चाबी डाल लूं।" नशेलची को यह नहीं दिखाई पड़ता है कि मैं कंप रहा हूं; उसे दिखाई पड़ता है कि मकान कंप रहा है--"मकान को सम्भाले रखो!

एक और दिन ऐसा ही नशा करके नसरुद्दीन घर लौटता था, एक वृक्ष से टक्कर हो गई। बड़ी मुश्किल में पड़ गया। वृक्ष तो एक था, उसको दो दिखाई पड़ रहे थे। तो वह दोनों के बीच से निकलने की कोशिश कर रहा था। जैसे ही कोशिश करता, सिर टकरा जाता। वृक्ष तो एक ही था। अनेक बार कोशिश की। तब वह जोर से चिल्लाया कि मारे गए, यह तो बड़ा जंगल है। यह कोई एक वृक्ष नहीं है यहां, जिसमें से निकल जाओ; बहुत वृक्ष हैं।

बड़ी पुरानी कथा है। एक □□Ÿ□ एक राजमहल में प्रवेश कर गया। उस महल के राजा ने उस महल को सिर्फ दर्पणों से बनाया था। दीवाल पर दर्पण ही दर्पण थे। पूरा कांच का ही बना था। □□Ÿ□ मुसीबत में पड़ गया। जहां देखा, अनेक □□Ÿ□ दिखाई पड़े। घबड़ा गया, यह तो कोई एकाध □□Ÿ□ नहीं है, □□Ÿ□□ की पूरी सेना मालूम पड़ती है। और भागने का उपाय नहीं दिखता; चारों तरफ घेरे खड़े हैं। और जैसा कि □□Ÿ□□ की आदत होती है, कि पहले उसने डराने की कोशिश की कि डर जाएं ये लोग; लेकिन जितना उसने □□Ÿ□□ को डराया, उतना □□Ÿ□□ ने उसे डराया, क्योंकि वे उसी के प्रतिबिंब थे। जैसे ही □□Ÿ□ झपटा और भौंका, हजारों □□Ÿ□ झपटे और भौंके। क्योंकि वे वहां थे ही नहीं, वे उसी की छायाएं थे। □□Ÿ□ दर्पणों से टकराया, झपट्टा मारा, उसके प्रतिबिंब □□Ÿ□ से टकराए, सिर लहूलुहान हो गया; सुबह □□Ÿ□ मरा हुआ पाया गया! ... वहां कोई भी न था।

जहां कुछ भी नहीं है, वहां भी तुम्हारे भीतर के कंपन झूठे अस्तित्व को निर्मित कर लेते हैं। उस झूठे अस्तित्व को ही हमने माया कहा है। माया बाहर नहीं है। तुम्हारे कंपते हुए □□Ÿ□ के कारण, जो है, वह तो एक है, लेकिन वह अनेक होकर दिखाई पड़ रहा है। और तुम्हारी कोशिश वही है जो मुल्ला नसरुद्दीन ने सिपाही से कही थी कि जरा तुम मकान को सम्हाल लो, तो मैं ताले में चाबी डाल दूं।

तुम्हारी भी कोशिश यही है कि कैसे मकान को थिर कर लिया जाए। कोई कभी नहीं कर पाया। ज्ञानियों ने मकान की फिक्र छोड़ दी; अपने को थिर कर लिया--सब थिर हो जाता है। जरूरत है कि नशा उतर जाए। मकान तो थिर ही है, वह कभी हिला न था। यह अस्तित्व कभी हिला ही नहीं है। यह बिल्कुल थिर है। यह अपने में बिल्कुल लीन है। यह स्वभाव में डूबा है। तुम हिल गए हो। लेकिन तुम अस्तित्व को सम्हालने की कोशिश कर रहे हो।
मन द्वैत का सूत्र है, और अनेक का भी सूत्र है। मन से गुजरकर चीजें वैसे ही हो जाती हैं, जैसे सूरज की किरण को अगर तुम एक कांच के टुकड़े से गुजरने दो। कई पहलुओं का कांच का टुकड़ा ले लो--प्रिज्म उस टुकड़े को कहा जाता है। उसमें तराशे हुए कई पहलू हैं। सूरज की किरण गुजरती है उससे। जब आती है तो एक होती है; जब उससे बाहर निकलती है तो सात हो जाती हैं। इसलिए तो इंद्रधनुष निर्मित होता है। इंद्रधनुष निर्मित इसलिए हो जाता है कि हवा में वर्षा के दिनों में पानी के कण लटके होते हैं। वे पानी के कण प्रिज्म का काम करते हैं। उन पानी के कणों में से सूरज की किरण गुजरती है, टूटकर सात हो जाती हैं, सात रंग दिखाई पड़ने लगते हैं।
जगत तुम्हारे मन से गुजरा हुआ इंद्रधनुष है। किरण तो परमात्मा की एक है। उसकी रोशनी एक है। अस्तित्व का स्वभाव एक है। अस्तित्व एक है। लेकिन तुम्हारे मन की लटकी हुई बूंद से, एक गुजरकर सात में टूट जाता है, सब चीजें खंड-खंड हो जाती हैं, और मन कहता है यही सत्य है। और मन तुम्हें कभी लौटकर नहीं देखने जाता, जहां से सात पैदा हुए, जहां एक से सात का जन्म हुआ।
सारे ध्यान के प्रयोग मन से पीछे लौटने के प्रयोग हैं।
मन की तीसरी टेढ़ी चाल है कि मन बड़ा तर्कनिस्र है। वह हर चीज के लिए तर्क देता है, और तर्क ऐसी सुगमता से देता है कि तुम्हें भी लगने लगता है कि ठीक ही तो बात है।
अस्तित्व तर्क से बहुत बड़ा है। और मन छोटे-छोटे तर्क के आंगन बना लेता है--साथ-सुथरे; सब ठीक-ठीक मालूम पड़ता है। लेकिन आंगन के पार जो अस्तित्व है, वह अतक््रय है। वह तर्क जैसा नहीं है। वह गणित का कोई प्रयोग नहीं है। वह गणित से ज्यादा काव्य है। काव्य से भी ज्यादा रहस्य की अनुभूति है।
तो मन कहता है, "ईश्वर हो ही नहीं सकता। कहां है दिखाओ? क्योंकि जो भी है, वह दिखाया जा सकता है। और तुम तो कहते हो ईश्वर ही ईश्वर है, वही सब जगह है--तो दिखाओ, मौजूद करो।" मन ने एक सवाल उठाया जिसका जवाब तुम न दे पाओगे, क्योंकि ईश्वर दिखाया नहीं जा सकता; वह देखने वाला है! वह बाहर दृश्य की तरह नहीं है, तुम्हारे भीतर द्रष्टा की तरह है। और मन ने एक सवाल उठाया जो कि बड़ी अड़चन का है; वह कहता है, दिखा दो। न दिखा पाओगे तो मन हंसेगा, और कहेगाः मूढ़ हो, नासमझ हो, अज्ञानी हो, अंधविश्वासी हो; जो दिखाया नहीं जा सकता उसको मानते हो। मन कहता है, हम तो अनुभव को मानते हैं; और जब तक अनुभव न हो जाए तब तक हम मानते नहीं।
मन ठीक ही कहता लगता है, तर्क में कहीं भी भूल-चूक नहीं है। भूल-चूक है
तो इतनी बुनियादी है कि जब तक तुम मन से थोड़े सरकोगे न, तुम्हारी समझ में न आएगी।
मन कहता है कि दृश्य की तरह परमात्मा को दिखा दो। लेकिन परमात्मा का स्वभाव दृश्य की तरह नहीं है। परमात्मा का स्वभाव द्रष्टा का है, साक्षी का है। परमात्मा चैतन्य है, वस्तु नहीं है। चेतना को देखा नहीं जा सकता; चेतना में लीन हुआ जा सकता है। चेतना को गणित से सिद्ध नहीं किया जा सकता; चेतना का तो रहस्य की एक अनुभूति में अनुभव किया जा सकता है। चेतना को प्रयोगशाला में पकड़ा नहीं जा सकता; अगर पकड़ने की कोशिश की तो तुम खो दोगे। एक जिंदा आदमी को ले जाओ प्रयोगशाला में अंग-अंग काट डालोः हड्डी मिलेगी, मांस-मज्जा मिलेगी, चमड़ी मिलेगी, खून मिलेगा; एल्युमिनियम, लोहा, सब धातुएं मिल जाएंगी; बस एक चीज न मिलेगी--आत्मा; लाश मिलेगी, जीवन न मिलेगा। क्योंकि तुमने काटा, उसी वक्त जीवन तिरोहित हो जाता है। ऐसे ही जैसी कि एक फूल का कोई विश्लेषण करे। तुम्हें मैं एक फूल दिखाऊं, कहूं कि देखो, यह गुलाब का फूल कितना सुंदर है, और तुम कहो, "कहां है सौंदर्य? गुलाबी रंग दिखाई पड़ता है, मान लेते हैं; पंखुड़ियां हैं, कोमल हैं, मान लेते हैं; गंध है, मान लेते हैं--लेकिन सौंदर्य कहां? सौंदर्य दिखाओ,

प्रयोगशाला में सिद्ध करो।" तो फूल को तुम तोड़ डालो जीवित पंखुड़ियां मुर्झा जाएंगी, मृत हो जाएंगी। जहां रस की धार बहती थी, वहां रस की धार सूख जाएगी। जहां से सुगंध उठती थी, जल्दी ही सुगंध तिरोहित हो जाएगी। फिर पंखुड़ियों का तुम रासायनिक विश्लेषण कर लो, तो पांच-सात छोटी-छोटी बोतलों में लेबल लगाकर तुम बता दोगे कि उसमें इतनी मात्रा में फलां पदार्थ है, इतनी मात्रा में फलां पदार्थ है। लेकिन ऐसी तो एक बोतल न होगी उनमें, जिसमें तुम कहो कि इतनी मात्रा में सौंदर्य है।
मन तर्कनिस्र है। जीवन एक रहस्य है। जीवन कोई गणित नहीं है। जीवन किसी दुकानदार का हिसाब नहीं है। जीवन तो किसी प्रेमी की अनुभूति है। जीवन तो किसी कवि का स्वर है। जीवन तो किसी संगीतज्ञ की लहर है। जीवन सौंदर्य जैसा है; काव्य जैसा है, प्रेम जैसा है। जीवन परम रहस्य है, और मन कहता है गणित।
मन की चाल बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी है। इसको ख्याल में ले लें, फिर कबीर का यह पद एकदम साफ होने लगेगा।
"चलत कत टेढ़ौ-टेढ़ौ रेप्
कबीर कहते हैं, "ए मन, टेढ़ा-टेढ़ा क्यों चलता है, सीधा क्यों नहीं जाता?
और मन बड़ा टेढ़ा-टेढ़ा चलता है।
तुमने कभी शराबी को चलते देखा है?--सीधा नहीं चल सकता, टेढ़ा-टेढ़ा चलता रहा है; एक पैर इस दिशा में, दूसरा पैर दूसरी दिशा में। इसलिए तो अक्सर वह नाली में गिरा हुआ पाया जाता है। तुम बीच सड़क में शराबी को गिरा हुआ न पाओगे; नाली में गिरा हुआ पाया जाता है। टेढ़ा-टेढ़ा चलता है। टेढ़ेपन ये हैं कि जहां रहस्य है, वहां तर्क उठाता है। तर्क बड़ी टेढ़ी चीज है। तर्क से ज्यादा टेढ़ा इस संसार में कुछ भी नहीं है। क्योंकि तर्क से तुम, जो है, उसे सिद्ध कर सकते हो कि नहीं है। तर्क से, जो नहीं है, उसे तुम सिद्ध कर सकते हो कि वह है। लेकिन ये हवाओं में बनाए गए घर हैं; इनका अस्तित्व में कोई अर्थ नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा स्कूल से पढ़कर लौटा, विश्वविद्यालय से शिक्षित हुआ था। सबसे बड़ी उपाधि लेकर घर आया। तो जैसा कि अक्सर युनिवर्सिटी से लौटने वाले बच्चों को जल्दी होती है दिखाने की कि वे कितना जानकर आए हैं, कितना सीखकर आए हैं, प्रभावित करने का मन होता है। और युनिवर्सिटी से लौटने वाले सभी बच्चे मां-बाप को मूढ़ समझते हैं। सांझ को खाना खाने बैठे थे, नसरुद्दीन की पत्नी ने लाकर दो अमरूद एक प्लेट में रखे। बेटे ने कहा कि देखें, विश्वविद्यालय में कैसी अदभुत बातें सिखाई जाती हैं! मैं तर्क का स्नातक हूं।" उसने अपनी मां को कहा कि "इसमें, प्लेट में कितने अमरूद हैं?" उसकी मां ने कहा, "दो हैंप्। बेटे ने कहा कि मैं सिद्ध कर सकता हूं तर्क से कि तीन हैं। मां उत्सुक हुई। नसरुद्दीन तो बैठा रहा चुपचाप, देखता रहा। मां उत्सुक हुई। उसने कहा, सिद्ध करो। तो बेटे ने कहा कि देखो, यह अमरूद एक, यह अमरूद दो--दो और एक मिलकर कितने होते हैं? मां ने कहा कि बात तो ठीक है; दो और एक मिलकर तीन होते हैं। मां सीधी, भोली- भाली--थोड़ी मुश्किल में पड़ गई। बेटे ने नसरुद्दीन की तरफ देखा। नसरुद्दीन ने कहा कि बिल्कुल ठीक। एक हम ले लेंगे। दो तेरी मां खा लेगी, तीसरा तू खा लेना।
तर्क हवा है; उसे खाया नहीं जा सकता। न तर्क को जीया जा सकता है, न तर्क
को भोगा जा सकता है। लेकिन तर्क मन पर भारी है। और मन तर्क से चल रहा है। इसलिए जीवन से तुम वंचित हो।
जीवन सीधा-सीधा है। उससे सरल और सुगम कुछ भी नहीं है। तर्क टेढ़ा-टेढ़ा है। इसलिए कबीर कहते हैं, "चलत कत टेढ़ौ-टेढ़ौ रेप्--सीधा क्यों नहीं चलता? साफ रास्ता है, इधर-उधर क्यों उतरता है? यहां-वहां की बहकी-बहकी बातें क्यों करता है?
अपने मन को समझने की कोशिश करना। जब तक तुम तर्क ही करते रहोगे तब तक समझना, तुम टेढ़े-टेढ़े जा रहे हो; तब तक जो सीधे-सीधे मिलता था, उससे तुम वंचित रहोगे।
मंदिर के द्वार खुले हैं। राह सीधी-साफ है। जरा-भी कोई बाधा नहीं है। लेकिन मन तुम्हें यहां-वहां उतार ले जाता है। मन तुम्हें राह से उतार देता

है। मन तुम्हें बेराह कर देता है, और इतनी कुशलता से करता है कि तुम्हें कभी ख्याल भी नहीं आ पाता।
एक मित्र मेरे पास आए, कुछ दिन पहले। कहा कि "मन बड़ा अशांत है, और शांति एकदम आवश्यक है; नहीं, नहीं तो मैं जी न सकूंगा। आत्मघातक का मन होता है।" धनी है, सब सुख-सुविधा है। राजनीति के बड़े पदों पर रहे हैं। मैंने उनसे कहा, तो फिर प्रार्थना करो। कहने लगे, प्रार्थना में मन नहीं लगता।... "ध्यान करो।" कहने लगे, ध्यान की बिल्कुल इच्छा नहीं होती।
मन अशांत है, लेकिन ध्यान में मन नहीं लगता! मन अशांत है तो भी मन की ही सुन रहे हो। मन आत्महत्या के करीब ले आया है। कहता हूं, प्रार्थना करो; कहते हैं, चाह नहीं उठती मन में। जो आत्महत्या के करीब ले आया है, उस पर भरोसा नहीं छूटता। मन अशांत है; श्रद्धा उसी पर है! जिसने इतनी अशांति दी, मैं कहता हूं, इसे छोड़ो, इसकी मानना बंद करो। वे कहते हैं कि मैं मन के ऊपर जाने के लिए आप के पास नहीं आया हूं; मैं तो सिर्फ मन की शांति चाहता हूं। अब यहीं बड़ा खेल है और यहीं मन के तर्क उलझा देते हैं। मन कहता है कि
मन की शांति चाहिए, और मन की शांति कभी होती नहीं; क्योंकि जब तक मन होता है तब तक शांति होती ही नहीं।
मन ही तो अशांति है। तो मन कभी शांत होने वाला है? तुमने कभी सुना कि किसी का मन शांत हो गया हो?
यह तो ऐसे ही है, जैसे कि तुम चिकित्सक के पास जाकर पूछो कि मेरी बीमारी को स्वस्थ होने का कोई उपाय बता दो। तुम स्वस्थ होओगे, बीमारी स्वस्थ नहीं होगी; तुम शांत होओगे, मन शांत नहीं होगा। और जब तक बीमारी है, तब तक तुम स्वस्थ कैसे होओगे? और तुम पूछ रहे हो बीमारी को स्वस्थ करने की कोई औषधि दे दें।
सागर में तूफान उठता है; पहाड़ों की तरह लहरें उठती हैं। उस क्षण में सागर अशांत है, तूफान है। क्या तुम पूछते हो कि जब सागर शांत हो जाएगा, तब क्या होगा? तूफान रहेगा? शांत होकर रहेगा? तूफान नहीं रहेगा। शांति का अर्थ हैः तूफान का न हो जाना; शांति का अर्थ हैः मन का न हो जाना।
मन तूफान है, मन तुम्हारे भीतर उठी तरंगें हैं, लहरें हैं। मन का ही सारा उपद्रव है। और तुम पूछते हो, "उपद्रव कैसे शांत हो?" उपद्रव शांत होने को एक ही उपाय है कि उपद्रव न हो।
वे कहने लगे, "आप तो गहरी बातें करने लगे; मैं तो केवल मन की शांति के लिए आया था।
मन से गहरे न जाओ, तो मन की शांति नहीं हो सकती; क्योंकि मन से गहरे न
हो जाओ तो तुम मन में ही मस्त रहते हो। उससे पीछे हटने का तुम्हारे पास उपाय नहीं है। पीछे हटने का उपाय बताया जाए तो तुम कहते हो, मन को भाता नहीं। तुम बीमारी से पूछते हो कि औषधि भाती है या नहीं? बीमारी से पूछोगे तो औषधि भाएगी ही क्यों?
समझ लो कि तुम्हें बीमारी है कोई--क्षयरोग हो गया है। क्षयरोग के कीटाणु तुम्हें खाए जा रहे हैं। उन कीटाणुओं से पूछो कि औषधि भाती है? वे कीटाणु कहेंगे, "हमारी जान लेनी है?" क्योंकि उन कीटाणुओं के लिए तो औषधि मौत है। उन कीटाणुओं का जीवन तुम्हारी मौत है।
विचार कीटाणुओं की तरह हैं। मन एक रोग है, महारोग है। और जब कोई कहता है, ध्यान करो, तो तुम कहते हो, मन को भाता नहीं। इसी मन से पूछते हो और मन तो कहेगा कि नहीं भाता, क्योंकि किस को अपनी मौत भाती है?
ध्यान मन की मौत है।
तो मन तुम्हें ध्यान से बचाएगा। वह हजार बहाने खोजेगा। वह कहेगा कि इतनी सुबह, इतनी सर्द सुबह कहां उठकर जा रहे हो? थोड़ा विश्राम कर लो। रात भर वैसे तो नींद ही नहीं आई, और अब सुबह से ध्यान? वैसे तो थके हो, अब और थक जाओगे। शांत पड़े रहो। कल चले जाना। इतनी जल्दी भी क्या है? कोई जीवन चुका जा रहा है?
हजार बहाने मन खोजता है। कभी कहता है, शरीर ठीक नहीं है, तबीयत जरा ठीक नहीं है; कभी कहता है, घर में काम है; कभी कहता है, बाजार है, दुकान है। हजार बहाने खोजता है। ध्यान से बचने; की मन पूरी कोशिश करता है। क्योंकि ध्यान सीधा रास्ता है जो मंदिर में ले जाता है; वह यहां-वहां नहीं ले जाता है।

"चलत कत टेढ़ौ-टेढ़ौ रे।
मन सीधा चल ही नहीं सकता। अगर तुम मेरी बात ठीक से समझो, तो मन का अर्थ
ही है टेढ़ा-टेढ़ा चलना। टेढ़ी चाल का नाम मन है। जैसे ही चाल सीधी हुई, मन गया। मन सीधी चाल में बचता ही नहीं। इसलिए सरलता से मन भागता है, जटिलता को चुनता है। जितनी जटिल चीज हो, उतनी मन को रुचती है। जितनी कठिन चीज हो उतनी मन को रुचती है। हिमालय चढ़ना हो, जंचता है। परमात्मा में जाना हो, नहीं जंचता; क्योंकि इतनी सरल घटना है कि वहां कोई चुनौती नहीं है, वहां कोई चैलेंज नहीं है। कठिन को जीतने में मजा आता है मन को। सरल को जीतने का उपाय भी नहीं है। सरल को क्या जीतोगे।
परमात्मा से लोग वंचित हैं--इसलिए नहीं कि वह बहुत कठिन है, इसलिए वंचित है कि वह बहुत सरल है; इसलिए वंचित नहीं है कि वह बहुत दूर है, इसलिए वंचित है कि वह बहुत पास है। उसमें चुनौती नहीं है।
दूर की यात्रा पर तो मन निकल जाता है, पास की यात्रा में यात्रा नहीं है--जाना कहां है?
तो जितना तुम्हारा मन किसी चीज में जटिलता पाता है, उतना ही रस लेता है; क्योंकि चाल टेढ़ी-मेढ़ी चलने की सुविधा है। सीधे-सीधे में साफ-सुथरे में मन कहता है, "कुछ रस नहीं, क्या करोगे? बात इतनी साफ-सुथरी है, कोई भी पहुंच सकता है--तुम्हारी क्या विशिष्टता?
इसलिए तुम्हें कहूं इसे ठीक से सुन और समझ लेना, धर्म बड़ी सीधी चीज है, लेकिन मन के कारण पुरोहितों ने धर्म को बहुत जटिल बनाया, क्योंकि जटिल की ही अपील है। तो उलटी-सीधी हजार चीजें धर्म के नाम से चल रही हैं। उपवास करो, शरीर को सताओ, शीर्षासन करके खड़े रहो--उलटा-सीधा बहुत चल रहा है। और वह चलता इसलिए है, क्योंकि तुम्हें जंचता है। अगर मैं तुमसे कहूं कि बात बिल्कुल सरल है, बात इतनी सरल है कि कुछ करना नहीं है, सिर्फ खाली, शांत बैठकर भीतर देखना है--तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे। तुम कहोगे, "जब कुछ करने को ही नहीं है, तो क्यों समय खराब करना? कहीं और जाएं, जहां कुछ करने को हो। सौ गुरुओं में निन्यानबे जटिलता के कारण जीते हैं। वे जितने दांव-पेंच बता सकते हैं, उतने बता देते हैं और दांव-पेंच में तुम उलझ जाते हो; मन बड़ा रस लेता है, पहुंचते कभी भी नहीं। नहीं पहुंचते तो गुरु कहते हैं, "पहुंचना कोई इतना आसान है? जन्मों-जन्मों की यात्रा है।" नहीं पहुंचते तो गुरु समझाते हैं कि यह तो कर्मों का बड़ा जाल है; यह कभी इतने जल्दी होने वाला है? कभी हुआ है ऐसा? जन्मों-जन्मों तक लोग चेष्टा करते हैं, तब होता है?" अब दूसरे जन्म में इन्हीं गुरु से मिलने का उपाय तो है नहीं। पिछले जन्म में जिन गुरुओं ने जटिल साधनाएं दी थीं, उनसे मिले इस जन्म में कि पूछ लो कि अब भी नहीं हुआ? वह बात ही नहीं होती, क्योंकि दुबारा मिलने का कोई उपाय नहीं। मिल भी लो तो पहचान नहीं होती। तुम खुद को भूल गए हो, तुम्हारे गुरु भी अपने को भूल गए हैं। इसलिए धंधा चलता है।
जटिलता पर सारा खेल है।
तुम समझो इसेः हीरे-जवाहरात बहुमूल्य हैं, क्योंकि न्यून हैं। उनका मूल्य उनकी न्यूनता में है; खुद में कोई मूल्य नहीं है। कोहिनूर दो कौड़ी का नहीं है। क्या करोगे--खाओगे, पिओगे? समझ लो कि कोहिनूर हर सड़क पर पड़े हों, कंकड़-पत्थर की तरह पड़े हों, फिर क्या करोगे? कोहिनूर की कीमत खत्म हो जाएगी। दुनिया भर में हीरे-जवाहरात जितने हैं इतने बाजार में लाए नहीं जाते, क्योंकि बाजार में लाने से उनकी कीमत गिर जाएगी। बड़े-बड़े भंडार हैं हीरे-जवाहरातों के। उनको रोककर रखा जाता है। और धीरे-धीरे बहुत कम संख्या में हीरे-जवाहरात बाहर निकाले जाते हैं, क्योंकि अगर उनको सारा का सारा निकाल दिया जाए तो उनकी कीमत ही मिट जाए इसी वक्त। उनकी कीमत उनकी न्यूनता में है।
कोहिनूर एक है, इसलिए मूल्यवान है। क्या कारण होगा इसके मूल्य का? इतना है कि इसको पाना कठिन है। चार अरब मनुष्य हैं और एक कोहिनूर है। तो चार अरब प्रतियोगी हैं और एक कोहिनूर है--बड़ा जटिल मामला है। चार अरब पाने की कोशिश कर रहे हैं, और एक कोहिनूर है! बहुत कठिन है। गांव-गांव, सड़क-सड़क, पहाड़-जंगल, सब जगह कोहिनूर पड़े हों, कौन फिक्र करेगा? और कोई अगर बादशाह

रणजीत सिंह या एलिझाबेथ अपने मुकुट में लगाएगी तो लोग हंसेंगे कि इसमें क्या है; कोहिनूर तो गांव-गांव पड़े हैं; बच्चे खेल रहे हैं।
न्यूनता का मूल्य है, क्योंकि न्यूनता के कारण पाने में जटिलता पैदा
हो जाती है। कुछ चीजों के मूल्य बाजार में बहुत ज्यादा रखने पड़ते हैं, इसलिए वे बिकतीं हैं। अगर उनके मूल्य कम कर दिए जाएं तो उनको खरीददार न मिलें। यह बड़े मजे का अर्थशास्त्र है। तुम सोचते होओगे कि चीजों के दाम कम हों, ज्यादा खरीददार मिलेंगे; कुछ चीजें ऐसी हैं कि उनके खरीददार तभी मिलते हैं, जब उनके दाम इतने हों कि ज्यादा खरीददार न उनको खरीद सकें। रॉल्सरॉयस खरीदनी हो तो कितने खरीददार खरीद सकत हैं? इसका मूल्य इतना ऊंचा रखना पड़ता है कि जो उसे खरीद ले, वह उसकी प्रतिस्रा बन जाए कि रॉल्सरॉयस खरीद ली। वह प्रतिस्रा का सिंबल है, प्रतीक है। इसका मूल्य इतना है नहीं, जितना मूल्य चुकाना पड़ता है। मगर लोग पागल हैं। और मन का यह पूरा खेल है।
अगर तुम्हें परमात्मा ऐसे ही घर के पीछे मिलता हो तो तुम्हारा रस ही
खो जाए। तुम कहोगे यह तो जन्मों-जन्मों की बात है, ऐसे कहीं मिलता है? ऐसे परमात्मा अचानक एक दिन आ जाए और तुम्हें उठा ले कि "भाई, मैं आ गया, तुम बड़ी प्रार्थना वगैरह करते थे, शीर्षासन लगाते थे--अब हम हाजिर हैं, बोलो!" तुम फौरन आंख बंद कर लोगे कि यह सच हो ही नहीं सकता।
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन ने जाल फेंका, एक मछली पकड़ ली। मछली इतनी बड़ी थी कि कभी सुनी भी नहीं गई थी। सिर्फ मछुओं की कहानियों में कि एक मछुए एक-दूसरे को बताते हैं कि दस मन की मछली पकड़ी ली। लेकिन कोई मानता नहीं। सब समझते हैं कि गप्प मार रहा है। और मछुओं से ज्यादा गप्पबाज दूसरे नहीं होते, क्योंकि वे मछलियों की कहानी बताते रहते हैं कि "इतनी बड़ी मछली पकड़ ली; कि इतनी बड़ी मछली ठहरी हुई थी सागर के तट पर कि हम बैठकर उसकी पीठ पर रोटी पकाए, और मछली को पता न चलता। जब तक मछली को पता चला तब तक हमारी रोटी पक गई, भोजन कर चुके, तब वह हिली--इतनी बड़ी थी!" एक बड़ी मछली पकड़ ली। भीड़ लग गई। नसरुद्दीन ने सब तरफ से उस मछली को जाकर देख लिया। सिर हिलाया और कहा कि नहीं, यह सच है ही नहीं, यह झूठ है, यह तो एक गप्प है। इसको कौन मानेगा? उसने कहा, "भाइयो मुझे सहायता दो, इसको सागर में फेंक देने दो। यह मछली है ही नहीं, यह एक झूठ है।
अगर परमात्मा ऐसे ही आ जाए चुपचाप, और कहे कि मैं आ गया; तुमने याद किया था--तो तुम भरोसा न करोगे। तुम कहोगे कि यह एक झूठ है। कोई स्वप्न देख रहा हूं। यह हो ही नहीं सकता।
तुम सरल को मान ही नहीं सकते। और मैं तुमसे कहता हूं, परमात्मा ऐसे ही आता है। अगर तुम्हारे मन की टेढ़ी-मेढ़ी चाल न हो, अगर तुम सीधे-सरल होकर बैठ जाओ तो परमात्मा ऐसे ही आता है कि उसकी पगध्वनि भी नहीं सुनाई पड़तीः एक क्षण पहले नहीं था और एक क्षण बाद है। अचानक तुम उससे भर गए हो। उसके मेघ ने तुम्हें घेर लिया है। उसके अमृत की वर्षा होने लगी। तुम कभी यह भी न समझ पाओगे कि मेरी क्या योग्यता थी और परमात्मा आया! क्योंकि योग्यता की बात तो तर्क की बात है। परमात्मा कुछ किसी योग्यता से थोड़े ही मिलता है। तुम कभी समझ ही न पाओगे कि "मेरी पात्रता क्या थी? मैंने क्या किया था, जिसकी वजह से परमात्मा मिला? क्योंकि करने से थोड़े ही परमात्मा मिलता है। वह तुम्हें मिला ही हुआ है; तुम्हारे करने के पहले मिला हुआ है; तुम्हारे होने के पहले मिला हुआ है। तुम उसे खो ही नहीं सकते। मन की टेढ़ी-मेढ़ी चाल है कि तुम्हें लगता है, खो गया। फिर खोज का सवाल उठता है। जिसे कभी खोया नहीं, उसे तुम खोजने निकल जाते हो!
जिस दिन परमात्मा मिलता है, उस दिन प्रसाद-रूप, अकारण... । मिला ही हुआ है। तुम जरा बैठो। तुम दौड़ो मत। तुम थोड़ा मन को विसर्जित करो। तुम मन की बात मत सुनो। तुम मन के धुएं से जरा अपने को मुक्त करो और पार ले जाओ। तुम जरा मन की घाटी से हटो।
थोड़ा-सा फासला मन से और परमात्मा से सारी दूरी मिट जाती है। इसे हम ऐसा कह सकते हैं कि जितने मन के पास हो तुम, उतने परमात्मा से दूर; जितने मन से दूर, उतने परमात्मा के पास--बस ऐसा ही सीधा-सा गणित है। जितने मन से दूर, उतने परमात्मा के पास। जिस दिन मन नहीं, उस दिन तुम परमात्मा हो।

परमात्मा को तुमने खोया नहीं है। मन को तुमने पा लिया है--यही तुम्हारी अड़चन है।
"चलत कत टेढ़ौ-टेढ़ौ रे।
नऊं दुवार नरक धरि मूंदै।। तू दुरगंधि कौ बेढ़ौ रे।।
क्यों इतना तिरछा-तिरछा चलता है, और क्यों इतनी अकड़? क्योंकि अकड़ के कारण लोग तिरछे चलते हैं। पैसा मिल जाए तो आदमी अकड़कर चलता है; इलेक्शन में जीत जाए तो पैर जमीन पर नहीं पड़ते--तिरछा-तिरछा चलता है।
कबीर कह रहे हैं कि तेरी अकड़ का कोई कारण समझ में नहीं आता, नाहक ही अकड़ा हुआ है। अगर सच्चाई कहनी है तो अकड़ का तो कोई भी कारण नहीं है। "नऊं दुवार नरक धरि मूंदैप्--तेरे ही नौ द्वारों के कारण नरक में गिरेगा।
नौ द्वार हैं शरीर के नौ छिद्र--आंख, कान, नाक, शरीर के नौ छिद्र--जिनसे
मन अपनी वासनाओं को संसार में फैलाता है; जिन द्वारों से मन बाहर जाता है, पदार्थ से चिपटता है, दूसरे को पकड़ता है, परिग्रह बनाता है, लोभ, काम, क्रोध को पैदा करता है।
कबीर कहते हैं, "नऊं दुवार नरक धरि मूंदैप्--तेरे ही कारण और तेरे ही द्वारों के कारण नरक का द्वार खुलेगा। अकड़ किस बात की है? क्यों ऐसा तिरछा-तिरछा जा रहा है?
"तू दुरगंधि को बेढ़ौ रेप्--और मैंने तुझसे कभी कोई सुगंध उठते देखी नहीं। सिवाय दुर्गंध के तुझसे कभी कुछ उठा नहीं। तू दुर्गंध का घर है, फिर भी अकड़ा फिर रहा है!
इसे थोड़ा समझो। अपने ही मन से बात करना, ध्यान का एक बड़ा गहरा प्रयोग है। जब तुम अपने मन से बात करने लगते हो तो फासला हो जाता है। जब तुम अपने मन से बात करते हो तो मन वहां, तुम यहां; तुम अपने मन से कहते हो, "चलत कत टेढ़ौ-टेढ़ौ रेप्--फासला हो गया! तुम बोलनेवाले हो गए, मन सुननेवाला हो गया, अपने मन से बात करना, ध्यान का एक गहरा प्रयोग है। कभी-कभी बैठकर बात करने से तुम बड़ा लाभ पाओगे। और मन के पास कोई जवाब नहीं है। अगर तुमने ठीक से बात की और चीजें साफ रखीं, तो मन क्या कहेगा? मन के पास कोई जवाब नहीं है। "तू दुरगंधि को बेढ़ौ रे!" मन से सिवाय दुर्गंध के कभी कुछ नहीं उठता।
और कभी अगर तुम्हें सुगंध मालूम पड़ती है, तो तुम खोज करना, वह मन के पार से आती होगी, मन से नहीं आती। जैसे समझोः क्रोध मन से उठता है, घृणा मन से उठती है, वैमनस्य, र ईष्या मन से उठती है, जलन, द्वेष मत्सर मन से उठता है--सब उपद्रव मन से उठता है। अगर कभी तुम्हें मन से कोई ऐसी चीज भी उठती मालूम पड़ती हो जो दुर्गंध जैसी नहीं है, तो तुम ठीक से खोजना, तुम फौरन पाओगे कि वह मन के पार से आ रही है। जो प्रेम मन से उठता है, वह तो दुर्गंध-भरा ही होता है; वह तो घृणा का ही दूसरा रूप होता है। लेकिन एक ऐसा प्रेम भी है जो मन के पार से उठता है। और तुम उसे पहचान लोगे तत्क्षण। उसकी सुगंध ही और है! जब कभी कोई ऐसा प्रेम उठता है, जो कुछ भी नहीं मांगता, जो कुछ भी नहीं चाहता, जिसकी कोई अपेक्षा नहीं है--जैसा प्रेम बुद्ध की आंखों में दिखाई पड़े--वह प्रेम मन से नहीं आ रहा है; वह मन के पार से आ रहा है; उसमें फिर कोई दुर्गंध नहीं है; उसमें फिर घृणा कोई पहलू नहीं है।
तुम बुद्ध के प्रेम को घृणा में नहीं बदल सकते। तुम्हारे प्रेम को घृणा में बदला जा सकता है। तो वह प्रेम मन से आ रहा है। तो क्या हुआ मापदंड? मापदंड यह हुआ कि जो भी चीज अपने से विपरीत में न बदली जा सके वह, मन के पार से आ रही है--यह क्राईटेरियन हुआ, यह निष्कर्ष हुआ। इस पर तुम कस लेना।
तुम किसी को प्रेम करते हो। एक स्त्री को प्रेम करते हो; आज वह सुंदर है, कल बूढ़ी हो जाएगी--फिर भी प्रेम करोगे? ऐसा ही प्रेम करोगे? आज स्वस्थ है, कल बीमार हो जाए, केंसरग्रस्त हो जाए, कि कोढ़ आ जाए, सारा शरीर गलने लगे--फिर भी तुम ऐसा ही प्रेम करोगे? सिर्फ सोचो। तत्क्षण तुम जान लोगे कि नहीं कर पाओगे। आज स्त्री प्रसन्न है, तुम्हें पूछती है; कल गाली देख अपमान करे--तब भी ऐसा ही प्रेम करोगे? आज तुम्हारे पीछे छाया की तरह चलती है, तुम्हारे अहंकार को भरती है; कल किसी और की तरफ प्रेम की नजर से देख ले-- तब भी ऐसा ही प्रेम करोगे? कल किसी और के पीछे चलने लगे, किसी और की छाया बन जाए--तब भी तुम ऐसा ही प्रेम करोगे? तो तुम्हारा प्रेम सशर्त हैः उसमें

कंडिशन है; वह लेन-देन है। और अगर स्त्री ने किसी और को प्रेम कर लिया तो प्रेम करना दूर, तुम उसकी हत्या कर दोगे। तुम उसे गोली मार दोगे। तुम्हारा प्रेम घृणा में बदल सकता है।
जो चीज अपने से विपरीत में बदल जाए, समझना कि मन से आ रही है; क्योंकि
मन के पास द्वैत है, मन के पार अद्वैत है। अगर तुम्हारा प्रेम घृणा में बदल सके, अगर तुम समझ लो कि यह संभव ही नहीं है कि मेरा प्रेम घृणा में बदल जाए तो खोजना गौर से, अपने को धोखा देने का कोई सार नहीं है, क्योंकि किसी और को तुम धोखा नहीं दे रहे हो। तुम्हारी शांति अशांति में बदल सकती है, तो समझ लेना कि मन का ही खेल है। तुम अगर ऐसी शांति को अनुभव करो जिसे कि कुछ भी न बिगाड़ सकेगा, जिसमें कोई विघ्न-बाधा न डाल सकेगा; तुम्हारी शांति ऐसी होगी, उसे अशांति में बदलने का कोई उपाय न हो सकेगा; चारों तरफ तूफान चलता रहे तो भी तुम्हारी शांति अडिग बनी रहेगी--तो तुम समझ लेना कि कुछ मन के पार से आ रहा है। मन के पार से जो आता है, वह विपरीत में बदल नहीं सकता, क्योंकि उसका विपरीत है ही नहीं; वह अद्वैत से आ रहा है। उससे अन्य कोई है ही नहीं।
कभी-कभी तुम्हें सुगंध की खबर मिल सकती है--मन से भी। लेकिन वह सुगंध
मन की नहीं है। मन से तो दुर्गंध उठती है। और जो भी तुम मन से करोगे, तुम्हारा जीवन उतना ही दुर्गंध से भरता जाएगा।
अगर तुम दुर्गंध से भर गए हो तो चेतो! कब तक मन पर भरोसा किए जाओगे? काफी कर लिया। हर चीज की हद होती है। "चलत कत टेढ़ौ-टेढ़ौ रे।
"नऊं दुवार नरक धरि मुंदै, तू दुरगंधि को बेढ़ौ रे।" घर है तू दुर्गंध का। नौ द्वार खुलते हैं तुझसे नरक के और अकड़कर तू चलता है--कुछ समझ में बात आती नहीं; कबीर अपने मन से कहते हैं।
"जे जारै तो होइ भसम तनप्--और जब जलाया जाएगा तो शरीर के साथ, शरीर भस्म हो जाएगा, राख हो जाएगा, तू भी राख हो जाएगा। "रहित किरम उहिं खाईप्-- अगर कोई टुकड़े बच गए शरीर के आग से, तो कीड़े-मकोड़े खा लेंगे। अकड़ किस बात की है? किसलिए इतना सिर ऊंचा किए चल रहा है? ये पताकाएं किसलिए फहराई जा रही हैं? झंडा उठाने जैसा कुछ भी तो नहीं है।
"सूकर स्वान काग को भाखिनप्--छोड़ देगी चेतना, उड़ जाएगा पखेरू, हंस यात्रा पर निकल जाएगा--तो तुझे सूअर, कुŸो, कौवे भक्ष्य बना लेंगे। "तामै कहा भलाईप्--कुछ बात समझ में नहीं आती कि क्यों तू इतना अकड़ा है?
"फूटै नैन हिरदै नहिं सूझै, मति एकै नहिं जानी।" तेरे कारण पाया तो कुछ भी नहीं, खोया बहुत। और बड़ी-से-बड़ी चीज जो खो दी है, मन के कारण, वह है--"फूटै नैन, हिरदै नहिं सूझै।" मन ने कब्जा कर लिया है, इतनी तीव्रता से कि हृदय को बिल्कुल अलग ही तोड़ दिया है। मन की आंख सजग है और हृदय की आंख मन ने बिल्कुल अंधी कर दी--जैसे आंख पर तेजाब डाल दी हो हृदय की।
और मन समझाता है कि हृदय अंधा है; देखना है तो हमसे देखो। मन कहता है, प्रेम अंधा है, देखना है तो हमसे देखो, नहीं तो भटक जाओगे। और प्रेम एक-मात्र आंख है--मन अंधा कहता है। मन तुम्हें हृदय की नहीं सुनने देता। जब तुम सुनते ही नहीं बड़े-बड़े लंबे-लंबे समय तक, तो धीरे-धीरे हृदय की आवाज धीमी-धीमी, धीमी-धीमी पड़ती जाती है। और मन का शोरगुल इतना है कि वह आवाज सुनाई नहीं पड़ती। थोड़ा मन विदा हो, तुम्हारी थोड़ी दूरी बढ़े, तो पहली दफे पता तुम्हें चलेगा कि तुम्हारे भीतर हृदय भी है। और हृदय यानी एक अलग ही लोक; हृदय यानी एक नया ही आयाम; जीवन को जानने-पहचानने की एक नई कीमिया। तुम नए ही हो जाओगे जब तुम हृदय से देखोगे। वही चीजें जो तुमने मन से देखी थीं, वे ही चीजें जब तुम हृदय से देखोगे, तुम पाओगे बात ही बदल गई।
अगर तुम मन से परमात्मा को देखोगे तो पत्थर से ज्यादा दिखाई नहीं पड़ेगा। अगर हृदय से तुम पत्थर को देखोगे तो परमात्मा से अन्यथा नहीं दिखाई पड़ेगा। जिन्होंने पत्थर की मूर्तियां बनाई हैं परमात्मा की, उन्होंने बनाई होंगी हृदय से--उन्हें परमात्मा दिखाई पड़ा। तुम भी जाते हो उसी मंदिर में, तुम्हें पत्थर दिखाई पड़ता है।
पत्थर की मूर्तियां बनाने का बड़ा राज है। राज यही है कि अगर हृदय की आंख हो, तो पत्थर दिखाई पड़ता ही नहीं; पत्थर रूपांतरित हो जाता है। पत्थर एक ऐसे अलौकिक रूप से आविष्ट हो जाता है कि कबीर ने कहा है, "महिमा कही न

जाए!" पत्थर तो तिरोहित हो जाता है; पत्थर से प्रगट हो जाता है परमात्मा।
क्योंकि वह सब जगह भरा है, जगह-जगह छिपा है--जरा खोदने की बात है। जैसे पानी जगह-जगह छिपा है, जरा खोदा कि कुआं बन गया। लेकिन वह खुदाई हो सकती है हृदय के उपकरणों से।
हृदय जोड़ता है, मन तोड़ता है। मन खंड-खंड करता है, हृदय अखंड करता है।
मन का सूत्र हैः विश्लेषण--एनालिसिस; हृदय का सूत्र हैः संश्लेषण-- सिन्थीसिस। जहां चीजें खंड-खंड हैं, हृदय वहां अखंड देखता है; और जहां चीजें अखंड हैं, वहां मन खंड-खंड देखता है। हृदय जब परिपूर्ण रूप से सक्रिय होता है तो सारा अस्तित्व एक हो जाता है।
कबीर कहते हैं, पाया तो तुझसे कुछ भी नहीं। "फूटे नैन, हिरदै नहिं सूझैप्--आंख फोड़ दी तूने, दृष्टि मिटा दी तूने, और हृदय की सारी सूझ खो गई। प्रेम के पंख काट डाले तूने, प्रार्थना का उपाय न छोड़ा--यही तेरी उपलब्धि है। "मति एकै नहिं जानीप्--और प्रज्ञा की एक किरण तूने नहीं जानी है, और न तूने जानने दी।
मति का अर्थ हैः प्रज्ञा, परम ज्ञान, उसकी झलक। मन में बहुत ज्ञान इकट्ठा कर लिया है; लेकिन उस ज्ञान में मति की जरा भी झलक नहीं है। बहुत जानता है मन, और कुछ भी नहीं जानता। बड़ा संग्रह है ज्ञान का--शास्त्र, शब्द, सिद्धांत, लेकिन प्रतीति का एक कण भी नहीं है। और प्रतीति ही एक मात्र प्रज्ञा है। अपना ही अनुभव एक मात्र ज्ञान है। तो मन तोते की तरह हैः रटन लगाए रखता है, दोहराता रहता है--बासा, उधार।
कबीर कहते हैं, "मति एकै नहिं जानी।" इसके दो अर्थ हो सकते हैं कि मति
की एक भी किरण भी न जानी; इसका एक अर्थ यह भी हो सकता है कि उस एक के संबंध में कुछ भी न जाना; बहुत के संबंध में जान लिया और एक के संबंध में कुछ भी नहीं जाना। और एक ही असली जानना है। उपनिषदों ने कहा है, "जो उस एक को जान लेता है, वह सब जान लेता है।
"मति एकै नहिं जानी।
"माया मोह ममता सूं बांध्यो, बूड़ि मुवौ बिन पानी।" इतनी ही तेरी कुशलता है कि--"माया मोह ममता सूं बांध्योप्--स्वप्नों से बांध दिया तूने, सत्य से तोड़ दिया; मोह से बांध दिया तूने, ममता से बांध दिया; अहंकार से-- मैं और मेरा! सपने तूने संजो दिए। झूठा एक जगत निर्मित कर दिया चारों तरफ। और एक ऐसी स्थिति बना दीः कहते हैं, कहावत है कि "चुल्लू भर पानी में डूब मरोप्--कहते हैं उस आदमी से जिसको अब कोई बचने की जगह न रही, जिसने ऐसा अपराध किया है जीवन के साथ, जिसने ऐसा पाप किया है जीवन के साथ कि वह चेहरा दिखाने योग्य न रहा, तो उससे हम कहते हैं, डूब मरो चुल्लू भर पानी में। चुल्लू भर पानी में क्यों? क्योंकि तुम इतने क्षुद्र हो गए कि चुल्लू भर पानी काफी होगा। चुल्लू भर पानी तुम्हारे लिए सागर जैसा होगा--डूब मरो। तुम इतने क्षुद्र हो गए, यह मतलब है। इतने छोटे हो गए तुम कि अब तुम्हें कोई नदी, कोई सरोवर, सागर डूब मरने के लिए नहीं चाहिए; अपने ही चुल्लू भर पानी में डूब सकते हो।
कबीर कहते हैं, लेकिन तेरी कृपा से ऐसी स्थिति आ गई कि "बूड़ि मुवौ बिन पानीप्--बिना ही पानी के डूब मरो; चुल्लूभर की भी कोई जरूरत नहीं है, पानी की जरूरत ही नहीं है, बस डूब मरो। तूने इतना क्षुद्र बना दिया, तूने इतना छोटा बना दिया--और विराट को, जिसकी कोई सीमा न थी, जिसका कहीं अंत न आता था! असीम को तूने ऐसी गति में डाल दिया कि अब बिना ही पानी के मरने की अवस्था है। "बूड़ि मुवौ बिन पानी!
"बारू के घरवा में बैठोप्--अकड़ किस बात की है तेरी?
यह वार्तालाप बड़ा प्यारा है! "बारू के घरवा में बैठोप्--बैठा है रेत
के घर में--जो अब गिरा, तब गिरा; हवा का जरा-सा झोंका, और सम्हाले न सम्हलेगा।
शरीर की अवस्था ऐसी तो हैः कब गिर जाएगा क्या पता! अभी है, क्षणभर बाद
न हो जाए। एक क्षण का भी तो भरोसा नहीं है। एक पल के लिए तो हम आश्वस्त नहीं हो सकते कि यह कल भी बचेगा।
महाभारत में छोटी-सी कथा हैः एक भिखारी ने भीख मांगी। युधिस्रिर कुछ काम में लगे थे; कहा, कल आ जाना। भीम पास में बैठा था। उसने उठाया एक ढोल और

जोर से बजाया, और भागा गांव की तरफ। युधिस्रिर ने कहा, "तू यह क्या कर रहा है? क्या हो गया है?" उसने कहा, "मैं गांव में खबर कर आऊं कि मेरे भाई ने समय को जीत लिया; कल का आश्वासन दिया है। भिखारी से कहा है कि आ जाना। इसका मतलब कि कल हम यहां रहेंगे। इसका मतलब कि कल तू भी रहेगा। मेरे भाई ने काल को जीत लिया है--इतनी बड़ी घटना घट गई है, तो मैं जरा ढोल पीटकर गांव में खबर कर आऊं।
युधिस्रिर को बात समझ में आ गई। दौड़े, भिखारी को वापस ले आए और कहा, "क्षमा कर। कल का क्या भरोसा, तू अभी ले जा।
"बारू के घरवा में बैठो, चेतत नहीं अयांना।" अब तक चेतता नहीं। और ऐसा
भी नहीं कि कोई पहली दफा बैठा, बहुत बार बैठ चुका बालू के घर में, और बहुत बार घर गिर गया; मगर फिर-फिर बना लेता है।
"चेतत नहीं अयांना... ।" अयांना का अर्थ हैः अब तक, अभी तक। अभी तक चेतता नहीं!
"कहै कबीर एक राम भगति बिन, बूड़े बहुत सयांना।।" और सयाने होने की अकड़
मत कर, क्योंकि एक "राम भगति बिन बूड़े बहुत सयांनाप्--बड़े-बड़े ज्ञानी डूब गए हैं। सिर्फ एक ही सहारा है जो बचाता है, वह है परमात्मा से प्रेम, राम-भक्ति।
अकड़ मत रख कि तू बहुत जानता है। ऐसे जाननेवाले बहुत डूब मरे हैं। यह बड़ा प्यारा वचन है। बूड़े बहुत सयांना!" मन बड़ा सयाना है; हर चीज में सलाह देने को तैयार है--वहां भी जहां कुछ जानता नहीं; हर बात में गुरु बनने की तैयारी है। मन शिष्य नहीं बनना चाहता, गुरु बनने को सदा तैयार है। कूड़ा- कर्कट इकट्ठा कर लेता है यहां-वहां से।
तुम जरा अपने मन को देखो। जो भी तुम जानते हो, वह कहीं न कहीं से इकट्ठा कर लिया है--सब उधार, सब बासा, बड़ा सड़ा, जूठन फेंकी लोगों की--उसको इकट्ठा किए बड़े अकड़े और सयाने बने बैठे हैं।
ऐसा हुआ कि सूफी फकीर जुन्नैद एक गांव से गुजरता था। वह बड़ा पंडित था, बड़ा जानकार था। और जानकारों की बड़ी मुसीबत है कि वे जानते हैं तो दूसरे को जनाना चाहते हैं कि कोई मिल जाए जिसका सिखा दें। ऐसा हुआ उस दिन कोई न मिला। वह धार्मिक गांव रहा होगा। कई को पकड़ने की कोशिश की जुन्नैद ने लेकिन लोगों ने कहा कि अभी जरा दूसरे काम से जा रहे हैं, जब फुर्सत होगी तब आएंगे। जो लोग जानते रहे होंगे इस पंडित को, कोई न मिला तो एक छोटा बच्चा मिल गया। वह एक दिया लिए जा रहा था एक मजार पर चढ़ाने को, तो जुन्नैद ने उसको कहा, "यह दिया तूने ही जलाया?" उस लड़के ने कहा, "निश्चित मैंने ही जलाया।" तो तू क्या यह बता सकता है कि ज्योति जब तूने जलाई थी तो कहां थी? और जब तूने जलाई तो कहां से आई?--किस दिशा से?" उस लड़के ने कहा कि देखो! फूंक मारकर उसने दिया बुझा दिया और कहा कि "अब ज्योति कहां गई, आप ही बता दो, आप के सामने ही गई--तब मैं बता दूंगा कहां से आई।
जुन्नैद को पहली दफा होश आया कि बड़ी-बड़ी ज्ञान की मैं बातें करता हूं
कि यह संसार कहां से आया, किसने बनाया, और यह ज्योति सामने ही मेरी आंखों के लीन हो गई और मैं नहीं बता सकता कि कहां गई! उसने झुककर पैर छुए उस बच्चे के। और जुन्नैद ने लिखा है कि उसी दिन मैंने पंडित होने का त्याग कर लिया। ज्ञान कचरा है। क्या बकवास मैंने भी लगा रखी है? छोटी-छोटी बात का पता नहीं, बड़ी-बड़ी बात कर रहा हूं! अपना पता नहीं, संसार की बात कर रहा हूं। खुद की कोई खबर नहीं, खुदा की चर्चा चला रहा हूं! जुन्नैद उसी दिन परिवर्तित हो गया।
जुन्नैद ने कहा, अब हम सिखाने नहीं निकलते, अब सीखने निकलते हैं। वह शिष्य हो रहा। वह बड़ा विनम्र आदमी हो गया। उसकी विनम्रता अनूठी थी। उसने हर किसी से सीखा। और जब वह ज्ञान को उपलब्ध हुआ तो उससे लोगों ने पूछा, तो उसने इस बच्चे को अपना पहला गुरु बताया। दूसरा गुरु एक चोर को बताया। लोगों ने कहा, चोर और गुरु!
उसने कहा, हां, एक गांव में मैं देर से पहुंचा। सारा गांव तो सोया था। धर्मशाला तो बंद हो चुकी थी, एक चोर एक अंधेरी गली में मुझे मिल गया। उसने कहा कि देखो, अब इस रात के अंधेरे में तुम्हें कहीं कोई जगह न मिलेगी, विश्राम न मिलेगा। मेरे घर तुम आ सकते हो, लेकिन मैं तुम्हें बता दूं,

क्योंकि तुम फकीर हो, मैं चोर हूं--अपना धंधा बिल्कुल अलग-अलग, और फकीर से झूठ क्या कहना! सच-सच बता देता हूं, नहीं तो कहीं पीछे तुम पछताओगे कि कहां चोर के घर में रुक गए। मुझे कोई ऐतराज नहीं है, और मुझे डर नहीं है कि तुम मुझे बदल लोगे, मैं पक्का चोर हूं, तुम्हें अगर डर हो कि मैं तुम्हें बदल लूंगा, तुम कहीं और ठहर जाओ।
जुन्नैद ने कहा है कि मैंने सोचा, मन में मेरे भय तो आया था, चोर पहचान गया। मन में एक बात तो आई थी कि चोर के घर रुकना?--ठीक नहीं है, क्योंकि सत्संग सोचकर करना चाहिए। लेकिन जब चोर ने कहा कि "मैं पक्का चोर हूं, तुम मुझे न बदल पाओगे। इसलिए मुझे उसकी कोई चिंता नहीं है। हां तुम्हें अगर डर है कि मेरे पास रहकर मेरा रंग तुम्हें लग जाएगा। तुम अगर कच्चे फकीर हो तो कहीं भी ठहर जाओ। तुम्हारी मर्जी।" चोट लग गई। क्योंकि उसने कहा, "कच्चे फकीर!
जुन्नैद रुक गया और फिर महीने भर रुका रहा, चोर अनोखा आदमी था। रोज सांझ चोरी के लिए निकलता, रोज बड़ी आशा से भरा हुआ निकलता और जुन्नैद से बड़ी बातें करता कि आज महल में ही प्रवेश करने वाला हूं, तो देखना कि तिजोरी ही उठा लाऊंगा। और रात जब लौटता तब भी उदास न दिखाई पड़ता। दरवाजा जब जुन्नैद खोलता और पूछता कि लाए? तो वह कहता आज तो नहीं लगा दांव, लेकिन कल पक्का है। ऐसे महीना बीत गया। दांव लगा ही नहीं। मगर उस आदमी की आंख की चमक न गई। उसकी आशा न खोई। उसने कभी भी निराशा प्रगट न की। वह हताश न हुआ। फिर जुन्नैद उसे छोड़कर चला गया। बाद में जुन्नैद जब परमात्मा की खोज में डूबा और रोज दिन बीतने लगे और परमात्मा की कोई झलक न मिली तो एक दिन उसने तय कर लिया कि बस अब बहुत हो गया, अगर आज मिलता है परमात्मा तो ठीक, अगर न मिलता तो समझ लेंगे, है ही नहीं। तभी उसे चोर की याद आई। और उसने कहा कि कच्चे फकीर! और मैं पक्का चोर!" और वह चोर साधारण संपिŸा खोज रहा है, लेकिन निराश नहीं है। और मैं परम संपिŸा को खोजने निकला हूं और इतनी जल्दी हताश हो गया! फिर जाग गया, और फिर उस चोर ने मेरा साथ दिया, उसकी स्मृति ने मेरा साथ दिया। और जब तक मैंने परमात्मा न पा लिया तब तक मैं चोर के सहारे ही चला। इसलिए दूसरा मेरा गुरु वह चोर।" ऐसे उसने नौ गुरु गिनाए। उसने सबसे सीखा। जब तुम मन का भरोसा किए हो, और जो जानता ही है उसे जनाना मुश्किल। जो जागा हुआ पड़ा ही हुआ है। वह जानता है ही, और जो जानता ही है उसे जनाना मुश्किल। जो जागा हुआ पड़ा हो और सोने का बहाना कर रहा हो, उसे जगाना मुश्किल है। जिसको पहले से ही यह भ्रांति हो कि हम जानते हैं उसको जनाओगे कैसे? वह पहले ही अपने ज्ञान से भरा है और ज्ञान कौड़ी का नहीं है; सब उधार है; तोता-रटंत है; सीख लिया है; कहीं प्राण उससे भीगे नहीं है। बाहर-बाहर है ज्ञान। अंतस अछूता रह गया है। भीतर गहन अज्ञान है, अंधेरा है। रोशनी उधार है और बाहर है। रोशनी किसी और की, तुम्हारी रोशनी नहीं हो सकती। दीया किसी और का तुम्हारे काम नहीं पड़ सकता।
बुद्ध ने अंतिम क्षणों में कहा है, "अप्प दीपो भव!" अपने दीये हो जाओ।
कब तक शास्त्रों के दीये लिए फिरोगे। वे तो बुझे दीये हैं। शब्दों के दीये कब तक काम आएंगे।
"कहै कबीर एक राम भगति बिनप् बूड़े बहुत सयाना।" कहते हैं, "चलत कत टेढ़ौ-टेढ़ौ रे।" और तेरे जैसे बहुत ज्ञानी डूब गए। अकड़ मत! यह झंडा मत उठा। तिरछा-तिरछा मत चल। तेरे सयानेपन में कुछ सार नहीं है। बचे तो केवल वे--"कहै कबीर एक राम भगति बिन, बूड़े बहुत सयाना। --बचे तो केवल वे, जिन्होंने राम का सहारा ले लिया।
राम के सहारे का अर्थ हैः जिन्होंने एक का सहारा ले लिया और वह एक तुम्हारे भीतर छुपा है। जिन्होंने विचारों से दृष्टि हटा ली और चैतन्य की तरफ उन्मुख हो गए, जो स्रोत की तरफ लौट गए। जो गंगोत्री में पहुंच गए--जहां से सब आया है, जहां से सब फैलाव हुआ है; जो उस मूल उदगम पर पहुंच गए, और वह उदगम तुम्हारे भीतर है--"कस्तूरी कुंडल बसै।"

आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
चौदहवां प्रवचन

विराम है द्वार राम का

सूत्र
घर घर दीपक बरै, लखै नहिं अंध है।
लखत लखत लखि परै, कटै जमफंद है।।
कहन सुनन कछु नाहिं, नहिं कछु करन है।
जीते-जी मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है।।
जोगी पड़े वियोग, कहैं घर दूर है।
पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर है।।
बाह्मन दिच्छा देत सो, घर घर घालिहै।
मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहै।।
ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है।
नहीं जोग नहिं जाप, पुन्न नहिं पाप है।।

प्रभु तो पास है। पास कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि पास से पास में भी थोड़ी दूरी बनी रहती है। इसलिए यही उचित है कहना कि प्रभु दूर नहीं है।
वस्तुतः तो प्रभु तुम्हारा आत्यंतिक होना है।
जैसे, कली और फूल में क्या फासला है? कली होने वाला फूल है। अभी कली है, अभी फूल हो जाएगी। कली में फूल छिपा है; फूल में कली छिपी है। कली और फूल किसी एक ही घटना के दो कदम हैं। जो कली में छिपा है वही फूल में प्रगट हो जाएगा। जो कली में बंद है वही फूल में खुल जाएगा।
ऐसे ही तुम्हारा और प्रभु का नाता है। तुम अगर कली हो तो वह फूल है। तुम अगर बीज हो तो वह वृक्ष है। तुम्हारा होना और उसका होना दो बातें नहीं, किसी एक ही बात के दो चरण हैं।
इसे बहुत ठीक से समझ लेना जरूरी है। यह समझ में इतना गहरा बैठ जाए, इतना गहरे बैठे जाए कि तुम्हारे रोएं-रोएं में यह प्रतीति होने लगे, तो प्रभु को पाने में फिर जरा भी देर नहीं। अगर यह प्रतीति समग्र हो जाए; अगर श्वांस-श्वांस, धड़कन-धड़कन यह अहसास कर ले कि मैं कली हूं, वह फूल है; यह धारणा इतनी सघन हो जाए कि इससे भिन्न धारणा की कोई जगह ही तुम्हारे भीतर न बचे--तो इसी क्षण कली फूल हो जाए; इसी क्षण बीज टूट जाए, अंकुर निकल आए, क्षण की भी देरी न हो।
लेकिन यह प्रतीति आवश्यक है। और इस प्रतीति के होने में सबसे बड़ी बाधा तुम्हारा मन है। तुम्हारा मन कहेगा, यह हो ही कैसे सकता है? और बड़ी से बड़ी बाधा तुम्हारे आसपास तुम्हें घेरे हुए पंडितों का जाल है। वे भी कहेंगे, यह कैसे हो सकता है? उन्होंने तो इससे उलटी ही बात तुम्हें सिखाई है। उन्होंने तुमसे यह नहीं कहा है कि परमात्मा तुम्हारे निकट है; उन्होंने तो तुमसे यही कहा है कि तुमसे ज्यादा निंदनीय और कोई भी नहीं; तुम ऐसे निंदित हो कि परमात्मा तुम्हारे निकट हो ही कैसे सकता है? उन्होंने तो सिर्फ तुम्हें नरक का आभास दिलाया है, स्वर्ग का नहीं। और हजारों-हजारों साल के शिक्षण-दीक्षण ने तुम्हारे मन में यह बात गहरे में जमा दी है कि तुम सिर्फ निंदा के पात्र हो। नरक के अतिरिक्त तुम्हें अपने होने के लिए कोई और दूसरा उपाय दिखाई नहीं पड़ता। और तुम जितना अपने को निंदित समझोगे, उतना ही परमात्मा दूर है; कली खिल नहीं सकती। तुम्हीं कली को न खिलने दोगे। तुम्हारा निंदा का भाव ही कली के खिलने में सबसे बड़ी बाधा बन जाएगी। और उन्होंने कैसी सरल-सीधी बातों को निंदित कर दिया है कि बड़ी कठिनाई है।
कल एक युवक आया। युवक है, तो स्वभावतः वासना जगेगी, कुछ आश्चर्यजनक नहीं है, न जगे तो ही आश्चर्यजनक है। युवक हो और अगर वासना न जगे तो उसका अर्थ यही हुआ कि कहीं न कहीं शरीर में, मन में कुछ कमी रह गई, कहीं कोई बात चूक गई। वासना तो स्वाभाविक है। लेकिन वह युवक अपने को बहुत निंदित और

दलित मान रहा है, आत्मग्लानि से भरा है। वह कहता है, "मेरे मन में बड़े पाप उठ रहे हैं। कैसे पाप से छुटकारा हो?
जिस चीज को तुमने पाप कह दिया, उससे छुटकारा कभी भी न हो सकेगा। क्योंकि जिस चीज को तुमने पाप कह दिया, उतने ही में मामला समाप्त नहीं हो गया; उसके कारण तुम पापी हो गए। और पापी परमात्मा के निकट कैसे हो सकेगा? थोड़ा-सा भोजन में रस है, तो पाप। थोड़ा कपड़ा पहनने में रस हो, तो पाप। थोड़ी ज्यादा देर सो जाते हो सुबह, तो पाप। सब तरफ से पाप खड़ा कर दिया है निंदकों ने। जहर फैलानेवालों का बड़ा लंबा इतिहास है। उन्होंने सब तरफ तुम्हें निंदित कर दिया है। उसके पीछे कारण हैं।
तुम जितने निंदित हो जाओ, उतने ही पंडित पूजित हो जाते हैं। यह गणित है। तुम जितने निंदित हो जाओ, उतना ही पंडित पूजित हो जाता है। क्योंकि वह सुबह पांच बजे उठता है और तुम नहीं उठ पाते। वह ब्रह्ममुहूर्त में उठता है। वह उपवास करता है, तुम नहीं कर पाते। त्यागी त्याग करता है, तुम नहीं कर पाते। लेकिन तुम जानकर चकित होओगे कि सौ में से निन्यानबे त्यागी इसलिए त्याग कर रहे हैं कि उनका त्याग एक अस्त्र है, जिसमें वे तुम्हें निंदित करते हैं। उनका त्याग उनके अहंकार की एक व्यवस्था है। उपवास में मजा उन्हें भी नहीं आता, लेकिन उपवास के कारण भोजन करने वालों को नरक में भेजने की जो सुविधा उनके मन में आ जाती है, वही उपवास का रस है।
उपवास में किसको रस आएगा? भूख तो पीड़ा देगी। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। लेकिन अगर मेरे एक दिन उपवास करने से लाखों लोगों की तरफ मैं निंदा से देखने का मौका पा सकता हूं, तो रस आ जाएगा।
सौ में से निन्यानबे ब्रह्मचारी सिर्फ इसलिए ब्रह्मचारी हैं कि उसके कारण तुम सभी पापी हो जाते हो।
मेरे एक मित्र हैं। उनके पास बड़ा मकान है। उस नगर में उससे बड़ा मकान किसी के पास नहीं था। फिर एक पड़ोसी ने और बड़ा मकान बना लिया। उनका मकान उतना का उतना ही रहा, कोई र Ÿाभर फर्क न आया; पर वे उदास और दुखी हो गए। उनके घर में मैं मेहमान था, तो वे बड़े चिंतित थे। मैंने कहा, "मेरी समझ में नहीं आता। तुम्हारा मकान ठीक वैसा का वैसा है।" उन्होंने कहा, "कैसे वैसा का वैसा रहेगा? पड़ोस में देखते नहीं, बड़ा मकान खड़ा हो गया? जब तक इससे बड़ा मकान मेरा न हो जाए, तब तक चिŸा में अब शांति नहीं।
दूसरे को निंदित करना हो तो एक ही उपाय है कि तुम जिस बात की निंदा करते हो, उसको स्वयं न करो। और सरल-से उपाय हैं कि कोई आदमी विवाह नहीं करता तो गैर-विवाहित रहकर विवाहित लोगों की निंदा करता है। सारी दुनिया विवाहित लोगों की निंदित हो जाती है। उसके अहंकार की कोई सीमा नहीं रहती। अब यह युवक, जो मेरे पास कल आया, वह कहता है, "बड़े पाप में पड़ा हूं, इससे छुटकारा दिलाएं।
पाप कहां है? जो स्वाभाविक है उसमें कोई पाप नहीं। और ध्यान रखने की बात तो यह है कि अगर तुमने पाप समझा तो कभी छूट न पाओगे। अगर छूटना चाहा तो कभी छूट न पाओगे। और अगर तुमने प्रभु की अनुकंपा समझी इसे भी, तो इसके द्वारा भी तुम प्रभु को पास ले आए, दूर न किया। जरा सूक्ष्म है, ठीक से समझ लेना। अगर तुमने कहा पाप है, तो कितनी बातें घट रही हैं, तुम्हें पता नहीं है। किसी चीज को पाप कहा तो तुम पापी हो गए। किसी चीज को पाप कहा तो पूरी प्रकृति पापी हो गई, क्योंकि उसी प्रकृति से वह पाप जन्मा है। और किसी चीज को अगर पाप कहा तो बहुत गौर से देखना, परमात्मा भी पापी हो गया, क्योंकि उसके बिना इस जगत में कुछ भी नहीं घट सकता है। वही बनाता है, और पाप बनाता है--पापी हो गया।
जार्ज गुरजिएफ कहा करता था कि सभी धर्म परमात्मा के खिलाफ हैं। और यह बात सच है। क्योंकि, जितनी चीजों को तुम पाप कह रहे हो, उतने ही अंशों में परमात्मा की भी निंदा कर रहे हो।
अगर तुमने एक चीज की भी निंदा की तो तुमने उसके साथ पूरे अस्तित्व को निंदित कर दिया। और यह सब उसी का खेल है। ये सब उसी के रूप हैं। वह भी निंदित हो गया। फासला बहुत भारी हो गया। अब तुम कभी न पहुंच पाओगे। और अगर तुमने अपनी वासना को भी उसका ही खेल समझा... उसने ही दिया है तो जरूर कोई राज होगा। शायद यही राज हो कि वासना में तुम्हें फेंके और तुम न फिंको;

वासना में तुम्हें धकाए और तुम उबर जाओ; वासना में तुम्हें उतारे और तुम अतिक्रमण कर जाओ--यही राज होगा।
लेकिन तब यह पाप नहीं है, तब यह शिक्षण हुआ। तब यह पाप नहीं है, तब यह परमात्मा की अनुकंपा हुई। जैसे कि सोने को आग में फेंको तो निखरकर वापस आता है, ऐसे परमात्मा तुम्हें संसार में फेंकता है कि तुम निखरकर वापस आ जाओ। आग की निंदा मत करो। परमात्मा की अनुकंपा को खोजो। तत्क्षण तुम पाओगे, वह पास है--कली खुलने लगी!
बुरे से बुरे में भी उसी का हाथ जिसने देख लिया, वही साधु है। लेकिन जिनको तुम साधु कहते हो, वे अच्छे से अच्छे में बुराई खोज लेते हैं।
एक साधु मुझे मिलने आए। वे थोड़े चकित हुए। जिस मकान में मैं रहता था
उन दिनों, बड़ा बगीचा था उसके आसपास, बड़े फूल खिले थे। उन्होंने कहा, "आप? -- और मैं पौधों को पानी दे रहा था--"आप और फूलों में आपका रस है?
फूल में तो कोई पाप नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन उन्होंने कहा, "आप, और फूलों में रस? आप जैसे व्यक्ति को तो सभी राग-रंग से विमुक्त होना चाहिए। फूल भी राग-रंग हैं! है तो। अगर बहुत गौर से देखो तो फूल भी कामवासना
का ही हिस्सा है।
अगर तुम वैज्ञानिक से पूछो तो वह बताएगा कि फूल खिलता है, तो फूल में
जो मध्य में छिपे हुए कण हैं, वे कण उसके वीर्यकण हैं। मधुमक्खियों, मक्खियों और तितलियों के पंखों में लगाकर उन कणों को वह दूसरे फूलों के पास भेज रहा है। वह फूल खुद तो नहीं चल सकता, इसलिए मादा को नहीं खोज सकता, तो उसने एक तरकीब निकाल ली है। वह तरकीब बड़ी कुशल हैः वह मधुमक्खी को आकर्षित कर लेता है। मधुमक्खी उस पर बैठती है तो उसके पैरों में उसके पराग के कण लग जाते हैं। मधुमक्खी के माध्यम से वह अपने वीर्यकण भेज रहा है। मधुमक्खी फिर मादा फूल पर बैठेगी और वीर्यकण छूट जाएंगे--दो का मिलन हो जाएगा।
गौर से देखो तो फूल भी कामवासना है। अगर गौर से देखो इस संसार में तो तुम्हें कामवासना के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई न पड़ेगा। सब जगह नर-मादा का खेल है। इसलिए जिन्होंने धर्म की बड़ी गहरी खोज की है, जैसे कि हिंदुओं ने बड़ी गहरी खोज की है, तो हिंदुओं ने अपने सभी परमात्मा के रूप के साथ नारी रूप को संयुक्त रखा है। तो राम के साथ सीता है; साथ ही नहीं, राम से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। इसलिए हिंदू सीता-राम कहते हैं, राम-सीता नहीं कहते; सीता को पहले रखते हैं। वे राधा-कृष्ण कहते हैं; राधा को पहले रखते हैं।
जैनों को यह बात बहुत अखरती रही है कि तुम अपने भगवान के साथ स्त्री
को क्यों खड़ा किए हो?
महावीर अकेले खड़े हैं। महावीर ने विवाह किया था; लड़की हुई थी उनके; दामाद था। लेकिन महावीर का मानने वाला जो कट्टरपंथी संप्रदाय है--दिगंबर, वह कहता है, "उन्होंने कभी विवाह किया ही नहीं। महावीर और विवाह करें? पाप! यह असंभव है! यह कपोलकल्पित है। यह अफवाह है, विरोधियों की उड़ाई हुई।
राम और सीता को जैन नमस्कार भी नहीं कर सकता, क्योंकि कठिनाई सीता की वजह से है। राम को कोई अड़चन नहीं है; कर लेता, लेकिन यह सीता माता जो साथ खड़ी है, वह बर्दाश्त के बाहर है।
लेकिन पूरे जीवन का खेल नर और मादा-शक्ति का खेल है। सारी प्रकृति नर
और मादा-शक्ति का मिलन है।
तो क्यों तुम पाप समझते हो? उस युवक को मैंने कहा, "छोड़ो यह ख्याल, अन्यथा मरोगे, मुश्किल में पड़ोगे। पाप की तरह देखते क्यों हो? जो है उसके ऊपर तुम अपनी व्याख्या क्यों आरोपित करते हो कि यह पाप है? फिर पाप के कारण, पापी हो गए। फिर अपराध का भाव पैदा होता है, गिल्ट पैदा होती है। मनसविद कहते हैं कि समस्त धर्मों ने आदमी का शोषण किया है--एक तरकीब से। वह तरकीब है कि आदमी को अपराधी सिद्ध कर दिया है। अपराधी आदमी डरता है। डरा हुआ आदमी घुटने टेककर प्रार्थना करता है। अपराधी आदमी डरता है, यज्ञ-हवन करता है। अपराधी आदमी डरता है; पंडित को, पुजारी को दान देता है। अपराधी आदमी डरता है; धर्मशाला, मंदिर बनाता है। वह जो अपराध उसके भीतर है कि इतने पाप किए हैं, इनके उ Ÿार में कुछ तो पुण्य कर लूं, नहीं तो परमात्मा

के सामने क्या कहूंगा? बड़ी मुश्किल में पड़ जाऊंगा। पाप ही पाप है, और दूसरे पलड़े पर पुण्य बिल्कुल नहीं है--तो थोड़ा पुण्य कर लूं।
इसलिए पहले धर्मगुरु समझाता है कि तुम कितने पापी हो; फिर समझाता है,
अब कुछ करो, इन पापों को मिटाओ। इससे सारा धर्म का शोषण चलता है।
वस्तुतः जिन्होंने धर्म को जाना है--बुद्ध पुरुषों ने--उन्होंने तुम्हें पापी नहीं कहा। उन्होंने तो कहा कि तुम ब्रह्म-स्वरूप हो। उपनिषदों ने तुम्हें पापी नहीं कहा। उन्होंने तो कहा कि तुम परमात्मा हो। उन्होंने तो कहा कि तुम्हारे भीतर वही छिपा है जो आत्यंतिक है। तुम खालिस सोना हो। थोड़ी मिट्टी यहां-वहां से लग भी गई होगी तो क्या घबड़ा रहे हो? क्या डर का कारण है?
मिट्टी कितनी ही तुमसे लग जाए, तुम मिट्टी नहीं हो सकते। तुम गहनतम नरक में भी चले जाओ, तो तुम्हारी अंतरज्योति न बुझेगी, जलती ही रहेगी। महापाप से घिर जाओ, तो भी तुम्हारे उद्धार का उपाय समाप्त नहीं हो गया है। तुम एक क्षण में वहां से छलांग लगा सकते हो। तुम अपने को खो न सकोगे। तुम्हारे होने में ही परमात्मा छिपा है। तुम कितने ही उससे दूर निकल जाओ, जरा तुम मुड़ोगे, और उसे तुम पीछे खड़ा हुआ पाओगे। ऐसे ही जैसे कि कोई सूरज की तरफ पीठ करके चले, चलता रहे, हजारों मील चलता रहे--क्या तुम सोचते हो, सूरज उससे हजारों मील दूर हो जाता है? जिस क्षण वह लौटकर देखेगा, सूरज को पीछे पाएगा। सूरज तो फिर भी दूर है; जिस सूरज की कबीर बात कर रहे हैं, जिस सूरज की मैं बात कर रहा हूं--तुम कहीं भी भागोगे, तुम उससे भाग न सकोगे, क्योंकि तुम भी वही हो।
सबसे बड़ी उदघोषणा जो तुम्हें अपने जीवन में कर लेनी है, वह यह है कि मेरे भीतर छिपा परमात्मा है। इस उदघोषणा के साथ ही तुम्हारे पाप धुल जाएंगे। इस उदघोषणा के साथ ही कांटे झड़ जाएंगे। इस उदघोषणा के साथ ही तुम पाओगे कि अंधेरा खुद तुमसे डरने लगा। और मजा तो तभी है जब पाप तुमसे डरे। तुम पाप से डरो, मजा नहीं है--जीवन रुग्ण हो गया। मजा तो तभी है, जब तुम जहां जाओ, वहां रोशनी पहुंच जाए। तुम अंधेरे से भागो, यह बात शोभा नहीं देती। इसलिए कबीर के ये वचन तुम्हें बड़े क्रांतिकारी मालूम पड़ेंगे, हैं भी; जलते हुए अंगारे हैं। जिस हृदय को इन्होंने छू लिया, उस हृदय को रूपांतरित कर दिया। इन वचनों से जो बच गया, वह अभागा है।
एक-एक शब्द को गौर से सुनना।
"घर घर दीपक बरै, लखै नहिं अंध है।
कबीर कह रहे हैं, घर-घर में जल रहा है उसका दीया। घर-घर में उसी का नूर है। घर-घर यानी शरीर-शरीर, जल रही है उसी की ज्योति। बड़ी मजे की बात है, फिर भी तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती! कैसे अंधे हो।
और यह अंधापन भी साधारण अंधापन नहीं है। यह अंधापन ऐसा नहीं है कि आंख तुम्हारे पास न हो। तुम बने हुए अंधे हो। आंख तुम्हारे पास है, और बंद किए बैठे हो। अंधे भी होते तो क्षमा के योग्य थे। क्या करोगे? आंख ही नहीं होगी तो तुम भी क्या करोगे? पर आंख है। भीतर की आंख कभी भी अंधी नहीं होती। क्योंकि भीतर आंख का अर्थ केवल होता है, होश की क्षमता। वह तो सभी में है। चैतन्य तो सभी में है। वही भीतर की आंख है, लेकिन तुम बंद किए बैठे हो। न केवल तुम बंद किए बैठे हो, बल्कि तुमने बड़ी श्रद्धा कर ली है अपने अंधेपन पर।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मेरे पास आया। एक तो चश्मा वह लगाए हुए था,
दो हाथ में लिए हुए था। मैंने पूछा कि मामला क्या है, इतने चश्मे? उसने कहा कि एक पास देखने के लिए, एक दूर देखने के लिए और तीसरा दो को खोजने के लिए।
मैंने कहा, "तुम एक काम करोः एक चश्मा और खरीद लो; तीन कम हैं।
उसने कहा, "चौथा किसलिए?
मैंने कहा, "तुम सोचकर आओ।
रात भर सोचता रहा, सुबह आकर उसने कहा, "बहुत सोचा लेकिन कुछ समझा नहीं।
तीन में बात खतम हो जाती है, चौथे की कुछ समझ में नहीं आती।
मैंने कहा, "भीतर कैसे देखोगे? उसकी तो याद ही नहीं आती। दूर का इंतजाम कर लिया। पास का इंतजाम कर लिया। दोनों चश्मों को खोजने का भी

इंतजाम कर लिया। सब इंतजाम तुमने कर लिया--लेकिन बाहर का। भीतर का भी कुछ ख्याल है?
और भीतर ही जल रही है रोशनी। और जब तक तुम्हें अपने भीतर की रोशनी न दिखाई पड़े, तब तक तुम्हें किसी की भी भीतर की रोशनी न दिखाई पड़ेगी। जब तक तुम अपने को शरीर मानोगे, दूसरे भी तुम्हें शरीर जैसे ही दिखाई पड़ेंगे। क्योंकि दूसरे का बोध तुम्हारे आत्मबोध से ऊपर नहीं जा सकता। जिस दिन तुम्हें भीतर का जलता हुआ प्रकाश दिखाई पड़ेगा, उसी क्षण तुम्हें सभी घर में दीए दिखाई पड़ जाएंगे। ऐसा ही नहीं कि मनुष्यों में, पशुओं में, पक्षियों में, पौधों में भी तुम्हें जलती हुई आंख दिखाई पड़ेगी।
सब रोशन है, सारा जगत रोशन है। यहां रोशनी के सिवाय कुछ है ही नहीं। प्रत्येक चीज रोशनी से बनी है। रोशनी मूल आधार है।
"घर-घर दीपक बरै, लखै नहिं अंध है।" पर बड़े अदभुत अंधे हो तुम कि घर-घर
जो दीया जल रहा है, और दूसरों के घरों में ही नहीं, तुम्हारे घर में भी जो दीया जल रहा है, वह भी तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता।
एक आध्यात्मिक अंधापन है। तुम भीतर देखते ही नहीं। तुम भीतर देखने की कला ही भूल गए हो। तुम इतने समय तक बाहर देखते रहे हो कि तुम्हारी आंखें जड़ हो गई हैं; वे भीतर की तरफ मुड़ती ही नहीं।
पक्षाघात जैसे हो जाता है, पेरेलिसिस जैसे हो जाती है, जैसे एक आदमी बैठा ही रहे वर्षों तक और पैरों को न चलाए--तो फिर न चला सकेगा, फिर पैर जड़ हो जाएंगे, पक्षाघात हो जाएगा।
एक आदमी आंखों को बंद किए बैठा रहे कई वर्षों तक अंधेरे में, तो आंखें फिर रोशनी को देखने में समर्थ न रह जाएंगी। क्योंकि प्रत्येक चीज सक्रिय रहने से सतेज रहती है, निष्क्रिय होने से क्षमता खो देती है।
तुम्हारी भीतर की तरफ देखने की क्षमता जंग खा गई है; तुमने उसका उपयोग
ही नहीं किया। और इसलिए तुम अंधे जैसे मालूम पड़ रहे हो। अंधे तुम हो नहीं। अंधे तुम हो नहीं सकते। और अगर तुम्हें लगता हो कि तुम अंधे हो, और अगर तुमने यह मान लिया कि तुम अंधे हो तो तुम्हारी मान्यता ही तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।
लेकिन बड़े मजे की बात है! लोग आते हैं, वे पूछते हैं कि "ईश्वर कहां है?
आप हमें दिखा दें।" वे यह नहीं पूछते कि क्या हो सकता है, ईश्वर तो हो और हमारे पास देखने की कला न हो। आप हमें देखने की कला सिखा दें; वह यह नहीं पूछते। वे पूछते हैं, "ईश्वर कहां है? अगर है तो दिखा दें।
उन सभी को यही भ्रांति है कि जैसे अगर ईश्वर हो तो तुम्हें दिखाई पड़
ही जाएगा; तुम्हारे देखने की क्षमता की जैसे कोई जरूरत ही नहीं है। जैसे अंधा कहे, प्रकाश को दिखा दें--कैसे दिखाइएगा प्रकाश अंधे को? बहरे को कैसे सुनवाइएगा संगीत? नासापुट जिसके जड़ हो गए हों, उसे कैसे गंध का बोध दिलवाइएगा? सारा जगत भरा हो सुगंध से, पर जिसकी नाक में पक्षाघात लग गया है तो क्या कोई उपाय है? और वैसा आदमी अगर जिद्द कर ले कि जब तक परमात्मा न दिखेगा, तब तक मैं मान न सकूंगा, तो वैसा आदमी सदा के लिए अंधा रह जाएगा। क्योंकि वह यह कह रहा है कि मैं मानूंगा तभी जब दिखाई पड़ जाएगा।
यही श्रद्धा के सूत्र का अर्थ है।
श्रद्धा का अर्थ हैः जिसे मानने के लिए तर्क के पास कोई कारण न हो; जिसे मानना बिल्कुल असंभव मालूम पड़े, जिसे मानना बिल्कुल ही अतक््रय हो-- उसे मान लेना। जो दिखाई न पड़ता हो, जिसका स्पर्श न होता हो, जिसकी गंध न आती हो, और जिसको मानने के लिए कोई भी आधार न हो--उसे मान लेने का नाम है श्रद्धा।
लेकिन श्रद्धा बहुमूल्य सूत्र है। वह अंत नहीं है, शुरूआत है। जिसे तुम मान लेते हो, उसकी खोज की संभावना शुरू हो जाती है। वैज्ञानिक हायपोथिसिस निर्मित करते हैं। श्रद्धा हायपोथिसिस है। हायपोथिसिस का मतलब होता है कि पहले वैज्ञानिक एक सिद्धांत तय करता है, क्योंकि बिना सिद्धांत तय किए तुम जाओगे कहां, खोजोगे कैसे क्या खोजोगे? खोज की शुरूआत ही न हो सकेगी। वह सिद्धांत सिर्फ प्रारंभ है, वह कोई अंत नहीं है। लेकिन उससे द्वार खुलता है, उससे संभावना निर्मित होती है--फिर आदमी खोज में निकलता है। हो सकता है वह मिले, हो सकता है न मिले। क्योंकि अंधेरे में

तुमने जो तय किया था, उसके मिलने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन एक बात पक्की हैः हो सकता है, तुमने जो तय किया था वह न मिले; लेकिन कुछ मिलेगा। परमात्मा को तुम अभी जानते नहीं, कोई पहचान नहीं, कभी देखा नहीं, कभी मिलन नहीं हुआ। श्रद्धा का अभी तो इतना ही अर्थ हो सकता है कि हम एक परिकल्पना स्वीकार करते हैं, और हम खोज में लगते हैं--शायद जो परिकल्पना है वैसा सिद्ध हो, न हो। लेकिन एक बात पक्की है कि खोज शुरू हो जाएगी। आर जिसकी खोज शुरू हो गई, अंत ज्यादा दूर नहीं है। और एक बात यह भी पक्की है कि अज्ञानियों ने जितने ढंग से परमात्मा को माना है, अंतिम अर्थ में वे कोई भी सही सिद्ध नहीं होती; वे सभी परिकल्पनाएं असिद्ध होती हैं। जो प्रगट होता है, वह सभी परिकल्पनाओं से ज्यादा अनूठा है। जो प्रकट होता है वह तुम्हारी सभी मान्यताओं से बहुत ऊपर है। जो प्रगट होता है, तुमने उसे सोचा था दीया; लेकिन जो प्रगट होता है वह महासूर्य है। किसी की परिकल्पना परमात्मा के संबंध में कभी सही सिद्ध नहीं होती, हो भी नहीं सकती।
छोटा सा मन है, छोटा सा उसका आंगन है--कितना बड़ा आकाश उस आंगन में समाएगा? छोटे-छोटे हाथ हैं। इन छोटे-छोटे हाथों से उस विराट को छूने की कोशिश--कितना विराट तुम छू पाओगे? बूंद जैसी क्षमता है, सागर को खोजने निकले हो--कितना सागर तुम अपने में ले पाओगे?
लेकिन श्रद्धा के बिना यात्रा शुरू नहीं होती। श्रद्धा का कुल इतना
ही अर्थ है कि साहस की हम तैयारी करते हैं, हम ज्ञात से न बंधे रहेंगे, अज्ञात में, उतरने के लिए हमारी हिम्मत है; हम डरे-डरे अपने घर में कैद न रहेंगे, हम खुले आकाश के महाअभियान पर निकलते हैं।
एक बात पक्की है कि तुम जो भी मानकर निकलोगे, वह तुम कभी न पाओगे; क्योंकि तुम अभी जानते नहीं तो तुम ठीक मान कैसे सकोगे?
सम्यक श्रद्धा तो ज्ञान से घटित होगी। लेकिन सम्यक श्रद्धा के पहले
एक परिकल्पित श्रद्धा है, हायपोथेटिकल है। वैज्ञानिक भी उसके बिना काम नहीं कर सकता, तो धार्मिक तो कैसे कर सकेगा?
तो, श्रद्धाएं दो प्रकार की हैं। एक श्रद्धा है साहस का नाम, जो अज्ञान से बाहर लाती है, द्वार के बाद हृदय में आरोपित होती है। उस दूसरी श्रद्धा को फिर डिगाने का कोई उपाय नहीं है। पहली भी उखाड़ ले सकता है। नए रोपे की बड़ी सुरक्षा करनी पड़ती है, चारों तरफ बागुड़ लगानी पड़ती है, देखभाल रखनी पड़ती है। एक बार वृक्ष की अपनी जड़ें जमीन को पकड़ लेती हैं, एक बार वृक्ष जमीन के साथ एक हो जाता है, फिर बागुड़ की कोई जरूरत नहीं। फिर बच्चे उसे न उखाड़ पाएंगे। फिर कोई उसे नुकसान न पहुंचा पाएगा। फिर तो वृक्ष बड़ा हो जाएगा। फिर तो सैकड़ों लोग उसके नीचे बैठकर छाया पा सकेंगे।
इसलिए प्राथमिक रूप से जब श्रद्धा में कोई उतरता है तो बड़ी सावधानी
की जरूरत है, क्योंकि चारों तरफ अंधों की भीड़ है। वह तुमसे कहेगी, "क्या मान रहे हो? क्या कर रहे हो? पागल हो गए? दिमाग तो ठीक है?" वह अंधों की भीड़ बच्चों की तरह है; वह तुम्हारे पौधे को उखाड़ दे सकती है।
प्राथमिक चरण में श्रद्धा को ऐसे ही बचाने की जरूरत पड़ती है, जैसे स्त्री गर्भिणी होती है और अपने गर्भ को बचाती है, संभलकर चलती है, एक-एक पैर संभालकर उठाती है--कहीं गिर न पड़े। क्योंकि अगर एक ही जीवन नहीं, दो जीवन दांव पर लग गए हैं। ऐसे ही जिस दिन तुम्हारे जीवन में श्रद्धा का बीज आरोपित होता है--तुम गर्भ से भर गए; अब परमात्मा ने तुम्हारे भीतर पहला रूप लिया है।
बीज वृक्ष की क्या खबर दे सकता है? बीज तो कंकड़-पत्थर जैसा मालूम पड़ता है। इससे फूलों का क्या नाता जोड़ोगे? तो पहली श्रद्धा कभी भी अंतिम श्रद्धा की कोई झलक नहीं दे सकती। लेकिन पहली श्रद्धा के बिना अंतिम श्रद्धा के आने का कोई उपाय नहीं। और पहली श्रद्धा ही तुम्हारे जीवन-चिंतना का ढंग बदलेगी, शैली बदलेगी। पहली श्रद्धा का अर्थ होता हैः अब तुम यह न पूछोगे कि परमात्मा है या नहीं; अब तुम यह पूछोगे कि "मेरी आंख कैसे सुधर जाए कि अगर वह हो तो उसे मैं देख लूं; और अगर न हो तो उसके न होने को देख लूं। लेकिन आंख मेरी कैसे सुधर जाए?" तुम्हारी सारी वृŸा, अब परमात्मा है या नहीं, इससे संबंधित न रही; अब इससे संबंधित हो गई कि मेरी देखने की क्षमता कैसे साफ हो जाए। होगा तो देखें लेंगे; न होगा तो न-होना देख लेंगे।

लेकिन अब बिना देखे न रहेंगे। जिसने यह तय कर लिया कि अब अंधे न रहेंगे; अब आंख चाहिए; बिना देखे न रहेंगे; न अब दर्शन चाहिए--वह पहली श्रद्धा को उपलब्ध हुआ।
"घर-घर दीपक बरै, लखै नहिं अंध है। लखत लखत परै, कटै जमफंद है।।" और जिसने देखने की कोशिश की--"लखत लखत लखि परैप्--ऐसा देखते-देखते एक दिन दिखाई पड़ जाता है; क्योंकि वह तो मौजूद है, सिर्फ आंख की कमी है। ये शब्द बड़े बहुमूल्य हैं--"लखत लखत लखि परै!" ऐसा देखते ही रहोगे, खोजते ही रहोगे, टटोलते ही रहोगे--इस कोने, उस कोने, इस दिशा में, उस दिशा में; इस आयाम, उस आयाम; रुकोगे न, देखते ही रहोगे, खोजते ही रहोगे--तो देखते-देखते-देखते एक दिन अचानक आंख खुल जाती है।
आंख तो है, सिर्फ उपयोग न करने से बंद पड़ी है। अंधे तुम हो नहीं। अंधा कोई भी नहीं है। अंधे भी अंधे नहीं हैं। अंधे को भी परमात्मा दिखाई पड़ सकता है, क्योंकि बाहर की आंख का कोई सवाल नहीं है, भीतर की ज्योति की बात है।
"लखत लखत लखि परै, कटै जमफंद है।" और जैसे ही वह दिखाई पड़ जाता है, वैसे
ही मृत्यु का पाश कट जाता है। फिर मरने वाला कोई भी न बचा। जिसने परमात्मा की एक झलक भी पा ली, उसने अमृत की झलक पा ली।
परमात्मा यानी अमृत। तुम यानी मृत्यु। तुम जब तक समझते हो कि तुम ही हो, परमात्मा नहीं, तब तक तुम मृत्यु के फंदे में हो। जिस दिन तुमने पाया कि मैं नहीं हूं, परमात्मा है, उसी क्षण--"कटै जमफंद है!
लेकिन देखते-देखते-देखते दिखाई पड़ता है। ऐसे ही जैसे की तुम भरी दुपहरी में लंबी यात्रा करके घर लौटे, धूप से आंखें चकमका गई हैं, धूप ने लाखों को थका डाला है, धूप ने आंखों को बुरी तरह आक्रमित किया है--क्योंकि धूप हमला करती है आंख पर; हर क्षण बाहर की रोशनी आंख पर चोट करती है--थके- मांदे, धूप से थके-हारे तुम घर लौटे हो, अंधेरा मालूम पड़ता है घर में; कुछ दिखाई नहीं पड़ता; आंखें इतनी थक गई हैं और धूप की इतनी आदी हो गई हैं कि यह जो धीमी-सी शांत रोशनी है घर के भीतर, यह दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन अगर तुम शांत होकर, शिथिल होकर लेट गए, बैठे रहे थोड़ी देर--"लखत लखत लखि परैप्-- धीरे-धीरे आंख शांत रोशनी के लिए राजी हो जाती है; फिर से पा लेती है अपनी ऊर्जा--विश्राम से। धूप ने थकाया था; वह थकान मिट जाती है। धीरे-धीरे कमरे में रोशनी ज्यादा होने लगती है। कमरा वही है, रोशनी उतनी ही है; सिर्फ तुम्हारी आंख बदल रही है। अब आंख की क्षमता प्राप्त हो रही है। अब कमरे में तुम्हें परिपूर्ण रोशनी दिखाई पड़ने लगती है।
चोर अंधेरे घर में भी देख लेता है। तुम अपने घर में न चल सको, और चोर तुम्हारे घर में बड़ी शान से चल लेता है। तुम दिन में भी चलते हो तो चीजों से टकरा जाते हो; तुम्हारे पराए घर में जहां चोर कभी नहीं आया, वहां वह इतना देखकर चलता है, सम्हलकर चलता है कि तुम्हारी जमाई हुई चीजों से नहीं टकराता। अंधेरे में चोर को धीरे-धीरे दिखाई पड़ने लगता है।
अंधेरे में भी देखने से दिखाई पड़ने लगता है, तो भीतर तो बड़ी शांत रोशनी है, अंधेरा नहीं है। लेकिन जो लोग भी ध्यान में पहली दफा उतरते हैं, उनको यही प्रतीत होता है कि भीतर अंधेरा है। लोग मुझसे आकर कहते हैं कि आप कहते हैं रोशनी, हम आंख बंद करते हैं, सिवाय अंधेरे के कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
तुम रोशनी से थके हुए आए हो, जन्मों-जन्मों तक धूप से आक्रांत--थोड़ा समय चाहिए। "लखत लखत लखि परै।" थोड़ा बैठो भीतर, थोड़ा विश्राम करो। जल्दी मत करो। अभी तुम्हारी आंखों को भीतर की रोशनी के साथ तालमेल बिठाना पड़ेगा। जब तालमेल बैठ जाएगा, तब तुम देख पाओगे। तब एक अनूठी रोशनी का दर्शन होता है, जो रोशन तो है लेकिन जलाती नहीं।
यहूदियों की बड़ी पुरानी कथा है कि हजरत मूसा जब सिनाई के पर्वत पर गए
तो अचानक उन्होंने आवाज सुनी कि जूते उतार दे, क्योंकि यह पवित्र भूमि है। तो डरकर उन्होंने जूते उतार दिए। आगे बढ़े तो उन्होंने एक झाड़ी में आग को जलते देखा। वे बड़े हैरान हो गए। वह बड़ा चमत्कारी अनुभव था। आग तो जल रही थी और झाड़ी जल नहीं रही थी। आग में तो लपटें निकल रही थी; झाड़ी हरी की हरी थी।

यहूदियों को बड़ी मुश्किल हुई यह समझाने में कि इसका क्या मतलब होगा। इसका मतलब बाहर की किसी कथा से नहीं है; इसका मतलब भीतर की आग से है। भीतर एक ऐसी आग है जो जलती है और जलाती नहीं। एक बड़ी ठंडी रोशनी है; ठंडी आग--बरफ जैसी ठंडी, और आग जैसी उज्जवल। जब तुम भीतर जाओगे तो बाहर की रोशनी से इस रोशनी का गुणधर्म अलग है। इसलिए तुम्हारे पास नई आंखें चाहिए जो इसे देख सकें। और तुम्हें अपनी आंखों को धीरे-धीरे समायोजित करना होगा।
ध्यान की सारी प्रक्रियाएं और कुछ भी नहीं हैं, सिवाय इसके कि तुम्हारी बाहर देखने के लिए जो आदत बनी है आंखों की, उसमें एक नई आदत को प्रवेश करवा दें कि तुम भीतर देखते रहो, कितना ही अंधेरा हो, अंधेरे को ही देखते रहो--अंधेरे को भी देखते-देखते-देखते तुम एक दिन पाओगे कि अंधेरा कम होने लगा; एक धीमी-सी रोशनी आने लगी। अगर तुम देखते ही गए, देखते ही गए, तो एक नई रोशनी का जगत प्रारंभ हो जाता है।
"लखत लखत लखि परै, कटै जमफंद है।
"कहन सुनन कछु नाहिं, नहिं कछु करन है।
कबीर कहते हैं, न तो कुछ कहने को है उस संबंध में, क्योंकि जो भी कहो,
वह गलत हो जाता है; जो भी कहो वह गलत है। क्योंकि भाषा तो बाहर की है और अनुभव भीतर का है--तालमेल नहीं बैठता। जो भी कहो गलत हो जाता है। सब शास्त्र गलत हो गए। सब ज्ञानी गलत हो गए। सिर्फ पंडित को ख्याल होता है कि वह जो कह रहा है वह सही है; ज्ञानी को तो पक्का ही ख्याल होता है कि वह जो कह रहा है वह सही नहीं है। वह कह रहा है इसलिए नहीं कि वह सोचता है कि कह सकेगा; वह कह रहा है इसलिए कि तुम बिना कहे न सुनोगे। तुम कहने से भी नहीं सुन पाते, तो बिना कहे तो सुनना बहुत असंभव है।
ज्ञानी के वचन भीतर की बात कहने के लिए नहीं हैं; जो बाहर भटक रहे हैं, उनको भीतर बुलाने के लिए हैं। ज्ञानी के वचन तो ऐसे हैं जैसे मंदिर का घंटा होता है; कुछ कहता नहीं, सिर्फ बुलाता है। हर मंदिर के सामने घंटा टंगा है। मस्जिद के पास सुबह अजान देने के लिए मुल्ला चढ़ जाता है। ज्ञानी के वचन तो अजान की तरह हैं--कुछ कहता नहीं; सिर्फ जो सोए हैं, उनको जगाता है, पुकारता है, बुलाता है। एक निमंत्रण है ज्ञानी के वचन में, सत्य की अभिव्यक्ति नहीं।
इसे ठीक से समझ लेना। पंडित भर को यह ख्याल होता है कि वह जो कह रहा है
वह ठीक कह रहा है, क्योंकि उसे पता नहीं है कि ठीक क्या है। उसे शब्दों का ही पता है। जिसे सत्य का पता है वह भलीभांति जानता है कि कोई शब्द सत्य को प्रकट करने में समर्थ नहीं है। वह चेष्टा ही असंभव है।
वह तो ऐसा ही है, समझो कि कोई सौंदर्य को गणित की भाषा में प्रगट करना चाहे--कैसे करिएगा? सौंदर्य और गणित का कोई मेल ही नहीं बैठता। अगर सौंदर्य को प्रगट करना हो तो काव्य की भाषा चाहिए। और वह भी कोई साधारण सौंदर्य हो तो काव्य की भाषा काम आ जाएगी; अगर कोई असाधारण सौंदर्य हो तो काव्य भी ठिठककर खड़ा हो जाएगा, कविता भी मूक हो जाएगी।
अगर प्रेम की बात कहनी हो तो बाजार की भाषा में नहीं कही जा सकती। बाजार की भाषा प्रेम के लिए नहीं है, शोषण के लिए है। बाजार की भाषा बाजारू है। प्रेम की भाषा हृदय की है। और वह भी छोटा-मोटा प्रेम हो तो थोड़ा-सा डगमगाकर कुछ कहा जा सकता है; लेकिन वह भी ऐसा ही होगा जैसे छोटे बच्चे तुतला रहे हों। अगर प्रेम परमात्मा से हो, भक्ति हो, फिर कुछ कहने का उपाय नहीं, वहां तो मौन ही एकमात्र भाषा है।
सारी भाषा बाहर की है। भीतर की कोई भाषा नहीं है, हो ही नहीं सकती।
पूछा जा सकता है कि हजारों-हजारों साल से ज्ञानी भीतर जा रहे हैं, अब
तक भीतर की भाषा विकसित क्यों नहीं हुई? कोई नई घटना तो नहीं है। उस भीतर के देश में न मालूम कितने लोग गए हैं! न-मालूम कितने लोग वहां से डूबकर और सिक्त होकर आए हैं! न-मालूम कितनों ने भीतर के उस अंतरध्यान में लीनता पाई है! अब तक भीतर की भाषा विकसित क्यों नहीं हो सकी? कारण है। भाषा की जरूरत होती है, जहां दो हों। भीतर तो तुम अकेले ही होते हो। अकेले में तो भाषा की कोई जरूरत नहीं होती। भाषा की जरूरत होती है जहां दो हों, जहां द्वैत हो; अद्वैत में तो भाषा का कोई सवाल ही नहीं उठता। जहां अकेले ही हैं, वहां किससे बोलना है, किसको बोलना है? तो भीतर तो आदमी जाकर बिल्कुल गूंगा हो

जाता है। कबीर कहते हैं, "गूंगे केरी सरकरा, खाए और मुसकाए।" गूंगा खा लेता है शक्कर, और मुसकाता है।
वैसे ही भीतर का अनुभव है कि वहां एक ही बचता है, और वह भी इतने अपरिसीम आनंद-उत्सव में लीन हो जाता है कि कौन खोजे भाषा और किसके लिए खोजे? जब बाहर आता है भीतर से, तब अड़चन शुरू होती है--बाहर खड़े हैं लोग, इनको बताना मुश्किल हो जाता है। तो कबीर कहते हैं, "कहन सुनन कछु नाहिंप्-- न तो कुछ कहने को है, न कुछ सुनने को है। कहना-सुनना दोनों छोड़कर, मार्ग पकड़ना है "होनेप् का। बहुत कहा गया, बहुत सुना गया है--कुछ भी हुआ नहीं। "होनेप् का एकमात्र मार्ग है।
"नहीं कछु करन हैप्--करने को भी कुछ नहीं है।
इसलिए मैं कहता हूं, ये बड़े क्रांतिकारी वचन हैं। कोई करने की बात नहीं है। क्या करोगे उसे पाने के लिए? जिसे पाया ही हुआ है, उसे पाने के लिए क्या करोगे? जो भीतर छिपा ही है, मौजूद है, जो तुम्हारे साथ ही चला आया है, जो तुम्हारी अंतर-संपदा है--उसे पाने के लिए क्या करोगे? उसे जितना तुम पाने की कोशिश करोगे, उतनी ही अड़चन खड़ी होगी। जैसे कोई अपनी ही खोज में निकल जाए--भटकेगा। दूसरे की खोज, समझ में आती है; अपनी ही खोज--कहां खोजोगे? हिमालय जाओगे? मक्का-मदीना, काशी, गिरनार--कहां जाओगे?
एक दिन बाजार में लोगों ने देखा कि नसरुद्दीन अपने गधे पर बैठा तेजी
से भागा जा रहा है। भीड़ में से कुछ लोग चिल्लाए, "नसरुद्दीन, कहां जा रहे हो?" लेकिन उसने कहा कि अभी समय नहीं, जल्दी में हूं। और वह भी भागते हुए, गधे पर उसने चिल्लाकर कहा कि अभी समय नहीं है, बहुत जल्दी में हूं। घंटे भर बाद वापस लौट रहा था--बहुत उदास, तो लोगों ने पूछा, "मामला क्या था? इतनी जल्दी क्या थी?" उसने कहा कि मैं अपने गधे को खोजने जा रहा था और इतनी जल्दी में था कि यही भूल गया कि मैं गधे पर ही बैठा हुआ हूं। जल्दी के कारण इतनी भी फुर्सत न मिली कि मैं ठीक से देख लूं।
बहुत बार ऐसा हो जाता है कि तुम चश्मा लगाए हो और चश्मा खोज रहे हो; चश्मे ही से चश्मा खोज रहे हो। और जल्दी में अक्सर हो जाता है। कभी अगर तुम्हें जल्दी ट्रेन पकड़नी है, तो तुम्हें पता होगा कि जो बटन सदा अपने ही काज में लगती थी, वह दूसरे काज में लग जाती है। जल्दी में... !
एक होटल में आग लग गई। बड़ी घबड़ाहट फैल गई। विक्षिप्तता आ गई लोगों में। भयंकर आग थी, बामुश्किल लोग बाहर निकल पाए। नसरुद्दीन भी होटल में ठहरा हुआ था। वह नीचे बढ़ा, शान से सीढ़ियां उतरते हुआ और और उसने कहा, "क्या मर्द होकर, और इस तरह शोरगुल मचा रहे हो? एक मुझ को देखो। जब मैंने देखा कि आग लग गई, तो उस वक्त मैं चाय पी रहा था। तो पहले तो मैंने अपनी चाय पूरी की, फिर अपनी टाई बांधी। टाई की गांठ ठीक न लगी थी तो आइने के पास जाकर गांठ ठीक की। एक मैं आदमी हूं, और एक तुम नामर्द की तरह चिल्लाए, भागे जा रहे हो। भीड़ ने कहा, "वह तो ठीक है, लेकिन आप पायजामा क्यों नहीं पहने हुए हैं?
वे बिना ही पायजामा के खड़े थे!
जल्दी में होश खो जाता है; तुम वही खोजने लगते हो, जिसे तुमने कभी खोया नहीं था। और आदमी बड़ी जल्दी में है। मौत पास खड़ी है; वह घबड़ाहट और एक जल्दबाजी पैदा करती है।
पूरब के लोग इतनी जल्दी में नहीं हैं। इसलिए पूरब के लोग कभी-कभी आत्मा को खोज लेते हैं; पश्चिम के लोग नहीं खोज पाते, क्योंकि वे और भी जल्दी में हैं।
पश्चिम में एक बड़ा दुर्भाग्य घटित हो गया। वह दुर्भाग्य यह था कि ईसाई, यहूदी और मुसलमान तीनों ने एक ही जन्म का सिद्धांत मान लिया--बस यह एक ही जन्म; जन्म और मृत्यु स Ÿार साल बस! इस अनंत यात्रा में कुल स Ÿार साल का वक्त है--बहुत कम; करने को बहुत ज्यादा, समय बहुत कम। इसलिए पश्चिम एक हड़बड़ाहट में है, सदा भागा हुआ है; तेजी है, और तेजी को बढ़ाया जाता है। ये जो जेट और अंतरिक्ष-यान पैदा हो रहे हैं, अगर इनको कोई किसी दिन गौर से समझेगा कि ये भीतर की जल्दबाजी के परिणाम हैं। गति को बढ़ा रहे हैं--स्पीड, ताकि समय बड़ा हो जाए गति के माध्यम से।

अगर तुम बैलगाड़ी में चलते हो तो जहां पहुंचने में तुम्हें दो दिन लगेंगे वहां तुम दस मिनट में हवाई जहाज से पहुंच जाते हो--तो तुमने दो दिन बचा लिए।
समय बहुत कम है, और समय को बचाना है, तो जितनी स्पीड हो जाए हर चीज में उतना ज्यादा समय बच जाएगा। ऐसा ख्याल है, बचता नहीं है। क्योंकि, जो समय बचता है, उसको भी तुम स्पीड में ही लगाते हो ताकि वह और बच जाए। अंततः तुम पाते हो कि दौड़े बहुत, पहुंचे कहीं भी नहीं।
ऐसा हुआ कि अमरीका में पहली दफा ट्रेनें चलाई गईं; ट्रेन की पटरियां डाली गईं; तो एक आदिवासी कबीले में भी पहली दफे ट्रेन गुजरने वाली थी। अमरीकी प्रेसीडेंट उसका उदघाटन करने गया। स्टेशन पर झाड़ के नीचे एक आदिवासी लेटा हुआ सारा दृश्य बड़े मजे से देख रहा है; बीच-बीच में अपने हुक्के से दम लगा लेता है, फिर अपने लेटकर वही देख रहा है--ऐसे जैसे दुनिया में कुछ करने को नहीं है। प्रेसीडेंट उसके पास गया और उसने कहा कि तुम्हें शायद पता नहीं कि यह बड़ी ऐतिहासिक घटना है, इस ट्रेन का गुजरना। उस आदिवासी ने पूछा, इससे क्या होगा? तो प्रेसीडेंट ने उसे समझाने के लिए कहा कि तुम लकड़ियां काटकर शहर जाते हो बेचने--कितने दिन लगते हैं? उसने कहा कि दो दिन जाने में लगते हैं, एक दिन बेचने में लग जाता है, दो दिन लौटने में लगते हैं--सप्ताह में पांच दिन लग जाते हैं और फिर दो दिन घर आराम करना पड़ता है, फिर जाना पड़ता है। अभी ये आराम के दिन हैं--दो दिन।
प्रेसीडेंट ने कहा, "अब तुम समझ सकोगे। ट्रेन से तुम घंटे भर में पहुंच जाओगे, और दिन भर में बिक्री करके रात घंटे भर में घर वापस आ जाओगे।" सोचा था प्रेसीडेंट ने कि आदिवासी बहुत प्रसन्न होगा, वह थोड़ा उदास हो गया। उसने कहा, "फिर छह दिन, बाकी दिन क्या करेंगे? यह तो बहुत झंझट हो गई। समय कम हो तो बचाओ, बचाने का अर्थ है गति को तेज कर लो, सब चीजों में गति कर लो। सब चीजों में गति हो जाती है, एक हड़बड़ाहट पैदा हो जाती है, भीतर एक तनाव पैदा हो जाता है। तुम सदा भागे-भागे हो; जहां हो वहां नहीं हो। तुम्हें कहीं और आगे होना था, वहां तुम अभी पहुंचे नहीं हो। जब तुम वहां पहुंचोगे, तब तुम वहां नहीं हो। तुम सदा अपने से आगे भागे जा रहे हो। चिŸा बहुत अशांत और बेचैनी से भर जाता है। ऐसी हड़बड़ी में कैसे तुम स्वयं को पा सकोगे? क्योंकि स्वयं को पाने के लिए एक स्थिति चाहिए--जैसे कहीं नहीं जाना, कुछ नहीं करना, सिर्फ आंख बंद करके बैठे रहना है, अपने में डूबना है। इसलिए पूरब में तो कभी-कभी आत्मज्ञान की घटना घट जाती है। पश्चिम में बहुत मुश्किल हो गई है। और पूरब में घट जाती है, क्योंकि पूरब को ख्याल है कि जल्दी कुछ भी नहीं है यह जन्म ही नहीं, अनंत जन्म हैं। यात्रा लंबी है। समय बहुत है। विश्राम किया जा सकता है।
जिसने विश्राम की कला सीख ली, जिसने विराम का राज समझ लिया, वह परमात्मा को उपलब्ध हो जाएगा। यह बात तुम्हें बड़ी बेबूझ लगेगी। श्रम से कभी किसी ने परमात्मा को नहीं पाया। श्रम से संसार पाया जाता है, बाहर की वस्तुएं पाई जाती हैं; विश्राम से परमात्मा पाया जाता है, भीतर का अस्तित्व पाया जाता है।
बाहर कुछ पाना हो तो दौड़ना, नहीं तो न पा सकोगे। इसलिए तो भारत नहीं पा सका; बाहर की दुनिया में गरीब रह गया। पूरब बाहर की दुनिया में कुछ भी नहीं पा सका, मुश्किल से जी रहा है। पश्चिम ने बाहर की दुनिया में अंबार लगा लिए; इतनी चीजें इकट्ठी कर लीं कि अब यही समझ में नहीं आता है कि इनका उपयोग करो कैसे, इनका उपयोग क्या हुआ? पूरब दरिद्र रह गया, पश्चिम अमीर हो गया।
बाहर की दुनिया में कुछ करना हो तो बड़ी सक्रियता चाहिए। क्योंकि बाहर
की दुनिया तुम्हें मिली ही नहीं हुई है। उसे पाने के लिए चेष्टा करनी पड़ेगी। और भीतर की दुनिया में कुछ करना हो तो विश्राम चाहिए, परम विश्राम चाहिए। क्योंकि वहां तो मिला ही हुआ है, वहां कुछ करना नहीं है; सिर्फ विश्राम की अवस्था लानी है ताकि चिŸा के तनाव तुम्हें बाहर न खींचें, ताकि चिŸा की तरंगें तुम्हें उलझाएं न, चिŸा निस्तरंग हो जाए--तो अचानक तुम गिर गए उस गहन खाई में जिसका नाम परमात्मा है।

"कहन सुनन कछु नाहिं, नहिं कछु करन है। जीते-जी मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है।।" और यही बात है, जिसको मैं विश्राम कह रहा हूं, उसको कबीर जीते-जी मरना कह रहे हैं। आखिर रात जब तुम नींद में सोते हो तो करते क्या हो?--थोड़ी देर को मर जाते हो। नींद रोज-रोज का छोटा-छोटा मरना है, और मृत्यु लंबी देर के लिए मरना है। फिर पैदा हो जाओगे। जैसे रात सोओगे, सुबह जग जाओगे--ऐसे ही इस शरीर में मरोगे, दूसरे शरीर में पैदा हो जाओगे। अंतर केवल परिमाण का है, गुण का नहीं है। इसलिए निद्रा मृत्यु जैसी है और मृत्यु निद्रा जैसी है। "जीते-जी मरि रहैप्--तो फिर जीते-जी मरने की क्या कला होगी? वह यही होगी कि जब तुम्हें मौका मिले, आंख बंद करके मर रहो बाहर की तरफ, जैसे बाहर नहीं है, जैसे तुम नींद में खो गए। होश में रहते हुए नींद में खो जाओ। जागे- जागे बाहर की तरफ मर जाओ। बाहर मिट जाए, तुम बाहर के लिए मिट जाओ--सिर्फ भीतर रह जाए; एकमात्र अस्तित्व भीतर का बचे।
"जीते-जी मरि रहै, बहुत नहिं मरन है।" और जिसने ऐसे मरने की कला सीख ली फिर वह कभी नहीं मरता। फिर तो वह मरते समय भी भीतर जीता है। फिर तो मरते समय भी वह भीतर जागता है। फिर तो मौत को भी वह देखते हुए गुजरता है। फिर मृत्यु में भी वह होश को कायम रखता है। क्योंकि होश भीतर की बात है। तुम्हें एक दफा भीतर जाना आ गया, मरते वक्त तुम रोओगे, चिल्लाओगे, चीखोगे नहीं; तुम आंख बंद कर लोगे, चुपचाप भीतर डूब जाओगे। और यह जो भीतर डूबना है, अगर तुम्हें मौत में आ गया, फिर कैसी मौत!
शरीर मरेगा, मन मरेगा, तुम नहीं मरोगे। वह जानने वाला, जगाने वाला जागा ही रहेगा, जीवित ही रहेगा--वही अमृत है।
"जीते-जी मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है।" फिर न उसका कोई जन्म है, न कोई मृत्यु; वह आवागमन के पार हो गया।
"जोगी पड़े वियोग, कहैं घर दूर है।" कबीर बड़ा मजेदार व्यंग कर रहे हैं।
वे कह रहे हैं, "जोगी पड़े वियोग!
योगी का अर्थ होता है, जो मिले ही हुए हैं--वे वियोग कर रहे हैं! परमात्मा से जो मिले ही हुए हैं, वे भी रो रहे हैं और पूछ रहे हैं कि परमात्मा कहां है!
"जोगी पड़े वियोग।" वियोग कभी हुआ नहीं उससे। योग की बात ही करनी बेकार है। जिससे कभी हम दूर ही नहीं हुए, उसको पास लाने का क्या कारण है?
मछली ने कभी सागर छोड़ा है? वह सागर में ही पैदा होती है, सागर में ही लीन होती है। परमात्मा में हम जी रहे हैं, उसी में श्वास लेते, उसी में उठते-बैठते, चलते, भटकते, पाते--सब उसी में घट रहा है। खोते भी हैं, तो भी उसी के भीतर हैं; पाते हैं तो भी उसी के भीतर हैं। उससे बाहर होने का कोई उपाय नहीं है। मछली तो कभी-कभी छलांग लगाकर तट पर भी आ सकती है और तड़फ सकती है, लेकिन परमात्मा के बाहर होने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि उसके बाहर कोई तट ही नहीं है। वह तटहीन सागर है। उससे बाहर जाने की कोई जगह नहीं है, क्योंकि उसके बाहर कुछ नहीं है; वही सब कुछ है।
कबीर बड़ी गहरी मजाक कर रहे हैं। कह रहे हैं, "जोगी पड़े वियोगप्--जो जुड़े ही हुए हैं, वे विरह का गीत गा रहे हैं, वे कह रहे हैं, कब होगा मिलन? रो रहे हैं, छाती पीट रहे हैं। यह विधि वह विधि कर रहे हैं; त्याग, तप, यज्ञ चला रहे हैं।
"जोगी पड़े वियोग, कहैं, घर दूर है। --कि घर बहुत दूर है। "पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर हैप्--और वे तुम्हारे पास ही बैठे हैं, उनको खोजने के लिए आप खजूर पर चढ़ रहे हैं। नाहक गिरोगे, हाथ-पैर तोड़ लोगे। बहुत-से योगी खजूर पर चढ़कर गिरते हैं। खजूर पर चढ़ने का मतलब ही है कि गिरने का उपाय करना। इसलिए बड़ा प्रसिद्ध शब्द है--"योगभ्रष्टप्; वह खजूर पर चढ़ने से होता है। कोई जरूरत ही न थी खजूर पर चढ़ने की और भ्रष्ट होने की। सिर्फ योगी ही भ्रष्ट होते हैं। तुमने किसी और को भ्रष्ट होते देखा? जो जमीन पर चल रहा है, वह भ्रष्ट किसलिए होगा? वह गिरेगा कैसे? खजूर पर चढ़े कि अड़चन आई।
दूर नहीं है परमात्मा, खजूर पर नहीं बैठा है। वह कोई पागल नहीं है कि खजूर पर बैठे। लेकिन अहंकार को चढ़ने में मजा आता है, खजूर चढ़ने में खासकर, क्योंकि और किसी झाड़ पर चढ़ना आसान है--कुछ सहारे रहते हैं, कुछ शाखाएं रहती हैं, कुछ पकड़ सकते हो। खजूर बिल्कुल सर्कस का नाम है। उस पर तो बड़ी कुशलता

हो, बड़ा अभ्यास किया हो, योग-साधना की हो, तभी कोई चढ़ सकता है। बड़े संयम की जरूरत है खजूर पर चढ़ने में और आखिरी-आखिरी पहुंचकर भी आदमी गिर जाता है। मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन चढ़ा। खजूर पक गए थे और उससे न रहा गया। डरा
तो बहुत, क्योंकि अभ्यास न था कोई। मगर पके फल! रस बहने लगा। रुक न सका। सुरक्षा करने के लिए उसने कहा कि हे परमात्मा! अगर सही-सलामत पहुंच गए और फल पा लिए, तो चार आने चढ़ाऊंगा, नकद चार आने! ध्यान रखना, अपने भक्त की फजीहत न करवा देना।
वह चढ़ा याद करते हुए परमात्मा को। पहुंच गया। जब बिल्कुल फल करीब आ गए
तो उसने कहा कि फल चार आने के मालूम ही नहीं पड़ते। चार आने में इतनी मेहनत और चार आना चढ़ाना? दो आना काफी है। ऐसा मन में उठा कि दो आना काफी है। और पहुंच भी गए, ऐसी कोई जरूरत भी नहीं है सुरक्षा की। जब फल हाथ में ही आ गए, तो उसने सोचा कि अरे, मैं तो सोचता था, पके हैं, आधे तो कच्चे हैं। एक आने से चल जाएगा। और जब वह बिल्कुल तोड़ने के ही करीब था फल, तो उसने सोचा कि चढ़ें तो हम और पैसा तुम्हें चढ़ाएं?
इसी चिंता में पैर चूक गया, भड़ाम से नीचे गिरा। ऊपर आकाश की तरफ मुंह करके कहा कि हद हो गई, जरा मजाक भी नहीं समझते! अगर फल पा लिए ही होते तो चार आने क्या, आठ आने चढ़ा देता!
चढ़ने में एक चुनौती है; और अहंकार के लिए चढ़ाई बड़ी प्रीतिकर है। जो अहंकार चढ़ाता है, फिर वही अहंकार गिराता भी है।
चढ़कर भी जाओगे कहां? खजूर कोई मार्ग थोड़े ही है जो कहीं पहुंचता है। अंततः अंत आ जाएगा। फिर क्या करोगे?
सब योग-विधियां अखीर में उस जगह आ जाती हैं, जहां से आगे जाने का कोई उपाय नहीं, विधि का अंत आएगा ही। साधना की एक सीमा है। परमात्मा की कोई सीमा नहीं है, और साधना की सीमा है। तो तुम साधना से असीम को कैसे पा सकोगे?
नहीं, कुछ करने से नहीं पाया जाता परमात्मा; न करने से पाया जाता है। इसको कबीर "सहज योगप् कहते हैं। इसलिए कबीर बार-बार दोहराते हैं, "साधो सहज समाधि भली।
सहज का मतलब हैः नाहक चढ़ो मत खजूर; शांत जीवन को जीयो; सहजता से जीयो; स्वाभाविकता से जीयो; सरलता से जीयो; व्यर्थ की उलझनें मत खड़ी करो। न तो कोई नाक बंद करने की जरूरत है, न कोई शीर्षासन करने की जरूरत है। कोई खजूर नहीं चाहिए--"पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर है।।
"बाह्मन दिच्छा देत सो, घर घर घालिहै। मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहै।।
कबीर कहते हैं, ब्राह्मणों से जिन्होंने दीक्षा ली... । ब्राह्मण यानी पंडित--जिसने जाना नहीं और जिसे जानने का ख्याल है; जो बिना जाने ज्ञानी हो गया है, वह अज्ञानी से भी बदतर है। क्योंकि अज्ञानी कम से कम दूसरे को न भटकाएगा। अज्ञानी कम से कम डरेगा कि मुझे पता नहीं। अज्ञानी कम से कम विनम्र होगा। लेकिन ब्राह्मण, पंडित? वह तो जानता ही है, और वह दूसरों को भटकाता है। वह दूसरों को दीक्षा दे रहा है, वह लोगों को कह रहा है कि चलो इस मार्ग पर। कोई वेद के मार्ग पर, कोई कुरान के मार्ग पर कोई बाइबल के मार्ग पर--पंडित अनंत हैं और वे दूसरे लोगों को भी चला रहे हैं।
जीसस ने कहा है, "अगर अंधे अंधे को चलाएं तो क्या होगा?" कबीर ने जवाब दिया है, "अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंतप्--अंधे ने अंधे को चलाया, दोनों ही कुएं में गिरे--गुरु और शिष्य दोनों, उस्ताद-शागिर्द दोनों। "बाह्मन दिच्छा देता सो, घर-घर घालिहैप्--और जिन्होंने पंडितों से दीक्षा ली, वे विनष्ट हो गए।
काशी के पंडित अगर कबीर से नाराज थे तो अकारण नहीं। और काशी में ही-- पंडितों के घर में ही कबीर बैठे थे।
"घर-घर घालिहैप्--उससे घर-घर का नाश हो गया है। जिन्होंने पंडितों से दीक्षा ले ली है, उनका विनाश हो गया है। विनाश का इतना ही अर्थ है कि जो जानते नहीं थे, उनके मार्ग पर तुम चलने लगे।
ज्ञानी को खोजना। लेकिन उसमें कठिनाई है। पंडित को पाना सदा आसान है।
वह जन्म के साथ ही तुम्हें उपलब्ध रहता है। अगर तुम जैन घर में पैदा हुए,

तो जैन पंडित तुम्हें शिक्षा दे रहा है, जन्म के साथ ही। अगर तुम मुसलमान घर में पैदा हुए, मुसलमान मौलवी तुम्हें शिक्षा दे रहा है, जन्म के साथ ही। उसे तुम्हें खोजने के लिए नहीं जाना पड़ता, वह तुम्हारी गर्दन को खुद ही पकड़ लेता है, इसके पहले कि तुम्हें होश आए।
लेकिन ज्ञानी को तुम्हें खोजने जाना पड़ेगा। ज्ञानी को तो तुम्हें सजग-सचेत होकर पाने के लिए यात्रा करनी पड़ेगी। और जरूरी नहीं है कि ज्ञानी तुम जिस संप्रदाय में पैदा हुए हो, वहां मौजूद हो; अक्सर तो संप्रदाय में ज्ञानी नहीं होता। क्योंकि जैसे ही कोई ज्ञानी होता है, संप्रदाय उसे निकाल बाहर कर देता है। क्योंकि ज्ञानी खतरनाक है।
जीसस यहूदी घर में पैदा हुए, लेकिन यहूदियों ने निकाल बाहर कर दिया। बुद्ध हिंदू घर में पैदा हुए, लेकिन हिंदुओं ने निकाल बाहर कर दिया। ज्ञानी तो हमेशा संप्रदाय के बाहर निकाल दिया जाएगा। क्योंकि अगर ज्ञानी बचे, तो पंडितों का क्या होगा? और जहां सूरज जल रहा हो, वहां बुझे दीयों के पास कौन आएगा? तो पंडित कभी ज्ञानी को बर्दाश्त नहीं कर सकता। ज्ञानी की मौजूदगी पंडित के पूरे व्यवसाय को जड़ से काट देती है। इसलिए पंडित तो सदा संप्रदाय में मिलेगा; ज्ञानी सदा संप्रदाय के बाहर मिलेगा। और वही अड़चन है। तुम अपने संप्रदाय में खोजो कि कोई हिंदू ज्ञानी मिल जाए-- हिंदू ज्ञानी कभी हुआ ही नहीं; कोई मुसलमान ज्ञानी मिल जाए--मुसलमान ज्ञानी कभी हुआ ही नहीं। ज्ञानी कहीं मुसलमान और हिंदू होता है? ज्ञानी सिर्फ होता; उसका कोई विशेषण नहीं है।
तब तुम्हें अड़चन होगी। उसके लिए तो तुम्हें संप्रदाय की दृष्टि छोड़नी पड़ेगी। तुम्हें अपनी बंधी धारणाएं हटानी पड़ेंगी। अगर तुम्हें आंखवाला गुरु चाहिए तो तुम्हें अपने संप्रदाय के सारे वस्त्र छोड़ने पड़ेंगे, तभी तुम उसे पा सकोगे। नहीं तो तुम्हें कोई अंधा गुरु मिल जाएगा।
"बाह्मन दिच्छा देत सो, घर घर घालिहै। मूर सजीवन पास तू पाहन पालिहै।।" और जो परमात्मा पास था, पंडित ने तुझे उसकी जगह पत्थर पकड़ा दिए। तू पत्थर पूज रहा है। परमात्मा पास था। पंडित की दीक्षा ने तुझे पत्थर पकड़ा दिए। और पत्थरों की पूजा चल रही है। कुछ हर्जा नहीं है पत्थर की पूजा में, अगर पत्थर में परमात्मा दिखाई पड़ रहा हो। लेकिन जिसको पत्थर में परमात्मा दिखाई पड़ जाएगा, वह पत्थर में पूजने जाएगा? फिर तो सब जगह उसी की पूजा है, उसका तो सारा जीवन उसी की अर्चना हो जाएगा। फिर तो मंदिर विराट है। फिर तो पौधे में भी वही है। फिर तो मस्जिद में भी वही है और मंदिर में भी वही है। तो अगर मस्जिद पास हो, तो तुम मंदिर काहे के लिए जाओगे? मस्जिद में ही चले जाओगे। मस्जिद भी जाने की क्या जरूरत?
सुना है मैंने कि बायजीद जब बूढ़ा हो गया--एक मुसलमान फकीर। स Ÿार साल लोगों ने उसे सदा मस्जिद में जाते देखा। एक दिन अचानक वह मस्जिद नहीं आया। वह बीमार हो तो जाता, कोई भी स्थिति में कभी वह मस्जिद में आने से नहीं चूका था। एक दिन नहीं आया तो मस्जिद के लोगों ने समझा कि मर गया होगा, और कोई कारण नहीं हो सकता, क्योंकि बीमार कितना ही वह हो, वह आता ही है। वे पहुंचे उसके घर, वह अपने झोपड़े के सामने खंजड़ी बजाकर गीत गा रहा था। वे बड़े नाराज हो गए। उन्होंने कहा, "बुढ़ापे में क्या नास्तिक हो गए या सठिया गए?" बायजीद ने कहा कि जब तक मिला नहीं था, तब तक आते थे; अब जब मिल गया तो सभी तरफ वही है। अब मस्जिद के सिवाय और कोई जगह ही नहीं है। वही सब जगह मस्जिद है। अब किसके लिए आना? अब तक खोजते थे; अब खोजना न रहा, अब उत्सव शुरू हुआ। अब तो नाचेंगे, गाएंगे। अब कोई मांग न रही। अब वह सब तरफ मौजूद है।
"मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहैप्--वह पास बैठा है और तू मंदिरों में पूजा करने जा रहा है?
"ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है। नहीं जोग नहिं जाप, पुन्न नहिं पाप है।।
कबीर कहते हैं, ऐसा है वह साहब कबीर का! "ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है।" खुद तो बहुत सुंदर-सलोना है ही, उसके सलोनेपन की क्या बात! उसके सौंदर्य की क्या चर्चा करें! उसके रूप का क्या वर्णन! खुद तो बहुत सुंदर है ही, उसने तुम्हें भी सुंदर बनाया है। तुम्हें उसने अपने से कम सुंदर नहीं बनाया। "ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है। नहीं जोग नहिं जप, पुन्न नहिं पाप है।।" तुम्हारे लिए न तो जोग की जरूरत है, न जाप की जरूरत है; और न कहीं पुण्य की

कोई जरूरत है, न पाप की कोई जरूरत है। जिसने तुम्हें बनाया, वह पुण्य और पाप के बाहर है; तुम भी बाहर हो। और जिसने तुम्हें बनाया, तुम जिसकी कृति हो, उसके हस्ताक्षर तुम पर हैं--तुम कैसे पापी हो सकते हो? तुम कैसे बुरे हो सकते हो?
कहावत है, फल से वृक्ष जाना जाता है। तो तुमसे परमात्मा जाना जाएगा, क्योंकि तुम उसके श्रेस्रतम फल हो इस पृथ्वी पर। इस सृष्टि में मनुष्य उसका श्रेस्रतम फल है। तो तुम कैसे पापी हो सकते हो? जिन्होंने तुम्हें कहा, तुम पापी हो, उन्होंने तुम्हारे जीवन से परमात्मा का संबंध बिल्कुल तुड़वा दिया। तो कबीर कहते हैं, "ऐसन साहब कबीरप्--कबीर के साहब ऐसे हैं, खुद तो प्यारे, सुंदर, अनूठे, अद्वितीय हैं--उनसे तुम भी पैदा हुए हो। बाइबिल में कहा है कि परमात्मा ने अपनी ही शकल में आदमी को बनाया; बनाया है, लेकिन तुम्हें अपनी शकल का पता ही नहीं।
"नहीं जोग नहिं जापप्-- न तो कोई जाप करने की जरूरत है, न कोई जोग करने
की जरूरत है; न तो पुण्य करने की जरूरत है, न पाप से भयभीत होने की जरूरत है। क्योंकि उस परम की निकटता में न तो पाप बचता है, न पुण्य बचता है।
यह आखिरी बात थोड़ी समझ लेने जैसी है।
पापी और पुण्यात्मा में बहुत फर्क नहीं है। इतना ही फर्क है, जैसे एक आदमी पैर पर खड़ा है और एक आदमी सिर पर खड़ा है। तुम अगर शीर्षासन कर लो तो कुछ फर्क हो जाएगा?--तुम ही रहोगे--सिर के बल खड़े रहोगे। अभी पैर के बल खड़े थे। क्या फर्क होगा तुममें?--तुम उलटे हो जाओगे। पुण्यात्मा सीधा खड़ा है; पापी सिर के बल खड़ा है--वह शीर्षासन कर रहा है। और शीर्षासन करने में कष्ट मिलता है, तो पा रहा है। पुण्यात्मा कुछ विशेष नहीं कर रहा है। और पापी कुछ पाप का फल आगे पाएगा, ऐसा नहीं है; पाप करने में ही पा रहा है। सिर के बल खड़े होओगे, कष्ट मिलेगा। और पुण्यात्मा पैर के बल खड़ा है, इसलिए सुख पा रहा है। इसमें कोई भविष्य में कोई सुख मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा--ऐसा कोई सवाल नहीं है। तुम अगर ठीक-ठीक चलते हो रास्ते पर, तो सकुशल घर आ जाते हो, बस। अगर तुम उलटे-सीधे चलते हो, शराब पीकर चलते हो--गिर पड़ते हो, पैर में चोट लग जाती है, फ्रैक्चर हो जाता है। कोई जमीन तुम्हारे पैर में फ्रैक्चर नहीं करना चाहती थी; तुम्हीं उलटे-सीधे चले।
पापी उलटा-सीधा चल रहा है, थोड़ा डांवाडोल चल रहा है; पुण्यात्मा थोड़ा सम्हलकर चल रहा है। लेकिन कबीर कहते हैं कि जो अपने भीतर चला गया, वह तो स्वयं परमात्मा हो गया--वहां न कोई पाप है, न कोई पुण्य है। उसकी चाल का क्या कहना!
ध्यान रखो, पाप से दुख मिलता है, पुण्य से सुख मिलता है। पाप रोग की तरह है, पुण्य स्वस्थ होने की तरह है। लेकिन भीतर जो चला गया, वह न तो दुख में होता है, न सुख में; वह आनंद में जीता है। आनंद बड़ी और बात है। आनंद का मतलब हैः सुख भी गए, दुख भी गए। क्योंकि जब तक दुख रहते हैं, तभी तक सुख रहते हैं। और जब तक सुख रहते हैं, तब तक दुख भी छिपे रहते हैं; वे जाते नहीं। पापी के लिए नरक, पुण्यात्मा के लिए स्वर्ग; और जो भीतर पहुंच गया, उसके लिए मोक्ष। वह स्वर्ग और नरक दोनों के पार है।
पुण्य और पाप, दोनों ही बंधन है। पाप होगा लोहे की जंजीर, पुण्य होगा सोने की जंजीर--हीरे, जवाहरातों से जड़ी। पर क्या फर्क पड़ता है? पापी भी बंधा है, पुण्यात्मा भी बंधा है। पापी दुख पा रहा है, पुण्यात्मा सुख पा रहा है; लेकिन दोनों को अभी उसकी खबर नहीं मिली जो दोनों के पार है। दोनों द्वैत में जी रहे हैं। भीतर जिसने स्वयं को जाना; जिसने साहब को जाना; जिसने अपने सलोने रूप को पहचाना; जिसने अपने निराकार-निर्गुण को देखा; जिसने अपनी अद्वैत प्रतिस्रा पाई--उसके लिए न तो कोई पुण्य है, न तो कोई पाप है। वह द्वंद्व के बाहर हो गया--वह निर्द्वंद्व है। वह द्वैत के पार उठ गया--वह अद्वैत है।
और यह साहब बहुत दूर नहीं है। पास भी कहना उचित नहीं है। साहब तुम्हारे भीतर है। भीतर कहना भी उचित नहीं है। साहब तुम्हीं हो। "ऐसन साहब कबीर... !
"कस्तूरी कुंडल बसै!"

सुनो भाई साधो
पंद्रहवां प्रवचन

धर्म और संप्रदाय

सूत्र
साधो देखो जग बौराना।
सांची कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।।
हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना।।
बहुत मिले मोहि नेमी धरमी, प्रात करै असनाना।
आतम छोड़ि पखाने पूजैं, तिनका थोथा ग्याना।।
आसन मारि डिम्भ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना।
पीपर पाथर पूजन लागे, तीरथ वर्त भुलाना।।
माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।
साखी सबदै गावत भूलै, आतम खबर न जाना।।
घर घर मंत्र जो देत फिरत है, माया के अभिमाना।
गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़ें, अंतकाल पछिताना।।
बहुतक देखे पीर औलिया, पढ़ै किताब कुराना।
करै मुरीद कबर बतलावै, उनहुं खुदा न जाना।।
हिंदू की दया मेहर तुरकन की, दोनों घर से भागी।
वह करै जिबह वां झटका मारै, आग दोउ घर लागी।।
या विधि हंसी चलत है हमको, आप कहावै स्याना।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, इनमें कौन दिवाना।।

धर्म क्या है? शब्दों में, शास्त्रों में, क्रियाकांडों में या तुम्हारी अंतरात्मा में, तुममें, तुम्हारी चेतना की प्रज्वलित अग्नि में? धर्म कहां है? मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में?
आदमी के बनाए हुए मंदिर-मस्जिदों में धर्म हो कैसे सकता है? धर्म तो वहां है जहां परमात्मा के हाथ की छाप है। और तुमसे ज्यादा उसके हाथ की छाप और कहां है? मनुष्य की चेतना इस जगत में सर्वाधिक महिमापूर्ण है। वहीं उसका मंदिर है; वहीं धर्म है।
धर्म है व्यक्ति और समष्टि के बीच प्रेम की एक प्रतीति--ऐसे प्रेम की जहां बूंद खो देती है अपने को सागर में और सागर हो जाती है; जहां सागर खो देता है अपने को बूंद में और बूंद हो जाता है; व्यक्ति और समष्टि के बीच ध्यान का ऐसा क्षण, जब दो नहीं बचते, एक ही शेष रह जाता है; प्रार्थना का एक ऐसा पल, जहां व्यक्ति तो शून्य हो जाता है; और समष्टि महाव्यक्तित्व की गरिमा से भर जाती है। इसलिए तो हम उस क्षण को ईश्वर का साक्षात्कार कहते हैं। व्यक्ति तो मिट जाता है, समष्टि में व्यक्तित्व छा जाता है; सारी समष्टि एक महाव्यक्तित्व का रूप ले लेती है।
धर्म व्यक्ति और समष्टि के बीच घटी एक अनूठी घटना है; लेकिन ध्यान रहे--सदा व्यक्ति और समष्टि के बीच, व्यक्ति और समाज के बीच नहीं। और जिनको तुम धर्म कहते हो, वे सभी व्यक्ति और समाज के संबंध हैं। अच्छा हो, तुम उन्हें संप्रदाय कहो, धर्म नहीं। और संप्रदाय से धर्म का उतना ही संबंध है जितना जीवन का मुर्दा लाश से। कल तक कोई मित्र जीवित था, चलता था, उठता था, हंसता था, प्रफुल्लित होता था; आज प्राण-पखेरू उड़ गए, लाश पड़ी रह गई--उस व्यक्ति की हंसी से, मुस्कराहट से, गीत से, उस व्यक्ति के मनोभाव से, उस व्यक्ति के उठने, बैठने, चलने से, उस व्यक्ति के चैतन्य से, इस लाश का क्या संबंध है? पक्षी उड़ गया, पिंजरा पड़ा रह गया--वह जो आज आकाश में उड़ रहा है पक्षी, उससे इस लोहे के पिंजरे का क्या संबंध है? उतना ही संबंध है धर्म और संप्रदाय का।
धर्म जब मर जाता है, तब संप्रदाय पैदा होता है। और जो संप्रदाय में बंधे रह जाते हैं, वे कभी धर्म को उपलब्ध नहीं हो पाते। धर्म को उपलब्ध होना हो तो संप्रदाय की लाश से मुक्त होना अत्यंत अनिवार्य है। अगर तुम

समझदार होते तो तुम संप्रदाय के साथ भी वही करते, जो घर में कोई मर जाता है तो उसकी लाश के साथ करते हो। तुम मरघट ले जाते, दफना आते, आग लगा देते। लाश को कोई सम्हालकर रखता है? लेकिन तुम समझदार नहीं हो और लाश को सदियों से सम्हालकर रखे हो--लाश सड़ती जाती है, उससे सिर्फ दुर्गंध आती है। उससे पृथ्वी पर कोई प्रेम का राज्य निर्मित नहीं होता, सिर्फ घृणा फैलती है, जहर फैलता है।
धर्म तो एक है, लाशें अनेक हैं; क्योंकि धर्म बहुत बार अवतरित होता है
और बहुत बार तिरोहित होता है--हर बार लाश छूट जाती है। तीन सौ संप्रदाय हैं पृथ्वी पर, और सब आपस में कलह से भरे हुए हैं। सब एक-दूसरे की निंदा और एक-दूसरे को गलत सिद्ध करने की चेष्टा में संलग्न हैं, जैसे घृणा ही उनका धंधा है।
तुम्हारे मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों से अब प्रेम के स्वर नहीं उठते, प्रार्थना की बांसुरी नहीं बजती, सिर्फ घृणा का धुआं उठता है। यह हो सकता है कि तुम घृणा के धुएं के इतने आदी हो गए हो कि तुम्हें पता ही नहीं चलता; या तुम्हारी आंखें उस धुएं से इतनी भर गई हैं कि अब और आंखों से आंसू नहीं गिरते; या तुम इतने अंधे हो गए हो कि आंख ही तुम्हारे पास नहीं कि जिससे आंसू गिर सकें।
लेकिन धर्म मरता है। थोड़ी हैरानी होगी, क्योंकि धर्म तो शाश्वत है-- धर्म कैसे मर सकता है? निश्चित ही धर्म शाश्वत है, लेकिन इस पृथ्वी पर उसका कोई भी रूप शाश्वत नहीं है। जैसे तुम तो बहुत बार पैदा हुए, मरोगे; तुम्हारे भीतर जो छिपा शाश्वत है, वह कभी पैदा नहीं होता, कभी नहीं मरता। लेकिन तुम? तुम तो आओगे, देह धरोगे; यह देह मरेगी, फिर और देह धरोगे, वह भी मरेगी। थोड़ी देर सोचो, अगर आदमियों ने यह किया होता कि जितने लोगों ने अब तक देह धरी हैं, सबकी लाशें बचा ली होतीं, अगर तुम्हारी अकेले एक व्यक्ति की सब लाशें बचा ली होतीं, तो पृथ्वी पूरी तुम्हारी ही लाशों से भर जाती। क्योंकि तुम कभी पक्षी थे, कभी पशु थे, कभी पौधे थे। हिंदू कहते हैं, चौरासी करोड़ योनियों से तुम गुजरे हो। अगर एक योनि से एक बार गुजरे हो--जो कि कम से कम है, जिसके लिए बहुत ज्ञानवान होना जरूरी है कि एक बार में ही छुटकारा हो जाए एक ही योनि से--अगर हम न्यूनतम मान लें कि तुम एक योनि से एक बार गुजरे हो तो तुम्हारी चौरासी करोड़ लाशें अगर सम्हालकर रखी जाती होतीं, तो जमीन भर जाती, पट जाती उनसे।
तुम्हारी ज्योति बहुत दीयों में जली है। ज्योति उड़ जाती है; दीये को सम्हालकर रखते जाओ, मुश्किल में पड़ जाओगे। जिस जगह पर तुम बैठे हो, एक-एक इंच जगह पर करोड़ों लाशें गड़ी हैं। क्योंकि कितने लोग हैं! कितनी आत्माएं हैं! और कितने वर्तुल सबने लिए हैं!
ज्योति चली जाती है, लाश को हम दफना आते हैं। धर्म के साथ ऐसा नहीं हो पाया--ज्योति तो चली जाती है, लाश रह जाती है। लाश को हम सम्हाल लेते हैं। लाश सूक्ष्म है, इसलिए दुर्गंध का भी पता उन्हीं को चलता है जिनके पास बड़े तीव्र नासापुट हैं। लाश इतनी सूक्ष्म है कि कबीर जैसी आंखें हों, तो ही दिखाई पड़ती है।
इसीलिए धर्म पर संप्रदाय इकट्ठे हो जाते हैं और जब भी कोई नया दीया आविर्भूत होता है--सनातन की ज्योति को लेकर, तब मरे हुए सारे संप्रदाय उसके विरोध में खड़े हो जाते हैं। क्योंकि वह एक नया प्रतियोगी है, और प्रतियोगी असाधारण है। उसके साथ जीता भी नहीं जा सकता, क्योंकि वह जीवित है, तुम मुर्दा हो। इसलिए सारे संप्रदाय धर्म के दीये को बुझाने में संलग्न रहते हैं। इसलिए तो महावीर पर पत्थर फेंके जाते हैं; बुद्ध का अपमान किया जाता है; जीसस को सूली दी जाती है; मंसूर की गर्दन काटी जाती है। वे जो प्रतिस्रित संप्रदाय हैं, वे जब भी धर्म की ज्योति जगेगी, तभी भयभीत हो जाते हैं--खतरा पैदा हुआ। क्योंकि यह एक ज्योति उन सबको मिटा देने के लिए काफी है।
इस संबंध में कुछ बातें समझ लें तो कबीर के सीधे-सादे पद बड़ी गहन गरिमा से भर जाएंगे; उनमें से बड़ी सुवास उठेगी।
पहली बात--धर्म भी वैसे ही पृथ्वी पर आता है, जैसे आत्मा आती है। जब भी कोई व्यक्ति तैयार हो जाता है, और दीया पूरा निर्मित हो जाता है, तत्क्षण

ज्योति उतर आती है। इसलिए हिंदू अपने धर्मपुरुषों को अवतार कहते हैं। अवतार का मतलब है--अवतरित होना, ऊपर से नीचे आना। यह अवतार शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है!
बुद्ध चालीस वर्ष तक अवतार नहीं थे। एक रात अचानक सब घट गया, दूसरे दिन सुबह वे अवतार हो गए। क्या हुआ उस रात?--दीया चालीस वर्ष से तैयार हो रहा था; जब दीया परिपूर्ण तैयार हो गया, ज्योति उतर आई।
हम इतना ही कर सकते हैं, पृथ्वी पर, दीया तैयार कर सकते हैं; ज्योति तो
इस पृथ्वी पर है ही नहीं। ज्योति तो आती है अज्ञात से; ज्योति तो आती है अनंत से; ज्योति तो आती है सनातन शाश्वत से--जब भी कोई दीया पूरी तरह तैयार हो जाता है, तब ज्योति उतर आती है। तुम केवल स्थिति पैदा कर दो परमात्मा के उतरने की और तुम्हारे भीतर परमात्मा उतर आएगा।
अवतरण का अर्थ हैः ऊपर से उतरता है धर्म। पृथ्वी पर हम दीये बनाते हैं, ज्योति ऊपर से आती है। फिर जब दीया टूट जाता है तो टूटे खंडहर को तुम बचा लेते हो; ज्योति तो फिर ऊपर चली जाती है। जो ऊपर से आई थी, वह तुम्हारे कारण नहीं आई थी, वह तुम्हारे कारण रह भी नहीं सकती; वह जिसके कारण आई थी, वह दीया टूट गया--वह बुद्ध के साथ ही विलीन हो जाती है। लेकिन बुद्ध के पदचिह्न छूट जाते हैं रेत पर। उन्हीं पदचिह्नों की पूजा चलती है। कहां तो बुद्ध के चरण, कहां तो उन चरणों से बहती हुई अनंत धारा ऊर्जा की--कि जिनमें भी साहस था झुकने का, वे झुके और सदा के लिए तृप्त हो गए; कि जिनमें भी हिम्मत थी बुद्ध के चरणों को छू लेने की, उन्होंने छुआ, और जैसे पारस छू गया और लोहा सोना हो गया--कहां तो वे चरण, और कहां फिर रेत पर छोड़े हुए सूखे चिह्न! फिर उन चिह्नों की पूजा चलती है और चिह्नों की पूजा में भी अर्थ हो सकता है, लेकिन केवल उन्हीं के लिए जिन्होंने बुद्ध के चरण देखे थे। इसलिए पहली पीढ़ी उन चरणों में भी बुद्ध के वास्तविक चरणों की भनक पाती है। स्वाभाविक है। जिन्होंने असली चरण देखे थे, चरणचिह्नों को देखकर भी याद जगती है, याद का दीया जलता है। चरण-चिह्नों को देखकर भी भीतर वे सब यादें हरी हो जाती हैं जो बुद्ध के चरणों के पास घटी थीं।
लेकिन दूसरी पीढ़ी जो सिर्फ कहानियां सुनेगी, उसके लिए चरण-चिह्न तो सिर्फ रेत पर बने चरण-चिह्न होंगे। इसलिए बुद्ध के चरण-चिह्नों में और बुद्धुओं के चरण-चिह्नों में क्या फर्क होगा? कोई फर्क न होगा।
पहली पीढ़ी ने तो जीवंत घटना देखी थी। पहली पीढ़ी का तो अंतस्तल डोला था। पहली पीढ़ी ने तो नृत्य किया था अवतरित ऊर्जा के साथ, थोड़ी देर साथ चला था; थोड़ी देर का संग-साथ हो गया था! और जैसे कोई फूलों की बगिया से गुजर जाए तो भी वस्त्र वास पकड़ लेते हैं फूलों की--ऐसी हर बुद्ध के पास रह कर पहली पीढ़ी ने तो थोड़ी-सी वास पकड़ ली थी। लेकिन दूसरी पीढ़ी आएगी, दूसरी पीढ़ी के लिए तो बुद्ध के चरण-चिह्न कुछ भी अर्थ न रखेंगे। अर्थ औपचारिक होगा। संप्रदाय औपचारिक है। पिता पूजते हैं, बेटा भी पूजेगा, पिता पूजते हैं तो बेटे को भी पुजवाएंगे। पिता जा करते हैं, वह बेटे को भी करने के लिए बाध्य करेंगे। जो पिता ने अपने निर्णय से किया था, वह बेटा पिता के निर्णय से करेगा। इस प्रकार सब मर गया।
पिता तो बुद्ध के पास गए थे अपने बोध से; खींचा था बुद्ध ने, इसलिए गए थे; भीतर कोई पुकार उठी थी; भीतर कोई आमंत्रण मिला था, तो गए थे। बेटे पर आरोपण होगा, आमंत्रण नहीं। न तो बुद्ध हैं पुकारने को, न बेटे को बुद्ध का कोई पता है। कथाएं हैं, कहानियां हैं, जिन पर बेटा भरोसा भी नहीं कर सकता, क्योंकि बातें ही कुछ ऐसी हैं कि जब तक जानो न, भरोसा नहीं होता। बेटे की यह मजबूरी है। जिसने जाना नहीं अवतरण को; जिसने देखी नहीं वह ज्योति जो आकाश से आती है; जिसने केवल पृथ्वी की ज्योतियां ही देखी हैं--उसके पास कोई उपाय भी तो नहीं है कि भरोसा करे। संदेह स्वाभाविक है। उसके संदेह को पुरानी पीढ़ी दबाएगी। पुरानी पीढ़ी भी एक मुसीबत में है--उसने देखा है। और कौन बाप न चाहेगा कि उसका बेटा भी भागीदार हो जाए उस परम अनुभव में! कौन मां न चाहेगी कि उसका बेटा भी उस परम की दिशा में यात्रा पर निकल जाए! क्योंकि, जो भी हमने जाना है, हम चाहते हैं हमारे प्रियजन भी जान लें। जो हमने पिया और तृप्त हुए हम चाहते हैं, हमारे प्रियजन क्यों प्यासे क्षुधातुर मरें!

तो बाप की भी मजबूरी है कि वह चाहता है कि बेटे को दिखला दे। बेटे की मजबूरी है कि जो उसने देखा नहीं, जो निमंत्रण उसे नहीं मिला, वे उसे कैसे देख ले? इन दोनों के बीच संप्रदाय पैदा होता है। बाप थोपता है करुणा से; बेटा स्वीकार करता है भय से। बाप ताकतवर है जो कहता है मानना पड़ेगा, न मानो तो मुसीबत में डाल सकता है। बाप कहता है अपने प्रेम से! बेटा स्वीकार करता है अपनी निर्बलता से। इन दोनों के बीच में संप्रदाय पैदा होता है।
पहली पीढ़ी के पास तो थोड़ी-सी धुन होती है। गीत तो बंद हो गया, प्रतिध्वनि गूंजती रहती है। दूसरी पीढ़ी को न गीत का पता है, न प्रतिध्वनि का। जिसने गीत ही न सुना हो, उसे प्रतिध्वनि का कैसा पता चलेगा? जो मूल से ही चूक गया हो, उसके लिए प्रतिलिपियां काम न आएंगी। और कितना ही समझाओ, बात समझाने की नहीं है। कबीर कहते हैं, "लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात।" देखी तो ही सही है, नहीं देखी तो परमात्मा से बड़ा झूठ इस संसार में नहीं है। देखा तो उससे बड़ा कोई सत्य नहीं है। देखा तो वही एक मात्र सत्य है; सभी सत्य उसमें लीन हो जाते हैं। नहीं देखा तो परमात्मा सरासर झूठ है। सब चीजें सत्य हैं। रास्ते के किनारे पर पड़ा पत्थर भी सत्य है; परमात्मा झूठ है।
"लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात।
लेकिन दूसरी पीढ़ी कैसे देखे? बाप ने देखी होगी; लेकिन जिसने देखी है सिर्फ, जिसने बुद्ध को देखा है, लेकिन जो बुद्ध नहीं हो गया, वह केवल कहानियां कह सकता है, वह दिखा नहीं सकता। वह स्मरण कर सकता है। स्मरण मधुर हैं, बड़े रससिक्त हैं; लेकिन उसके स्मरण बेटे के लिए क्या करेंगे? इसलिए तो हिंदुओं के पास किताबें हैं जिनका नाम हैः "स्मृतिप्, जिसका नाम हैः "श्रुतिप्। श्रुति का मतलब हैः सुना--किसी ने कहा वह सुना। स्मृति का अर्थ हैः किसी की याददाश्त है, उसने बताया। इसलिए हिंदुओं के पास इतिहास नहीं हैं, पुराण हैं। पुराण का मतलब है कि हमने एक ऐसी महिमा की घटना देखी है कि हम उसे सिद्ध भी करना चाहें दूसरी पीढ़ी को, तो हम इतिहास की तरह सिद्ध भी न कर सकेंगे।
क्या सिद्ध करोगे? बुद्ध का जन्म सिद्ध हो सकता है, उसके गवाह मिल सकते हैं। बुद्ध राजा के बेटे थे, यह सिद्ध हो सकता है, उसके प्रमाण मिल सकते हैं। चालीस वर्ष तक के प्रमाण मिल जाएंगे बुद्ध के। लेकिन चालीसवें वर्ष में जो घटना घटी, उसका कौन गवाह है? किस क्षण में गौतम सिद्धार्थ, गौतम सिद्धार्थ न रहा, "गौतम बुद्धप् हो गया? उस क्षण का कोई भी तो गवाह नहीं है। उसको इतिहास कैसे बनाओगे जिसका कोई गवाह नहीं हैः इसलिए हम इतिहास कहते ही नहीं उसको, हम कहते हैं, पुराण; हम कहते हैं, कहानी है। कहानी हाथ में रह जाती हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी हम उस कहानी को दोहराते हैं। जैसे-जैसे बुद्ध से दूरी बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे ही हम कहानी को सही बताने के लिए अतिशयोक्तियों से भरने लगते हैं। सिद्ध करने के लिए नई पीढ़ियों के सामने कि एक महिमावान पुरुष हुआ था, धर्म उतरा था पृथ्वी पर। हम कपोल कल्पित बातें जोड़ने लगते हैं। कारण है कपोल कल्पित बातों को जोड़ने का, क्योंकि मूल घटना का कोई भी प्रमाण नहीं है। इसलिए हम उस मूल घटना को बड़ी कपोल कल्पनाओं के घेरे में खड़ा कर देते हैं, ताकि तुम मूल की बात ही न पूछ सको। हम बड़ा जाल खड़ा कर देते हैं। वह जाल ही संप्रदाय है। और दूसरी पीढ़ियां मानती हैं, क्योंकि और पीढ़ियां मानती थीं; क्योंकि पिता मानते थे, इसलिए बेटा मानता है।
यह लाश है। इसमें सब मर जाता है। इस मरी हुई लाश को जो ढो रहा है, वह कबीर को न समझ पाएगा। और मजा तो यह है कि कोई बुद्ध के साथ हो, राम के साथ हो, कृष्ण के साथ हो, तो ठीक है; कबीर के साथ भी वही हो गया। कबीरपंथी लाश ढो रहे हैं।
आज मैं तुमसे जो कह रहा हूं, कल मेरे साथ भी यही हो जाएगा। तुम अपने बच्चों को जरूर कहना चाहोगे जो मैंने तुमसे कहा है। तुम बांटना चाहोगे। अभी दो दिन पहले ही एक मित्र आए। पति-पत्नी दोनों संन्यासी हैं।
पत्नी को गर्भ है तो वे चाहते थे कि उनके गर्भ के बच्चे को अभी संन्यास दे दूं। बड़ा प्रेम है! बड़ा भाव है! लेकिन ऐसे ही तो संप्रदाय निर्मित होता है।
वह गर्भ के बच्चे को तो कोई पता ही नहीं। उसकी तो स्वीकृति भी नहीं। वह तो

अभी बेहोश है। उनके प्रेम को कोई दोष नहीं दे सकता। यह प्रीतिकर है कि पिता और मां सोचे कि उनका बच्चा भी संन्यस्त हो। लेकिन इस बच्चे को तो कुछ भी पता नहीं है। और यह बच्चा संन्यासी बना दिया जाए तो आरोपण होगा; कल यह ढोएगा संन्यास को। तुमने तो अपनी प्रफुल्लता से लिया था; तुमने तो अपने आनंद से लिया था; तुमने तो किसी स्वाद से लिया था; तुमने तो निर्णय लिया था; तुम्हारा तो यह संकल्प और समर्पण था; लेकिन इस बेटे पर तो आरोपण होगा। अगर यह छोड़ेगा तो अपराध अनुभव करेगा कि माता-पिता ने संन्यास दिलवाया और मैं छोड़ता हूं, तो गिल्ट, अपराध पैदा होगा; अगर पालन करेगा तो झूठा होगा, क्योंकि मन में तो कोई भाव नहीं है। सांप्रदायिक व्यक्ति ऐसी ही दुविधा में फंसा होता है। अगर न माने, न करे तो अपराध पकड़ता है--क्योंकि मैं धोखा दे रहा हूं पिता को, माता को, लंबी परंपरा को; न मालूम कितने लोगों ने आशाएं बांधी हैं उन सबको मैं तोड़ रहा हूं, धोखा दे रहा हूं। तो अगर कोई अपने संप्रदाय को छोड़ दे तो ग्लानि होती है, मन अपराध से भरता है; अगर पकड़े रखे तो कोई आनंद नहीं आता, कोई नृत्य पैदा नहीं होता--बोझ की तरह ढोता है। सांप्रदायिक व्यक्ति बड़ी दुविधा में जीता है।
मगर यह स्वाभाविक है। जिस दिन यह समझ लिया जाएगा पृथ्वी पर कि यह स्वाभाविक है, उस दिन यह बंद हो जाएगा। और जो व्यवहार लाश के साथ करते हैं, वही व्यवहार हमें संप्रदाय के साथ करना चाहिए। बहुत प्रेम है, माना बचाने का मन होता है; लेकिन पिता मर जाते हैं तो क्या करोगे? पति मर जाता है तो क्या करोगे? बेटा मर जाता है तो क्या करोगे? मन होता है कि छाती से लाश चिपका लें; मगर कितनी देर चिपकाए रखोगे? अगर लाश को ज्यादा देर चिपकाया तो तुम भी लाश हो जाओगे। उसकी दुर्गंध तुम्हें भी दुर्गंध से भर देगी। आज नहीं कल अपने को समझाकर लाश से छुटकारा लेना पड़ता है। पीड़ा होती है। इतना रस था, इतना प्रेम था, इतना लगाव था आज उसी को जलाने जाते हैं। लेकिन जाना ही पड़ता है। कष्ट से, दुख से, रोते हुए, जार-जार संताप से; लेकिन जलाने जाना ही पड़ता है।
जो लाश के साथ होता है, वही धर्म के साथ होना चाहिए--जब धर्म मर जाए। रोते हुए जाओ, दुखी जाओः लेकिन उसे विदा दे दो। और जब पृथ्वी पर लोग संप्रदायों को विदा देने की हिम्मत नहीं जुटाते, तब तक लाशें बढ़ती जाएंगी, दुर्गंध फैलती जाएगी।
मंदिर, मस्जिद, चर्च मरघट हो गए हैं। वहां बड़े महिमावान पुरुषों की लाशें पड़ी हैं, यह बात सच है; लेकिन लाश लाश है।
दूसरी बात, जब भी धर्म का अवतरण होता है किसी व्यक्ति में; जब कोई व्यक्ति आधार बनाता है धर्म की ज्योति को उतार लेने का; जब कोई व्यक्ति इतना सबल होता है अपनी शांति में कि परमात्मा को उतरना पड़ता है उसमें; जब कोई इतना गहन हो जाता है अपने समर्पण में कि अनंत को आ कर के छूना पड़ता है उसे; जब किसी की प्यास परम हो जाती है, और किसी का रोआं-रोआं उसकी व्याकुलता से भर जाता है, तो उस पर वर्षा होती है परमात्मा की। जब यह घटना घटती है तब यह घटना इतने गहन निविड़ अंतस्तल में घटती है कि वहां शब्दों की कोई पहुंच नहीं; वहां भाषा का कोई स्थान नहीं; वहां कोई तरंग भी नहीं पहुंचती। वहां सब निस्तरंग है। वहां ज्योति अकंप जलती है।
उस भीतर की घटना को जब बाहर बताने आना पड़ता है, तब संप्रदाय पैदा होता है। लेकिन वह भी होगा। ज्ञानी बिना बताए नहीं रह सकता; क्योंकि जो जाना है, उसे बांटना ही होगा; जो पाया है उसे बांटना ही होगा।
दुख का स्वभाव है कि तुम चाहो तो बचा सकते हो। आनंद का स्वभाव है कि तुम उसे बचा नहीं सकते; तुम्हें बांटना ही होगा। दुखी आदमी एक कोने में बैठ सकता है, आनंदित आदमी नहीं बैठ सकता। वह चाहेगा कि मित्रों को इकट्ठा कर ले, भोज दे दें; आज तो पूर्णिमा की रात है; तारों के नीचे नाच लें; जो उसे मिला है, थोड़ा सा बांट दें। आनंद बंटना चाहिए। जैसे फूल जब सुगंध से भर जाता है तो खिल जाता है, सुवास लुट जाती है; बादल जब जल से भर जाता है--तो बरस जाता है। ऐसी ही जब आनंद की घटना भीतर घटती है, उसे सम्हालना असंभव है; उसे कभी कोई नहीं सम्हाल पाया। दुखी आदमी चुप हो जाए, एकांत में बैठ जाए, गुहा में छिप जाए; आनंदित आदमी कितनी ही देर गुहा में बैठा हो, उतरकर वापस संसार में आ जाता है। दुखी महावीर जंगल जाते हैं। आनंदित महावीर बाजार

में लौट आते हैं। दुखी बुद्ध भाग जाते हैं, महल से, आनंदित बुद्ध गांव-गांव भटकते हैं बांटने को। दुखी आदमी पलायन करता है जब आनंद की घटना घटती है, तो वह उतर आता है ठेठ वहां, जहां भीड़ है, जहां लेनेवाले हैं, जहां प्यासे लोग हैं। जहां पृथ्वी प्यास से तड़प रही है, वहां बादल बरसने को जाता है।
पर कठिनाई भीतरी है। जो जाना है, वह निःशब्द में जाना है। कहना होगा शब्द में, क्योंकि सुननेवाले शब्द को समझ सकेंगे, निःशब्द को नहीं। इसलिए कुरान, गीता, बाइबिल, इंजील, तालमुद, अवेस्ता इनका जन्म होता है। फिर लोग इन किताबों को ढोते रहते हैं; फिर इन किताबों में खोजते रहते हैं। इन किताबों में धर्म नहीं है। ये किताबें धर्म से पैदा हुई हैं, मगर इन किताबों में धर्म नहीं है। और जिन्होंने समझा कि इन किताबों में ही है, वे भटक गए; उनको फिर कभी भी न मिलेगा। ये किताबें तो इशारा हैं, ये तो मील के पत्थर हैं। ये तो कहती हैं, "और आगे!" बस, सब किताबें इतना ही कहती हैं, "और आगे! यहां मत रुको और आगे। चलो, बढ़ो--और आगे।" सब मील के पत्थर हैं, जहां तीर लगा है, "और आगे।
कोई किताब मंजिल नहीं है, क्योंकि शब्द कैसे मंजिल हो सकता है? निःशब्द मंजिल है। परम मौन मंजिल है।
बड़ी अड़चन हो जाती है। जाना था निःशब्द में, जाना जा सकता है केवल निःशब्द में, बताया शब्द में। लोग शब्द को पकड़ लेते हैं। उनकी भी कठिनाई है--जाहिर है, साफ है, क्योंकि जो उनको बताया गया, वह पकड़ लेते हैं। और कठिनाई बड़ी सूक्ष्म और जटिल है।
जब बुद्ध बोलते हैं तो शब्द में तो सत्य नहीं होता; लेकिन बुद्ध के ओठों को छूकर जो शब्द निकलते हैं, उनमें सत्य की झनकार होती है। शब्द तो तुम जो उपयोग करते हो, वही बुद्ध करते हैं, लेकिन शब्दों का गुणधर्म बदल जाता है। जब बुद्ध बोलते हैं, जो सिर्फ शब्द नहीं बोले जा रहे हैं; बुद्ध की आंखें भी कुछ कह रही हैं; बुद्ध के हाथ भी कुछ कह रहे हैं, बुद्ध का पूरा व्यक्तित्व कुछ कह रहा है। जब बुद्ध शब्द बोल रहे हैं, तब शब्द तो सिर्फ एक छोटा अंश है; बुद्ध का पूरा होना उसमें समाविष्ट है। तो बुद्ध जब बोलते हैं तो निर्जीव शब्द भी जीवन की प्रतीति ले लेते हैं; साधारण से शब्द भी हीरों की चमक ले लेते हैं। उस क्षण में तुम शब्द को अपने भीतर ले जाते हो। बुद्ध का सारा व्यक्तित्व उस शब्द के आसपास एक वायुमंडल की तरह तुम्हारे भीतर आता है। लेकिन गीता में जब तुम पढ़ोगे तो कागज पर छपे स्याही के अक्षर हैं; वहां कृष्ण की मौजूदगी नहीं है। जब तुम धम्मपद में पढ़ोगे तो कागज और स्याही है; वहां बुद्ध के ओंठ, बुद्ध की आंखें, बुद्ध के हाथ, बुद्ध का होना, वहां कुछ भी नहीं है।
ऐसा ही समझो कि अगर तुमने संगीत की किताबें देखी हों, चिह्नों में संगीत लिखा होता है। संगीत में और संगीत की किताब में जहां चिह्न बने होते हैं संगीत के, उसमें जितना फर्क है--उतना ही फर्क बुद्ध के वचन और धम्मपद में है, कृष्ण के वचन और गीता में है। कहां बुद्ध के वचन--उनके भीतर की ज्योति से ज्योतिर्मय; उनके भीतर की सुवास से आंदोलित; उनके भीतर की गंध को लेते हुए, क्योंकि उनसे डूबकर आ रहे हैं, उनके गहनतम से आ रहे हैं! शब्द निःशब्द को कह नहीं सकते, लेकिन निःशब्द में से डूबकर आए हैं तो निःशब्द की थोड़ी से ध्वनि उन शब्दों में मौजूद होती है। वही ध्वनि प्रभावित करती है, शब्द प्रभावित नहीं करते।
शब्द तो मैं भी वही बोल रहा हूं, जो तुम बोलते हो। मेरे शब्दों के कारण तुम मेरे पास नहीं आ सकते। क्योंकि एक भी शब्द तो नया नहीं है जो तुम नहीं जानते। तुम मेरे पास किसी और कारण से हो। शब्द के पास-पास कुछ और भी घट रहा है। शब्द के आसपास कुछ और भी घट रहा है। भला तुम उसे ठीक से समझ भी न पाओ, लेकिन तुम्हारा हृदय उसे पहचानता है। भला तुम उसे पकड़कर मुट्ठी में बांध ही न पाओ, किसी को बता भी न पाओ; लेकिन कहीं अंतस्तल में कोई भनक पैदा होती है और तुम जानते हो कि जो मैं कह रहा हूं वह शब्दों में ही नहीं है। वही तुम्हें छूता है, वही तुम्हें आंदोलित करता है।
कई बार तुम्हें अड़चन होती होगी। तुम मेरे शब्द सुनते हो, ठीक वही शब्द तुम जाकर दूसरे को कहते हो--तुम हैरान हो जाते हो कि तुमसे प्रभावित ही नहीं हो रहा है? बात क्या है? यह भी हो सकता है, तुम मेरे शब्दों को सुधार

भी ले सकते हो, मुझसे भी अच्छा कर ले सकते हो--क्योंकि मैं कोई शब्दों में बहुत कुशल नहीं हूं; व्याकरण कोई ठिकाने की नहीं हैं--तुम उसे सुव्यवस्थित कर सकते हो; लेकिन तुम हैरान होओगे कि बात क्या है, वही मैं कह रहा हूं? शब्द कुछ भी नहीं हैं। शब्द तो निर्जीव हैं; जीवन तो तुम्हारे भीतर से डाला जाए तो ही डाला जाता है।
बुद्ध से जो प्रभावित हुए, उन्होंने शब्द संग्रहीत कर लिए। स्वभावतः, इतने बहुमूल्य शब्द बचाए जाने जरूरी हैं। फिर पीढ़ी दर पीढ़ी उन शब्दों का अनुस्मरण चलता है, पाठ चलता है, तुम भी थोड़े हैरान होओगे कि कबीर के वचनों में ऐसा कुछ खास तो नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि तुम्हें कबीर का एहसास नहीं है बुद्ध के वचनों में भी तुम्हें कुछ खास न दिखाई पड़ेगा। ऐसा क्या खास है? बड़े कवि हुए हैं, उनके वचनों में ज्यादा कुछ है। बड़े लेखक हैं, बड़े वक्ता हैं, उनके बोलने की कुशलता और! न तो बुद्ध, न तो कबीर, न तो मुहम्मद कोई वक्ता हैं, न तो कोई लेखक हैं; भाषा की कुशलता है ही नहीं--फिर क्यों इतने लोग प्रभावित हुए? कैसे इतनी क्रांति घटती हुई? नहीं, कबीर नहीं हैं क्रांति के कारण, कबीर की भाषा भी नहीं है; कबीर के भीतर जो ज्योति आकाश से उतरी है, जो अवतरण हुआ है--वही। सारा राज वहां है; सारी पूंजी वहां छिपी है जादू की; सारा चमत्कार वहां है। लेकिन वह तो खो जाता है कबीर के साथ; थोथे शब्द रह जाते हैं, जैसे चली हुई कारतूस। चली हुई कारतूस को तुम सम्हाले रहते हो। सोचते हो, "कितना बड़ा धड़ाका हुआ था! कारतूस तो वही है! सम्हाल लो।" लेकिन चली हुई कारतूस को सम्हाल कर भी क्या करोगे?
कुरान, बाइबिल, इंजील, तालमुद, अवेस्ता, धम्मपद--सब चली हुई कारतूस हैं। चल चुकीं, धड़ाका हो चुका, अब तुम नाहक ढो रहे हो। अब इसके बल पर तुम किसी युद्ध में मत उतर जाना। यह चली हुई कारतूस अब किसी काम न आएगी।
इससे अड़चन होती है। इससे बड़ी अड़चन होती है। संप्रदाय शब्दों से घिर जाता है; धर्म निःशब्द है। संप्रदाय शास्त्रों से घिर जाता है; धर्म का कोई शास्त्र नहीं। शून्य ही उसका शास्त्र है। मौन ही उसकी वाणी है।
और तीसरी बातः जब कभी अवतरण होता है धर्म का, परमात्मा का, तो उस व्यक्ति के माध्यम से बहुत सी घटनाएं घटती हैं। वह व्यक्ति बहुत तरह की विधियों का उपयोग करता है--तुम्हें सहायता पहुंचाने को, तुम्हें मार्ग पर चलाने को।
बुद्ध ने भिक्षुओं को पीतवस्त्र दिए। पीले वस्त्र प्रतीक हैं, प्रतीक हैं मृत्यु के। कबीर जो कह रहे हैं कि जीते जो मर जाए, वही बचेगा। जैसे पीला हो जाता है प Ÿा तो उसका अर्थ है कि मौत करीब आ रही है, प Ÿा मरने के करीब है। फिर जब बिल्कुल पीला हो जाता है तो मर गया। फिर वह किसी भी क्षण वृक्ष से टूट जाता है--न वृक्ष को पता चलता है, न प Ÿो को पता चलता है; मौत घट गई। पीले प Ÿां को देखकर बुद्ध को स्मरण आया--पीत वस्त्र उपयोगी होंगे। वह तुम्हें याददाश्त दिलाएंगे कि मर जाना है; कि इस जीवन में जीना नहीं है, मर कर जीना है; पीले प Ÿो की तरह जीना है--जो लटका है, अब गया, अब गया, अब गया! किसी भी क्षण हवा की जरा सी लहर और पीला प Ÿा गया! ऐसे जीना है। क्योंकि मौत किसी भी क्षण घट सकती है। मौत के प्रति जागे हुए जीना है। मौत को स्वीकार करके जीना है।
इसलिए बुद्ध अपने भिक्षुओं को पीले वस्त्र दिए। भिक्षु अब भी पीले वस्त्र पहने हुए हैं, लेकिन प्रतीक जड़ हो गया। अब उसमें कोई जीवन नहीं है। उन्हें कुछ पता भी नहीं है कि क्यों वे पीले वस्त्र पहने हुए हैं।
मैंने तुम्हें गैरिक वस्त्र दिए हैं। जैसे बुद्ध को पीला प Ÿा मौत का सूचक मालूम पड़ता है। ऐसे ही दूसरे छोर से गैरिक रंग दो बातों का प्रतीक हैः एक तरफ तो सुबह उगते हुए सूरज का रंग है--एक नए जीवन का आविर्भाव; दूसरी तरफ सांझ को डूबते हुए सूरज का भी रंग वही है। एक तरफ संसार की तरफ से मर जाना है, परमात्मा की तरफ जीना है। एक तरफ सुबह, एक तरफ सांझ--दोनों एक साथ। गैरिक रंग अग्नि का रंग है, और अग्नि से गुजरे बिना कोई भी निखरता नहीं। तुम्हारी आत्मा का स्वर्ण निखरेगा अग्नि से गुजरकर। गैरिक रंग अग्नि का रंग है, उसका अर्थ है कि पूरा जीवन अग्निशिखा है। यहां से तुम्हें शुद्ध होकर गुजरना है, अन्यथा तुम स्वीकार न हो सकोगे।

बहुत पुकारे जाते हैं, बहुत कम चुने जाते हैं। हजार यात्रा करते हैं,
एक पहुंचता है। अगर तुमने जीवन को पूरा मौका दिया कि तुम्हें जला डाले; तुमने अपने को बचाने की कोशिश न की, तुम स्वर्ण की तरह अग्नि में पड़ गए और सब तरह से तुमने जलने दिया अपने को--एक बात पक्की है कि सोना नहीं जलता, कचरा ही जलता है। तुम्हारे भीतर जो सोना है, वह बच रहेगा; जो कचरा है, वह जल जाएगा।
गैरिक वस्त्र चिता का रंग है, तो उनमें वह बात तो छिपी ही है जो पीत वस्त्रों में छिपी है कि तुम जीवन को मर कर जीना--जैसे प्रतिपल तुम चिता पर चढ़ रहे हो, आग की लपटें उठ रही हैं तुम्हारे चारों तरफ, तुम्हारे गैरिक वस्त्र आग की लपटें बनी रहें तुम्हारे चारों तरफ; तुम ऐसे जीओ जैसे चिता पर बैठा हुआ आदमी जी रहा होः किसी भी पल जल जाएगा, राख पड़ी रह जाएगी। लेकिन यही खतरा है, पीछे लोग पीले वस्त्र पहने हुए चलते रहते हैंः जड़ प्रतीक हाथ में रह जाता है, अर्थ खो जाता है। तब संप्रदाय निर्मित हो जाता है। तब तुम पहनते हो पीले वस्त्र या गैरिक वस्त्र या माला, लेकिन वहां जड़ता हो जाती है। अब उसमें कोई अर्थ नहीं हैं। अब तुम्हारे हृदय का उससे कोई संबंध नहीं है। अब तुम पहने हो, क्योंकि पहनना है। अब तुम पहने हो, क्योंकि सदा से लोग पहनते रहे हैं। अब तुम पहने हो, क्योंकि न पहनोगे तो लोग क्या कहेंगे! अब और बातों का कंसिडरेशन है। अब और बातों का विचार है। लेकिन मूल बात, मूल अर्थ खो गया।
अब हम समझने की कोशिश करें कबीर के वचनों को।
"साधो देखो जग बौराना।" कहते हैं, देखो, सारा जगत पागल हो गया है; और पागल इसलिए हो गया है कि धर्म कि जगह संप्रदाय में जी रहा है; जीवित धर्म को तो भूल गया है, मृत धर्म को पकड़ लिया है।
"सांची कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।।
बड़े आश्चर्य की बात है, कबीर कहते हैं, कैसा पागल है यह संसार कि अगर
सच कहूं तो मुझे मारने लोग आते हैं; अगर झूठ कहूं तो पतियाते हैं! पतियाना अर्थात विश्वास करना।
संप्रदाय झूठ है; धर्म सत्य है। और जब भी तुम धर्म की बात करोगे, लोग मारने आएंगे; और जब भी तुम झूठ की बात करोगे, लोग पतियाएंगे। जब भी तुम संप्रदाय की बात करोगे, लोग कहेंगेः वाह, वाह! क्योंकि तुम उन्हीं की मान्यताओं की बात कर रहे हो; तुम उन्हीं के अहंकार की तृप्ति कर रहे हो। जब भी तुम धर्म की बात करोगे, लोग खड़े हो जाएंगे; दुश्मन की तरह। क्योंकि अब तुमने कुछ ऐसी बात कही जो उनके विपरीत है।
धर्म सदा संप्रदाय के विपरीत है। ज्ञानी सदा पुरोहित के विपरीत है।
प्रबुद्ध व्यक्ति सदा पंडित के विपरीत है। "साधो देखो जग बौराना।
"सांची कहौ तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।।
हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
परमात्मा किसी का भी नहीं है। तुम परमात्मा के हो सकते हो, वह समझ में आता है; लेकिन तुम उलटा काम करते हो--तुम परमात्मा को अपना बना लेते हो।
परमात्मा के हो जाओ, क्योंकि तुम बूंद हो, वह सागर है; समर्पण कर दो अपना।
लीन हो जाओ विराट में, समझ में आता है। लेकिन लीन तो कोई नहीं होता; लोग उलटे परमात्मा पर ही कब्जा कर लेते हैं। बूंद सागर पर कब्जा कर रही है।
मुट्ठी में आकाश बांधने की कोशिश चल रही है।
"हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
दावेदारी बन गई है। धर्म तो सिखाता है समर्पण; संप्रदाय करता है दावेदारी। धर्म तो सिखाता है कैसे तुम मिटो और संप्रदाय इस जगत में सबसे असंभव बात करवाता है कि तुम परमात्मा के ऊपर भी कब्जा कर लो, तुम दावेदार हो जाओ। परमात्मा तुम्हारा रक्षक है; लेकिन संप्रदाय कहता है, तुम परमात्मा की रक्षा करो--कहीं मुसलमान आकर मंदिर की मूर्ति न तोड़ दें; कहीं मस्जिद में कोई हिंदू आग न लगा दे; कहीं कुरान का कोई अपमान न कर दें; कहीं गीता का कोई विरोध न कर दे--तुम्हें रक्षा करनी है, जैसे तुम्हारे बिना परमात्मा बड़ी असहाय अवस्था में पड़ जाएगा; अगर तुम न हुए, परमात्मा का क्या होगा! जगह-जगह कुटेगा, पिटेगा; लोग आग लगाएंगे, मारेंगे, काटेंगे, तोड़ेंगे! तुम ही उसे बचा रहे हो!

परमात्मा को तुमने समझा क्या है? कोई वस्तु है, जिस पर तुम दावा कर दो? कबीर के लिए तो बहुत मुश्किल रही होगी, क्योंकि कबीर का कुछ पक्का नहीं है कि वे हिंदू थे कि मुसलमान। कबीर जैसे किसी आदमी का कुछ पक्का नहीं होता। और उनके साथ तो जीवन में भी घटना ऐसी घट गई थी कि मां-बाप बच्चे को सरोवर के किनारे छोड़कर चले गए--किसका था, कभी पता नहीं चला; जायज था, नाजायज था, कुछ पता नहीं चला; हिंदू का था, मुसलमान का था, कुछ पता नहीं चला। ऐसा ख्याल ही था लोगों का कि मुसलमान का बच्चा है। रहा होगा। और एक हिंदू संन्यासी ने कबीर को बड़ा किया। तो गुरु तो हिंदू था, मां-बाप शायद मुसलमान रहे होंगे।
तो कबीर तो बड़ी मुश्किल में थे। हिंदू न घुसने दे मंदिर में उनको, क्योंकि वे मुसलमान हैं; मुसलमान न घुसने दे मस्जिद में, क्योंकि वे हिंदू गुरु के शिष्य और हिंदू घर में पले हैं--"यहां कहां आते हो?" जिन्होंने जिंदगी भर कबीर को मंदिर-मस्जिद में न घुसने दिया; लेकिन मरते वक्त उन्होंने झगड़ा खड़ा कर दिया। जब वे मर गए, तो मुसलमानों ने कहा कि हम दफनाएंगे। मस्जिद में तो न घुसने दिया। कबीर ठीक ही कहते हैं कि "साधो देखो जग बौराना!" और हिंदुओं ने कहा कि हम दफनाने न देंगे, जलाएंगे। जीवित कबीर को दोनों ने इनकार किया। वे लाश पर कब्जा करने आ गए। यही
तो संप्रदाय की कुशलता हैः धर्म को इनकार करता है, जीवित को इनकार करता है; क्योंकि जीवित के पास तुम गए, तो बदलोगे; मरे के पास गए, तुम तो बदल ही नहीं सकते, मुर्दे पर तुम कब्जा कर लोगे। मरे कबीर पर कब्जा करने हिंदू-मुसलमान दोनों पहुंच गए। और यह कहानी कुछ ऐसी है कि लगती है सार्वभौम है। नानक के साथ यही हुआ। तारण के साथ यही हुआ। और भी संतों के जीवन में ऐसा हुआ कि मरते वक्त लोग कब्जा करने पहुंच गए।
यह कठिनाई समझ में आती है; क्योंकि मुर्दे पर कब्जा किया जा सकता है, जीवित कबीर को तो तुम छू भी न सकोगे, छुओगे तो जल जाओगे। जीवित कबीर के पास जाओगे तो क्रांति घटेगी। वह तो आग है--ऐसी आग है जिसमें तुम्हारा कचरा जल जाएगा और सोना बचेगा। लेकिन मरे हुए कबीर को जलाने लोग पहुंच गए; खुद जलने न पहुंचे जिंदा कबीर के पास; और झगड़ा खड़ा कर दिया। अब भी, जहां कबीर की मृत्यु घटी, वह मकान दो हिस्सों में बंटा है--आधे पर हिंदुओं का कब्जा है, आधे पर मुसलमान का--बीच में एक बड़ी दीवार है। आधे को मुसलमान पूजते हैं--वह कबीर की दरगाह है; और आधे को हिंदू पूजते हैं--वह कबीर की समाधि है। "हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना।।
और मर्म की बात इतनी है कि तुम परमात्मा के हो सकते हो; परमात्मा का तुम दावा कर रहे हो कि मेरा! तुम परमात्मा के हो जाओ, काफी है। और जो परमात्मा का हो गया, उसी ने मर्म जाना।
"आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना।।
धर्म को भी लोग लड़ाई का स्थल बना लिए हैं। धर्म का एक ही उपयोग है कि उसके द्वारा लोग अच्छी तरह लड़ सकते हैं। और ध्यान रखना, अधर्म के लिए लड़ो तो मन में थोड़ा अपराध भी मालूम पड़ता है; धर्म के लिए लड़ो तो काम इतना धार्मिक है कि अपराध का तो कोई सवाल ही नहीं। मुसलमान सोचता है कि अगर धर्मयुद्ध में मारे गए तो मोक्ष निश्चित है। हिंदू सोचता है कि अगर धर्म के लिए शहीद हो गए तो स्वर्ग के दरवाजे पर बैंड-बाजे मौजूद हैं। एक बात ख्याल में ले लेना कि अच्छी बात के लिए लोग लड़ना सुगम पाते हैं; बुरी बात के लिए लड़ने में तो थोड़ा-सा संकोच भी होता है कि क्या लड़ाई कर रहे हो! लेकिन अच्छी बात के लिए? लड़ाई में बड़ा मजा आ जाता है।
इसलिए लोग लड़ने के लिए अच्छी बातें खोज लेते हैं; कारण तो लड़ना है, बहाने अच्छे खोज लेते हैं; हिंदू-धर्म खतरे में है--झगड़ा शुरू! अब हिंदू- धर्म को बचाना ही पड़ेगा! तुमने ठेका लिया है? तुम धर्म के बचाने वाले कौन? कि इस्लाम खतरे में हैः बस, पागलों की दौड़ शुरू हो गई!
और फिर धर्म के नाम पर झूठ बोलो; धर्म के नाम पर अधर्म करो; अहिंसा के नाम पर तलवार उठा लो! कबीर ठीक ही कहते हैं, "साधो देखो जग बौराना!" लोग बिल्कुल पागल मालूम होते हैंः अहिंसा के लिए भी लोग तलवार उठा लेते हैं, "साधो देखो जग बौराना!" लोग बिल्कुल पागल मालूम होते हैंः अहिंसा के लिए

भी लोग तलवार उठा लेते हैं; यह भी भूल जाते हैं कि तलवार उठाने का मतलब है कि तुमने ही हिंसा कर दी। धर्म के लिए लड़ने का मतलब तुमने ही अधर्म करना शुरू कर दिया। युद्ध ही तो अधर्म है। प्रेम है धर्म; घृणा है अधर्म। और धर्म के नाम पर कितनी घृणा फैलाई जाती है! धर्म है निरहंकार; लेकिन धर्म के नाम पर कितना अहंकार चलता है!
एक छोटे गांव में ऐसी ही घटना घटी कि एक ईसाई पादरी आया। आदिवासियों
का गांव है बस्तर में। और आदिवासियों को समझाना हो तो आदिवासियों के ढंग से समझाया जा सकता है। क्योंकि बहुत सिद्धांत की बात करने से तो कोई सार नहीं। न शास्त्र वे जानते हैं, न शब्द वे बहुत समझ सकते हैं। तो उसने एक तरकीब निकाली और उसने कई लोगों को ईसाई बना लिया। उसने तरकीब यह निकाली कि वह गांव में जाता, थोड़ा-बहुत धर्म की बात करता, भजन-कीर्तन करता और फिर दो मूर्तियां निकालता अपने झोले से--एक क्राइस्ट की और एक राम की, और दोनों को पानी में डालता। एक बालटी भरवा लेता और दोनों को पानी में डालता, और कहता कि देखो, जो खुद बचता है वही तुम्हें बचा सकता है; जो खुद ही डूब जाए, वह तुम्हें क्या बचाएगा! राम की मूर्ति लोहे की बना ली थी और जीसस की मूर्ति लकड़ी की बना ली थी। तो जीसस तो तैरते और राम एकदम डुबकी मार जाते। गांव के आदिवासी समझे कि बात तो बिल्कुल सच्ची है, तर्क साफ है--क्योंकि इन राम के पीछे हम फंसे हैं, और ये खुद ही डूब रहे हैं! उसने इस कारण कई लोगों को ईसाई बना लिया।
एक हिंदू संन्यासी गांव में मेहमान था। उसी संन्यासी ने ही पूरी कहानी बताई। वह बड़ा योग्य आदमी था। गांव के लोगों ने उससे भी कहा कि यह तो बड़ा रहस्य है, साफ है मामला। लेकिन लोग ईसाई हो गए। वह भीतर गया देखने। उसने समझ लिया कि मामला क्या है। भरी सभा में जब लोग प्रभावित हुए तो उसने कहा कि ऐसा काम किया जाए; पानी तो ठीक है, आग जलवाई जाए--जो बच जाए, वही तुम्हें बचाएगा। गांव के लोगों ने कहा, "यह तो बिल्कुल साफ मामला है। असली चीज तो आग है; पानी में क्या रखा है? वह ईसाई पादरी बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसने बड़ी कोशिश की कि बच निकले; लेकिन गांव के लोगों ने पकड़ लिया। उन्होंने कहा, "कहां जाते हो? यह तो परीक्षा होनी ही चाहिए, क्योंकि अग्नि परीक्षा तो शास्त्रों में भी कही है। जल-परीक्षा कभी सुनी?
वे जीसस जल गए!
संप्रदाय जीते हैं क्षुद्र तर्कों पर, बहुत छोटे तर्कों पर। बहुत छोटी-छोटी घृणा को जमा-जमा कर धीरे-धीरे वे अंबार खड़ा करते हैं। एक-एक ईंट घृणा की है, विद्वेष की है; दूसरे की निंदा की है; दूसरे को छोटा, बुरा बताने की है। प्रेम तो कहीं पता भी नहीं चलता। और जो घृणा फैला रहे हैं, वे प्रार्थना कैसे करते होंगे? उनकी प्रार्थना में भी वही घृणा होगी। प्रेम फैलाओ तो ही तुम्हारी प्रार्थना में प्रेम आएगा। क्योंकि जो प्रेम तुम्हारे जीवन का हिस्सा न बन जाए, वह तुम्हारी प्रार्थना में कभी आविर्भूत न होगा। तुमसे ही तो प्रार्थना उठेगी।
"साधो देखो जग बौराना।
आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना।
"बहुत मिले मोहि नेमी धरमी, प्रात करै असनाना।
बड़े नियम और धर्म को मानने वाले लोग--कबीर कहते हैं--मैंने देखे, रोज सुबह स्नान करते हैं काशी में। सब इकट्ठे ही हैं वहीं नियमी-धर्मी। वह काशी घर था कबीर का। वे रोज सुबह से चले जा रहे हैं गंगा का स्नान करने। "आतम छोड़ि पखानै पूजैं, तिनका थोथा ग्याना।
लेकिन मैं देखता हूं कि पूजा वे आत्मा की नहीं करते, पत्थरों की करते हैं। स्नान करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, नियम-धर्म का पालन करते हैं-- लेकिन पूजा पत्थर की करते हैं, चैतन्य की नहीं; दीये को पूजते हैं, ज्योति को नहीं। तो क्या होगा तुम्हारे स्नान से? पाप तुम करोगे, गंगा तुम्हारे पाप धोएगी? गंगा ने कौन-से पाप किए हैं जो तुम्हारे पाप धोए? गंगा का क्या कुसूर है? कितना ही तुम स्नान करो, शरीर को रगड़-रगड़ कर कितना ही धो डालो, इससे भीतर की चेतना तो न निखरेगी। इसका यह मतलब नहीं है कि स्नान मत करो। क्योंकि वैसे भी लोग हैं जो स्नान ही नहीं करते। क्योंकि वे कहते हैं, जब आत्मा ही की पूजा करनी है तो स्नान की क्या जरूरत?

जैन दिगंबर मुनि हैं; वे स्नान नहीं करते हैं। वे स्नान ही बंद कर देते हैं कि जब आत्मा की ही पूजा करनी है तो शरीर को क्या धोना? लोग पागल हैं और अतियों पर उतर जाते हैं।
मध्य युग में युरोप में ईसाइयत स्नान के खिलाफ हो गई और गंदगी परमात्मा तक पहुंचने का रास्ता मान लिया। एक संत एक सौ तीस वर्ष जीया, और कहते हैं, उसने कभी स्नान नहीं किया। और उसकी बड़ी पूजा थी, प्रतिस्रा थी, क्योंकि यह है आत्मज्ञानी!
तो समझकर चलना, रास्ता यह खतरनाक है। इसमें एक अति से दूसरी पर मत चले जाना। स्नान शरीर के लिए बिल्कुल जरूरी है। स्वच्छता सुखद है। लेकिन शरीर के स्नान से आत्मा शुद्ध नहीं होती। और न शरीर की गंदगी से आत्मा शुद्ध होती है, वह भी स्मरण रखना। नहीं तो शरीर को गंदगी में बिठा रखते हैं। कई परमहंस होकर बैठ जाते हैं, और वे वहीं खाना खाते हैं, वहीं मल-मूत्र त्याग करते हैं। कई उनकी पूजा करने वाले भी मिल जाते हैं कि यह आदमी ज्ञानी है, क्योंकि यह आत्मा की पूजा में लगा है, मालूम होता है, क्योंकि शरीर का इसे ख्याल ही नहीं है।
शरीर की जरूरत है। शरीर की जरूरत निश्चित ही पूरी करनी है। लेकिन शरीर की जरूरत को आत्मा की जरूरत मत समझ लेना।
"आसन मारि डिम्भ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना।
देखता हूं कि आसन मारकर बैठे हैं और भीतर सिवाय दंभ के और गुमान के सिवाय कुछ भी नहीं है। तो आसन ही मारकर बैठने से क्या होगा, अगर आसन के भीतर अहंकार ही भर रहा है? इसका यह अर्थ नहीं है कि आसन का उपयोग नहीं है। इसका इतना ही अर्थ है कि आसन मार लेने से तुम यह मत समझ लेना कि अहंकार मर जाएगा।
आसन का अपना उपयोग है। अगर शरीर को बिल्कुल शांत, फिर करके बैठ जाओ, तो शरीर की थिरता के कारण मन की गति में बाधा पड़नी शुरू हो जाती है। मन शांत हो जाएगा, ऐसा नहीं है; लेकिन शरीर अगर थिर हो तो मन के अशांत होने में बाधा पड़ती है। शांत शरीर के भीतर मन के शांत होने की संभावना बढ़ जाती है। स्नान करके स्वस्थ मन से, स्वस्थ शरीर से तुम पूजा करने आए हो, तो पूजा की संभावना बढ़ जाती है। गंदगी से भरे हुए, थके-हारे, धूल-धवांस में दबे, तुम पूजा करने आए हो--पूजा की संभावना कम हो जाती है। लेकिन सिर्फ स्नान कर लेना पूजा नहीं है। स्नान कर लेना पूजा के लिए सहारा हो सकता है। स्नान कर लेना पर्याप्त नहीं है; जरूरी है पर्याप्त नहीं है। कुछ और होना जरूरी है। स्नान को ही सब मत समझ लेना। वही धर्म और संप्रदाय का भेद है। धर्म जीवन की समस्त चीजों का उपयोग करता है ताकि परमज्योति जल सके। संप्रदाय उपयोग में ही अटक जाता है, ज्योति की बात ही भूल जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक आदमी के घर नौकर था। वह बड़ा रईस आदमी था, लेकिन मुल्ला से परेशान था। उसने एक दिन कहा कि मैं कई बार तुम्हें बता चुका, मगर अब एक सीमा होती है हर चीज की। तीन अंडे लाने के लिए बाजार तीन दफा जाने की जरूरत नहीं है। एक ही दफे में ले आ सकते हो।

कुछ दिन बाद वह अमीर बीमार पड़ा। उसने नसरुद्दीन को कहा कि जाओ, वैद्य
को बुला लाओ। नसरुद्दीन गया, वैद्य को ले आया। लेकिन वह बड़ी देर बाद लौटा तो अमीर ने कहा कि इतनी देर कैसे लगी? उसने कहा, और सबको भी बुलाने गया था। अमीर ने कहा, "और सब कौन हैं? मैंने तुम्हें वैद्य को बुलाने भेजा था।" तो उसने कहा कि वैद्य अगर कहे कि मालिश करवानी है, तो मालिश करने वाला लाया हूं; वैद्य अगर कहे कि पुलटिस बंधवानी है तो पुलटिस बनाने वाले को लेकर आया हूं; वैद्य अगर कहे कि फलां तरह की दवा चाहिए, तो केमिस्ट को भी बुला लाया हूं; और अगर वैद्य असफल हो जाए तो मरघट ले जाने वाले को भी लाया हूं। सब मौजूद हैं। तीन अंडे एक साथ ले आया हूं।
समझ बारीक बात है, और सिर्फ क्रियाकांड समझ नहीं है। क्रियाकांड उसने पूरा कर दिया, लेकिन समझ की कोई खबर न थी।
सांप्रदायिक व्यक्ति एक-एक हिसाब को पूरा कर देता है। सब क्रियाकांड परिपूर्ण होते हैं उसके। तुम उसमें भूल नहीं निकाल सकते। अब क्या भूल निकालोगे नसरुद्दीन में। उसने क्रियाकांड पूरा कर दिया। उसने गणित साफ

कर दिया पूरा, र Ÿाभर कमी नहीं छोड़ी; लेकिन बात वह बिल्कुल चूक गया। गणित साफ कर दिया लेकिन समझ से बिल्कुल चूक गया।
सांप्रदायिक व्यक्ति पूरा क्रियाकांड कर देता है; एक से लेकर सौ तक
सब नियम पूरे कर देता है, और फिर भी चूक जाता है। क्योंकि वह जो क्रियाकांड है, सहयोगी हो सकता है, लेकिन वही सब कुछ नहीं है। और वह जो क्रियाकांड है, वह बदला भी जा सकता है। वह अनिवार्य भी नहीं है। लेकिन जो अनिवार्य है, वह नहीं बदला जा सकता।
दीया कई ढंग का हो सकता है, ज्योति एक ही ढंग की होती है। दीया तुम गोल बनाओ, तिरछा बनाओ, कलात्मक बनाओ, साधारण बनाओ, सोने का बनाओ, मिट्टी का बनाओ, छोटा-बड़ा, जैसा तुम्हें बनाना हो बनाओ, दीये पर सब तुम कर सकते हो; लेकिन ज्योति का स्वभाव तो एक ही होगा। जब ज्योति जलेगी तो स्वभाव एक ही होगा। क्रियाकांड दीये के भीतर इतना लीन हो जाता है, इतनी बारीक नक्काशी करने लगता है दीये पर कि दीये में ही जीवन चुक जाता है, ज्योति जलाने का मौका ही नहीं आता। इतनी ही बात ख्याल रखना।
"आसन मारि डिम्भ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना। पीपर पाथर पूजन लागे, तीरथ वर्त भुलाना।।
असली तीर्थ तो भूल ही गया जो भीतर है।
तीर्थ का अर्थ है, जहां से परमात्मा की तरफ नाव छूटती है। काशी में तीर्थ नहीं है, क्योंकि वहां से नाव छोड़ोगे तो दूसरी तरफ पहुंच जाओगे, परमात्मा में नहीं पहुंच जाओगे।
तीर्थ का अर्थ होता हैः वह जगह जहां से नाव परमात्मा की तरफ छूटती है।
तो वह तीर्थ तो भूल ही गया। वह तो भीतर है। इस तरफ तुम हो, उस तरफ परमात्मा है--बीच में विराट जीवन की नदी है।
"पीपर पाथर पूजन लागेप्--और लोग वृक्षों को पूज रहे हैं, पत्थरों को पूज रहे हैं। "तीरथ वर्त भुलाना।" वर्त का अर्थ हैः व्रत, संकल्प। न तो कोई संकल्प है जीवन में, न कोई व्रत है; बस ऐसे ही अंधे अंधों को धक्का दिए जा रहे हैं। दूसरे कर रहे हैं, तुम भी कर रहे हो। वही काम संकल्प से किया जाए तो धार्मिक हो जाता है; और वही काम बिना संकल्प के किया जाए तो सांप्रदायिक हो जाता है।
जैसे तुमने प्रार्थना की, संकल्प से की। संकल्प का अर्थ हैः तुमने अपने पूरे प्राणों को ढाल दिया उस प्रार्थना में। तुमने प्रार्थना ऐसे की कि जैसे प्रार्थना जीवन और मरण का सवाल है। तुमने प्रार्थना ऐसे की कि खुद को पूरा दांव पर लगा दिया--यह व्रत का अर्थ होता है--पूरा दांव पर लगा दिया। रोआं-रोआं, श्वांस-श्वांस, हृदय की धड़कन-धड़कन तुमने सब समर्पित कर दीः यह संकल्प का अर्थ है। ऐसी प्रार्थना उतार लाएगी परमात्मा को भी, कहीं भी हो वह। कहीं भी छिपा हो वह गहन से गहन में, ऐसी प्रार्थना उसे खींच लेगी तत्क्षण।
लेकिन एक प्रार्थना है, तुमने की, जैसे तुम और काम करते होः खाना खाते हो, बाजार जाते हो, दुकान पर जाते हो, पत्नी से बातें करते हो, अखबार पढ़ते हो--ऐसी ही तुमने प्रार्थना की। ऊपर से शब्द तो एक जैसे हो सकते हैं, लेकिन भीतर का संकल्प अगर भूल गया हो तो प्रार्थना व्यर्थ है; तुम समय वैसे ही खो रहे हो। अच्छा था, तुम अखबार और थोड़ा पढ़ लेते, दुबारा पढ़ लेते। कोई फर्क नहीं है।
भीतर का संकल्प ही गुणात्मक भेद लाता है।
ऐसा हुआ कि बंगाल में एक बहुत बड़ा ज्ञानी हुआ। भट्टोजी दीक्षित उस ज्ञानी का नाम था। ऐसे वह बड़ा व्याकरण का ज्ञाता था और जीवन भर उसने कभी प्रार्थना न की। वह साठ साल का हो गया। उसके पिता नब्बे के करीब पहुंच रहे थे। पिता ने भट्टोजी का बुलाया और कहा कि, "सुन, अब तू भी बूढ़ा हो गया, और अब तक मैंने राह देखी कि कभी तू मंदिर जाए; आज तेरे साठ वर्ष पूरे हुए, तेरा जन्म दिन है। अब तक मैंने कुछ भी तुझसे कहा नहीं। लेकिन अब मेरे भी थोड़े दिन बचे हैं। कभी मैं चला जाऊं, कुछ भी पता नहीं। अब तेरे प्रार्थना करने का समय आ गया है। अब मंदिर जा। कब तक तू यह व्याकरण में उलझा रहेगा और गणित सुलझाता रहेगा। क्या सार है इसका? माना कि तेरी बड़ी प्रतिस्रा है, दूर-दूर तक तेरे नाम की कीर्ति है--पर इसका कोई सार नहीं। और तू अब तक मंदिर क्यों

नहीं गया, मैं पूछता हूं। तेरे जैसा समझदार, बुद्धिमान प्रार्थना क्यों नहीं करता?
तो भट्टोजी ने कहा कि "प्रार्थना तो एक दिन करूंगा। आज कहते हैं, आज की करूंगा। तैयारी ही कर रहा था प्रार्थना की; लेकिन तैयारी ही पूरी नहीं हो पाती थी। और फिर आपको मैं देख रहा हूं कि आप जीवन भर प्रार्थना करते रहे, कुछ भी न हुआ। आप रोज जाते हैं मंदिर और लौट आते हैं। आपको देखकर भी निराशा होती है कि यह कैसी प्रार्थना! और ऐसी प्रार्थना करने से क्या होगा? आप वहीं के वहीं हैं। लेकिन अब आपने आज कह ही दिया तो मैं सोचता हूं कि अब वक्त करीब आ रहा है, तो आज मैं जाता हूं; लेकिन शायद मैं लौट न सकूंगा।
बाप तो कुछ समझा नहीं। क्योंकि बाप ऐसे ही प्रार्थना करता था--एक क्रियाकांड था, एक सांप्रदायिक बात थी; करनी चाहिए थी, करता था।
भट्टोजी वापस नहीं लौटे। मंदिर में प्रार्थना करते ही गिर गए और समाप्त हो गए।... संकल्प!
भट्टोजी ने कहा, "प्रार्थना एक ही बार करनी है, दुबारा क्या करनी? क्योंकि दुबारा का मतलब है, पहली दफा ठीक से नहीं की। तो एक दफा ही ठीक से कर लेनी है, सभी कुछ दांव पर लगा देना है। अगर होता हो तो हो जाए।
तो वे कह गए थे, "या तो वापस नहीं लौटूंगा या वापस लौटूंगा तो दुबारा मंदिर नहीं जाऊंगा। क्योंकि क्या मतलब ऐसे जाने का?
यह संकल्प का अर्थ होता है!
संकल्प का अर्थ होता हैः समस्त जीवन को उंडेल देना एक क्षण में। तब दुबारा प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है। एक बार राम का नाम लिया भट्टोजी ने और राम के नाम के साथ ही वे गिर गए।
कबीर कहते हैं, "न तीर्थ का पता, न संकल्प का पता; पत्थर, पीपर लोग पूजे
जा रहे हैंः "साधो देखो जग बौराना।
"माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।
साखी सबदै गावत भूलै, आतम खबर न जाना।।
लोग माला पहने हैं, लेकिन उन्हें कुछ भी पता नहीं कि माला क्यों पहने हुए हैं। माला पर हाथ चल रहे हैं, मन कहीं और चल रहा है।
लोग थैली बना लेते हैं, माला थैली में रखे रहते हैं; और माला चलती रहती
है थैलों के भीतर और वे सब काम करते रहते हैंः दुकान चलाते रहते हैं, बात करते रहते हैं, कुŸो को भगा देते हैं, ग्राहक को लूट लेते हैं, और एक हाथ से माला चलती रहती है। माला यंत्रवत चल रही है। हाथ को भी काहे को उलझाए हो, एक बिजली की छोटी मोटर लगा लो, उस पर माला टांग दो, वह घूमती रहेगी।
वैसा भी किया है लोगों ने। तिब्बत में उन्होंने एक प्रेयर व्हील बना लिया है। उसको वे कहते हैंः प्रार्थना का चक्का। एक चक्का है छोटा-सा, जैसा चरखे का चक्का होता है, और उस पर प्रार्थना लिखी है। उसको एक दफा घुमा दिया तो वह जितने चक्कर लगा ले, उतनी प्रार्थना का लाभ है। तो लोग रखे रहते हैं बगल में, सब काम करते रहते हैं; जब वह फिर रुक गया, फिर एक धक्का मार दिया; फिर अपना काम कर लिया, फिर एक धक्का मार लिया। तो दिन भर में अनंत प्रार्थना का लाभ लेते हैं।
मेरे पास एक बौद्ध लामा कुछ दिन मेहमान हुआ, वह चक्का रखे रहता था। तो मैंने कहा, "बिल्कुल पागल है, इसको प्लग कर दे दीवाल से; तू अपना काम कर, यह अपना काम करे। चौबीस घंटे सोओ, जागो, चोरी करो, हत्या करो--तुम्हें जो करना हो, तुम करो; यह प्रार्थना का लाभ तो तुम्हें मिलता ही रहेगा। सिर्फ बिजली का बिल तुम चुका देना।
"माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।
"साखी सबदै गावत भूलैप्--और भजन-कीर्तन में लोग भूल जाते हैं, डूब जाते हैं और सोचते हैं कि यह ज्ञान की घड़ी घट रही है। कबीर कहते हैं, "आतम खबर न जाना।
वह भूलना संगीत का है। वह तो वेश्या के घर भी जो संगीत को सुनता है, वह
भी सिर डुलाने लगता है। उसमें तुम बहुत मूल्य मत समझ लेना। वह तो अच्छा संगीतज्ञ भी डुबा देता है लोगों को, सराबोर कर देता है।
"साखी सबदै गावत भूलैप्--तो भजन-कीर्तन में लग जाते हैं लोग और सिर डुलाने लगते हैं और समझते हैं कि बड़ी काम की बात हो रही है, कि बड़ा धर्म कमा

रहे हैं, कि देखो कैसे लीन हो गए हैं! "आतम खबर न जाना!" इन सब बातों से कुछ भी न होगा, जब तक भीतर का बोध न आ जाए। और भीतर का बोध आ जाए तो भजन-कीर्तन, माला, पत्थर सभी महत्वपूर्ण हो जाते हैं, और भीतर का बोध न आए, तो सभी व्यर्थ हो जाते हैं। इस बात को ठीक से ख्याल में रखें।
"घर घर मंत्र जो देत फिरत है माया के अभिमाना।
"गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े, अंतकाल पछिताना।।
और लोगों ने धंधा बना रखा है, घर-घर मंत्र देते फिरते हैं। कबीर कहते हैं, इन ब्राह्मणों, पंडितों ने व्यवसाय बना लिया है। वे देते फिरते हैं, बांटते फिरते हैं, और लोग सोचते हैं कि बस मंत्र मिल गया, अब क्या करना है! कान फूंक दिए गुरु ने, अब क्या करना है! निपट गए गुरु-मंत्र ले लिया!
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं तीस साल हो गए, गुरु-मंत्र लिया, अब
तक कुछ हुआ नहीं। गुरु-मंत्र लेने से कुछ होगा? और गुरु-मंत्र दिया किसने? इसकी भी कभी फिक्र की है कि जिसने गुरु मंत्र दिया, वह गुरु था भी? न, वे कहते हैं, ऐसा तो कुछ नहीं; गांव का पंडित था, उसने दे दिया।
गुरु-मंत्र तो केवल उसी से मिल सकता है जो जाग गया हो, और तो कोई मंत्र
दे नहीं सकता। तो पृथ्वी पर मुश्किल से एक, दो, तीन, चार, पांच उंगलियों पर गिने जाने वाले लोग होते हैं, जो मंत्र दे सकते हैं, गुरु मंत्र दे सकते हैं; लेकिन लाखों लोग दे रहे हैं।
कबीर कहते हैं, "गुरवा सहित सिष्य सब बूड़ेप्--गुरु और शिष्य सब डूब जाते हैं, लेकिन पता अंतकाल में चलता है, उसके पहले पता नहीं चलता है। अंतकाल पछितानाप्--जब मौत करीब आती है तो पता चलता है कि यह सब जिंदगी तो ऐसे ही गई। न गुरु मंत्र बचा सकता है, न माला का फेरना बचा सकता है, न पत्थर का पूजना बचाता है--मौत सामने खड़ी है! लेकिन तब समय भी नहीं बचता, कुछ करने का उपाय भी नहीं बचता।
मरने के पहले सजग हो जाना। अगर थोड़ी ठीक से खोज की तो तुम गुरु को खोज
ही लोगे। ठीक से खोज का अर्थ हैः यह काम सस्ता नहीं है। गुरु के पास होने का मतलब है समर्पण। मुफ्त नहीं मिलता है मंत्र। जब तक तुम अपने को पूरा ही झुका न दो, तुम अपने को पूरा मिटा ही न दो, तब तक नहीं मिलता है मंत्र। बड़े साहस की जरूरत है।
मेरे पास लोग आते हैं। मैं चकित होता हूं कभी-कभी कि लोग कुछ सोचते भी हैं या नहीं सोचते हैं। कोई आता है, वह कहता है कि सिर्फ माला दे दें, गेरुआ कपड़ा मैं न पहन सकूंगा। गेरुआ कपड़ा पहनने की हिम्मत नहीं है, जो कि कोई बड़ी हिम्मत नहीं है। क्या खास हिम्मत है? तुम्हारे कपड़े हैं, तुम गेरुआ रंग लो, किसी का लेना-देना है, किसी से प्रयोजन है? कपड़े तक रंगने से इतनी घबराहट है, आत्मा को तुम कैसे रंग पाओगे? इतना भी साहस नहीं है कि चार लोग हंसेंगे तो हंस लेंगे, चार लोग पागल कहेंगे तो कह लेंगे। ऐसे भी वे पागल ही कहते हैं तुमको।
एक राजनीतिज्ञ के खिलाफ किसी अखबार ने कुछ लिख दिया। वह बड़ा नाराज हो गया। वह बड़ा गुस्से में आया। मुल्ला नसरुद्दीन उसके मित्र हैं, उनके पास पहुंचा और कहा कि मैं इसको मिटाकर रहूंगा, अदालत में ले जाऊंगा।
नसरुद्दीन ने कहा, "बैठो। इस गांव में कितने लोग हैं।
उसने कहा, "दस हजार।
"कितने लोग अखबार पढ़ते हैं?
तो उसने कहा, "मुश्किल से हजार।
"नौ हजार की तो फिक्र छोड़ दो। हजार अखबार पढ़ते हैं, उनमें से कितने लोग तुमको जानते हैं?
"मुश्किल से आधे लोग जानते होंगे।
"पांच सौ बचे।
इन पांच सौ में से कितने लोग पहले से ही जानते हैं कि तुम गड़बड़ हो? अखबार ने कोई नई बात तो छापी नहीं। कोई झूठ भी नहीं छापा।
नसरुद्दीन ठीक जगह पर ले आया बात को। उस राजनीतिज्ञ ने थोड़ा संकोच करते हुए कहा, "आधे लोग।
"तो ढाई सौ लोग बचे। ये ढाई सौ लोग क्या बिगाड़ लेंगे तुम्हारा? ढाई सौ लाग जानते हैं कि तुम गड़बड़ हो, उन्होंने क्या बिगाड़ लिया? ये भी जान लेंगे

तो क्या बिगाड़ लेंगे? तुम फिजूल ढाई सौ लोगों के पीछे पंचायत में मत पड़ो। और उनमें से भी कई बाहर गए होंगे, गांव में न होंगे, कई को आज अखबार न मिला होगा। कई उसमें से इस खबर को चूक गए होंगे, पढ़ा न होगा। कई ने पढ़ा भी होगा, लेकिन कुछ और सोच रहे होंगे। तुम फिजूल की परेशानी में मत पड़ो। असलियत अगर ठीक से समझी जाए तो तुम्हारे सिवाय इस अखबार को किसी ने ठीक से नहीं पढ़ा है। किसको प्रयोजन है?
तुम बहुत चिंता में रहते हो कि लोग क्या कहेंगे! लोग! यह भी अहंकार का हिस्सा है कि तुम सोचते हो कि लोग तुम्हारे संबंध में सोच रहे हैं। कौन फिक्र पड़ी है किसको? अपना-अपना सोचने को काफी है। कोई तुम्हारे संबंध में नहीं सोच रहा है। फुर्सत किसे है? हां, एकाध दफा देख लेंगे तो शायद पूछ भी लें, शायद हंस लें तो वे पहले ही से हंस रहे हैं तुम पर। वे पहले से जानते थे। लोग पहले से ही जानते थे कि इनका दिमाग कुछ खराब है। अब गेरुआ पहन लिए हैं। कुछ नया नहीं होगा।
इतनी-सी छोटी घटना में लोग इतने परेशान मालूम होते हैं कि लगता है कि जीवन में कोई संकल्प की क्षमता नहीं रही और अंतर्यात्रा के लिए कुछ भी दांव पर लगाने के लिए हिम्मत नहीं है--मुफ्त मिल जाए!
एक मित्र मेरे पास आए दो दिन पहले ही और कहा कि "आपकी किताबें पढ़ता हूं, बड़ा आनंद आता है। आधी रात तक पढ़ता रहता हूं, कभी कभी सुबह हो जाती है मगर ध्यान में मुझे कोई रस नहीं है।" ध्यान में कोई रस नहीं है! किताबें पढ़ने में आनंद है! क्या कारण होगा? क्योंकि सारा जो कुछ मैं कह रहा हूं, यह इसलिए कह रहा हूं कि ध्यान में रस आ जाए। अगर मेरे शब्दों में रस आया और ध्यान में रस न आया तो मेरा शब्द व्यर्थ ही गया। क्योंकि, बोल ही इसलिए रहा हूं कि तुम शून्य हो जाओ; विचार इसलिए तुम्हारे सामने पेश कर रहा हूं कि तुम निर्विचार हो जाओ। और तुम कहते हो, विचार में बड़ा रस आता है! तो रस कहीं गड़बड़ है। रस सिर्फ तर्क में आता होगा, और विचार इकट्ठे कर लेने में आता होगा, और बड़े पंडित हो जाने में आता होगा, चार लोगों के सामने चर्चा करने में आता होगा; लेकिन रस वास्तविक नहीं है, अन्यथा पूरा प्रयोजन ही यह है कि रस ध्यान में आ जाए।
और ध्यान में कुछ करना पड़ेगा। पढ़ने में तुम्हें क्या करना पड़ता है? पढ़ना तो एक निष्क्रिय बात है। आंख के सामने किताब रख लो, अगर पढ़ना आता है तो बस पढ़ना शुरू हो गया। करना क्या है? जीवन को बदलने की कोई जरूरत नहीं होती पढ़ने में। पढ़ना तो इकट्ठा होता जाता है; जीवन वैसा का वैसा बना रहता है। ध्यान में जीवन बदलना पड़ेगा। पढ़ना सस्ता है; ध्यान कठिन है। ध्यान में तुम जैसे हो वैसे ही न रह जाओगे; रूपांतरण होगा। इसलिए ध्यान से लोग बचते हैं।
पढ़ना ठीक है; लेकिन पढ़ने से तुम ज्यादा से ज्यादा सांप्रदायिक हो पाओगे, मेरे संप्रदाय के हिस्से हो जाओगे; लेकिन तुम कभी धार्मिक न हो पाओगे। जिस धर्म को मैं बांट रहा हूं, उस धर्म में तुम भागीदार न हो पाओगे। और यह तो ऐसे ही हुआ कि मैं तुम्हें अमृत दे रहा था और तुमने अमृत इनकार कर दिया और तुम टेबल के पास रोटी के सूखे जो टुकड़े गिर गए थे, उनको बीनकर ले गए, उनको बांधकर ले गए। उसे तुमने संपदा समझ लिया।
"बहुतक देखे पीर औलिया, पढ़ै किताब कुराना।
करै मुरीद कबर बतलावै, उनहुं खुदा न जाना।।
बहुत देखे पीर, बहुत देखे औलिया, गुरु बहुत तरह के; पर इतना ही पाया कि
बस वे किताब पढ़ रहे हैं और जानकारी किताब तक सीमित है।
"पढ़ै किताब कुरानाप्--किताब यानी बाइबिल, किताब यानी धम्मपद। वे पढ़ रहे हैं किताब; लेकिन उन्होंने परमात्मा को नहीं जाना। किताब पढ़कर कोई परमात्मा को जानता है? काश, इतना सस्ता होता तो सभी ने जान लिया होता। जीवन को बदल कर ही कोई जानता है। खुद को देकर ही कोई जानता है। खुद को मिटाकर ही कोई पहचानता है। जब खुदी मिट जाती है तभी खुदा का अनुभव शुरू होता है।
"करै मुरीद कबर बतलावै, उनहुं खुदा न जाना।
और ये पीर-औलिया लोगों को शिष्य बना रहे हैं और उनको कब्रें दिखला रहे हैं कि यहां पूजा करो, यह रही कब्र।

कब्र के आसपास मुसलमान मंदिर खड़े कर लेते हैं, कब्र बड़ी महत्वपूर्ण
हो जाती है।
जीवन चारों तरफ बरस रहा है और तुम कब्रों पर बैठे पूजा कर रहे हो। परमात्मा सब तरफ मौजूद है, तुम मृत्यु की आराधना कर रहे हो? जब कि मृत्यु सबसे बड़ा झूठ है। कोई कभी मरा ही नहीं। मरना घटता ही नहीं। जीवन ही है। और जिसको तुम मृत्यु कहते हे, वह एक जीवन की तरंग का दूसरे जीवन की तरंग में रूपांतरित हो जाना है। वह सिर्फ बदलाहट है, मृत्यु नहीं।
"करै मुरीद कबर बतलावै, उनहुं खुदा न जाना।
"हिंदू की दया मेहर तुरकन की, दोनों घर से भागी।
न तो हिंदू के हृदय में दया है और न मुसलमान के हृदय में मेहर है।
दोनों की करुणा समाप्त हो गई है। दोनों का प्रेम चुक गया है। "दोनों घर से भागी।
"वह करै जिबह वां झटका मारै, आग दोउ घर लागी।।
और दोनों घर जल रहे हैंः हिंदू का भी, मुसलमान का भी--सभी के घर जल रहे हैं। फर्क क्या है उनमें? फर्क बहुत ज्यादा नहीं है। हिंदू भी कत्ल करते हैं। काली के मंदिर में, कलक Ÿो में, आज भी कत्ल किए जा रहे हैं। मुसलमान भी कत्ल करता है। फर्क क्या है? फर्क बड़े टेक्निकल हैं। फर्क यह है कि एक जिबह करते हैं। जिबह का मतलब है धीरे-धीरे मारते हैं। जब गर्दन काटते हैं पशु की, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे काटते हैं--जिबह। और दूसरे एक ही झटके में काटते हैं। बस इतना ही फर्क है उनमें। और दोनों की करुणा घर से जा चुकी है, दोनों के घर में आग लगी है। और फर्क बचकाने हैं। बस, ऐसे छोटे-छोटे फर्क हैं, इन फर्कों से कोई मतलब नहीं है। असली सवाल है कि तुम मारते होः तुम जिबह करके मारते हो कि झटका मारते हो--इससे क्या फर्क पड़ता है? पशु को क्या फर्क पड़ता है? वह दोनों हालातों में मारा जाता है।
लेकिन सभी संप्रदायों में इसी तरह के छोटे-छोटे झगड़े हैं।
एक जैन मंदिर में मैं गया। वहां झगड़ा खड़ा हो गया था। जैनों के दो संप्रदाय लट्ठ लिए खड़े थे। मारपीट हो गई थी, पुलिस आ गई। अब इस मंदिर में कोई दो साल से ताला लगा है, पुलिस का ताला लगा है; अदालत में मुकदमा चल रहा है। मैं मेहमान था उस गांव में। पास में ही मंदिर था, तो मैं देखने गया कि मामला क्या है? और जैन तो बड़े अहिंसात्मक हैं, इनका झगड़ा, और लट्ठ उठ गए और तलवारें निकल आईं और सिर फोड़ दिए एक-दूसरे के--यह मामला क्या है? मामला बड़ा छोटा था। महावीर की प्रतिमा को दोनों पूजते हैं; लेकिन श्वेतांबर प्रतिमा के ऊपर आंख लगाकर, खुली आंख वाले महावीर को पूजते हैं, और दिगंबर बंद आंख वाले महावीर को पूजते हैं। झगड़ा हो गया। तो समय बंटा हुआ है उनका मंदिर मेंः सुबह बारह बजे तक एक संप्रदाय पूजता है, फिर बारह बजे के बाद दूसरा संप्रदाय पूजता है। एक दिन किसी की पूजा थोड़ी लंबी चल गई, साढ़े बारह हो गए-- झगड़ा खड़ा हो गयाः "अलग करो आंख!" बंद आंख वाले महावीर के भक्त आ गए। कभी-कभी संप्रदायों के बीच के झगड़े देखकर हद मूढ़ता दिखाई पड़ती है।
महावीर की आंख बंद या खुली--इससे क्या फर्क पड़ता है? पूजा तुम्हें करनी है, तुम्हारा हृदय खुला या बंद--इसकी फिक्र करो।
"या विधि हंसी चलत है हमको, आप कहावै स्याना।
कबीर कहते हैं, इससे हमें बड़ी हंसी आती है, और ये सब लोग सयाने हैं।
"कहै कबीर सुनो भाई साधो, इनमें कौन दिवाना।
तुम बताओ, इनमें कौन दिवाना है? कबीर यह कह रहे हैं हमें तो यह सभी दीवाने दिखाई पड़ते हैं; सभी पागल हो गए हैं। लेकिन हर एक दावा कर रहा है कि हम सयाने हैं। और सब मिलकर परमात्मा को काट रहे हैंः कोई जिबह कर रहा है; कोई झटका मार रहा है--कटता है परमात्मा।
एक छोटी सी कहानी है, बड़ी पुरानी है।
एक गुरु के दो शिष्य हैं। वे दोनों सेवा करते हैं। गर्मी के दिन हैं। गुरु सोया है। दोनों ने कहा कि आधा-आधा बांट लो। तो बायां अंग एक ने ले लिया, दायां अंग दूसरे ने ले लिया। दोनों पैर दबा रहे हैं--गुरु के अपने- अपने अंग के। गुरु ने करवट ली, गुरु को कुछ पता नहीं--वे सो रहे हैं कि बंटवारा हो गया है। गुरु ने करवट ली, तो बाएं पैर पर पैर पड़ गया। तो दाएं पैर वाले ने कहा, "हटा ले अपना पैर, अगर मेरे पैर पर पड़ा ठीक नहीं होगा।"

दूसरे शिष्य ने कहा, "जा-जा! कौन हटा सकता है? अगर हो हिम्मत तो हटा दे।" बात बढ़ गई। थोड़ी देर में लट्ठ लिए खड़े थे। गुरु की खींचातानी हो गई। गुरु पिटे, बुरी तरह पिटे। क्योंकि जिसका बायां अंग था उसने दाएं अंग को मारा, जिसका दायां अंग था उसने बाएं अंग को मारा।
परमात्मा मिट रहा है सब तरफ से, क्योंकि वही है। तुम जिसे भी काटो, वही कटेगा। मंदिर जलाओ तो भी उसी का मंदिर जलता है; मस्जिद जलाओ तो भी उसी की मस्जिद जलती है। मूर्ति तोड़ो तो उसी की मूर्ति टूटती है। वेद को जलाओ, उसी का वेद जलता है। वही है!
जैसे ही किसी व्यक्ति में थोड़ी-सी समझ उठनी शुरू होती है--यह सारा जगत उसी का मंदिर है! सब किताबें उसकी, सब पूजा-स्थल उसके! और ऐसी घड़ी में ही तुम योग्य बनते हो कि धर्म तुम में अवतरित हो जाए।
सांप्रदायिक व्यक्ति ने कभी धर्म नहीं जाना और कभी जान नहीं सकता। जिन्हें धर्म जानना है, उन्हें भीतर सब संप्रदायों से मुक्त हो जाना जरूरी है, सब धारणाओं से, सब भेदों से; और भीतर उसमें लीन हो जाना है जो तुम्हारा स्वभाव है। उस स्वभाव की तैयारी ही एक दिन तुम्हें परमात्मा से मिला देगी। और कहीं और खोजना नहीं, क्योंकि वह तुम्हारे भीतर है। "कस्तूरी कुंडल बसै!"

आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
सोलहवां प्रवचन

अभीप्सा की आगः अमृत की वर्षा

सूत्र
मो को कहां ढूंढ़ो रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरी गंड़ास में।।

नहिं खाल में नहिं पोंछ में, ना हड्डी ना मांस में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।।

ना तो कौनो क्रिया कर्म में, नहिं जोग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास में।।

मैं तो रहौं सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब सांसों की सांस में।।

परमात्मा प्रत्येक का स्वभाव-सिद्ध अधिकार है। उसे खोया होता तो तुम कभी पा न सकते थे। उसे खोया नहीं है, इसलिए पाने की संभावना है। और उसे खोया नहीं है, इसलिए खोज बड़ी मुश्किल है। जिसे खो दिया हो, उसे खोजने की संभावना बन जाती है। लेकिन जिसे खोया ही न हो, उसे तुम खोजोगे कैसे? इसलिए परमात्मा पहेली बन जाता है। इस पहेली को पहले ठीक से समझ लें। इस पहेली के कुछ आधारभूत नियम हैं।
पहला नियमः जिसे तुमने सदा से पाया है, उसकी तुम्हें याद नहीं आ सकती।
वह सदा ही तुम्हें मिला रहा है; एक क्षण को भी वियोग नहीं हुआ। याद तो उसकी आती है जिससे वियोग हो जाए। मछली को पता ही नहीं चलता कि सागर है। पता चलेगा कैसे? सागर में ही पैदा हुई; सागर में ही आंख खोली; सागर में ही जीयी; सागर में ही दौड़ी-भागी; सुख-दुख पाए; सागर से सदा ही घिरी रही; बाहर भी सागर, भीतर भी सागर--सागर का पता कैसे चलेगा? पता चलने के लिए वियोग जरूरी है। तो मछुआ जब मछली को बाहर निकाल लेता है सागर से, तब पहली दफा सागर की याद आती है। लेकिन तुम्हें तो परमात्मा के बाहर निकालने का कोई उपाय नहीं है; कोई मछुआ नहीं है, जो तुम्हें बाहर निकाल ले; कोई जाल नहीं है, जो तुम्हें परमात्मा के बाहर निकाल ले; कोई किनारा नहीं है जहां वह समाप्त होता हो। तुम उसके बाहर नहीं जा सकते--यही अड़चन है। इसलिए उसकी याद नहीं आती। याद आए कैसे?
यह तो पहली कठिनाई है पहेली की।
वियोग हो सकता तो योग बड़ा आसान था। तब कोई उपाय खोज लेते, कोई रास्ता बना लेते। वियोग नहीं हो सकता है, इसलिए योग असंभव है।
ऐसी समझ तुम्हारे मन में गहरी बैठ जाए, ऐसी समझ तुम्हारे रोयें-रोयें में समा जाए, तो अचानक खोज समाप्त हो गई; जिसे कभी खोया ही नहीं उसे पा लिया। यह केवल बोध का रूपांतरण है। न तो कुछ पाने को है, न कुछ खोने को है; सिर्फ समझ की क्रांति है; सिर्फ आंख खोलकर स्थिति को देखना है।
दूसरी बातः जो भीतर है, उसे पाना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि सारी इंद्रियां बाहर खुली हैं। आंख बाहर देखती है; हाथ बाहर छूते हैं; कान बाहर की आवाज सुनते हैं; नासापुट बाहर की गंध लेते हैं--सारी इंद्रियां बाहर की तरफ खुलती हैं। क्योंकि, इंद्रियां प्रकृति का हिस्सा हैं, प्रकृति से जुड़ी हैं। प्रकृति बाहर है; परमात्मा भीतर है। और प्रकृति से जोड़ने के लिए इंद्रियों की जरूरत हैं। इंद्रियां न हों तो तुम्हारा प्रकृति से संबंध छूट जाएगा। अंधे आदमी का क्या संबंध है प्रकाश से? बहरे का क्या संबंध है संगीत से, शब्द से? इंद्रियां न हों तो प्रकृति से संबंध छूट जाएगा।
अब यह जरा बारीक मामला हैः ठीक से समझ लेना। और इंद्रियां हों तो परमात्मा से संबंध छूट जाएगा। क्योंकि, भीतर के लिए किसी इंद्रिय की जरूरत नहीं हैं। दूसरे से जुड़ना हो तो संबंध बनाने के लिए कुछ आधार चाहिए।

अपने से ही जुड़ने के लिए क्या आधार जरूरी है? भीतर आंख जा नहीं सकती; हाथ नहीं जा सकते--जरूरत भी नहीं है।
कमरे में अंधेरा हो तो रोशनी जला लो, कमरे में रोशनी हो जाती है। लेकिन कमरे में अंधेरा हो, तब भी तुम्हारे भीतर तो अंधेरा नहीं होता। कमरे में रोशनी जल जाए, तब भी तुम्हारे भीतर रोशनी नहीं होती; बाहर ही बाहर सब घटता रहता है। कितना ही गहन अंधेरा हो, तुम्हें अपना तो पता चलता ही रहता है अंधेरे में भी कि मैं हूं। कुर्सी का पता नहीं चलता; टेबल का पता नहीं चलता; दीवाल का पता नहीं चलता; कोई और बैठा हो कमरे में, उसका पता नहीं चलता; तुम्हारा प्रियतम बैठा हो, उसका पता नहीं चलता; भगवान की मूर्ति रखी हो कमरे में, उसका पता नहीं चलताः सब खो जाते हैं अंधेरे में। क्योंकि आंख की इंद्रिय रोशनी में काम कर सकती हैं; बिना रोशनी के आंख बेकार हो जाती हैं; बाहर का कुछ पता नहीं चलता। लेकिन क्या तुम्हें यह भी भूल जाता है कि तुम हो? तुम्हें अपना होना तो पता चलता ही रहता है। तुम्हें अपने होने की तो अहर्निश धारा बनी रहती है।
कोई रोशनी तुम्हारे जानने के लिए कि तुम हो, जरूरी नहीं; कोई इंद्रिय जरूरी नहीं। तुम इंद्रियों के पीछे छिपे हो। इंद्रियां प्रकृति से जोड़ती हैं। इंद्रियां न हों तो प्रकृति से संबंध टूटता है। इंद्रियां परमात्मा से तोड़ती हैं। इंद्रियां न हों तो परमात्मा से संबंध जुड़ जाता है।
भीतर की यात्रा अतीन्द्रिय है; वहां इंद्रियों को छोड़ते जाना है। जब तुम्हारी दृष्टि आंख को छोड़ देती है, तब भीतर की तरफ मुड़ जाती है।
और यह जरा समझ लो।
आंख नहीं देखती है; आंख के भीतर से तुम्हारी दृष्टि देखती है। इसलिए कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि तुम खुली आंख बैठे हो, कोई रास्ते से गुजरता है और दिखाई नहीं पड़ता; क्योंकि तुम्हारी दृष्टि कहीं और थी; तुम किसी और सपने में खोए थे भीतर; तुम कुछ और सोच रहे थे। आंख बराबर खुली थी, जो निकला उसकी तस्वीर भी बनी; लेकिन आंख और दृष्टि का तालमेल नहीं था; दृष्टि कहीं और थी--वह कोई सपना देख रही थी, या किसी विचार में लीन थी।
तुम्हारे घर में आग लग गई है। तुम भागे बाजार से चले आ रहे हो। रास्ते
पर कोई जयरामजी करता है--सुनाई तो पड़ता है, पता नहीं चलता; कान तो सुन लेते हैं, लेकिन कान के भीतर से जो असली सुनने वाला है, वह उलझा है। मकान में आग लगी है--दृष्टि वहां है। तुम भागे जा रहे हो, किसी से टकराहट हो जाती है-- पता नहीं चलता। पैर में कांटा गड़ जाता है--दर्द तो होता है, शरीर तो खबर भेजता है; पता नहीं चलता। जिसके घर में आग लगी हो, उसको पैर में गड़े कांटे का पता चलता है?
इसलिए छोटे दुख को मिटाने की एक ही तरकीब हैः बड़ा दुख। फिर छोटे दुख
का पता नहीं चलता। इसीलिए तो लोग दुख खोजते हैं। बड़े दुख के कारण छोटे दुख का पता नहीं चलता। फिर दुखों का अंबार लगाते जाते हैं। ऐसे ही तो तुमने अनंत जन्मों में अंनत दुख इकट्ठे किए हैं। क्योंकि तुम एक ही तरकीब जानते हो; अगर कांटे का दर्द भुलाना हो तो और बड़ा कांटा लगा लो; घर में परेशानी हो, दुकान की परेशानी खड़ी कर लो--घर की परेशानी भूल जाती है; दुकान में परेशानी हो, चुनाव में खड़े हो जाओ--दुकान की परेशानी भूल जाती है। बड़ी परेशानी खड़ी करते जाओ। ऐसे ही आदमी नरक को निर्मित करते हैं। क्योंकि एक ही उपाय दिखाई पड़ता है यहां कि छोटा दुख भूल जाता है, अगर बड़ा दुख हो जाए। मकान में आग लगी हो, पैर में लगा कांटा पता नहीं चलता। क्यों? कांटा गड़े तो पता चलना चाहिए। हॉकी के मैदान पर युवक खेल रहा है; पैर में चोट लग जाती है, खून की धारा बहती है--पता नहीं चलता। खेल बंद हुआ, रेफरी की सीटी बजी--एकदम पता चलता है। अब मन वापस लौट आया दृष्टि आ गई।
तो ध्यान रखना, तुम्हारी आंख और आंख के पीछे तुम्हारी देखने की क्षमता अलग चीजें हैं। आंख तो खिड़की है, जिससे खड़े होकर तुम देखते हो। आंख नहीं देखती; देखनेवाला आंख पर खड़े होकर देखता है। जिस दिन तुम्हें यह समझ में आ जाएगा कि देखनेवाला और आंख अलग हैं; सुननेवाला और कान अलग हैंः उस दिन कान को छोड़कर सुननेवाला भीतर जा सकता है; आंख को छोड़कर देखनेवाला भीतर जा सकता है--इंद्रिय बाहर पड़ी रह जाती है। इंद्रिय की जरूरत भी नहीं है।

अतीन्द्रिय, तुम अपने परम बोध को अनुभव करने लगते हो; अपनी परम स Ÿा की प्रतीति होने लगती है।
आंख बाहर खुलती है--इसलिए तुम बाहर ही लगे रहते हो। और बाहर भी विराट प्रकृति है। प्रकृति उतनी ही विराट है जितना परमात्मा; क्योंकि परमात्मा की ही प्रकृति है। परमात्मा अगर अंतस्तल है तो प्रकृति उसका बहिर्विस्तार है। जो भीतर अनंत है, वह बाहर भी अनंत ही होगा। जो एक पहलू पर अनंत है, वह उसके दूसरे पहलू में भी अनंत ही होगा; क्योंकि अनंत अनंत ही हो सकता है। इंद्रियां बाहर खुलती हैं। अनंत विस्तार है प्रकृति का। तुम खोजते हो जन्मों-जन्मों, तृप्ति नहीं हो पाती--हो नहीं सकती। कुछ न कुछ शेष रह जाता है। दौड़ जारी रहती है। सदा शेष रहेगा। सदा दौड़ जारी रहेगी। संसार चलता ही रहेगा, उसका कोई अंत नहीं है; क्योंकि वह परमात्मा से ही चल रहा है।
और इस बाहर की दौड़ में धीरे-धीरे तुम इतने संलग्न हो जाते हो कि तुम्हें यह याद भी नहीं रह जाती कि यह दौड़नेवाला कौन है; तुम्हें याद भी नहीं रह जाती कि यह जाननेवाला कौन है? और फिर बाहर की दौड़ बाहर के उपकरणों से तादात्म्य निर्मित करवा देती है! खुद की शक्ल देखने के लिए भी आईने की जरूरत पड़ती है। खुद की शक्ल भी आईने के भरोसे पर जाननी पड़ती है! तब तुम दूसरों की आंखों में अपनी झलक खोजते हो। अगर लोग तुम्हें कहते हैं तो तुम अच्छा मान लेते हो कि मैं अच्छा हूं; लोग अगर बुरा कहते हैं तो तुम बुरा मान लेते हो कि मैं बुरा हूं; लोग अगर कहते हैं, तुम सुंदर हो, तो तुम मान लेते हो कि तुम सुंदर हो; और लोग अगर कहते हैं कि तुम कुरूप हो तो तुम मान लेते हो कि मैं कुरूप हूं। दूसरों से पूछना पड़ता है कि मैं कौन हूं। दूसरे भी इतने गहन अंधकार में खड़े हैं। उन्हें खुद भी पता नहीं है कि वे कौन हैं। वे तुमसे पूछ रहे हैं। अज्ञानियों का जीवन एक-दूसरे के अज्ञान के सहारे खड़ा होता है।
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन हज यात्रा के लिए गया, मक्का गया। साथ में दो मित्र और थे; एक था नाई और एक था गांव का महामूर्ख। वह महामूर्ख गंजा था। एक रात वे भटक गए रेगिस्तान में; गांव तक न पहुंच पाए। रात रेगिस्तान में गुजारनी पड़ी। तो तीनों ने तय किया कि एक-एक पहर जागेंगे, क्योंकि खतरा था। अनजान जगह थी। चारों तरफ सुनसान रेगिस्तान था। पता नहीं डाकू हों, लुटेरे हों, जानवर हों।
पहली ही घड़ी, रात का पहला हिस्सा, नाई के जुम्मे पड़ां। दिनभर की थकान थीः उसे नींद भी सताने लगी, डर भी लगने लगा। रात का गहन अंधकार! चारों तरफ रेगिस्तान की सांय-सांय! से कुछ सूझा न कि कैसे अपने को जगाए रखे। तो उसने सिर्फ अपने को काम में लगाए रखने के लिए मुल्ला नसरुद्दीन की खोपड़ी के बाल साफ कर दिए--सिर्फ काम में लगाए रखने को! और वह कुछ जानता भी नहीं था; नाई था। नंबर दो पर मुल्ला नसरुद्दीन की बारी थी। तो जब उसका समय पूरा हो जगया तो नसरुद्दीन को उठाया कि बड़े मियां। तो नसरुद्दीन ने जागने के लिए अपने सिर पर हाथ फेरा, पाया कि सिर सपाट है। उसने कहा, जरूर कोई भूल हो गई है। तुमने मेरी जगह उस गंजे मूर्ख को उठा लिया है।
हमारी पहचान बाहर से है। हम जानते हैं अपने संबंध में वही जो दूसरे कहते हैं। भीतर से अपने को हमने कभी जाना नहीं। हमारी सब पहचान झूठी है। जिस दिन हम अपने को अपने ही तईं जानेंगे, उसी दिन सच्ची पहचान होगी। उसे ही आत्मज्ञान कहा है।
फिर चूंकि इंद्रियां बाहर हैं, इसलिए हम सोच लेते हैं कि सभी कुछ बाहर है। तो हम प्रेम को भी बाहर खोजते हैं--और प्रेम का झरना भीतर बह रहा है; हम धन को भी बाहर खोजते हैं--और भीतर परम धन अहर्निश बरस रहा है; हम आनंद को भी बाहर खोजते हैं--और भीतर एक क्षण को भी आनंद से हमारा संबंध नहीं टूटा है। प्यासे हम तड़पते हैं; रेगिस्तानों में भटकते हैं; द्वार-द्वार भीख मांगते हैं--और भीतर अमृत का झरना बहा जा रहा है। भीतर हम सम्राट हैं। इंद्रियों के साथ ज्यादा जुड़ जाने के कारण और तादात्म्य बाहर बन जाने के कारण, हम भिखारी हो गए हैं। यही नहीं कि हम धन बाहर खोजते हैं, यश बाहर खोजते हैं, स्वयं को बाहर खोजते हैं; हम परमात्मा तक को बाहर खोजने लगते हैं--जो कि हद हो गई अज्ञान की। तो हम मंदिर बनाते हैं, मस्जिद बनाते हैं, गुरुद्वारा

बनाते हैं, परमात्मा की प्रतिमा बनाते हैं--हम बाहर से इस भांति आंक्रांत हो गए हैं कि हमें याद ही नहीं आती कि भीतर का भी एक आयाम है।
अगर किसी से पूछो, कितनी दिशाएं हैं, तो वह कहता है, दस। आठ चारों तरफ,
एक ऊपर, एक नीचे; ग्यारहवीं दिशा की कोई बात ही नहीं करता--भीतर। और वही हमारा स्वभाव है, क्योंकि हम भीतर से ही बाहर की तरफ आए हैं। हमारा घर तो भीतर है। गंगोत्री तो भीतर है--जहां से बही है जीवन की धारा।
मां के गर्भ में छोटे से अणु थे तुमः खाली आंख से देखे भी जा सकते थे। उसके भी पूर्व तुम अणु भी न थे; तुम बिल्कुल अदृश्य आत्मा थे। तुम आकाश में चलते तो तुम्हारे पदचिह्न भी न छूटते। तुम वृक्ष से गुजरते तो वृक्ष का प Ÿा भी न हिलता तुम्हारे गुजरने से। तुम एक अदृश्य पवन थे। फिर तुम एक गर्भ में एक छोटे-से अणु में प्रविष्ट हुए। अणु भी आंख से दिखाई नहीं पड़ता; यंत्र चाहिए तब दिखाई पड़ता है। बड़े छोटे थे। फिर अणु बड़ा होने लगा। ऊर्जा भीतर से बाहर की तरफ फैलने लगी। शरीर निर्मित हुआ। इंद्रियां निर्मित हुईं। तुम्हारा जन्म हुआ। अब तुम जवान हो, या बूढ़े हो; लेकिन अगर तुम पीछे लौटो तो तुम पाओगे अति सूक्ष्म अदृश्य में तुम्हारी गंगोत्री है--जहां से यात्रा शुरू हुई--मूल स्रोत है। और वह मूल स्रोत अब भी तुम्हारे भीतर है क्योंकि उसके बिना तो तुम क्षण भर ही न रह सकोगे। वह मूल स्रोत उड़ जाएगाः पक्षी उड़ जाएगा, पिंजरा पड़ा रह जाएगा; हड्डी-मांस के सिवाय कुछ भी न बचेगा! वह जो तुम्हारे भीतर छिपा है--इंद्रियां चूंकि बाहर खुलती हैं--उसकी तुम्हें याद ही नहीं आती है। परमात्मा तक को तुम बाहर निर्मित कर लेते हो। और कैसा मजा है, तुम ही बनाते हो परमात्मा की मूर्ति और फिर उसी के सामने टेककर तुम प्रार्थना करते हो। तुम्हें यह भी याद नहीं आती कि अपनी बनाई हुई इस मूर्ति के सामने प्रार्थना करने से क्या होगा। उस परमात्मा को खोजो जिसने तुम्हें बनाया है। तुम उस परमात्मा के सामने हाथ जोड़े बैठे हो, जो तुमने ही बनाया है। तुम्हारा परमात्मा तुमसे बेहतर नहीं हो सकता। तुम्हारा परमात्मा तुमसे छोटा ही होगा। इसलिए तुम्हारे मंदिर-मस्जिदों में जो भी देवी-देवता बैठे हुए हैं, तुमसे छोटे हैं। तुमने ही बनाए हैं, तुमने ही सजाया-संवारा है उनको। वे तुम्हारी कृतियां हैं--कलात्मक होंगी, धार्मिक नहीं हो सकतीं। कलात्मक हो सकती हैं, और कला के मंदिरों में तुम उन्हें रखो-- समझ में आता है; लेकिन धार्मिक उनको समझ लो तो तुम बड़ी भयंकर भूल में पड़ गए। और बाहर के परमात्मा से जो उलझ गया, वह पूजा करे, प्रार्थना करे, तीर्थयात्रा करे, यज्ञ-हवन करे। सब व्यर्थ; सब पानी में चला जा रहा है; वह जैसे रेगिस्तान में पानी डाला जा रहा हो, जैसे कि रेगिस्तान सोख लेगा-- सब खो जाएगा। भीतर की भूमि में डालो पानी--अगर चाहते हो कि परमात्मा का अंकुरण हो। बाहर के रेगिस्तान में पानी डालने से अंकुरण न होगा; क्योंकि जिसने तुम्हें बनाया है, जिससे तुम पैदा हुए हो, जिससे तुम आए हो--उसे तुम अब भी अपने भीतर लिए हो; क्योंकि उसके बिना तो तुम जी ही नहीं सकते। सब सांसों की सांस में! तुम्हारी हर सांस में वही सांस ले रहा है। तुम्हारी हर धड़कन में उसी की धड़कन है। तुम्हारी हर कंपन में उसी का कंपन है। तुम्हारे होने में उसी का होना है।
तीसरी बात; परमात्मा को तुम खोजने भी निकलते हो, तो तुम इतने उधार हो
कि तुम्हारी खोज भी उधार होती है। तब जटिलता बहुत बढ़ जाती है। ऐसा ही समझो कि तुम्हें खुद तो प्यास नहीं लगी है, तुमने किसी का प्रवचन सुन लिया और प्यास लग गई। तुमने मुझे सुन लिया और मुझे सुनकर तुम्हें ऐसा लगा कि अच्छा खोजना चाहिए परमात्मा को; तुम्हें खुद कोई प्यास ही न थी। यह परमात्मा की खोज का क्षण तुम्हारे अपने जीवन अनुभव से न आया था। तुम्हारे जीवन के संताप ने तुम्हें उस जगह न पहुंचाया था, जहां कि प्रार्थना के लिए व्याकुलता पैदा होती। तुम्हारी जीवन की चिंताओं ने तुम्हें उस जगह न पहुंचा दिया था, जहां कि तुम शांत होने के लिए प्रगाढ़ कामना करते। तुम्हारे संसार के अनुभव में इतनी परिपक्वता न थी कि तुम देख लेते कि यह सब माया है, सपना है। तुम्हारी खुद की आंख अभी इतनी सबल न थी कि तुम इस चारों तरफ के फैलाव की व्यर्थता को समझ पाते। तुम्हारा बोध इतना जाग्रत न था कि तुम देखते कि हम जो भी कर रहे हैं, वह नाटक से ज्यादा नहीं है। लेकिन तुमने मुझे सुन लिया, या किसी और को सुन लिया, कि बात प्यारी लगी, मन को

भायी, तर्क जचा, बुद्धि सहमत हो गई--तुम खोज पर निकल गए। अब बहुत मुश्किल हो जाएगी क्योंकि खोज तो प्यास से होती है, बुद्धि के निर्णय से नहीं।
समझ लो कि तुम्हें प्यास नहीं लगी है। और किसी ने पानी की खूब चर्चा
की और तुम प्रलोभित हो गए--क्या करोगे? पानी मिल जाएगा तो क्या करोगे? प्यास तुम्हें लगी नहीं है। तुम्हारे प्राण पानी को मांग नहीं रहे हैं। एक झेन फकीर हुआ--लिंची। उससे किसी ने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? तुम लोगों को क्या समझाते हो? उसने बड़ी एक अनूठी बात कही। उसने कहाः "सेलिंग वॉटर बाय द रिवरप् (नदी के किनारे पानी बेच रहे हैं) बड़ी अनूठी बात है। नदी के किनारे पानी बेचने की कोई जरूरत नहीं है, नदी ही मुफ्त पानी दे रही है। लेकिन लिंची ने कहा कि नदी के किनारे पानी बेच रहे हैं, क्योंकि लोग प्यासे नहीं हैं। नदी उन्हें दिखाई नहीं पड़ती।
लेकिन क्या कोई दूसरा आदमी तुम्हें प्यासा बना सकता है? तुम प्यासे होओ तो दूसरा तुम्हें इस बोध से भर सकता है कि प्यास है; लेकिन तुम प्यासे होओ ही न, तो कोई तुम्हें प्यासा नहीं बना सकता। और बिना प्यास के जो खोज पर निकल जाता है, वह व्यर्थ ही समय खराब करता है। क्योंकि मूलतः तो वह चाहता ही नहीं है। और तब अनूठी चीजें घटती हैं, जिनका हिसाब रखना मुश्किल हो जाता है। जाते तुम मंदिर हो, लेकिन दिखाई पड़ती हैं सुंदर स्त्रियां। ऐसा होगा, क्योंकि मंदिर की तो कोई प्यास न थी; प्यास तो स्त्रियों की थी। किसी की बातचीत सुनकर मंदिर का ख्याल आया। प्यास उधार है। जाओगे मंदिर; देखोगे तो वही जो तुम्हारी प्यास है।
ऐसा हुआ कि लंडन के एक चर्च में... । उस चर्च की बड़ी प्रशंसा इंग्लैंड
की महारानी ने सुन रखी थी, तो वह एक बार गई। बड़ी भीड़ थी चर्च में। हजारों लोग पंक्तिबद्ध खड़े थे। दरवाजे के बाहर तक कतार लगी थी। भीतर जगह न थी। रानी प्रभावित हुई। उसने चर्च के पुरोहित को कहा कि मैं बहुत प्रभावित हूं--प्रशंसा मैंने बहुत सुनी थी; लेकिन मैंने यह न सोचा था कि इतने लोग... ! उसने कहा, आप भूल में हैं। ये चर्च के लिए नहीं आए हैं, ये आपके लिए आए हैं। इनमें से हम किसी को नहीं पहचानते। इनको हमने कभी देखा ही नहीं। ये जो भावविभोर खड़े हैं--परमात्मा के लिए नहीं। आप कभी बिना खबर किए आएं, तब आपको असली स्थिति का पता चलेगा। तो रानी छिपकर बिना किसी को बताए, कुछ दिनों बाद दुबारा उस चर्च में गई। पादरी था, दो-चार बूढ़े लोग थे, जो करीब-करीब सोए थे। पादरी बोल रहा था, सोए हुए लोग सुन रहे थे।
तुम मंदिर किसलिए जाते हो? तुम समझते कोई भी कारण हो; लेकिन तुम्हारी
जो प्यास होगी, वही कारण होगा। तो यह भी हो सकता है कि तुम मंदिर जा रहे होओ, क्योंकि मुकदमा न हार जाओ।
दो दिन पहले एक मित्र आए--मंदिरों की तो छोड़ दो--दो दिन पहले एक मित्र आए, कहने लगे कि तीन साल से, जब से आपको पढ़ रहा हूं, बड़ी क्रांति हो गई है जीवन में। मैं बड़ा प्रसन्न हुआ कि यह तो बहुत अच्छा हुआ। मैंने कहा, अब क्रांति के संबंध में कुछ कहो। उन्होंने कहा, दो-दो फैक्टरीज चल रही हैं। एक पैसा पास न था। जब से आपको पढ़ा जीवन में क्रांति हो गई। दो-दो फैक्टरीज चल रही हैं। सब सुख-सुविधा है। कार है। बच्चे सब अच्छे हैं, कालेज में पढ़ रहे हैं। और आपकी बड़ी कृपा है।
ऐसा व्यक्ति कैसे मुझे समझ पाएगा? अब मैं यहां कोई फैक्टरियां चलवाने
को हूं? और दो फैक्टरीज चलें कि दो सौ चलें--जीवन में कैसे क्रांति हो जाएगी?
मेरे पास भी लोग आ जाते हैं, जिनको कहीं और जाना था। अब वह संयोग की ही बात होगी, क्योंकि इसमें मेरा क्या हाथ हो सकता है, उसकी फैक्टरी के चलने में? मेरी किताब पढ़ रहे हैं, उससे उनकी दो-दो फैक्टरियां चल रही हैं। अब मेरी किताब पढ़ने से फैक्टरी चलने का क्या लेना-देना? चलती फैक्टरी बंद हो जाए तो समझ में भी आता है। लेकिन चल कैसे सकती हैं फैक्टरियां? लेकिन वे जीवन की क्रांति इसको बता रहे हैं। बड़े प्रफुल्लित हैं।
मुझे भी ठीक न लगा कि उनसे कुछ कहो, क्योंकि कुछ कहना बेकार होगा। बहरों के सामने वीणा बजाने का कोई भी अर्थ नहीं। मैंने उनसे कहा, अब आ गए हैं यहां तो कुछ ध्यान करें। उन्होंने कहा, सब आपकी कृपा से ठीक हो रहा है, अब ध्यान की क्या जरूरत है?

प्यास तुम्हारी अंततः तुम्हारे जीवन का वातावरण बनती है, तुम्हारी जो भीतर प्यास है, वही तुम्हारे चारों ओर का परिवेश बन जाता है। तुम प्रार्थना भी करोगे तो तुम मांगोगे धन। तुम प्रार्थना भी करोगे तो मांगोगे पद। तुम ध्यान भी करोगे तो मांगोगे संसार। तुम परमात्मा के पास भी जाओगे तो तुम्हारी मांग संसार की होगी।
प्यास चाहिए। और प्यास कैसे आएगी? इसलिए इतना बड़ा उपद्रव धर्म के नाम
पर खड़ा हो गया है। वह कोई शोषण करनेवाले लोगों ने कर दिया है, ऐसा नहीं है; तुम्हारी जरूरत से पैदा हो गया है। तुम जो मांगते हो उसकी कोई न कोई तो पूर्ति करेगा। इकोनॉमिक्स का सीधा-सा नियम है कि जहां-जहां डिमांड होगी, वहां-वहां सप्लाई होगी। जहां-जहां मांग होगी, वहां-वहां कोई न कोई पूर्ति करेगा। तुम अगर जहर भी मांगते हो, तो जहर की दुकान खुल जाएगी। क्योंकि आखिर कोई तो जहर बेचेगा--किसी को मरना है, आत्महत्या करनी है, तो जहर की दुकान खुल जाएगी।
तुमने जो मांगा है, उसके कारण तुम्हारे सारे मंदिर जहर की दुकानें हो
गए हैं। और उनमें से तो ज्ञानी तो हट गया, क्योंकि तुम्हारी मांग की वह पूर्ति नहीं कर सकता था। उसमें अज्ञानी, पुरोहित और पंडित होकर बैठ गए। वे तुम्हारी मांग की पूर्ति करते हैं, गंडेŸाबीज बांटते हैं; तुम जो चाहते हो वह देने के लिए हमेशा तैयार हैं। और यह मामला ऐसा है कि बड़ा महत्वपूर्ण हैं।
मंदिर में पुजारी आश्वासन देता है कि जो तुम चाहते हो वह मिल जाएगा। अगर मिल जाए तो पुजारी का प्रभाव बढ़ जाता है; अगर न मिले तो किसी दूसरे मंदिर की तलाश में चले जाते हो। और कभी न कभी तो तुम जो खोजते रहते हो, वे क्षूद्र चीजें, वे तुम्हें मिल ही जाएंगी। उस वक्त्त तुम किसी न किसी मंदिर में प्रार्थना कर रहे होओगे, जब वे चीजें मिलेंगी--वह संयोग महत्वपूर्ण हो जाएगा। जिसको जहां मिल जाता है वह उस मंदिर का भक्त हो जाता है। जिसको जहां मिल जाता है, वह उस गुरु का भक्त हो जाता है।
लेकिन तुम जो पा रहे हो, उसका किसी सदगुरु से कुछ लेना-देना नहीं। सदगुरु तुम्हें कुछ और ही देना चाहता है। सदगुरु तुम्हें वह संपदा देना चाहता है जो कभी न चुकेगी। सदगुरु तुम्हें उस जगत में ले जाना चाहता है कि तुम संसार में तृप्त मत हो जाना, क्योंकि तुम परमात्मा को पाने को बने हो और उससे कम पर तृप्त हो जाना नासमझी होगी।
प्यास चाहिए। अगर तुम जीवन को गौर से देखो तो प्यास अपने-आप उठनी शुरू
हो जाएगी। इसलिए ठीक-ठीक गुरु सिर्फ तुम्हें होश सिखाता है, कि तुम सिर्फ थोड़ा जागकर जियो। जागकर तुम जियोगे तो जितना जागरण बढ़ेगा उसी मात्रा में संसार सपना मालूम पड़ने लगेगा। तुम जितने सोये हुए हो, उतना ही सपना सच मालूम पड़ता है। गहरी नींद में सपना बिल्कुल सच मालूम पड़ता है। थोड़ी करवट बदलने लगते हो, थोड़ी नींद टूटने लगी, सुबह करीब आ गई, तो शक पैदा होने लगता है सपने पर। आंख खुलती है, जाग गए--सपना दो क्षण याद रहता है, फिर बिल्कुल भूल जाता है, जैसे हुआ ही न हो। आंख धो लो ठंडे पानी से, सपने के लोक से समाप्ति हो गई। सपना उसी मात्रा में सच मालूम होता है, जिस मात्रा में तुम मूर्च्छित हो, बेहोश हो। जिस मात्रा में तुम जागते हो, उसी मात्रा में सपना मालूम होने लगता है। जब तुम ठीक से जागते हो, सपना टूट जाता है।
तुम जागो थोड़े। जो भी तुम कर रहे होओ--धन कमा रहे होओ, पद कमा रहे होओ,
यश कमा रहे होओ--थोड़ा जागो। थोड़ा जागकर देखो, क्या कर रहे हो? ठीकरों पर जीवन को गंवा रहे हो। कंकड़-पत्थर बीन रहे हो। सब पड़ा रह जाएगा। मौत द्वार पर दस्तक देगी--तुमने जो कमाया, सब पड़ा रह जाएगा। इसको तुम कसौटी बना लो। मौत के साथ, जो यहीं छोड़ देना पड़ेगा मौत के आने पर, वह कमाना नहीं है, गंवाना है। जो तुम मौत के भीतर भी साथ ले जा सकोगे, वही कमाई है। इसको तुम मापदंड बना लो। कुछ ऐसा भी कमा लो, जो मौत छीनकर भी तुमसे छीन न सके। और अगर ऐसी संपदा का ख्याल उठ आए तो अतृप्ति पैदा होगी। चारों तरफ तुम्हें लगेगा कि यहां तो पानी है ही नहीं; बस प्यास और प्यास है, जलन और जलन है, आग है; यहां कहीं छाया नहीं है, धूप ही धूप है। छाया तो भीतर है।
एक बार बाहर से अतृप्ति होने लगे, तो भीतर की स्मृति आएगी। जब बाहर की खोज व्यर्थ हो जाती है, तभी कोई भीतर की खोज पर निकलता है।

लेकिन तुम खोज बदल लेते हो, लेकिन रहते बाहर ही हो। धन कमाते हो; थक जाते हो धन कमाने से। धन की व्यर्थता किसको नहीं दिखाई पड़ती? गरीब को नहीं दिखाई पड़ती जिसके पास नहीं है; लेकिन जिसके पास है उसको तो निश्चित दिखाई पड़ती है। साफ हो जाता है कि कुछ पाया नहीं। धन का ढेर लग जाता है, और भीतर तो तुम वैसे के वैसे ही निर्धन रहते हो, प्रेम नहीं खरीद सकते। और प्रेम के बिना कैसे तृप्त होओगे?
धन से यश खरीद सकते हो? खुशामद खरीद सकते हो, यश नहीं। खुशामद से कोई कभी तृप्त हुआ है? क्योंकि जिसकी खुशामद की जाती है, वह भी भली भांति देखता है कि खुदामद की जा रही है।
धन से तुम प्रतिस्रा खरीद सकते हो? पद खरीद सकते हो, प्रतिस्रा नहीं।
और पद पर जब तक तुम होते हो तब जिस प्रतिस्रा को तुम अपनी समझते हो--वह पद की है, तुम्हारी नहीं। तुम राष्ट्रपति हो जाओ--तुम्हारी प्रतिस्रा है; फिर न हो जाओ राष्ट्रपति, कोई तुम्हें पूछता नहीं; खबर भी नहीं चलती कि तुम कहां हो।
राधाकृष्णन कहां रहते हैं--पता चलता है? क्या करते हैं--पता चलता है? कुछ पता नहीं चलता।
1917 में, जब रूस में क्रांति हुई, और लेनिन ने तख्ता बदलकर स Ÿा हथिया ली, तो जो आदमी उस वक्त रूस में सबसे ज्यादा प्रतिस्रित और प्रभावशाली आदमी था--करैन्स्की--वह रूस छोड़कर भाग गया। वह प्रधानमंत्री था। 1917 में सारे जगत में उसका नाम था। फिर 1960 तक उसका कोई पता नहीं चला, क्या हुआ। 1960 में वह मरा, तब पता चला कि उसने छोटी-सी दुकान न्यूयॉर्क में खोल रखी थी।
1917 से लेकर 1960-लंबा फासला है। पद नहीं रहा तो कौन पूछता है! पद की पूछ है। पद प्रतिस्रा नहीं है। क्योंकि पद की प्रतिस्रा तुम्हारी प्रतिस्रा कैसे हो सकती है? प्रतिस्रा तो सब है कि तुम्हारी गरिमा का स्रोत तुम्हारे भीतर हो; कि तुम्हारी रोशनी तुम्हारे भीतर जलती हो; कि तुम जहां चलो, जहां कदम रखो, वह भूमि पवित्र हो जाए, जहां तुम्हारे पैर पड़ें, तुम जिस जगह पर बैठ जाओ, वह जगह सिंहासन हो जाए। तुम्हारे कारण पद की प्रतिस्रा हो--तब प्रतिस्रा है; पद के कारण तुम्हारी प्रतिस्रा हो-- तुम्हारी क्या प्रतिस्रा है? तुम कुर्सी के धोखे में हो। रोशनी तुम्हारी नहीं है, अपनी नहीं है।
न तुम्हारा धन सच्चा है, न तुम्हारा पद सच्चा है। जब तुम देखोगे यह, जब तुम गौर से समझोगे, तब एक नई प्यास का आविर्भाव होगा। वह प्यास होगी कि सच्चे को खोजना है। और फिर चाहे सच्चा पद हो, सच्चा धन हो, सच्चा प्रेम हो-- ये सब नाम उस एक ही परमात्मा के हैं।
सत्य एक है। और उस एक सत्य को पाकर प्रेम भी सत्य हो जाता है; धन भी सत्य हो जाता है; पद भी सत्य हो जाता है--सब सत्य हो जाता है--सब सत्य हो जाता है। क्योंकि उस सत्य में सराबोर तुम सत्य हो जाते हो। तुम जो छूते हो, वही सोना हो जाता हो। तुम जहां पैर रखते हो, वहां मंदिर बन जाते हैं। तुम जहां चलते हो, वहीं तीर्थ हो जाता है।
तीर्थ जाने से कुछ भी न होगा। और जब हम कीमिया बताते हैं कि तुम्हीं तीर्थ हो जाओ--और जब कि कीमिया सदा से जग-जाहिर है, कोई छिपा राज नहीं है-- कि हम तुम्हीं को मक्का और काशी और कैलाश बना देते हैं, तो फिर तुम क्यों बाहर भटकते हो? लेकिन तीर्थ भी हमारे बाहर हैं। हमारा सब कुछ बाहर है, क्योंकि हम बहिर्मुखी हैं। और जीवन का स्रोत भीतर है। और हमारी अंतर्मुखता बिल्कुल खो गई है।
अब हम कबीर का सूत्र समझने की कोशिश करें। सीधे-सादे शब्दों में कबीर कहते हैंः
"मो को कहां ढूंढो रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरी गंडास में।।
नहिं खाल में नहिं पोंछ में, ना हड्डी ना मांस में।
ना मैं देवल, ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।।
मनुष्य ने कितने-कितने उपाय किए हैं कि परमात्मा को बाहर खोज ले; कभी मंदिर की मूर्ति के सामने धूप जलाई है, दीये जलाए हैं; कभी मंदिर की मूर्ति

के सामने बलिदान दिए हैं--भेड़, बकरी, आदमियों के भी; नरमेध यज्ञ भी आदमियों ने किए हैं! लेकिन बकरी को, भेड़ को, या आदमी को काट डालने से कैसे तुम परमात्मा पा लोगे? बड़े सस्ते में पाने चले हो--एक बकरी काट दी, कि एक भेड़ काट दी; किसको धोखा दे रहे हो?
अपने को काटे बिना कोई भी परमात्मा को नहीं पा सकता। लेकिन आदमी अपने
को बचाता है और किसी दूसरे को चढ़ाता है। बकरी के काटने से शायद बकरी पा ले; बाकी तुम कैसे पा लोगे? और बकरी भी नहीं पा सकेगी? क्योंकि उसने स्वयं को नहीं काटा है।
स्वयं को बलिदान कर देना, स्वयं को मिटा देना ही सूत्र है--स्वयं को पा लेने का। परमात्मा के साथ भी आदमी सौदा कर रहा है कि चलो एक बकरी को चढ़ा देते हैं; चलो रुपया चढ़ाए देते हैं।
आदमी ने आदमी को भी चढ़ाया। फिर यह बात बेहूदी होती गई, तो आदमी ने प्रतीक खोज लिए। पहले आदमी खून चढ़ाता था, अब वह सिंदूर लगाता है। वह खून का प्रतीक है। पहले आदमी सिर को चढ़ाता था, अब नारियल चढ़ाता है। नारियल आदमी की खोपड़ी जैसा है--दो आंख भी दिखाई पड़ती है और दाढ़ी-मूंछ सब है। आदमी के सिर फोड़े हैं आदमी ने मंदिर की मूर्ति के सामने; फिर वह जरा अमानवीय हो गया, तो प्रतीक खोज लिए हैं। लेकिन अपने को चढ़ाने से आदमी बचता रहा। ये सब तरकीबें हैं--अपने को चढ़ाने से बचाने की।
तुम जाते हो गंगा कि स्नान करके पवित्र हो जाओगे। निश्चित, एक स्नान
की जरूरत है; लेकिन वह भीतर की गंगा का स्नान है। बाहर की गंगा में स्नान करने से शरीर की धूल-धंवास झड़ जाए; तुम कैसे शुद्ध हो जाओगे? पानी तुम्हें छुएगा भी नहीं, स्पर्श भी न होगा। अलग-अलग आयाम हैं। दोनों एक-दूसरे को छूते भी नहीं। लेकिन आदमी बचना चाहता है, अपने को बदलने से।
यह थोड़ा समझ लें। अपने को बदलने से बचना चाहता है और यह अहंकार भी बचाए रखना चाहता है कि हम अपने को बदलने की कोशिश कर रहे हैं। इसी से सारा उपद्रव पैदा हुआ है। ठीक जी रहे हैं; हम ऐसे ही क्षुद्र जीवन जी रहे हैं; हम यह कौड़ी-कंकड़ में लगे हैं; हम यह बाजार में ही अपना जीवन गंवा रहे हैं। यह भी अहंकार को तृप्ति नहीं मालूम पड़ती। अहंकार कहता है, इतना नहीं; कुछ और करो, कुछ बड़ा करके दिखाओ। यह सब तो यहीं पड़ा रह जाएगा। तो कुछ धर्म-पुण्य भी करो। तो तुम समझौता कर लेते हो, क्योंकि धर्म-पुण्य तो कठिन मामला है-- उसमें तो तुम्हें पूरा जीवन बदलना पड़ेगा--तो तुम कहते हो कि कोई सस्ती तरकीब। तो तरकीब यह है कि तुम तीर्थ कर आओ। एक चार दिन की छुट्टी निकाल लो। ध्यान रहे, धर्म को कोई भी संसार में से छुट्टी निकालकर नहीं कर सकता। धर्म ता जब होता है, तब तुम्हारे चौबीस घंटे धर्म में बहने लगते हैं। धर्म कुछ ऐसा नहीं है कि पंद्रह मिनट कर लिया और बाकी फिर पौने चौबीस घंटे मजे से अधर्म किया। खंड-खंड नहीं हो सकता। धर्म तो सांस की तरह हैः जब तक चौबीस घंटे न चले, तब तक उसका कोई सार नहीं है। तो तुम गए तीर्थ, दो दिन भजन-कीर्तन में रस लिया, थोड़ा दान-पुण्य किया; फिर घर आकर उसी पुरानी दुनिया में संलग्न हो गए--और जोर से; क्योंकि वह चार दिन जो नुकसान हुआ है, वह भी पूरा तो करना ही पड़ेगा। तो अगर जेब एक काटते थे तो दो काटने लगे। और फिर अगले दफा जाना है तीर्थयात्रा पर, तो उसके लिए भी तो पैसा इकट्ठा करना पड़ेगा। मंदिर हो आते हो--ऐसा लगता है जैसे तुम परमात्मा पर कुछ एहसान कर रहे हो। क्योंकि, मंदिर से जब तुम लौटते हो तो बड़े अकड़ककर लौटते हो--फिर कर आए एहसान! और कुछ विनम्र नहीं होते मंदिर से, तीर्थ से लौटकर विनम्र नहीं होते। जो आदमी हज हो आता है, वह हाजी हो जाता है! उसकी अकड़ देखो! यह तरकीब है, बिना धार्मिक हुए धार्मिक होने की। धर्म से भी बच गए, क्योंकि वह तो महाक्रांति है। उससे बड़ी कोई क्रांति नहीं। वह तो अकेली क्रांति है, एकमात्र क्रांति है--जिससे तुम्हारा सब कुछ बदल जाता है, सब कुछ नया हो जाता है; पुराना इस तरह मर जाता है कि पुराने से नए का कोई संबंध ही नहीं होता--सातत्य ही टूट जाता है, शृंखला ही बदल जाती है; जैसे पुराना आदमी बचा ही नहीं और एक नए आदमी का आविर्भाव हो जाता है। वह तो नया जन्म है।
लेकिन उतना महंगा, उतना हिम्मत का काम, तुम नहीं कर पाते। तुम सोचते हो, थोड़ा सस्ते में निपटा लो। असली फूल तुम नहीं उगा पाते; तुम कागज के फूल बाजार से खरीद लाते हो। और कागज के फूलों की एक खूबी हैः न तो पानी देना

पड़ता, न उनकी चिंता करनी पड़ती है, क्योंकि जानवर भी उन्हें नहीं खाते। वे तुम जैसे नासमझ नहीं हैं कि कागज का फूल और जानवर खाए, कभी इस भूल में नहीं पड़ेगा; सिर्फ आदमी ही ऐसी भूलें करता है। और फिर कागज का फूल सुबह जन्मा है, सांझ को मरता है--ऐसा भी नहीं; सनातन मालूम होता है--रखा है, रखा है, रखा है। एक दफा ले आए--सदा के लिए हो गया।
जीवन तो प्रतिपल नया करना होता है। जीवन पत्थरों की तरह नहीं है, फूलों की तरह है। और धार्मिक जीवन तो प्रतिपल नया उगता हुआ फूल है। धार्मिक जीवन तो प्रतिपल अतीत की मृत्यु है और वर्तमान का जन्म है। वहां तो हर चीज ताजी है। वह जरा कठिन मालूम पस? ता है, और इतना ज्यादा मालूम पड़ता है कि इतनी प्यास ही नहीं है। तो लोग कहते हैं कि फूल चाहिए, तो घर में तुम कागज के फूल रख लेते हो। और अब तो प्लास्टिक के फूल उपलब्ध हैं। कागज के फूल में भी खतरा था--कभी आग लग जाए, कभी यह हो जाए। अब प्लास्टिक के फूल हैं तो और भी खतरा कम है; बड़ी सुरक्षा है।
ऐसे ही तुम एक झूठे भगवान का मंदिर बनाकर घर में रख लेते हो, एक मूर्ति
को निर्मित कर लेते हो। उससे तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ता; तुम जैसे हो, वैसे ही रहते हो। न केवल उतने, बल्कि उस मूर्ति से तुम जैसे हो, अपने को और मजबूत कर लेते हो, कि अब तुम धार्मिक भी हो गए।

तुम्हारा धर्म आत्मवंचना है। पृथ्वी पर जो इतने मंदिर-मस्जिद दिखाई पड़ते हैं, वे तुम्हारे धोखे का विस्तार हैं। जिस दिन तुम्हें यह दिखाई पड़ेगा, उस दिन तुम्हारी आंख भीतर लौटनी शुरू होगी। उस दिन तुम असली मंदिर खोजोगे। वह मंदिर तुम हो। इसलिए कबीर कहते हैंः
"मो को कहां ढूंढो रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरी गंड़ास में।।
नहिं खाल में नहिं पोंछ में, ना हड्डी ना मांस में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलाश में।।
न तो मैं देवल हूं, न मस्जिद में हूं, न काबे में हूं, न कैलाश में हूं।
परमात्मा तुम्हारे भीतर है। तुम परमात्मा हो। तुम्हारा होना ही परमात्मा का होना है। तुम परमात्मा का एक रूप हो। तुम परमात्मा की एक लहर, एक तरंग हो। तुम परमात्मा की एक भावदशा हो। तुम परमात्मा का एक संगठन हो। तुम एक इकाई हो। वह होगा सूरज, तो तुम एक छोटे दीए हो, लेकिन आग वही है। वह होगा विराट, वह होगा महासागर, तुम एक बूंद हो; लेकिन एक बूंद में पूरा सागर छिपा है। और एक बूंद को कोई पूरा जान ले, तो पूरे सागर को जान लिया; कुछ और जानने को बचता नहीं है। क्योंकि एक बूंद में जब सूक्ष्म रूप से पूरा सागर मौजूद है। पिंड में ब्रह्मांड मौजूद है। आत्मा में परमात्मा मौजूद है। व्यक्ति में समष्टि मौजूद है।
ना तो कौनो क्रिया कर्म में, नहिं जोग बैराग में। खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास में।।
ना तो कौनो क्रिया कर्म में। होना है परमात्मा का स्वाभाव; क्रिया- कर्म तो ऊपर-ऊपर है। तुम मंदिर में बैठकर पूजा कर रहे हो, घंटी बजा रहे हो, घंटी बजती रहेगी; तुम दीया लेकर आरती उतार रहे हो, आरती उतर जाएगी--लेकिन इससे तुम्हारे होने में क्या फर्क पड़नेवाला है? तुम तो तुम ही रहोगे। और क्रिया से परमात्मा का क्या संबंध है? तुम सारी क्रियाएं छोड़ दो, तो भी तो तुम्हारे भीतर जीवन रहेगा। तुम बिल्कुल आंख बंद करके पड़ जाओ, कुछ भी न करो, तो भी तो तुम हो!
तो क्रिया तो गौण है, बाहर है; होना भीतर है, मूल है। होकर ही कोई परमात्मा को पाता है। कर-करके कुछ भी नहीं कोई पा सकता। क्रिया से होना बड़ा है। क्योंकि सब क्रियाएं होने से निकलती हैं। और सब क्रियाओं को भी जोड़ दो तो भी सब क्रियाओं के जोड़ से होना नहीं पूरा होता; होना फिर भी बड़ा हैं। तुमने जो भी किया है अब तक, सब भी जोड़ दिया जाए तो भी तुम उससे बड़े हो, क्योंकि तुम कुछ और कर सकते हो। तुम प्रतिफल कुछ और करते रहोगे। करना तो प Ÿां की तरह है--निकलते चले जाते हैं। होना जड़ की तरह है। जड़ को ही खोजो। प Ÿो-प Ÿो बहुत खोजा, बहुत भटके। प Ÿो अनंत हैं--और भटकते रहोगे। जड़ को पकड़

लो। व्यक्तित्व की जड़ कहां है?--कर्म में नहीं, क्रिया में नहीं, सिर्फ होने मात्र में।
विचार भी क्रिया है। हाथ से कुछ करो, वह भी क्रिया है; मन से कुछ करो,
वह भी क्रिया है। जब सब क्रिया शांत हो जाती है--न हाथ कुछ करते हैं, न मन कुछ करता है; जब तुम बस हो; सब ठहर गया, कोई गति नहीं है, कोई तरंग नहीं-- अचानक, अचानक सब मौजूद हो जाता है जिसकी तुम तलाश कर रहे थे; आनंद और प्रेम और परमात्मा सब बरस जाता है।
ना तो कौनो क्रिया कर्म में, नहिं जोग बैराग में। कबीर ठीक झेन फकीरों जैसे हैं। कबीर कहते हैं, कुछ भी करने की जरूरत नहीं है कि तुम योग करो, कि तुम आसन लगाओ, कि तुम शीर्षासन करो, कि तुम हजार तरह के क्रियाकांड में उलझो--कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जिसे तुम खोज रहे हो, वह सब करने से पहले तुम्हारे भीतर मौजूद है। यह फर्क ठीक से समझ लेना, जैसा है, क्योंकि बहुत नाजुक है। होना--बीइंग, और करना--डुइंगः यह फर्क बहुत नाजुक है।
ऐसा समझो कि तुम किसी के प्रति प्रेम में हो, तो तुम कुछ करते हो। तुम्हारा प्रेमी मिलता है तो गले लगा लेते हो। तुम्हारा प्रेमी आनेवाला होता है तो द्वार पर टकटकी लगाकर बैठ जाते हो। तुम्हारा प्रेमी आनेवाला होता है, तो किसी दूसरे की पगध्वनि भी भ्रांति देती है कि शायद प्रेमी आ गया; उठकर द्वार पर आ जाते हो। प्रेमी आनेवाला है तो भोजन तैयार करते हो। प्रेमी आनेवाला है तो भेंट तैयार करते हो। बहुत कुछ करते हो। लेकिन प्रेम क्या कुछ करना है? करने के पहले प्रेम है। प्रेम एक भावदशा है। कुछ भी न करो तो क्या प्रेम मिट जाएगा, क्या करने का जोड़ ही प्रेम है? तो प्रेम है ही नहीं। करने से तो प्रेम की अभिव्यक्ति हो रही है। लेकिन जिसकी अभिव्यक्ति हो रही है, वह तो करने के पहले मौजूद है, तभी अभिव्यक्ति हो सकती है।
ऐसा हुआ, एक बहुत महत्वपूर्ण व्यक्त्ति हुआ--लॉरेंस। वह था तो अंग्रेज लेकिन जिंदगी भर रहा अरबों के साथ, रेगिस्तान में। उसे रेगिस्तान की जिंदगी पसंद थी। और रेगिस्तान में लोग उसे बिल्कुल अपना मानने लगे। पेरिस में एक बड़ी प्रदर्शनी थी, और अरबों के एक दल को लेकर वह पेरिस प्रदर्शनी दिखाने ले गया। कोई बारह अरब उसके साथ गए। वे पहली दफा रेगिस्तान के बाहर निकले थे। एक बड़ी शानदार होटल में उसने उन्हें ठहराया। उसकी बड़ी प्रतिस्रा थी--उस व्यक्ति की। लेकिन वह बड़ा चकित हुआ कि वे जो अरब थे, किसी चीज में रस न लें। न तो वे प्रदर्शनी देखने में रस लें; बस जल्दी- जल्दी वापस चलना है। और जैसे होटल पहुंचे, वे फौरन बाथरूम में घुस जाएं। वह बड़ा हैरान हुआ कि मामला क्या है? उनको सबसे चमत्मकारी जो चीज लगे, वह लगे नल। रेगिस्तान में रहने वाले लोग, पानी के लिए तड़पे--बस वे जल्दी ही टोंटी खोलकर या तो शॉवर के नीचे खड़े हो जाएं या पानी देखें। उनको देखने में ही... उनको बहुत रस आए। बड़ी-बड़ी चीजें थीं प्रदर्शनी में--सारी दुनिया की प्रदर्शनी थी--मगर उन्हें किसी चीज में रस न था; उन्हें केवल नल की टोंटी में रस था। फिर जिस दिन वे जाने को थे, कार आकर खड़ी हो गई, सामान लद गया और अरब सब नदारद! ट्रेन चूकने की नौबत आ गई तो वह भागा हुआ ऊपर आया कि भाई क्या कर रहे हो? वे सब टोंटियां खोल रहे थे साथ ले जाने को। उसने उन्हें समझाया कि नासमझो! टोंटियों से कुछ न होगा। टोंटी तो तुम ले जाओगे, लेकिन भीतर जल का स्रोत चाहिए। टोंटी से जल नहीं आ रहा है; टोंटी से सिर्फ निकल रहा है; आ तो बहुत भीतर से रहा है।
तुम्हारे सारे कृत्य, प्रेम में जो करते हो, टोंटियों जैसे हैं। तुम किसी को गले लगा लेते हो--वह टोंटी है, उससे जल गिरेगा; लेकिन भीतर जल चाहिए, तो ही गिरेगा। भीतर न हो तो तुम गले से लगा लोगे तो हड्डियों से हड्डियां मिल जाएंगी, चमड़ी-चमड़ी को छुएगी, लेकिन प्रेम का कोई भी आदान-प्रदान न होगा; प्रेम की लपट एक हृदय से दूसरे हृदय में न जाएगी। टोंटी तुम खोलकर बैठे रहोगे। जल की एक बूंद न टपकेगी।
होना पहले है, करना अभिव्यक्ति है। तो किसी क्रियाकांस से कोई परमात्मा को नहीं पा सकता; लेकिन अगर कोई परमात्मा को पा ले तो उसके जीवन की हर कृत्य से वह प्रगट होने लगता है। उसके उठने-बैठने में भी परमात्मा

की अभिव्यक्ति होती है। उसकी आंख का एक इशारा परमात्मा का इशारा हो जाता है। फिर वह जो भी करता है, वह सभी पूजा है।
कबीर ने कहा है, जो जो करुं सो पूजा। क्योंकि कबीर न कभी मंदिर गए, न मस्जिद; कपड़ा ही बुनते रहे! जुलाहे थे तो काम जारी रखा। लोग कहते भी गए, बंद कर दो, क्यों कपड़ा बुनते हो? वे कहते थे, जो जो करुं सो पूजा और जिसके लिए कर रहा हूं वह परमात्मा है। झीनी-झीनी रे बीनी रे चदरिया! वह भी परमात्मा के लिए ही बुन रहा हूं। बाजार जाते तो जो भी ग्राहक खरीदता उसको वे हमेशा राम ही कहते कि राम, सम्हालकर रखना, बहुत प्यार से बुनी है। बड़ी प्रार्थना से बुनी है। एक-एक धागे में प्रार्थना है। ऐसे ही नहीं बुन दी गई है; राम के लिए बुनी है। पता नहीं ग्राहक समझ भी पाते या नहीं, या इस आदमी को पागल समझते। लेकिन कबीर कहते हैं, जो भी मैं करता हूं, वह अब सभी पूजा है; जो जो करता हूं सभी परिक्रमा है।
कृत्य से कोई परमात्मा को नहीं पाता; परमात्मा को पा ले तो सभी कृत्य धार्मिक हो जाते हैं--सभी! छोटे-छोटे कृत्य। प्यास लगी है। पानी पीना--वह भी धार्मिक हो जाता है, क्योंकि प्यास भी उसी को लगी है, पानी भी उसी का है। पानी का मिलन प्यास से, परमात्मा का सृष्टि से मिलन है; सृष्टि का स्रष्टा से मिलन है; जैसे कवि का कविता से; जैसे मूर्तिकार का अपनी मूर्ति से मिलन हो जाए; जैसे गीतकार को अपना ही गीत वापस लौट आए और मिल जाए। जब प्यास लगती है तो भीतर स्रष्टा को प्यास लगी है--उसका ही पानी है, उसकी ही सृष्टि है। गीतकार पर गीत वापस लौट आया--वर्तुल पूरा हो गया; सृष्टि स्रष्टा में लीन हो गई। छोटी-सी पानी पीने की छोटी घटना में भी सृष्टि स्रष्टा में लीन हो रही है।
जो जो करूं सो पूजा! तब भोजन करो तो भी पूजा है। तब कबीर अलग से भोग नहीं लगाते परमात्मा को; तब कबीर जो भोजन करते हैं, वही परमात्मा को लगाया गया भोग है। क्योंकि भीतर परमात्मा बैठा है।
ना तो कौनो क्रियाकर्म में, नहिं जोग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पलभर की तालास में।।
और जब... जो भीतर ही बैठा है, जो तुम्हारा होना है, जिसका किसी क्रिया
से कुछ लेना-देना नहीं, जिससे सब क्रियाएं निकलती हैं, जो सभी का मूल है-- उसको क्या तुम आसन लगाकर पाओगे? उसको तो लेटकर भी पाया जा सकता है। लेटने में भी वही मौजूद है। उसे तुम सिर के बल खड़े होकर पाओगे? उसे तो पैर के बल खड़े होकर बड़े मजे से पाया जा सकता है, क्योंकि वह तब भी मौजूद है। उसे तुम उपवास करके पाओगे? उसे तुम शरीर को सताकर पाओगे? उसे तुम धूप में बैठकर पाओगे? क्योंकि छाया भी उसी की है। सभी कुछ उसका है इसलिए कुछ भी करने की शर्त नहीं है। शर्त है तो होने की है कि तुम हो जाओ; कि तुम इतने भरपूर हो जाओ कि तुम्हारे प्रत्येक कृत्य से वही बहने लगे।
और कबीर एक बड़ा अनूठा विचार कह रहे हैंः वह जो झेन फकीर कहते हैं--सडन एनलाटमेन्ट--समाधि इसी पल हो सकती है। एक पल तक भी रुकने की कोई जरूरत नहीं है, स्थगित करने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि समाधि कोई सरकारी दफ्तर नहीं है कि कल, कल, कल, और फिर कभी नहीं होता। समाधि कोई रेड टेप नहीं है कि उसके लिए कोई बड़े दफ्तरों में प्रार्थना करनी पड़ती है, फिर वहां से सैंक्शन मिले, फिर रिश्वत खिलाओ, फिर लाईसेंस निकालो--तब तुम्हारी समाधि होगी। अगर दूसरे का सहारा लेना हो तो फिर पता नहीं कब वह दूसरा सहारा देगा और कब घटना घटेगी। अगर दूसरे पर थोड़ी भी निर्भरता हो तो समय लगेगा, दूसरे का क्या भरोसा--दे, न दे! लेकिन समाधि तुम्हारा शुद्ध निर्णय है। समाधि एक मात्र घटना है इस जगत में जो तुम्हारे अकेले होने से घट सकती है, जिसके लिए दूसरे की जरूरत नहीं है। सभी घटनाओं में दूसरे की जरूरत है। प्रेम तक के लिए दूसरे की जरूरत है। दूसरा न हो तो कैसे प्रेम घटेगा। इसलिए प्रेम भी निर्भर है, मोहताज है। अकेली समाधि एकमात्र घटना है जो मोहताज नहीं है, जो भिखारी नहीं है। अकेली समाधि सम्राट है। तुम जिस क्षण चाहो, तुम ही न चाहो--तुम्हारी मर्जी तुम कई बार सोचते हो कि तुम चाहते होऔर घटती नहीं है; तुम गलत सोचते हो। तुम चाहते नहीं; नहीं तो घटेगी ही। वह नियम है। उस नियम में कोई रूपांतरण नहीं हुआ है। कभी नहीं होगा।

मुझसे कई बार लोग आकर कहते हैं कि आप कहते हैं, चाहने से घट जाएगी; चाहते तो हम भी हैं, लेकिन उनकी चाह मैं देख रहा हूं कि बिल्कुल कुनकुनी है। चाह का मतलब हंडरेड डिग्री, सौ डिग्री पर होनी चाहिए, तभी पानी उबलता और भाप बनता है। भाप बनाने की इच्छा है, बड़ा तबेला रखे बैठे हैं मन का और एक अंगारा लगा रखा है नीचे--उससे होता ही नहीं।
ऐसा हुआ कि एक सम्राट ने एक फकीर को, उसकी यह बात सुनकर--फकीर ने कहा कि परमात्मा मेरी सब जगह रक्षा करता है; हर हालत में मेरी रक्षा करता है; मुझे किसी और चीज की रक्षा की जरूरत नहीं है, वह काफी है। सम्राट ने कहा, ठीक! सर्द रात थी, बर्फ पड़ती थी। उस फकीर को महल के पास की नदी में नग्न खड़ा करवा दिया गले-गले पानी में, और कहा, देखें, तेरा परमात्मा कैसे बचाता है! सुबह फकीर ताजा था, बिल्कुल ठीक-ठीक था गुनगुनाता गीत--जैसी उसकी आदत थी। वह महल आया। सम्राट देखकर भरोसा न कर सका। इतनी सर्द रात थी कि मर ही जाता, जम ही जाता खून। क्या मामला है? उसने कहा, तो तुम बच गए? तुमने कोई सहारा तो नहीं लिया? सैनिक ने कहा--जो इसे लेकर आया था--कि सहारा लिया है, मैंने रात देखा था। महल के ऊपर जो दीया जलता है उसको वह देख रहा था। उसी से मालूम होता है, इसको गर्मी मिली है। कहां महल का दीया, दो फर्लांग के फासले पर नदी, बर्फ पड़ती रात! मगर सम्राट ने कहा कि यह तो तुमने धोखा दिया। परमात्मा पर्याप्त नहीं है।
फकीर कुछ बोला नहीं। वह लौट गया। कुछ दिनों बाद फकीर ने दावत दी सम्राट को। उसके दरबारियों को, सभी को बुलाया। बड़ी दावत दी। करीब-करीब नगर को निमंत्रित कर लिया। सब लोग पहुंचे। फकीर की दावत थी। सम्राट भी आया। बैठे लोग, फकीर अंदर जाए बार-बार, फिर बाहर आ जाए। पूछा कि बड़ी देर हुई जा रही है, बात क्या है? उसने कहा कि भोजन पक जाए तो मैं खबर दूं। फिर देर बहुत होने लगी, भूख भी बढ़ने लगी। और फकीर फिर इधर-उधर की बातें करें। आखिर सम्राट ने कहा कि मामला क्या है? मैं अंदर चलकर देखना चाहता हूं। दोपहर भी हो गई अब सांझ भी करीब आई जाती है। यह क्या भूखे मार डालोगे? अंदर जाकर देखा तो वहां कुछ भी न था! खाली चूल्हे पर एक बड़ा तपेला रखा था। मीठे चावल उसमें भरे हुए थे। आग तो वहां थी ही नहीं। उसने कहा, तू यह क्या कर रहा है? उसने कहा, आप के महल का दीया! हम उसी आग पर तपा रहे हैं, जिस आग से हम उस रात बच गए थे। कभी न कभी जरूर भोजन पक जाएगा।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि चाह तो है। लेकिन जब वे कहते हैं चाह तो है, तब भी मैं देखता हूं कि वे डर रहे हैं कि कहीं ऐसा न हो कि समाधि लग ही जाए। चाह तो है, उसमें भी पैर पीछे खींचते हुए मैं उनको देखता हूं। वे मेरी तरफ ऐसा देखते हैं, ऐसा नहीं कि आप पक्का ही मान लें। मतलब है, थोड़ी जिज्ञासा है। जानने का थोड़ा ख्याल है।
चाह जब पूरी होती है; जब चाह समग्र होती है; जब तुम्हारे प्राण में सिर्फ चाह ही चाह होती है; जब तुम्हारे रोएं-रोएं से एक ही पुकार उठती है परमात्मा को पाने की--तब कबीर ठीक कहते हैंः खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं। जितनी गहन चाह है, उतनी ही परमात्मा और तुम्हारे बीच की दूरी कम हो जाती है। अगर चाह परिपूर्ण है तो दूरी समाप्त हो गई। चाह का ही सवाल है।
श्री अरविंद ने उस तरह की चाह के लिए एक नए शब्द का प्रयोग किया है, वह ठीक है। इसे वे कहते हैंः अभीप्सा। आकांक्षा नहीं, अभिलाषा नहीं-- अभीप्सा। अभीप्सा के शब्द में बल है। उसका अर्थ है ऐसी चाह की पूरा जीवन दाव पर लगा है कि कुछ बचाने का सवाल नहीं है; संदेह र Ÿाभर नहीं है--तब उसी पल घट जाती है घटना।
देर लग रही है, क्योंकि देर तुम लगा रहे हो। देर लग रही है, क्योंकि तुम चाहते हो कि देर लगे। अभी कहीं-कहीं संसार में रस बाकी है। सोचते हो, एक दिन और गुजर जाए, समाधि न लगे; तो यह जो सौदा किया है, यह निपट जाए; कि यह जो नया-नया प्रेम हो गया है किसी स्त्री से, इससे तृप्ति हो जाए--जरा और देर समाधि न लगे।
देखना अपने मन में गौर सेः तुम इसी क्षण समाधि चाहते हो? कुछ राग-रंग बचा नहीं है? सब तरफ से तुम भर गए हो संसार से? कोई और चाह नहीं बची?
जब सभी चाहें--जैसे सभी नदियां सागर में गिर जाती हैं--जब सभी चाहें एक चाह में गिर जाती हैं, उसी क्षण, उसी क्षण परमात्मा मिला ही हुआ था; बस तुम

जाग ही जाते हो, नींद टूट जाती है, सपना मिट जाता है। सपने तक से जागने में आदमी डरता है, अगर सपना अच्छा चल रहा हो, और बुरा भी चल रहा हो तो आशा तो बनी रहती है कि आज बुरा चल रहा है, आज जरा धंधा ठीक नहीं चल रहा है, कल चलेगा; कौन जाने कल सब ठीक हो जाए!
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक रात सपना देखा। सपने में देखा कि कोई एक देवदूत कह रहा है कि निन्यानबे रुपये ले लो। मुल्ला ने कहा, निन्यानबे? सौ लूंगा। और जब लेने ही हैं तो निन्यानबे क्यों? क्यों मुझे चक्कर में निन्यानबे के डालते हो? सौ ही दे दो। लेकिन उसने इतने जोर से कहा कि सौ ही दे दो, कि खुद के मुंह से आवाज निकल गई और नींद टूट गई। नींद टूट गई तो उसकी आंख खुल गई। उसने पत्नी से कहा कि बड़ी मुसीबत हो गई। फिर उसने आंख बंद की और कहा, भाई, कोई हर्जा नहीं, निन्यानबे ही दे दो। मगर अब वहां कोई है नहीं। अठानबे, सतानबे--वह उतरता आया और उसने कहा, अच्छा, एक ही दे दो, जिसके लिए जिद्द खड़ी हो गई थी। तुम निन्यानबे कह रहे थे; हम सौ कह रहे थे। अब हम एक पर भी राजी हैं।
मगर अब सपना नहीं है वहां।
आदमी सपने में भी--सुखद सपना चल रहा हो तो चलाए रखना चाहता है; दुखद चल रहा हो तो सोचता है कि आज दुख है, कल सब ठीक हो जाएगा। सुख हो तो पकड़ने का मन होता है, दुख हो तो कल आशा बांधे मन अटका रहता है।
समाधि का अर्थ है कि न तो अब सुख की कोई चाह रही, न कोई सुख की आशा रही। संसार जैसा था वैसा देख लिया--आर-पर, व्यर्थ पाया, स्वप्न पाया; अब तो जागने की एकमात्र इच्छा रह गई। सभी इच्छाएं जो संसार में नियोजित थी, अब एक ही चाह में आ गिरीं कि जाग जाऊं। फिर तुम्हें कोई रोक न सकेगा। कोई रोकने को नहीं है। तुम्हारी चाह में ही तुम बंटे हो। तुम्हारी शक्ति इधर लगी, उधर लगी, हजार तरफ लगी है। वह सारी शक्ति एक ही चाह में गिर जाए, अभीप्सा बन जाए--खोजी होए तो तुरतै मिलिहौं--वही मतलब है कबीर का।
खोजी कौन है? परमात्मा की चाह जिसकी अभीप्सा हो गई है; जो सब दांव पर लगाने को राजी है; जो कुछ भी बचाना न चाहेगा। खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं-- और जब तुरंत एक पल भी न जाएगा--पल भर की तालास में।
मैं तो रहौं सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में। कबीर कह रहे हैं कि परमात्मा संसार में नहीं रह रहा है, शहर के बाहर है। शहर यानी संसार--वह जो चारों तरफ फैला है। परमात्मा वहां नहीं रह रहा है। मेरा रहना तो भीतर के गढ़ में है। मैं तो वहां हूं। सब तरफ संसार है; सिर्फ भीतर संसार नहीं है; वहां मोक्ष है।
लोग पूछते हैं, मोक्ष कहां है और मंदिरों में नक्शे भी टंगे हैं कि ऐसा-ऐसा जाओ फिर यहां ये-ये सीढ़ियां पड़ेंगी और ये-ये द्वार मिलेंगे। और नीचे नरक है और ऊपर स्वर्ग है और सबके ऊपर मोक्ष है।
मोक्ष भीतर है। ऊपर, नीचे, बाहर, कहीं भी नहीं है। मोक्ष भीतर है।
खोजने वाले में छिपा है वह जिसकी खोज चल रही है। पूछनेवाले में छिपा है वह, जिसको तुम पूछ रहे हो।
मैं तो रहौं सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में। मवास का अर्थ होता है, भीतर का दुर्गम गढ़।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब सांसों की सांस में।
सब सांसों की सांस में। कहां है सब सांसों की सांस?
तुम सांस से नहीं जी रहे हो, क्योंकि तुम चाहो तो एक क्षण को सांस को रोक दे सकते हो। जब सांस नहीं होती, बंद है, तब भी तुम हो। तुम्हारा होना बिना सांस के भी हो सकता है। फिर अगर तुम इसका अभ्यास करो तो दस मिनट के लिए रोक सकते हो, दस दिन के लिए रोक सकते हो। लोगों ने सालों तक के लिए सांस रोक दी है। अब तो वैज्ञानिक भी इससे राजी हो गए हैं कि सांस जीवन का लक्षण नहीं है, सिर्फ जीवन की अभिव्यक्ति है। योगियों ने तो मनोवैज्ञानिकों को तो बड़े संकट में डाल दिया, क्योंकि उनकी परिभाषा डगमगा गई है कि आदमी मर गया, इसको कैसे तय करें। क्योंकि पहले तो निश्चित परिभाषा थीः सांस बंद हो गई--आदमी मर गया; सांस की जांच-पड़ताल कर लो--आदमी मर गया। लेकिन पूरब में, अनेक योगियों ने प्रयोग करके दिखाए जहां कि वे दस मिनिट के लिए सांस बंद

कर लेते, बिल्कुल बंद कर लेते। डॉक्टर जांच करके कह देता है कि हमारे हिसाब से तो यह आदमी मर गया है। सांस से तो शरीर चल रहा है, जीवन नहीं।
जीवन सांस से भी गहरा है। सांस से तो शरीर चल रहा है, जीवन नहीं।
सब सांसों की सांस में।--उसका मतलब है कि सब सांसों के भीतर भी जो छिपा
है जीवन, वहां मैं हूं। वही जीवन सब सांसों की सांस है। श्वास शरीर का जीवन है। शरीर टूट जाएगा श्वास के बिना; लेकिन वह पूरी तरह जीवित था।
इजिप्त में एक आदमी को 1880 में, एक फकीर को जमीन में दफनाया गया-- जिंदा। और उसने कहा, चालीस साल बाद मुझे निकालना। जिन्होंने दफनाया था वे सब मर गए। चालीस साल! एक आदमी न बचा गवाह, जो मौजूद था दफनाते वक्त। लोग धीरे-धीरे भूल ही गए। चालीस साल इतना लंबा वक्त है! संयोग की बात थी कि एक आदमी को लायब्रेरी में पढ़ते-पढ़ते एक पुरानी किताब मिल गई, और उसमें उसका उल्लेख था। तो उसने इंतजाम करवाया। 1920 में वह कब्र खोदी गई, वह आदमी जिंदा बाहर आया, और तीन साल तक जिंदा रहा, बाद में भी।
श्वास शरीर का हिस्सा है। कबीर कहते हैं, सब सांसों की सांस में। और परमात्मा को अगर खोजना है तो तुम्हें वहां खोजना होता, जहां श्वास भी निस्स्पंद हो जाती है; विचार भी बंद हो जाते हैं, श्वास भी निस्स्पंद हो जाती है। सब गति शून्य हो जाती है, सब क्रिया लीन हो जाती है; सिर्फ होना मात्र बचता है; सिर्फ तुम होते हो शुद्ध--एक शांत झील की भांति, जिस पर एक भी लहर नहीं; एक शुद्ध दर्पण की भांति, जिस पर एक भी प्रतिबिंब नहीं; एक गहन सन्नाटा, जिसमें सन्नाटे के भी आवाज नहीं--वहां सब सांसों की सांस में छिपा है।
जिस दिन अभीप्सा होगी, उसी दिन द्वार खुल जाएंगे। जिस दिन तुम पुकारोगे पूरे प्राण से, उसी दिन द्वार खुल जाएंगे।
जीसस ने कहा है, खटखटाओ--और द्वार खुल जाएंगे। पुकारो, आवाज दो, प्रत्युŸार मिलेगा। लेकिन तुम पुकारते नहीं। न तुम द्वार खटखटाते हो। तुम बातचीत करते हो। तुम पूछते हो, कैसे खटखटाएं? तुम पूछते हो, कैसे पुकारें? जब बच्चे को भूख लगती है, वह पूछता है किसी से, कैसे पुकारें? किसी बच्चे ने किसी से पूछा? बड़ी हैरानी की बात है। बच्चा पैदा होते से ही, भूख लगती और आवाज देता है, रोता-चिल्लाता है। यह बच्चा कहां सीखा होगा? इसको सीखने की कोई भी तो सुविधा नहीं थी गर्भ में। ये गर्भ से सीधे चले आ रहे हैं और भूख लगी और पुकार देते हैं।
तुम जिस परमात्मा के गर्भ से आए हो, वहीं से तुम पुकार सीखकर आए हो। जिस दिन तुम्हारी अभीप्सा होगी। उसी दिन पुकार उठ जाएगी। एक गहन आवाज तुम्हारे भीतर से उठेगी। उस गहन आवाज में कोई भाषा न होगी। क्योंकि भाषा तो सब सीखी हुई है। उस गहन आवाज का तुम एक ही अनुमान कर सकते हो, बच्चे के रुदन से, जब वह भूखा है। तब तुम रो उठोगे। तुम्हारा रोआं-रोआं उस रोने में सम्मिलित हो जाएगा। तब तुम कुछ कहोगे नहींः तुम्हारा पूरा रोना ही तुम्हारा कहना होगा।
सूफी फकीर कहते हैं कि मत पूछो कि प्रार्थना कैसे करें? क्योंकि अगर किसी ने बता दिया तो तुम सदा के लिए भटक जाओगे। मत पूछो कि प्रार्थना कैसी करें?
वे कहते हैं कि एक भिखारी एक सम्राट के द्वार पर खड़ा था। सम्राट ने उसे देखा और लाकर धन-संपिŸा से उसकी झोली भर दी। उसने कुछ कहा नहीं। और देखने वाले चकित हुए। उन्होंने उस भिखारी को, जब सम्राट वापस चला गया भीतर महल के, पूछा। उसने कहा, कहने को क्या है? मेरा पूरा होना ही असफलता की कथा! अब और कहने को क्या है? मैं सिर्फ खड़ा हो गया वहां। सम्राट ने मुझे देखा। बात खत्म हो गई। कहने को क्या है? और अगर सम्राट अंधा हो और अगर देख न सके तो कहने से भी क्या होगा?
परमात्मा के द्वार पर तुम्हें कुछ गायत्री मंत्र थोड़े ही बोलना है कि अल्लाह-हू-अकबर की आवाज लगानी है। तुम्हारी सीखी कोई प्रार्थना की वहां जरूरत नहीं है; तुम ही वहां प्रार्थना बनकर खड़े हो जाओ। तुम्हारा होना ही तुम्हारी प्रार्थना हो। तुम्हारा रोआं-रोआं प्यासा हो। तुम्हारी धड़कन-धड़कन में चाह हो--ऐसी चाहत कि शब्द भी छोटे पड़ जाएं। तुम एक लपट की तरह जिस दिन खड़े हो जाओगे; उसी क्षणः

"खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब सांसों की सांस में।।
"कस्तूरी कुंडल बसै!"
आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
सत्रहवां प्रवचन

मन रे जागत रहिये भाई

सूत्र
मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे।
मैं कहता हौं आंखन देखी, तू कागद की लेखी रे।।

मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यो अरुझाई रे।
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।।

मैं कहता निरमोही रहियो, तू जाता है मोहि रे।
जुगन-जुगन समुझावत हारा, कहा न मानत कोई रे।।

तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डारया खोई रे।
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामें काया धोई रे।।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे।।

ज्ञान की यात्रा में श्रद्धा के चरण चाहिए। अश्रद्धा तो जंजीरों की तरह हैः बांध लेती है, रोक लेती है। श्रद्धा पंख की भांति हैः मुक्त करती है खुले आकाश में।
लेकिन श्रद्धा बड़ी कठिन घटना है। अश्रद्धा मन के लिए बड़ी सुगम और सरल है; क्योंकि अश्रद्धा भय है, श्रद्धा अभय है।
अश्रद्धा का अर्थ है कि जो मुझे ज्ञात है, बस उतना ही सत्य है, कहीं और जाने की जरूरत नहीं; जो मैंने जान लिया वह काफी है, कुछ और जानने की न तो जरूरत है, न कुछ और जानने को है। इसलिए अश्रद्धा ज्ञात से चिपकने का नाम है, ज्ञात को जकड़ लेने का नाम है।
श्रद्धा अज्ञात में यात्रा हैः जो मैं जानता हूं, वह बहुत ना कुछ है। जैसे विराट सागर के किनारे और मैंने चुल्लूभर पानी अपने हाथ में ले लिया हो ऐसा है मेरा जानना; और जो शेष है जानने को वह विराट सागर है।
जो मैंने जान लिया है, श्रद्धावान उसे सीढ़ी बनाता है--उसमें उठ जाने की, जो नहीं जाना है। अश्रद्धावान, जो जान लिया है उसे कारागृह बना लेता है, दीवाल बना लेता है--अवरोध के लिए, ताकि वह जो खुला आकाश है अज्ञात का, उससे सुरक्षा हो सके।
साधारणतः अश्रद्धालु समझते हैं कि वे बहुत शक्तिशाली, साहसी हैं। बात बिल्कुल उलटी है। अश्रद्धा कायरता का निचोड़ है; श्रद्धा साहस का नवनीत। क्योंकि श्रद्धा का अर्थ है कि मैं अज्ञात में, अनजान में, बे-पहचाने में, कदम उठाने को राजी हूं। बड़ा साहस चाहिए। और शिष्य होने का कोई और अर्थ नहीं होता है। श्रद्धा में गति बढ़े, श्रद्धा में रस बढ़े, तो ही शिष्यत्व का फूल खिलता है; अन्यथा गुरु और शिष्य के बीच सेतु क्या होगा?
गुरु ऐसे है जैसे आंखें मिल गईं, और शिष्य ऐसे है जैसे अंधा। अंधे और आंखवाले के बीच विवाद क्या हो सकता है? क्योंकि जिसके पास आंखें हैं, उसे प्रकाश के किसी और प्रमाण की कोई जरूरत नहीं। प्रमाण है भी नहीं कोई और। क्या प्रमाण है प्रकाश का, सिवाय तुम्हारी आंखों के? जिसके पास आंखें हैं, उसके लिए प्रकाश स्वयंसिद्ध है। और जिसके पास आंखें नहीं हैं, उसके लिए प्रकाश का अनुमान भी असंभव है। जानना तो दूर, अनुमान करना भी कि प्रकाश जैसी कोई चीज हो सकती है, अंधे के लिए असंभव है। प्रकाश भी दूर, अंधे को अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता। तुम शायद सोचते हो कि अंधा तो अंधेरे में जीता हैं। तो तुम गलती में हो। अंधेरे को देखने के लिए भी आंख चाहिए। प्रकाश को देखने के लिए तो आंख चाहिए ही; अंधेरा भी आंख का ही अनुभव है। बिना आंख के अंधेरे का भी कोई पता नहीं चल सकता। अंधे को अंधेरे का भी पता नहीं है। और

प्रकाश के प्रमाण मांगेगा, प्रकाश के लिए तर्क करेगा, तो सदा अपने अंधेपन से बंधा रह जाएगा।
और, प्रकाश को जिसने जान लिया, वह प्रकाश का वर्णन भी नहीं कर सकता, प्रमाण देना तो बहुत दूर है। वह यह भी नहीं कह सकता कि प्रकाश कैसा है।
उसका तो स्वाद ही लिया जाता है। स्वाद से ही उसकी प्रतीति होती है। आंखवाले के लिए परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं हैं। और जिसके पास आंख नहीं है, उसके लिए परमात्मा को छोड़कर सभी चीजें सत्य हैं; परमात्मा एकमात्र असत्य है।
तो शिष्य और गुरु के बीच सेतु क्या होगा? कैसे शिष्य और गुरु मिलेंगे? कैसे उनके बीच एक ही दिशा में यात्रा का प्रारंभ होगा। वे कैसे प्रस्थान करेंगे? क्या होगा जोड़?
अगर शिष्य की तरफ विवाद की आकांक्षा हो तो जोड़ नहीं हो सकता। तब वे विपरीत दिशाओं में यात्रा करेंगे। शिष्य की तरफ अगर तर्क का आग्रह हो तो यात्रा असंभव है। क्योंकि वस्तुओं का स्वभाव ऐसा है कि उन्हें जाना जा सकता है, लेकिन जानने के पहले उनके लिए कोई तर्क नहीं दिया जा सकता।
कुछ वर्ष पहले पहलगांव (कश्मीर) में एक घटना घटी, जो मुझे भूले नहीं भूलती। एक वृक्ष के नीचे बैठा था। ऊंचाई पर वृक्ष में छोटा-सा एक घोंसला था, और जो घटना उस घोंसले में घट रही थी उसे मैं देर तक देखता रहा, क्योंकि वही घटना शिष्य और गुरु के बीच घटती है। कुछ ही दिन पहले अंडा तोड़कर किसी पक्षी का एक बच्चा बाहर आया होगा, अभी भी वह बहुत छोटा है। उसके माता-पिता दोनों कोशिश कर रहे हैं कि वह घोंसले पर पकड़ छोड़ दे और आकाश में उड़े। वे सब उपाय करते हैं। वे दोनों उड़ते हैं आसपास घोंसले के, ताकि वह देख ले कि देखो हम उड़ सकते हैं, तुम भी उड़ सकते हो।
लेकिन अगर बच्चे को सोच-विचार रहा हो तो बच्चा सोच रहा होगा, तुम उड़ सकते हो, उससे क्या प्रमाण कि हम भी उड़ सकेंगे; तुम तुम हो, हम हम हैं; तुम्हारे पास पंख हैं--माना, लेकिन मेरे पास पंख कहां हैं?
क्योंकि पंखों का पता तो खुले आकाश में उड़ो तभी चलता है; उसके पहले पंखों का पता ही नहीं चल सकता है। कैसे जानोगे कि तुम्हारे पास भी पंख हैं, अगर तुम चले ही नहीं, उड़े ही नहीं?
तो बच्चा बैठा है किनारे घोंसले के, पकड़े है घोंसले के किनारे को जोर से; देखता है, लेकिन भरोसा नहीं जुटा पाता। मां-बाप लौट आते हैं, फुसलाते हैं, प्यार करते हैं; लेकिन बच्चा भयभीत है। बच्चा घोंसले को पकड़ रखना चाहता है, वह ज्ञात है। वह जाना-माना है। और छोटी जान और इतना बड़ा आकाश! घोंसला ठीक है, गरम है, सब तरफ से सुरक्षित है; तूफान भी आ जाए तो भी कोई खतरा नहीं है, भीतर दुबक रहेंगे। सब तरह की कोशिश असफल हो जाती है। बच्चा उड़ने को राजी नहीं है।
यह अश्रद्धालु चिŸा की अवस्था है। कोई पुकारता है तुम्हें, आओ खुले आकाश में, तुम अपने घर को नहीं छोड़ पाते। तुम अपने घोंसले को पकड़े हो। खुला आकाश बहुत बड़ा है, तुम बहुत छोटे हो। कौन तुम्हें भरोसा दिलाए कि तुम आकाश से बड़े हो? किस तर्क से तुम्हें कोई समझाए कि दो छोटे पंखों के आगे आकाश छोटा है? कौन-सा गणित तुम्हें समझा सकेगा? क्योंकि नापजोख की बात हो तो पंख छोटे हैं, आकाश बहुत बड़ा है। पर बात नाप-जोख की नहीं है। दो पंखों की सामर्थ्य उड़ने की सामर्थ्य हैः बड़े से बड़े आकाश में उड़ा जा सकता है। और पंख पर भरोसा आ जाए तो आकाश शत्रु जैसा न दिखाई पड़ेगा, स्वतंत्रता जैसा दिखाई पड़ेगा; आकाश मित्र हो जाएगा।
परमात्मा में छलांग लेने से पहले भी वैसा ही भय पकड़ लेता है। गुरु समझाता है, फुसलाता है, डांटता है, डपटता है, सब उपाय करता है--किसी तरह एक बार... ।
जब उन दो पक्षियों ने--मां-बाप ने देखा कि बच्चा उड़ने को राजी नहीं तो आखिरी उपाय किया। दोनों ने उसे धक्का ही दे दिया। बच्चे को ख्याल भी न था कि वे ऐसी क्रूरता कर सकेंगे, कि इतने कठोर हो सकेंगे।
गुरु को कठोर होना पड़ेगा। क्योंकि तुम्हारी जड़ता ऐसी है कि तुम्हें धक्के ही न लगें तो तुम आकाश से वंचित ही रह जाओगे। उस कठोरता में करुणा है।

अगर मां-बाप करुणा कर लें तो यह बच्चा सदा के लिए पंगु रह जाएगा। इसकी नियति भटक जाएगा, खो जाएगी, यह सड़ जाएगा उसी घोंसले में। घोंसला घर न रहेगा, कब्र बन जाएगा। और यह बच्चा अपरिचित रह जाएगा अपने स्वभाव से। उस स्वभाव का तो खुले आकाश में उड़ने पर ही एहसास होगा। वह समाधि तो तभी लगेगी जब अपनी क्षुद्रता को यह विराट आकाश में लीन कर सकेगा; जब अपने छोटेपन में यह बड़े से बड़ा भी हो जाएगा। जब इसकी आत्मा परमात्मा जैसी मालूम होने लगेगी, तभी इसकी समाधिस्थ अवस्था होगी।
बच्चे को पता भी नहीं था, समझ भी नहीं थी, ख्याल भी न था, कि यह होगा। धक्का खाते ही वह दो क्षण को खुले आकाश में गिर गया--फड़फड़ाया, घबड़ाया, वापस लौटकर घोंसले को और जोर से पकड़ लिया; लेकिन अब उस बच्चे में एक फर्क हो गया, जो उसके चेहरे पर भी देखा जा सकता था। अश्रद्धा खो गई है। पंख हैं। छोटे होंगे। आकाश इतना भयभीत नहीं करनेवाला है जितना अब तक कर रहा था। और एक क्षण को उसने खुले आकाश में सांस ले ली। अब अश्रद्धा नहीं है। थोड़ी देर में धक्के की अशांति चली गई, कंपन खो गया। मां-बाप उसे बड़ा प्यार दे रहे हैं, थपथपा रहे हैं, चोचों से सहला रहे हैं, उसे आश्वस्त कर रहे हैं कि वह अपने अनुभव को पी जाए। उसे अपने पंखों की समझ आ गई। वह पंख फड़फड़ाता है बीच-बीच में। अब पहली दफा उसे पता चला कि उसके पास पंख हैं, वह भी उड़ सकता है। फिर घड़ी भर बाद मां-बाप उड़े और बच्चा उनके साथ हो लिया।
ठीक यही घटना घटती है हर शिष्य और हर गुरु के बीच; और सदा से घटी है, और सदा ऐसे ही घटेगी। किसी-न-किसी तरह गुरु को शिष्य की अश्रद्धा को तोड़ना है; किसी-न-किसी तरह शिष्य को यह भरोसा दिलाना है कि उसके पास पंख हैं और आकाश छोटा है।
और उड़े बिना जीवन में कोई गति नहीं है। रोज-रोज उड़ना है। रोज-रोज अतीत
का घोंसला छोड़ना है। रोज-रोज जो जान लिया, उसकी पकड़ छोड़ देनी है, और जो नहीं जाना है उसमें यात्रा करनी है। सतत है यात्रा। अनंत है यात्रा। कहीं भी ठहर नहीं जाना है। पड़ाव भले कर लेना, घर कहीं मत बनाना। यही मेरी संन्यास की परिभाषा है।
पड़ाव-ठीक। रात अंधेरा हो जाए, घोंसले में विश्राम कर लेना, लेकिन खुले आकाश की यात्रा बंद मत करना। रुकना, लेकिन रुक ही मत जाना। रुकना सिर्फ इसलिए ताकि शक्ति पुनः लौट आए, तुम ताजे हो जाओ, सुबह फिर यात्रा हो सकेगी। बस ज्ञान पर उतना ही पड़ाव करना कि अज्ञात में जाने की क्षमता अक्षुण्ण हो जाए। ज्ञानी मत बनना। ज्ञानी बने तो घोंसला पकड़ गया। वही तो पंडित की परेशानी हैः जो भी जान लेता है, उसको पकड़ लेता है। उसको पकड़ने के कारण हाथ भर जाते हैं; और जो बहुत जानने को शेष था वह शेष ही रह जाता है। जानना और छोड़ना। जानना और छोड़ना।
कहावत हैः नेकी कर और कुएं में डाल। ठीक वैसा ही ज्ञान के साथ भी करना। जानो, कुएं में डालो। तुम सदा अज्ञात की यात्रा पर बने रहना। तो ही एक दिन उस चिरंतन से मिलन होगा। क्योंकि वह चिरंतन अज्ञात ही नहीं, अज्ञेय है।
ये तीन शब्द ठीक से समझ लेना। ज्ञात तो वह है जो तुमने जान लिया। अज्ञात वह है जो तुम कभी न कभी जान लोगे। अज्ञेय वह है जिसे तुम कभी न जान सकोगे। उसको तो स्वाद ही लेना होगा। उसे तो जीना ही होगा। जानने जैसी दूरी उसके साथ नहीं चल सकती। उसके साथ तो एक ही हो जाना होगा। उसके साथ तो डूबना होगा। वह तो मिलन है, ज्ञान नहीं। वहां तो तुम और उसको होना अलग न रह जाएगा। वहां तुम जानने वाले न रहोगे; वहां तुम उसी के साथ एक हो जाओगे।
उस परम घड़ी को लाने के लिए, ज्ञात को छोड़ना है, अज्ञात में यात्रा करनी है। और जब तुम अज्ञात की यात्रा में कुशल हो जाओगे, तब तुम्हें गुरु आखिरी धक्का देगा कि अब अज्ञात को भी छोड़ देता है और अज्ञात की यात्रा पर निकल जाता है, वह संन्यस्त। और अज्ञात को भी जो छोड़ देता है और अज्ञेय में लीन हो जाता है, वह सिद्ध। फिर कुछ और पाने को नहीं बचता। पानेवाला ही खो गया, तो अब पाने को क्या कुछ बचेगा?
ये कबीर के पद, ये वचन शिष्य और गुरु के बीच सेतु बनाने के लिए बड़े महत्वपूर्ण हैं। एक-एक शब्द को गौर से समझने की कोशिश करें।

मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे। कबीर शिष्य से कह रहे हैं कि मेरा और तेरा होना एक कैसे हो? और जब तक एक न हो, तब तक गुरु जो भी बताए वह बाहर ही बाहर होगा। तुम उससे सीख लोगे शब्द, सिद्धांत; पर गुरु जो वस्तुतः देना चाहता था, तुम उससे वंचित रह जाओगे।
बहुत मेरे पास भी मित्र आ जाते हैं जो थोड़ा-सा ज्ञान अर्जित करके संतुष्ट हो जाएंगे।
ज्ञान तो कूड़ा-कचरा है; उससे संतुष्ट मत हो जाना। जीवन चाहिए! ज्ञान
से क्या होगा? जान लो कितना ही परमात्मा के संबंध में--क्या सार है? ऐसे ही जैसे भूखा कितना ही जान ले भोजन के संबंध में, सारा पाकशास्त्र कंठस्थ कर ले--क्या होगा? पूरा पाकशास्त्र भी तो एक जून की भूख नहीं मिटा सकता।
वेद पाकशास्त्र हैं। उपनिषद, गीता पाकशास्त्र हैं। उनमें भोजन की चर्चा है; वहां भोजन नहीं है। चचों में कहीं भोजन होता है?
मैं तुमसे कुछ कहता हूं--उसमें भोजन नहीं है; वह जो कहता हूं, वह तो केवल इशारा है। वह तो केवल इशारा है--उस तरफ, जहां भोजन है। तुम उससे ही तृप्त मत हो जाना। तुम इशारे को सम्हालकर मत रख लेना। उसको संपदा मत समझ लेना। मैं जो कहूं, उसे तो भूल जाना; मैं जिस तरफ इशारा कर रहा हूं, उस तरफ की यात्रा पर निकल जाना। मुझे सुनकर भी तुम पंडित हो सकते हो--तब तुम चूक गए; तब तुम सरोवर के किनारे थे और प्यासे ही लौट गए; सरोवर के किनारे थे और पानी के संबंध में जानकर लौट गए, और पानी को न पीया।
परमात्मा के संबंध में जानने का कुछ भी तो सार नहीं। कोरे शब्द हवा में बने बबूले हैं। उनमें कुछ भी नहीं है। लेकिन वे महत्वपूर्ण मालूम होते हैं, क्योंकि अहंकार को भरते हैं। थोड़ा ज्यादा जान लिया, थोड़ी संपदा और भीतर धन की, शब्दों की इकट्ठी हो गई--अकड़ और बढ़ जाती है।
अहंकार पंडित होना चाहता है, प्रज्ञावान नहीं। अहंकार संग्रह करना चाहता है, समर्पण नहीं। अहंकार खोना नहीं चाहता, बचना चाहता है। और तुम जब तक खोओगे नहीं, तब तक तुम्हारे बचने का कोई भी उपाय नहीं।
तो कबीर कहते हैं, मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होई रे। हो कैसे यह घटना कि मेराŸोरा मन एक हो जाए? क्योंकि तू सब तरह की अड़चनें खड़ी कर रहा है। शिष्य अड़चनें खड़ी करता है। पहले तो वह विवाद खड़ा करता है। पहले तो वह कहता है, सिद्ध करो; जब तक सिद्ध न करोगे, मानेंगे कैसे? हमें कोई अंधा समझा है? हम कोई अंधे अनुयायी हैं? हम तो सोच-विचार करके चलेंगे।
सोच-विचार ही तुम्हारे पास होता तो गुरु की कोई जरूरत न थी। तुम सोच-विचार में ही समर्थ होते तो तुम अपने ही पैर यात्रा कर लेते, किसी के सहारे की जरूरत नहीं थी।
और तुम कहते हो, हम अंधे थोड़े ही हैं? अंधे तुम हो; बड़े गहन रूप से अंधे हो। और यह अंधापन कोई आंखों का ही नहीं है, भीतर की आंखों का है। यह अंधापन आध्यात्मिक है। और इस अंधेपन में तुम जिद्द करो, विवाद करो--तुम किस चीज को बचाने के लिए विवाद कर रहे हो? तुम्हारे पास कुछ भी तो नहीं है। अगर तुमने ज्यादा विवाद किया, ज्यादा तर्क का सहारा लिया--अपने अंधेपन को ही बचा लोगे, और तुम्हारे पास बचाने को कुछ भी नहीं है।
विचार तुम्हारे पास हैं नहींः विचारों की भीड़ है, विचार नहीं हैं। विचार क्षमता का नाम है, विचारों की भीड़ का नाम नहीं है। तुम्हारे पास विचार तो बहुत हैं। तुम्हारी खोपड़ी एक बाजार है, जहां हजारों तरह के विचार हैं; लेकिन विचार नहीं है। विचार का अर्थ होता हैः जानने की क्षमता। और ये जो विचार हैं जिनको तुम अपने कह रहे हो, कोई भी तुम्हारे पास नहीं हैं, सब उधार हैं। न मालूम कहां-कहां की झूठन तुमने इकट्ठी कर रखी है। और उन पर तुम इतरा रहे हो। कूड़ाघर पर बैठकर तुम सिंहासन समझ रहे हो। इनमें से एक भी विचार तुम्हारा नहीं है। बचाओगे क्या? विवाद क्या करना है?
ज्यादा विवाद और तर्क तुम्हें तुम्हारे गुरु से दूरी पर रख देगा। इसमें गुरु कुछ नहीं खो रहा है। वहां तो पाने-खोने को कुछ बचा नहीं। तुम्हीं खो रहे हो।
यह तो ऐसे ही है, जैसा बुद्ध ने कहा है कि किसी गांव में ऐसा हुआ कि एक आदमी को तीर लग गया। भूल से लग गया। जंगल से गुजरता था शिकारी, उसका तीर लग गया। फेंका तो किसी जानवर की तरफ गया था, आदमी बीच में आ गया। पर आदमी कोई

साधारण आदमी न था, विवादी था, दार्शनिक था, बड़ा तर्कनिस्र था। भीड़ इकट्ठी हो गई, लोग उसका तीर निकालना चाहते हैं। गांव का वैद्य आ गया। पर उसने कहा कि ठहरो, पहले यह पक्का हो जाए कि तीर किसने मारा? क्यों मारा? तीर विष-बुझा है या साधारण है, घातक है या मैं बच सकूंगा? तीर मत निकालो अभी। पहले सब तय हो जाए। और वह मायावादी दार्शनिक था। उसने कहा कि पहले यह भी पक्का हो जाए कि तीर है भी? क्योंकि ज्ञानियों ने कहा है, संसार माया है। जब पूरा संसार ही स्वप्नवत है तो तीर स्वप्न में लगा है या यथार्थ में?
बुद्ध उस गांव से निकलते थे। वे भी उस भीड़ में खड़े थे। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, ठीक से सुन लो उसकी बात। यही तुम्हारी दशा है। यह नासमझ, यह सब चर्चा बाद में कर ले तो अच्छा है; पहले तीर निकल जाने दे। मगर इसका कहना भी ठीक है कि अगर तीर है ही नहीं तो निकालोगे क्या? यह पहले सब जान लेना चाहता है, तब तीर को निकालने देगा। और इसे पता ही नहीं कि इस बीच, इस जानकारी में यह समाप्त हो जाएगा और तीर कभी न निकलेगा।
बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा, ऐसा ही दुख का तीर तुम्हारे जीवन में लगा है। मैं तुमसे कहता हूं कि निकाल लेने दो। तुम कहते हो, दुख क्या है? है भी? सुख मिल सकता है? कोई संभावना? कभी किसी को मिला है कि सब कपोलकल्पना है? तुम पूछते हो, दुख कहां से आया? क्यों आया? हम दुखी क्यों हैं? परमात्मा ने दुख क्यों बनाया? और जो दुख बनाता है, वह परमात्मा कैसा है? तुम पूछते हो, दुख स्वप्न है या सत्य है। और बुद्ध ने कहा, मैं उस वैद्य की तरह हूं जो तुमसे प्रार्थना कर रहा है कि तीर निकाल लेने दो, फिर पीछे समय बहुत है, तब तुम चर्चा कर लेना। लेकिन तुम कहते हो, पहले सब साफ हो जाए, तब तीर निकालने देंगे। तब तुम मर जाओगे, तीर न निकल पाएगा।
और बुद्ध ने यह भी कहा, और मैं जानता हूं कि एक दफा तीर निकल जाए, फिर कोई तीर के संबंध में चर्चा नहीं करता। बात ही खत्म हो गई।
गुरु कहता है, तुम्हारी अज्ञान की अवस्था को बदल देने दो... । तुम कहते हो, पहले सब निर्णय हो जाए, पहले सब तर्क से सिद्ध हो जाए, सब प्रमाण मिल जाएं, साक्षी, गवाहियां जुटा ली जाएं--तभी मैं आगे बढूंगा। मैं कोई अंधा अनुयायी नहीं हूं; मैं सोच-विचारवाला आदमी हूं।
तब तुम ऐसे ही खो जाओगे। तब सरोवर निकट था; लेकिन सरोवर असमर्थ था, क्योंकि तुमने अंजुलि ही न बांधी। सरोवर निकट था, तुम्हारी प्यास बुझाने को तत्पर था, आतुर था; लेकिन तुम झुककर अंजुलि बांधकर सरोवर से पानी लेने को तैयार न हुए। तुम प्यासे ही मर जाओगे। ऐसे ही बहुत बार तुम मरे हो। ऐसे ही बहुत बार तुम विवाद में जीये हो।
और अज्ञान बड़ा विवादी है। ज्ञान तो निर्विवाद है। वहां कोई विवाद नहीं है। अज्ञान बड़ा विवादी है। विवाद अज्ञान की रक्षा का उपाय है।
अज्ञान अपनी रक्षा करता है।
मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे।
मैं कहता हौं आंखन देखी, तू कागद की लेखी रे।।
और बहुत कठिनाई है। कबीर कहते हैं, हम आंख की देखी बात कर रहे हैं, तुम कागज की लिखी बात कर रहे हो। तुमने वेद पढ़ लिए, अब तुम वेद से भरे हो। तुमने गीता पढ़ ली, अब गीता के श्लोक तुम्हारी खोपड़ी में घूम रहे हैं। तुम कुरान कंठस्थ किए हो। और इन कागज पर लिखी बातों के सहारे तुम आंखवाले के पास विवाद करने पहुंच जाते हो। कुछ उसकी हानि नहीं। करो मजे से--तुम्हारी मौज है। लेकिन वह देखता है कि तीर चुभा है तुम्हारे जीवन में। जहर उसका फैलता जाता है प्रतिपल। तुम्हारा चून उसके जहर को तुम्हारे पूरे शरीर में दौड़ा रहा है। तुम जल्दी ही चुक जाओगे। और ये कागज की लिखी बातें कुछ भी सहारा न बनेंगी।
तुम मर रहे हो प्रतिपल, क्योंकि मौत किसी भी क्षण आ सकती है। और तुम किताबों में बड़े कुशल हो गए हो।
एक मित्र मेरे पास आए। कहने लगे, और सब ठीक है; वेद के संबंध में आपका क्या ख्याल है? वेद का क्या करोगे? उसके संबंध में ख्याल का भी क्या करोगे? नहीं, कहने लगे, मैं आर्यसमाजी हूं और अब तक यह साफ न हो जाए कि वेद के संबंध में आपकी क्या दृष्टि है, तब तक मेरा और आपका कोई तालमेल नहीं हो

सकता। अगर आप वेद से राजी हैं तो सब ठीक है। लेकिन मैंने सुना है, आप वेद से राजी नहीं हैं।
मैं कहता हौं आंखन देखी, तू कागद की लेखी रे।
सिद्धांत भारी हैं लोगों के मन पर। बड़ी गहन पकड़ है उनकी। और उन सिद्धांतों में है क्या?
मैंने उनसे कहा कि, अगर वेद को पढ़कर, जानकर आप कहीं पहुंच गए, तो मेरे पास आने की कोई जरूरत नहीं। बात खतम हो गई। अगर वेद आपकी नाव बन गया तो ठीक है। लेकिन कागज की नाव से कभी कोई पार नहीं हुआ। फिर कागज की नाव चाहे वेद की हो, चाहे कुरान की, चाहे बाइबिल की, चाहे गीता की, चाहे मेरी किताबों की-- इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। नाव कागज की है--डूबेगी।
उन्होंने कहा, और किताबें और हैं, वेद की बात और है। वेद तो स्वयं परमेश्वर ने रचा है। वही कुरान का माननेवाला भी कहता है। वही बाइबिल का माननेवाला भी कहता है। जिस किताब में भी तुम्हें डूब मरना हो, जिस किताब की भी नाव बनानी हो, उसी किताब के माननेवाले यही कहते हैं कि यह परमात्मा की रची हुई है। लेकिन शब्द की नाव से कब कौन पार हुआ है? नाव तो निःशब्द की चाहिए। नाव तो अनुभव की चाहिए, सिद्धांतों की नहीं। लेकिन अनुभव कीमती चीज है। जीवन से चुकाना पड़ता है मूल्य। वेद तो बाजार से खरीद लाओ, सस्ता मिलता है। और वेद के तो तुम जो भी अर्थ करना चाहो, कर लो; अर्थ तो तुम ही करोगे? वेद तो कुछ तुम्हें रोक न सकेगा कि यह अर्थ मेरा नहीं है। इसलिए वेद को थोड़े ही तुम पढ़ते हो; पढ़ते तो तुम अपने ही अर्थ को हो--वेद में पढ़ते हो। पढ़ते तुम अपने ही अर्थ को हो; वेद का तो बहाना है। अपने ही अज्ञान को तुम वहां से भी सुरक्षित करते हो।
ध्यान रहे, तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है--ऐसी जब तुम्हें प्रतीति हो, ऐसा जब तुम पाओ कि दीन-हीन, कि न कोई ज्ञान है, न कोई प्रेम है, जीवन में कुछ भी नहीं है, पाओ तो बिल्कुल रिक्त--तभी तुम गुरु के पास आने के योग्य हो पाओगे। क्योंकि अगर तुम अपने से भरे हो, तो गुरु तुममें कैसे भर सकेगा? तुम जब खाली आओगे, खाली और नग्न, निर्वस्त्रः सब वस्त्र सिद्धांतों के, शास्त्रों के छोड़कर आओगे; तुम ऐसे आओगे, जैसे छोटा बच्चा आता है, बिना किसी धारणा के, निर्धारणा में--तभी तुम गुरु से मिल सकोगे। और गुरु जीवित शास्त्र है; मुर्दा शास्त्रों को लेकर तुम गुरु के पास मत आना। क्योंकि गुरु खुद ही वेद है; गुरु खुद ही गीता है--और जीवंत है। गुरु का अर्थ ही इतना हैः जिसमें धर्म फिर से पुनरुज्जीवित हुआ है; जिससे परमात्मा फिर से बोला है; जिसकी बांसुरी को परमात्मा ने फिर अपने होठों पर रखा है। तुम पुराने गीत लेकर आते हो, जो बासे हो चुके, और सदियों में जिन पर धूल जम गई, और सदियों में आदमियों के हाथ चलते-चलते जो बहुत दिन चले हुए नोट की तरह गंदे हो गए। ताजा बरसता हो वहां तुम बासे को लेकर आते हो? जहां सद्यःस्नात सत्य जन्म रहा हो, वहां तुम सिद्धांतों और शास्त्रों की सड़ी-गली बातों को लेकर आते हो। ये बातें भी सड़-गल जाएंगी। और मुझे पक्का पता है कि, लोग इन बातों को लेकर भी दूसरे गुरुओं के पास जाएंगे, जो जीवित होंगे। वही भूल होगी, जो अभी हो रही है। वही भूल सदा होती जाती है।
बुद्ध के लोग वेद की बात लेकर जाते थे, चूंकि बुद्ध ने वेद का समर्थन नहीं किया। और कोई बुद्ध कभी किसी वेद का समर्थन नहीं करेगा। यह कोई वेद का विरोध नहीं है; यह तो सिर्फ एक छोटी सीधी-सी बात है कि जीवंत सत्य मरे हुए शब्दों का समर्थन नहीं करेगा। अगर आज बुद्ध हों, तो खुद अपनी ही वचनों को, धम्मपद में जो वचन उन्होंने कहा, उनको भी वे उसी तरह इंकार कर देंगे, जिस तरह उन्होंने वेद के वचन इंकार कर दिए। सवाल वेद का नहीं है; सवाल किताब और जीवंतता का है।
कबीर कहते हैं, मैं कहता हौं आंखन देखी, तू कागद की लेखी रे। मेल कैसे हो? ऐसा शिष्य अगर गुरु के पास आ भी जाए, तो कितना ही पास रहे, मेल नहीं हो पाता। वह ऐसा होता है जैसे रेल की पटरियां पास-पास होती हैं दोनों, मगर समानांतर, कहीं मिलती नहींः एक कागज से उलझा, एक जीवन जी रहा। कागज और जीवन में क्या संबंध?--समानांनतर! शास्त्र और सत्य समानांतर रेखाएं हैं, जो कहीं नहीं मिलतीं--बस रेल की पटरियां हैं। पास ही बनी रहती हैं, चार फीट का फासला है; लेकिन वह फासला पूरा नहीं हो पाता। और तुम्हें अगर कहीं मिलती

दिखाई पड़ती हों तो समझना कि वह भ्रम है। बहुत दूर, अगर तुम देखोगे, तो क्षितिज पर रेल की पटरियां मिलती हुई मालूम पड़ती हैं। बस वे मालूम पड़ती हैं; अगर तुम जाओगे, वहां भी तुम पाओगे, वही चार फीट का फासला है। वे कहीं मिलती नहीं। समानांतर रेखाएं कहीं मिलती ही नहीं।

और कबीर यही कह रहे हैं कि आंख की देखी बात और कागज की लिखी बात समानांतर रेखाएं हैं। मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे।

मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यौ अरुझाई रे। मैं सुलझाने की कोशिश कर रहा हूं, और तू और उलझाए चला जा रहा है।

सिद्धांत सुलझाते नहीं, उलझाते हैं; क्योंकि एक सिद्धांत दस प्रश्न खड़े करता है। एक प्रश्न का उŸ अगर तुमने किताब से चुन लिया, तो वह उŸ हजार नए प्रश्न खड़े कर देता है।

जीवन में समाधान है। किताबों में प्रश्न हैं, उŸ हैं, उŸ से पैदा हुए नए प्रश्न हैं। इसलिए हर किताब और किताबों को जन्म देती है। जैसे आदमी बच्चों को जन्म देते हैं, वैसे किताबें किताबों को जन्म देती हैंः क्योंकि एक किताब प्रश्न उठा देती है, अब दूसरी किताब उŸ देती है; उŸ से और प्रश्न उठते हैं--तीसरी किताब की जरूरत हो जाती है। तो सातत्य बना रहता है।

हजारों टीकाएं हैं गीता पर। क्योंकि गीता कोई प्रश्नों का हल नहीं कर सकती। और जो भी हल देती है, उन पर नए प्रश्न खड़े हो जाते हैं; उनका उŸ देना पड़ता है। फिर हर टीका पर टीकाएं हैं। और टीकाओं पर टीकाओं पर भी टीकाएं हैं--सिलसिला जारी है। उसमें कोई अंत नहीं हो सकता। वह जारी रहेगा।

शब्द किसी प्रश्न का हल करते ही नहीं। हल तो बहुत दूर है, शब्द प्रश्न को छू भी नहीं पाते। क्योंकि प्रश्न तो उठता है जीवन से, और उŸ आता है किताब से--समानांतर।

जीवन में दुख है। तुमने दुख को जाना है। तुमने दुख के आंसू बहाए हैं। दुख में तुम्हारा हृदय जार-जार रोया है। दुख में तुम्हारे रोएं-रोएं ने तड़फन अनुभव की है। यह दुख तो आया जीवन से, अब तुम जाते हो किताब में उŸ लेने कि दुख क्यों है? किताब कहती है, पिछले जन्मों के कर्म के कारण। लेकिन सवाल यह है कि पिछले जन्मों में दुख क्यों था? वह और पिछले जन्मों के कर्म के कारण! लेकिन तब सवाल उठता है कि पहला जब जन्म हुआ होगा, तब कहां से दुख आया? तब किताब कहती है, सब भगवान की लीला है। पहले ही कह देते, इतनी देर क्यों लगाई? भगवान की लीला से कुछ हल होता है? फिर तुम वहीं के वहीं आ गए।

जीवन का दुख भीतर है। भगवान की लीला से क्या हल होता है? और भगवान क्या कोई दुष्ट परपीड़क, कोई महा हिटलर की भांति है कि लोगों को सता रहा है, इसमें लीला ले रहा है? लोग कष्ट पा रहे हैं तो भगवान क्या उन बच्चों की तरह है जो मेंढकों को सताते हैं? अगर उनसे पूछो तो वे कहते हैं, खेल रहे हैं।

आदमियों को भगवान सता रहा है, दुखी कर रहा है? यह उसकी लीला है? तो भगवान के दिमाग को इलाज की जरूरत है। वह सेडिस्ट मालूम होता है, दुखवादी मालूम होता है, दुष्ट मालूम होता है। मस्तिष्क उसका ठीक नहीं है।

लेकिन ये किताब से आनेवाले उŸ सब ऐसे ही होंगे। थोड़ी-बहुत देर किताब में तुम उलझ जाओ, बस इतना ही है। जैसे ही लौटकर आओगे, पाओगे कि दुख तो अपनी जगह खड़ा है, किताब हल नहीं कर पाती। और इसे जान लेने से भी कि पिछले जन्मों के कारण दुख हैं, दुख मिटेगा नहीं। इसे भी जान लेने से कि परमात्मा की लीला है, दुख मिटेगा नहीं, दुख तो रहेगा।

दुख मिटेगा ध्यान से, विचार से नहीं। और ध्यान की यात्रा बड़ी अलग है। वह कागज में लिखी हुई यात्रा नहीं है; वह आंखों से देखने की यात्रा है। ध्यान का अर्थ हैः दृष्टि का आभिर्वाव। ध्यान का अर्थ हैः तुम्हारा जाग जाना। वहां मिटेगा दुख; और वहां सब समाधान हो जाएगा। और असली सवाल यह नहीं है कि दुख कहां से आया है; असली सवाल यह है कि दुख कैसे मिटे?

जब तुम किसी बीमारी से ग्रस्त होते हो, तो तुम चिकित्सक से यह नहीं पूछते कि बीमारी कहां से आई, क्यों आई, जिस बैक्टीरिया की वजह से बीमारी पैदा हुई, वह कहां से आया? क्यों आया, भगवान ने बैक्टीरिया बनाए क्यों टी.बी. और कैंसर के? इनके बिना बनाए न चल सकता था? सिर्फ फूल और तितलियों से

काम नहीं चल सकता था? नहीं, तब तुम इसकी चिंता नहीं करते। तुम चिकित्सक से कहते हो, इस फिक्र में पड़ो ही मत। तुम मेरा इलाज करो। दुख कैसे जाए, तुम यह पूछते हो।
किताब के साथ बंधा हुआ आदमी हमेशा पूछता है, दुख कहां से आया? और सदगुरु बताता है कि दुख कैसे जाए?
बुद्ध ने कहा है, तुम मुझसे पूछो मत कि परमात्मा है या नहीं। तुम मुझसे इतना ही पूछो कि दुख कैसे जाए। जब दुख चला जाएगा, तब तुम जान लोगे कि परमात्मा है या नहीं। उस दुख-निरोध की अवस्था में तुम्हारी आंखें साफ होंगी, आंसू सूख गए होंगे। जीवन की पीड़ा तिरोहित हो गई होगी। स्वास्थ्य की मगनता उठेगी भीतर--एक ललक की भांति। तुम्हारा जीवन एक उत्सव बन जाएगा। उस उत्सव में तुम जान पाओगे कि परमात्मा की लीला क्या है। दुख में कहीं कोई जान सकता है लीला को? उत्सव में, आनंद की अवस्था में, जब तुम नाच उठोगे, तभी... ।
तो बुद्ध कहते हैं, मत पूछो ईश्वर; मत पूछो, किसने दुनिया बनाई? ... व्यर्थ की बातें हैं। दार्शनिकों को करने दो यह व्यर्थ की बकवास।
मैं कहता सुरझावनहारी... । कबीर कहते हैं, मैं सुलझाने की कोशिश कर रहा हूं कि दुख कैसे जाए, अंधेरा कैसे मिटे, अंधापन कैसे मिटे; तू राख्यो अरुझाई रे--तू ऐसे सवाल उठाता है कि चीजें और उलझ जाती हैं।
इस बात को बहुत ठीक से समझ लेना, क्योंकि यही तुम्हारे और मेरे बीच भी
घट रहा है। मेरी सारी चेष्टा है कि तुम कैसे सुलझ जाओ। लेकिन तुम सब तरह के प्रतिरोध खड़े करते हो। तुम सब तरह की बाधाएं डालते हो। निश्चित ही तुम्हें पता नहीं है, तुम क्या कर रहे हो; अन्यथा तुम क्यों करते? तुम सब तरह की बाधाएं डालते हो।
एक मित्र कुछ दिन पहले आए। उन्होंने कहा, यह ध्यान जो आप करवा रहे हैं, मैंने करके देखा--शांति मिलती है, बड़ा अच्छा लगता है; लेकिन जैन-धर्म में इसका उल्लेख कहीं नहीं है। तुम्हें शांति मिलती है, तो जैन-धर्म में कहीं उल्लेख नहीं है--उस उल्लेख को चाटोगे? उस उल्लेख का करना क्या है? नहीं, तो उन्होंने कहा कि मैं तो जैन-धर्म का अनुयायी हूं, तो थोड़ा शक होता है; क्योंकि अगर यह ध्यान ठीक होता, तो महावीर स्वामी ने कहीं न कहीं उल्लेख तो किया होता। सब शास्त्र देख डाले, मगर इसका कहीं उल्लेख नहीं है। इसलिए ध्यान करना बंद कर दिया है।
शांति पर भरोसा नहीं है। अपनी ही शांति पर भरोसा नहीं है। अपने अनुभव
पर भरोसा नहीं है। आदमी कितनी गहन मूढ़ता में रहता है। वह महावीर ने क्यों नहीं कहा--वह उलझा रहा है मामले को। और चूंकि महावीर ने नहीं कहा, इसलिए जरूर कहीं कोई न कोई गड़बड़ होगी। और महावीर ने कुछ ठेका लिया है सब कुछ कह जाने का? ये सज्जन उनको भी मिल जाएं, तो वे भी अपना सिर पीट लें। महावीर ने जो भी कहा है, उसकी सीमा है; कहने की सीमा है। अनकहा बहुत रह गया है, जो कभी न चुकेगा। सदगुरु आते रहेंगे, कहते रहेंगे और अनकहा सदा बाकी रहेगा। यह सागर बड़ा है। इसमें महावीर भर लाए थोड़ा-सा पानी अपने पात्र में, उससे कोई सागर थोड़े ही चुक जाता है?
तुम प्यासे मर रहे हो; लेकिन तुम कहते हो, यह जो जल आप बता रहे हैं, यह महावीर की गगरी में नहीं है। तुम्हें प्यास की फिक्र है? नहीं, लेकिन लोग बड़े... ।
बड़ी हैरानी की घटना है यह कि तुम अपनी अशांति को टूटने नहीं देते, अपने दुख को टूटने नहीं देते, तुम अपनी भटकन को मिटने नहीं देते। तुम उलझाए चले जाते हो। अजीब-अजीब प्रश्न लेकर लोग उलझते हैं। और अगर उनकी तरफ तुम देखो तो वे बड़े गंभीर मालूम पड़ते हैं। उनको होश भी नहीं कि वे क्या कर रहे हैं, इसलिए ये बातें उठा रहे हैं।
आदमी बिल्कुल बेहोश है।
मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यो अरुझाई रे। मैं कहता तू जागत रहियो,
तू रहता है सोई रे। कबीर कहते हैं कि सारी शिक्षाओं की शिक्षा तो एक ही है कि तुम जागते रहो, मगर तुम सो-सो जाते हो। तुम हजारा बहाने खोज लेते हो सोने के।

जीसस, आखिरी रात, जिस दिन उन्हें फांसी लगनेवाली है, उसकी एक रात पहले, अपने शिष्यों को इकट्ठा किए एक बगीचे में, और उन्होंने कहा कि मैं आखिरी प्रार्थना कर लूं, तुम जागते रहना। यह रात आखिरी है। और यह ईश्वर का बेटा फिर दुबारा तुम्हारे साथ प्रार्थना करने को नहीं होगा।
जीसस ने प्रार्थना की, घड़ी भर बाद वे वापस आए, देखा, सारे शिष्य सो रहे हैं। उन्होंने जगाया। उन्होंने कहा, यह आखिरी रात... । उन्होंने कहा, क्या करें? दिनभर के थके मांदे हैं, झपकी लग गई। अब फिर कोशिश करेंगे। जीसस फिर घड़ीभर बाद प्रार्थना से आंख खोले; देखा, वे सब फिर घुर्रा रहे हैं।
क्या हो गया?
उन्होंने कहा, कोशिश तो करते हैं, नींद आ-आ जाती है। कोशिश करते ही नहीं हैं। वह भी बहाना है। वह भी सिर्फ तरकीब है। अगर तुम कोशिश करो, तो नींद कैसे आ जाएगी? अगर तुम कोशिश करो तो नींद तो आ नहीं सकती। अगर ठीक से समझो तो जिन लोगों को नींद नहीं आती, उनको इसलिए नहीं आती कि वे कुछ कोशिश करते हैं नींद को लाने की। सौ में निन्यानबे आदमी जिनको रात में नींद नहीं आती, उनका कुल कारण इतना होता है कि वे नींद को आने नहीं देते--कोशिश के कारण। वे कोशिश करते हैं। कोई गायत्री-मंत्र पढ़ता है, कोई कुछ करता है, कोई करवट बदलता है, सोचता है नींद आ जाए आंख बंद करता है, सोचता है नींद आ रही है, वह नहीं आती है। नींद को लाने के लिए कोशिश की जरूरत ही नहीं है। नींद तो आती ही तब है जब कोई कोशिश नहीं होती। क्योंकि कोशिश जगाती है। कोशिश और नींद विरोधी हैं।
तो शिष्य कह रहे हैं, कोशिश तो हम करते हैं। लेकिन वह कोशिश झूठी है।
वे करते नहीं हैं, या वे अपने को समझाते हैं कि हम कोशिश तो कर रहे हैं। लेकिन वह कोशिश कुनकुनी है। ऐसा थोड़ा-सा करते हैं कि जब जीसस कहते हैं तो कर लो। वस्तुतः उन्हें भरोसा नहीं है कि यह आखिरी रात है। उन्हें यह भी भरोसा नहीं है कि कल जीसस विदा हो जाएंगे। उन्हें यह भी भरोसा नहीं है कि प्रार्थना में कोई सार है। श्रद्धा नहीं है।
जब जीसस उनसे विदा होते हैं तो उनमें से एक शिष्य कहता है कि चाहे कुछ
भी हो जाए, सदा ही मैं तुम्हारे साथ रहूंगा। जीसस ने कहा, तू इस तरह की बातें मत कर, क्योंकि मुर्गे के बांग देने के पहले तू तीन दफे मुझे इनकार कर चुका होगा। आधी रात जा चुकी है। मुर्गे को बांग देने में ज्यादा देर नहीं है। लेकिन उस शिष्य ने कहा कि, नहीं, मेरी भक्ति अटूप है। मेरी श्रद्धा अपार है। मैं कभी आपको इनकार न करूंगा। फिर जीसस पकड़ लिए गए। दुश्मन की भीड़ उन्हें ले जाने लगी। वह शिष्य भी पीछे-पीछे भीड़ में साथ हो लिया कि देखें, क्या होता है। बाकी शिष्य तो भाग गए। वह एक साथ हो लिया। मशालों की रोशनी में भीड़ ने अनुभव किया कि कोई एक अजनबी साथ है, तो उसको पकड़ लिया और कहा कि तू कौन है? क्या तू जीसस का साथी है? उसने कहा कि नहीं, मैं तो उनको जानता ही नहीं। कौन जीसस? जीसस ने पीछे मुड़कर कहा कि देख, अभी मुर्गे ने बांग भी नहीं दी। अभी रात बहुत बाकी है।
शिष्य और गुरु के बीच कौन-सी घटना घटे ताकि सेतु बन जाए। वह घटना है जागरण की। गुरु जागा है, जैसे हिमालय के उ Ÿांग शिखर पर है उसका जागरण। तुम सोए हो--गहन अंधेरी घाटी में। फासला बहुत है। गुरु कुछ कहता है, तुम्हारी नींद में तुम कुछ और अर्थ लेते हो। गुरु कुछ और कहता है, तुम कुछ और समझते हो। गुरु कुछ और कहता है, तुम कुछ और व्याख्या कर लेते हो। तुम्हारे सपने, तुम्हारी नींद, तुम्हारा अंधापन सब उसमें मिल जाते हैं और सब विकृत कर देते हैं।
तुम जागो! जैसे-जैसे तुम जागोगे, वैसे-वैसे तुम गुरु के करीब आने लगे। जागरण ही एक मात्र निकट आने का उपाय है।
मुझसे शिष्य पूछते हैं कि आपके हम ज्यादा से ज्यादा निकट कैसे आएं? एक
ही उपाय है कि ज्यादा से ज्यादा जागो। और असली सवाल मेरे निकट आना थोड़े ही है; असली बात तो मेरे बहाने परमात्मा के निकट जाना है। मेरे पास बैठ जाने से थोड़े ही तुम मेरे निकट हो जाओगे। मेरे चरणों को पकड़ लेने से थोड़े ही तुम मेरे निकट हो जाओगे। उससे तो कुछ भी न होगा। वह तो तुम धोखा दे रहे हो अपने आपको। तुम जागोगे तो ही मेरे निकट होओगे। क्योंकि यह निकटता तो भीतर की

है, बाहर की नहीं। तुम मेरे जैसे ही होने लगोगे, तो ही मेरे निकट होओगे। तुम अपने जैसे बने रहे तो दूरी बनी रहेगी।
दो ही उपाय हैं। या तो गुरु सो जाए तो निकटता हो सकती है, या शिष्य जग जाए तो निकटता हो सकती है। गुरु सो नहीं सकता; क्योंकि जो जाग गया, उसके सोने का उपाय नहीं। पीछे लौटना होता ही नहीं। जो जान लिया, उससे वापस लौटना होता ही नहीं। गुरु सो नहीं सकता। एक ही उपाय है कि तुम जाग जाओ। कबीर कहते हैं, मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।
और जागना कोई ऐसी बात नहीं है कि मंत्र की तरह तुम रटते रहो तो जाग जाओगे। जागना कोई मंत्र नहीं है, जागना तो जीवन की विधि है। तुम चौबीस घंटे जागे हुए जीओगे तो ही धीरे-धीरे करके जागरण का गुण तुममें इकट्ठा होगाः बूंद-बूंद जागरण इकट्ठा होगा, तब तुम्हारी गागर भरेगी। एक-एक कण इकट्ठा करना पड़ेगा। तब तुम्हारे जागरण का संग्रह होगा। भोजन करो तो जागे हुए। भोजन करते वक्त बस भोजन ही करो, मन में दूसरे विचार न आने दो; क्योंकि वे नींद ले आते हैं, सपना ले आते हैं। जागरण खो जाता है। राह पर चलो तो जागे हुए; एक-एक कदम होश में उठे। छोटे-से-छोटा काम भी करो तो जागे हुए। जागने को तुम जीवन की विधि बना लो, जीवन की शैली बना लो। ऐसा नहीं कि एक घंटे पर सुबह बैठकर जागने का उपाय कर लिया और फिर तेईस घंटे भूल गए। तो जागरण कभी भी पैदा न हो पाएगा। सतत चौबीस घंटे चोट मारनी पड़ेगी, तो ही तुम्हारी नींद टूटेगी। हथौड़ी की तरह तुम चोट मारते ही रहो, कि मैं जागा हुआ ही सब कुछ करूंगा। और अगर तुम कोई काम कर रहे हो--समझो कि तुम स्नान कर रहे हो, और भूल गए, स्मृति खो गई, ऐसे ही कर लिया यंत्रवत, डाल लिया पानी बिना होश के; जैसे ही याद आ जाए, फिर से स्नान करो, जागकर करो। उतनी सजा दो कि ठीक इतना समय गया बिना जागे, अब फिर से जागकर करेंगे।
ऐसा हुआ कि बुद्ध जब बुद्ध न हुए थे तब एक गांव से गुजर रहे हैं। एक साधक साथ है। एक मक्खी बुद्ध के कान पर आकर बैठ गई है। वे साधक से बात कर रहे हैं। उन्होंने मक्खी को ऐसे ही मूर्छित, बात को बिना तोड़े, होश को बिना मक्खी की तरफ ले जाए, यंत्रवत उड़ा दिया--जैसा कि हम करते रहते हैं। कोई जरूरत नहीं है, नींद में भी कोई मक्खी बैठ जाए तो तुम उड़ा देते हो; मच्छर आ जाए तो हाथ हिला देते हो। वह ऑटोमेटिक है, यंत्रवत है। इसमें तुम्हारे होश की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन तत्क्षण बुद्ध को याद आया। वे खड़े हो गए। तब मक्खी न थी कान पर, उड़ चुकी थी। क्योंकि मक्खी थोड़े ही फिक्र करती है कि तुम जागकर उड़ाते हो कि सोए हुए उड़ाते हो। मक्खी तो उड़ गई थी। बुद्ध खड़े हो गए, बात रोक दी। हाथ को फिर से उठाया, और मक्खी को उड़ाया, जो थी ही नहीं। वह जो साधक खड़ा था, उसने कहा, क्या आपका दिमाग कुछ अस्त-व्यस्त हो गया है? यह क्या कर रहे हो? मक्खी तो जा चुकी। वह तो आप उड़ा चुके। बुद्ध ने कहा, मक्खी को नहीं उड़ा रहा हूं; अब जागकर उड़ा रहा हूं। मक्खी से क्या लेना-देना। लेकिन भूल हो गई, चूक गया। उतना कृत्य मूर्छा में हो गया, नींद में हो गया। और जितने कृत्य तुम नींद में करोगे, उतनी ही नींद इकट्ठी होती चली जाती है। नींद एक गुणधर्म है, एक क्वालिटी है; और जागना भी एक गुणधर्म है।
ये चेतना के दो ढंग हैं।
तो तुम जो भी करो, हाथ का इशारा भी करो... यह हाथ मैंने उठाया, यह हाथ मैं ऐसे ही उठा सकता हूं--यंत्रवत; और यह हाथ मैं जागकर भी उठा सकता हूं। तुम दोनों तरह करके देखना। जब तुम जागकर उठाओगे तब तुम पाओगे कि हाथ के उठने का गुणधर्म और है। हाथ बड़े माधुर्य से उठेगा; एक शालीनता होगी उसमें, क्योंकि होश होगा। और भीतर हाथ बड़ा विश्राम में रहेगा, तनाव नहीं होगा। हाथ ऐसे उठेगा जैसे परमात्मा उठा रहा है; तुम जैसे सिर्फ उपकरण हो। अगर तुमने मूर्च्छा में उठाया, तो हाथ हिंसा के ढंग से उठेगा; उसमें झटका होगा; वह शालीन न होगा। उसमें प्रसाद न होगा, माधुर्य न होगा। और उसके भीतर एक तनाव होगा। जैसे-जैसे तुम जागोगे, तुम पाओगे, तुम्हारा शरीर थकता ही नहीं, क्योंकि जागकर सब चीजें इतनी शांति और माधुर्य से भर जाती हैं, तनाव नहीं रह जाता। इसलिए थकान नहीं रह जाती। जितने तुम सोए-सोए जीओगे, उतना तनाव रहता है। जितना तनाव रहता है, उतने तुम थक जाते हो। थकान श्रम के कारण नहीं आ रही है, तुम्हारी मूर्चछा के कारण आ रही है। इसलिए तो बुद्धपुरुषों को तुम सदा ताजा पाओगे, जैसे अभी-अभी स्नान करके आए हों। उनके ऊपर तुम सुबह की

छाप पाओगे। उनके शब्दों में तुम ओस की ताजगी पाओगे, जैसे सब नया-नया है, सब अभी-अभी है, कुछ भी बासा नहीं है, कहीं धूल नहीं जम पाती। उनकी आंखों में तुम्हें झलक मिलेगी--शांत झील की। उनके सारे व्यक्तित्व में तुम्हें दर्पण की तरह गहराई, अनंत गहराई और अनंत ताजगी... । एक कुआंरापन तुम्हें बुद्धपुरुषों के पास मिलेगा। इसे धीरे-धीरे तुम भी अनुभव कर सकते हो जैसे- जैसे जागो।
इसको ही तुम अपनी साधना बना लोः उठोगे, बैठोगे, बात करोगे, हंसोगे, रोओगे--मगर जागकर करोगे। कभी जागकर हंसना, तुम तत्क्षण फर्क पाओगे। फर्क भारी हैः जब तुम ऐसे ही हंस देते हो मूर्च्छा में, तब तुम्हारा हंसना पागल-जैसा होता है, हिस्टीरिकल होता है। और जब तुम जागकर हंसोगे, तब तुम पाओगे, हंसने का गुणधर्म बदल गया; उसमें पागलपन नहीं है, उसमें एक बड़ी मधुरिमा है। वह तुम्हारी विक्षिप्तता से नहीं आ रहा है, तुम्हारी सजगता से आ रहा है। और तुम्हारे हंसने की हिंसा खो जाएगी, धीरे-धीरे तुम्हारी हंसी मुस्कान में बदलने लगेगी। धीरे-धीरे तुम्हारी हंसी मुस्कान से भी गहरी हो जाएगी। एक ऐसी घड़ी आएगी कि हंसी तुम्हारी मुखाकृति का अंग हो जाएगी। तुम पागल की तरह हंसोगे नहीं, तुम मुस्कराओगे भी न। चौबीस घंटे हंसी का एक भाव, जैसे फूलों की एक गंध तुम्हारे चेहरे को घेरे रहेगी; तुम हंसे हुए रहोगे। जो जानेगा वही जान पाएगा कि तुम कैसे प्रफुल्लित हो! तुम्हारी प्रफुल्लता गहन हो जाएगी, मौन हो जाएगी।
झरने जब उथले होते हैं तो शोरगुल करते हैं। जब नदी गहरी हो जाती है तो कोई शोरगुल नहीं होता। इसलिए तो हमें कुछ पता नहीं कि बुद्ध हंसते हैं कि नहीं, कि महावीर हंसे या नहीं, कि जीसस हंसे या नहीं। पता न होने का कारण यह नहीं है कि वे नहीं हंसे; पता न होने का कारण इतना ही है कि उनकी हंसी इतनी गहरी है कि तुम उसे देख न पाओगे। वह अदृश्य में लीन हो गई है। वे चौबीस घंटे प्रफुल्लित हैं। तुम हंसते हो--चौबीस घंटे दुख में घिरे हुए हो। तुम्हारी हंसी दुख में एक टापू की तरफ होती है--दुख के सागर में एक टापू। बुद्ध की हंसी एक महाद्वीप है; वह चौबीस घंटे है।
साधना तो वही जो अखंड है। जागो अखंडता है। और एक दिन अचानक पाओगे कि रात तुम तो सो गए हो और फिर भी जाग रहे हो। अगर तुमने दिन के हर कृत्य में जागरण को साधा, एक दिन तुम अचानक पाओगे कि शरीर तो सो गया है, तुम जागे हो। कृष्ण उसी को योगी कहते हैं गीता में। जब सब सो जाए, जब सब की रात हो तब भी जो जागा रहे, वही योगी है। निश्चित ही कृष्ण ने ठीक परिभाषा पकड़ी। वही परिभाषा है योगी कीः निद्रा में भी जो जागा रहे। तो जागे में तो जागा ही रहेगा; निद्रा में भी जो जागा है। अखंड है उसके जागने का स्वर।
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे। मैं कहता निरमोही रहियो,
तू जाता है मोहि रे।। मोह निद्रा का अंग है; वह एक तरह की नींद है। निर्मोह जागृति की छाया है; वह जागरण का अंग है।
तुम अगर निर्मोही बनने की कोशिश करो, बिना जागने की कोशिश के तो तुम्हारा निर्मोह बड़ा कठोर और पाषाणवत हो जाएगा। अगर तुम निर्मोही बनने की कोशिश करो बिना जागे हुए, तो तुम्हारा निर्मोही होना एक तरह की हिंसा होगी, जबर्दस्ती होगी; निर्मोहिता तो कम होगी, कठोरता ज्यादा होगी। तुम अपनी पत्नी को छोड़ सकते हो, कह सकते हो कि मैं निर्मोही हो गया; लेकिन इस निर्मोह में प्रेम न होगा, घृणा होगी। अगर तुम जागते हो, तो भी तुम निर्मोही हो जाओगे एक दिन; लेकिन उस निर्मोह में परम करुणा होगी, प्रेम होगा। तुम चीजों को तोड़कर नहीं हट जाओगे; तुम हटोगे भी तो भी चीजों को जोड़े रखोगे, और अगर तुम्हारे जागरण से तुम्हारा निर्मोह आया है--तुम्हारी पत्नी भी समझेगी, तुम्हारे बच्चे भी समझेंगे कि इस निर्मोह में कठोरता नहीं है। निर्मोह तो बड़ा मृदुल है, बड़ा प्रीतिपूर्ण है।
इसलिए कबीर या मैं तुम्हें निर्मोही बनने को नहीं कह रहे हैं। इसलिए कबीर ने पहले तो जागने की बात कही कि मैं कहता तू जागत रहियो--फिर कहा कि... मैं कहता तू निरमोही रहियो, तू जाता है मोहि रे।
जुगन जुगन समुझावत हारा, कहा न मानत कोई रे। और कबीर कहते हैं, कितने युगों से समझा रहा हूं। बुद्धपुरुष युगों से समझा रहे हैं, हर युग में समझाते रहे हैं। यह कबीर कोई अपने ही बाबत नहीं कह रहे हैं। कबीर जैसे

व्यक्ति जब बोलते हैं तो अपने बाबत नहीं बोलते; वे तो सारे बुद्धपुरुषों के बाबत बोल रहे हैं।
जुगन जुगन समुझावत हारा, कहा न मानत कोई रे।
तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डारया खोई रे।।
मन वेश्या की तरह है। किसी का नहीं है मन। आज यहां, कल वहां; आज इसका,
कल उसका। मन की कोई मालकियत नहीं है। और मन की कोई ईमानदारी नहीं है। मन बहुत बेईमान है। वह वेश्या की तरह है। वह किसी एक का होकर नहीं रह सकता। और जब तक तुम एक के न हो सको, तब तक तुम एक को कैसे खोज पाओगे? न तो प्रेम में मन एक का हो सकता है; न श्रद्धा में मन एक का हो सकता है--और एक के हुए बिना तुम एक को न पा सकोगे। तो कहीं तो प्रशिक्षण लेना पड़ेगा--एक के होने का। इसी कारण पूरब के मुल्कों ने एक पत्नीव्रत को या एक पतिव्रत को बड़ा बहुमूल्य स्थान दिया। उसका कारण है। उसका कारण सांसारिक व्यवस्था नहीं है। उसका कारण एक गहन समझ है। वह समझ यह है कि अगर कोई व्यक्ति एक ही स्त्री को प्रेम करे, और एक ही स्त्री का हो जाए, तो शिक्षण हो रहा है एक के होने का। एक स्त्री अगर एक ही पुरुष को प्रेम करे और समग्र-भाव से उसकी हो रहे कि दूसरे का विचार भी न उठे, तो प्रशिक्षण हो रहा है; तो घर मंदिर के लिए शिक्षा दे रहा है; तो गृहस्थी में संन्यास की दीक्षा चल रही है। अगर कोई व्यक्त्ति एक स्त्री का न हो सके, एक पुरुष का न हो सके, फिर एक गुरु का भी न हो सकेगा; क्योंकि उसका कोई प्रशिक्षण न हुआ। जो व्यक्ति एक का होने की कला सीख गया है संसार में, वह गुरु के साथ भी एक का हो सकेगा। और एक गुरु के साथ तुम न जुड़ पाओ तो तुम जुड़ ही न पाओगे। वेश्या किसी से भी तो नहीं जुड़ पाती। और बड़ी, आश्चर्य की बात तो यह है कि वेश्या इतने पुरुषों को प्रेम करती है, फिर भी प्रेम को कभी नहीं जान पाती।
अभी एक युवती ने संन्यास लिया। वह आस्ट्रेलिया में वेश्या का काम करती रही। उसने कभी प्रेम नहीं जाना। यहां आकर वह एक युवक के प्रेम में पड़ गई, और पहली दफा उसने प्रेम जाना। और उसने मुझे आकर कहा कि इस प्रेम ने ही मुझे तृप्त कर दिया; अब मुझे किसी की भी कोई जरूरत नहीं है। और उसने कहा कि आश्चर्यों का आश्चर्य तो यह है कि मैं तो बहुत पुरुषों के संबंध में रही; लेकिन मुझे प्रेम का कभी अनुभव ही नहीं हुआ। प्रेम का अनुभव हो ही नहीं सकता बहुतों के साथ। बहुतों के साथ केवल ज्यादा से ज्यादा शरीर का भोग, उसका अनुभव हो सकता है। एक के साथ आत्मा का अनुभव होना शुरू होता है; क्योंकि एक में उस परम एक की झलक है। छोटी झलक है, बहुत छोटी; लेकिन झलक उसी की है।
आकाश में चांद निकलता है--सागर में भी प्रतिबिंब बनता है, छोटी-छोटी तलैयों में भी प्रतिबिंब बनता है। चांद तो वही है; तलैया छोटी सही, प्रतिबिंब तो वही है। कोई फर्क नहीं है तलैया के प्रतिबिंब में और सागर के प्रतिबिंब में। इसलिए पूरब के मुल्कों ने, विशेषकर भारत ने, इस पर बड़ा आग्रह किया कि एक स्त्री एक ही पुरुष में लीन हो जाए, एक पुरुष एक ही स्त्री में लीन हो जाए। ऐसे एक का प्रशिक्षण होगा।
प्रेम पहला कदम है--एक की शिक्षा का। फिर श्रद्धा दूसरा कदम है कि एक गुरु में लीन हो जाए। फिर प्रार्थना अंतिम कदम है कि एक परमात्मा में लीन हो जाए। प्रेम, श्रद्धा, प्रार्थना--ऐसी सीढ़ियां हैं। तू तो रंडी फिरै बिहंडी--कबीर कहते हैं कि तू तो वेश्या की भांति है। वे शिष्य को कह रहे हैं। और इस तरह अपना ही नाश कर रहा है। सब धन डारया खोई रे। और अपना ही धन खो रहा है--आत्म-धन खो रहा है; अपने अस्तित्व को खो रहा है; अपने को गंवा रहा है।
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामें काया धोई रे। और सतगुरु की निर्मल धारा बह रही है, उसमें तू काया धोने के लिए तैयार नहीं और गंदे डबरों में वासना के, न मालूम कहां-कहां भटक रहा है।
तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डारया खोई रे। सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामें काया धोई रे।। कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे।
और अगर तू सतगुरु की निर्मल धारा में नहा ले, तू सतगुरु जैसा ही हो जाएगा। और जब शिष्य गुरु जैसा होता है, उसी क्षण एक और द्वार खुलता है, जो

आखिरी द्वार है। जब शिष्य गुरु जैसा होता है, तभी परमात्मा का द्वार खुल जाता है।
तो गुरु बड़ा पड़ाव है; वह कोई आखिरी मंजिल नहीं है; वहां रुक नहीं जाना है। मगर वहां से गुजरे बिना कोई आगे नहीं जाता है; वह बड़ा पड़ाव है। और जितनी जल्दी उसमें डूब जाओ, उतनी जल्दी उसके पार हो जाते हो। गुरु के बाद परमात्मा ही बचता है, और कुछ नहीं बचता है। और गुरु के पहले केवल संसार है, परमात्मा नहीं है। गुरु मध्य में खड़ा है; इस पार संसार है, उस पार परमात्मा है। जो गुरु में लीन हो जाता है, वह तत्क्षण परमात्मा की तरफ गतिमान हो जाता है।
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामें काया धोई रे। कहत कबीर सुनो भाई साधो,
तब ही वैसा होई रे।। और कोई अड़चन नहीं है, वैसा हो जाने में; क्योंकि वस्तुतः गहनतम स्वभाव में तुम अभी भी वैसे ही हो, तभी तो वैसे हो सकते हो।
जो तुम हो, वही तो हो सकते हो। जो तुम नहीं हो, वह तुम कभी भी न हो सकोगे।
तुम गुरु के साथ एक हो सकते हो, क्योंकि तुम्हारे भीतर सदगुरु छिपा है।
तुम परमात्मा के साथ एक हो सकते हो, क्योंकि तुम्हारे भीतर परमात्मा का आवास है।
"कस्तूरी कुंडल बसै!"
आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
अठारहवां प्रवचन

शिष्यत्व महान क्रान्ति है

सूत्र
गूंगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान।
पाऊं थैं पंगुल भया, सतगुरु मारया बान।।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं परंत।
कहैं कबीर गुरु ग्यान थैं, एक आध उबरंत।।

पासा पकड़ा प्रेम का, सारी किया सरीर।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर।।

कबिरा हिर के रुठते, गुरु के सरने जाय।
कह कबीर गुरु रुठाते, हरि नहिं होत सहाय।।

या तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान।।

ज्यां जैकस रूसो का एक प्रसिद्ध वचन है--वचन है कि मनुष्य स्वतंत्रता में पैदा होता है और परतंत्रता में जीता है। यह वचन बहुत गहरा नहीं है।
ऊपर से देखने पर ऐसा ही लगता है कि मनुष्य स्वतंत्रता में पैदा होता है, और फिर समाज, राजनीति, सभ्यता, संस्कृति, हजार तरह की परतंत्रताओं में उसे बांध देती हैं।
और गहरे देखने पर पता चलता है कि मनुष्य परतंत्रता में ही पैदा हेता है। जो स्वतंत्र है, वह तो फिर पैदा होता ही नहीं; उसका तो फिर आवागमन नहीं होता। जो बंधा है, वही संसार में आता है। जो अनबंधा है, उसके आने का उपाय ही समाप्त हो जाता है। बंधन ही संसार में लाता है।
इसलिए बच्चे भी परतंत्रता में ही पैदा होते हैं; यद्यपि बच्चे बेहोश हैं और उन्हें अपनी परतंत्रता का पता लगते-लगते समय बीत जाएगा। जब उन्हें पता चलेगा कि वे परतंत्र हैं, तभी वे जानेंगे। यह देरी इसलिए होती है जानने में कि बच्चे के पास अपना कोई होश नहीं है; जब होश आएगा तभी पता चलेगा कि मैं परतंत्र हूं।
और बहुत थोड़े-से लोग ही जान पाते हैं कि वे परतंत्र हैं। अधिक लोग तो ऐसे ही जी लेते हैं जैसे वे स्वतंत्र थे। परतंत्र ही मरते हैं, परतंत्र ही पैदा हुए थेः और परतंत्रता का चाक चलता ही रहता है। परतंत्रता राजनैतिक हो तो मोड़ देना बहुत आसान है। हजारों राजनीतिक क्रांतियां होती रहती हैं, आदमी की परतंत्रता नहीं टूटती। परतंत्रता आर्थिक हो तो समाजवाद, साम्यवाद उसे मिटा देते; लेकिन रूस और चीन में नई परतंत्रताएं निर्मित हो गईं। और मजे की बात तो यह है कि नई परतंत्रता की जंजीर पुरानी परतंत्रता से मजबूत होती है। पुरानी परतंत्रता की जंजीरें तो जीर्ण-शीर्ण हो जाती हैं; नई जंजीर बिल्कुल अभी-अभी ढाली होती है, ज्यादा मजबूत होती है। लेकिन नई परतंत्रता को आदमी स्वीकार कर लेता है स्वतंत्रता के ख्याल से, और जंजीर से आभूषण समझ लेता है। थोड़े दिन चलता है यह नशा, फिर टूट जाता है। फिर क्रांति की जरूरत आ जाती है।
बाहर के जगत में रोज क्रांति की जरूरत रहेगी; और क्रांति कभी होगी नहींः असली परतंत्रता भीतरी है; न राजनीतिक है, न आर्थिक है, न सामाजिक है। असली परतंत्रता आध्यात्मिक है। तुम परतंत्र हो; तुम्हें किसी ने परतंत्र बनाया नहीं है। तुम्हारे जीवन का ढंग ही परतंत्रता को पैदा करनेवाला है। तुम स्वतंत्र होने को तैयार ही नहीं हो, स्वतंत्र होने की क्षमता और साहस ही तुममें नहीं है। इसलिए कौन तुम्हारे लिए परतंत्रता की जंजीरें ढाल देगा, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता; कोई न कोई ढालेगा। तुम्हारी जरूरत है

परतंत्रता। इसलिए मैं कहता हूं रूसो की तरह, हर आदमी परतंत्र ही पैदा होता है। और करोड़ में कभी कोई एक व्यक्ति जानता है कि वह परतंत्र है; शेष तो परतंत्रता में ही जीते हैं और परतंत्रता में ही समाप्त हो जाते हैं। उन्हें पता ही नहीं चलता कि वे परतंत्र थे।
और यह पता ही न चले कि हम परतंत्र हैं, तो स्वतंत्रता का उपाय कैसा? फिर तुम परतंत्र लोगों की भीड़ में ही जीते हो। वहां कौन तुमसे कहेगा? वे सभी कारागृह के कैदी हैं। उनमें से किसी ने भी स्वतंत्रता को चखा नहीं। उन्हें कुछ भी पता नहीं है उस मुक्त आकाश का। वे अपने पंखों पर कभी उड़े नहीं। वे सभी पिंजरों में बंद कैदी हैं। उनमें से किन्हीं के पिंजरे लोहे के हैं--वे गरीब कैदी हैं; किन्हीं के पिंजरे सोने के हैं--वे अमीर कैदी हैं। किसी के पिंजरों में हीरे-जवाहरात लगे हैं--वे सम्राट कैदी हैं; लेकिन कैदी सभी हैं, और सभी ने उड़ने की क्षमता खो दी है। आज अचानक कोई पिंजरे का द्वार भी खोल दे, तो भी तोता उड़ेगा नहीं; उड़ना ही भूल गया है। पिंजरा ही तो नहीं उसे परतंत्र बना रहा है; अब तो परतंत्रता और भी गहन है-- पंखों ने उड़ने की क्षमता खो दी है, भरोसा भी खो दिया है। और अगर उड़ भी जाए तोता, तो मुश्किल में पड़ेगा। पिंजरे में तो जिंदा रह सकता था; बाहर जिंदा न रह सकेगा; बाहर के संघर्ष को सह न सकेगा। हजार पक्षी हैं... बाहर मार डाला जाएगा। पिंजरे में तो प्राण बचे थे; परतंत्रता ही सही, लेकिन सुरक्षा थी। बाहर सुरक्षा भी नहीं है। और जो उड़ नहीं सकता है ठीक से अपने पंखों पर, वह कहीं भी किसी का भी शिकार हो जाएगा। पिंजरे में रहा तोता, मुक्त होकर केवल मरता है; परतंत्र होकर जी सकता है। इसलिए तो परतंत्रता छोड़ने में इतनी घबड़ाहट होती है। क्योंकि परतंत्रता अगर अकेली परतंत्रता होती तो उसे कभी का तोड़ देते। वह सुरक्षा भी है। वह जीवन को बचाने की व्यवस्था भी है। वह पिंजरे के चारों तरफ लगे हुए सींकचे तुम्हें उड़ने से ही नहीं रोक रहे हैं, शत्रुओं को भी भीतर आने से रोक रहे हैं। उनका काम दोहरा है।
स्वतंत्र होने के लिए पहले तो प्रशिक्षण चाहिए--पिंजरे के भीतर ही, पहले तो कोई सिखानेवाला चाहिए, जो पंखों का बल लौटा दे, जो भीतर की आत्मा को आश्वस्त कर दे। इसके पहले कि तुम उड़ो खुले आकाश में, कोई चाहिए जो तुम्हें खुले आकाश में उड़ने की योग्यता दे दे। गुरु का वही अर्थ और प्रयोजन है। गुरु का अर्थ हैः कारागृह में तुम्हें कोई मिल जाए, जिसने स्वतंत्रता का स्वाद चखा है। कारागृह के बाहर तो बहुत लोग हैं, जिन्हें स्वतंत्रता का स्वाद है; लेकिन वे कारागृह के बाहर हैं, उनसे तुम्हारा संबंध न हो सकेगा। बुद्ध हैं, महावीर हैं, कृष्ण हैं, क्राइस्ट हैं--अब सब कारागृह के बाहर हैं। अब उनसे तुम्हारा मिलन नहीं हो सकता। वे कारागृह के भीतर नहीं आ सकते, क्योंकि वे परिपूर्ण स्वतंत्र हो गए हैं। अब उनका जन्म नहीं हो सकता। तुम कारागृह के बाहर नहीं जा सकते, क्योंकि बाहर जाने की योग्यता ही होती तो कृष्ण का और क्राइस्ट का और राम का और महावीर का सहारा ही जरूरी न था।
गुरु का अर्थ हैः ऐसा व्यक्ति जो अभी कारागृह में है और मुक्त हो गया है। उसकी भी नाव किनारे आ लगी है। जल्दी ही वह भी यात्रा पर निकल जाएगा। थोड़ी देर और वह किनारे पर है। वह तुम्हारे ही जैसा है; लेकिन अब तुमसे बिल्कुल भिन्न हो गया है। तुम जहां खड़े हो, वहीं वह खड़ा है। जल्दी ही तुम उसे वहां न पाओगे; क्योंकि जिसके पंख पूरे खुल गए, जिसकी उड़ने की तैयारी पूरी हो गई और जिसने स्वतंत्रता का स्वाद भी चख लिया, अब वह ज्यादा देर परतंत्रता में न रुक सकेगा। थोड़ी देर और, वह अपनी नाव पर सवार हो जाएगा। फिर वह भी कारागृह के बाहर होगा।
तो गुरु का क्या अर्थ है?
गुरु का अर्थ हैः ऐसी मुक्त हो गई चेतनाएं जो ठीक बुद्ध और कृष्ण जैसी हैं, लेकिन तुम्हारी जगह खड़ी हैं--तुम्हारे पास। कुछ थोड़ा सा ऋण उनका बाकी है--शरीर का, उसके चुकने की प्रतीक्षा है। बहुत थोड़ा समय है यह।
बुद्ध को चालीस वर्ष में ज्ञान हुआ। चालीस वर्ष वे और रुके। उन चालीस वर्षों में उनके शरीर के जो ऋण शेष थे, वे चुक गए। ऋण चुकते ही नाव खुल जाएगी। फिर तुम उन्हें खोज न पाओगे। फिर वे जैसे धुआं विलीन हो जाता है आकाश में, ऐसे ही विलीन हो जाएंगे। जैसे गंध उड़ जाती शून्य में, वैसे वे उड़

जाएंगे। फिर तुम उन्हें कहीं भी खोज न पाओगे। फिर तुम्हें कहीं उनकी रूपरेखा न मिलेगी। फिर उनका स्पर्श संभव न होगा।
मुक्त हो जाने के बाद शरीर का ऋण चुकाने की जो थोड़ी सी घड़ियां हैं, उन थोड़ी ही घड़ियों में गुरु का उपयोग हो सकता है। फिर तुम लाख महावीर को चिल्लाते रहो, फिर तुम लाख बुद्ध को पुकारते रहो--बहुत सार्थकता नहीं है। सदगुरु का अर्थ हैः मध्य के बिंदु पर खड़ा व्यक्ति, जिसका पुराना संसार समाप्त हो गया, नया शुरू होने को है। पुराने का आखिरी हिसाब-किताब बाकी है--वह हुआ जा रहा है; जैसे ही वह पूरा हो जाएगा... । भीतर से तो बात समाप्त हो गई; लेकिन शरीर के संबंध उतने जल्दी समाप्त नहीं होते। शरीर पैदा हुआ था स Ÿार साल या अस्सी साल जीने को। मां-बाप के शरीर से उसे अस्सी साल जीने की क्षमता मिली थी; और व्यक्ति चालीस साल में मुक्त हो गया, तो शरीर की क्षमता चालीस साल और शरीर को बनाए रखेगी। अब वह जिएगा मृत्यु की भांतिः यहां होगा और नहीं होगा।
गुरु एक पैराडॉक्स है, एक विरोधाभास हैः वह तुम्हारे बीच और तुमसे बहुत दूर; वह तुम जैसा और तुम जैसा बिल्कुल नहीं; वह कारागृह में और परम स्वतंत्र। अगर तुम्हारे पास थोड़ी सी भी समझ हो तो इन थोड़े क्षणों का तुम उपयोग कर लेना, क्योंकि थोड़ी देर और, फिर तुम लाख चिल्लाओगे सदियों-सदियों तक, तो भी तुम उसका उपयोग न कर सकोगे।
और आदमी अदभुत है। जब बुद्ध मौजूद होते हैं, तब वह उन्हें चूक जाता है। तब वह निर्णय ही नहीं कर पाता। तब वह यह सोचता हैः कल निर्णय कर लेंगे, परसों निर्णय कर लेंगे; और फिर सदियों तक रोता है। पर वे सब आंसू मरुस्थल में खो जाएंगे। उन आंसुओं से कोई सार नहीं। वह आंसू प्रार्थनाएं नहीं, पश्चाताप दे सकते हैं। उन आंसुओं से साधना न जन्मेगी। उनसे अतीत में जो तुम चूक गए हो, उसका पश्चाताप तो प्रगट होता है, लेकिन बुद्ध के साथ कोई सेतु न बन सकेगा। खोजना पड़ेगा तुम्हें किनारे पर कोई और जिसकी नाव आ लगी है; पूछना पड़ेगा उससे, समर्पित होना होगा उसके प्रति; उसके हाथ में अपने को छोड़ देना होगा। समर्पण की इसलिए जरूरत पड़ जाती है कि उसकी भाषा और, तुम्हारी भाषा और। और उसके पास ज्यादा समय नहीं है कि तुम्हें समझाए। तुम्हारे पास तो बहुत समय है समझने को, क्योंकि बहुत बार जन्मोगे; पर उसके पास ज्यादा समय नहीं समझाने को। जो बिल्कुल समझने को तैयार हैं, उसको ही वह समझा सकेगा। उसके पैर तो पड़ चुके हैं शरीर के बाहर जाने को; अब गया, तब गया।
बुद्ध का एक नाम हैः तथागत। तथागत का मतलब होता हैः अब गया, तब गया; जैसे हवा का झोंका आता है--और आया और गया!
मैं एक कविता पढ़ रहा था। शब्द का खेल मुझे प्रीतिकर लगा। वसंत पर किसी
ने एक कविता लिखी और मुझे भेजी। पहली पंक्ति हैः वसंत... आ गया। दूसरी पंक्ति हैः वसंत आ गया। ठीक लगा। इतनी ही देर है। वसंत आ गया और वसंत आ... गया। इतनी ही देर में गुरु को खोज लिया, खोज लिया। बस आ गया और आ... गया के बीच जितना फासला है उतना ही फासला है। हवा की एक लहर; पकड़ लिया; पकड़ लिया, हो गए सवार उस पर, हो गए सवार; चूक गए, चूक गए! फिर पछताने से कुछ भी नहीं होता।
मनुष्य कारागृह में है। कोई चाहिए जो कारागृह में हो और जिसने स्वतंत्रता जान ली हो--ऐसा ही अनूठा जोड़ गुरु है। कारागृह में तुम्हें कौन बताएगा बाहर जाने का राज? जो कारागृह के ही वासी हैं उन्हें कारागृह का सब पता होगा; लेकिन बाहर जाने का कोई द्वार उन्हें पता नहीं। उन्हें यह भी पता नहीं कि बाहर कुछ है भी। उन्हें यह भी पता नहीं कि बाहर जाना हो सकता है। और उन्हें पता भी चल जाए तो भी बाहर उन्हें डराएगा, भयभीतर करेगा।
सौ वर्ष पहले फ्रांस के क्रांतिकारियों ने फ्रांस का एक किला तोड़ दिया--बस्टील। उसमें बड़े जघन्य अपराधी थे। वह फ्रांस के सबसे बड़े अपराधियों के लिए कारागृह था। कोई चालीस साल से बंद था, कोई पचास साल से।
किसी ने रजत-जयंती पूरी कर दी थी, किसी ने स्वर्ण-जयंती भी पूरी कर दी थी।
वहां आजन्म कैदी थे। उनके हाथों पर बड़ी मजबूत जंजीरें थीं। क्योंकि वे मरने के बाद ही खुलनेवाली थीं। उनमें कोई ताला नहीं था, कोई चाबी नहीं थी।
वे तो जब कैदी मर जाता था तो उसके हाथ को तोड़कर ही बाहर निकाली जाती थीं।

उनके पैरों में भयंकर बेड़ियां थीं, जिनको एक आदमी के बस के बाहर था कि उठा ले। चलना भी उनके लिए संभव न था। वे अपने कारागृह की कोठरियों में, अंध कोठरियों में--जहां न तो बाहर का आकाश दिखाई पड़ता, न कभी बाहर की सूरज की कोई झलक आती, न कोई हवा का झोंका बाहर की खबर लाता। वसंत आए कि पतझड़, भीतर सब एक सा ही अंधेरा बना रहता। सुबह हो कि रात, कुछ भेद नहीं होता। उनकी अंध कोठरियों में बंद कीड़े-मकोड़ों की तरह वे जीए थे। क्रांतिकारियों ने किला तोड़ दिया और क्रांतिकारियों ने सोचा कि बड़े अनुगृहीत होंगे कैदी, अगर हम उन्हें मुक्त कर देंगे। उन्होंने मुक्त कर दिया लेकिन कैदियों ने बड़ी नाराजगी जाहिर की। कैदियों ने कहा, हम बाहर नहीं जाना चाहते। पचास साल से मैं यहां हूं। किसी कैदी ने कहा, और अब बाहर जाना? अब फिर से दुनिया में उतरना?--इस उम्र में थोड़ा कठिन है। यहां तो समय पर खाना मिल जाता है। सब व्यवस्थित जीवन है। वहां बाहर कहां रोटी कमाऊंगा, कहां छप्पर खोजूंगा सोने के लिए? और फिर मेरी आंखें अंधेरे की आदी हो गई हैं, प्रकाश में बहुत पीड़ा पाएंगी। और फिर यह देह जंजीरों से सहमत हो गई है; बिना जंजीरों के तो मैं सो भी न पाऊंगा। ये जंजीरें तो मेरे शरीर का हिस्सा हो गई हैं--पचास साल, पूरा जीवन!
लेकिन क्रांतिकारी किसी की सुनते हैं? क्रांतिकारी तो क्रांति पर उतारू रहते हैं। उन्हें इससे मतलब ही नहीं कि क्रांति जिसके लिए कर रहे हैं, वह राजी भी है या नहीं। उन्हें क्रांति करनी है, वे क्रांति करके ही माने। उन्होंने जबर्दस्ती कैदियों की जंजीरें तुड़वा दीं, उनको बाहर निकाल दिया। आधे कैदी रात वापस लौट आए, और उन्होंने कहा, हमारी कोठरियां हमें वापस दो। बाहर बहुत घबड़ाहट लगती है। न कोई प्रियजन है, न कोई परिचित रहा अब। कहां खोजें? सब पता-ठिकाना खो गया है। और बाहर की दुनिया इतनी बदल गई है। हम जब छोड़कर आए थे तो कोई और ही दुनिया छोड़कर आए थे; यह तो कुछ और ही हो गया है। और शोरगुल और आवाज--बड़ी अशांति मालूम पड़ती है, और बड़ी असुरक्षा। न हमें कोई जानता, न हम किसी को जानते। हमारी भाषा और, उनकी भाषा और। अब तालमेल नहीं बैठेगा।
अगर दरवाजा खुला भी हो कारागृह का--और मैं कहता हूं खुला है, उस पर कोई पहरेदार नहीं बैठे--तो भी तुम दरवाजे को देखते नहीं। दिख भी जाए तो तुम बचकर निकल जाते हो; क्योंकि तुम्हारी बेड़ियों में तुम्हारी सुरक्षा है। और फिर तुमने धीरे-धीरे अपने कारागृह को खूब सजा लिया है। और अब वह घर जैसा है। तुमने दीवारों पर रंग-रोगन कर लिया है, फूल-बूटे बना लिए हैं, लाभ-शुभ लिख लिया है। तुमने बिल्कुल घर बना लिया है अब कहां तुम्हें घर से उजड़ने की हिम्मत रही। तुम पूरे सुरक्षित हो गए हो अपनी परतंत्रता में। भला वह कब्र हो, लेकिन तुमने उसे अपना शयनकक्ष बना लिया है। भला वहां तुम सिर्फ मर रहे हो, जी नहीं रहे हो; फिर भी जीने का भय मालूम होता है, बाहर जाने में घबड़ाहट लगती है।
कौन तुम्हें बाहर ले जाए?
जिन कैदियों के साथ तुम हो, वे भी तुम जैसे ही कैदी हैं। तुम एक-दूसरे
का पारस्परिक सहयोग करते रहते हो। कैदी एक-दूसरे को कहते रहते हैं, यह कोई कारागृह थोड़े ही है, नौ लाख का सरकारी भवन है। कैदी एक-दूसरे को समझाते हैं कि हम कोई कैदी थोड़े ही हैं, अतिथि हैं, सरकारी अतिथि!
कैदी एक दफा कारागृह में रह आए तो फिर वापस बार-बार लौटता है, बाहर अच्छा नहीं लगता; जल्दी कोई उपाय करके फिर लौट आता है। दुनिया उसकी भीतर है; प्रियजन, सगे-संबंधी भीतर हैं; असली परिवार भीतर है। कारागृह के लोग अपने को समझा लेते हैं कि वे बड़े प्रसन्न हैं, बड़े आनंदित हैं।
तुमने भी ऐसे ही अपने को समझा लिया है। दुख हो तो तुम कहते हो, यह कोई दुख थोड़े ही है। सुख के लिए तो दुख झेलना ही पड़ता है। यह तो सुख पाने का उपाय है। तुम आशा को नहीं मिटने देते। आशा तुम्हारे कारागृह पर सुख का सपना बनकर छाई हुई है। रात हो अंधेरी तो तुम कहते हो कि सुबह होने के करीब है। हालांकि सुबह तुम्हारे जीवन में कभी नहीं हुई, रात ही रात रही है; लेकिन तुम अपने को समझा लेते हो, कि जब गहन अंधेरी रात होती है, तो सबूत है कि सुबह होने के करीब है। और तुमने ऐसी कहावतें बना ली हैं कि अंधेरे से अंधेरे, काले से काले बादल में भी छिपी हुई रजत-रेखा की भांति बिजली है; और

हर कांटे के पास गुलाब का फूल है। चिंता है थोड़ी, माना; लेकिन हर चिंता के बाद आनंद की संभावना है।
आशा कारागृह के बाहर नहीं जाने देतीः पता नहीं, तुम बाहर जाओ तभी कुछ
घट जाए! आशा तुम्हें भीतर बांधे रखती है। कोई पहरेदार नहीं है तुम्हारे कारागृह पर; आशा का पहरा है। तुम अपने ही कारण भीतर रुके हो। और भीतर सभी कैदी एक-सी भाषा बोलते हैं। वे सब एक-दूसरे को संभाले रखते हैं।
कौन तुम्हें वहां जगाएगा?
गुरु का अर्थ हैः जो कारागृह में रहा हो अब तक और अचानक जाग गया हो। गुरु का अर्थ हैः जिसने किसी भीतर के मार्ग से कारागृह से बाहर होने का उपाय खोज लिया है। गुरु का अर्थ हैः जिसने कोई सेंध लगा ली है, और जो बहार के खुले आकाश को देख आया है, फूलों की सुगंध ले आया है, पक्षियों के गीत सुन आया है; जो कारागृह के भीतर बाहर के आकाश के टुकड़े को ले आया है। वह तुम्हें जगा सकता है। वही तुम्हें होश दे सकता है, मार्ग दे सकता है। वही तुम्हें बाहर ले जाने का उपाय दे सकता है। और वही तुम्हें तैयार करेगा इसके पहले कि तुम बाहर जाओ; नहीं तो बाहर बड़ी घबड़ाहट है--तुम वापस लौट आओगे।
कारागृह में तैयारी करनी होगी। सारे साधन, सारी विधियां वस्तुतः मोक्ष की विधियां नहीं हैं, सिर्फ तुम्हारे पंखों को तैयार करने की विधियां हैं। मोक्ष तो अभी उपलब्ध है, लेकिन तुम अभी तैयार नहीं हो; तुममें और मुक्ति में तालमेल न हो सकेगा। और अगर तुम्हें आज धक्का भी दिया जाए मोक्ष कर तरफ तो तुम वापस अपने कारागृह में लौट आओगे और जोर से कारागृह को पकड़ लोगे, क्योंकि अभी खुला आकाश तुम्हें डराएगा। कोई तुम्हें कारागृह के भीतर तैयार करे, तुम्हारे पैरों को मजबूत करे, तुम्हारे हाथों को बल दे, तुम्हारे पंखों को सम्हाले, और तुम्हारे भीतर की श्रद्धा को सजग करे कि तुम्हें आत्मभाव जग आए, तुम अपने पर भरोसा कर सको; तुम इतने अपने आत्मविश्वास से भर जाओ कि बड़े से बड़ा आकाश भी तुम्हारे आत्मविश्वास से छोटा मालूम पड़े, तभी तुम बाहर जा सकोगे।
स्वतंत्रता कोई बाहर की घटना नहीं है, भीतर का भरोसा है। तुम इतने भीतर आनंदभाव से भर जाओ और इतने बल और आत्मभाव से आत्मभान से कि सब असुरक्षाएं तुम्हें कंपा न सकें; तुम निर्भय होकर असुरक्षाओं में गुजर सको; वस्तुतः हर असुरक्षा तुम्हें पंखों को फैलाने का एक अवसर बनने लगे; हर कठिनाई तुम्हारे लिए एक चुनौती हो जाए, हर आकाश का खुलापन तुम्हारे लिए और दूर तक उड़ने की दिशा बना जाए। इसके लिए कोई जो तुम्हें तैयार करे, वही गुरु है।
गुरु का अर्थ होता हैः जो अब बस गया, गया, ज्यादा देर न रहेगा। इसलिए बहुत थोड़े लोग गुरु का लाभ ले पाते हैं। फिर अनेकों लोग उसकी पूजा करेंगे, उसके गीत गाएंगे सदियों तक। वह सब व्यर्थ है। उसका कोई सार नहीं है। वह पछतावा है। उससे तुम अपनी मूढ़ता तो प्रकट करते हो, लेकिन अपनी समझ नहीं। कबीर के इन वचनों को समझने की कोशिश करोः
गूंगा हुवा बावला, बहरा हुवा कान। पाऊं थैं पंगुल भया, सतगुरु मारया बान।।
जो गूंगा था, वह बोलने लगा।
तुम्हारे भीतर कुछ है जो बिल्कुल गूंगा है। और जो तुम्हारे भीतर बोल रहा है, वह कोई बहुत सार्थक अंग नहीं है। तुम्हारा हृदय तो गूंगा है और तुम्हारी खोपड़ी बोले जाती है। और तुम्हारी खोपड़ी के बोलने में कुछ भी सार नहीं हैं। वह विक्षिप्त का उन्माद है। वह एक तरह की रुग्ण दशा है। वह सन्निपात है। अगर तुम बैठकर अपने मन को गौर से देखोगे तो तुम पओगे कि यह क्या बोल रहा है मन, क्यों बोल रहा है? इस कूड़े-कर्कट की चर्चा क्यों? मन क्षुद्र के आसपास घूमता है।
रामकृष्ण कहते थे, चील कितने ही ऊपर आकाश में उठ जाए, तो भी नजर उसकी कूड़ेघर पर पड़े हुए मरे जानवर पर लगी रहती है। आकाश में उड़ती हो, तो भी वह आकाश में उड़ नहीं सकती; नजर तो नीचे जमीन पर, जहां मांस का टुकड़ा पड़ा है, वहीं लगी रहती है। तुम्हारा मन अगर ईश्वर की भी बात सोचे, तो भी तुम गौर

करना; तुम्हारी नजर कहीं मांस के टुकड़े पर, जमीन पर लगी होगी; तुम ईश्वर से भी मांस का टुकड़ा ही मांगोगे।
अगर ईश्वर मिल जाए--कभी तुमने सोचा? सोचने जैसा है, अगर ईश्वर मिल जाए,
तो क्या मांगोगे? तुम्हारा मन बहुत-सी चीजें बताएगा; लेकिन सभी कचरे-घर में पड़े हुए मांस के टुकड़े होंगे। ईश्वर अगर मिल जाए तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम कुछ मांग ही नह पाओगे, अगर समझदार हो; अगर नासमझ हो तो कुछ कचरा मांगकर लौट आओगे। क्या मांगोगे?--इसी संसार का कुछ, इसी कूड़े-घर से कुछ।
तुम्हारा मन क्या सोचता रहता है, क्या मांगता रहता है? क्या चलती रहती
है गुनगुन मन के भीतर? क्या है उसका सार-सूत्र? थोड़ा अपने मन को गौर करके देखो तो तुम पाओगे, सार तो कुछ भी नहीं, असार ही बकवास चलती रहती है। यह तुम्हारा बोलता हुआ हिस्सा है, मुखर हिस्सा।
कबीर कहते हैं, गूंगा हूवा बावला... । लेकिन गुरु के पास जाकर वह हिस्सा बोलना शुरू करता है जो अब तक चुप ही रहा था। अब तक तुमने उसे बोलने का मौका ही न दिया था। और निश्चित ही, अगर एक पागल आदमी और एक स्वस्थ आदमी की मुलाकात हो जाए, तो पागल आदमी स्वस्थ को बोलने का मौका ही न देगा। पागल तो आक्रामक होता है, हिंसात्मक होता है। पागल तो बके ही जाएगा, वह अवसर भी न देगा बोलने का।
यहूदी फकीर हुआः बालसेन। उसके पास एक बकवासी आ गया। और फकीरों में कुछ गुण होता है कि बकवासियों को आकर्षित करते हैं। वह बकवासी कोई घंटे भर तक बकवास करता रहा। उसने बालसेन को इतना भी मौका न दिया कि वह कहे, बस करो भाई, इतना भी मौका न दिया। वह दो वाक्यों के बीच में संधि ही नहीं छोड़ता था। तो वह बोले ही जा रहा था। आखिर उसने एक बात कही कि मैं पड़ोस के दूसरे नगर के फकीर के पास भी गया था। उन्होंने आपके संबंध में कुछ बातें कही हैं। जरा-सी संधि मिल गई बालसेन को। उसने जोर से चिल्लाकर कहा, बिल्कुल गलत। बिल्कुल गलत। वह आदमी थोड़ा हैरान हुआ कि मैंने अभी बातें तो बताई ही नहीं कि फकीर ने क्या कहा; और आप पहले ही कहते हैं, बिल्कुल गलत, बिल्कुल गलत। बालसेन ने कहा, जब तूने मुझे मौका नहीं दिया बोलने का, उसको भी न दिया होगा। मैं मान ही नहीं सकता कि उसको तूने मौका दिया हो, और मेरे संबंध में वह कुछ बोल पाया हो। असंभव।
बकवासी और शांत व्यक्ति में बकवासी बोलता रहेगा। पागल और स्वस्थ में पागल बोलता रहेगा। सभ्य और असभ्य में असभ्य बोलता रहेगा।
तुम्हारे भीतर भी दोनों हैं। तुम्हारा असभ्य हिस्सा है तुम्हारा मन,
और तुम्हारा सभ्य हिस्सा है तुम्हारा हृदय। मन उसे बोलने ही नहीं देता। वह चुप्पी साधे है। और वही तुम्हारा केंद्र है। मन तो तुम्हारी परिधि है। मन तो तुम्हारे बाजार का हिस्सा है; वहां उसकी जरूरत है। जीवन के गहन में मन का कोई भी काम नहीं है। न तो प्रेम में काम पड़ता है मन; न प्रार्थना में काम पड़ता है मन; न सत्य की खोज में काम पड़ता है मन; न अमृत की यात्रा में काम पड़ता है मन--हां, बाजार के सौदे में, सब्जी खरीदने में, सब्जी बेचने में काम पड़ता है; रुपये-पैसे इकट्ठे करने में, चोरी करने में काम पड़ता है।
मन व्यर्थ की साज-सम्हाल रखता है। उसकी भी जरूरत है। मगर वह तुम्हारे ऊपर फैल जाए पूरी तरह और एकाधिकार कर ले तो वह तुम्हारी गर्दन घोंट देगा। उसने गर्दन घोंट दी है। तुम भूल ही गए हो कि तुम्हारे पास हृदय भी है; और एक सुमधुर वाणी है तुम्हारे पास; एक और शांत स्रोत है; एक और संगीत का उश्म है--जहां वाणी बहुत मृदुल है; जहां स्वर बहुत शांत है; जहां कुछ कहा कम जाता है और ज्यादा समझा जाता है; जहां बोलना कम है और जीना ज्यादा है; जहां करना कम है और होना ज्यादा है। एक गहनता है अस्तित्व की तुम्हारे हृदय में; वहां तुम्हारा केंद्र है।
गूंगा हूवा बावला, कबीर कहते हैं, सश्ुरु मारया बान। और जब गुरु ने बाण मारा तो जो हिस्सा गूंगा था सदा से, वह बोल उठा। और जब हृदय बोलता है, मन एकदम चुप हो जाता है। तुम मन को चुप करने की बहुत कोशिश करके सफल न हो पाओगे; ज्यादा बेहतर हो, तुम हृदय को सुविधा दो। इस पागल से मत ज्यादा उलझो। अपने भीतर गैर-पागलपन के सूत्र को खोजो। तुम्हारा ध्यान, तुम्हारी दृष्टि हृदय की तरफ मुड़े। धीरे-धीरे तुम पाओगे, जो आवाज नहीं सुनी जाती थी,

वह सुनी गई। जो अंतर्ध्वनि तुम भूल ही गए थे, वह मिट नहीं गई है; उसकी कल-कल धारा अब भी भीतर बहती है।

तुमने कभी विचार किया? रास्ते पर शोरगुल चल रहा है, भरा बाजार है, पक्षी एक बोल रहा है वृक्ष पर--तुम अगर आंख बंद करके पक्षी की तरफ ध्यान से सुनो। बाजार भूल जाएगा; और पक्षी की धीमी-सी आवाज इतनी तीव्र और प्रखर हो जाएगी कि तुम पाओगे, पूरे बाजार की आवाज भी उसे डुबा नहीं सकती। तुम्हारे ध्यान देने की बात है। तुम कभी अगर शांत बैठो और सिर्फ अपने हृदय की धड़कन सुनो, तो तुम पाओगे कि रास्ते पर चलते हुए ट्रेफिक का कारवां और सब तरफ का शोरगुल फीका पड़ गया; हृदय की धड़कन उस सब के ऊपर उठकर उभर जाएगी।

सिर्फ ध्यान की बात है। जिस तरफ ध्यान, उसी तरफ जीवन की वर्षा हो जाती है। तुम्हारा ध्यान अगर तुमने विचारों की तरफ लगा रखा है, तो तुम विक्षिप्त को ही सुनते चले जाओगे। और मन से ज्यादा बकवासी तुमने कहीं देखा और मन से ज्यादा उबानेवाला तुमने कभी देखा? मन से ज्यादा व्यर्थ चीज तुमने कहीं जीवन में पाई?

सद्गुरु मारया बान, गूंगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान।

तुम सुनते हो, फिर भी सुन नहीं पाते। क्योंकि जिस कान से तुम सुनते हो, वह बाजार के लिए ठीक, ध्यान के लिए ठीक नहीं। कोई और कान चाहिए। सुनने की कोई और विधि चाहिए। सुनने का कोई और ढंग और शैली...।

ऐसे तो मैं बोल रहा हूं, तुम सुन रहे हो; लेकिन और तरह से भी सुना जाता है। जब कान ही नहीं सुनते, बल्कि तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व कान हो जाता है--बहरा हुआ कान--तुम्हारा रोआं-रोआं जो बहरा पड़ गया है; तुम्हारी श्वांस-श्वांस जो बहरी पड़ गई है; सिर्फ कान सुनता है और तुम्हारा पूरा देह, तन-मन, प्राण, सब बहरा है--ऐसे काम न चलेगा। उस विराट को सुनना हो तो तुम्हें पूरा कान ही हो जाना पड़ेगा। महावीर ने यही श्रावक की परिभाषा की है। जिसका पूरा व्यक्तित्व कान हो जाए, वह श्रावक। जिसका पूरा व्यक्तित्व आंख हो जाए, वह द्रष्टा। जिसका पूरा व्यक्तित्व हृदय की धड़कन हो जाए, वह प्रेमी। खंड-खंड से काम न चलेगा। पूरा अखंड होकर कुछ भी कर लो, उसी से छुटकारा हो जाएगा। इसे तुम सूत्र मानोः जिस चीज को तुम अखंड होकर कर लोगे, वही तुम्हें इस कारागृह के बाहर ले जाने का द्वार हो जाएगी।

बहरा हूवा कान--सारा शरीर अब तक बहरा था, वह पूरा का पूरा कान हो गया--सद्गुरु मारया बान।

पाऊं थैं पंगुल भया...। और अब तक तो हिस्सा पक्षाघात से पंगुल पड़ा था, हिलडुल न सकता था, अचानक चलने लगा।

इस पद की मैं ऐसी व्याख्या करता हूं। और व्याख्याएं हैं, वे मुझे बचकानी लगती हैं। वे व्याख्याएं ये हैं कि जो गूंगा था, वह बोलने लगा; जो बहरा था, वह सुनने लगा; जो लंगड़ा था, वह चलने लगा--ऐसा गुरु का चमत्कार है। गुरु कोई सत्य सांईबाबा नहीं। और इस तरह की व्याख्याएं एकदम बचकानी हैं।

इस पद का वचन गहरा है। चमत्कार बच्चों को लुभाने की बातें हैं, सड़क के किनारे जादूकर कर रहा है। उनसे कुछ आत्मक्रांति का सेतु नहीं बनता। बड़ा चमत्कार यही है कि तुम्हारे भीतर जो बोलता नहीं अंग, वह बोलने लगे। गूंगा बोलने लगे, यह कोई बड़ा चमत्कार नहीं है। यह विज्ञान ही कर लेगा। इसके लिए संतों की कोई जरूरत नहीं है। और बहरा सुनने लगे, यह तो दस-बीस रुपये का यंत्र खरीदकर भी हो जाएगा। इसके लिए कबीर जैसे गुरु को उलझाने की जरूरत नहीं है। और पक्षाघात ठीक हो जाए, यह तो साधारण इलाज की बात है। लेकिन एक और, जिसे कोई विज्ञान ठीक न कर सकेगा। एक और आत्मा है तुम्हारे भीतर जो पत्थर जैसे हो गई है, जिसको पिघलाना है, जिसको चलाना है, जिसको पैर देने हैं। वह कौन करेगा? अगर गुरु भी अस्पतालों का ही एक्सटेंशन हो, उन्हीं का ही काम कर रहे हो, तो फिर दूसरा काम कौन करेगा? नहीं, गुरु का कोई चिकित्सक नहीं है, या चिकित्सक है तो अज्ञात का।

तुम्हारे भीतर ये सारी घटनाएं हैं। तुम यह मत सोचना कि किन्हीं गूंगों, बहरों और लंगड़ों के संबंध में चर्चा हो रही है; यह चर्चा तुम्हारे संबंध में हो रही है। और नहीं तो अगर गूंगे, लंगड़े, बहरे सब ठीक हो जाएं तो गुरु क्या करेगा? एक दिन ऐसा हो ही जाएगा। विज्ञान सारी व्यवस्था कर लेगा,

दुनिया में कोई लंगड़ा न होगा, गूंगा न होगा, लूला न होगा। फिर सदगुरु को सिवाय आत्महत्या के कोई उपाय न रह जाएगा।
ये सारे शब्द तुम्हारे लिए हैंः ये किन्हीं गूंगों और बहरों के संबंध में नहीं हैं। यह तुम गूंगों और बहरों के संबंध में है। और यह बड़ा चमत्कार है कि तुम्हारे भीतर एक छोटा-सा हिस्सा बोल रहा है, बाकी का सब बहरा है, गूंगा है, लंगड़ा है। कान सुन रहा है, लेकिन तुम नहीं सुनते। पैर चल रहे हैं; लेकिन तुम नहीं चलते। तुम चले ही नहीं; तुम बिल्कुल जड़ हो। तुम बहे ही नहीं। तुम्हारे जीवन में कोई सरिता जैसा भाव नहीं है। तुम अखीर में मरते वक्त पाओगे, चले बहुत और बिल्कुल कहीं पहुंचे नहीं। वही पक्षाघात है। पक्षाघात का वही अर्थ है। मरते वक्त्त तुम पाओगे, जहां पैदा हुए थे, वहीं मर रहे हो। चले बहुत, लेकिन चलना पैरों का था, आत्मा का न था; भीतर कोई गति नहीं हुई; भीतर गत्यात्मकता है ही नहीं।
तुम वही-वही रोज करते हो। कल भी क्रोध किया था, परसों भी क्रोध किया था, आज भी किया, कल भी करोगे--तुम वही करते रहोगे; भीतर कोई गति नहीं है। जब कोई व्यक्ति क्रोध से अक्रोध को उपलब्ध होता है, तब--पाऊं थैं पंगुल भया। जब कोई व्यक्ति अशांति से शांति को उपलब्ध होता है, तब--पाऊं थैं पंगुल भया। और जब कोई व्यक्ति वासा से करुणा को उपलब्ध होता है, तब--पाऊं थैं पंगुल भया। तब गति हुई; तब चले; तब बर्फ पिघली तुम्हारे भीतर की जड़ता की; तुम तरल हुए, बहे; सागर की तरफ यात्रा हुई। जैसे कोई नदी सागर पहुंच जाए ऐसे जब तुम परमात्मा के सागर में पहुंच जाओगे, तब--पाऊं थैं पंगुल भया। सतगुरु मारया बान।
क्या अर्थ है सतगुरु के बाण मारने का? शिष्य को ऐसा लगता है। सतगुरु
तो बाण मारता ही रहता है। लेकिन यहां बड़ी कठिनाई है। यह कोई साधारण धनुर्विद्या नहीं है। सतगुरु तो ठीक निशाने पर ही मारता है। लेकिन यहां जटिलता यह है कि लक्ष्य अगर राजी न हो, तो बाण चूक जाता है।
मैं एक बाण तुम्हारी तरफ फेंकता हूं। मैं कितना ही निशाना ठीक मारकर फेंकूं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; अगर तुम राजी नहीं हो तो निशाना चूक जाएगा। और मैं गैर निशाने के अंधेरे में फेंक दूं, अगर तुम राजी हो, तीर पहुंच जाएगा। तुम्हारे राजी होने में सारी कला है। तुम्हारे तैयार होने में, खुले होने में, रिसेप्टिव, ग्राहक होने में सारी कला है। तुम्हारा द्वार खुला हो, फिर बाण कहीं भी फेंका जाए, तुम खींच लोगे बाण को।
सतगुरु तो चौबीस घंटे... उसके होने में बाण फेंकना छिपा है। उठता है, बैठता है, बोलता है--हर घड़ी वह बाण फेंक रहा है। यह कोई बाण फेंकना उसके लिए कृत्य नहीं है, यह उसके होने का ढंग है। क्योंकि जो उसे मिला है, वह बांट रहा है। लेकिन जिन्होंने अपनी झोली खोल दी होगी, उनकी झोली भर जाएगी। और जो संकोच से भरे, भयभीत, डरे, अश्रद्धा, संदेह में दबे, अपने द्वार को बंद रखे खड़े रहेंगे, उनकी झोली खाली रह जाएगी।
कबीर को बाण लग गया होगा सतगुरु का। उसमें खूबी सतगुरु की नहीं है; इसमें खूबी कबीर की है। यह जो आध्यात्मिक जीवन है, इसमें गुरु की बहुत खूबी नहीं है; इसमें खूबी शिष्य की है। शिष्य को ऐसा ही लगेगा, गुरु ने मारा बाण, गुरु की कला है। शिष्य गुरु को धन्यवाद देगा। और गुरुओं ने सदा शिष्यों को धन्यवाद दिया है, क्योंकि वे ज्यादा गहरी बात जानते हैंः साफ है कि शिष्य लेने को राजी था, इसलिए मिल गया है। तुम जितना लेने को राजी हो, उतना पा लोगे। अगर न पा सको तो किसी और को दोष मत देना; अपने राजीपन में ही तलाश करनाः तुम राजी ही नहीं हो; तुम लेने को भी उत्सुक नहीं हो। तुम्हें मुफ्त भी मिल रहा हो जीवन का समस्त धन तो तुम्हें भरोसा नहीं है कि यह धन हो सकता है। तुम संदिग्ध हो। तुम्हारा संदेह ही गुरु के बाण को चुका देगा। तुम श्रद्धा से भरे हो, बाण लगना निश्चित है।
और उस बाण के लगने का परिणाम यह होगा--और ठीक बाण शब्द बिल्कुल उचित है--जैसे हृदय छिद जाए किसी बाण से।
बस दो ही घटनाओं में यह बाण का प्रतीक सार्थक है। एक तो जब प्रेम में तुम कभी गिरते हो, तब सारी दुनिया में बाण का प्रतीक उपयोग में लाया जाता है, कि जैसे एक प्रेम का बाण तुम्हारे हृदय में आकर छिद गया। बाण के छिदने का अर्थ होता हैः पीड़ा, लेकिन मधुर। एक मीठी पीड़ा तुम्हारे हृदय में उठ

आती है। पीड़ा होती है--पीड़ा जैसी नहीं, आनंद जैसी। तुम उसे छोड़ना न चाहोगे। चौबीस घंटे तुम्हारे हृदय में कुछ होता रहता है, जब कोई प्रेम में पड़ता हैं।
हिंदुओं की तो पुरानी प्रतीक-व्यवस्था है, और उन्होंने बड़े ठीक प्रतीक खोजे हैं। कामदेव सदा ही धनुष्य-बाण लिए खड़ा है। प्रतीक है प्रेम का कि लोग हृदय का चित्र बना देते हैं और एक बाण उसमें चुभा देते हैं। बाण के साथ एक त्वरा और तीव्रता है। और बाण एक क्षण में लग जाता है, सतय नहीं लगता है; अभी नहीं था, और अभी है; एक पल नहीं बीता और सब बदल गया। और बाण के लगते ही तुम्हारे हृदय में एक नई गतिविधि शुरू हो जाती है--एक पीड़ा जो मधुर है--और तुम बदलने शुरू हो जाते हो। प्रेम जिस जोर से बदलता है, कोई चीज बदलती नहीं। अभी तुम चल रहे थे--उदास-उदास, पैरों में गति न थी, ढोते थे बोझ, अपने को ही खींचते थे; और प्रेम का बाण लग गया--पैरों में गति आ गई, नृत्य आ गया। अब तुम चलते हो--चाल और है। एक गीत है चाल के भीतर छिपा। कोई भी देखकर कह सकता है कि लग गया बाण। कहते हैं, प्रेम को छिपाना असंभव है। वह मुझे भी ठीक लगता है, प्रेम को छिपाना असंभव है। कैसे छिपाओगे? तुम्हारा रोआं-रोआं, आंख, हाथ, पैर, चलना, उठना, बोलना, हर चीज कहेगी कि तुम प्रेम में पड़ गए हो। प्रेम को छिपाना असंभव है। वह ऐसी आग है।
तो एक तो प्रेम है, जहां बाण प्रतीक है; और उससे भी ज्यादा ठीक प्रतीक
है श्रद्धा के लिए। श्रद्धा भी ऐसे ही बाण जैसी चुभती है। सारी दुनिया श्रद्धा में गिरे आदमी को पागल कहेगी, जैसे प्रेम में गिरे आदमी को पागल कहती है। सारी दुनिया कहेगी कि सम्मोहित हो गए हो। होश खो दिया, विचार खो दिया? किस पागलपन में पड़े हो? सम्हलो। लेकिन जिसको बाण लग गयाः सारी दुनिया फीकी और उदास हो जाती है। जिसको बाण लग गया, वह कैसे कहे अपनी मीठी पीड़ा को किसी से? पीड़ा कहे, ठीक नहीं; सिर्फ मीठा कहे, नहीं काफी... , एक तो मिठास को बताना ही मुश्किल, फिर पीड़ा-भरी मिठास को बताना तो और भी मुश्किल, और जटिल हो गया। और लोग कहेंगे, पागल हो। पीड़ा कहीं मीठी होती है? क्योंकि उन्होंने तो एक ही पीड़ा जानी है--जहरीली, कड़वी, पीड़ा जो दुख देता है उन्होंने सुख जाना जो सुख देता है, उन्होंने दुख जाना जो दुख देता है। लेकिन जब बाण लगता है श्रद्धा या प्रेम का, तो तुम एक अनूठे अनुभव से गुजरते होः एक ऐसा दुख जो सुख भी है; एक ऐसी तंद्रा जिसमें जागृति भी छिपी है; एक ऐसा सम्मोहन जिसमें होश आ रहा है। तुम विरोधाभास की सीमा पर आ गए। तर्क की दुनिया पीछे छूट गई, हृदय की दुनिया शुरू हुई।
इसलिए बाण खोपड़ी में कभी नहीं लगाया हुआ बताया जाता--कभी तुमने न देखा होगा; वह सदा हृदय में लगता हैं। खोपड़ी में बाण लग ही नहीं सकता; वह काफी सघन है; वह सब तरफ से बंद है। हृदय कोमल द्वार है। तुम तैयार हो तो बाण सदा तैयार है। अगर तुम चूके तो अपने कारण चूकोगे।
गूंगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान। पाऊं थैं पंगुल भया, सतगुरु मारया बान।।
माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं परंत। और मनुष्य ऐसा है माया में डूबा हुआ--अज्ञान से भरा हुआ, मूर्च्छा से संत्रस्त; जैसे पतंगा दीये पर आ-आकर गिरता है, ऐसे ही मनुष्य माया पर आ-आकर गिरता है, जो देखता है, वह हैरान होता है--इस पतंगे को क्या पागलपन हुआ है? यह मरेगा दीये पर गिरकर। दीये से कोई जीवन न मिलेगा। मौत आएगी। लेकिन पतंगा वहीं-वहीं आकर गिरता है और मरता है। और दूसरे पतंगे भी देख रहे हैं, लेकिन उनको भी कुछ होश नहीं आता; वे भी दीये की तरफ चले आ रहे हैं। सुबह ढेर लग जाता है पतंगों का जो दीये पर मरे; लेकिन बाकी पतंगों को कुछ भी खबर नहीं होती, होश ही नहीं होता।
कबीर कह रहे हैं, माया दीपक नर पतंग--माया है दीपक इस संसार का। सारा लोभ, वासना, कामना, तृष्णा वह है दीपक। और मनुष्य एक पतंगे की भांति है। और कितनी बार गिरा इसी दीये पर और मरा। जन्मों-जन्मों से यही चल रहा है। फिर भी वही वासना खींचती है, कामना खींचती है--फिर दीये की तरफ चल पड़ते हैं। हर बार जन्म के बाद मौत के सिवा और कुछ तो मिलता नहीं। हर जीवन मौत में ही तो बदल जाता है। पतंगे ही नहीं मरते। हम भी तो आखिर में मरे हुए ढेर पर पड़े पाए जाते हैं। सारे जीवन की निष्पिŸा मौत है, फिर भी कोई जागता नहीं है।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं परंत। और बार-बार उसी भ्रम में, बार-बार उसी नासमझी में, बार-बार उसी अंधकूप में आकर आदमी गिर जाता है। कहैं कबीर गुरु ग्यान थैं, एक आध उबरंत।। लेकिन जिसके हृदय में गुरु
का बाण लग गया, उसके जीवन में क्रांति घटित हो जाती है। कोई एकाध जो गुरु का निशाना बन गया, जिसने गुरु का निशाना अपने को बनने दिया वह कोई एकाध उबर जाता, फिर मौत विलीन हो जाती है; फिर जीवन का सनातन नाद बजता है; फिर जीवन की शाश्वतता उपलब्ध होती है; फिर वही बच रहता है, जिसकी कोई मौत नहीं और उसे पाए बिना शांति न मिलेगी।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमें शांति चाहिए। शांति मिल नहीं सकती जब तक तुम अमृत को न पा लो। मिल ही कैसे सकती है--मौत सामने खड़ी है। शांति कैसे मिल सकती है? थोड़ी बहुत देर को पीछा छिपा दो, ढांक दो, भूल जाओ-- यह हो सकता है; लेकिन शांति मिल नहीं सकती। शांति तो अमृत की छाया है। इसलिए मैं यहां तुम्हें शांति के उपाय नहीं बता रहा हूं। शांति में मेरी उत्सुकता नहीं है। मेरी उत्सुकता तो अमृत में है। तुम जिस दिन अमृत को पा लोगे; शांति अपने-आप बंधी चली आती है। वह अमृत की दासी है, छाया है, और मृत्यु की छाया है अशांति। तुम चाहो कि मृत्यु को पार हुए बिना तुम शांत हो जाओ। यह असंभव है। और अच्छा है कि यह असंभव है। अगर मृत्यु के रहते तुम शांत हो जाओ। तो धर्म का द्वार तुम्हारे लिए सदा के लिए बंद हो जाएगा। महाकरुणा है अस्तित्व की वह तुम्हें शांत नहीं होने देता जब तक कि तुम अंतिम द्वार को पार न कर जाओ। नहीं तो तुम न मालूम किसी कूड़ेघर पर बैठकर और शांत हो गए होते; तुम न मालूम कोई तिजोरी पकड़ कर बैठे रहते, छाती से लगा कर, और शांत हो गए होते; तुम सड़ जाते। नहीं, परमात्मा तुम्हें छोड़ेगा नहीं। परमात्मा तुम्हें धकाता ही रहेगा। जब तक कि वास्तविक घटना न घट जाए। और वह घटना यही है कि तुम अमृत को जान लो।
कहैं कबीर गुरु ज्ञान थैं, एक आध उबरंत।
गुरु ज्ञान तो बहुतों को बांटता है, पर एकाध उबरता है। हजारों लेते हैं, एकाध तक पहुंचता है। हजारों सुनते हैं, एकाध सुनता है। हजारों चलते हैं, एकाध ही पहुंचता हैं। बात क्या है? कहीं गुरु और शिष्य के बीच गड़बड़ हो जाती है। गुरु कुछ कहता है, शिष्य कुछ सुनता है। तुम जब तक कुछ सोचते रहोगे तब तक तुम वही न सुन पाओगे जो गुरु कहता है; तुम कुछ और सुन लोगे। तुम अपने को मिश्रित कर दोगे। तुम गुरु के ज्ञान में अपना अज्ञान डाल दोगे। तुम गुरु के ज्ञान से भी अज्ञान ही ले पाओगे। तुम पंडित हो जाओगे, प्रज्ञावान न हो सकोगे। इसलिए बहुत सुनते हैं, कोई एकाध ही सुन पाता है।
जीसस हर बार कहते हैं, जब भी वे बोलते हैं कि जिनके पास कान हों, वे सुन लें। जिनके पास आंख हों, वे देख लें। हर बार, हर बोलने के पहले उनका पहला वचन यही है, क्या जीसस अंधों और बहरों के बीच ही रहते थे? निश्चित ही बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट अंधों और बहरों के बीच ही रहते हैं।
रोज मुझे अनुभव होता है कि जो मैं कहता हूं, तुम कुछ और सुनते हो। जब लोग आकर मुझे कहते हैं कि कल आपने ऐसा कहा, तब मुझे पता चलता है।
मैं अगर कहूं कि सघन उपाय करना पड़ेगा तभी तुम पा सकोगे--मेरे पास लोग आकर कहते हैं कि सघन उपाय तो होता नहीं; हो नहीं सकता, क्योंकि और हजार काम हैं। और मन में इतनी शक्ति भी नहीं है कि सघन उपाय कर सकें--तो यह तो हमसे न हो सकेगा।
मैं कभी बोलता हूं कि किसी उपाय की जरूरत नहीं है, तुम सिर्फ शांत होकर बैठ जाओ--तो लोग मुझसे आकर कहते हैं कि यह तो हो ही नहीं सकता। वही लोग जो कह गए थे, सघन उपाय नहीं हो सकता। मैं कहता हूं, सिर्फ बैठ जाओ, यह तो हो नहीं सकता। खाली कैसे बैठें? आप कुछ करने को बताएं। आलंबन तो चाहिए--कोई विधि, कोई उपाय तो चाहिए; नहीं तो खाली कैसे बैठें?
दोनों मार्गों से आदमी पहुंचता है। या तो सब विधि छोड़कर खाली बैठ जाओ--तो भी पहुंच जाता है, कोई बाधा नहीं है। लेकिन सब नहीं छूटता। वे कहते हैं, कुछ तो आलंबन चाहिए। और या फिर किसी विधि में इतने लीन हो जाओ कि पीछे कुछ भी न बचे। वे कहते हैं, यह भी नहीं होता। तो वे कहते हैं, हम बीच का कोई रास्ता निकाल लेते हैंः थोड़ी-थोड़ी विधि करेंगे, थोड़ा-थोड़ा शांत बैठेंगे। यह उन्होंने अपने को मिला लिया; उन्होंने अपना अज्ञान डाल लिया। जो आग

मैंने दी थी, उसे उन्होंने कुनकुनी कर लिया। अब ज्यादा से ज्यादा वे कुनकुने हो जाएंगे; लेकिन वाष्पीभूत कभी भी न हो सकेंगे।
तुम अपने को मत मिलाओ। तुम जो भी मिलाओगे, वह गलत होगा, क्योंकि तुम गलत हो। लेकिन गलत आदमी को भी यह भ्रांति होती है कि पूरा थोड़े ही गलत हूं थोड़ा-बहुत होऊंगा। इस ख्याल में तुम पड़ना ही मत। या तो तुम गलत होते हो पूरे, या तो तुम सही होते हो पूरे। मैंने अब तक ऐसा कोई आदमी नहीं देखा जो थोड़ा-थोड़ा सही और थोड़ा- गलत हो। ऐसा आदमी होता ही नहीं। ऐसे आदमी कोहेने का प्रकृति में उपाय ही नहीं है। साथ-साथ प्रकाश और अंधकार नहीं रहते। या तो तुम्हारे भीतर प्रकाश होता है या अंधकार होता है। तुम कहो, आधे में तो प्रकाश और आधे में अंधकार है, ऐसा होता नहीं। क्योंकि अगर प्रकाश होगा, तो वह आधे में अंधकार को न बचने देगा। और अगर आधे में अंधकार है तो आधा प्रकाश कल्पना होगा। लेकिन तुम की इस भ्रांति में मत पड़ना, जिसमें सभी पड़ते हैं। तब तुम सुन न पाओगे। तुम अपना ही गणित लगाए चले जाते हो। तुम कुछ करते हो, जो तुमने ही ईजाद कर लिया--जो मैंने कभी कहा नहीं। और तुम सुनते हो व्याख्या के साथ। जब कोई निर्व्याख्या से सुनता है, तब उसके पास कान हैं। जब कोई मन को और विचारों को और अपने अतीत को बीच में नहीं लाता, हटा देता है, सरका देता है किनारे पर; सीधा सुनता है; बीच में कोई विचार का परदा नहीं होता--तब कभी वह घटना घटती है। कहैं कबीर गुरु ग्यान थैं, एक आध उबरंत--और तब गुरु का ग्यान उबार लेता है।
ज्ञान नहीं उबारता, गुरु का होना उबार लेता है। क्योंकि उस घड़ी में जब तुम सारे विचारों को हटाकर सुनते हो, तुम सुनते थोड़े ही हो, तुम पीने लगते हो; तुम दूर थोड़े ही रह जाते हो, तुम पा आ जाते हो; तुम भिन्न थोड़े ही रह जाते हो, अभिन्न हो जाते हो।
बीच में विचार न हो तो भेद कहां होगा? बीच में कोई विचार न हो, मेरे और तुम्हारे बीच में अगर कोई विचार न हो, तो मेरा अंत कहां होगा और तुम्हारी शुरुआत कहां होगी? सीमाएं खो जाएंगी।
जब कोई शिष्य ऐसे सुनता है कि गुरु के साथ सीमा खो जाए, उसी क्षण उबर जाता है। क्योंकि उसी क्षण गुरु का होना शिष्य के होने के गुणधर्म को बदल देता है--जैसे पारस लोहे को सोना कर देता है। कहीं पारस--तुमने सुनी हैं कहानियां--होता नहीं। पारस तो आध्यात्मिक प्रतीक है। पारस तो गुरु के पास होने का एक ढंग है। तब लोहे जैसी साधारण चीज भी सोने जैसे बहुमूल्य तत्व में रूपांतरित हो जाती है।
पासा पकड़ा प्रेम का, सारी किया सरीर। सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर।।
पासा पकड़ा प्रेम का--जुआरी खेलता है, पासे फेंकता है; कबीर कहते हैं कि
यह पासा प्रेम का है। हाथ में प्रेम का पासा ले लिया। सतगुरु दाव बताइया-- सतगुरु ने इशारा किया कि कहां दांव लगा दो, और कबीर दास खेले।
प्रेम हो तो ही सतगुरु दांव बता सकता है। प्रेम हो तो ही शिष्य दांव
को समझ सकता है। प्रेम के अतिरिक्त अध्यात्म में और दूसरी कोई समझ नहीं है। प्रेम हो तो ही क्रांति घटित हो सकती है। और शरीर चौपड़ है, क्योंकि शरीर में ही सारा काम करना है। ध्यान की सारी प्रक्रियाएं तुम्हारे अव्यवस्थित शरीर को व्यवस्थि करने के उपाय हैं, तुम्हारी शरीर की ऊर्जा को संतुलित करने की व्यवस्थाएं हैं। तुम्हारे शरीर का अगर ठीक-ठीक समायोजन हो जाए, तुम्हारे शरीर की वीणा अगर ठीक-ठीक कस जाए तो वह मधुर संगीत तुमसे उठने लगेगा, जिसका नाम आत्मा है। वह उठ ही रहा है; लेकिन तुम्हारी वीणा ठीक अवस्था में नहीं है। वह मौजूद ही है--सोया है; जगा लेने की जरूरत है।
वीणा रखी हो एक कोने में--संगीत सोया है; छेड़ दो तान, तार को हिला दो-- संगीत जाग गया! ऐसे ही तुम सोए हो--शरीर की वीणा के भीतर छिपे।
सारी किया सरीर--शरीर को चौपड़ बना लिया। पासा पकड़ा प्रेम का, सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर। और कबीर तो केवल दास हैंः जैसा गुरु कहते हैं, वैसा करता है; जो दांव बताते हैं, वैसे चलता है--जैसे गुरु का हाथ है।
दास का अर्थ होता हैः जिसकी अपनी कोई मर्जी नहीं। दास का अर्थ होता हैः समर्पण की आत्यंतिकता। दास का मतलब गुलाम नहीं होता। गुलाम तो वह है

जिसको जबर्दस्ती दास बना लिया गया हो। दास वह है जो अपनी मर्जी से गुलाम बन गया हो। फर्क भारी है। गुलाम तो वह है जिसको हमने जबर्दस्ती ठोक-पीटकर भयभीतर करके दास बना लिया है; डर के कारण जिसने सर झुका दिया है। लेकिन डर के कारण सिर भला झुक जाए, आत्मा कभी नहीं झुकती। भय से कहीं आत्मा झुकी है? तो गुलामा का सिर झुका है, भीतर घृणा भरी है; भीतर उबल रहा है बगावत के लिए; ऊपर-ऊपर है सब दिखावा; भीतर मौका मिल जाएगा तो मालिक की गर्दन काट लेगा। दुश्मन है मालिक। भय के कारण झुका है। भय के कारण झुको तो तुम गुलाम हो। अगर भय के कारण तुम्हारी प्रार्थना है तो गुलामी है। भय के कारण अगर तुम मंदिर में जाते हो तो मंदिर कारागृह है। भय के कारण अगर तुम गुरु के पास पहुंचते हो तो गुरु तुम्हारे लिए एक नई परतंत्रता बन जाएगा, एक जंजीर होगी।
भय से विपरीत है प्रेम। भय से बिल्कुल उलटा है प्रेम। प्रेम के कारण
जब कोई सपर्पित होता है, तो दास हो जाता है। दास का मतलब हैः स्वेच्छा से समर्पण, किसी दबाव में नहीं, किसी भय के कारण नहीं, आनंद में, अहोभाव में, एक महोत्सव में, अपनी पूर्ण मर्जी से, अपने समग्र संकल्प से समर्पण। और तब दासता में ऐसे फूल खिलते हैं कि मालकियत में भी नहीं खिल सकते; तब झुकने में ऐसी संपदा उपलब्ध होती है कि अकड़े हुओं को उसका कोई पता ही नहीं। कबीर कहते हैं, मैं तो दास हूं, और गुरु बता देता है, वैसी चाल देता हूं। प्रेम का पासा पकड़ा है।
इसे ठीक से समझो, क्योंकि ये दो दिशाएं हैंः प्रेम और भय। और अधिक लोगों का भगवान भय की ही उत्पिŸा है। तुम डरे हुए हो मौत से, चिंताओं से जीवन के संघर्ष से, टूटे, पराजित, हारे, तुम मंदिर में हाथ जोड़कर खड़े हो, घुटने टेके--लेकिन अगर भय से, तो तुम्हारा धर्म गुलामी है। और यह धर्म तुम्हें मोक्ष की तरफ न ले जाएगा। यह धर्म तो तुम्हें अंतिम गुलामी में गिरा देगा। लेकिन अगर तुम गए हो नाचते हुए मंदिर में, एक अहोभाव से, जीवन की प्रफुल्लता से, जीवन के वरदान के स्वाद से, देखकर कि इतना दिया है उसने, अकारण; जानकर कि जीवन दिया है उसने बिना मांगे; बहुत दिया है, जरूरत से ज्यादा दिया है--इस धन्यवाद से, इस अनुग्रह-भाव से तुम मंदिर में गए हो, नाचते, गीत गाते और झुक गए हो वहां तो तुम्हारे झुकने में ही तुम अपने परम शिखर को उपलब्ध हो जाओगे। उस झुकने में ही तुम गौरीशंकर हो जाओगे। वह झुकने की कला ही लाओत्से की पूरी कला है, जिसको वह ताओ कहता है। इस झुकने से बड़ा कुछ भी नहीं है जगत में। लेकिन यह स्मरण रहे कि वह हो प्रेम का झुकना। और बारीक फासला है, नाजुक। तुम समझो तो ही समझ पाओगे; बाहर से तो दोनों एक-से दिखाई पड़ते हैं।
मंदिर में दो लोग प्रार्थना कर रहे हैं; दोनों घुटने टेके खड़े हैं; दोनों की आंखों से आंसू बह रहे हैं--कैसे फर्क करोगे बाहर से? अगर तुम ले आओ एक चिकित्सक को, फिजियोलोजिस्ट को, शरीर शास्त्री को, उसे कहोः जांच करो। वे आंसुओं की जांच करेंगे, दोनों को एक-सा पाएंगे। क्योंकि प्रेम में बहे आंसू... चाहे भय में, आंसू तो एक ही होता है, उसकी केमिस्ट्री में फर्क नहीं पड़ता। उसके अध्यात्म में भेद होता है, लेकिन उसके रसायन में कोई भेद नहीं होता। कहां प्रेम के आंसू और कहां भय के आंसू! दोनों झुके हैं। दोनों के घुटने जमीन से लगे हैं। घुटने तो एक ही हैं। अगर तुम घुटनों की जांच-परख करोगे, कोई फर्क न पाओगे। लेकिन घुटनों के भीतर बड़ा भेद है, आकाश-जमीन का भेद है।
प्रेम से जो झुका है, वह सच में ही झुका है। प्रेम से घुटने ही नहीं झुक गए हैं, सारी आत्मा ही झुक गई है, सारा होना झुक गया है; उसका अहंकार विसर्जित हो गया है। भय से जो झुका है, उसका अहंकार भीतर खड़ा है। भय से जो झुका है, वह परमात्मा से भी बदला लेना चाहेगा। भय से जो झुका है, वह एक न एक दिन, अगर परमात्मा मिल जाए, तो उसकी पीठ में छुरा भोंक देगा।
ईसाइयत ने भय सिखाया पश्चिम में कि डरो। धार्मिक आदमी को कहते हैं-- गाड फीयरिंग, ईश्वर-भीरु। अब यह अधार्मिक आदमी का लक्षण है। ईसाइयत ने भय सिखाया, घबड़ा दिया लोगों को। उसका आखिरी परिणाम हुआ। नीत्से का वचन--पचास साल पहले, इस सदी के प्रारंभ में, उसने कहा, गॉड इज़ डेड। यह है छुरा भोंक देना छाती में कि ईश्वर मर चुका है, और आदमी अब स्वतंत्र है। यह जो नीत्से

का वचन है, यह दो हजार साल की ईसाइयत की शिक्षा का अंतिम परिणाम है, निष्कर्ष है।
भय से जो भगवान है, वह मित्र नहीं हो सकता; वह शत्रु हो सकता है। तुम उसके सामने कंप सकते हो, भयातुर; लेकिन तुम खिल न पाओगे, तुम फूल न बन सकोगे। और तुम्हारे जीवन की परम समाधि और परम सुवास उस भय से न उठ सकेगी। भय से तो सिर्फ दुर्गंध उठती है; सुवास तो प्रेम का ही अंग है।
इसलिए कबीर कहते हैं, पासा पकड़ा प्रेम का, सारी किया सरीर। सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर।।
कबीरा हरि के रुठते, गुरु के सरने जाए। कह कबीर गुरु रुठते, हरि नहिं होत सहाय।।
कबीर कहते हैं कि ईश्वर रूठ जाए। कोई फिक्र नहीं कि गुरु की शरण जा सकते हैं। ईश्वर के रूठने की कोई फिकर नहीं--गुरु की शरण जाया जा सकता है। लेकिन अगर गुरु रूठ जाए तो फिर क्या करोगे? फिर तो हरि भी सहाय नहीं हो सकता।
कारण है। कारण यह है कि तुम्हारे और परमात्मा के बीच खड़ा है गुरु, वह सेतु है। अगर गुरु रूठ जाए तो सेतु हट जाता है। तुम्हें तो परमात्मा की कोई खबर नहीं, सिर्फ शब्द तुमने सुना है। उसका कोई अता-पता भी नहीं। तुम जाओगे कहां उसकी सहायता लेने? तुम कैसे खोजोगे उसे? किससे पूछोगे? न तुम्हें शरीर की चौपड़ का कोई पता है; न प्रेम के पासे का तुम्हें कोई पता है। तुम कारागृह में बंद ही रहोगे, क्योंकि परमात्मा है बाहर का खुला आकाश। तुम कारागृह के अतिरिक्त खुले आकाश को जानते नहीं। तुम्हारा वही जीवन है। बीच का आदमी खो गया, तो परमात्मा सहायता भी करना चाहे तो भी नहीं कर सकता।
यह बड़ी मधुर बात कह रहे हैं। तुम्हारी सहायता तो वही आदमी कर सकता है
जो दोनों के बीच है; जिसका एक पैर परमात्मा में है--खुले आकाश में है--और एक पैर तुम्हारे कारागृह में जमा है। वही सेतु हो सकता है, जो आधा तुम जैसा है और आधा परमात्मा जैसा है।
हिंदुओं की धारणा है नरसिंह की--आधा पशु। पश्चिम नहीं समझ पाता कि यह क्या बात है? नरसिंह मुक्ति का उपाय है। कथा है कि प्र òाद का पिता मर नहीं सकता था; आशीर्वाद था उसे। उसने सब तरह की सुरक्षा कर ली थी। आशीर्वाद में उसने व्यवस्था कर ली थी कि मनुष्य न मार सकेगा, पशु न मार सकेगा। घर के भीतर कोई न मार सकेगा, घर के बाहर कोई न मार सकेगा। लेकिन कितनी ही व्यवस्था करो, जीवन कोई कानून नहीं है। और कानून तक में से रास्ता निकल आता है, तो जीवन में से तो निकल ही आएगा। और मृत्यु हो तो उसकी मुक्ति हो सकती थी। और कोई मुक्ति का उपाय नहीं। मरे बिना कोई मुक्त हुआ? तो परमात्मा को आधी देह पशु की, आधी देह मनुष्य की रखनी पड़ी और बीच द्वार पर, देहरी पर, प्र òाद के पिता की हत्या करनी पड़ी। यह बड़ा महत्वपूर्ण प्रतीक है।
गुरु नरसिंह है और तुम्हें मारेगा; क्योंकि बिना मारे तुम अमृत को उपलब्ध न हो सकोगे। सदगुरु मारया बाण--वह तुम्हें मिटाएगा, क्योंकि तुम्हारे मिटने में ही तुम्हारा असली आविर्भाव है। तुम्हारी राख से ही तो तुम्हारी परमात्म-अवस्था का जन्म होना है। बीज टूटेगा तो वृक्ष होगा। तुम बिखरोगे तो तुम आत्मा बनोगे। तो गुरु मारेगा। और देहरी पर ही मारे जा सकते हो तुम, क्योंकि देहरी से बाहर खुला आकाश है। वहां तुम जा नहीं सकतेः भय है। भीतर कारागृह हैं। मध्य द्वार पर जहां गुरु खड़ा है----।
गुरु यानी द्वार। जीसस बार-बार कहते हैं, आइ एम द गेट--मैं हूं द्वार।
वे इतना ही कह रहे हैं कि मैं वहां खड़ा हूं जो मध्य-बिंदु है, जहां से एक हाथ तुम तक भी पहुंचता है और दूसरा हाथ परमात्मा तक भी।
गुरु नरसिंह है। वह तुम्हें भी द्वार पर खींच लेगा, क्योंकि आधा वह तुम जैसा है--पशु; आधा वह परमात्मा जैसा है।
कह कबीर गुरु रुठते, हरि नहिं होत सहाय। उपाय ही खो गया। हरि हैं उस किनारे, तुम हो इस किनारे--बीच का सेतु गिर गया। और वह दूसरा किनारा बहुत दूर; गुरु के होते, बहुत पास। जैसे कभी तुमने अगर दूरबीन से तारा देखा हो तो एकदम पास; दूरबीन हट गई, तारा बहुत दूर। जब शिष्य गुरु से परमात्मा को

देखता है तो वह बहुत पास; और शिष्य गुरु को हटाकर देखता है तो इतना दूर कि सामर्थ्य खो जाए, यात्रा की हिम्मत ही टूट जाए।

कबिरा हिर के रुठते, गुरु के सरने जाए। कह कबीर गुरु रुठते, हरि नहिं होत सहाय।।

या तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान। सीस दीये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।।

यह शरीर तो मौत का घर है। विष की बेलरी। यहां तो सिवाय मौत के फल के और कोई फल लगता नहीं। फल से ही वृक्ष पहचाने जाते हैं। और जिस शरीर में मौत ही मौत के फल लगते हों, वह विष की बेलरी।

गुरु अमृत की खान--गुरु से पहली भनक आती है अमृत की। गुरु के पास बैठकर पहली दफा पगध्वनि सुनाई पड़ती है अमृत की। गुरु के पास पहली दफा उस संगीत का एकाध टुकड़ा तुम्हारी तरफ तैरता चला आता है जो अमृत से आता है, जहां कोई मृत्यु नहीं है।

या तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान। सीस दिए जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान।।

गर्दन भी चढ़ाकर मिल जाए गुरु तो महंगा मत समझना। क्योंकि गर्दन तो चढ़ ही जाएगी; आज नहीं कल मरघट पर चढ़ेगी। कोई ज्यादा कीमत भी गर्दन की है नहीं। सिर की क्या कीमत?

मैंने ऐसा सुना है कि एक सम्राट, जो भी कोई आता, उसको सिर झुकाकर नमस्कार करता था। वजीरों ने कहा, यह उचित नहीं--सम्राट और सिर झुकाए! तो सम्राट ने कहा, ठीक, कुछ समय बाद उŸ दूंगा। वजीरों ने कहा, उŸ अभी दे सकते हैं, अगर उŸ है। सम्राट ने कहा, उŸ तो है; लेकिन तुम जब तक तैयार नहीं तब तक उŸ न दे सकूंगा। प्रश्न पूछ लेना काफी नहीं है, उŸ के लिए उŸ को झेलने की तैयारी भी चाहिए। रुको--समय पर, ठीक जब समय पकेगा, उŸ दूंगा।

कुछ महीने बीत गए, बात भूल गई। बड़े वजीर को बुलाकर एक दिन सम्राट ने एक कारागृह के कैदी की, जिसको फांसी की सजा हो गई थी, उसकी गर्दन दी और कहा, बाजार में जाकर इसे बेच आओ। बड़ा वजीर भी भूल चुका था, थोड़ा हैरान भी हुआ। लेकिन जब सम्राट की आज्ञा है तो माननी पड़ेगी। वह गया बाजार में। जिस दुकान पर गया, वहीं लोगों ने कहा, भागो, हटो, यहां गंदगी मत करो। आदमी की खोपड़ी--इसका कोई मूल्य है? जहां गया वहीं दुत्कारा गया; जिससे कहा, उसी ने कहा, हटो यहां से। ले जाओ यहां से इस भयानक खोपड़ी को... खून टपकती... यहां किस लिए ले आए हो? और तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है? आदमी की खोपड़ी अगर बिकती होती तो लोग उसको जलाते कि मरघट में राख कर आते? बेच लेते लोग ऐसे धनलोलुप हैं कि अगर खोपड़ी बिकती होती और पत्नी मर जाती तो खोपड़ी बेच लेते। दूसरी शादी के काम आता पैसा। वह तो बिकता नहीं है। आदमी के शरीर में कुछ भी बेचने योग्य नहीं है, इसलिए आदमी को मरघट में जला आते हो। नहीं तो तुम निकाल लेते बेचने योग्य जो भी होता।

थका-मांदा सांझ वापस लौट आया। उसने कहा, कहां का काम बताया। जहां गया वहीं दुत्कारा गया। लोग नाराज हो जाते हैं, बात ही नहीं करते हैं। पैसे की तो बात ही नहीं उठती। मुफ्त भी लेने को कोई तैयार नहीं है। क्योंकि मैंने आखिर में यह भी कोशिश की, भई कुछ मत दो; ले लो। उन्होंने कहा, क्या करेंगे? इसको फेंकने की हमें झंझट करनी पड़ेगी, तुम्हीं अपना ले जाओ।

एक आदमी से तो--वजीर ने कहा, मैंने यह भी कहा कि भैया कुछ पैसा ले ले, क्योंकि सम्राप ने कहा है, बेच आओ। अब जो भी अपने ही जेब से जाएगा, लेकिन पैसा ले ले। तो भी वह बोला कि तुम मुझे क्या पागल समझे हो? हटो यहां से।

सम्राट ने कहा, तुम्हें ख्याल हैः तुम कहते थे, गर्दन मत झुकाओ, सिर मत झुकाओ? जिस खोपड़ी का कोई भी मूल्य नहीं उसको झुकाने के काम में ले आने दो। क्यों मुझे बाधा डालते हो। इतना उपयोग तो कर ही लेने दो, क्योंकि इसका कोई और उपयोग तो दिखाई नहीं पड़ता।

ऐसा हुआ कि एक मुसलमान फकीर डाकुओं द्वारा पकड़ लिया गया। उस फकीर का नाम था जलालुद्दीन रूमी। बड़ा अनूठा आदमी हुआ। डाकुओं ने पकड़ लिया। वे उसे बेचने ले चले। उन दिनों गुलाम बिकते थे। रास्ते में--जलालुद्दीन मस्त फकीर था, स्वस्थ शरीर था, जवान था; कोई भी खरीद लेता, अच्छे दाम मिलने कि

आशा थी--रास्ते मेंएक आदमी मिला। उसने कहा कि एक हजार दिनार देता हूं, एक हजार सोने के सिक्के, अगर यह आदमी बेचते हो। डाकू तो बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कभी सुना भी न था कि एक हजार एक गुलाम के मिल सकते हैं। वे तैयार हो गए। जलालुद्दीन ने कहा, रुको। यह तो कुछ भी नहीं है। तुम्हें मेरी कीमत का पता नहीं है। ज्यादा मिल सकते हैं। अभी असली कीमत को परखने वाले को आने दो। तो डाकू रुक गए। आगे चले। एक सम्राट गुजरता था। उसने भी फकीर को देखा। उसने कहा, मैं इसके दो हजार दिनार देता हूं। तब तो डाकुओं ने कहा, बात तो यह फकीर ठीक कहता है, उन्होंने पूछा जलालुद्दीन को कि क्या इरादा है? उसने कहा कि अभी भी नहीं।
फिर एक रईस गुजरता था। इसने तीन हजार दिनार भी कहे। फकीर से फिर उन्होंने पूछा। अब तो बहुत हो गई बात। उन्होंने कहा, तीन हजार कभी सुने नहीं। तो बेचने की तैयारी कर ली। जलालुद्दीन ने कहा, रुको, घाटे में रहोगे। बड़ा पशोपेश हुआ; सोचा कि बेच ही दे तीन हजार में, फिर कोई मिले न मिले। और इसका क्या भरोसा? लेकिन अब तक तो इसकी बात ठीक निकली है, शायद आगे भी ठीक हो।
तो वे रुक गए। आगे एक आदमी मिला--एक घसियारा, वह एक घास की टोकरी अपने सिर पर लिए जा रहा था--घास का बंडल। उस आदमी ने भी देखा कि इस फकीर को बेचने जा रहे हैं। उसने कहा, भाई, बेचते हो क्या? उन लोगों ने पूछा, तू क्या देगा? तेरे पास कुछ है? उसने कहा, घास की गठरी दे दूंगा। जलालुद्दीन ने कहा, दे दो। यह आदमी पहचानता है असली मूल्य। अब मत चूको, क्योंकि यही है कीमत इस देह की।
या तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान। सीस दिए जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान।।
अगर सब कुछ देकर भी गुरु मिल जाए तो भी सस्ता है, क्योंकि देने योग्य तुम्हारे पास है भी क्या? दोगे भी क्या? कुछ नहीं है, उसको भी देने में भयभीत हो। अगर कुछ होता तो न मालूम तुम क्या करते। नाकुछ के बदले सब कुछ देने को कोई तैयार है; तुम नाकुछ देने की भी हिम्मत नहीं जुटा पाते। मैं तुमसे मांगता ही क्या हूं? जो तुम्हारे पास नहीं है, वह दे दो। सुन लो मेरी बातः जो तुम्हारे पास नहीं है वे दे दो। और जो तुम्हारे पास है, वह मैं तुम्हें दे दूंगा। लेकिन जो तुम्हारे पास नहीं है, कभी नहीं था, सिर्फ वहम है कि तुम्हारे पास था, वह भी छोड़ने की हिम्मत नहीं जुटा पाते--तो फिर गुरु कभी भी न मिल सकेगा।
गुरु कोई बाहर की घटना थोड़े ही है, तुम्हारे भीतर की क्रांति हैं। तुम
जब सब देने को तैयार हो, तब गुरु हजारों मील दूर हो तो भी दौड़ा चला आएगा। आना ही पड़ेगा।
इजिप्त में वे कहते हैं कि जब शिष्य तैयार है, तो गुरु तत्क्षण मौजूद
हो जाता हैं। गुरु को खोजने जाने की भी जरूरत नहीं है; अगर तुम तैयार हो तो गुरु को आना पड़ेगा। लेकिन तैयारी चाहिए सब कुछ दे देने की। और कुछ है नहीं। और जो है उसका तुम्हें पता नहीं। और जिसे तुम समझते हो कि है, वह सिर्फ सपना है।
"कस्तूरी कुंडल बसै।"
आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
उन्नीसवां प्रवचन

प्रार्थना है उत्सव

सूत्र

सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद।।

सुमिरन सुरत लगाइके, मुख ते कछू न बोल।
बाहर के पट देइकै, अंतर के पट खोल।।

माला कर कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुआं तो दहुदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।।

जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय।
सुरत समान सब्द में, ताहि काल नहिं खाय।।

तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न हूं।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूं तित तूं।।

आनंद की खोज है। किसकी नहीं है? कौन है जो आनंद नहीं चाहता?
सत्य की भी खोज है। और ऐसा कौन है जो असत्य में न उठ जाना चाहे--अंधेरे
से प्रकाश में, संसार से परमात्मा में? नास्तिक भी वही चाहता है, चाहे उसे पता भी न हो। और जितने जोर से कोई नास्तिक कहता है कि मुझे ईश्वर में भरोसा नहीं, उतनी ही प्रगाढ़ता से बात साफ हो जाती है कि भीतर बड़ी खोज है ईश्वर की। उस खोज को दबाने का ही यह उपाय है--यह नास्तिकता। वह अपने को ही समझा रहा है कि जो है ही नहीं उसकी खोज पर क्या जाना; लेकिन भीतर कोई गहन चाह है जो धक्के मार रही है। उस चाह को ही वह दबा रहा है।
नास्तिकता आस्तिकता का दमन है। क्योंकि ऐसा तो कोई आदमी हो ही नहीं सकता जो आनंद न चाहे। और जिसने भी आनंद को खोजा, आखिर में वह पाता है कि उसकी खोज परमात्मा की खोज में बदल गई; क्योंकि परमात्मा के सिवाय और कोई आनंद नहीं। उससे कम पर तुम नाच न सकोगे। परमात्मा से कम पर तुम आनंदित न हो सकोगे। उससे कम के लिए तुम बने ही नहीं हो। वह परम ही प्रकट हो, वह परम ही तुम्हारे चारों ओर बरसने लगे--तभी संतृप्ति होगी, तभी परितोष होगा; तभी तुम्हारे घर के भीतर जो सतत रुदन चल रहा है, वह बंद होगा, आंसू सूखेंगे; तुम पहली बार हंसोगे; तुम्हारा पूरा अस्तित्व पहली बार खिल सकेगा--एक फूल की भांति!
इतनी खोज है! सभी की खोज है। लेकिन मिलन तो बहुत थोड़े-से लोगों का हो पाता है। अंगुलियों पर गिने जा सकें, ऐसे लोग उसके मंदिर में प्रवेश कर पाते हैं। मामला क्या है? इतने लोग खोजते हैं, सभी खोजते हैं--फिर यह खोज थोड़े-से लोगों की क्यों पूरी होती है? उसके कारण को ठीक से समझ लेना जरूरी है, क्योंकि वही कारण तुम्हें भी बाधा डालेगा। उसे अगर न समझा तो तुम खोजते भी रहोगे और पा भी न सकोगे। और वह कारण बड़ा सीधा-साफ है। लेकिन कई बार सीधी-साफ बातें दिखाई नहीं पड़तीं। कारण है कि लोग गलत मनोदशा में उसे खोजते हैंः दुख में तो उसकी याद करते हैं, और सुख में उसे भूल जाते हैं। बस यही सूत्र है--इतने लोग नहीं उसे उपलब्ध हो पाते--उसका।
दुख का स्वभाव परमात्मा के स्वभाव से बिल्कुल मेल नहीं खाता। दुख तो उससे ठीक विपरीत दशा है। वह है परम आनंद, सच्चिदानंद। दुख में तुम उसे खोजते हो। दुख का अर्थ है कि तुम पीठ उसकी तरफ किए हो, और खोज रहे हो। कैसे तुम उसे पा सकोगे? जैसे कोई सूरज की तरफ पीठ कर ले और फिर खोजने निकल जाए-- खोजे बहुत, चले बहुत लेकिन सूरज के दर्शन न हों; क्योंकि पहले ही पीठ कर ली।

दुख है परमात्मा की तरफ पीठ की अवस्था। दुख में तुम हो ही इसलिए कि तुमने पीठ कर रखी है। और उसी वक्त जब तुम्हारी पीठ परमात्मा की तरफ होती है, तभी तुम्हें उसकी याद आती है। जब तुम सुख में होते हो तब तुम उसे भूल जाते हो।
परमात्मा सुख भी नहीं है, दुख भी नहीं है; लेकिन परमात्मा से दुख बहुत दूर है, सुख थोड़ा निकट है। दुख है परमात्मा की तरफ पीठ करके खड़े होना, और सुख है परमात्मा की तरफ मुंह करके खड़े होना। जिन्होंने सुख में खोजा, उन्होंने पाया; जिन्होंने दुख में खोजा, वे भटके। दुख का तालमेल नहीं है परमात्मा से। वहां तुम रोते हुए न जा सकोगे। वह द्वार सदा रोती हुई आंखों के लिए बंद है। वहां रुदन का प्रवेश नहीं; नहीं तो अपने रोने को उसके प्राणों में भी गुंजा दोगे।
अस्तित्व के द्वार बंद हैं उनके लिए, जो दुखी हैं; अस्तित्व अपने द्वार खोलता है केवल उन्हीं के लिए जो नाचते, गीत गाते, गुनगुनाते आते हैं। अस्तित्व उत्सव है; वहां मरघटी सूरत लेकर नहीं जाया जा सकता। अस्तित्व परम जीवन है; वहां उदासी का कोई काम नहीं है।
लेकिन जब दुख आता है तब तुम याद करते हो। वह याद व्यर्थ हो जाती है। वही तो क्षण थे जब याद का कोई अर्थ ही नहीं है। लेकिन तुम्हारी भी तकलीफ मैं समझता हूंः दुख में तुम याद करते हो ताकि दुख हट जाए। वह भी परमात्मा की याद नहीं है, सुख की आकांक्षा है। जब तुम दुख में उसे पुकारते हो तो तुम उसे नहीं पुकारते, तुम सुख को पुकारते हो। तुम उसे पुकारते हो इसलिए ताकि सुख मिल जाए, यह दुख हटे। इसीलिए तो तुम सुख में नहीं पुकारते कि अब जरूरत ही क्या रही; जो पाना था वह मिल ही गया, अब परमात्मा की क्या जरूरत रही। इसलिए दुख में अगर तुम पुकारो तो तुम सुख की आकांक्षा करते हो। सुख की आकांक्षा से प्रार्थना का कोई संबंध नहीं। सुख में जब पुकारों तब परमात्मा की आकांक्षा करते हो; क्योंकि सुख तो था ही। सुख के लिए तो पुकार ही नहीं सकते थे--अब तो तुम परमात्मा को उसी के लिए पुकार रहे हो। और जब तुम उसी के लिए पुकारते हो, तभी सुनी जाती है प्रार्थना; उसके पहले नहीं सुनी जा सकती। सुख में जिसने पुकारा, उसका अर्थ हो गया कि उसे सुख काफी नहीं है; उसने समझ ली सुख की व्यर्थता, तभी तो पुकाराः उसने जान लिया कि सुख क्षणभंगुर है; अभी है, अभी गया; इसमें ज्यादा रमने की जरूरत नहीं, इसमें उलझने का कोई उर्थ नहीं। उसने सुख की व्यर्थता को जान लिया तभी तो पुकारा। दुख की व्यर्थता तो सभी जानते हैं; जो सुख की व्यर्थता जान लेता है वही संन्यस्त हो जाता है। दुख को तो सभी छोड़ना चाहते हैं; जो सुख को भी छोड़ने को तत्पर हो जाता है, उसकी ही प्रार्थना सुनी जाती है। अब वह प्रौढ़ हुआ।
दुख छोड़ने की बात तो बचकानी है। कांटा गड़ जाए--कौन है जो उसे नहीं निकाल देना चाहता? लेकिन जब फूल गड़ता है, जब तुम फूल को भी निकालकर फेंक देने को तत्पर हो जाओ... । और फूल भी गड़ता है। कांटे तो गड़ते ही हैं, फूल भी गड़ता है। लेकिन फूल की गड़न को जानने के लिए बड़ी संवेदनशील चेतना चाहिए। फूल की चुभन को जानने के लिए बड़ा होश चाहिए। कांटा गड़ता है तो नींद में पड़े आदमी को भी पता चलता है; शराब पिये आदमी को भी पता चलता है। फूल गड़ता है, यह तो तभी पता चलेगा, जब तुमने ध्यान के मार्ग पर दो चार कदम उठाए हों, और तुम संवेदनशील बने होओ, और तुमने जीवन को जागकर देखना शुरू किया हो, थोड़ा होश आया हो--तब तुम पाओगे कि फूल भी गड़ता है। तब जो प्रार्थना उठेगी, वही प्रार्थना पहुंचती है उसके द्वार तक। और इस प्रार्थना में रुदन नहीं होगा। इस प्रार्थना में आंखों में आंसू नहीं होंगे। इस प्रार्थना में सुख की मांग नहीं होगी। यह प्रार्थना भिखारी की प्रार्थना नहीं होगी। यह प्रार्थना सम्राट की प्रार्थना होगी; क्योंकि अब जिसे सुख की भी आकांक्षा न रही। वही सम्राट है।
भिखारी लौटा दिए जाते हैं।
रहीम ने कहा है, बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न चून। वह इसी घड़ी
के लिए कहा है कि परमात्मा के द्वार पर जो बिना मांगे खड़ा हो जाता है, उसे तो सब मिल जाता है, मोती बरस जाते हैं; और जो भिखारी की तरह खड़ा होता है, उसे

दो रोटी के टुकड़े भी नहीं मिलते। असल में भिखारियों की अस्तित्व में कोई जगह नहीं है; वहां तो जगह केवल सम्राटों की है।
इसलिए तो सारे ज्ञानियों ने कहा है, तुम इच्छारहित हो जाओ, तुम मांगो मत, तुम जरा रुको, मांगो मत--और देखो कि कितना मिलता है! मांग-मांगकर ही तुम गंवाए जा रहे हो। जितना तुम मांगते हो उतना कम मिलता है; जितना कम मिलता है उतनी तुम्हारी मांग बढ़ती जाती है; उतना ही और कम मिलता जाता है। जिस दिन मांग पूरी हो जाती है, मिलना बंद हो जाता है। उस दिन तुम परम दीन हो जाते हो।
इससे उलटी है यात्रा।
मांगो कम, मिलता ज्यादा। बिन मांगे मोती मिलें। और जिस दिन तुम्हें
यह सूत्र समझ में आ जाता है, उस दिन प्रार्थना में मांग खो जाती है; प्रार्थना हृदय का उच्छ्वास हो जाती है। उसमें कुछ मांग नहीं होती।
दुखी आदमी तो बिना मांगे कैसे प्रार्थना करेगा?
दुख के स्वभाव को थोड़ा समझ लें।
दुख का पहला लक्षण है कि दुख आदमी को सिकोड़ता है। तुमने भी अनुभव किया होगाः जब तुम दुखी होते हो तो सब सिकुड़ जाता है--जैसे प्राण सिकुड़ गए--जम गया पत्थर की तरह सब कुछ। जब तुम दुख में होते हो तो तुम चाहते हो कि एक कोने में छिप जाओ; कोई तुम्हें मिले न, कोई तुमसे बोले न।
इसीलिए तो बहुत दुख की अवस्था में लोग आत्मघात कर लेते हैं। आत्मघात
का मतलब इतना ही है कि वे कब्र में छिप जाना चहते हैं; अब कोई उपाय नहीं देना चाहते कि कोई दूसरा उनसे मिले; अब जीवन से बिल्कुल टूट जाना चाहते हैं।
दुख सिकोड़ता है। दुख बंद करता है। दुख चाहता है कि अंधेरे में डूब जाओ। दुख आत्मघात सिखाता है। और परमात्मा है विस्तार और दुख है सिकुड़ना-- उनका तालमेल नहीं। परमात्मा का अर्थ हैः यह जो फैला हुआ है सब ओर; यह जो अनंत तक फैलता चला गया है; जिसकी कोई सीमा नहीं; जिसके कण-कण में पद-चिह्न हैं, और प Ÿा-प Ÿा पर जिसकी छाप है। लेकिन तुम उसकी सीमा न पा सकोगे, जो सब तरफ फैलता ही चला गया है।
परमात्मा का स्वभाव विस्तार है। हिंदुओं ने जो शब्द परमात्मा के लिए चुना है--वह हैः ब्रह्म। ब्रह्म का अर्थ होता हैः विस्तीर्ण; जो फैलता ही चला गया है। और दुख सिकोड़ता है; और परमात्मा है फैलाव। तुम विपरीत हो गए, तुम मेल न खा सकोगे।
सुख फैलता है। सुख में तुम थोड़े फैलते हो। सुख में तुम दूसरे से मिलना चाहते हो; भोज देते हो मित्रों को, प्रियजनों को, और परिवार को निकट बुलाते हो; हंसते हो, गाते हो; मिलते हो, जुलते हो। सुखी आदमी अपने सुख को बांटना चाहता है, क्योंकि सुख अकेले नहीं भोगा जा सकता। दुख अकेले भोगा जा सकता है। उसके लिए दूसरे की जरूरत ही नहीं है। दुख बिल्कुल निजी है। सुख फैलाव मांगता है, और भी प्राण मांगता है आसपास, जिनमें इस सुख का प्रतिबिंब बने, झलक उठे। सुख फैले। इसलिए सुख सदा बंटता है, बंटना चाहता है। सुख में तुम्हारे प्राण थोड़ा-सा आयाम लेते हैं; तुम थोड़े-से फैलते हो।
यह थोड़ा-सा फैलना प्रार्थना का क्षण बन सकता है; क्योंकि अभी तुम परमात्मा जैसे हो--बड़े छोटे अर्थों में! अगर वह विराट है--सागर, तो तुम एक छोटी बूंद हो। लेकिन अभी तुम्हारा स्वभाव, गुणधर्म एक जैसा हैः तुम भी फैल रहे हो, परमात्मा भी फैल रहा है। अभी तुम एक कदम उसके साथ चल सकते हो; और जो एक कदम उसके साथ चल लिया, वह फिर कभी वापस नहीं लौटता। उसके साथ एक कदम चल लेना इतनी परिपूर्ण तृप्ति है, ऐसे अपरिसीम धन की उपलब्धि है कि फिर कौन पीछे लौटता है, फिर कौन देखता है।
एक कदम उठ जाए, मंजिल आधी पूरी हो गई। एक कदम उठ जाना ही काफी है। स्वाद आ गया। फिर तो तुम फैलते ही चले जाओगे। फिर तुम भूल ही जाओगे सिकुड़ना। फिर हजार सिकुड़ने की स्थितियां खड़ी हो जाएं, तुम छलांग लगाकर बाहर हो जाओगे। तुम कहोगे, मैं सिर्फ फैलना जानता हूं, मैंने फैलने का रस ले लिया है; अब मैं वह पागल नहीं जो सिकुड़े, कि कोई गाली दे और मैं दुखी होकर सिकुड़ जाऊं। अब सिकुड़ना मैं चाहता ही नहीं। अब तुम कुछ भी करो, तुम

मुझे सिकोड़ न सकोगे। अब तुम गाली दोगे, मैं धन्यवाद देकर फैलकर आगे बढ़ जाऊंगा।
जिसने एक बार स्वाद ले लिया परमात्मा के साथ एक कदम चलने का, वही जानता है, प्रार्थना क्या है। वह एक कदम चलना सुख में हो सकता है। यह तुम्हें बहुत जटिल लगेगा। मगर इसी कारण तुम चूक रहे हो। तुम दुख में पुकारते हो--तब तुम्हारा कदम उठने को तैयार ही नहीं, पक्षाघात से भरा है; तब तुम चलने की कोशिश करते हो। और जब तुम्हारे प्राणों में जोश है और जब तुम्हारे पैर में ऊर्जा है, और जब तुम नाच सकते हो, दौड़ सकते हो--तब तुम भूल ही जाते हो कि यह वक्त था जब मैं परमात्मा के साथ हो लेता। सुख में विस्मरण हो जाता है। दुख में याद होती है--इसलिए तालमेल नहीं बैठता; तुम चूकते चले जाते हो।
दुख का स्वभाव अंधेरा है। आनंद का स्वभाव प्रकाश है, परम प्रकाश है। अंधेरे से उठी प्रार्थना प्रकाश के लोकों तक नहीं पहुंच सकती, अंधेरे में ही भटकती है। अंधेरे से उठी प्रार्थना भी अंधेरी होती है; वह रोशनी के जगत में प्रवेश नहीं कर सकती।
तुमने कभी अंधेरे के टुकड़े की रोशनी में प्रवेश करते देखा है कि तुम
घर में बैठे हो, दीया जला है, सब रोशन है, और देखा है कि खिड़की से एक अंधेरे का टुकड़ा भीतर चला आ रहा है? कभी ऐसा तुमने देखा है कि एक छोटी बदली जैसा अंधेरे का टुकड़ा आ गया घर में?
रोशनी आ सकती है अंधेरे में; अंधेरा रोशनी में नहीं जा सकता। तुम घर में बैठे हो अंधेरे मेंः यह हो सकता है, राह से गुजरता राहगीर लालटेन लिए हो तो उसकी रोशनी तुम्हारे कमरे में आ जाएगी, तैर जाएगी। लेकिन अंधेरा प्रकाश में नहीं आ सकता। रोशनी प्रकाश में जा सकती है।
तो यह तो हो सकता है कि परमात्मा तुममें आ जाए, जब तुम अंधेरे से भरे हो; लेकिन यह नहीं हो सकता कि अंधेरे में उठी प्रार्थना परमात्मा में चली जाए। और जब तुम अंधेरे में हो और दुख में हो, परमात्मा आ जाए तो तुम उसे पहचान न सकोगे। वह आता भी है, लेकिन दुख में भरी आंखें सब तरफ अंधेरा देखता हैं और रोशनी को पहचान नहीं सकतीं। वे मान ही नहीं सकतीं।
बहुत बार इस पृथ्वी पर परमात्मा चला है, बहुत रूपों में चला हैः कभी बुद्ध, कभी कृष्ण, कभी क्राइस्ट के रूप में। उसने तुम्हारे द्वार पर दस्तक भी दी है, लेकिन तुम पहचान नहीं पाए; तुमने हजार बहाने खोज लिए हैं अपने अंधेरे में, और तुमने अपने को समझा लिया है कि यह भी हमारे जैसा ही आदमी है--होगा थोड़ा ज्यादा समझदार! वह भी बड़ी मुश्किल से तुमने उतनी स्वीकृति दी है।
प्रकाश अंधेरे में आए भी तो तुम आंख बंद कर लेते हो। तुम अंधेरे के आदी हो। और दूसरी बात तो हो ही नहीं सकती कि अंधेरे में उठी प्रार्थना, और प्रकाश के लोक में प्रवेश कर जाए। जो अंधेरे से उठता है, अंधेरे का स्वभाव है उसमें।
जब तुम सुख में मग्न हो, जब तुम सुख में ऐसे मगन हो कि तुम बांटना चाहते हो, उसी क्षण अगर तुमने प्रार्थना की तो सुख का स्वभाव परम प्रकाश का तो नहीं है; वह कोई महासूर्य नहीं है सुख; छोटा मिट्टी का दीया है--लेकिन मिट्टी के दीये में भी ज्योति जलती है, उसका स्वभाव तो सूरज का ही है। इसीलिए तो सुख की इतनी आकांक्षा है। सुख की आकांक्षा में वस्तुतः आनंद की आकांक्षा छिपी है। किसी दिन तुम खोज लोगे कि सुख की आकांक्षा में वास्तविक आकांक्षा क्या है। इसलिए तो तुम सुख को रोकना चाहते हो। वह तो क्षणभंगुर है। मिट्टी का दीया कितनी देर चलेगा। ज्योति तो बुझेगी, तेल तो चुकेगा। इसलिए तो तुम सुख को जोर से पकड़ते हो कि खो न जाए; शाश्वत हो जाए सुख। सुख शाश्वत नहीं हो सकता; यद्यपि शाश्वत सुख भी है। लेकिन तुम्हारी आकांक्षा साफ है कि तुम सुख को शाश्वत बनाना चाहते हो। तुम समझ नहीं पा रहे हो--तुम आनंद की तलाश में हो।
आनंद शाश्वत सुख है। सुख आनंद की एक झलक है--इस लोक में उतरी।
ऐसा समझो कि आकाश में चांद है, और झील के पानी पर उसका प्रतिबिंब बनता है--बस ऐसा ही आकाश में आनंद भरा है और तुम्हारे मन की तरंगों से भरी झील पर उसका प्रतिबिंब बनता है--वह सुख है। और जब वह भी खो जाता है--प्रतिबिंब भी

खो जाता है--तब दुख है। जब प्रतिबिंब बन रहा है तब तो तुम असली चांद की तलाश में निकल सकते हो, क्योंकि तुम्हारे बीच और असली चांद के बीच थोड़ा-सा नाता है--प्रतिबिंब का ही सही। बहुत सपनीला है; जरा-सा कोई हिला दे झील को, मिट जाएगा। लेकिन अगर झील शांत हो तो तुम अपने बनते प्रतिबिंब की राह से ही असली चांद तक भी पहुंच सकते हो।
सुख झलक है परमात्मा की संसार में। दुख उसका अभाव है। जब उसकी झलक है, तभी पुकार लेना, तब वह करीब है, तब कहीं आसपास है। झलक झूठी है; लेकिन जिसकी झलक है, वह सच है। जब झलक से तुम भरे हो, तब सब काम छोड़कर प्रार्थना में लीन हो जाना। यही बड़ी कठिनाई हैः सुख में तो जरूरत ही मालूम नहीं पड़ती।
एक मां अपने छोटे बेटे को कह रही थी कि मैं दो दिन से देख रही हूं कि तूने रात की प्रार्थना नहीं की, परमात्मा को धन्यवाद नहीं दिया। समझाने के लिए उसने कहा, कि देख इस गांव में गरीब बच्चे हैं जिनको दो जून रोटी भी नहीं मिलती, कपड़े फटे-चीथड़े पहने हुए हैं। तुझे भगवान ने सब कुछ दिया है। धन्यवाद देना जरूरी है। उस लड़के ने सिर हिलाया। उसने कहा कि यही तो मैं सोचता हूं। तो प्रार्थना उनको करनी चाहिए कि मुझको? जिनको न रोटी है, न कपड़े हैं, मैं किसलिए प्रार्थना करूं? सब मिला ही हुआ है और बिना ही प्रार्थना किए हुए मिला हुआ है--तो मुझे क्यों झंझट में डालना? प्रार्थना उनको करनी चाहिए जिनको कुछ नहीं मिला है।
यह बच्चा तुम्हारे सबके मन की बात कह रहा है। यही तुम कह रहे हो। जब तुम दुख में हो, तब प्रार्थना; जब तुम सुख में हो तब क्या जरूरत है। इसलिए सुख में आदमी सहज ही भूल जाता है। जब मौका था नाव को छोड़ देने का सागर में, तब तो तुम भूल जाते हो और जब मौका बिल्कुल नहीं था सागर में नाव को छोड़ने का--तूफान था सागर में, ज्वार उठा था, भयंकर आंधी चलती थी और हवाएं प्रतिकूल थीं--तब तुम अपनी छोटी-सी नाव को लेकर सागर के किनारे पहुंचते हो। तुमने डूबने की तैयारी ही कर ली। और जब सागर में अनुकूल हवा थी कि पतवार भी न चलानी पड़ती, सिर्फ पाल तान देते, और सागर की हवा ही तुम्हें ले जाती, डूबने का कोई खतरा न था, न तूफान था न आंधी थी, सागर में छोटी-छोटी लहरें थीं, जिनमें बड़ा निमंत्रण था--तब तुम भूल ही जाते हो कि यात्रा पर निकलना है।
तुम गलत मौका चुनते हो, इसलिए परमात्मा से चूके हुए हो। जब आदमी बीमार होता, अस्वस्थ होता, तब वह प्रार्थना करता है। बीमारी में परमात्मा की याद कठिन है। हां, जिसने जान लिया, उसको तो हर घड़ी संभव है; उसको तो उसकी याद ही है, और कुछ याद नहीं रह जाता। लेकिन जो यात्रा पर निकल रहा है, उसको बीमारी में परमात्मा की याद करनी कठिन है। क्योंकि जब शरीर रुग्ण होता है तो शरीर ही ध्यान को आकर्षित करता है। सिर में दर्द हो तो सिर का दर्द ही याद आता है। उस वक्त तुम कितना ही राम-राम जपो, हर राम के पीछे सिरदर्द होगा, दो राम के बीच में सिरदर्द होगा, आगे-पीछे सब तरफ सिरदर्द होगा। और राम-राम जपने से और सिरदर्द बढ़ेगा, जब शरीर रुग्ण है तब शरीर मांगता है सारा ध्यान। उस समय तुम प्रार्थना करने बैठे हो। जब शरीर स्वस्थ है तब शरीर भूला जा सकता है। स्वास्थ्य की परिभाषा ही यही है। जिन क्षणों में तुम शरीर को बिल्कुल भूल सको, वही स्वास्थ्य का क्षण है; क्योंकि जब भी शरीर बीमार होगा तो तुम पूरा नहीं भूल सकते। जहां बीमारी है, वहां शरीर तुमको चाट मारता रहेगा। सिर में दर्द है तो वह याद दिलाता रहेगा। और यह स्वाभाविक है, नहीं तो सिरदर्द को तुम मिटाओगे कैसे? शरीर कहता है, यहां तकलीफ है, इसको मिटाओ। वह सूचन कर रहा है। वह खबर भेज रहा है कि सिर में तकलीफ है, यह पहले जरूरी है, इसको मिटाओ; प्रार्थना वगैरह पीछे कर लेना; अभी अस्पताल जाओ, यह वक्त मंदिर जाने का नहीं है। वह यह कह रहा है कि शरीर बड़ी तकलीफ में है।
और शरीर तुम्हारा आधार है। अगर उसकी याद भूल जाए तो शरीर सड़ ही जाएगा।
तो शरीर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करता है। इसलिए समस्त साधना-पद्धतियां चाहती हैं कि तुम पहले स्वस्थ हो जाओ। लेकिन जैसे तुम स्वस्थ होते हो, वैसे ही तुम प्रार्थना को एक तरफ रख देते हो। तब दूसरे ज्यादा जरूरी काम तुम्हें करने जैसे मालूम पड़ते हैं। असल में जब तुम स्वस्थ होते हो, तब तुम शरीर को भोगना चाहते हो। तब कौन प्रार्थना करे! जब रुग्ण होते हो, जब तुम शरीर को भोग नहीं सकते, तब तुम प्रार्थना करते हो। तब प्रार्थना हो नहीं

सकती। जब स्वस्थ होते हो तब तुम कहते हो, कर लेंगे प्रार्थना। अभी कोई जल्दी है? अभी तो जवान हैं। आने दो बुढ़ापा, कर लेंगे प्रार्थना। अभी कौन समय खराब करे! अभी जिंदगी हरी-भरी है। अभी सब तरफ निमंत्रण है। अभी बहुत कुछ भोगने को है।
उमरखैयाम ने लिखा है कि सुबह-सुबह मैंने जाकर मधुशाला के द्वार पर दस्तक दी। भीतर से आवाज आई, अभी मधुशाला खुलने का समय नहीं है। तो मैंने कहा, सुनो समय-असमय की बात नहीं, सूरज निकल चुका है, सांझ होने में देर कितनी लगेगी; थोड़ा ही समय हाथ में है; जितना पी सकूं, पी लेने दो।
जब तुम स्वस्थ हो, तब लगता है थोड़ा ही समय हाथ में है, जल्दी ही सांझ हो जाएगी। तब तुम मधुशाला की तरफ दौड़ते हो। जब तुम दौड़ नहीं सकते, पंगु हो, बिस्तर पर पड़े हो, जब कुछ और करने को नहीं सूझता, तब तुम प्रार्थना करते हो। प्रार्थना ऐसी मालूम पड़ती है कि तुम्हारे जीवन-व्यवस्था की फेहरिश्त पर आखिरी चीज है। जब कुछ करने को नहीं होता, तब तुम प्रार्थना करते हो। तुम किसे धोखा दे रहे हो?
प्रार्थना तुम्हारी फेहरिश्त पर जब प्रथम होगी तभी सुनी जा सकेगी। वस्तुतः तो प्रार्थना ही जब अकेली तुम्हारी फेहरिश्त हो जाएगी, जब प्रार्थना ही तुम्हारा भोग, जब प्रार्थना ही तुम्हारा प्रेम, जब प्रार्थना ही तुम्हारा धन, जब प्रार्थना ही तुम्हारा पद, तुम्हारी प्रतिस्रा होगी, जब प्रार्थना ही सर्वस्व होगी, तभी सुनी जा सकेगी। जब पूरे प्राणपण से एक लपट की भांति प्रार्थना उठेगी, तभी वह ज्योति परमात्मा के चरणों तक पहुंच पाती है।
लेकिन जब तुम दीन-हीन होते हो, रुग्ण, अस्वस्थ, अस्पताल में पड़े, टांग-हाथ बंधे, तब तुम प्रार्थना करते हो। तुम्हें प्रार्थना के लिए और कोई समय नहीं मिलता। जब तुम बूढ़े हो जाते हो, जीवन चुक जाता है, हाथ से समय खो गया होता है, सब अवसर तुमने मिट्टी कर दिए, जब जीवन की आखिरी घड़ी आने लगी और मौत की पगध्वनि सुनाई पड़ने लगी--तब तुम भयभीत, भय-कातर, प्रार्थना में संलग्न हो जाते हो।
नहीं, अस्वस्थ दशा में प्रार्थनानहीं हो सकती। प्रार्थना के लिए एक आधारभूत स्वास्थ्य की जरूरत है। यह तो ऐसे ही है जैसे कि किसी वृक्ष को पानी न मिले, जमीन सूख गई हो, धूप भयंकर पड़ती हो, वृक्ष का तन-प्राण कुम्हला गया हो--और तब वृक्ष फूलों को लाने की कोशिश करे। कैसे फूल आएंगे? फूल तो वृक्ष के स्वास्थ्य से उत्पन्न होते हैं। फूल तो वृक्ष के भीतर के स्वास्थ्य की खबर हैं। फूल तो वृक्ष का अपरिसीम दान है--आनंद का। फूल तो यह कह रहे हैं कि वृक्ष अब इतना भर गया है ऊर्जा से कि बांटने को तत्पर है। और वृक्ष के पास अब इतना है कि वह देगा। वह अपनी सुवास से अपने को बांटेगा। अनजान-अपरिचित हवाएं ले जाएं अब उसकी वास को, पहुंचा दें दूर-दिगंत तक! वृक्ष में जैसे फूल हैं वैसे ही जीवन में प्रार्थना है। जब तुम भरे- पूरे हो, जब सब तरफ ऊर्जा प्रवाहित होती है, जब सब तरफ भीतर युवापन होता है--तभी जीवन के फूल, तभी प्रार्थना के फूल संभव होते हैं।
लेकिन तुम उलटे क्षण चुनते हो।
ध्यान कोई थैरेपी या चिकित्सा नहीं है। चिकित्सा के लिए अस्पताल है, मंदिर नहीं। चिकित्सा के लिए डॉक्टर है, गुरु नहीं। गुरु के पास तो तुम परिपूर्ण स्वस्थ होकर आना, तो वह तुम्हें अनंत की यात्रा पर सरलता से ले जा सकेगा। लेकिन तुम गुरु के पास ऐसे आते हो, जैसे वह कोई डॉक्टर हो।
मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, बीस साल से मिर्गी आती है, वह मिटती नहीं। उसके लिए डॉक्टर है, उसके लिए अस्पताल है। यहां मैं मिर्गी ठीक करने को नहीं हूं। और मिर्गी ठीक हो जाएगी, फिर करोगे क्या? जिनकी ठीक है, वे क्या कर रहे हैं? वही करोगे न? मिर्गी में खुद ही उलझे हो, मिर्गी ठीक होगी तो दस-पांच को और उलझा दोगे। और क्या करोगे?
जीसस के जीवन में उल्लेख है कि जीसस एक गांव में आए, और उन्होंने एक आदमी को, युवा आदमी को, सुंदर आदमी को एक वेश्या के पीछे भागते देखा। वे पहचान गए उस आदमी को, क्योंकि वह आदमी पहले अंधा था और जीसस ने ही हाथ से छूकर उसकी आंखें ठीक की थीं। तो उसे पकड़ा और कहा कि नासमझ, क्या मैंने तुझे आंखें इसलिए दी थीं कि तू वेश्याओं का पीदा कर? उस आदमी ने बड़े क्रोध से

जीसस की तरफ देखा और कहा, आंखों का उपयोग ही क्या है? यह तो तुम्हें देने के पहले ही सोच लेना था। आखिर आंख मैं चाहता किसलिए था?--इसलिए कि रूप देखूं। अब आंख देकर शिकायत कर रहे हैं?
जीसस को उसने चौंका दिया होगा। उन्होंने सोचा था कि शायद आंख देने से आंख परमात्मा की तरफ उठेगी। लेकिन बहुत आंख वाले हैं; किसकी आंख परमात्मा की तरफ उठ रही है? अंधा जब तक था, तब तक शायद वह प्रार्थना करता रहा हो, और परमात्मा की स्तुति गाता रहा हो; जब आंख मिल गई तो आदमी वेश्या की तरफ जाता है। आदमी बहुत अदभुत है।
वे गांव के भीतर घुसे। उन्होंने एक शराबघर के बाहर, एक शराबी को बड़ा उत्पात मचाते देखा, शोरगुल मचा रहा है, अनाप-शनाप गालियां बक रहा है, मुंह से फसूकर गिर रहा है। वे उसको भी पहचान गए। उन्होंने कहा, अरे मेरे भाई, तू तो बिस्तर पर पड़ा था, हड्डी-हड्डी हो गया था--भूल गया। उस आदमी ने भी गौर से जीसस को देखा और कहा, हां ठीक, मैं पहचानता हूं। तुम्हीं ने मुसीबत खड़ी की। मैं तो अपनी शांति से अपने बिस्तर पर पड़ा था। अब तुमने मुझे स्वस्थ कर दिया; अब स्वास्थ्य का क्या करूं?
स्वास्थ्य हो तो आदमी शराब-घर जाता है, बीमार हो तो सदगुरु की तलाश करता है। जीसस उदास होकर गांव के बाहर निकल गए। अपने ही किए पर पछतावा होने लगा होगा कि, यह मैंने क्या किया! मैं तो सोचता था कि स्वस्थ आदमी पूजा-प्रार्थना में लीन होगा; और वह मुझ पर नाराज हो रहा है कि अब क्या करूं।
गांव के बाहर जाते थे तो उन्होंने एक आदमी को देखा, जो एक वृक्ष से फंदा लगाकर अपनी फांसी लगाने की कोशिश कर रहा था। उन्होंने उसे रोका कि रुको, यह क्या कर रहे हो? जब वह पास आया तो देखा यह भी पुराने परिचितों में से था। यह आदमी मर चुका था, जीसस ने इसको जिंदा किया था। उस आदमी ने कहा, तुम मेरे दुश्मन हो, मित्र नहीं। मैं तो मर गया था, तो शांति हो गई थी; तुमने मुझे मरे से उठा दिया। और यह उपद्रव इतना ज्यादा है कि मैं अब जीना नहीं चाहता। तो मैं मरने का इंतजाम कर रहा हूं। और जो भूल मेरे साथ की, दूसरे के साथ मत करना। जो मर जाए, उसको मर ही जाने देना।
क्योंकि जिंदगी इतना उत्पात है आखिर जीवन का करोगे भी क्या? इसे थोड़ा समझ लेना, क्योंकि अनेकों को ऐसी भ्रांति है कि सदगुरु कोई चिकित्सक है। है चिकित्सक, लेकिन बीमारियों की चिकित्सा नहीं करता, स्वस्थों की चिकित्सा करता है। वह चिकित्सा स्वस्थ आदमी की है, बीमार की नहीं। बीमार के लिए तो दूसरे लोग हैं, वे कर लेते हैं। उसके लिए झंझट में पड़ने की सदगुरु को कोई जरूरत नहीं है। सदगुरु तो स्वस्थ की चिकित्सा करता है; क्योंकि एक और महास्वास्थ्य है, एक और महाजीवन है--जो, जब तुम स्वस्थ हो, तभी उसी यात्रा पर निकल सकोगे। लेकिन अगर तुम स्वस्थ हो जाओ तो तुम सदगुरु के पास आते ही नहीं।
मेरे पास लोग आते हैंः बीमार हैं या अशांत हैं--शरीर से बीमार हैं या
मन के बीमार हैं। वे कहते हैं, बड़ी अशांति है, कोई मार्ग बताइए। जब चिŸा तुम्हारा अशांत है, तब तो ध्यान करना बहुत मुश्किल होगा। तुम करीब-करीब विक्षिप्त दशा में हो। तुम्हारी अवस्था ऐसी नहीं है कि मैं तुमसे कहूं कि तुम पांच क्षण के लिए शांत बैठ जाओ तो तुम बैठ सको। मैं पूछता हूं, जब शांत थे, तब क्यों न आए? वे कहते हैं, जब शांत थे तब जरूरत ही क्या थी? अशांत हैं, इसलिए आए हैं।
इस बात का बहुत मूल्य है। स्मरण रखना जरूरी है, क्योंकि जितने शांत तुम मेरे पास आओगे, उतनी आसानी से काम हो सकेगा। नहीं तो मेरी ऊर्जा और तुम्हारी ऊर्जा पहले तो तुम्हें शांत करने में लगती है। व्यर्थ समय तो उसमें जाता है। और यह भी पक्का नहीं है कि शांत होने के बाद तुम टिकोगे। शांत होकर तुम भागोगे बाजार में, क्योंकि शांति तुम इसलिए चाहते हो कि जरा मन शांत रहे तो धन थोड़ा और कमा लें; जरा मन शांत रहे तो आनेवाला इलैक्शन लड़ लें। अब मन इतना अशांत है कि कहां जाएं, क्या करें--मुसीबत है!
मन की शांति तुम चाहते इसलिए हो कि संसार में थोड़ी सफलता और मिल जाए?
और संसार के कारण ही अशांति हो रही है। और शांति भी तुम इसीलिए चाहते हो कि

संसार में और थोड़ी सफलता मिल जाए। अगर तुम शांत हो भी गए तो तुम उस शांति को नई अशांति को पाने में ही लगाओगे, और करोगे भी क्या?
इसलिए मेरी कोई उत्सुकता नहीं है कि तुम शांत हो जाओ। मेरी उत्सुकता
तो इसमें है कि तुम ठीक से समझ लो कि तुम्हारी अशांति के कारण क्या हैं? और तुम कारणों को छोड़ दो। शांत होने की फिक्र मत करो; जड़ को पकड़ लो कि अशांत होने के कारण क्या हैं।
कारण हैं मह Ÿ वाकांक्षा... कि बहुत धन इकट्ठा कर लें; कि बहुत बड़े पद पर हो जाएं; कि जिंदगी में लोगों को करके दिखा दें कि कुछ हैं; कि इतिहास में नाम छूट जाए। यह तो तुम्हें अशांत कर रही है बात। अगर तुम सामान्य जीवन के लिए राजी हो जाओ, तो अशांति की जरूरत क्या है? रोटी तुम कमा लेते हो। दिल्ली दिक्कत दे रही है! दिल्ली पहुंचना है। बिस्तर तुम्हारे पास सोने का है, नींद तुम्हें ठीक आ सकती है; लेकिन बिस्तर पर नींद नहीं आ सकती है।, क्योंकि मन दिल्ली में है और तुम यहां पूना में सोते हो। फासला बहुत रहता है। मन दिल्ली में, तुम पूना में। दोनों एक साथ सोओ तो ही सो सकते हो। तनाव बना रहता है। इतना तो काफी है कि तुम पानी पी लो, खाना खा लो, छप्पर बना लो। हर आदमी के लिए काफी है। अगर जरूरतें पूरी करनी हों तो पृथ्वी काफी है। लेकिन अगर वासनाएं पूरी करनी हैं तो यह पृथ्वी क्या, अनंत पृथ्वियां हों तो भी काफी नहीं। तब अशांति पैदा होती है। जब तुम किसी ऐसी चीज के पीछे जाते हो जो कि व्यर्थ है, तब अशांति पैदा होती है। होनी ही चाहिए।
मैं शांत करके और तुम्हें मुसीबत में नहीं डालूंगा। तुम्हें अशांत होना ही चाहिए, तभी तो तुम जागोगे। तुम्हारी अशांति ही तो तुम्हें एक दिन इस बात का बोध दिलाएगी कि जो कर रहे हो, वह ऐसा है कि उससे अशांतति होगी ही। अब तुम हाथ आग में डाल रहे हो और हाथ जलता है और तुम कहते हो कि कुछ उपाय बता दीजिए कि हाथ न जले, और आग में तुम डाले ही जाते हो। जलना ही चाहिए, क्योंकि जलेगा तो ही तुम शायद खींचोगे।
अशांति में तुम ध्यान करने को उत्सुक होते हो। शांति में ध्यान करने
को उत्सुक हो तो ही ध्यान लग पाएगा। अशांति को हटाने के लिए कारण अलग कर दो। मह Ÿ वाकांक्षा छोड़ दो। कुछ होने का कुछ सार नहीं है। ना-कुछ होने को राजी हो जाओः अशांति ऐसे विदा हो जाएगी जैसे सुबह की ओस सूरज के उगते ही विदा हो जाती है। अशांति को मिटाने के लिए किसी ध्यान की जरूरत नहीं है। अशांति को मिटाने के लिए तो सिर्फ नासमझी को देख लेने की जरूरत है। सिकंदर होना है, हिटलर होना है--तो अशांत रहोगे ही। इसमें किसी का कोई कसूर नहीं है। तुम्हारी आकांक्षा यह है कि तुम हिटलर भी हो जाओ और शांत रहते हुए हो जाओ। इसलिए तुम ध्यान की तरफ आते हो। ध्यान तुम्हारे किसी काम न पड़ेगा। ध्यान तुम्हारा लगेगा भी नहीं।
एक राज्य के मिनिस्टर मेरे पास आते हैं। उनको चीफ मिनिस्टर होना है।
और वे बड़ी कोशिश करते हैं कि कुछ भी रास्ता बता दें शांत होने का, सब गुरुओं के पास जाते हैं कि शांति को कोई रास्ता... ! मैंने उनसे पूछा, तुम्हें करना क्या है शांति से? उन्होंने कहा कि न रात नींद ठीक से आती है, दिन में चिŸा अशांत रहता है, किसी भी काम में मन नहीं लगा पाता--इसलिए पिछड़ा जा रहा हूं। दूसरे लोग मिनिस्टर होते जाते हैं, चीफ मिनिस्टर होते जाते हैं। और मैं आज पंद्रह साल से बस मिनिस्टर के पद पर ही उलझा हूं। अब तक मुझसे पीछे आनेवाले लोग चीफ मिनिस्टर हो गए और मेरी अपनी उलझनें हैं कि कहीं सिरदर्द, कहीं नींद न आना, कहीं यह बीमारी, कहीं वह बीमारी। मैं ज्यादा सफर भी नहीं कर सकता, शरीर कमजोर है। तो मैं पिछड़ा जा रहा हूं। आप कुछ रास्ता बता दें कि चिŸा शांत हो जाए।
चिŸा शांत हो जाए तो उन्हें चीफ मिनिस्टर होना है। अभी मिनिस्टर होने में इतना अशांत है और चीफ मिनिस्टर होकर और भयंकर अशांति होगी। अशांति तो सिर्फ देखने की बात है, देख लो, समझ लो अपने भीतर, पैदा हो रही है तो उसका अर्थ है कि तुम प्रकृति के प्रतिकूल चल रहे हो। उसका अर्थ है, तुम्हें जो होना चाहिए तुम वैसा नहीं हो। जो करना चाहिए वह नहीं कर रहे हो, इसलिए अशांत हो। अशांति तुम्हारा फल है, तुम्हारा कर्मफल है। मेरा कोई कसूर नहीं है कि मैं उसे शांत करूं। शांत हो जाओ, फिर मेरे पास आओ, क्योंकि मैं तुम्हें शांत अवस्था में ही किसी महान यात्रा पर भेज सकता हूं; अशांत हो

तो मनोचिकित्सक है, उसके पास जाओ। बीमार हो तो चिकित्सक है, उसके पास जाओ। जब मन शांत हो, शरीर स्वस्थ हो, तब मेरे पास आ जाना। तब सागर शांत है, लहरों में निमंत्रण है--तुम्हारी छोटी-सी नाव को परमात्मा की यात्रा पर भेजा जा सकता है। मेरी उत्सुकता उसमें है।
लेकिन शांत आदमी कहता है कि आएं ही क्यों, हम तो शांत हैं। स्वस्थ आदमी कहता है, अभी आने की क्या जरूरत है; जब अस्वस्थ हो जाएंगे, आ जाएंगे। जवान आदमी कहता है कि अभी तो जवान हैं, अभी तो भोग लें, बाजार में बड़ा रस है; जब बूढ़े हो जाएंगे तब आ जाएंगे।
मुझसे लोग पूछते हैं कि आप जवान लोगों को संन्यास देते हैं? संन्यास
तो बुढ़ापे के लिए है। जब मर ही गए तब के लिए संन्यास है? जब कुछ बचा ही न करने को, हाथ-पैर भी न हिलने को रहे, तब के लिए संन्यास है? तो संन्यास तुम्हारे जीवन का हिस्सा नहीं है। संन्यास तो तब जब जीवन की ऊर्जा अपनी प्रगाढ़ता में हो, अपने शिखर पर हो, तभी यात्रा पर निकल पाओगे, क्योंकि यात्रा बड़ी है।
सुखी आदमी भोग में लीन होता है, और दुखी आदमी प्रार्थना की कोशिश करता है--इसीलिए लोग भटकते हैं और पहुंच नहीं पाते। सुखी पहुंच सकता है, अगर वह प्रार्थना में लीन हो। शांत पहुंच सकता है, अगर वह प्रार्थना में लीन हो।

अब हम इन पदों को समझने की कोशिश करें।
सुख में सुमिरन न किया, दुखा में कीया याद। कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद।।
सुख ही सुमिरन बन सके, इसकी चेष्टा करो। जब तुम पाओ--और अनेक बार तुम पाते हो--कि मन बड़ा प्रसन्न है, उस क्षण क्लब-घर मत जाओ। जब मन बड़ा प्रसन्न है तब होटल में मत जाओ। जब मन बड़ा प्रसन्न है तब रेडियो या टी.वी. खोलकर मत बैठो। यह बहुमूल्य क्षण मुश्किल से मिलता है। यह बहुमूल्य क्षण ऐसा बाजार के कचरे में फेंक देने के योग्य नहीं है। हीरे को मत फेंको। जब भी तुम पाओ कि शांत क्षण आया है, भागो मंदिर की तरफ--यह हीरा परमात्मा के चरणों में चढ़ाने जैसा है; यह किसी वेश्या के चरणों में मत चढ़ा आना। जब पाओ कि चिŸा स्वस्थ है, हलका है, उदास नहीं, एक भीतरी प्रफुल्ल्ता है--तब हजार काम छोड़ देनाः यह वक्त प्रार्थना का है।
प्रार्थना को क्रियाकांड मत बनाओ कि रोज सुबह उठकर कर लेंगे; क्योंकि कभी क्षण होगा, कभी नहीं होगा। मेरे हिसाब में जब तुम सुख में हो तभी सुबह है; वही ब्रह्ममुहूर्त है। घड़ी से पता नहीं चलता ब्रह्ममुहूर्त तुम्हारे भीतर की घड़ी की बात है। भरी दुपहर में तुम अचानक पाते हो कि चिŸा बड़ा प्रसन्न है इस क्षण में, अकारण प्रसन्न हैः द्वार-दरवाजे बंद कर दो--यह मौका खोने का नहीं; अभी प्रार्थना में डूब जाओ, अभी कर लो स्मरण। यह छोटा- सा क्षण मिला है, इसका कर लो उपयोग। यह ज्यादा देर न रहेगा, लेकिन अगर इसका प्रार्थना में उपयोग किया तो यह टिकेगा, काफी टिकेगा, यह गहरा होगा।
अगर तुमने सुख में प्रार्थना की तो तुम पाओगे कि तुम्हारे सुख के क्षण बढ़ने लगे, रोज ज्यादा होने लगे, और सुख की गहराई भी बढ़ने लगी। अगर तुमने सुख का क्षण प्रार्थना के लिए उपयोग कर लिया और परमात्मा को चढ़ाया, तो तुम्हारी भेंट स्वीकार हो जाएगी। तुम जल्दी ही पाओगे कि उसका प्रसाद तुम्हें मिलने लगा, और सुख बरसने लगा। जितना सुख बरसेगा, उतनी ही प्रार्थना तुम करने लगे ज्यादा, उतना ही ध्यान में लीन होने लगे। जल्दी ही तुम पाओगे कि सुख चौबीस घंटे थिर होने लगा और चौबीस घंटे स्मरण चलने लगा। अब अलग बैठने की कोई जरूरत भी न रही। अब तुम जहां हो वहीं उसकी याद है। सुख के साथ जोड़ लो प्रार्थना को, तो इसी जन्म में यात्रा पूरी नहीं हो सकती है। दुख के साथ मत जोड़ो। दुख तुम्हें पसंद नहीं, परमात्मा को भी पसंद नहीं। दुख किसी को भी पसंद नहीं। उदास शक्लें और गंभीर लंबे चेहरे लेकर मत परमात्मा के पास जाओ।
एक छोटा बच्चा चर्च से घर लौटा। वह पहली ही दफा चर्च गया था। उसकी मां
ने कहा, कैसा लगा? उसने कहा कि गीत तो बहुत अच्छे थेः प्रवचन बहुत उबानेवाला था। और उसने पूछा कि एक सवाल मेरे मन में उठता रहा कि जो लोग वहां बैठे थे, ये लोग क्या रोज चर्च आते हैं? उसकी मां ने कहा कि हां, ये जो

लोग वहां बैठे थे, ये वर्षों से चर्च आते हैं; ये बड़े धार्मिक लोग हैं, गांव के सब धार्मिक लोग हैं। तो उसने कहा कि परमात्मा इनके चेहरे देख-देखकर ऊब गया होगा। ऐसे बैठे हैं मरे-मराए। परमात्मा भी थक गया होगा रोज-रोज इनके चेहरे देख-देखकर।
चर्चों, मंदिरों, मस्जिदों से परमात्मा भाग खड़ा हुआ है। वहां सब तरह
के रोगी इकट्ठे हो जाते हैं। मंदिर तो उत्सव का होना चाहिए। मंदिर तो इंद्रधनुष के रंगों का होना चाहिए। मंदिर में तो फूलों की गंध और तितलियों के पंख होने चाहिए। मंदिर में तो प्रवेश करते ही नृत्य पकड़ लेना चाहिए। तो ही मंदिर मंदिर है। लेकिन कठिनाई है, क्योंकि दुखी लोग मंदिर जाते हैं, सुखी लोग मंदिर जाते नहीं। तो धीरे-धीरे मंदिर उदास होता जाता है। और जो लोग दुखी हैं, वे मंदिर जाकर यह कहते हैं कि जो लोग सुखी हैं, वे सब नरक जाने की तैयारी कर रहे हैं। स्वभावतः दुखी आदमी सुखी आदमी को बर्दाश्त नहीं कर सकता। और दुखी आदमी चाहता है कि कोई हर्ज नहीं, आज हम दुख झेल रहे हैं, कल तुम झेलोगे; हमने अपना झेल लिया, तुमने नहीं झेला--झेलोगे। दुखी लोगों ने मंदिरों और मस्जिदों में बैठकर नरक की धारणा की हैः सुख अपने लिए, और जो सुखी हैं आज संसार में, दुख उनके लिए, महा नरक। दुखी आदमी किसी को सुखी नहीं देखना चाहता, और दुखी आदमी सुखी से बड़ीर ईष्या करता है। इसलिए तो तुम्हारे मंदिर-मस्जिदों में बैठे गुरु और साधु और संत सिखा रहे हैं। वे सिखा रहे हैं तुम्हें कि उदास हो जाओ। वे सिखा रहे हैं कि उदासी प्रार्थना है। वे सिखा रहे हैं कि गंभीर हो जाओ। वे सिखा रहे हैं कि तुम जितना ही गंभीर और मुदों चेहरा लेकर आओगे, उतनी ही तुम्हारी गहरी प्रार्थना होगी।
तो जरा बाहर जगत की तरफ देखो--परमात्मा के बनाए जगत को! वहां तुम उदासी देखते हो? अगर आदमी को हटा दो तो सिवाय उत्सव के वहां कुछ भी नहीं। परमात्मा थकता ही नहीं। फिर-फिर बसंत आ जाता है। फिर-फिर मेघ घिर जाते हैं। फिर-फिर नाद गूंजने लगता है मेघों का। प्रपात बहते जाते हैं परम निनाद में।
अगर परमात्मा की तरफ देखो। उसकी कृति की तरफ देखो। और ध्यान रखो, कृति
की तरफ देखकर ही तुम उसके कर्ता की तरफ आंख उठा पाओगत अगर तुम चित्रकार को समझना चाहते हो, उसके चित्रों को दे, और क्या ढंग है इस चित्रकार को समझने का? उसके चित्रों में अगर तुम्हें फूल दिखाई पड़ते हैं और तितलियां दिखाई पड़ती हैं और गीत दिखाई पड़ते हैं, तो जाहिर है कि परमात्मा के मन में उत्सव है, उदासी नहीं। लेकिन उदास आदमी, दुखी आदमी, पीड़ित-परेशान, उत्सुक होता है प्रार्थना में; क्योंकि वह सोचता है शायद प्रार्थना से ये सब चीजें मिट जाएं, और वह सारे मंदिरों को अपने साथ डुबा लेता है।
सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद। कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद।।
आनंद में कही गई प्रार्थना ही सुनी जाती है, क्योंकि आनंद परमात्मा
का स्वर है, वह परमात्मा की भाषा है। दुख तुम्हारी भाषा है। परमात्मा उस भाषा को समझता ही नहीं। दुख तुमने अपना पैदा किया है। परमात्मा ने तो तुम्हें भी फूल की तरह नाचने और गाने को ही पैदा किया है। दुख तुम्हारी कृति है, वह तुम्हारा कर्म है। वह तुम्हारी संभावना नहीं है, संभावना तो तुम्हारे आनंद की है। दुख की भाषा परमात्मा को समझ ही नहीं आती। इसलिए जीसस ने कहा है, जो छोटे बच्चों की भांति होंगे, वे मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश पा सकेंगे। छोटे बच्चों की भांति नाचते, कूदते, प्रफुल्लित! सुमिरन सुरत लगाइके, मुख ते कछू न बोल।
प्रार्थना कोई बोलना नहीं है। प्रार्थना में कुछ कहना नहीं है। तुम
जो भी कहोगे, वह गलत होगा। तुम गलत हो। तुम जो भी कहोगे, वह अंधेरे का हिस्सा होगा। तुम्हारी सारी वाणी तुम्हारे मन से आती है--जो अंधकार है, अज्ञान है।
इसलिए कबीर कहते हैं, सुमिरन सुरत लगाइके--प्रभु की याद करके, मुंह को बंद करके शांत हो रहो। मुख ते कछू न बोल--कुछ कहने की जरूरत नहीं है, परमात्मा समझता है। तुम्हारे चिल्ला-चिल्लाकर कहने की कोई जरूरत नहीं है।

एक मुल्ला अजान लगा रहा था मस्जिद पर, कबीर पास से निकले, तो उन्होंने चिल्लाकर कहा, क्या कर रहा है? क्या बहरा हुआ खुदा? इतने जोर से क्यों चिल्ला रहा है? क्या खुदा बहरा हो गया है?
शब्द की तो कोई जरूरत नहीं है। तुम तो अपने हृदय को उसके सामने खोलकर
रख दो। तुम यह भी मत कहो कि मुझे यह चाहिए, वह चाहिए; क्योंकि तुम्हारी चाह गलत ही होगी। तुम खुद ही पछताओगे पीछे। अगर तुम्हारी चाह भी पूरी हो जाए, तो तुम रोओगे, पछताओगे, छाती पीटोगे।
मिदास की यूनान में एक कथा है। उसने पूजा की, प्रार्थना की और किसी देवता को राजी कर लिया, तो उसने कहा, मांग ले वरदान। तो मिदास ने कहा, मैं जो भी छुऊं, वह सोना हो जाए। शुरू हो गया दूसरे दिन से; जो भी छुए, सोना होने लगा। फिर छाती पीटने लगा और चिल्लाने लगा; क्योंकि पत्नी को छुआ और वह सोना हो गई; बेटे-बेटी भाग गए घर छोड़कर; दरबारी फासले पर खड़े होकर वहां इतने दूर से बात करने लगे, क्योंकि अगर छू दे, तो मारे गए। भोजन करे, सोना हो जाए। पानी पिए, सोना हो जाए। बहुत चिल्लाने लगा कि क्षमा कर दो, भूल हो गई।
तुमने भी मांगी होती... ! चाह अज्ञान से निकली होगी तो ऐसा ही होगा। मांगते वक्त तो बड़ी समझदारी की लगी थी। बड़े मजे का था, सीधा मामला था--जो भी छुआ, सोना हो जाए। अब इससे बड़ा और क्या हो सकता था? महल छुआ, सोना हो गया; पहाड़ छुआ, सोना हो गया--अब तुम्हारे धन का, धान्य का क्या अंत था! लेकिन अज्ञान देख नहीं सकता पूरी स्थिति। भूखा मरने लगा मिदास। पानी न पी सके, खाना न खा सके। पत्नी मर गई; बच्चे घर छोड़कर भाग गए, सारा गांव दुश्मन हो गया। सोना तो हो गईं चीजें; लेकिन सोने को खाओगे या पीओगे?
और मिदास की कथा अधिक लोगों की कथा है। जिंदगी भर कोशिश करके आखिर में तुम थोड़ा बहुत सोना इकट्ठा कर लेते हो; उसमें पत्नी भी मर गई, बच्चे भी भाग गए, उसी उपद्रव में--सोना करने में। उसमें तुम भी भूखे रहे, प्यासे रहे, कभी ठीक से सो न सके, कभी दो क्षण चैन के न पाए। आखिर में सोना हो गया इकट्ठा-- तुम मरने को तैयार।
मिदास ने आत्महत्या कर ली। और करने को कुछ बचा नहीं। चाह पूरी हो तो ऐसी मुसीबत आती है।
नहीं, तुम कुछ मांगना मत।
सुमिरन सुरत लगाइके... । और ये शब्द सुमिरन सुरत समझ लेने जैसे हैं। ये कबीर के पारिभाषिक शब्द हैं।
सुरति शब्द आता है बुद्ध से। बुद्ध जिसको सम्यक स्मृति कहते थे, वही शब्द लोक-भाषा में आते-आते स्मृति से सुरति हो गया। स्मृति का अर्थ हैः माइंडफुलनेस, समग्र होश, होशपूर्वक।
होशपूर्वक बैठ जाना। प्रार्थना की कोई जरूरत नहीं। मुख से कुछ बोलना नहीं है। सिर्फ शांत रहना। स्मृति का क्या अर्थ है, जिसे कबीर ने कहा है? कई बार वे एक ही प्रतीक का बार-बार उपयोग करते हैं, क्योंकि वह उन दिनों बड़ा सार्थक प्रतीक था। वे कहते हैं, गांव की स्त्रियां पनघट से पानी भरकर लाती हैं, तो वे सिर पर दो-दो तीन Ÿान घड़े रख लेती हैं, हाथ से पकड़ती भी नहीं, दोनों हाथ खुले छोड़कर गपशप, बातचीत करती हुई गांव के भीतर आती हैं-- लेकिन उनकी सुरति घड़ों में लगी रहती है। हाथ से पकड़ा नहीं है, सुरति से पकड़ा है। याद घड़े की बनी रहती है। होश घड़े का बना रहता है कि घड़ा गिर न जाए। कुछ शब्द की भी जरूरत नहीं रहती। ऐसा कुछ बार-बार वे दोहराती नहीं हैं कि घड़ा गिर न जाए। न शब्द की कोई जरूरत नहीं, सिर्फ होश... और घड़ा नहीं गिरता। घड़ा सम्हला रहता है। बातचीत करती रहती हैं, गीत गाती रहती हैं, उछलती- कूदती गांव की तरफ वापस लौटती हैं। अब तो वैसे दृश्य न रहे क्योंकि पनघट भी न रहे। नलघट हैं, और उन पर सिवाय उपद्रव के, झगड़े के और कुछ भी नहीं। लेकिन वह प्रतीक सार्थक है। भीतर एक होश बना है, होश से सम्हाला हुआ है घड़े को।
कबीर कहते हैं, ऐसे ही शांत होकर बैठ जाना, सिर्फ होश रह जाए, भीतर का दीया जलता रहे। कुछ बोलना मत।
सुमिरन सुरत लगाइके, मुख ते कछू न बोल। लेकिन यह तभी होगा जब तुम सुख में, जब तुम शांति में, जब तुम स्वस्थ हो, तभी होगा। नहीं तो अशांति घूमती

रहेगी; मुख न बोलेगा तो अशांति घूमेगी। इसलिए सुख के क्षण को खोजो। सुख आता है, क्योंकि एक नियम है जीवन काः जब दुख आता है तो सुख भी उसके साथ का पहलू है। तुम्हें पता न चलता हो आपाधापी में, लेकिन थोड़ा तुम खोजोगे तो पा लोगे। जैसे दिन के पीछे रात है, रात के पीछे दिन है--ऐसा हर दुख के बार सुख है, हर सुख के बाद दुख है, एक रिदम, एक लयबद्धता है जीवन में।
तुम दुख को देखते रहते हो, कितने परेशान हो जाते हो दुख में कि उसके पीछे आता सुख तुम्हें याद ही नहीं पड़ता, दिखाई भी नहीं पड़ता। जरा होश सम्हालकर अगर तुमने जागृत होकर देखा तो तुम जल्दी ही पा लोगे कि चौबीस घंटे में कई क्षण आते हैं, जब मन में एक रस होता है, जब सब शांत होता है। उसी क्षणः सुमिरन सुरत लगाइके, मुख ते कछू न बोल। बाहर के पट देइकै, अंतर के पट खोल।।
अब बाहर के पट बंद कर लो। सुख है भीतर। सम्हाल लो। बाहर के सब पट बंद
कर दो कि कहीं बह न जाए। पुरानी आदत हैः सुख जब भी आता है, बाहर बहता है। सुखा आया कि भागे कि चलो किसी मित्र को पकड़कर ताश ही खेलें। सुख आया कि भागे, चलो मित्र के पास बैठकर गांजा पी लें। सुख आया कि तुम भागे--अब सुख को कहीं व्यय कर लें। सुख को व्यय मत करो। सुख को बचाओ। उससे बड़ी कोई संपदा नहीं है। उस लयबद्धता का तुम तरंग की तरह उपयोग करो कि वह तरंग तुम्हें परमात्मा में ले जाए।
बाहर के पट देइकै, अंतर के पट खोल। अब तुम बाहर की बात ही भूल जाओ। सुख
को भीतर सम्हाल लो। शांत बैठ जाओ। कुछ करने का नहीं है, कुछ कहने का नहीं है; परमात्मा समझता है। तुम जितना अपने-आप को समझते हो, उससे ज्यादा वह तुम्हें समझता है। उसने तुम्हें बनाया है। तुम उससे आए हो। वह तुम्हारे रोएं-रोएं को समझता है। तुम तो अपनी सतह को ही जानते हो; वह तुम्हारे केंद्र को भी जानता है। तुम तो सिर्फ अपनी ऊपर-ऊपर की खोल को पहचानते हो; वह तुम्हारे भीतर के अंतरतम को जानता है। इसलिए तुम कुछ मत करो। तुम सिर्फ बाहर के पप बंद कर दो, अंतर के पट खुले कर दो। हृदय को खोल दो परमात्मा के सामने। बस।
माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं। मनुआं तो दहुदिसि फिरै, यह
तो सुमिरन नाहिं।।
न तो जरूरत है कि तुम हाथ में लेकर माला फेरो। क्योंकि हाथ में फिरती माला का क्या परमात्मा से संबंध है? माला तो कर में फिरै--और तुम अगर प्रार्थना कर रहे हो कि तुम पतित पावन हो और मैं पतित हूं, और तुम यह हो और मैं वह हूं--इस सब बकवास में अगर तुम लगे हो, जैसा कि भक्तगण लगे रहते हैं; जीभ फिरै मुख माहिं,--यह तो सिर्फ जीभ फिर रही है मुख में, इसमें हो क्या रहा है? मनुआं तो दहुदिसि फिरै--और मन तो दसों दिशाओं में घूम रहा है। ग्यरह दिशाएं हैं। मन दस दिशाओं में घूम सकता है, ग्यारहवीं में नहीं। ग्यारहवीं तुम हो। आठ दिशाएं चारों तरफ, एक नीचे जानेवाली दिशा, एक ऊपर जाने वाली दिशा--दस दिशाएं, और एक भीतर जानेवाली दिशा है। तो मन दस दिशाओं में घूम सकता है। ग्याहरवीं दिशा में डूब जाओ, न तो हाथ में माला फेरने की जरूरत है, न मुंह में जीभ फेरने की जरूरत है, न मन को दसों दिशा भटकाने की जरूरत है। मन की कल्पनाओं की भी कोई जरूरत नहीं है।
बहुत से लोग मन की कल्पना करते हैं। जब प्रार्थना करने बैठते हैं, तब
वे सोचते हैं कि प्रकाश दिखाई पड़ रहा है, कि कुंडलिनी जग रही है, कि परमात्मा सामने खड़े हैं--बांसुरी बजा रहे हैं, कि रामचंद्र खड़े हैं धनुष्य लिए। इस सब में कुछ सार नहीं है। यह तो मन दस दिशाओं में भटक रहा है। मन के बनाए राम, कि कृष्ण, कि क्राइस्ट कुछ काम न आएंगे। वह तो कल्पना का जाल है। कुछ भी मत करो, क्योंकि तुमने कुछ किया कि तुम बाहर गए। अनकिये हुए रहो। अकर्ता बन जाओ।
जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय। सुरत समानी सब्द में, ताहि काल नहिं खाय।।
तुम कुछ भी करोगे वह सब मरनेवाला है। तुम्हारे कर्तृत्व से जो भी पैदा होता है, वह सब मर जाएगा। तुम्हारा शरीर मरणधर्मा है। माला फेरोगे मरणधर्मा से, अमृत में नहीं ले जाएगी। मरणधर्मा की यात्रा अमृत में कैसे ले जा सकती है? तुम्हारे ओंठ, जीभ भी मर जाएंगे। तो उन ओंठ और जीभ की

तड़फड़ाहट से पैदा हुए शब्दों का उस परमात्मा तक कैसे पहुंचना हो सकता है? जाप जिनसे पैदा होता है वही कल मिट्टी में मिल जाएंगे। तो और जो उनसे पैदा हुआ था, वह भी मिट्टी में खो जाएगा।
तुम्हारा मन भी मरणधर्मा है, प्रतिपल मरता है। उसकी कल्पनाओं का कुछ सार नहीं है। तुम क्षणभंगुर को मत पकड़ो। इसलिए कबीर एक बड़ी क्रांतिकारी बात कहते हैं। कहते हैं, जाप मरै--अगर तुमने जाप की, जाप मर जाएगी; अजपा मरै--अगर तुमने अजपा किया तो वह भी मर जाएगा। क्योंकि अजपा जाप का ही सूक्ष्म रूप है। पहले तुम जाप करते हो कि तुम राम, राम, राम, राम दोहराते हो। पहले जोर से दोहराते हो, वह स्थूल रूप है। फिर तुम होंठ बंद कर लेते हो। भीतर दोहराते हो--राम, राम, राम, राम--वह सूक्ष्म रूप है। वह जाप है। फिर तुम वह भी बंद कर देते हो, कि तुम दोहराते नहीं, होंठ में भी नहीं दोहराते, जीभ भी नहीं हिलती, होंठ भी नहीं हिलते; सिर्फ मन में ही राम, राम, राम, राम--वह और भी सूक्ष्म रूप है। लेकिन सभी के पीछे तुम्हारा कर्तृत्व छिपा है।
जाप मरै, अजपा मरै, अनहद भी मरि जाए। और तुम जिस अनहद को सुन लेते हो,
वह भी ऐसी घड़ी भी आ जाती है जब तुम्हें जाप करने की जरूरत नहीं रहती। भीतर भी नहीं रहती, मन में भी ओम को दोहराने की जरूरत नहीं रहती। ओम तुम में इस तरह समाविष्ट हो जाता है कि तुम बिल्कुल शब्द बंद कर दो तो भी ओम गूंजता रहता है। वह प्रतिध्वनि है। उसको लोग अनहद समझ लेते हैं। ऐसा समझो कि हम एक घंटा बजाएं; घंटा बंद हो गया लेकिन थोड़ी देर उसकी प्रतिध्वनि गूंजती रह जाती है। धीरे-धीरे धीरे-धीरे प्रतिध्वनि खोती है।
अगर तुम वर्षों तक ओम का पाठ करते रहो, तो तुम्हारे भीतर इतना मोमेन्टम इकट्ठा हो जाएगा कि तुम अगर पाठ न भी करो, तुम जाप भी छोड़ दो, अजपा भी छोड़ दो, सिर्फ आंख बंद करके बैठ जाओ फिर वह जो वर्षों तक जाप किया है, वह तुम्हारे रोएं-रोए में तुम्हारे कण-कण में समा गया है। उसमें प्रतिध्वनि गूंजेगी। अब तुम अचानक पाओगे कि ओम का तो जाप अपने आप हो रहा है। यह भी मर जाएगा। यह भी प्रतिध्वनि है। जब मूल ही मर गया तो प्रतिध्वनि कितनी देर रह जाएगी। इसलिए कबीर कहते हैं, अनहद भी मरि जाए। अनहद का अर्थ हैः ओंकार। सुरत समानी सब्द में, ताहि काल नहिं खाय।। सिर्फ एक ही चीज बचती है, उसी को पकड़ लो, वही सहारा है। उसके अतिरिक्त तुमने कुछ और पकड़ा कि तुम डूबे। सुरत समानी सब्द में--तुम्हारी जो स्मृति की क्षमता है, जागरण की क्षमता है, होश की क्षमता है, होश की क्षमता है, यह तुम्हारे भीतर... । सबद पारिभाषिक शब्द है। बाइबिल में कहा है, इन दि बिगिनिंग देअर वाज़ वर्ड; ओनली दि वर्ड एक्ज़िस्टेड एंड नथिंग ऐल्स। शुरू में सबद था। उस सबद से ही सब पैदा हुआ। उस सबद के अतितिक्त शुरू में कुछ भी न था। इस सबद को तुम शब्द मत समझ लेना।
जैसा वैज्ञानिक कहते हैं कि सारे अस्तित्व की मूल ऊर्जा विद्युत है, सभी चीजें विद्युत-कणों से बनी हैं--वैसे ही ज्ञानियों ने कहा है कि सभी चीजों की मूल ऊर्जा ध्वनि है, विद्युत नहीं। और सभी चीजें ध्वनि से बनी हैं। और इन दोनों में बड़ा तालमेल है। और दोनों सही हो सकते हैं। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं कि विद्युत से ही ध्वनि बनी है। और ज्ञानी कहते हैं कि ध्वनि का ही संघात विद्युत को पैदा करता है। दोनों सही हो सकते हैं। दो तरफ से एक ही चीज को देखने का ढंग मालूम होता है। अगर तुम एक ही ध्वनि का उच्चार करते रहो तो ताप पैदा हो जाता है। इतना ताप भी पैदा हो सकता है कि तुम कल्पना भी न कर सको।
तिब्बत में उसके बड़े प्रयोग किए गए हैं और एक खास योग की साधना है तिब्बत में ताप पैदा करने की। तो तिब्बत में बर्फ जमी रहती है, चारों तरफ बर्फ पड़ती रहती है, और उस योग का साधक नग्न खड़ा रहता है बर्फ में और पसीना चूता रहता है। नग्न खड़ा रहता है और शरीर से पसीना झरता रहता है। वह कुछ भी नहीं करता, वह सिर्फ भीतर, तिब्बत का एक मंत्र है। "ओम मणि पद्मे हुम्प्-- ओंकार का ही एक रूप है--वह उसका भीतर पाठ करता है। वह उसकी जोर से रटन करता है। वह रटन इतनी गहन हो जाती है, उसकी चोट इतनी गहरी पड़ती है कि सारा शरीर उ Ÿाप्त हो जाता है; गिरती बर्फ में हाथ से पसीना चूने लगता है।
दोनों सही हो सकते हैं।

संगीतज्ञो ने बहुत बार संगीत से दीये को जलाया है। जो लोग मिलिटरी साइंस का अध्ययन करते हैं, सैन्य-विद्या का, उनको पता है कि पुलों पर से जब सैनिक गुजरते हैं तो उनको कह दिया जाता है। कि वे लयबद्धता से न गुजरें, एक साथ पैर न उठाएं, पैरों की लयबद्धता तोड़ दें--क्योंकि बहुत बार बड़े-बड़े पुल सैनिकों की लयबद्धता से गिर गए हैं। सैनिक गुजरते हैं तो उनके पैर लेफ्ट-राइट करते हुए एक साथ उठते हैं। उस चोट से एक खास तरह की ध्वनि पैदा होती है, और अनेक बार बड़े-से-बड़े मजबूत पुल जिन पर से ट्रेनें गुजर जाती थीं, ट्रक गुजर जाते थे, थोड़े-से सैनिकों के गुजरने से गिर गए हैं।
ध्वनि का एक आघात है। और अब तो ध्वनि पर काफी अध्ययन हो रहा है। रविशंकर के सितार पर केनेडा में प्रयोग किया गया है। रविशंकर सितार बजाते रहे और दोनों तरफ दो क्यारियों में बीज बाए गए। वे रोज एक घंटा वहां सितार बजाते हैं और वे बीज धीरे-धीरे बड़े होते हैं। वे सब पौधे सितार की तरफ झुके हुए बढ़े--सब पौधे! एक भी दूसरी तरफ नहीं झुका। सब पौधे--जैसे सुनने को बहरा आदमी कान पास में ले आता है--ऐसे पौधे सितार सुनने को कान पास ले आए। और सितार के कारण जो पौधा तीन महीने में फूल देने योग्य होता, वह डेढ़ महीने में फूल देने योग्य हो गया। तो ध्वनि ने कुछ जीवन Ÿाप पैदा किया, कुछ ऊर्जा पैदा की, संगीत ने कुछ किया।
मोज़र्ट के एक प्रसिद्ध संगीत--जिस पर अनेक मुल्कों में कानूनी रूप से रोक लगा दी गई है। उसका कोई उपयोग नहीं करता, क्योंकि बहुत-से लोग उसे सुनते वक्त मर गए हैं। तो उसके एक खास संगीत "नाइन्थ सिम्फोनीप् पर रोक लगाई गई है। बाजार में मिलता नहीं उसका रिकार्ड, क्योंकि वह खतरनाक है। वह इतना शांति में ले जाता है कि आदमी तत्क्षण विलीन हो जाता है। तो शांति धीरे-धीरे समाधि बन जाती है, मौत हो जाती है।
कबीर जिसको सबद कहते हैं, उस सबद का अर्थ हैः इस जगत की मूल ध्वनि, जिससे सारा जगत पैदा हुआ है; वही ओंकार है। उसे तुम्हारे जाप से सुनने की जरूरत नहीं है। जिस दिन तुम बिल्कुल ही शांत हो जाओगे, उस दिन वह सुनाई पड़ेगी। सुनाई पड़ेगा, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि वहां सुननेवाला और सुनाई पड़नेवाली ध्वनि दो न होंगे; तुम्हीं सुनोगे तुम्हीं को। तुम्हारा ही अस्तित्व ध्वनित होगा। उस परम ध्वनि का नाम सबद है। इसलिए सबद को मैं सबद ही कह रहा हूं, शब्द नहीं। शब्द मत कहना। सबद कबीर का लोगोस है, जिसको दि वर्ड बाइबिल में कहा है। वह जीवन की, अस्तित्व की परम ध्वनि है, जिससे सब चीजें निर्मित हुई हैं। कबीर कहते हैं, सुरत समानी सब्द में--जब तुम अपने उस मूल स्रोत में समा जाओ, इतने शांत हो जाओ कि जैसे गंगा गंगोत्री में समा गई हो।
ऐसा समझो कि वृक्ष में फल लगे हैं, फल वापस फूलों में समा गए, वापस पिŸायों में समा गए, पिŸायां वापस शाखाओं में समा गईं, शाखाएं पीड़ में समा गईं, पीड़ जड़ों में समा गईं, जड़ें वापस बीज में समा गईं--वह बीज सबद। तुमने सब विस्तार समेट लिया, सब पसारा समेट लिया, और समाने लगे भीतर। एक ऐसी घड़ी आती है, जब तुम्हारी चेतना, तुम्हारा होश मूल बीज में समा जाता है। कबीर कहते हैं, वही एक अमृत है, बाकी तो सब मर जाएगा। तुम्हारा किया कुछ भी न बचेगा। जो तुम्हारे से भी पहले से है, जो तुम्हारे करने के पीछे छिपा है, जो तुम हो, वही बचेगा। कृत्य तो खो जाएंगे, कर्ता खो जाएगा, सिर्फ आत्मा बचेगी।
सुरत समानी सब्द में, ताहि काल नहिं खाय।।
तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न हूं।
और कबीर कहते हैं कि समाते-समाते, भीतर सुरति के डूबते-डूबते--और उस सारे डूबने में तेरी ही याद थी; शब्दों में कही नहीं, माला से फेरी नहीं, होठों पर दोहराई नहीं, भीतर जाप न किया, अजपा की फिक्र न की--लेकिन इस सारी यात्रा में याद तेरी थी; याद शब्दों की न थी; प्राणों की थी। स्मरण तेरा ही बना था।
तूं तूं करता तूं भया--और जितनी यह याद गहन होने लगी, उतना ही पाया कि मैं तो मिटता जा रहा हूं और तू ही होता जा रहा है।
तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न हूं। और एक दिन अचानक पाया कि मैं
तो मिटता जा रहा हूं और तू ही होता जा रहा है।

"तूं तूं करता तूं भयाप्, मुझ में रही न हूं। और एक दिन अचानक पाया कि मैं तो खो ही गया, हूं भी खो गई।
"मैं हूंप् हम कहते हैं। "मैंप्--अहंकार, अकड़; "हूंप् अकड़ की छाया, अस्मिता-- उतनी अकड़ नहीं बड़ी विनम्र। मैं का आदमी तो अलग दिखाई पड़ता है अकड़ा हुआ, उसको तुम पहचान सकते हो--उसकी चाल, उसकी आंख, उसका ढंगः हर घड़ी वह कर रहा है, अपने चारों तरफ संदेश भेज रहा है, ब्रॉडकास्ट कर रहा है कि मैं कुछ हूं; तुमने मुझे समझ क्या रखा है? हर घड़ी वह बतला रहा है कि मैं कुछ हूं--कपड़ों से, उठने-बैठने से। यह तो सीधी स्थूल अहंकार की दशा है। इसको हमने अहंकार कहा है। फिर एक और अहंकार की दशा है जो बड़ी विनम्र हैः साधुओं में मिलेगी, समाज-सेवकों में मिलेगी, सज्जन पुरुषों में मिलेगी। यह तो दुर्जन में मिलता है अहंकार कि अकड़ा हुआ खड़ा है। सज्जन झुका हुआ खड़ा होता है। वह तो कहता है, मैं तो आपके पैरों की धूल हूं। वह तो लखनवी होता है; वह कहता है, पहले आप।
ऐसा मैंने सुना है--पता नहीं कहां तक सच है--कि लखनऊ में ऐसा हो गया कि
एक महिला गर्भवती हुई और पैंतालीस साल तक उसको बच्चा पैदा न हुआ। चिकित्सक भी घबड़ा गए। आखिर ऑपरेशन करना पड़ा, तो पाया कि वहां तो ए बच्चा नहीं, दो बच्चे थे और पक्के लखनवी थे, और उनसे कहा कि बाहर निकलो। तो उन्होंने कहा, यही तो अड़चन है; मैं इनसे कहता हूं, पहले आप; ये मुझसे कहते हैं, पहले आप। निकलना नहीं हो पाता। अब यह तो अहंकार होगा कि पहले मैं निकल जाऊं।
तो विनम्रता है, संस्कृति है, सभ्यता है--वहां मैं का स्थूल रूप तो खो जाता है लेकिन अस्मिता रह जाती है। विनम्र आदमी का भी एक अहंकार होता है कि मुझसे ज्यादा विनम्र कोई भी नहीं; मैं तो आपके चरणों की धूल हूं। कहता वह यही है, लेकिन इसमें भी वह जाहिर कर रहा है कि मैं कोई साधारण नहीं हूं, बड़ा असाधारण पुरुष हूंः चरणों की धूल--देखो! मैं कोई अहंकारी नहीं हूं; मैं तो विनम्र हूं!
इसको कबीर कहते हैंः हूं। संस्कृत में उसके लिए शब्द हैः अस्मिता। अहंकार का स्थूल रूप है, अस्मिता सूक्ष्म रूप है। अहंकार ठोस है, अस्मिता छाया है। पहले अहंकार मिटता है, फिर अस्मिता जाती है।
तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न हूं। और अब तो छाया भी न बची मेरी।
अब तो यह भी नहीं कह सकता कि मैं नहीं हूं। अब तो यह भी नहीं कह सकता--होने की तो घोषणा कर ही नहीं सकता, नहीं होने की भी घोषणा नहीं कर सकता। हूं भी जा चुकी।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूं तित तूं। और अब जहां देखता हूं, तुझे ही पाता हूं। बाहर-भीतर सब खो गया, तू ही बचा। अपना-पराया सब खो गया, तू ही बचा। पदार्थ-चेतना सब विलीन हो गई, तू ही बचा। बूंद सागर में गिर गई।
यह घड़ी है समाधि की। यही घड़ी तुम्हारी परम नियति की। और जब तक तुमने इसे न पाया तब तक कुछ भी पा लो, समझना कि कुछ पाया नहीं। और जब इसे पा लिया तब कुछ पाने योग्य बचता नहीं।
"कस्तूरी कुंडल बसै।"
आज इतना ही।

सुनो भाई साधो
बीसवां प्रवचन

उपलब्धि के अंतिम चरण

सूत्र

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिवे को सोभा नहीं, देखा ही परमान।।

एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।
है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि।।

ज्यों तिल माहीं तेल है, चकमक माहीं आग।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जाग।।

कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूढ़ै वन माहिं।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखै नाहिं।।

अछै पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वाकी डार।
तिरदेवा साखा भए, पात भया संसार।।

गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गंभीर।
चहुं दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर।।

परमात्मा की खोज में, अंततः वह सौभाग्य की घड़ी भी आ जाती है जब परमात्मा तो मिल जाता है, लेकिन खोजने वाला खो जाता है। जो निकला था खोजने, उसकी तो रूपरेखा भी नहीं बचती; और जिसे खोजने निकला था, जिसकी रूपरेखा भी पता नहीं थी, बस वही केवल शेष रह जाता है। साधक जब खो जाता है तभी सिद्धत्व उपलब्ध हो जाता है।
यह खोज बड़ी अनूठी है! यहां खोना ही पाने का मार्ग है। खोज में अगर तुमने अपने को बचाया, तो तुम भटकते ही रहोगे, पा न सकोगे। इस खोज का आधारभूत नियम ही यही है कि तुम ही हो बाधा, कोई और बाधा नहीं है; और जब तक तुम हट न जाओ--तुम्हारे और परमात्मा के बीच से--तब तक दीवार बनी ही रहेगी। तुम हटे कि परमात्मा तो सदा से था; तुम्हारी दीवाल के कारण दिखाई न पड़ता था। और तुम्हारी दीवाल बड़ी मजबूत है। और शायद तुम परमात्मा को इसलिए खोज रहे हो कि दीवाल को और मजबूत कर लो, तुम अपने को और भर लो। संसार की सब चीजें तुमने अपने में भर लीं, यह परमात्मा की कमी खटकती है। अहंकार को चुनौती लगती है कि अगर किसी ने परमात्मा को कभी पाया है तो मैं भी पाकर रहूंगा। जिसने परमात्मा को चुनौती की तरह समझा और जीवन की अन्य मह Ÿ वाकांक्षाओं में एक मह Ÿ वाकांक्षा बनाया, वह खाली हाथ ही रहेगा; उसके हाथ कभी परमात्मा से भरेंगे न; और उसका हृदय सूना ही रह जाएगा; वहां कभी परमात्मा का बीज रोपित न हो पाएगा; और उसके जीवन में वह वर्षा कभी न होगी जिसकी कबीर चर्चा कर रहे हैं।
पहली और आखिरी बात ख्याल रखने जैसी है कि तुम अपने को मिटाने में लगना--वही परमात्मा की खोज है। परमात्मा को खोजने की फिक्र ही छोड़ दो। वह तो मिला ही हुआ है; तुम सिर्फ अपने को मिटा लो। इधर तुमने अपने को साफ किया, इधर तुम खाली घर बने कि उधर परमात्मा का पदार्पण हुआ। इस द्वार से तुम निकले कि दूसरे द्वार से परमात्मा भीतर चला आता है। तुम्हारा खाली हो जाना ही तुम्हारी पात्रता है। तुम्हारा भरा होना ही तुम्हारी अपात्रता है।
इसलिए तो जिन्होंने भी जाना, वे उसके संबंध में कुछ कह नहीं पाते; क्योंकि जानने वाला तो खो जाता है, कहे कौन? परमात्मा के सामने जब तुम मौजूद होओगे, तुम तो रहोगे नहीं--कौन करेगा दावा कि मैंने जान लिया? कौन

लौटकर खबर देगा? कौन लाएगा प्रतिबिंब परमात्मा के? तुम मिट ही जाओगे, लानेवाला नहीं बचेगा। इसलिए तो जो गए, वे खुद तो पा लेते हैं, दूसरों को नहीं जना पाते कि क्या उन्होंने पाया। बड़ी कोशिश करते हैं, लेकिन सब शब्द हार जाते हैं, सब इशारे छोटे मालूम पड़ते हैं। और जो भी वे कहते हैं, कहते ही उनको लगता है, भूल हो गई। जो भी कहा जाता है, वह गलत हो जाता हैं।
लाओत्से ने कहा है, कहो सत्य को, और सत्य असत्य हो जाता है।
शब्द बहुत छोटे हैं, बहुत संकीर्ण हैं; और जिसे भरना है, वह बहुत विराट है। शब्दों में उसे भरा नहीं जा सकता। इसलिए जो भी कहा गया है, वह ऐसा ही है कि जैसे किसी ने रात में उड़ती जुगनू देखी हो, और फिर अचानक किसी सूरज के सामने खड़े होने का मौका आ जाए, तो किस भांति तौलेगा सूरज को? कितने जुगनुओं का प्रकाश सूरज बनेगा? या जैसे कोई आदमी चाहे कि चम्मच को लेकर सागर को नापने बैठ जाए--कब तक नाप पाएगा कि कितने चम्मच जल है सागर में? पर मैं तुमसे कहता हूं कि यह हो सकता है, अगर समय पूरा मिले तो कभी-न-कभी चम्मच से सागर नाप लिया जाए, क्योंकि चम्मच छोटी हो भला, सागर बड़ा हो भला; लेकिन दोनों की सीमा है, दोनों एक ही तल की घटनाएं हैं। तो अगर समय मिले अरबों- खरबों वर्ष का, तो कोई आदमी चम्मच से भी सागर को नाप ले सकता है। सिद्धांततः यह संभव है। लेकिन परमात्मा को तो सिद्धांततः भी नापने की संभावना नहीं है, क्योंकि नापने का उपकरण सीमित और जिसे नापना है वह असीम। सीमित से कैसे तुम असीम को नापोगे? और जो भी तुम नापकर ले आओगे खबर, वह झूठी होगी, क्योंकि असीम फिर भी बाकी है। जो नापने और नापने के बाद भी सदा बाकी है, उसी को तो हम असीम कहते हैं।
इसलिए परमात्मा को लोगों ने जाना तो है, कहा किसी ने भी नहीं। नहीं की कहने की कोशिश नहीं की है, सभी ने कोशिश की है। क्योंकि करुणा कहती है, कहो, जो जाना है वह उनको भी बता दो, जो मार्ग पर भटकते हैं, जो अंधेरे में टटोलते हैं। करुणा कहती है, कहो। लेकिन परमात्मा के अनुभव का स्वभाव ऐसा है कि कहा नहीं जा सकता।
मैं भी तुमसे रोज कहे जाता हूं, और भली भांति जानता हूं कि जो कहना चाहता हूं, वह कह नहीं पाऊंगा। और तुम अगर मुझे सुन-सुनकर इतना ही समझ गए तो बस काफी है, कि जो कहना चाहता था मैं, कह नहीं पाया। अगर मुझे सुनकर तुमने समझ लिया, कि तुम समझ गए वह, जो मैं कहना चाहता था, कह दिया मैंने, तो तुम भटक गए। फिर तुम मुझे न समझ पाए। अगर सुन-सुनकर तुमने समझ लिया कि ठीक, संवाद हो गया, जो मैं कहना चाहता था तुमसे कह दिया, और तुमने पा लिया, तो तुम चूक गए; तुम सरोवर के किनारे आकर प्यासे लौट गए। जो मैं कहना चाहता हूं, वह तो कहा ही नहीं जा सकता। जो तुम सुन रहे हो, वह, वह नहीं जो मैं कहना चाहता हूं। जो मैं कह रहा हूं, वह भी नहीं है जो मैं कहना चाहता हूं। बड़ी दूर की फीकी प्रतिध्वनियां हैं। जो कहना है, वह तो तुम तभी समझ पाओगे, जब तुम भी जान लोगे।
जानना ही एकमात्र उपाय है परमात्मा के साथ, कोई दूसरा और रास्ता नहीं
है जिससे हम उसे बिना जाने जान लें। जानकर ही जाना जा सकता है। कबीर के इन पदों में जिन कठिनाइयों की तरफ इशारा है, उन कठिनाइयों को हम समझ लें। पहली कठिनाईः बुनियादी कठिनाई है कि खोजनेवाला खो जाता है, इसलिए कौन खबर लाए?
मैं तुमसे बोल रहा हूं, लेकिन मैं वही नहीं हूं जो खोजने निकला था। वह
तो खो गया। और अब जो मैं हूं, उसका सब खोजनेवाले से कोई भी नाता-रिश्ता नहीं है; जैसे वह खोजनेवाला एक स्पप्न था और विलीन हो गया। उसमें और मुझमें कोई तारतम्य नहीं है। वह कोई और था, मैं कोई और हूं। वह बिल्कुल अजनबी है। उससे मेरी कोई पहचान ही न रही। वह तो एक छाया थी जो केवल अंधेरे में ही रह सकती थी। रोशनी में वह छाया खो गई। और अब जो मैं हूं, वह बिल्कुल ही भिन्न है। जो खोजने निकला था, वह तो अब नहीं है; और जिसने खोज लिया है वह बिल्कुल ही भिन्न है, उसका खोजी से कुछ लेना-देना नहीं है। यह पहली अड़चन है।
दूसरी अड़चन कि जब खोज पूरी हो जाती है, तो जाननेवाले में और जो जाना गया है, फासला नहीं रह जाता। सब ज्ञान में फासला चाहिए। तुम्हें मैं देख रहा हूं क्योंकि तुम दूर बैठे हो; तुम्हारे और मेरे बीच में फासला है। अगर

तुम करीब आते जाओ, करीब आते जाओ, करीब आते जाओ, तुम इतने करीब आ जाओ कि मेरी आंख और तुम्हारे बीच फासला न रहे, तो फिर मैं तुम्हें देख न पाऊंगा, जान न पाऊंगा। तुम इतने करीब आ जाओ कि बिल्कुल मेरे हृदय में विराजमान हो जाओ, तब तो पहचान बिल्कुल मुश्किल हो जाएगी। और तुम इतने करीब आ जाओ कि तुम मेरा हृदय हो जाओ, तब तो कौन पहचानेगा, किसको पहचानेगा?
परमात्मा की खोज में हम निकट आते जाते हैं, निकटता बढ़ती है, सामीप्य बढ़ता है। जैसे-जैसे समीपता आती है, वैसे-वैसे जानना मुश्किल हो जाता है, जगह नहीं बचती बीच में। और एक ऐसी घड़ी आती है छलांग की, जब या तो तुम छलांग लगाकर परमात्मा में डूब जाते हो, या परमात्मा छलांग लगाकर तुममें डूब जाता है। दोनों घटनाएं घटती हैं। ज्ञान के मार्ग से जो चलता है, वह छलांग लगाकर परमात्मा में लीन हो जाता है। भक्ति के मार्ग से जो चलता है, उसमें परमात्मा छलांग लगाकर लीन हो जाता है। या तो बूंद सागर में गिर जाती है, या सागर बूंद में गिर जाता है और तब कुछ पता नहीं चलता कि कौन बूंद थी, कौन सागर है; कौन तुम हो, कौन परमात्मा है। जरा भी रंचभर फासला नहीं रह जाता। भेद करने की व्यवस्था नहीं रह जाती। परिभाषा नहीं हो सकती। इसलिए तो ज्ञानी उ°ोष कर बैठते हैंः "अहं ब्रह्मास्मिप्; "अनलहकप्, मैं वही हूं; त Ÿ वमसि! इस घोषणा के बाद अब किसकी चर्चा करोगे? अब तो परमात्मा की चर्चा भी अपनी ही चर्चा है। अब तो अपनी ही चर्चा परमात्मा की भी चर्चा है। अब तो चर्चा करनेवाला और चर्चित दो न रहे; जाननेवाला और जाना गया दो न रहे। और हमारा सारा जानना दो पर निर्भर है, द्वैत पर निर्भर है। अद्वैत का जानना बड़ी ही अनूठी घटना है। वह आयाम और! और जब दोनों एक हो गए, तो कौन खबर दे, कैसे खबर दे, किसकी खबर दे?
ज्ञानी और ज्ञेय जहां एक हो जाते हैं, वहीं तो परम ज्ञान का जन्म होता है। दोनों किनारे खो जाते हैं, सरिता रह जाती है--अधर में लटकी--न इस तरफ किनारा, न उस तरफ किनारा; बस ज्ञान रह जाता है। और हमने ऐसा कोई ज्ञान नहीं जाना है। हमारा तो सारा ज्ञान ऐसा ही है, जैसे नदी के दोनों तरफ किनारे हैं, दोनों किनारों में बंधी हुई नदी बहती है। कभी-कभी वर्षा में जब बड़ा पूर आता है, बाढ़ आती है, किनारे टूट जाते हैं, नदी उन्म Ÿा होकर बहने लगती है; लेकिन तब भी पुराने किनारे टूट जाते हैं, नदी नए किनारे बना लेती है, किनारे से मुक्त नहीं होती।
परमात्मा ऐसी बाढ़ है, जहां पुराने किनारे तो टूट ही जाते हैं, नए किनारे नहीं बनते।
परमात्मा का कोई तट नहीं है; क्योंकि तट यानी सीमा, तट यानी अंत। तट पर
ही तो नहीं समाप्त हो जाती है। परमात्मा की कोई सीमा नहीं है, कोई तट नहीं है। वह कहीं समाप्त नहीं होता। और जब तुममें गिर जाती है उसकी धारा, या तुम उसमें गिर जाते हो--जो कि एक ही बात के दो नाम हैं, एक ही घटना के दो नाम हैं--तब कहना मुश्किल हो जाता है।
तीसरी बातः जिन शब्दों से हम कहते हैं, वे बने हैं साधारण कामकाज के लिए। उनमें उतना अर्थ है, जैसे छोटे बच्चों के पास बंदूक होती है खिलौनों कीः आवाज भी करती है, धुआं भी निकालती है, पर किसी को मारती नहीं। वह खिलौना है। उस बंदूक से तुम युद्ध के मैदान पर मत चले जाना। वहां वह काम नहीं आएगी; वहां बुरी तरह मारे जाओगे।
हमारे जो शब्द हैं, वे संसार के लिए बने हैं। परमात्मा के जगत में उन शब्दों की सार्थकता ही कोई नहीं है। परमात्मा के जगत में सभी शब्द असंगत हो जाते हैं, उनकी संगति खो जाती है; जो भी कहो, गलत मालूम होता है; जैसे भी कहो, गलत मालूम होता है; व्याकरण बिल्कुल शुद्ध रहे तो भी सब गलत होता हैः भाषा बिल्कुल शुद्ध हो तो भी सब गलत होता है; कितने ही सुंदर ढंग से कहो तोभी फीका और बासा होता है। क्योंकि, शब्द मन-निर्मित हैं और परमात्मा मन के पार है। शब्द स्वप्न-निर्मित हैं और परमात्मा सत्य है। शब्द माया और संसार के बीच खेल-खिलौने हैं, यथार्थ नहीं हैं। बच्चा भी जब जवान हो जाएगा, खिलौनों को फेंक देगा एक कोने में; उनकी याद भी उसे न आएगी कि क्या हुआ। कभी उन्हीं खिलौनों के लिए लड़ा भी था; कभी उन्हीं खिलौनों के लिए रो-रोकर जार-जार हो गया था; कभी उन्हीं खिलौनों के लिए आंखें सूज आई थीं; कभी पाकर ऐसा नाचा था खुशी से, खोकर रोया था। अब तो याद भी नहीं आती। वे कोने में

पड़े-पड़े अपने-आप धूल-धवांस से भरकर... किसी दिन नौकरानी झाड़कर उन्हें कचरे- घर में फेंक आएगी। बच्चा जवान हो गया, प्रौढ़ हो गया।

जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर परमात्मा की तरफ निकटता बढ़ेगी, एक प्रौढ़ता बढ़ेगी। जिन शब्दों को तुमने बड़ा मूल्य दिया था, जिनके लिए तुम कभी लड़-लड़ पड़े थे--किसी ने हिंदू-धर्म को कुछ कह दिया, या किसी ने तुम्हारे परमात्मा के खिलाफ कुछ बोल दिया, या किसी ने तुम्हारे गुरु की निंदा कर दी--सब शब्द हैं, हवा में बने बबूले हैं; तुमने तलवार खींच ली थी; तुम धर्म की रक्षा के लिए तत्पर हो गए थे; तुम मारने-मरने को उतारू थे; विवाद के लिए तैयार थे; सिद्ध करने के लिए तुमने पूरा आयोजन कर लिया था; शास्त्रार्थ तुम्हारे ओठों पर रहा सदा। यह सब शब्दों का ही जाल है। शब्द में कौन सही, कौन गलत! शब्द में तो सभी गलत, शब्दों में कौन शास्त्र ठीक, कौन शास्त्र गलत, शब्द में तो सभी गलत, सभी शास्त्र गलत। यह खिलौना, वह खिलौना--कुछ चुनाव करने का है? कौन-सा खिलौना यथार्थ? सभी खिलौने खिलौने हैं। कोई खिलौना यथार्थ नहीं है। और पंडित हैं कि लगे हैं शब्दों को घिसने में।
शब्दों का बड़ा ऊहापोह है, बड़ा जाल है। शब्द से ही तुम जीते हो, क्योंकि यथार्थ से तुम्हारे सभी संबंध छूट गए हैं। और यथार्थ परम मौन है। यथार्थ के पास कोई भाषा नहीं है, या मौन ही एक मात्र भाषा है। जब कोई परमात्मा के पास आता है, मौन होने लगता है; जैसे-जैसे पास आता है, वैसे-वैसे गहन मौन उतरने लगता है; रोआं-रोआं शांत हो जाता है; वाणी खो जाती है; मन थिर हो जाता है; भीतर की लौ अकंप जलने लगती है, कोई कंपन नहीं आता। भीतर के आकाश में शब्द की एक बदली भी नहीं तैरती। तब तुम जानते हो।
निःशब्द में जाना जाता है। जिसे निःशब्द में जाना है, उसे शब्द में कैसे कहोगे? निःशब्द तो निराकार है। शब्द तो आकार है। निःशब्द में तो तुमने वह जाना जो है। शब्द में लाकर ही तो वह कहोगे, और शब्द के आते ही संसार आ गया।
चौथी कठिनाईः मन रेखाबद्ध चलता है। मन लकीर का फकीर है। और मन हमेशा विरोध से बचता है। जहां-जहां विरोध पाता है, वहां-वहां मन दो खंड कर लेता है। जन्म को अलग कर लेता है, मृत्यु को अलग कर लेता है। क्योंकि मन की समझ के बाहर है यह बात कि जन्म और मृत्यु दोनों एक हो सकते हैं। जन्म कहां मृत्यु कहां; जन्म, जीवन का दाता; मृत्यु, जीवन की विनाशक! तो मन कहता है, जन्म और मृत्यु एक-दूसरे के विपरीत हैं, एक-दूसरे के शत्रु हैं। जन्म को तो चाहता है मन, मृत्यु से बचना चाहता है। जन्म में तो उत्सव मनाता है, मृत्यु में रोता-पीटता है, दुखी-दीन, जर्जर हो जाता है।
लेकिन जीवन में तो जन्म और मृत्यु जुड़े हैं; एक छोर जन्म है, दूसरा छोर मृत्यु है। वहां तो दिन और रात एक ही चीज के दो पहलू हैं। वहां तो सुबह और सांझ एक ही सूरज की दो घटनाएं हैं। वहां तो सुख और दुख अलग-अलग नहीं हैं। जैसे ही कोई व्यक्ति परमात्मा के करीब आता है, वैसे ही सबसे बड़ी अड़चन आती है, वह यह कि परमात्मा विरोधाभासी है, पेराडाक्सिकल है। उसमें सब इकट्ठा है। होना भी चाहिए, क्योंकि उससे विरोध में क्या होगा? और उससे विरोध में कोई रहकर रहेगा कहां? और उसके विरोध में होने का उपाय ही कहां है, जगह कहां है, ऊर्जा कहां है? परमात्मा में तो जन्म और मृत्यु आलिंगन कर रहे हैं। मन जब यह देखता है, तो बिल्कुल टूट जाता है। उसका सारा पुराना अनुभव, अब तक की बनाई हुई धारणाएं सब क्षणभर में बिखर जाती हैं। वहां तो रात और दिन एक ही घटना की दो पोशाकें हैं। वहां तो सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और अंतिम अर्थों में, जो कि बहुत कठिन हैः वहां तो संसार और मोक्ष एक ही घटना के दो नाम हैं। तब बड़ी अड़चन हो जाती है।
मन ने बड़ी व्यवस्था से बांधा है, सब चीजों की सीमा बनाई है, कोटियां बनाई हैंः यह संसार है निकृष्ट, त्याज्य; मोक्ष है उत्कृष्ट, पाने योग्य; संसार है छोड़ने योग्य, मोक्ष है पाने योग्य; संसार है ठुकराने योग्य, मोक्ष है अभीप्सा योग्य--ऐसी मन ने सब धारणाएं बनाई हैं।
परमात्मा के जैसे-जैसे निकट तुम आओगे, यहां परमात्मा में संसार और मोक्ष एक ही घटना है। यहां बनानेवाला और बनाई गई चीजें दो नहीं हैं; स्रष्टा और सृष्टि एक है। वहां तुम ऐसा न पाओगे कि यह वृक्ष अलग है

परमात्मा से; तुम इस वृक्ष में परमात्मा को ही हरा होते हुए पाओगे। तुम ऐसा न पाओगे कि यह चट्टान परमात्मा से भिन्न है; तुम इस चट्टान में परमात्मा को ही सोता हुआ पाओगे। तुम शत्रु में भी देखोगे, वही है; मित्र में भी देखोगे, वही है। जन्म में वही आता है; मृत्यु में वही विदा होता है। परमात्मा एक है; वहां सब विरोध लीन हो जाते हैं। जैसे सब नदियां सागर में गिर जाती हैं, ऐसा सब कुछ परमात्मा में गिर जाता है। और तुम्हारे मन ने बड़े इंतजाम से जो कबूतरखाने बनाए थे, जिनमें जगह-जगह तुमने खंड कर दिए थे, चीजों को बांट दिया था, लेबिल लगा दिए थे--उसे लेबिल लगाने को तुम ज्ञान कहते हो--हर चीज का नाम चिपका दिया था, हर चीज के गुण लिख दिए थेः यह जहर और यह अमृत--और अचानक परमात्मा में जाकर तुम पाते हो, जहर अमृत है, अमृत जहर है; सब एक है; कुछ चुनाव योग्य नहीं है--सभी उससे है। बुरा और भला दोनों उसी से आते हैं। संत और शैतान दोनों उसी से पैदा होते हैं। राम और रावण दोनों उसी की लीला के अंग हैं--राम ही नहीं, रावण भी; अन्यथा रावण कहां से आएगा? जैसे ही तुम परमात्मा के पास जाते हो, तुम्हारी सब कोटियां टूटती हैं। मन का सब ज्ञान उखड़ जाता है। परमात्मा भयंकर आंधी की तरह आता है, झकझोर डालता है तुम्हारे सब ज्ञानों को, धूल-धूसरित कर देता है। परमात्मा महान अग्नि की तरह आता है, जला डालता है सब कचरे को, सब शब्दों को, सब सिद्धांतों को, सब शास्त्रों को। परमात्मा ऐसा आता है कि तुम्हें बस नग्न और शून्य छोड़ जाता है। उस घड़ी में तुम जो जानोगे, कैसे वापस कबूतरखानों में रखोगे उसे? जिसने एक बार जान लिया, परमात्मा की एक झलक जिसको आ गई, फिर मन की सारी की सारी व्यवस्था व्यर्थ हो जाती है। उसी मन से बोलना है। उसी मन से कहना है।
इसलिए कबीर कहते हैं "पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।" कैसे कहैं, क्या है उस परमब्रह्म का तेज? कौन सी उपमा दें? किन शब्दों का सहारा लें?
"कहिवे को सोभा नहीं, देखा ही परमान।।" कबीर कहते हैं, कहने में शोभा नहीं है, बात बिगड़ जाएगी; जो भी कहेंगे वही अशोभन होगा।
इसलिए आस्तिक हमेशा नास्तिक से विवाद में हार जाएगा। लाख उपाय करो, आस्तिक जीत नहीं सकता। आस्तिक हारेगा विवाद में। विवाद में नास्तिक ही जीतेगा। उसका कारण है क्योंकि नास्तिक उस जगत की बात कर रहा है जहां विवाद की सार्थकता है, जहां तर्कसंगत है। आस्तिक अतक््रय की बात कर रहा है, जहां तर्क असंगत है। तो आस्तिक तो हारेगा ही। इसका यह मतलब नहीं है कि कोई आस्तिक नास्तिक से हारकर नास्तिक हो जाएगा। झूठा आस्तिक हारकर नास्तिक हो जाएगा; सच्चा आस्तिक हारकर भी और गहरा आस्तिक हो जाएगा, क्योंकि सच्चा आस्तिक हार और जीत जानता ही नहीं। वह हंसेगा। वह नास्तिक के तर्क से नाराज न हो जाएगा; वह नास्तिक के तर्क से हंसेगा। नास्तिक के प्रति उसे क्रोध न उठेगा, क्योंकि वह तो आस्तिक का लक्षण ही नहीं है; नास्तिक के प्रति महाकरुणा उठेगी। वह नास्तिक को तर्क काटकर सिद्ध करने की कोशिश भी न करेगा। अगर कुछ भी हो सकता है तो एक ही घटना काम की हो सकती हैः वह नास्तिक को प्रेम करेगा। क्योंकि जो शब्द से नहीं कहा जा सकता, अब उसको कहने का एक ही उपाय हैः वह है प्रेम। और जो तर्क से नहीं कहा जा सकता, अब उसको समझाने की एक ही विधि हैः वह करुणा है। और जिसका अब बताने का, विवाद से प्रमाण देने का कोई उपाय नहीं; उसका एक ही उपाय है कि वह खुद ही प्रमाण हो। आस्तिक के पास प्रमाण नहीं होते; आस्तिक स्वयं प्रमाण है। इसलिए अगर आस्तिक को समझना हो तो तर्क से तुम उसके पास पहुंच ही न पाओगे। उसके पास तो पहुंचने का रास्ता है, और वह रास्ता हैः सतसंग। वह रास्ता हैः उसके पास होना, ताकि उसका प्रेम तुम्हें छू सके, ताकि उससे उठती सुवास किसी दिन किसी अन-अपेक्षित क्षण, में तुम्हारे नासापुटों में भर जाए। क्योंकि अन्यथा, कहता हूं अन-अपेक्षित क्षण, क्योंकि अन्यथा तो तुम बहुत सुरक्षित हो। तुमने सब संवेदनशीलता बंद कर रखी है। और आस्तिकता को जानने के लिए तो बड़ी नाजुक संवेदनशीलता चाहिए। वह फूल किसी और लोक का है। वह फूल अदृश्य है। उसकी सुवास अतिसूक्ष्म है, महासूक्ष्म है। अगर तुम संवेदनशील होओगे तो ही थोड़ी सी झलक मिलेगी। उसकी रोशनी ऐसी नहीं है कि तुम्हारी आंखों को चका-चौंध से भर दे; उसकी रोशनी बड़ी शीतल है। अगर तुम आंख बंद करके बैठ

सकोगे आस्तिक के पास, तो ही तुम उसकी रोशनी देख सकोगे, क्योंकि रोशनी आंखों से देखी जानेवाली रोशनी नहीं; उसकी रोशनी तो आंख बंद करके ध्यानस्थ दशा में ही जानी जा सकती है।
"पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। कहिवे को सोभा नहीं, देखा ही परमान।।" कबीर कहते हैं, शोभा ही नहीं कहने की; कहना अशोभन है। जो कहा नहीं जा सकता, उसे कहकर जो प्रतिबिंब सुननेवालों के मन में बनेगा, वह बड़ा अन्याय है; वह परमात्मा के साथ बड़ा अन्याय है। क्योंकि सुननेवाले कोई प्रतिमा बना लेंगे, जिससे कि परमात्मा का कोई भी संबंध नहीं, दूर का भी नाता-रिश्ता नहीं। वे कुछ और ही समझकर लौट जाएंगे। उनकी समझ एक तरह की नासमझी होगी।
इसलिए ज्ञानी की सारी चेष्टा यह है कि कैसे तुम्हारी आंखें खुल जाएं; नहीं कि कैसे तुम तर्क के द्वारा तृप्त कर दिए जाओ। तर्क से तुम तृप्त भी हो जाओ तो वह तृप्ति वैसे ही होगी जैसे तुम प्यासे थे और पानी के संबंध में किसी ने बहुत तर्क से सिद्ध कर दिया कि पानी है; और उसने सारा पानी का विज्ञान समझा दिया कि पानी कैसे बनता है; उसने पानी का फारमूला, महामंत्र दे दियाः एच टू ओ; उसने बता दिया कि उद्जन के दो कण, अक्षजन का एक कण, तीन कण से मिलकर पानी बनता है। सब बात ठीक है। लेकिन प्यास न बुझेगी। एच टू ओ से कहीं प्यास बुझी है? राम-राम जपने से भी न बुझेगी। वह भी एच टू ओ है। "देखा ही परमान।" आंख चाहिए!
तो ज्ञानी के पास न तो तर्क खोजने जाना, न प्रमाण खोजने जाना; आंख खोजने जाना।
"एक कहौं तो है नहींप्--अब कबीर अपनी दुविधा कहते हैं। तुम्हारी दुविधा है कि कैसे परमात्मा को जानें; ज्ञानी की दुविधा है कि कैसे परमात्मा को कहैं। जान तो लिया... ।
"एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।" कहते हैं कबीर, दो कहूं तो गाली हो जाएगी, और एक कहूं तो है नहीं।
दुविधा तुम समझ सकते हो; क्योंकि तुम कहोगे, सीधी-सी बात हैः अगर दो कहना ठीक नहीं तो एक कहने से काम चल जाएगा। यहीं अड़चन है। क्योंकि एक की भी सार्थकता तभी है जब दो होता हो। एक का क्या मतलब होगा अगर दो हो ही न? कम-से-कम दो को परिकल्पित करना पड़ेगा, तभी तो एक में कोई अर्थ होगा। अगर तुमसे पूछा जाए कि दो, तीन, चार, पांच सारी संख्याएं खो गईं, सिर्फ एक संख्या बची-- उसका क्या अर्थ होगा? क्या कहोगे तुम जब कहोगे एक? तुमसे कोई पूछ बैठेगा, मतलब? तो तुम्हें तत्क्षण दो को भीतर लाना पड़ेगा; तुम्हें कहना पड़ेगा, जो दो नहीं। लेकिन दो तो है ही नहीं। तो एक भी कहने में कितना सार है? इसलिए तो हिंदुओं ने बड़े श्रम के बाद "अद्वैतप् शब्द खोजा। यह दुविधा के भीतर बड़ी चेष्टा करनी पड़ी। तो, न तो वे कहते हैं, ब्रह्म एक है; न वे कहते हैं, दो है। वे कहते हैं कि इतना समझ लो कि दो नहीं है। अद्वैत का अर्थ हुआः दो नहीं। तो हम साधारणतः कहेंगे, भले मानस, एक ही क्यों नहीं कह देते? ऐसा सिर के पीछे से घुमाकर कान क्यों पकड़ते हो? सीधे क्यों नहीं पकड़ लेते हो? अड़चन हैः एक कहने में डर है, क्योंकि एक में अर्थ ही तब होता है, जब दो की संख्या सार्थक हो। और उस पारब्रह्म के अनुभव में दो की कोई संभावना नहीं है तो जहां दो ही नहीं है, वहां एक की क्या सार्थकता?
"एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।" और अगर दो कहूं, तब तो गाली हो गई। इसलिए तो कहते हैं, "कहिवे को सोभा नहीं।" क्योंकि दो से बड़ा झूठ क्या होगा? उस परमात्मा में दो है ही नहीं।
यह सारा अस्तित्व एक ही चेतना का सागर है। रूप अनेक, पर जो रूपायित है,
वह एक। रंग बहुत, पर जो रंगा है, वह एक। नृत्य-गान बहुत, पर जो नाच रहा है, वह एक; जो गा रहा है वह एक। अनेकता परिधि पर है, और सुंदर है अपने-आप में। और जिस दिन तुम एक को पहचान लोगे उस दिन अनेकता में भी उसकी ही पायल की झनकार सुनाई पड़ेगी; उस दिन हर फूल-प Ÿा उसी की खबर लाएगी; हर पक्षी उसी का गीत गाएगा। उस क्षण जो भी हो रहा है, जहां भी हो रहा है, सभी उसका है। अचानक जैसे एक परदा उठ जाता है प्राणों से, सब पारदर्शी हो जाता है, और हर चीज के भीतर से वही खड़ा दिखाई देने लगता है।
पर एक अड़चन है शब्दों में।

"एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि। है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि।।" और कबीर कहते हैं, बहुत विचारा, बहुत सोचा, बहुत उपाय बनाए, बहुत तरह से कोशिश की--अब इतना ही कहना ठीक है कि "है जैसा तैसा रहे।" जैसा है बस वैसा ही है। उसकी किसी से कोई उपमा नहीं हो सकती, कोई तुलना नहीं हो सकती। उसकी तरफ कहीं से भी कोई संकेत नहीं किया जा सकता, कोई अनुमान काम न करेगा। हम जीवन में उपमा से ही समझते हैं। कोई आदमी कहता है कि मैंने एक बड़ा सुंदर फूल देखा जंगल में, वैसा फूल यहां नहीं होता--तो तुम पूछते हो, कुछ उपमा, वह किसी फूल जैसा हैः गुलाब जैसा, चमेली जैसा, चंपा जैसा? तुम यह पूछ रहे हो कि कुछ तो इशारा दो ताकि मैं अनुमान कर सकूं कि कैसा है। कमल जैसा? आखिर किसी तो फूल जैसा होगा? कुछ तो तालमेल किसी फूल से होता होगा? अगर एक से न हो तो तुम ऐसा कहो कि गंध गुलाब जैसी, रंग चंपा जैसा, रूप कमल जैसा--कुछ तो कहो, तो अंदाज तो लगे।
लेकिन परमात्मा के संबंध में कोई उपमा नहीं; क्योंकि वह अकेला ही है।
उस जैसा बस वही है। इसलिए कहीं से भी तो कोई द्वार नहीं मिलता कि संकेत किया जा सके।
"है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि।" बस, वह अपने जैसा है। पर यह भी कोई कहना हुआ? यह तो बात वहीं की वहीं रही। कह दिया कि बस अपने जैसा--इससे सुननेवाले को क्या समझ पड़ा? जिसको बताते थे, उसका कौन-सा बोध बढ़ा? कुछ बात न बनी।
पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक, आधुनिक विचारक, विट्गंसटीन ने एक वचन लिखा है। विट्गंसटीन की किताबें इस सदी की मह Ÿ वपूर्ण से मह Ÿ वपूणें किताबों में हैं। अगर दस मह Ÿ वपूर्ण किताबें इस सदी की चुनी जाए, तो विट्गंसटीन की किताब उन दस में एक होगी। विट्गंसटीन कहता है कि "दैट विच कैन नॉट बी सैड शुड नॉट बी सैडप्--जो नहीं कहा जा सकता, कृपा करके उसको कहो ही मत। जो नहीं कहा जा सकता, वह नहीं कहा जा सकता--यह भी मत कहो। विट्गंसटीन यह कह रहा है कि इस तरह की बातें कहने रसे तुम कह भी नहीं पाते, दूसरा समझ भी नहीं पाता और बड़ी उलझन खड़ी होती है। तो क्या कबीर, दादू और नानक, और क्राइस्ट, और बुद्ध, और कृष्ण कहना बंद कर दें, विट्गंसटीन की सलाह मान लें? माना कि उनके कहने से बड़ी उलझन पैदा होती है; लेकिन उस उलझन का कष्ट उठाने योग्य है। क्योंकि अगर वे बिल्कुल ही चुप रह जाएं, तो जो कहकर नहीं बताया जा सका, कह-कहकर भी जिसे तुम न समझ पाए, वह क्या बुद्धों के चुप रहने से तुम समझ जाओगे? चुप्पी तो तुम्हारे लिए बिल्कुल ही अनजानी भाषा है। इससे तो तुम्हें भला भ्रांति होती हो, चुप्पी से तो भ्रांति तक भी न होगी। चुप बैठे बुद्ध को तो तुम पहचान ही न पाओगे। और अगर बुद्ध चुप रह जाएं, तो तुम्हारे इस लोक में, कौन लाएगा उसकी खबर जिसकी खबर नहीं दी जा सकती? तुम्हारे अंधेरे में कौन तुम्हारे हृदय को तीर मारेगा? तुम्हारे अंधेरे में कौन तुम्हें जगाएगा कि एक यात्रा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है? तुम्हारे अंधेरे में कौन तुम्हें चौंकाएगा कि यही जीवन नहीं है? कौन तुम्हारी पीड़ा, दुख और संताप में तुमसे कहेगा कि यही सब कुछ नहीं है; हम ऐसा लोक भी जानते हैं जहां कोई संताप नहीं है, कोई दुख नहीं है, कोई पीड़ा नहीं। कौन तुम्हें खबर देगा मुक्ति की--तुम्हारे कारागृह में?
सच है, विट्गंसटीन ठीक कहता है कि जो नहीं कहा जा सकता, वह न ही कहा जाए। लेकिन फिर भी उचित नहीं है। जो नहीं कहा जा सकता, न ही कभी कहा गया है, उसे कहना होगा, बार-बार कहना होगा। ना-समझी भी पैदा होती हो उससे, तो भी खतरा मोल लेना होगा, जोखिम उठानी पड़ेगी। क्योंकि हजार सुनें, नौ सौ निन्यानबे कुछ भी न समझ पाएं, पर किसी एक के हृदय में कोई तीर चुभ जाता है; अनकहे हुए की भी थोड़ी-सी झलक आ जाती है; एक नई आकांक्षा का जन्म हो जाता है। शुरू-शुरू में बड़ी धुंधली, कुछ भी साफ नहीं; जैसे सुबह का धुंधलका छाया हो-- लेकिन धीरे-धीरे जैसे-जैसे पैर संभलते हैं, वैसे-वैसे धुंधलका हटने लगता है; जैसे-जैसे आंख संभलती है, देखते-देखते-देखते जहां कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा था, वहां उस अनंत की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगती है।
संत असंभव की कोशिश करते हैं, क्योंकि परमात्मा असंभव है। परमात्मा
से ज्यादा सरल कुछ भी नहीं, उससे ज्यादा असंभव कुछ भी नहीं। वह चारों तरफ चौबीस घड़ी मौजूद है, और फिर भी तुम उसे छू नहीं पाते। सब तरफ से तुम्हें

उसने घेरा हुआ है, फिर भी तुम्हें उसके स्पर्श का कोई पता नहीं चलता। तो माना कि संतों के वचन विज्ञान की कसौटी पर सही नहीं उतर सकते, उनके वचन बेबूझ रहेंगे, अतक््रय रहेंगे। तर्क की कसौटी पर संतों के वचन कसे नहीं जा सकते, लेकिन इसमें कसूर संतों के वचन का नहीं है, तर्क की कसौटी का है।
एक बाउल फकीर हुआ, जिसकी कथा मुझे बड़ी प्रीतिकर रही है। कोई उससे पूछता है परमात्मा के संबंध में, तो बाउल फकीर इकतारा लिए रहते हैं। किसी ने पूछा है। जिसने पूछा है, वह पंडित है, बड़ा बुद्धिमान है, शास्त्रों का ज्ञाता है। लेकिन बाउल फकीर उसे कुछ जवाब नहीं देता, अपना इकतारा छेड़ देता है। वह थोड़ी देर तो सुनता है; फिर कहता है, "बंद करो। मैं कुछ पूछने आया हूं, इकतारा सुनने नहीं। बहुत इकतारे सुन लिए।" तो बाउल फकीर खड़ा हो जाता है। नाचना शुरू कर देता है। पंडित के लिए यह बिल्कुल बेबूझ है। वह कहता है, "क्या तुम पागल हो?" बाउल फकीर का मतलब ही पागल फकीर होता है। बाउल फकीर का मतलब होता हैः बावला। "क्या तुम बिल्कुल पागल हो? मैं पूछता हूं परमात्मा की--मैं पूछता हूं पश्चिम की, तुम चलते हो पूरब। यह नाचने से क्या होगा?" तो उस फकीर ने एक गीत गाया, और उसने कहा कि तुम्हारी बातों से मुझे याद आती हैः "एक बार ऐसा हुआ कि एक सुनार फूलों की बगिया में पहुंच गया। भूल से ही पहुंचा होगा, क्योंकि सुनार धातु के साथ जीता है। मुर्दा सौंदर्य में उसका रस है--सोना, चांदी, हीरे-जवाहरात! जिंदा सौंदर्य में उसका कोई रस नहीं, जहां फूल खिलते हैं; क्योंकि फूल सुबह खिलते हैं, सांझ मुरझा जाते हैं, सोना सदा सम्हालकर रखा जा सकता है। हीरा हजारों साल तक सम्हाला जा सकता है। मुर्दा सौंदर्य में उसका रस था। लेकिन एक बार भूल-चूक से बगिया में पहुंच गया। माली ने उसे अपने फूल दिखाए। जैसा कि मैं नाचा, जैसे कि मैंने इकतारा बजाया--मैंने तुम्हारे प्रश्नों के उ Ÿार दिए हैं। माली ने उसे फूलों के संबंध में समझाया, लेकिन उसने कहा कि नहीं, मैं कोई ऐसे माननेवाला नहीं हूं। मैं सुनार हूं, पारखी हूं। उसने अपने खीसे सोना कसने का पत्थर निकाला और फूलों को कस-कसकर देखने लगा। सोने के कसने के पत्थर पर फूल नहीं कसे जाते। और अगर फूल इसमें गलत साबित हुए, कसौटी में न कसे गए, तो फूलों का कसूर नहीं है, कसौटी का कसूर है। उसने फूलों को कसा, पटक दिया, और कहा कि इनमें कोई भी न तो सोना है, न कोई चांदी है।
संत की वाणी अगर बेबूझ लगती है तो कसूर संत का नहीं है; तुम जिस मन से उसे कस रहे हो, उस मन का है। जीवन रहस्य है। संत क्या करे? उसकी वाणी में रहस्य प्रगट है। उसकी वाणी वैसी ही है जैसा जीवन का रहस्य है। उसकी वाणी में समाधान नहीं है; उसकी वाणी में समाधि का स्वर है। समाधान का अर्थ है कि तुमने तर्क को समझा-बुझाकर कोई हल खोज लिया। संत ने कोई समाधान नहीं खोजा है; संत ने समाधि खोज ली। उसने रहस्य के साथ जीने का ढंग खोज लिया। अब वह रहस्य को हल नहीं करना चाहता; वह रहस्य को जीता है। पहेली को हल नहीं करना चाहता, क्योंकि वह समझ गया है कि पहेली में ही सौंदर्य है; उसे हल करने में तो सब मर जाएगा। वह किसी पहेली को हल नहीं करना चाहता--न प्रेम की, न प्रार्थना की, न परमात्मा की। उसने तो एक तरकीब खोज ली कि अब वह नाचता है इस पहेली के साथ; इस रहस्य के साथ वह खुद भी रहस्य पूर्ण हो गया। उसने तारों जैसा सौंदर्य उपलब्ध कर दिया। उसने ओस-कणों जैसी, शबनम जैसी ताजगी उपलब्ध कर ली। उसने फूलों जैसी सुवास पा ली। वह पक्षियों जैसा उड़ने लगा है अनंत के आकाश में। उसने रहस्य में तैरना और तिरना सीख लिया। अब वह रहस्य को हल नहीं करना चाहता।
रहस्य को हल करने की जरूरत भी नहीं है। रहस्य को हल करने वाले मनुष्यता के शत्रु हैं। क्योंकि वे हर चीज को हल कर देते हैं। तुम जाओ एक मनस्विद के पास, पूछा कि प्रेम क्या है--वह हल कर देगा। वह बता देगा कि यह क्या है। "यह प्रकृति की चेष्टा है--संतति को पैदा करने की।" वैज्ञानिक के पास जाओ, शरीरविद के पास जाओ तो वह कहेगा, "यह कुछ भी नहीं है, हारमोन्स हैं। शरीर में स्त्री-पुरुष के हारमोन्स हैं, उन्हीं का सब खेल है। तुम झंझट में मत पड़ना।" तुम जाओ केमिस्ट के पास। वह बताएगा, वह कहेगा, "शरीर में ऐसे-ऐसे रस पैदा होने के कारण प्रेम की भ्रांति पैदा होती है। प्रेम वगैरह कुछ है नहीं।

ये सभी लोग हल करने बैठे हैं। ये सब हल कर दिए हैं। उनके हल के कारण जीवन से सब रहस्य खो गया है। अब सोच लो, कि जब तुम अपनी प्रेयसी को गले लगाओ, तब तुम्हें पता है कि हारमोन कम रहे हैं, और तुम नाहक मेहनत कर रहे हो। हारमोन तुम्हें चला रहे हैं। एक इंजेक्शन हारमोन का और तुम्हारा सब यह प्रेम वगैरह बदल जाएगा।
विवाह करने जाओ और तुम्हें पता है कुछ है नहीं। ये बैंड-बाजे सब धोखा है। असल में जीवशास्त्र कहता है, प्रकृति अपने को पैदा करती रहनी चाहती है; वह तुम्हें उपकरण की तरह उपयोग कर रही है। तुम तो मर जाओगे, तुम्हारे बच्चों को; तुम्हारे बच्चे मर जाएंगे, उनके बच्चों को... । प्रकृति जीवन को बचाए रखना चाहती है, तुमसे उसका कोई प्रयोजन नहीं है। तुम तो एक वाहन हो जीवन के। बैंड-बाजे बेकार बजा रहे हो। जीवन तुम पर चढ़ा है। प्रकृति तुम्हारे सिर पर बैठी है; वह तुम्हें चला रही है।
अगर तुम प्रार्थना के लिए पूछने जाओ तो भी वैज्ञानिक के पास उ Ÿार हैं। अगर तुम ध्यान के लिए पूछने जाओ, तो अब वैज्ञानिकों ने यंत्र खोज लिए हैं ध्यान के भी। खोपड़ी में इलेक्ट्राड लगाकर वे जांचकर बता देते हैं कि ध्यान हो रहा है कि नहीं हो रहा है। क्योंकि वे कहते हैं कि यह सब तो विद्युत तरंगों का खेल है। अलफा तरंग अगर चल रही हो तो ध्यान है। वैज्ञानिक हर चीज को हल करने लगा है। तुम थोड़ा सोचो, किसी दिन अगर वैज्ञानिक सफल हो गया, उसने सब हल कर लिया, फिर आत्मघात के अतिरिक्त और क्या बच रहेगा? लेकिन वह आत्मघात भी न करने देगा। वह कहेगा, इसको भी हम हल किए देते हैं कि इसका कारण क्या है।
धर्म की यात्रा रहस्य को हल करने की यात्रा नहीं है। रहस्य को जीने की यात्रा है। हल करे ना-समझ। जीवन का क्षण मिला है एक महोत्सव में, निमंत्रण मिला है, धर्म उसमें सम्मिलित हो जाना चाहता है। धर्म नाचना चाहता है चांद तारों के साथ।
कबीर कहते हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता उस परमात्मा के संबंध में, जो तुम्हारे प्रश्नों को हल कर दे। "है जैसा तैसा रहे।" रहस्य है और रहस्य ही रहेगा, और तुम व्यर्थ हल करने में समय मत गंवाओ; तुम डुबकी लगाओ, तुम डूबो इस रहस्य में, नहाओ, नाच लो। अस्तित्व का यह क्षण उत्सव बना लो। उस उत्सव से तुम परमात्मा से और रहस्य से एक हो जाओगे। वही एक हो जाना समाधि है। समाधान विज्ञान की खोज है, समाधि धर्म की। दोनों शब्द एक ही धातु से,
एक ही मूल शब्द से बने हैं, लेकिन बड़े दूर निकल गए हैं। विज्ञान कहता है, समाधान क्या है समस्या का; धर्म कहता है, समाधि। तुम समाधान खोजो ही मत। समाधान खोजा ही न जा सकेगा। रहस्य रहस्य ही रहेगा। तुम कितना ही जानते जाओ, और रहस्य के नए परदे उठते जाएंगे। और वही हुआ है। रोज रहस्य के नए परदे उठते गए हैं; रहस्य चुका नहीं है। विज्ञान ने बहुत जान लिया और कुछ भी नहीं हुआ।
अभी वैज्ञानिकों की एक बहुत बड़ी परिषद केनेडा में बैठी और उस परिषद
ने जो प्रस्ताव पास किए, उनमें एक प्रस्ताव बड़ा अनूठा है, जो कि वैज्ञानिकों से कभी भी आशा नहीं है। वह पहला प्रस्ताव है परिषद का, और पहली दफा वैज्ञानिकों ने समझदारी की थोड़ी-सी झलक दी है। पहला प्रस्ताव यह है कि लोग सोचते हैं कि हम बहुत जानते हैं; लेकिन हम जानते हैं कि हम कुछ भी नहीं जानते। यह बड़ी समझदारी की बात है। विज्ञान अगर किसी दिन इतना समझदार हो गया तो विज्ञान समर्पण कर देगा धर्म की यात्रा में अपना भी।
"है जैसा तैसा रहै, कहै कबीर विचारि।
"ज्यों तिल माहीं तेल है, चकमक माहीं आग।
जैसे चकमक में आग छिपी है और अगर तुम्हें चकमक न रगड़ना आता हो तो तुम बैठे रहोगे। चकमक सामने रखी रहेगी, और तुम्हारे घर में अंधेरा भरा रहेगा।
और सामने रखी थी आग, लेकिन रगड़ने की कला तुम्हें न आती थी।
धर्म है समाधि, योग है रगड़ने की कला। योग है चकमक को रगड़कर आग को पैदा
कर लेने की विधि। आग तो छिपी है। परमात्मा ही छिपा है सब तरफ, जैसे तेल में तिल छिपा है, जरा निचोड़ने की बात है; जैसे चकमक में आग छिपी है, जरा रगड़ने की बात है।

तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जाग। कबीर कहते हैं, कहीं और जाना नहीं है। तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जाग--बस करना इतना ही है कि तू जाग। साईं को नहीं खोजना है, जागना है। और भूल कर के कहीं साई को खोजने मत निकल जाना, बिना जागे; नहीं तो नींद में बहुत भटकोगे, पहुंचोगे कहीं नहीं। क्योंकि--तेरा साईं तुज्झ में। जाते कहां हो खोजने? जितनी दूर निकल जाओगे खोजने उतनी ही उलझन में पड़ जाओगे। परमात्मा को खोजना नहीं है, बस जागना है।
"तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जाग।
"कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूढ़ै वन माहिं।
आती है गंध कस्तूरी की भीतर से। नाफा पक गया, कस्तूरी तैयार है। भागता
है पागल होकर मृग, खोजता है, कहां से आती है यह गंध? उसकी नाभि में है कस्तूरी। पर मृग को कैसे पता चले? मनुष्य को भी पता नहीं चलता कि गंध नाभि में है।
तुम्हारे जीवन का स्रोत तुम्हारी नाभि है। तुम्हारे आनंद का स्रोत भी तुम्हारी नाभि है। तुम्हारे अस्तित्व का केंद्र तुम्हारी नाभि है। अगर तुम अपनी नाभि में उतर जाओ, तो तुमने परमात्मा का द्वार पा लिया।
पश्चिम में लोग मजाक करते हैं। पूरब के योगियों को कहते हैं, वे लोग
जो अपने नाभि में टकटकी लगाकर देखते रहते हैं। वहां क्या रखा है? वहीं सब कुछ रखा है।
तुम्हें शायद पता नहीं कि मां के गर्भ में तुम नाभि से ही मां से जुड़े थे। नाभि तुम्हारे जीवन का केंद्र है। वहीं से जीवन-ऊर्जा तुम्हारे जीवन में प्रवाहित हो रही थी। फिर तुम तैयार हो गए, मां की जीवन-ऊर्जा की जरूरत न रही, तो नाल काट दी गई। तुम मां के गर्भ से बाहर आ गए। लेकिन तुम्हारी नाभि से एक अदृश्य नाल अभी भी परमात्मा से जुड़ी है। एक रजतरेखा तुम्हें जोड़े हुए है अस्तित्व से। तुम नाभि से ही जुड़े हो। नाभि में ही तुम्हारी जड़ हैं। न केवल शरीर के अर्थों में तुम नाभि से जुड़े हो। आत्मा के अर्थों में भी तुम नाभि से ही जुड़े हो। जिन लोगों को कभी शरीर के बाहर जाने का अनुभव हुआ है--कई बार हो जाता है, कभी तो दुर्घटना में हो जाता है कि कोई आदमी ट्रेन से गिर पड़ा और उस झटके में उसकी आत्मा शरीर के बाहर निकल गई--तो जिन लोगों को भी ऐसा अनुभव हुआ है दुर्घटना में, या योग की साधना में, या जान-बूझकर जो प्रयोग कर रहे थे शरीर के बाहर जाने का, उन सभी को एक बात दिखाई पड़ी है, और वह यह कि उनकी आत्मा कितनी ही दूर चली जाए, एक रजत-रेखा नाभि से जुड़ी ही रहती है। अगर वह टूट जाए, फिर वापस शरीर में लौटने का उपाय नहीं रह जाता। वह कितनी ही ऊंचाई पर उड़ जाए, लेकिन वह रजत-रेखा बड़ी लोचपूर्ण है, वह खिंचती जाती है। वह कोई पदार्थ नहीं है; वह सिर्फ शुद्ध विद्युत-ऊर्जा है, इसलिए शुभ्र चांदी की भांति दिखाई पड़ता है।
तुम्हारी नाभि में तुम्हारे जीवन का सारा राज छिपा है। इसलिए कबीर ने कस्तूरी कुंडल बसै यह प्रतीक चुना है। और घटना वही घट रही है जो मृग के साथ घटती है। मृग बिल्कुल पागल हो जाता है, टकरा लेता है सिर को जगह-जगह, लहूलुहान हो जाता है। और इतनी मादक गंध आती है, रुक भी नहीं सकता; खोजना चाहता है, कहां से गंध आती है। जितना भागता है उतना ही व्याकुल होता है। और जितना भागता है उतनी ही जगह उसकी गंध व्याप्त हो जाती है। उतना ही और भी दिग्भ्रम पैदा होने लगता है कि कहां से आ रही है, कि पूरब से कि पश्चिम से कि दक्षिण से। क्या करे यह मृग? इस मृग को कैसे समझाएं कि तू बैठ जा, आंख बंद कर ले, भीतर उ Ÿार--तेरे भीतर ही गंध का राज छिपा है।
तुम भी आनंद की तलाश में कहां-कहां नहीं घूम लिए हो। कितने जन्मों की लंबी यात्रा है। हिंदू कहते हैं, चौरासी करोड़ योनियों में तुम एक ही चीज को खोज रहे हो कि गंध कहां से आ रही है? आनंद कहां से मिलेगा? जीवन का राज कहां छिपा है? परमात्मा कहां है?
और कबीर कहते हैं, कस्तूरी कुंडल बसै। तेरा साईं तुज्झ में, जागिर सकै
तो जाग।
ऐसे घट-घट राम हैं--जैसे कस्तूरी कुंडल के भीतर छिपी है--ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखै नाहिं।

अछै पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वाकी डार। तिरदेवा साखा भए, पात भया संसार।। कबीर कहते हैं कि वह जो अक्षय पुरुष है, वही इस सारे अस्तित्व का फैलाव है। यह सारा वृक्ष उसी का है। प्रतीक है कि अक्षय पुरुष जैसे एक अक्षय वट हैः सारा फैलाव एक वृक्ष की भांति है; डार-डार उसी अक्षय पुरुष की निरंजनता फैली है।
निरंजन का अर्थ होता हैः परम वैराग्य। निरंजन का अर्थ होता है, जिसको कोई रंग, रंग नहीं पाता; जो सब रंगों में है, और अनरंगा रह जाता है। निरंजन का अर्थ होता हैः कमलवत; है पानी में और पानी छू नहीं पाता। उस अक्षय पुरुष का यह फैलाव है अस्तित्व--वृक्ष की भांति वही निरंजन एक-एक डार में छिपा है।
पात भया संसार--और ये जो प Ÿो हैं, यही संसार है। कबीर यह कह रहे हैं कि परमात्मा और संसार में फासला नहीं है; ये एक ही चीज के दो ढंग हैं। स्रष्टा और सृष्टि दो नहीं हैं। और पात-पात में भी वही फैला है। तुम उसके ही पात हो। तुम्हारे प Ÿो कितने ही अलग दिखाई पड़ रहे हों, तुम में भी वही फैला है। तुम उसके ही पात हो। तुम्हारे प Ÿो कितने ही अलग दिखाई पड़ रहे हों, तुम इस भ्रांति में मत पड़ना कि तुम अलग हो। अलग तो तुम उससे जुड़े हो। प्रतिपल श्वांस ले रहे होः श्वास काट दी जाए, एक द्वार टूट गया, एक सेतु मिट गया-- कैसे जिओगे? सूरज की किरणें चली आ रही हैं, तुम्हारे रोयें-रोयें को, जीवन को उ Ÿाप से भर रही हैं; सूरज ठंडा हो जाए, तुम कैसे जिओगे? ये तो स्थूल बातें हैं। ऐसे ही सूक्ष्म तल से सब तरफ से परमात्मा तुम्हें सम्हाले हुए है जैसे वृक्ष को अदृश्य जड़ें सम्हाले होती हैं। और वृक्ष प Ÿो-प Ÿो की फिक्र कर रहा है। तो घबड़ाओ मत कि तुम प Ÿो हो और संसार में हो--संसार भी उसी का है। सृष्टि और स्रष्टा दो नहीं हैं; सृष्टि, स्रष्टा का ही फैलाव है। अछै पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वाकी डार। तिरदेवा साखा भए, पात भया संसार।।
इसे बहुत गहनता से समझ लो, क्योंकि विषाक्त करने वाले लोगों ने बड़ी भ्रांतियां फैला रखी हैं। वे कहते हैं, संसार पाप है। वे कहते हैं, संसार छोड़ने योग्य है, वे कहते हैं, भागो संसार से अगर परमात्मा को पाना है। परमात्मा संसार के कण-कण में छिपा है, और तथाकथित महात्मा समझाए जाते हैं कि भागो संसार से, अगर परमात्मा को पाना है। और अगर संसार में वही छिपा है तो तुम जहां भी भागोगे, तुम परमात्मा से ही भाग रहे हो। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, तुम जहां हो ठीक वहीं उससे मिलन होगा; इंच भर भी यहां-वहां जाने की जरूरत नहीं है। दुकान पर बैठे-बैठे मिलन होगा। दफ्तर में काम करते-करते मिलन होगा। बगीचे में गड्ढा खोदते-खोदते मिलन होगा। घर को, गृहस्थी को संभालते-संभालते मिलन होगा, क्योंकि वही हर प Ÿो में छिपा है। ऐसी कोई जगह नहीं है जहां वह न हो।
रवीन्द्रनाथ ने एक बड़ी मधुर कविता लिखी है। लिखा है कि बुद्ध ज्ञानी हुए और वापस लौटे। रवीन्द्रनाथ के मन मंह कहीं न कहीं बुद्ध का घर छोड़कर जाना, कभी जंचा नहीं। रवीन्द्रनाथ को कभी जंचा नहीं। किसी कवि को कभी जंच नहीं सकता। थोड़ा कठोर मालूम पड़ता है, थोड़ा काव्य-विरोधी मालूम पड़ता है, थोड़ा सौंदर्य का विनाशक मालूम पड़ता है। और कवि के लिए तो सौंदर्य ही सत्य है। यशोधरा को छोड़कर भाग गए बुद्ध की प्रतिमा रवीन्द्रनाथ को कभी भायी नहीं। तो उन्होंने बड़ी मीठी कविता लिखी है। वह कविता हैः लौट आए बुद्ध घर, ज्ञान को उपलब्ध होकर, यशोधरा ने पूछा, एक ही बात मुझे पूछनी है और बारह वर्ष तक इसी बात को पूछने के लिए मैं प्रतीक्षा करती रही हूं। अब आप आ गए हैं, ज्ञान को उपलब्ध होकर, अब मैं समझती हूं कि समय आ गया है, मैं पूछ लूं। पूछना मुझे है कि जो तुमने मुझे छोड़कर वहां जंगल में पाया, क्या तुम उसे यहीं नहीं पा सकते थे?
रवीन्द्रनाथ ने बुद्ध को चुप छोड़ दिया है, उ Ÿार नहीं दिलवाया। पर रवीन्द्रनाथ का उ Ÿार साफ है, और चुप रह जाने में भी उ Ÿार साफ है। अब तो बुद्ध भी जानते हैं कि उसे, जो पाया है जंगल में, उसे यहीं पाया जा सकता था। स्रष्टा छिपा है अपनी सृष्टि में। यह सृष्टि ऐसी नहीं है कि जैसे मूर्तिकार मूर्ति को बनाता है, क्योंकि मूर्तिकार मूर्ति को बनाकर मूर्ति से अलग हो जाता है; या कवि कविता बनाता है, कविता अलग हो जाती है,

कवि अलग हो जाता है। कवि तो मर जाएगा, कविता बनी रहेगी। मूर्ति हजारों साल जी लेगी, मूर्तिकार तो चला जाएगा। दोनों अलग हो गए। नहीं, परमात्मा की सृष्टि कुछ और तरह की है। इसलिए हमने परमात्मा के प्रतीक की तरह नटराज को चुना है--नर्तक; मूर्तिकार नहीं, चित्रकार नहीं, कवि नहीं।
परमात्मा नर्तक है, क्योंकि नृत्य और नर्तक को अलग नहीं किया जा सकता। नर्तक चला गया, नृत्य भी गया। तुम नृत्य को नहीं बचा सकते अलग। तुम नर्तक और नृत्य को अलग कहां करोगे? उनके बीच में कोई फासला नहीं हो सकता। परमात्मा नर्तक की भांति अपनी सृष्सिट से जुड़ा है, मूर्तिकार की भांति नहीं। यह सृष्टि उसका ही होना है। यह तुम्हें ख्याल में आ जाए तो तुम व्यर्थ भागने के विचारों से बच जाओगे और तुम जहां हो वहीं खोज शुरू कर दोगे। तुम जिस जगह खड़े हो, वहीं और वहीं हीरा गड़ा है, कहीं और खोजने मत जाओ। मैंने एक बड़ी अदभुत कहानी सुनी है। एक यहूदी फकीर था। उसने रात सपना देखा। एक रात देखा, दूसरी रात देखा, तीसरी रात देखा--तब सपना सच मालूम होने लगा। सपना यह था कि जिस देश में वह रहता था उस देश की राजधानी में एक पुल के पास एक बहुमूल्य खजाना गड़ा है। जब तीन बार, बार-बार देखा और सब चीज बिल्कुल साफ हो गई, नक्शा भी साफ हो गया; एक-एक चीज स्पष्ट हो गई तो मजबूरी में उसे यात्रा करनी पड़ी राजधानी की। वह राजधानी गया, लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ गया; क्योंकि जहां धन गड़ा है पुल के किनारे, वहां चौबीस घंटे पुलिस तैनात रहती है पुल की रक्षा के लिए। तो वह कैसे उसे खोदे? कब खोदे? वहां से कभी पुलिस हटती नहीं। जब दूसरे लोग पहरे पर आ जाते हैं, तब पहले लोग जाते हैं। चौबीस घंटे सतत वहां पहरा है। तो वह राह खोजने के लिए बार-बार पुल पर गुजरता है। एक पुलिसवाला उसे देखता रहा है। आखिर उसने कहा, सुन भाई, तू क्यों यहां बार-बार गुजरता है? आत्महत्या करनी है? पुल से कूदना है? क्या इरादा है? फकीर है, तो दिखता भी है ऐसा कि उदास है और जिंदगी से निराश है, शायद मौका देख रहा है कूद जाने का या कोई और कारण है--बात क्या है? संदेह पैदा होता है? उस फकीर ने कहा, जब तुमने पूछ लिया तो मैं बता ही दूं, क्योंकि रास्ता भी दिखाई नहीं पड़ता कुछ करने का; तुमसे ही कह दूं, शायद तुम्हारे काम पड़ जाए। मैंने एक सपना देखा, तीन बार देखा सतत देखा और इतना साफ हो गया सपना कि मुझे भरोसा आ गया कि होना चाहिए। मैंने सपरा देखा है कि तुम जहां खड़े हो वहां जमीन में बड़ा खजाना गड़ा है। वह सिपाही हंसने लगा। उसने कहा, हद हो गई। सपना तो हमको भी तीन रात से आ रहा है लेकिन यहां का नहीं आ रहा है। एक छोटे से गांव का उसने नाम लिया। फकीर चौंका, वह तो उसका गांव है। एक फकीर के घर में... और वह तो उसी फकीर का नाम है। और जहां वह फकीर बैठकर माला जपता रहता है, वहां खजाना गड़ा है। उसने कहा, तीन रात से हमको भी आ रहा है। मगर सपना सपना है। ऐसे हम तुम्हारे जैसे झंझटों में नहीं पड़ते कि कभी यात्रा करें, उस गांव जाएं। पागलपन में मत पड़ो।
फकीर भागा घर की तरफ कि यह तो हद हो गई। जहां बैठा था, खोजा--खजाना वहां था।
कहानी पता नहीं, सच है या झूठ, पर जीवन में ऐसा ही हैः तुम जहां हो, खजाना वहीं गड़ा है। सपना आएगा--हिमालय चले जाओ, खजाना वहां है। सपना आएगा-- मक्का, मदीना, काशी गिरनारः कई तरह के सपने आएंगे--उनसे बचना। तुम जहां हो, वहीं खजाना है। क्योंकि अगर तुम हिमालय पहुंचे तो हिमालय में जो बैठा है, वह तुमको बताएगा कि हमको तो सपना आ रहा है कि पूना, कि खजाना वहां बंट रहा है।
परमात्मा सब जगह है, इसलिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है। तुम जहां हो, जैसे हो, और परमात्मा की उपलब्धि बेशर्त है, अनकंडिशनल है। परमात्मा तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुम ऐसा करो कि तब मैं तुम्हें उपलब्ध होऊंगा। क्योंकि जब उसने ही तुम्हें बनाया है तब इससे ज्यादा सुंदर और क्या अपेक्षा हो सकती है? इसे थोड़ा सोचो। अगर परमात्मा ने ही तुम्हें गढ़ा है, तो अब तुम इसमें और सुधार न कर पाओगे। मैंने किसी आदमी को सुधरते नहीं देखा। और मैं हजारों के साथ संलग्न हूं और वे सब सुधार के लिए मेरे पास आते हैं; लेकिन मैंने कभी किसी आदमी को सुधरते नहीं देखा। इससे मैं निराश नहीं हूं; इससे केवल एक सत्य की उदघोषणा होती है कि परमात्मा ने तुम्हें बनाया है अब तुम उसमें सुधार करने की कोशिश क्या करोगे? कोई सुधार नहीं सकता;

परमात्मा से और ज्यादा सुधारने का उपाय भी नहीं हैं। जितना किया जा सकता था, वह कर ही चुका है। उसकी कोई शर्त नहीं है कि तुम ऐसे हो जाओ कि ब्रह्मचर्य ग्रहण करो, कि उपवास करो, कि यह करो, कि वह करो, तब मैं तुम्हें उपलब्ध होऊंगा। वह तुम्हें उपलब्ध ही है--प्रसाद की भांति। प्रसाद में कोई शर्त थोड़े ही होती है। वह देने को राजी है। अड़चन इतनी है कि तुम लेने को राजी नहीं हो। कोई शर्त नहीं है, सिर्फ तुम लेने को राजी नहीं हो। तुम इतने अकड़ से भरे हो कि तुम लेने वाले बनना ही नहीं चाहते--बस, इतनी ही कठिनाई है। और वह एक गहरी मजाक है।
और परमात्मा मजाक कर सकता है, यह बात मुझे बड़ा सुख देती है। क्योंकि मैं किसी गुरु-गंभीर परमात्मा में भरोसा नहीं करता। परमात्मा गुरु-गंभीर होता तो संसार हो ही नहीं सकता। परमात्मा निश्चित ही हल्का और प्रसन्न, प्रफुल्ल, उत्सव--ऐसा कुछ है।
कहावत है अरब में कि जब भी वह किसी को बनाकर संसार में भेजता है तो उसके कान में यह कह देता है कि तुझसे बेहतर आदमी मैंने बनाया ही नहीं। मगर सभी से वह यही कह देता है। और हर आदमी इसी ख्याल में भटकता है। यह एक गहरी मजाक है; और परमात्मा करता है, इससे दुनिया में रस है।
जिस दिन तुम जागोगे, और जिस दिन तुम्हारी यह भ्रांति छूट जाएगी। तुम समझ लोगे मजाक को--उसी दिन तुम विनम्र होकर झुक जाओगे। भेंट तैयार है; जन्मों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। तुम्हारा झुकना भर काफी है। तुम लेने भर के लिए राजी हो जाओ, देने वाला सदा से राजी है।
इस जिंदगी में उलटा हो रहा है, यहां मांगनेवाला तैयार है, दाता कोई भी नहीं। उस दुनिया में ठीक इससे उलटा है। वहां दाता तैयार है, लेनेवाला कोई नहीं। बस तुम अपनी झोली फैला दो। तुम अपने हृदय को खोल कर रख दो, और कह दो परमात्मा से जो तेरी मरजी। जैसे तू रखे, वैसा रहेंगे। जैसा तू चलाए, वैसा चलेंगे। जैसा तू बनाए, वैसा बनेंगे। इसे मैं संन्यास कहता हूं। यह संन्यास की बड़ी अनूठी व्याख्या हो गई; क्योंकि जिसको तुम संन्यासी कहते हो, वह कहता है कि पच्चीस गल्तियां हैं परमात्मा के बनाने में, इनको सुधारूंगा। उसने ऐसा क्यों किया? मैं संन्यास कहता हूं उस घड़ी को, जब तुम सर्वांग रूप से परमात्मा को स्वीकार कर लेते हो कि मैं राजी हूं तेरी रजा में। तेरी मर्जी अब मेरी मर्जी। अब तू जहां बहाए, वहां मैं बहूंगा। तू अंधेरे में ले जाए, तो तैयार हूं। तू संसार में भेज दे, तो मैं राजी हूं। तू मोक्ष में ले जाए, तो मैं राजी हूं। अब मेरी अपनी कोई आकांक्षा नहीं। इस घड़ी का नाम संन्यास है। इस चिŸा-दशा का नाम संन्यास है। और ऐसे अगर तुम तैयार हो, इसी क्षण परमात्मा मिल सकता है। क्योंकि सब जगह वही छिपा है। पात-पात पर उसके हस्ताक्षर हैं। और कबीर कहते हैं, जब तुम ऐसी हालत में आ जाओगे तो क्या घटेगा?
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गंभीर। चहुं दिसि दमके दामिनी, भीजै दास कबीर।। फिर सारा आकाश अमृत बरसाने लगता है। जब तुम राजी हो लेने को, तो दाता के अनंत हाथ हैं। इसलिए तो हम परमात्मा के बहुत हाथ बनाते हैं; क्योंकि दो हाथ से देना भी क्या देना होगा? और परमात्मा दो हाथ से दे, बड़ा कृपण मालूम पड़ेगा। इसलिए हम अनंत हाथ बनाते हैं। जब वह देता है तो अनंत हाथों से देता है।
गगन गरजि बरसै अमी--सारा गगन गरज रहा है, अमृत बरस रहा है। बादल गहन अमृत को लेकर घने हो गए हैं। चारों तरफ बिजली चमक रही है। चारों तरफ रोशनी ही रोशनी का सागर है। और भीजै दास कबीर और दास कबीर इस अमृत में नाच रहा है। भीग रहा है; इस अमृत को भी पी रहा है; इस अमृत के साथ एक होता जा रहा है। गगन सदा तैयार है गरजने को, बरसने को। बादल सदा से तुम्हारे सिर पर मंडराते रहे हैं; बिजलियां चमकने को बिल्कुल तत्पर खड़ी हैं; मगर दास कबीर राजी नहीं है। बस दास कबीर राजी हो जाएं, दास हो जाएं--राजी हो गया।
तुम मालिक बने बैठे हो। अहंकार ने सिंहासन पकड़ रखा है--अकड़े हो। तुम्हारी अकड़ के कारण रोशनी तुम्हारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाती है। अमृत भी बरसा है तो भी तुम्हें छू नहीं पाता। तुम्हारी अकड़ भयंकर है। जो भी अपनी अकड़ से भरे हैं, वे पहाड़ों की भांति हैं, गड्ढों की भांति हैं, खाली हैं, शून्य हैं--अमृत से भर जाएंगे।

जरा भी देर नहीं है उसकी तरफ से; अगर देर है तो तुम्हारी तरफ से। और कब
तक प्रतीक्षा करनी है? हो जाओ खड़े आकाश के नीचे। बन जाओ दास कबीर। नाचो अहोभाव से! जो उसने दिया है, उसके लिए धन्यवाद दो। और जैसे ही तुमने उसके लिए धन्यवाद दिया, जो उसने दिया है, कि हजारों हाथ से अमृत बरसना शुरू हो जाता है! फिर वह तुम्हें बहुत देता है। क्योंकि अनुगृहीत की ही उपलब्धि हैं। अनुगृह ही उसकी तरफ जाने का मार्ग है।
ये सब प्रतीक हैं। इन प्रतीकों के भीतर छिपा हुआ इशारा है, उस इशारे
को याद रखनाः
"कस्तूरी कुंडल बसै।"
आज इतना ही।